॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतं

# भासनाटकचक्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

विद्वन्मण्डलसम्पादितम्

प्रधान-सम्पादकः

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम. ए., पी-एच्. डी., साहित्याचार्यः

संस्कृत-विभागः, कलासङ्कायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

[ प्रथमो भागः ]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी; वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०४४
मूल्य : रु० १२५-०० ( भाग १-२ )


पो० बा० नं० ११९८
चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग ), वाराणसी-२२१००१
( भारत )

अपर च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

THE

# BHĀSANĀṬAKACHAKRAM

( Thirteen Trivandrum Plays of Bhasa )

Edited With the

*Sanskrit & Hindi Commentaries*


By

A Board of Scholars

Chief Editor

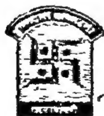
**Dr. SUDHAKAR MALAVIYA**

*M. A., PH. D., Sahityacharya*

Department of Sanskrit, Arts faculty

Banaras Hindu University


[ Part—I ]




KRISHNADAS Academy

*VARANASI-221001*

1987

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi-221001

( INDIA )

First Edition

1987

Price : Rs. 125-00 ( Parts 1-2 )

Also can be had from

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 ( India )

Phone : 63145

# भासनाटकचक्रम्

## प्रथमो भागः



## द्वितीयो भागः



---

'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः'

( प्रसन्नराघव )

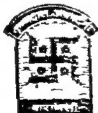
कृष्णदास संस्कृत सीरीज़
२३

महाकविभासप्रणीतः

# मध्यमव्यायोगः

'ज्योत्स्ना'-'सरला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित-
विस्तृत-भूमिका-परिशिष्टादि-विभूषितः

सम्पादको व्याख्याकारश्च
डा० सुधाकर मालवीयः
एम. ए., पी-एच. डी., साहित्याचार्य.
( संस्कृत पालि-विभाग : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी )
प्रस्तावक
डा० विश्वनाथ भट्टाचार्यः
एम. ए., पी-एच. डी.,
(पूर्व प्रोफेसर : संस्कृत पालि विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९८८

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस; वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०४५

मूल्य : रू० ६-००



पो० बा० नं० ११९८

चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग ), वाराणसी-२२१००१

( भारत )

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ ( भारत )

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
23

# MADHYAMA-VYĀYOGA
## [ THE MIDDLE ONE ]
of

## BHĀSA

*Edited with Hindi & Sanskrit Commentaries, Critical Introduction, Explanatory Notes and Appendices*

BY
**Dr. Sudhakar Malaviya**
M. A., Ph. D., Sahityacarya
*Department of Sanskrit & Pali, Banaras Hindu University*

and

Foreword by
**Dr. Biswanath Bhattacharya**
M. A., Ph D.
*Mayurbhanja Prof. of Sanskrit, Department of Sanskrit & Pali Banaras Hindu University*



**KRISHNADAS Academy**
*VARANASI-221001*
1988

© KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 1118
Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi–221001
( India )

Second Edition
1988
Price Rs 6–00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 1008, Varanasi–221001 ( India )
Phone : 63145

# प्रस्तावना

महाकवि कालिदास को भी नाटक लिखने में संकोच करते हुए अनायास जिनका स्मरण हो आया वह भास संस्कृत नाट्यकला के क्षेत्र में निःसंदेह श्रेष्ठतम कोटि के कलाकार हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि 'प्रथितयशा' इस कवि की नाट्यकृतियाँ १९१० ई. तक मौखिक रूप में नाममात्र से ज्ञात थीं। म० म० गणपति शास्त्री ने केरल के 'चाक्यार' संप्रदाय के लोगों से जब इनका उद्धार किया तब से 'भासनाटकचक्र' के रूप में १३ नाटक संस्कृतज्ञ समाज में सादर चर्चा के विषय बने। परवर्ती काल में एक और भी नाटक, समान लक्षणों के कारण, भास की ही कृति मान लिया गया, जो 'यज्ञफलम्' नाम से 'प्रतिमानाटक' के पूर्ववर्ती रामकथा पर आधृत है।

समीक्षक-ऐतिहासिकों के सुदीर्घ परिश्रम से इतना निःसंदेह मान लिया जा सकता है कि ये सारी नाट्यकृतियाँ एककर्तृक हैं और गठन-सौकर्य में अद्वितीय हैं। बहुचर्चित 'स्वप्न' नाटक के सादृश्य के कारण इन सभी के रचयिता भास ही हैं ऐसा मानना भी पूर्णतया संगत है। साथ ही यह भी मानना आवश्यक है कि नाटककार की मूलरचना उपलब्ध कृतियों में संभवतः सर्वथा सुरक्षित नहीं है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर संगति ठीक नहीं बैठती है, ऐसा प्रतीत होता है।

भास की कृतियाँ वस्तु, नेता तथा रस तीनों दृष्टियों से विलक्षण वैविध्य से भूषित हैं। संस्कृत साहित्य में इतनी अधिक एवं विविध प्रकार की नाट्य रचना करने वाला दूसरा नाटककार नहीं है। नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से इन्हें हम बाँध पायें अथवा नहीं, ये सभी कृतियाँ रसनिष्पत्ति की दृष्टि से अनुपम हैं। शृंगार, वीर तथा करुण के अभिव्यञ्जन में भास सिद्धहस्त हैं और शृंगार के अनुचर हास्य का भी सुन्दर समावेश इनकी विशेषता है।

दीप्त रस प्रधान एकाङ्क नाट्य का शास्त्रकारो ने 'व्यायोग' की संज्ञा दी है। भासकृत 'मध्यमव्यायोग' इस कोटि की सर्वप्राचीन रचना है। सर्वप्राचीन होने पर भी यह सर्वोत्कृष्ट भी है—यही भास की प्रतिभा की अनन्य महत्ता है। संक्षिप्त एक कथानक के द्वारा अपने परिवार की रक्षा के लिए मध्यम पुत्र का आत्मत्याग, राक्षस तक के हृदय मे मातृभक्ति की सर्वोच्च प्रतिष्ठा और साथ ही मध्यमपाण्डव भीमसेन की शरणागत की रक्षा करने का महान् आदर्श इसमे नाट्यकार ने प्रतिपादित किया है। भीम घटोत्कच से संबद्ध हो जाने से वीर के साथ ही हास्य का पुट जुड़ गया है और सारी स्थिति ब्राह्मण परिवार की करुण दशा के कारण पूर्णतया सहृदयावर्जक बन गई है।

स्नेहभाजन डा० मालवीय ने लघुकाय इस नाट्य का जो सटीक तथा सानुवाद संस्करण प्रस्तुत किया है उसमे विद्यार्थियो की जिज्ञासा की पूर्ति होगी यह मेरा विश्वास है। विस्तृत भूमिका मे सम्पादक ने भास सबन्धी सारे तथ्यो का आकलन करते हुए यथावधि उपलब्ध पूर्ण सामग्री का प्रशसनीय विवेचन और नाट्यकला की दृष्टि से भी इस कृति का मूल्याकन किया है। साथ ही सारे परिशिष्ट विद्यार्थी तथा विद्वान् दोनो के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगे। मैं इस संस्करण की जनप्रियता की कामना करता हूँ।

दीपावली २०३६
संस्कृत तथा पालिविभाग
काशी हि वि वि., वाराणसी

विश्वनाथ भट्टाचार्य

# दो शब्द

महाकवि भास कृत मध्यमव्यायोग नामक एकाङ्की नाटक का यह संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से प्रस्तुत है। इस संस्करण में पाठभेद सहित मूल-पाठ उसकी संस्कृत व्याख्या, श्लोकों के अन्वय, पदार्थ, हिन्दी अनुवाद तथा उपयोगी विस्तृत भूमिका और व्यायोग-समीक्षा भी दी गई है। इससे यह संस्करण परीक्षार्थी छात्रों तथा अनुसन्धाताओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे पं० टी० गणपतिशास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उन विद्वानों का कृतज्ञ हूँ। प्रस्तावना लेखन के लिए मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत पालि विभाग के मयूरभञ्ज प्रोफेसर गुरुवर्य डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य का अत्यन्त आभारी हूँ। पूज्य पिता स्व० पं० रामकुबेर मालवीय (साहित्य-विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर भास के नाटकों का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्यमार्ग में देखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इस सब का श्रेय मेरी श्रद्धेया गुरुवर्य प्रोफेसर डा० पद्मा मिश्र (भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०) को ही है, जिन्होंने पाण्डुलिपि का आद्योपान्त संशोधन किया। अतः इस महती कृपा और उनके अथक परिश्रम के लिए मैं श्रद्धावनत हो उनसे आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

अन्त में इस कृति के प्रकाशक कृष्णदास अकादमी के संचालक गुप्त बन्धुओं का मैं अत्यन्त आभार स्वीकार करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह कार्य हो सका।

दीपावली १९७९,
३१/२१ लङ्का,
वाराणसी–२२१००५

विदुषां वशंवदः
सुधाकर मालवीय

# भूमिका

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के नाटककारों में अग्रगण्य हैं। इनकी कृतियाँ इतनी प्रसिद्ध थीं कि कालिदास ने भी अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में बड़े आदर के साथ इनका स्मरण किया है।[1] बाणभट्ट [७वीं शती] ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की विशेषताएँ बतलाते हुए इन्हें सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाला बताया है।[2] भामह [७वीं शती] ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' की मूल कथा की आलोचना के साथ साथ इसके एक प्राकृत पद्य को भी संस्कृत रूप में उद्धृत किया है।[3] बालचरित एवं चारुदत्त में उपलब्ध 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' के अलङ्कार की दण्डी [७वीं शती] ने पाण्डित्यपूर्ण मीमांसा की है।[4] वाक्पतिराज [८वीं शती] ने 'गउडवहो' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में इनको ज्वलनमित्र [अग्नि का मित्र] कहा है।[5] वामन [९वीं शती] ने 'काव्यालङ्कार' और उसकी 'सूत्र-वृत्ति' में भास के तीन उद्धरण दिये हैं।[6] राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्न-

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ हर्षचरित, श्लोक १५

३. हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम—काव्यालंकार, अ० ४

४. काव्यादर्श २.२२६

५. भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेवे अ जस्स रघुआरे।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारीअन्द्रे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्द' ॥] 'गउडवहो'

६. (i) शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि। काव्यलंकारसूत्रवृत्तिः ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४

(ii) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२

(iii) यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥ काव्यालंकार १.५ चारुदत्त १.२

वासवदत्तम्' नाटक को 'काव्यमीमांसा' में उत्तम कोटि का स्वीकार किया है।[1]

अभिनवगुप्त [ १० वीं शती ] अभिनवभारती में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[2] इनके अतिरिक्त 'ध्वन्यालोकलोचन' में इस नाटक से एक श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है।[3] महाराज भोज [ ११ वीं शती ] ने 'शृङ्गारप्रकाश' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[4] रामचन्द्र-गुणचन्द्र [१२ वीं शती] ने 'नाट्यदर्पण' में 'स्वप्नवासवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है।[5] आलङ्कारिक जयदेव [ १२ वीं शती ] ने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में उन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है।[6] इस प्रकार प्राचीन समय में भास का संस्कृत साहित्य में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था।

भास के नाटकों की खोज और उनका एककर्तृत्व—

संस्कृत साहित्य के इतने प्रसिद्ध रत्न होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों को इनका केवल नाम ही मालूम था। इनके काल, जीवन वृत्त और ग्रन्थों के

१ भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

२ क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्। अभिनवभारती १.७४
स्वप्न० अंक २

३ संचितपक्ष्मकपाटं नयनद्वारं स्वरूपताडनेन।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा॥

४. स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप। वासवदत्तां च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे।
शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक का श्लोक।

५. यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते—
शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।
पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥ नाट्यदर्पण

६ भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। प्रसन्नराघव

विषय में कुछ भी ज्ञान न था। सौभाग्यवशात् १९१२ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्तशयन ग्रन्थमाला में प्रकाशित कराये और उन्हें भास की रचना बतलाया।

ये नाटक अन्य संस्कृत नाटकों से कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटकों के आरम्भ में ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककार इसी शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटकों में ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। वल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटकों में एक 'स्वप्न नाटक' भी है जिसमें वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। प० टी गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न-वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्न-वासवदत्ता के कर्ता राजशेखर द्वारा भास माने गए हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्ता भी भास ही हैं। उन्होंने आगे लिखा कि—१ क्योंकि रचना शैली आदि में ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं, अतः इनके कर्ता भास ही होंगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानों ने प० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २ परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार ये नाटक भास के नहीं हैं।

३ इन दोनों मतों के अतिरिक्त एक तीसरा मत भी है। उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तों में प्राचीन कवियों के अनेक नाटकों का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें। इसी कारण शकुन्तला आदि नाटकों का भी संक्षिप्त एवं परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटकों का संक्षेप एवं रूपान्तर ही हैं।

यह तीसरा मत कुछ विद्वानों को मान्य है। इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारों ने भास कृत 'स्वप्न-वासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न नाटक' में वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते। अतः विद्वानों का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' में अनेक श्लोक सम्भवतः संक्षेप के कारण लुप्त हो गए। अस्तु,

इस विवाद के रहते हुए भी इतना तो सुनिश्चित ही है कि भास ने कोई 'स्वप्न-वासवदत्तम्' नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्न-नाटक' उसी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल से कितना अन्तर है यह कुछ कहा नहीं जा सकता।

प० टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य बारह नाटकों के अन्त में भी ग्रन्थकार का नाम निर्देशन नहीं प्राप्त होता। यही नहीं आरम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नहीं करता। किन्तु रचनाशैली की समानता के कारण प० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और वह कवि भास ही हैं। फिर भी जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार है—

१. इन रूपकों में कवि का नाम नहीं दिया गया, अत यह भास की रचनाओं पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२ इनमे सूत्रधार नान्दी के बाद प्रवेश करता है। यह विशेषता इन तेरह रूपकों की ही नहीं, अपितु सामान्यत समस्त दक्षिण भारतीय रूपकों की है।

३. इनमे उपलब्ध नाट्यकला भास की ही अपनी नहीं, अपितु वैसी नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपको म मिलती है।

४ इन रूपको म भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतन नहीं है, क्योंकि निषिद्ध दृश्य तो पश्च-कालीन रूपकों में सामान्यत अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५. जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्ष काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थों म बिखरे मिलते हैं। दूसरे, प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विशेषता है। इसके अतिरिक्त रूपकों की प्राकृत हस्तलेखों के लेखन-स्थल एव काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६ बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किये हैं, उन्हें उन्होंने भास-से सम्बद्ध नहीं बताया है।

२ इन रूपको मे अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे—'आपृच्छ' का प्रयोग परस्मैपद मे है।

३ अनेक नाटको मे नाटकीय व्यङ्ग्य ( पताका-स्थानक ) का प्रयोग मिलता है।

४ कतिपय अप्रचलित छन्दो का प्रयोग इनमे प्राप्त होता है। जैसे-सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पडते है; जैसे—'स्वप्न-वासवदत्तम्' प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६ इनमे से अनेक नाटको मे छोटे पात्रो के नामो मे भी समानता है, जैसे 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' मे कञ्चुकी का नाम 'वादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्,' 'प्रतिमा,' 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'अभिषेक'-चारो नाटको मे प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७ प्राय. सभी नाटको मे नाट्यनिर्देशो की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमे दो-तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे 'निष्क्रम्य पुन. प्रविश्य' या 'सविस्मयम् परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटको मे समान दृश्यो की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दो एव समान वाक्यो की उपलब्धि और अन्तत समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटकों का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

## भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' मे स्मरण किये जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नही है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अत उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अत. उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर पं० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय शती ई० पू० का मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे "अपीह श्लोकौ भवत "—कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमे दूसरा

श्लोक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मिलता है।[1] चाणक्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमानाटक' में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।[3] वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता ध्यान' नाम से जो श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटा जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत है, वह महाकवि भास के 'ऊरुभङ्ग' का आदि श्लोक है।[4] कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।[5] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। वेलवल्कर के मत से शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती० ई० पू० होना चाहिए।[6]

---

१ नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
( कौटि० अर्थ० १० ३; प्रतिज्ञा० ४ २ )।

२ भो काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।
( प्रतिमा० अक ५ )

३ लोकमान्यतिलक कृत गीता रहस्य, पृ० ५६०।

४ गीतारहस्य, पृ० ५६१।

5. J O A. S D. Bengal, Jaisawal, p 259, 1913

6. S K Velwalkar, The Relationship of Sudraks's Mrichbakatika to the Carudatta of Bhasa, Presy of the first Oriental conference 1919, Vol II p. 189–204.

२ इन रूपकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे—'आपृच्छ' का प्रयोग परस्मैपद में है।

३ अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है।

४ कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे-सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५ कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते हैं; जैसे—'स्वप्न-वासवदत्तम्' प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६ इनमें से अनेक नाटकों में छोटे पात्रों के नामों में भी समानता है, जैसे 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम 'बादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्,' 'प्रतिमा,' 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' और 'अभिषेक'-चारों नाटकों में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७ प्राय सभी नाटकों में नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमें दो-तीन निर्देश साथ-साथ दिये गये हैं, जैसे 'निष्क्रम्य पुन प्रविश्य' या 'सविस्मयम् परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटकों में समान दृश्यों की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दों एव समान वाक्यों की उपलब्धि और अन्तत समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटकों का प्रणेता निश्चित्त ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

## भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र' में स्मरण किये जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अत उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अत उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर प० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय शती ई० पू० का मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में "अपीह श्लोकौ भवत"—कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा

श्लोक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मिलता है।[1] चाणक्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमानाटक' में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।[3] वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटा जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत है, वह महाकवि भास के 'ऊरुभङ्ग' का आदि श्लोक है।[4] कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।[5] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। बेलवल्कर के मत से शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती० ई० पू० होना चाहिए।[6]

---

१ नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।
( कौटि० अर्थ० १० ३; प्रतिज्ञा० ४.२ )।

२ भो काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।
( प्रतिमा० अंक ५ )

३. लोकमान्यतिलक कृत गीता रहस्य, पृ० ५६०।

४ गीतारहस्य, पृ० ५६१।

5. J. O. A. S. D. Bengal, Jaisawal, p 259, 1913

6. S. K Velwalkar, The Relationship of Sudraks's Mrichbakatika to the Carudatta of Bhasa, Presy of the first Oriental conference 1919, Vol II p. 189–204.

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरितम सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटको मे कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।[1] इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पू० से पहले भी नही मानी जा सकती। अत भास का काल ५०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटको से प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर सकेत करते है। इन नाटको मे पाये जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटको की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतो की अपेक्षा प्राचीन मालूम पडते हैं। भास के नाटको से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भास कृत नाटको की रचना शैली भरत के 'नाट्यशास्त्र' मे वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नही करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नही चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नही चलता। भास के भरतवाक्यो मे आये 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालूम पडता है कि भास उपर्युक्त तीनो राजाओ मे से किसी एक राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। इस प्रकार नाटकों के आभ्यन्तर साक्ष्यो के आधार पर भी ई० पू० ५०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

## भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतो के आधार पर भास की कृतियो का विभाजन हम पाँच प्रकार से कर सकते हैं—

कथा-स्रोत का आधार

| | |
|---|---|
| १ प्रतिमानाटक<br>२. अभिषेक | रामायण |

1 Early History of India, P. 38 39.

| | |
|---|---|
| ३ मध्यमव्यायोग<br>४ दूतवाक्य<br>५. दूतघटोत्कच<br>६ कर्णभार<br>७. ऊरुभङ्ग<br>८ पञ्चरात्र | महाभारत |
| ९. बालचरित | हरिवंश |
| १०. स्वप्नवासवदत्तम्<br>११ प्रतिज्ञायौगन्धरायण<br>१२ अविमारक | बृहत्कथा |
| १३. चारुदत्त | लोकप्रचलित व काल्पनिक |

इन उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासकृत मानते हैं। इसे गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ मे प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर खाला का कथन है कि यद्यपि 'यज्ञफल' भास के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमे बहुत-सी नवीन बातें हैं जो भास के समय म नही थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की रचना के लिए सीता से उद्यान मे मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शङ्का होती है कि यह कही महर्षि की पुत्री तो नही है। विश्वामित्र नगर एव ग्राम्य जीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं, आदि। अत सम्भव है कि 'यज्ञफल' भास के नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

## भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

### I. रामायण पर आधृत नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमे रामवनगमन, सीताहरण आदि से लेकर रावणवध पर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा सक्षेप से वर्णित है। यह सात अक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवगत हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर से बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२. अभिषेक—इसमे किष्किन्धाकाण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा सक्षेप मे है। यह छ अङ्क का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

**II. महाभारत पर आधृत नाटक—**

३ मध्यमव्यायोग—इस एकाङ्की मे मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उस बालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४. दूतवाक्य—इस एकाङ्की मे पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवो के भाग ( हिस्सा ) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकडने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

२ दूतघटोत्कच—इस एकाङ्की में अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का सदेश कौरवो के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा गरमी हो जाती है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकाकी मे 'भरतवाक्य' नही है।

६ कर्णभार—इस एकाङ्की में द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवो की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पडता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान मे दे देते हैं।

७ ऊरुभग—इस एकाङ्की मे द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की कथा वर्णित है। सस्कृत-साहित्य मे मात्र यही एक दु खान्त नाटक है।

८ पचरात्र—इसमे दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप मे पाण्डवो को आधा राज्य दे देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता है कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवो ने विराट् की राजधानी पर गायो के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवो से लडते हैं। अज्ञातवास मे स्थित पाण्डवो की सहायता से उसकी विजय होती है, और पाण्डवो के प्रकाश मे आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलाई जाती है। इस पर दुर्योधन आधा राज्य दे देन के लिए मान जाता है।

**III. हरिवंश पर आधृत नाटक—**

९.—बालचरित—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध पर्यन्त की कथा वर्णित है।

**IV. बृहत्कथा पर आधृत नाटक—**

१० स्वप्नवासवदत्तम्—इसमें वत्सराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महल में वासवदत्ता के हरण के बाद उदयन विलासी हो जाते हैं। इससे शत्रु आरुणि का आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए मगधराज दर्शक से सहायता लेने के लिए वासवदत्ता को मिलकर लावाणक में उनके अग्नि में जल मरने का समाचार उड़ा देते हैं और वासवदत्ता को मगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप में रख देते हैं। बाद में उदयन का विवाह पद्मावती से होता है। एक बार उदयन स्वप्न देखता है। उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनसे मिलन होता है। उधर उदयन का सेनापति रुमण्वान् आरुणि को युद्ध में पराजित कर देता है। इस प्रकार छ अङ्कों का यह सुखान्त नाटक है।

११ प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम विवाह का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसलिए इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अंक के इस 'ईहामृग' नामक नाटकभेद में यौगन्धरायण को पूर्ण सफल दर्शाया गया है।

१२ अविमारक—इसमें राजा कुन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम-विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेडरूपधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए नाटक का नाम 'अविमारक' है।

V काल्पनिक—

१३. चारुदत्तम्—इसमे निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एवं गणिका वसन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रक्खा गया है। यह चार अंक का 'प्रकरण' है।

## भास की नाट्यकला और मध्यमव्यायोग

इस प्रकार भास ने अपने प्राय सभी नाटकों की कथावस्तु रामायण व महाभारत से ली है। कुछ बृहत्कथा पर आधृत है और एक काल्पनिक है। भास ने जो भी कथास्रोत ग्रहण किया उसे सभी नाटकों मे उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्राय सभी कथानक बड़े ही रोचक हो गये हैं और मंचन के योग्य हो गए हैं। इनमें नाट्यनिर्देश बहुत कम हैं, जिसे अभिनेता को स्वयं ही करना है। मध्यमव्यायोग में भी इसी प्रकार 'नाट्य-निर्देश' बहुत कम है और महाभारत के ही पात्रों को लेकर घटना का क्रम कल्पित है। नाटक बहुत बड़ा नहीं है। मात्र कुछ घण्टों का ही दृश्य है जिसमें नाटक समाप्त हो जाता है अत इसका सफलतापूर्वक मंचन किया जा सकता है।

## मध्यमव्यायोग की समीक्षा

### मध्यमव्यायोग की कथावस्तु—

मध्यमव्यायोग की कथावस्तु का प्रारम्भ ब्राह्मण परिवार और घटोत्कच की आकस्मिक मुलाकात से होता है। कुरुजाङ्गल प्रदेश के यूपग्राम के निवासी अध्वर्यु केशवदास अपने मातुल यज्ञबन्धु के यहाँ उपनयन संस्कार मे सम्मिलित होने के लिए उद्यामक ग्राम जा रहे हैं। उनके साथ उनके तीन पुत्र और पत्नी भी हैं। जाने का मार्ग जङ्गल से होकर पड़ता है। दुर्योधन से जुए मे पराजित पाण्डव इसी वन मे निवास कर रहे हैं। किन्तु इस समय वे धौम्य महर्षि के आश्रम पर 'शतकुम्भ' नामक यज्ञ देखने गए हैं। मात्र भीम निवासस्थान के रक्षार्थ रुक गए हैं। इसी समय घटोत्कच भी माता की आज्ञा से उसके उपवास के पारणार्थ एक मानव को लाने के लिए चल पड़ा है। घटोत्कच ब्राह्मण परिवार का पीछा करता है। वह राक्षस तरुण सूर्य की किरणों के समान बिखरे बालों वाला, भ्रुकुटि की भङ्गी से प्रदीप्त एवं पीले रङ्ग की आँखों वाला, कण्ठसूत्र से युक्त, विद्युत युक्त मेघ के समान स्थित युग के संहार मे प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप है। उसकी दोनों आँखें सूर्य-चन्द्र की भाँति चमकीली हैं, वक्षस्थल विस्तृत है, वह पीला कौशेय वस्त्र पहने हुए

है। उसके दाँत हाथी के बच्चों के दाँत के समान मुख निकले हुए हैं। उसके हाथ हाथी की सूड़ के समान हैं।

घटोत्कच कहता है—'डरपोक ब्राह्मण, कहाँ भाग रहे हो? तुम मेरे सामने उसी प्रकार हो जैसे क्रुद्ध गरुड के सामने स्त्री-सहित मरा हुआ नाग हो।' इस पर वृद्ध अपने पुत्र और स्त्री से कहता है कि मत डरो, क्योंकि इसकी वाणी विवेकपूर्ण है। फिर जलविलप्र मुनि ने कहा था कि यह वन निरापद नहीं है, और इस निर्जन वन में किसे पुकारा जाय। अतः इस संकट से मोक्ष का उपाय घटोत्कच से ही पूछना है इस पर घटोत्कच कहता है कि इन तीनों में से मैं एक को ले लूँगा और सब शान्ति से अन्य को जाने दूँगा। इस शर्त पर सभी ने अपने को उत्सर्ग करना चाहा। किन्तु जरा जीर्ण होने के कारण ब्राह्मण और स्त्री होने के कारण ब्राह्मणी छोड़ दी जाती हैं। तीन पुत्रों के बीच ज्येष्ठ को पिता नहीं छोड़ना चाहता और छोटे को माता नहीं छोड़ना चाहती। अतः मध्यम पुत्र ही पिता और माता से न चाहा जाकर बच रहता है जो राक्षस के साथ जाने को तैयार हो जाता है। तब घटोत्कच की अनुमति लेकर मध्यम पुत्र समीप के जलाशय में जल पीने जाता है।

मध्यम पुत्र को लौटने में जब विलम्ब होता है तो घटोत्कच उसे 'मध्यम' 'मध्यम' कहकर पुकारता है, क्योंकि माता के पारणा का काल बीता जा रहा था। भीम अपना नाम सुनकर आश्चर्यान्वित होते हैं कि मुझे कौन बुला सकता है, और घटोत्कच के दुबारा पुकारने पर कहते हैं कि 'यह मैं आ गया' दोनों एक दूसरे को देखकर ठिठक जाते हैं। वह कहता है कि 'क्या आप भी मध्यम हैं।' भीम कहते हैं—'हाँ मैं भी मध्यम हूँ।' वृद्ध ब्राह्मण सोचते हैं कि यह अवश्य ही पाण्डव मध्यम भीम होंगे, जो हम लोगों को मुक्ति दिलाने भाग्यवशात् ही आ गए हैं। इसी बीच मध्यम पुत्र आ जाता है और उसे लेकर घटोत्कच जब चलने लगता है तब वृद्ध ब्राह्मण कातर दृष्टि से भीम से रक्षा की याचना करते हैं। भीम घटोत्कच से कहते हैं कि इस ब्राह्मण परिवार रूपी चन्द्र के लिए तुम क्यों राहु बने हो? ब्राह्मण अवध्य हैं अतः इन्हें छोड़ दो। वह कहता है कि साक्षात् पिता भी यदि आकर कहें कि 'छोड़ दो' तो भी नहीं छोड़ूँगा क्योंकि मैं अपनी माता की आज्ञा से इसे ले जा रहा हूँ। भीम उनकी माता का नाम पूछते हैं और उससे 'हिडिम्बा' नाम सुनकर पुत्र

की मातृभक्ति पर प्रसन्न होते है। भीम मध्यम पुत्र को रोककर उसके स्थान पर स्वय ही जाने को तैयार हो जाते हैं और घटोत्कच से कहते है कि 'यदि तुम्हारे पास ताकत हो जो मुझे जबरदस्ती ले चलो।'

भीम और घटोत्कच के बीच कुस्ती होती है। किन्तु भीम की हार नही होती। घटोत्कच उन्हे मायापाश मे बाँध लेता है, भगवान् शङ्कर से प्राप्त मन्त्र से उससे भी भीम मुक्त हो जाते हैं। अन्तत घटोत्कच उन्हे पूर्व शर्त की याद दिलाता है तो वे उसके साथ चलने लगते है। अपने निवास स्थान पर पहुँचकर भीम को खडा करके वह माता को खुशखबरी देने जाता है। हिडिम्बा जब मनुष्य को देखने आती है तो आश्चर्यचकित-सी होती है और आर्यपुत्र' कहकर भीम का अभिवादन करती है और घटोत्कच को भी प्रणाम करने को कहती है। घटोत्कच अपने कृत्य पर लज्जित-सा हो जाता है और पिता को प्रणाम करते हुए पूर्वापराध के लिए क्षमा माँगता है। हिडिम्बा भी पारणार्थं मानव के आनयन मे मात्र भीम को ही पुन पाने का आशय भीम से प्रकट करती है। भीम भी पुत्र को गले लगाकर धृतराष्ट्र रूपी वन के लिए दवाग्नि के समान घटोत्कच को प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हो उसे पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते है। घटोत्कच वृद्ध ब्राह्मण को भी प्रणाम करता है। तीनो मिलकर उन ब्राह्मण केशवदास को आगे की यात्रा के लिए आश्रम द्वार तक छोडने जाते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

मध्यमव्यायोग की कथा का महाभारतीय परिवेश—भास के द्वारा इस व्यायोग मे महाभारत की कई घटनाएँ अपने ढङ्ग से जोड दी गई हैं। महाभारत मे हिडिम्ब-वध और हिडिम्बा से भीम का विवाह होना और उससे घटोत्कच की उत्पत्ति का कथानक है।[1] यद्यपि घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा करने की घटना वहाँ नही है, किन्तु बकासुर से भीम द्वारा ब्राह्मण परिवार की मुक्ति की कथा अवश्य है।[2]

कथानक के अनुसार बक एक नरभक्षी राक्षस था, जो एकचक्रा से दो कोस की दूरी पर यमुना नदी के किनारे वेत्रवन नामक घने जङ्गल की एक गुफा मे रहता था। इसका एकचक्रा नगरी तथा वहाँ के जनपद पर शासन

१. महाभा० आदि० १५४।

२ महाभा० आदि० १ ६–१६३।

चलना था। एकचक्रा नगरी के व्यक्तियों ने अत्यधिक परेशान होकर इसे घर बैठे ही भोजन भिजवा देने के लिए हर व्यक्ति की पारी बाँध दी। अब हर एक दिन इसके भोजन के लिए ३० मन चावल, दो भैंस तथा एक व्यक्ति नगर-निवासियों की ओर से भेजा जाने लगा।[1] एक दिन एक गरीब ब्राह्मण की पारी आयी, जिसके घर लाक्षागृह से बच निकलने के बाद कुन्ती के साथ पाण्डवों ने निवास किया था। युधिष्ठिर आदि चार भाई भिक्षा के लिए बाहर गए थे। किन्तु भीम किसी कार्यविशेष के कारण कुन्ती के साथ घर पर ही रह गए। ब्राह्मण के घर में सहसा बड़े जोर का आर्तनाद होने लगा। कुन्ती ने भीमसेन से कहा—'निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई कष्ट आ पड़ा है अतः इसकी सहायता करनी चाहिए। भीतर जाकर कुन्ती ने ब्राह्मण को पत्नी, पुत्र और कन्या के साथ नीचे मुँह किए बैठे देखा। सभी विपत्ति से छुटकारा पाने की चिन्ता में मग्न थे। ब्राह्मण के मन में यह चिन्ता थी कि स्वयं को बचाकर राक्षस के लिए कैसे वह अपनी स्त्री को दे दे जिसे वह विवाह करके लाया था अथवा अपने पुत्र या पुत्री को दे दे जो सदा उस पर निर्भर करते हैं। स्त्री स्वयं मरने के लिए उद्यत होती है[2], और कहती है कि हो सकता है कि वह स्त्री समझकर मुझे छोड़ दे।[3] लेकिन इस पर कन्या कहती है कि 'आप मुझे ही जाने दीजिए, क्योंकि मेरा परित्याग आप धर्मतः एक न एक दिन करेंगे ही।[4] उसके ऐसा कहने पर तीनों फूट फूट कर जब रोने लगे तो ब्राह्मण का छोटा बालक एक तिनका उठाकर अपनी तोतली बोली में कहने लगा कि मैं इसीसे उस नरभक्षी राक्षस को मार डालूँगा।'

अब कुन्ती ने ब्राह्मण से उनका कष्ट पूछा और अन्त में ब्राह्मण के ऊपर आयी हुई विपत्ति को देखकर, कुन्ती द्वारा भीम सब खाने पीने के सामान के साथ राक्षस के निवास पर पहुँचे। भीम बक के यहाँ पहुँचकर सारे सामान को स्वयं खाने लगे। यह देख बक बड़ा क्रोधित हुआ और भीम पर झपटा।

१ 'महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति' महाभा० आदि० १५९.६।

२. ॥ कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना।
अनुजानीहि मामार्य सुतौ मे परिपालय ॥ महाभा० आदि० १५७ ३०

३. 'अवध्याः स्त्रियमित्याहुः' महाभा० १५७,३१

४. 'त्यक्तव्या मां परित्यज्य त्राहि सर्वं ममैकया'—महाभा० आदि० १५८,३

दोनो मे मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया और अन्त मे भीम ने बकासुर का वध करके ब्राह्मण परिवार को मुक्ति दिलाई।

महाभारत मे घटोत्कच का यज्ञ व ब्राह्मणो का विद्वेषी होना उल्लिखित है[1]। वैसा ही यहाँ भी कथानक में रक्खा गया। मध्यम पुत्र को माता व पिता द्वारा न चाहा जाना 'ऐतरेय ब्राह्मण' के शुन शेपाख्यान मे ही उल्लिखित है। अत भास ने इस घटना और महाभारत के ब्राह्मण परिवार की भीम द्वारा मुक्ति की घटना को मिलाकर हिडिम्बा के चिर-प्रतीक्षित मिलन की कल्पित कथा को बडे ही कलापूर्ण ढङ्ग से सयोजित कर दिया है। वस्तुत. 'हिडिम्ब-वध-पर्व' मे घटोत्कच की उत्पत्ति के बाद भीम से हिडिम्बा का पुन मिलना कही भी महाभारत मे आगे उल्लिखित नही है। महाभारत मे, क्योकि राक्षसियो को गर्भधारण करते ही सन्तान पैदा हो जाती है,[2] अत घटोत्कच ने उसी समय उत्पन्न होकर माता-पिता दोनो को प्रणाम किया। यह भास को ठीक नही लगा। अत मानव की सन्तान होने के कारण उसे उन्होने बडी कुशलता के साथ अप्रत्याशित ढङ्ग से मिला दिया है। वस्तुत यह भास की अपनी उद्भावना है जो व्यायोग को और भी रोचक बना देती है। पुत्र के विरुद्ध पिता का मल्लयुद्ध भास की अपनी उद्भावना है जिससे वह यह दिखाना चाहते हैं कि भीम के ही समान अब धृतराष्ट्र रूपी-वन के लिए दवाग्नि स्वरूप उनका पुत्र तैयार हो गया है। और उसे भीम भी अत्यन्त बली व पराक्रमी होने का आशीर्वाद देते हैं जब कि महाभारत मे घटोत्कच के अभिवादन का कोई उत्तर नही दिया गया है। इस प्रकार हिडिम्बा और घटोत्कच दोनो को ही भास ने महाभारतीय स्वरूप से अलग मानवीय रूप प्रदान किया है। यह भीम की—'माता मनुष्यो के देवो की देव है'—इस उक्ति से परिलक्षित है, और फिर वह यहाँ मनुष्य को खाना भी नही चाहती।[3]

---

१ महाभा० द्रोण० १८१.२६–२७।

२ महाभा० आदि० १५४ ३६।

३ 'अय स धार्तराष्ट्रवनदवाग्नि'। म० व्या० पृ० ६६

४. 'माता किल मनुष्याणाम्'''म० व्या० ३७।

शुनःशेप की कथा में परिवर्तन—ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप माता-पिता के द्वारा अपनी इच्छा से स्वयं ही बेच दिया जाता है। किन्तु यहाँ मध्यम पुत्र को जाना ही पड रहा है जो निश्चय ही महाभारत के बकासुर की कथा पर आधृत है। ऐतरेय ब्राह्मण में अजीगर्त का परिवार के प्रति सम्पूर्ण व्यवहार अमानवीय-सा है जिसे भास ने एकदम बदल दिया है। शुनःशेप की मुक्ति वरुण द्वारा प्रार्थना से होती है किन्तु यहाँ भीम द्वारा मुक्ति दिलाना बकासुर की कथा का ही महाभारतीय रूपान्तर है।

नाटक का प्रकार और मध्यम व्यायोग—प्रस्तुत नाटक एक 'व्यायोग' है। व्यायोग की परिभाषा[1] के अनुसार व्यायोग के मुख्य तत्त्व निम्न हैं—(१) इसमें इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है, (२) नायक इतिहास प्रसिद्ध और दिव्य होता है, (३) इसमें स्त्रीपात्र बहुत कम होते हैं और पुरुष पात्र अधिक होते हैं जैसा कि इस शब्द की व्युत्पत्ति से भी ज्ञात होता है—'क्योंकि इसमें बहुत से पुरुष व्यायुक्त अर्थात् लगे रहते हैं अतः इसे 'व्यायोग' कहते हैं।[2] (४) इसमें मुख्य रस वीर होता है और [शृङ्गार और हास्य को छोडकर] अन्य पाँच रस अङ्ग होते हैं। (५) इसमें मुख्य रूप से युद्ध अथवा संघर्ष व युद्ध होता है, (६) किन्तु यह युद्ध स्त्री के निमित्त नहीं होता।[3] (७) यह मात्र एक अङ्क का ही होता है और (८) इसमें एक दिन का ही वृत्तान्त होता है।

---

१. व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः।
अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकाहकृतस्तथा चैव ॥
बहवश्च तत्र पुरुषा व्यायच्छन्ते यथा समवकारे।
न तु तत्प्रमाणयुक्तः कार्यस्त्वेकाङ्क एवायम् ॥
न च दिव्यनायककृतः कार्यो राजर्षिनायकनिबद्धः।
युद्धनियुद्धाधर्षणसंघर्षकृतश्च कर्तव्यः ॥
एवंविधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्तकाव्यरसयोनिः ॥
—भरत, हेमचन्द्र के द्वारा काव्यानुशासन में उद्धृत और व्याख्यात,
पृ० ३८७ तु० दश० ३. ६०–६२।

२ व्यायुज्यन्तेऽस्मिन् बहवः पुरुषा इति व्यायोगः। दश० ३.६० पर धनिक।

३. 'अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो'—दश० ३.६१

प्रस्तुत नाटक उपर्युक्त सभी मुख्य तत्त्वो को लेकर ही गठित है। नायक भीम महाभारत की कथा के इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। इसमे मात्र दो ही स्त्री पात्र हैं, ब्राह्मणी और हिडिम्बा]और इनका अभिनय मे भी विशेष योगदान नही है। नाटक का मुख्य इतिवृत्त भीम और घटोत्कच के बाहु-युद्ध के मध्य ही निहित है। यह एक अङ्क का नाटक है, और मात्र एक दिन प्रात काल के दो-चार घण्टो की कथा ही इसमे वर्णित है। इस प्रकार नाटक के प्रकार व्यायोग की परिभाषा इस एकाङ्की पर पूर्णरूपेण घट जाती है।

'मध्यमव्ययोग' नाम का कारण—इस नाटक का शीर्षक अत्यन्त उपयुक्त और अर्थगर्भित है। यह शीर्षक निम्न बातो का अभिव्यञ्जक है—
१. 'मध्यम' शब्द पाण्डवो मे मध्यम-पाण्डव भीम के लिए प्रयुक्त है, और
२ 'व्यायोग' शब्द रूपक के एक प्रकार के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त है। पुमालकर के अनुसार वस्तुत ( i ) 'मध्यम' शब्द 'भीम' और उस 'मध्यम ब्राह्मण बालक' का बोधक है जिसे भीम घटोत्कच से मुक्ति दिलाते हैं और 'व्यायोग' शब्द नाट्य के प्रकार की सज्ञा है। दूसरी व्युत्पत्ति से उनके अनुमार ( ii ) मध्यम पाण्डव भीम का हिडिम्बा से विशेष रूप से सयोग होना ही मध्यमव्यायोग नाम का कारण है।[१] इस प्रकार इस रूपक के शीर्षक की व्युत्पत्तियाँ और भी हो सकती हैं, जैसे—( i ) मध्यम भीम कुन्ती-तनयत्वावच्छिन्नपाण्डवेषु तम्यैव मध्यमत्वात्। मध्यमम् उद्दिश्य कृत व्यायोगः मध्यम-व्यायोग। ( ii ) मध्यमस्य भीमस्य व्यायोग, व्यायुज्यते इति व्यायोग —मध्यमव्यायोग। (iii) मध्यमस्य ब्राह्मणपुत्रस्य व्यायुक्तिनिमित्तकः मध्यमस्य भीमस्य व्यायोग, युद्धनियुद्धरर हिडिम्बायोगावसानश्च, तम् उद्दिश्य कृत ग्रन्थः।

वस्तुत सम्पूर्ण व्यायोग की कथा 'मध्यम' अर्थात् मध्यम पाण्डव भीम और मध्यम-ब्राह्मणकुमार के ही चारो ओर केन्द्रित होने के कारण ही इस नाटक का नाम 'मध्यमव्यायोग' है, जो अत्यन्त उपयुक्त और सारगर्भित है।

---

१ ( i ) मध्यममधिकृत्य कृतो व्यायोगसंज्ञो नाट्यप्रकार ; ( ii ) मध्यम-(भीम)स्य ( हिडिम्बया सह ) व्यायोग ( वि+आ+योग= विशेषण सयोग ), ( iii ) मध्यमौ ( भीमो ब्राह्मणकुमारश्च व्यायुज्येते अस्मिन् इति नाटकम्। ए. डी. पुमालकर, भास-ए स्टडी, पृ० २०४।

**मध्यमव्यायोग मे रस और अलङ्कार**—इस व्यायोग में मुख्य रस 'वीर' है और अन्य रस भी इसे ही पुष्ट करने मे प्रयुक्त हैं। ब्राह्मण और घटोत्कच की मुलाकात मे भयानक रस है। ब्राह्मण परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दे देने का प्रस्ताव करुण रस प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार घटोत्कच के साथ भीम की भिड़न्त मे रौद्र और हास्य तथा उन दोनों के द्वारा माया-पाश का प्रयोग और उससे छुटकारा पाना अद्भुत रस प्रकट करता है।

सम्पूर्ण नाटक मे उपमा और रूपक का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। घटोत्कच के स्वरूप का वर्णन करते हुए ब्राह्मण-परिवार की भयान्वित अवस्था का चित्रण उपमा और रूपक के माध्यम से बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है, जैसे—

(i) घटोत्कच के द्वारा ब्राह्मण परिवार का पीछा उसी तरह किया जा रहा है जैसे वत्स के सहित गाय का पीछा सिंह करता है—

भ्रान्तै सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारो वृद्धो द्विजो निशिचरानुचर॰ स एषः।
व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनु॰ सन्त्रस्तवत्सक इव कुलतामुपैति ॥

(ii) स्त्री-पुत्रों की रक्षा मे असमर्थ घटोत्कच के भय से विनष्ट धैर्यवाला भयभीत ब्राह्मण उसी प्रकार जा रहा है जैसे गरुड के पंख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला उत्तेजित सपत्नीक तथा दीन सर्प जाता है।

किं यामि मद्भयविनाशितधैर्यसारो विस्त्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते।
तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रकलत्रसहितो भुजगो यथार्त. ॥ ८ ॥

इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के इन श्लोकों मे हमे उपमा देखने को मिलती है—
१, ३, ४, ५, ८, २४, २६, २७, ३२, ३८, ४६, ४७ और ४८ आदि।

रूपक के माध्यम से भास ने घटोत्कच का बहुत सुन्दर चित्र-सा खींच दिया है, जैसे—'यह गिरिराजों के लिए वज्रपात-सा, सभी पक्षियों के लिए बाज-सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर साक्षात् मानो यमराज ही आ गये हों—

वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्त्रिणाम्।
मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार आगे भी इन श्लोकों मे रूपक प्रस्तुत किया गया है—७, १५, २३, ३३ और ४२।

इसी प्रकार ६, ३०, ३१, ३३ श्लोक में उत्प्रेक्षा, ४४ में दृष्टान्त, २० श्लोक में अर्थान्तरन्यास, १० में काव्यलिङ्ग आदि अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत व्यायोग में अनुप्रास तो स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, जैसे-१, ३, ६, २४, २५, २६, ३२ और ३८ में प्रयुक्त है।

**मध्यम व्यायोग में भास की काव्यकला**—प्रस्तुत नाटक में रस और अलङ्कार का प्रयोग जितनी सफलता के साथ किया गया है वैसे ही भाषा में काव्यात्मक लाने के लिए एक ही शब्द का या उपसर्ग का प्रयोग भी बार-बार एक ही स्थान पर किया गया है। जैसे-२९ वें और ३०वें श्लोक में मध्यम शब्द का आठ बार प्रयोग करके कवि ने बड़ा ही चमत्कार प्रस्तुत किया है। एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी कला है, जिसे उन्होंने अन्य स्थल में भी किया है जैसे २२वें श्लोक में 'परिष्वज' का प्रयोग और ४२वें श्लोक में 'प्रभव' का प्रयोग।

**नाटक का उद्देश्य**—हिडिम्बा ने घटोत्कच को जो पारणार्थ किसी मनुष्य को लाने के लिए कहा था उसका मात्र उद्देश्य यही था कि उससे भीम का पुनर्मिलन हो। वह जाति से राक्षसी थी। अपने आचारों से वह मानव ही थी। जैसा कि कवि ने भीम की इस उक्ति से 'जात्या राक्षसी न समुदाचारेण' प्रकट किया है। यही मत म०म० टी० गणपति शास्त्री[1] का भी है, जैसा कि 'मध्यमव्यायोग' की संस्कृत टीका में उन्होंने बड़े विस्तृत रूप में इसे प्रदर्शित भी किया है—'मानुषानयनतात्पर्यरहस्यस्य स्वभर्तृमात्रश्रवणीयत्व-मन्यमाना स्वभर्तुं कर्णे तन्निवेदयति—कर्णे इत्यादि। ईदृशमिव दृष्टान्ते वाक्य-भूषणम्। ईदृ कथरहस्यमित्यर्थ। तच्च पूर्वोक्तरार्थपर्यालोचनयोन्नेतुं शक्य-मिति ग्रन्थे न निबद्धम्। तद् उत्तरवाक्ये विशदयाम। तदनिगायरहस्यश्रवणेन परितुष्ट आह जात्येति। जात्या जन्मना राक्षसी, अर्थात् वन् समुदाचारेण न, राक्षसी न भवसि। अयमाशय ... स्वभर्तृसमागम इति ब्रूम।'

अन्य बातों से भी नाटक का यही प्रयोजन हमें प्राप्त होता है जैसे-हिडिम्बा ने कहा था कि इसी वन से मनुष्य खोजकर लाओ।[2] फिर जब ब्राह्मणी ने

---

१ हिडिम्बयात्मकारितस्य मानुषग्रहणस्य भीमसेनसमागम एवानन्यथा सिद्ध प्रयोजनमभिमहितम्। म० व्या०, उपोद्घात पृ० २।

२. अस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः परिमृग्यानेतव्य इति म० व्या० पृ० १९।

ही अपना शरीर देना चाहा तो घटोत्कच ने यही कहा कि मेरी माँ को स्त्री नहीं चाहिए।[1] इसके बाद वृद्ध ने जब अपना शरीर देना चाहा तो भी उसने यही कहा कि 'अरे वृद्ध तुम अलग हटो।' घटोत्कच द्वारा चिराभिलषित: शब्द के प्रयोग से भी यही प्रतीत होता है कि हिडिम्बा को बहुत दिन से भीम से मिलने की अभिलाषा थी। इस प्रकार नाटक का मुख्य प्रयोजन भीम का हिडिम्बा से पुनर्मिलन है।

चरित्र चित्रण—

भास अपने नाटकों में पात्रों का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित करते हैं। इसी से प्रभावित होकर बाणभट्ट ने उनके नाटकों को 'चरित्रप्रधान' कहा है— 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।' प्रस्तुत नाटक में छ पुरुष: पात्र हैं और दो स्त्री पात्र हैं। इनमें से कुछ के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है—

भीम—प्रस्तुत व्यायोग के नायक भीम महाभारत के भीम के ही समान अतुलनीय शक्ति वाले चित्रित किये गये हैं। खुले मैदान में वे नित्य व्यायाम करने वाले हैं। घटोत्कच जो स्वयं इतना बलवान् है कह उठता है कि 'अरे यह तो दर्शनीय पुरुष है।' इसकी आकृति सिंह के समान है ताड़ के वृक्ष के समान लम्बे हाथ हैं।[2]

भीम धीरोद्धत नायक हैं। वह बहुत गर्वीले और गर्म स्वभाव के होकर भी ब्राह्मण के प्रति दयावान् हैं। उनका पुत्रवात्सल्य अत्यन्त स्नेहिल है। घटोत्कच का बाल-स्वभाव देखकर उन्हें सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु का स्मरण हो आता है।[3]

भीम मध्यम पाण्डव हैं। उन्होंने अत्यन्त गर्व के साथ अपने को आठ वस्तुओं में मध्यम बतलाया।[4] भीम के मन में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण को कष्ट में देख वे तुरन्त उन्हें छोड़ देने के लिए कहते हैं।

---

१ न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या। म० व्या० पृ० २३।

२ अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः। य एष सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहु'— म० व्या० २७ श्लो०।

३. दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम्॥ ३५ श्लोक

४. ''''मध्यमोऽहमवध्यानाम्'''' — म० व्या० २८ श्लोक।

भीम का चरित्र एक वीर के रूप मे चित्रित है। वह केवल बाहु की सहायता से ही बिना अस्त्र शस्त्र के युद्ध करते हैं। उन्हे दिव्य शक्ति भी प्राप्त है। वे महेश्वर द्वारा प्राप्त शक्ति से मायापाश से अपने को छुडा लेते हैं। यह सब कुछ होकर भी उन्हे सत्य के प्रति आस्था है, जैसा कि घटोत्कच ने जब कहा कि 'अपने पूर्व कथन का स्मरण करो'–तब तुरन्त ही वे उसके पीछे चल पडते है।

भास ने भीम को प्रेमी पति और पुत्र स्नेही पिता के रूप मे चित्रित किया है। बहुत दिनों बाद हिडिम्बा से मिलकर उनकी 'अस्माक भ्रष्टराज्याना' आदि उक्ति के द्वारा प्रसन्नता ही प्रकट होती है। हिडिम्बा कृत पूर्व उपकारो के प्रति वे अत्यन्त कृतज्ञ होते है।[1] पुत्र के प्रति उनका स्नेह हमे तब प्रकट होता है, जब वे कहते है–'पुत्रापेक्षीणि पितृहृदयानि ।'[2], इस प्रकार मध्यम पाण्डव भीम का व्यक्तित्व सर्वातिशायी बन पडा है। इस प्रकार वे ब्राह्मणो के अभयदाता, निर्भीक एव स्वाभिमानी क्षत्रिय योद्धा के रूप मे चित्रित किये गये हैं।

घटोत्कच––भीम के बाद प्रस्तुत नाटक मे घटोत्कच की ही मुख्य भूमिका है। वह एक राक्षस होकर भी अत्यन्त मातृभक्त है। अपनी माता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपने पिता की आज्ञा का भी उल्लघन कर सकता है। ब्राह्मण को छोड देने के लिए जब भीम कहते है तो वह कहता है कि यदि मेरे पिता भी आकर कह कि इसे छोड दो तो भी इसे मैं नही छोड़ूँगा; क्योकि इसे हमने अपनी माता की आज्ञा से पकडा है। राक्षसी हिडिम्बा से उत्पन्न होकर घटोत्कच को उत्तराधिकार मे साहस और अतुल बल प्राप्त हुआ है। पाण्डवो के मध्य उसे मानव रूप मे चित्रित किया गया है। उसे दैवी अस्त्र भी प्राप्त है। बाहु युद्ध में जब वह भीम से हार जाता है तब माता से प्राप्त माया-पाश का प्रयोग करता है। उसके आकृति की प्रशसा भीम भी करते है।[3] उसका मुख सिह के समान है। उसकी आँखें चन्द्र-सूर्य की भाँति तेजस्वी है।

---

१ अये, देवी हिडिम्बा—अस्माकम् भ्रष्ट '' म० व्या० पृ० ६४।

२ एह्येहि पुत्र, व्यतिक्रमकृत क्षान्तमेव। अय स धार्तराष्ट्रवनदवाग्नि। पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि। पुत्र, अतिबलपराक्रमो भव।
म० व्या० पृ० ६६।

३ अहो! दर्शनीयोऽय पुरुष.। अय हि सिहास्य सिहदष्ट्रो—म० व्या० २६ श्लोक।

भीम के द्वारा राक्षस होने हुए भी घटोत्कच को मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। उसे मालूम है कि ब्राह्मण अवध्य होते हैं। किन्तु वह माता की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। उसमे राक्षसी कठोरता नहीं है। शीघ्रता होने पर भी वह ब्राह्मण बालक को पानी पीने के लिए जाने देता है। घटोत्कच के हृदय मे बालोचित चापल्य होकर भी दृढता एवं निर्भीकता है। अत्यन्त बलवान् भीम को पाकर भी उनसे लड जाता है। वह बुद्धिमान् भी है। जब भीम से वह हार जाता है तो उनके पूर्व कथन के द्वारा उन्हे चलने के लिए राजी कर लेता है। घटोत्कच मे विनय विद्यमान है। माता के पास भीम को लेकर जब वह पहुँचता है और माँ की उपस्थिति मे जब उसे यह ज्ञात होता है कि जिस मनुष्य को वह पकड लाया है, वह उसका पिता ही है, तो उसे अपने कृत्य पर बडी लज्जा आती है और वह अपने पिता भीम से क्षमा याचना करता है।[१]

हिडिम्बा—भीमसेन की स्त्री राक्षसी हिडिम्बा को अत्यन्त बुद्धिमती और चतुर स्त्री के रूप मे चित्रित किया गया है। वस्तुत वह जाति से राक्षसी है, अपने कर्मों से नहीं[२]। जब उससे पति भीम के द्वारा वस्तुस्थिति के बारे मे पूछा गया तो उसने अपने प्रिय से मिलने की इसे एक युक्ति ही बतलाया। यह बात उसके द्वारा भीम के कान मे कही गई उक्ति ( ईदृशमिव ) से भासित होता है। कुछ भी हो, किन्तु भीम उसके उत्तर मे आश्वस्त होकर यही कहते हैं कि तुम तो जात्या राक्षसी जरूर हो किन्तु कर्मणा तो नहीं। वस्तुत अपने पति के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक है कि वह उसे बुलाने के लिए कोई भी युक्ति अपना सकती है। भीम को वह अपने देवता के रूप मे देखती है। घटोत्कच द्वारा लाए हुए भीम को वह जब देखती है तो घटोत्कच से यही कहती है कि ये मेरे और तुम्हारे देवता हैं।[३] अत स्वय भी उनका अभिवादन करती है और पुत्र से भी अभिवादन करने को कहती है।

'दीपावली' १९७९

संस्कृत-पालि विभाग, का० हि० वि० वि०
वाराणसी —सुधाकर मालवीय

---

१ पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि। म० व्या० पृ० ६५।

२ जात्या राक्षसी न समुदाचारेण। म० व्या० पृ० ६५।

३. 'उन्मत्तक, दैवतं खल्वयं।......तव च, मम च।.... अभिवादय पितरम्'—म० व्या० पृ० ६९।

## पात्राणि

पुरुषाः—

वृद्ध —ब्राह्मण केशवदासनामा ।

प्रथम —वृद्धस्य ज्येष्ठ पुत्रः ।

द्वितीय —वृद्धस्य द्वितीय पुत्रो मध्यमनामा ।

तृतीय —वृद्धस्य कनिष्ठ पुत्र ।

घटोत्कच —राक्षसो हिडिम्बा भीमसेनयोः सूनु ।

भीमसेन —मध्यम कुन्तीपुत्र ।

स्त्रियः—

ब्राह्मणी—वृद्धस्य भार्या ।

हिडिम्बा—राक्षसी भीमसेनस्य पत्नी ।

॥ श्रीः ॥

# मध्यमव्यायोगः

## ज्योत्स्ना-सरला-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः

### प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

---

ज्योत्स्ना

यत्कृपालवमात्रेण प्रपूर्यन्ते मनोरथा ।
वाग्देवीं विघ्नराजं च तौ वन्देऽहं पुनः पुनः ॥ १ ॥
मिश्रा गुरुवरा यथा नौमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।
यस्याः संवित् सुधाम्भोधेः सीकरोऽपि रसार्णवः ॥ २ ॥
श्रीभासरूपकस्तोमे नानारससमाश्रये ।
व्याख्या मध्यमपूर्वस्य व्यायोगस्य विरच्यते ॥ ३ ॥
टीकामभिनवां रम्यां 'ज्योत्स्नां' च 'सरलां' तथा ।
करोति स्पष्टबोधार्थं मालवीयः सुधाकरः ॥ ४ ॥

कविकुलमूर्धन्यः कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो मध्यमव्यायोगाभिधाने रूपके निर्विघ्नपरिसमाप्तिसूचिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समनन्तरं सूत्रधारस्य प्रवेशं सूचयति—नान्द्यन्त इत्यादिना । नान्द्यन्ते नन्दिरानन्दः; तस्या इयं नान्दी नाम नाटकप्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भसूचनार्थं च सम्पाद्यमाना वादित्र क्रियोच्यते[1] । तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमापनानन्तरमित्यर्थः । ततः तदनन्तरं गीतादिक्रियापरिसमाप्त्यव्यवहितोत्तरकाले

---

[ नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश ]

---

१. नान्दीलक्षणं यथा—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
सा० द० ६. २४ ।

सूत्रधारः—

पायात् स योऽसुरवधूहृदयावसादः
पादो हरेः कुवलयामलखड्गनीलः ।
यः प्रोद्यतस्त्रिभुवनक्रमणे[1] रराज
वैदूर्यसङ्क्रम[2] इवाम्बरसागरस्य ॥ १ ॥

---

इत्यर्थ । सूत्रधार—सूत्र प्रयोगानुष्ठान धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधार ।[3] प्रविशति रङ्गम् ।

प्रवेशानन्तर सर्वकार्यकारित्वात् नाट्यस्य प्रधानभूतः सूत्रधार आशीर्वाद-पुर सर मङ्गलमातनोति पायादिति । असुरवधूहृदयावसाद =असुरवधूनाम् असुरस्त्रीणा हृदयस्य अवसाद दु खकर , विषादप्रदो वा, तद्भर्तृविध्वसनेन । कुवलयामलखड्गनील =कुवलयामल नीलोत्पलविशुद्ध खड्गनील असिव-च्छ्यामश्च, कुवलय नीलोत्पलम् अमलखड्गो मलापेतोऽसि तद्वनील इति वा । हरे =वामनरूपेणावतीर्णस्य, स प्रसिद्ध पाद =चरण व =युष्मान् रङ्गस्थान्, पायात्=रक्षेत् । प्रकृतरूपकप्रयोगप्रेक्षणरूपाभीष्टसिद्धचा योजयेदित्यर्थ । तच्छब्देन निर्दिष्टस्य पादस्य विशेषमाह—य =पाद । त्रिभुवनक्रमणे=लोकत्रयमाने, महाबल्याख्यासुरस्य निग्रहार्थं क्रियमाणे सकलभुवनमाने—इत्यर्थ । प्रोद्यत = ऊर्ध्वलोकमानार्थं प्रकर्षेणोत्क्षिप्त सन् । अम्बरसागरस्य=गगनरूपस्य समुद्रस्य । वैदूर्यसक्रम इव=वैदूर्येण स्वच्छनीलवर्णयुतेन मणिविशेषेण निर्मित सक्रम सेतु इव । 'सक्रमो दुर्गसञ्चर ' इत्यमर' । रराज=शुशुभे । अत्र 'कुवलयाम-

---

सरला

सूत्रधार—भगवान् विष्णु [ का वामन अवतार ] का वह चरण आप की रक्षा करे, जो असुरो की पत्नियो के हृदय मे विषाद उत्पन्न करने वाला, नीले कमल के समान निर्मल तथा कृपाण के समान श्याम वर्ण एव तीनो लोकों को नापने के लिए प्रकृष्ट रूप से उठाया गया [ जो चरण ] आकाश रूपी समुद्र म वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान सुशोभित हुआ ॥ १ ॥

१ भुवनैकमणे—इति वा पाठ । २ वैडूर्य—इति वा पाठ ।
३ तल्लक्षण यथा—नाट्यस्य यदनुष्ठान तत् सूत्र स्यात् सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरित ।' ना० शा०

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग! पश्यामि।

---

ससड्गनील.' इति लुप्तोपमा, अम्बरसागरस्य [अम्बरमेव सागरः] इति रूपकम्, तथा वैदूर्यसंक्रम इवेत्युत्प्रेक्षा अलङ्काराः। वसन्ततिलकावृत्तमिदम्। तल्लक्षणं तु—'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ ग.' ॥ १ ॥

अन्वय—हरे. स. पादः वः पायात् य' असुरवधूना हृदयाऽवसादः, कुवलयामलखड्गनील', त्रिभुवनक्रमणे प्रोद्यत अम्बरसागरस्य वैदूर्यसंक्रम इव रराज।

पदार्थ—हरे=भगवान् विष्णु का [वामनावतार वाला], स.=वह प्रसिद्ध, पाद.=पैर, वः=आप [सहृदय सामाजिक] लोगों की, पायात्=रक्षा करे; य.=जो, असुरवधूना=दैत्यराज [बलि] की पत्नियों के, हृदयाऽवसाद'=हृदय में विषाद पैदा करने वाला, कुवलय-अमल-खड्ग नील.=नीले कमल के समान निर्मल तथा कृपाण के समान श्यामल; त्रिभुवनक्रमणे=तीनों लोकों को मापने के लिए; प्रोद्यत'=प्रकृष्ट रूप से उठाया गया, अम्बरसागरस्य=आकाशरूपीसमुद्र के, वैदूर्य-संक्रम इव=वैदूर्यमणि से निर्मित सेतु के समान; रराज=शोभित हो रहा है ॥ १ ॥

एवमाशिषाभिमुखीकृत्य सामाजिकान् नाटकस्य कथावस्त्वश विज्ञापयति—एवमित्यादिना। एवम्=अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण। आर्यमिश्रान्=आर्याः सभ्या मिश्रा' पूज्या', आर्याश्च मिश्राश्च आर्यमिश्रास्तान्। 'मिश्र' शब्दश्च आदरार्थक। पूज्या माननीया इत्यर्थ। यद्यपि आर्यशब्देनैव आर्योऽय व्यज्यते तथापि 'द्वौ नञौ प्रकृतार्थं द्रढयत.' इतिवत् आर्यमिश्रशब्दौ सम्यक् आदरातिशय द्योतयत.। विज्ञापयामि=सूचयामि। अये इत्यव्ययमाश्चर्ये विषादे वा। अये इति विज्ञापनाभङ्गेनोत्पन्नं विषादम्। अकस्माच्छब्दश्रवणेन सञ्जातमाश्चर्यं वा द्योतयति। किन्नु खलु—नु इति वितर्के, किं कारणम्। मयि विज्ञापनव्यग्रे—विज्ञापनव्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थमुद्यते। 'व्यग्रो व्यासक्त आकुले' इत्यमर। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' पा० सू० २ ३ ३७ इति भावे सप्तमी।

---

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ। अरे, सूचना देने में व्यस्त मुझको यह कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है। अच्छा देखूँ तो।

(नेपथ्ये)

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधार.—भवतु, विज्ञातम् ।

भोः शब्दोच्चारणादस्य ब्राह्मणोऽयं न संशय ।
त्रास्यते निर्विशङ्केन केनचित् पापचेतसा ॥ २ ॥

---

शब्द इव=अनिश्चितरूप शब्द, इवपदस्यानिश्चयार्थत्वात् नेपथ्यगतशब्दस्यास्फुटत्वाच्च । श्रूयते=कर्णगोचरीभवति । 'अङ्ग' इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा । 'स्युः पाट्प्याडङ्गहेहेभोः' इत्यमर. । तच्च सामाजिकविषयम् । पश्यामि='कुतोऽयं किमर्थश्च शब्दोऽयम्' इति परीक्ष्य ज्ञास्यामि । नेपथ्यम्=जवनिकान्तर्भागो नटप्रसाधनस्थलं वा 'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थल नेपथ्यमुच्यते' इत्युक्तलक्षणत्वात् । शब्दस्याकारमाह–भोस्तातेति । भो.–इति विषादे । हे तात !=पित ; एष=सन्निकृष्टो विषादोत्पादक पुरुष. । भवतु विज्ञातम्=शब्दस्य यथार्थस्वरूप ज्ञात इत्यर्थः । 'कस्य वाऽयं शब्द', किमर्थं वा प्रयुज्यते' इति सदेह सर्वथैव निवृत्त' ।

यत्खलु ज्ञातं तदेव कथयति–भो शब्देत्यादिना । अस्य=भोस्तातेत्यादि वदतः पुरुषस्य । भो शब्दोच्चारणाद्=भो शब्दस्य विषादार्थस्य उद्घोषणात् । विज्ञातम्=नेपथ्ये श्रूयमाणस्य शब्दस्य निमित्तम् । तदेव विवृणोति–अयं ब्राह्मणः=सन्निकृष्ट' किन्तु अग्रचरो विप्र । निर्विशङ्केन=निर्भयेन, पापचेतसा=पापं दुरिताभिनिवेशि चेतो हृदय यस्य तेन तथाभूतेन दुष्कृतात्मनेत्यर्थ. । केनचित्=अज्ञातेन पुंसा, त्रास्यते=भीष्यते । न सशय=नास्त्यत्र सन्देह लेशोऽपि । अनुष्टुप् छन्द । तल्लक्षण तु—'श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥' इति । अनुष्टुप् छन्द श्लोकपदेनापि व्यवह्रियते ॥ २ ॥

---

(नेपथ्य मे)

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

इसके 'भोः' इस शब्द के उच्चारण से 'यह ब्राह्मण है'—इसमे कोई सन्देह नही है । यह ब्राह्मण किसी निर्भय और दुष्कृतात्मा के द्वारा डराया जा रहा है ॥ २ ॥

( पुनः नेपथ्ये )

भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।

सूत्रधारः—हन्त, दृढं विज्ञातम् । एष खलु पाण्डवमध्यमस्यात्मजो हिडिम्बारणिसम्भूतो राक्षसाग्निरकृतवैरं ब्राह्मणजनं वित्रासयति । भोः ! कष्टं कष्टं खलु पत्नीसुतपरिवृतस्य वृत्तान्तः[1] । अत्र हि,

---

अन्वय—अस्य 'भो', [ इति ], शब्दोच्चारणात् अयं ब्राह्मण, [ इत्यत्र ], न, संशयः । [ अयं ] केनचित् निर्विशङ्केन, पापचेतसा, त्रास्यते ॥ २ ॥

पदार्थ—अस्य=इसके, भो. [ इति ] शब्दोच्चारणात् = 'भो.' इस शब्द के उच्चारण से, अयम्=यह, ब्राह्मण =ब्राह्मण है, [ इत्यत्र ] न संशय.=इस विषय में कोई सन्देह नहीं है । [ अयम् = यह ब्राह्मण ] केनचित् निर्विशङ्केन=किसी निर्भय, पापचेतसा =और दुष्कृतात्मा के द्वारा, त्रास्यते=भयभीत कराया जा रहा है ॥ २ ॥

शब्दस्य कारणं ज्ञात्वा सूत्रधार तद्विषयं विवृणोति—हन्तेत्यादिना । हन्तेति विषादे । दृढम्—सम्यक् । विज्ञातम्—शब्दनिमित्तम् अवगतमित्यर्थः । एष खल्वित्यादिवाक्यं विशेषाकारविवरणम् । पाण्डवमध्यमस्य=पाण्डवेषु पञ्चसु मध्यमस्य भीमसेनस्य । यद्यपि भीमार्जुननकुलास्त्रयोऽपि मध्यमा, तथापि तेषु प्राथम्याद् भीमसेन इह मध्यमो गृह्यते । हिडिम्बारणिसम्भूत.=हिडिम्बा तदभिख्या राक्षसी, अरणि तत् स्वरूपाया तस्या सम्भूत. । राक्षसाग्नि'—राक्षस एवाग्निः, संतापकत्वात् । स च घटोत्कच । अकृतवैरम्—अकृतविरोधम्, निरपराधमित्यर्थं । वृत्तान्तः=दशा ॥

---

( पुन नेपथ्य में )

हे तात ! यह कौन है ?

सूत्रधार—ओह ! वस्तुत. अब मैं समझ गया । निश्चय ही यह पाण्डवो में मध्यम [ भीम ] का पुत्र, हिडिम्बा रूपी अरणि से निकला हुआ अग्नि रूप राक्षस [ घटोत्कच ] है जो ऐसे ब्राह्मण जन को सन्त्रस्त कर रहा है जिन्होने उससे कभी भी द्वेष नहीं किया । ओह ! कष्ट है, स्त्री एवं बच्चो से घिरे हुए इस दीन ब्राह्मण के हाल पर अत्यन्त कष्ट है । क्योंकि यहाँ—

---

१. कष्टं''''वृत्तान्त —क्वचित् पुस्तके नास्ति ।

[1]श्रान्तैः सुतै परिवृतस्तरुणैः सदारो[2]
वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स[3] एव ।
[4]व्याघ्रानुसारचकितो वृषभ सधेनु
सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपैति ॥ ३ ॥

श्रान्तैरिति । श्रान्तै =वनाध्वसञ्चारखिन्नै । तरुणै =युवभि, सुतै = तनयै, परिवृत, सदार =सकलत्र, वृद्ध =स्थविर, निशिचरानुचर = निशिचरो राक्षस अनुचर अनुगन्ता यस्य स, तथाभूत स एव द्विज = ब्राह्मण । व्याघ्रानुसारचकित =व्याघ्र हिंस्रपशुविशेष, तस्यानुसरणेन अनुगमनेन चकित त्रस्त । सधेनु.=धेनुर्नवप्रसूता गौ तया सहित । सन्त्रस्तवत्सक =सम्यक् त्रस्त भीत वत्सको यस्य स । स्वार्थे कन् । वृषभ इव= महोक्ष इव । आकुलताम्=उद्विग्नत्वम्, उपैति=प्राप्नोति । उपमालङ्कार । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३ ॥

अन्वय—तरुणै, श्रान्तै, सुतै, सदारै, परिवृत, निशिचरानुचर, एप, स, वृद्ध, द्विज सन्त्रस्तवत्सक सधेनु व्याघ्रानुसारचकित, वृषभ, इव, आकुलताम् उपैति ॥ ३ ॥

पदार्थ—तरुणै =युवक, श्रान्तै =थके हुए सुतै =पुत्रो, सदारै =और पत्नी से, परिवृत्त =घिरे हुए, निशिचरानुचर =राक्षस से अनुगम्यमान, एष स =वह यह, वृद्ध द्विज =बुड्ढा ब्राह्मण, सन्त्रस्तवत्सक =भयभीत छोटे छोटे बछडो और सधेनु=गाय से युक्त, व्याघ्रानुसारचकित =चीते के आक्रमण से सम्भ्रान्त, वृषभ इव=बैल के समान, आकुलताम् व्याकुलता को, उपैति= प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

युवक एव डरे हुए पुत्रो और पत्नी स घिरे हुए राक्षस से अनुगम्यमान यह वृद्ध ब्राह्मण भयभीत छोटे बछडो और गाय से युक्त व्याघ्र के आक्रमण, से डरे हुए बैल के समान, व्याकुलता को प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

१ भ्रान्तै—इति वा पाठ । २ सदारै—इति वा पाठ ।
३ सरोप—इति वा पाठ ।
४ •नुसारचरितो, नुचारचकितो इति वा पाठौ ।

( निष्क्रान्तः )

स्थापना

( ततः प्रविशति सुतत्रयकलत्रपरिवृतः वृद्धः ब्राह्मणः पृष्ठतो घटोत्कचश्च । )

[1]वृद्धः—भोः ! को नु खल्वेषः,

[2]तरुणरविकरप्रकीर्णकेशो

निष्क्रान्तः=निर्गतः सूत्रधारः ॥

स्थापनेति । स्थापना=प्रस्तावना आमुखं वा । वस्तुतः स्थापकाभिनेन सूत्रधारसहायकेनेदं कर्तव्यम् । कथार्थस्य स्थापनात् स्थापकः । तेन च स्थापकेन यत्र कथावस्तु बीजं पात्रं वा स्थाप्यते सा स्थापना । अत्र च तत्कार्यं सूत्रधारेणैव निर्वाहितम् ।

प्रविशतीति । सूत्रधारोद्दिष्टानां पात्राणां प्रवेशः सूच्यते । रङ्गमिति शेषः । घटोत्कचेनानुयातः सपुत्रकलत्रः सन्त्रस्तः वृद्धः ब्राह्मणः प्रविशति । 'घटोत्कच' इत्यभिधानं महाभारते एवं व्याख्यातम्—'घटो हास्योत्कच [ ह अस्य उत्कचः ] इति माता तं प्रत्यभाषत, अब्रवीत्तेन नामास्य घटोत्कच इति स्मह ॥'[3] अर्थात् उत्कचः केशरहितः घटः शिरो यस्य सः घटोत्कचः ॥

तरुणेति । तरुणरविकरप्रकीर्णकेशः=तरुणस्य अप्रौढस्य बालस्येति यावत् । रवेः सूर्यस्य कराः किरणा इव प्रकीर्णाः असंयतप्रसारिताः केशाः यस्य सः । भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः=भ्रुकुट्याः च पुटः भङ्गी तेन उज्ज्वले दीप्ते पिङ्गले कपिले आयते दीर्घे च अक्षिणी यस्य सः । सकण्ठसूत्रः=कण्ठ-

( सब चले जाते हैं )

स्थापना ।

( इसके बाद तीन पुत्र एवं पत्नी से परिवृत वृद्ध ब्राह्मण प्रवेश करता है । साथ ही पीछे से घटोत्कच भी आ जाता है । )

वृद्ध ( ब्राह्मण )—ओह ! यह कौन है ?

तरुण सूर्य को किरणों की भाँति बिखरे बालों वाला, भ्रुकुटि की भंगी से दीप्त व पीले रंग की आँखों वाला, कण्ठसूत्र से युक्त, विद्युत् युक्त मेघ के

१. ब्राह्मणः—इति वा पाठः । २. अरुण० इति वा पाठः ।

३. द्र० महाभारत : आदि पर्व १५५.३८ ।

भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः ।
सतडिदिव घन· सकण्ठसूत्रो
युगनिधने प्रतिमाकृतिर्हरस्य ॥ ४ ॥
प्रथम.—भोस्तात ! को नु खल्वेषः ।
ग्रहयुगलनिभाक्ष पीनविस्तीर्णवक्षा

---

सूत्रेण कण्ठधार्येण स्वर्णाभरणविशेषेण सहित । सतडिदिव घनः=विद्युत्सहितो मेघ इव स्थित. । श्यामत्वात् मेघसाम्यम् । कण्ठसूत्रस्य हिरण्मयत्वात् तडित्-साम्यम् । युगनिधने=युगसहारे, प्रवृत्तस्येति शेषः । हरस्य=विश्वसहरणशील-स्य रुद्रस्य, प्रतिमाकृतिः=प्रतिमाकृतिस्वरूप भीषणत्वात् । एपः=सन्निकृष्टः पुरुष, को नु खलु ? उपमालङ्कार । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षण तु='अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ ४ ॥

[ ब्राह्मण के द्वारा राक्षस के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत है– ]

अन्वय—तरुण-रवि-कर-प्रकीर्ण-केश', भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्ष, सकण्ठसूत्र', सतडित्, इव, घन युगनिधने, हरस्य, प्रतिमाकृतिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—तरुण =अप्रौढ़, रवि· कर इव=सूर्य की किरणो की भाँति, प्रकीर्णः केश.=बिखरे हुए बालो वाला, भ्रुकुटिपुटोज्ज्वलपिङ्गलायताक्षः= भ्रुकुटि की भङ्गी से उज्ज्वल और कपिल वर्ण के दीर्घ नेत्रो वाले, सकण्ठसूत्रः= कण्ठसूत्र से युक्त, सतडित् इव घन·=विद्युत् युक्त मेघ के समान स्थित, युग-निधने=युग के सहार मे प्रवृत्त, हरस्य=भगवान् शङ्कर के, प्रतिमाकृति=प्रति कृति रूप मे ( यह पुरुष कौन है ) ? ॥ ४ ॥

भीत. तत्सुतोऽपि आत्मप्रतिक्रिया विज्ञापयति ग्रहेत्यादिना । ग्रहयुगल-निभाक्ष=ग्रहयुगलनिभे औज्ज्वल्याद् युगलयोः सूर्यचन्द्रयो[1] तुल्ये नयने यस्य स ।

---

समान स्थित, युग के संहार मे प्रवृत्त भगवान् शङ्कर की प्रतिकृति रूप ( यह पुरुष कौन है ? ) ॥ ४ ॥

प्रथम ( पुत्र )—हे तात । वस्तुत· यह है कौन ? ,

(सूर्य एव चन्द्र रूप) ग्रह-युगल के समान आँखो वाले, स्थूल एवं विशाल

---

१. द्र० 'नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ' अभिषेकनाटके ६ ३० ।

कनककपिलकेशः[1] पीतकौशेयवासाः।
तिमिरनिवहवर्णः पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रो
नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ॥ ५ ॥

द्वितीय —क एष भो !

पीनविस्तीर्णवक्षाः—पीनं पीवरं विस्तीर्णं च वक्ष उरः यस्य सः। कनककपिलकेशः—स्वर्णपिङ्गलकेश, स्वर्णम् इव कपिलाः पिङ्गलाः केशाः कुन्तलाः यस्य सः। पीतकौशेयवासाः—पीतं हरिद्रावर्णं कौशेयवासः क्षौमवस्त्रं यस्य सः, धृतपीतवस्त्र इत्यर्थः। तिमिरनिवहवर्णः—तम पुञ्जश्यामः। पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः[2]—पाण्डरे शुक्ले उद्वृत्ते उत्क्षिप्ते दंष्ट्रे राजदन्तपार्श्वस्थौ दन्तौ यस्य सः। सन्निहितविशेषणद्वयघटामुपमामाह—लीयमानेन्दुलेखः—लीयमाना संश्लिष्यन्ती इन्दुलेखा चन्द्रलेखा यस्मिन् सः। तादृशो नव —नूतनः, श्याम इति यावत्। जलगर्भ इव—जलयुक्तमेघ इव स्थितः। 'तडित्पतिः पयोगर्भो नदनुर्मुदिरोऽम्बुमृद्'—इति वैजयन्ती। एष 'को नु खलु' इति ब्राह्मणपुत्रस्यापि जिज्ञासा। उपमालंकार। मालिनीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ५ ॥

[ राक्षस के स्वरूप को पिता से सुनकर पुत्र भी अपनी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त करता है— ]

अन्वय—ग्रहयुगलनिभाक्षः, पीनविस्तीर्णवक्षाः, कनककपिलकेशः, पीतकौशेय-वासाः, तिमिर-निवह-वर्णः, पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रः, लीयमान-इन्दु-लेखः, नवजलगर्भः, इव, [ भाति ] ॥ ५ ॥

पदार्थ—ग्रह-युगल-निभाक्ष =(सूर्य और चन्द्र रूप) ग्रह-युगल के समान

वक्षस्थल वाले, स्वर्ण के समान पीले केशों वाले, पीत एवं रेशमी वस्त्र पहने हुए अन्धकार के समान वर्ण वाले ( उस राक्षस ) के अत्यन्त धवल और बाहर निकले हुए दांत—चन्द्रकला जिसमें अन्तर्भूत हो रही हो, ऐसे नवीन मेघों के समान ( प्रतीत हो रहे ) हैं ॥ ५ ॥

द्वितीय ( पुत्र )—ओ ! यह कौन है ?

---

१. कमलकपिशकेश इति वा पाठः। अत्र कपिशशब्द कृष्णपीतवाची।

२. द्र० 'उद्वृत्तदंष्ट्रः' अभिषेकनाटके १—१३। 'उद्वृत्त स्यात् त्रिपूत्क्षिप्ते' इति मेदिनी।

कलभदशनदंष्ट्रो लाङ्गलाकारनास
　　करिवरकरबाहुर्नीलजीमूतवर्ण　　।
हुतहुतवहदीप्तो यः स्थितो भाति भीम-
　　स्त्रिपुरपुरनिहन्तु शङ्करस्येव रोष ॥ ६ ॥

आँखो वाला, पीन-विस्तीर्ण-वक्षा =स्थूल एव विशाल वक्षस्थल वाला, कनक-कपिल-केश =स्वर्ण के समान पीले केशो वाला, पीत-कौशेय-वासा =पीला एव रेशमी वस्त्र पहने हुए, तिमिर-निवह-वर्ण =अन्धकार के समान वर्ण वाले (उस राक्षस के), पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्र =अत्यन्त धवल और बाहर निकले हुए दाँत, लीयमान-इन्दु-लेख =चन्द्रकला जिसमे निमज्जित हो रही हो ऐसे, नव =नवीन, जलगर्भ इव [ भाति ]=मेघसमूह के समान (प्रतीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥

कलभेति । कलभदशनदंष्ट्र –कलभदशनौ करिशावकस्य दन्ताविव दंष्ट्रे यस्य स । लाङ्गलाकारनास –वक्राग्रत्वात् लाङ्गलाकारा इव हलसमानाकारा नासिका यस्य स. । करिवरकरबाहु:–करिवरकर इव गजश्रेष्ठशुण्डेव बाहुर्यस्य स । नीलजीमूतवर्ण –नीलस्य जीमूतस्य मेघस्येव वर्णो यस्य स । 'घनजीमूत-मुदिरजलमुग्धूमयोनय' इत्यमर । एष क इति द्वितीय पुत्रस्य जिज्ञासा । हुतहुतवहदीप्त –हुतो दत्ताज्याद्याहुति अर्थात् सविशेषण प्रदीप्त इत्यर्थ, एव-भूतो हुतवह हुत देवान् प्रति वहतीति हुतवह =अग्निरिव दीप्त प्रज्वलित । अतएव भीम =भयकर । स्थित.=गमननिवृत्त । य पुरो दृश्यमान, त्रिपुरपुरनिहन्तु –त्रिपुरासुरनगरध्वंसिन (इद विशेषण रोषतीव्रत्वसूचकम्), शङ्करस्य –हरस्य, रोष इव=कोप इव, भाति=शोभते । उपमालकार । मालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

अन्वय--कलभ-दशन-दंष्ट्र, लाङ्गल-आकार-नास, करि-वर-कर-

हाथी के बच्चे के दाँतों के समान दाँतो वाला, हल के आकार के सदृश नाक वाला, मत्त हाथी के सूंड के समान भुजाओ वाला, नीले मेघ के समान वर्ण वाला, यज्ञाग्नि के समान प्रज्वलित सा जो [ राक्षस ]--त्रिपुर नामक दैत्य के शरीर का हनन करने वाले भगवान् शकर के भयकर क्रोध के समान उपस्थित सा प्रतीत हो रहा है [ यह कौन है ? ] ॥ ६ ॥

तृतीय.—भोस्तात ! को नु खल्वयमस्मान् पीडयति ।
वज्रपातोऽचलेन्द्राणां श्येनः सर्वपतत्त्रिणाम् ।
मृगेन्द्रो मृगसङ्घानां मृत्युः पुरुषविग्रहः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणी—अय्य ! को एसो अम्हाणं सन्दावेइ ।
( आर्य ! क एषोऽस्मान् सन्तापयति )

---

बाहु नील–जीमूत–वर्णं, हुत–हुतवह–दीप्त, य, त्रिपुरपुरनिहन्तु शङ्करस्य, भीम, रोष, इव, स्थित, भाति ॥ ६ ॥

पदार्थ—वलभ–दशन–दंष्ट्र =हाथी के बच्चे के दाँतो के समान दाँतो वाला, लाङ्गल–आकार–नास =हल के आकार के सदृश नाक वाला, करि–वर–कर–बाहु =मत्त गज के सूंड के समान [ लम्बी ] भुजाओं वाला, नील–जीमूत–वर्ण =नीले मेघ के समान वर्ण वाला, हुत–हुतवह दीप्त =यज्ञ की अग्नि के समान प्रज्वलित, य =जो [ राक्षस ], त्रिपुर–पुर–निहन्तु =त्रिपुर नामक राक्षस के शरीर का हनन करने वाले, शङ्करस्य=भगवान् शङ्कर के, भीम =भयकर, रोष इव=क्रोध के समान, स्थित=उपस्थित सा, भाति=प्रतीत हो रहा है ॥६॥

सन्त्रस्त तृतीय पुत्रोऽपि आत्मप्रतिक्रिया प्रदर्शयति—वज्रेत्यादिना । अचलेन्द्राणा=गिरिवराणाम् । वज्रपात =कुलिशपात, कुलिशो यथा पर्वत-भेदनघातस्तथायमप्रीत्यर्थ । सर्वपतत्त्रिणा=सर्वपक्षिणाम् । श्येन=पक्षिविशेष, य महतोऽपि पक्षिणो विनाशयति, घातकत्वात् तत्तुल्य । मृगसघानाम्= पशुसमूहाना कृते, मृगेन्द्र =सिंह । अतएव, पुरुषविग्रह =धृतपुरुषशरीर, मृत्यु =यमराज एव, अयम्–एष पुर स्थित 'को नु अस्मान् पीडयति' इति । रूपकालङ्कार । अनुष्टुप् छन्द ॥ ७ ॥

[ तृतीय पुत्र अपनी समावना इस प्रकार प्रकट कर रहा है— ]

अन्वय—[ अयम् ] अचलेन्द्राणा, [कृते], वज्रपात, सर्वपतत्त्रिणा[कृते] श्येन, मृगसङ्घाना [कृते] मृगेन्द्र, [एव] पुरुषविग्रह, मृत्यु, इव दृश्यते ॥७॥

---

तृतीय (पुत्र)—हे तात ! यह कौन है, जो हम लोगो को कष्ट दे रहा है। यह गिरिराजो के लिए वज्रपात सा, सभी पक्षियों के लिए बाज सा और मृगसमूह के लिए सिंह-सा मानव शरीर धारण कर [ साक्षात् ] यमराज के समान [ दिखाई पड रहा ] है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणी—आर्य ! यह कौन है जो हम लोगो को सन्तप्त कर रहा है ?

घटोत्कचः—भो ब्राह्मण ! तिष्ठ तिष्ठ ।
किं यासि मद्भयविनाशितधैर्यसारो
वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! ।
तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नि-
तीव्रः कलत्रसहितो भुजगो यथार्तः ॥ ८ ॥

पदार्थ—[ अयम्=यह राक्षस ], अचलेन्द्राणां [ कृते ]=गिरिराजों के लिए, वज्रपातः=वज्राघात, सर्वपतत्रिणां [ कृते ]=सभी पक्षियों के लिए, श्येन=बाज, मृगसङ्घानां [ कृते ]=मृगसमूह [ अर्थात् पशुमात्र ] के लिए, मृगेन्द्र [ एव ]=सिंह ही, [ एवं ] पुरुषविग्रह=इस प्रकार मानवशरीर धारण करके [ साक्षात् ], मृत्यु [ एव ]=यमराज ही के समान [ दृश्यते= दिखाई पड़ रहा है ] ॥ ७ ॥

घटोत्कच उद्धतवदाह—किं यासीत्यादिना । वित्रस्तदारसुतरक्षणहीनशक्ते ! =वित्रस्तानां विशेषेण भीतानां दारसुतानां कलत्रपुत्राणां, रक्षणे हीना क्षीणा शक्तिः सामर्थ्यं यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ । मद्भयविनाशितधैर्यसारः= मत्सकाशाद् भयं मद्भयं, तेन विनाशितः, धैर्यस्य सारः बलं यस्य सः । आर्तः= पीडितः । तार्क्ष्याग्रपक्षपवनोद्धतरोषवह्नितीव्रः=तार्क्ष्यस्य गरुडस्य, तृक्षस्य नाम कश्यपस्य मुनेः अपत्यं पुमान् तार्क्ष्यः, तस्य अग्रपक्षपवनेन पक्षाग्रजनितेन वातेन, उद्धतः सवधितः यो रोषवह्निः कोपाग्निः, तेन तीव्रः, तीक्ष्णः । कलत्र-सहितः भुजगो यथा=सर्प इव । किं यासि=कथम् अपसर्पसि, मा यासी-रित्यर्थः । अत्र गरुडागमनत्रस्तभुजगोपमया ब्राह्मणपरिवारस्यापि विनाशस्यावश्यं-भावित्वं सूच्यते । उपमालंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वय—तार्क्ष्याग्रपक्ष-पवनोद्धत-रोष-वह्नि तीव्रः कलत्रसहितः आर्तः

[ क्रोधाभिभूत घटोत्कच उन्हें रोकता हुआ कहता है— ]

घटोत्कच—हे ब्राह्मण ! ठहरो, ठहरो ।

गरुड के पक्ष के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला एवं उत्तेजित व सपत्नीक एवं दीन सर्प जिस प्रकार जाता है उसी प्रकार विशेष रूप से भयभीत स्त्री एवं पुत्रों की रक्षा में असमर्थ ( हे ब्राह्मण ) मेरे भय से विशेष रूप से नष्ट हुए धैर्य एवं बल वाले [ तुम ] क्यों जा रहे हो ? ॥ ८ ॥

भो ब्राह्मण ! न गन्तव्यं न गन्तव्यम् ।

वृद्ध—ब्राह्मणि ! न भेतव्यं, पुत्रका. ! न भेतव्यम् । सविमर्शा ह्यस्य वाणी ।

घटोत्कच.—भो ! कष्टम् । [ स्वगतम् ]

जानामि सर्वत्र सदा च नाम

द्विजोत्तमा पूज्यतमा. पृथिव्याम् ।

---

भुजग यथा [ अपयाति तथा ] वित्रस्तदार-सुत-रक्षण-हीन-शक्ते, मद्-भय-विनाशित-धैर्य-सार [ त्व ] कि यासि ॥ ८ ॥

पदार्थ—तार्क्ष्याग्र-पक्ष-पवनोद्धत-रोष-वह्नि-तीव्र = गरुड के पख के अग्रभाग से उठी हुई वायु से प्रचण्ड क्रोधाग्नि वाला एव उत्तेजित, कलत्र-सहित = सपत्नीक, आर्त = दीन, भुजग यथा = सर्प जिस प्रकार, [ अपसर्प = जाता है, तथा = उसी प्रकार ] वित्रस्त-दार-सुत-रक्षण-हीन-शक्ते = विशेष रूप से भयभीत, स्त्री एव पुत्रो की रक्षा म क्षीण सामर्थ्य वाले [ हे ब्राह्मण ? ], मत-भय-विनाशित-धैर्य-सार = मेरे भय से विशेष रूप से नष्ट हुए धैर्य एव बल वाले [ त्वम्-तुम ], यासि-क्या जा रहे हो ? ॥८॥

विमर्श—तृक्ष अर्थात् कश्यप मुनि की सन्तान होने से गरुड तार्क्ष्य कहलाए । 'भीत्रार्थाना भयहेतु' इस सूत्र से भय के हेतु 'मत्' मे पञ्चमी हुई है।

निवारितमपि गमनाद् अनिवर्तमान ब्राह्मण सोपलम्भमाह—भो ब्राह्मणेत्यादिना । न गन्तव्यम् = नापगन्तव्यम् । न भेतव्यम् = अयमुत्कटमनर्थमुत्पादयिष्यति इति भय ते मा भूत्-इत्यर्थ । हि-यस्मात् कारणात् । अस्य-उद्धतस्यापि राक्षसस्य, वाणी = वचनम्, सविमर्शा-विमर्श साध्वसाधुविचार, तद्युक्ता ॥

जानामीति । पृथिव्याम् = भूमण्डले, द्विजोत्तमा = ब्राह्मणश्रेष्ठा, सर्वत्र सदा च = सर्वस्मिन् देशे, सर्वस्मिन् काल च, पूज्यतमा-अतिशयेन पूजनीया एव, जानामि नाम = निश्चयेन उत्तमयमह सम्यग् वेद्मीत्यर्थ । अद्य =

---

हे ब्राह्मण । मत जाओ, मत जाओ ।

वृद्ध—हे ब्राह्मणी हमें डरना नही चाहिए, मत डरो मेरे पुत्रो, क्योकि इसकी वाणी विमर्श युक्त मालूम पडती है।

घटोत्कच—ओह ! बडा कष्ट है ।

यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथ्वी पर सर्वदा और सभी स्थान पर अत्यन्त पूज-

अकार्यमेतच्च मयाद्य कार्यं
मातुर्नियोगादपनीतशङ्कम्[1] ॥ ९ ॥

वृद्ध.—ब्राह्मणि ! किं न स्मरसि तत्रभवता जलविलन्नेन

---

इदानीम्, मया=घटोत्कचेन, एतत् अकार्यम्=इदं गर्हितं कर्म, अर्थात् वक्ष्यमाण-वृद्धब्राह्मणकुटुम्बेष्वन्यतमस्य मातुराहारार्थं नयनम्, मातु.=मज्जनन्याः; नियोगात्=निदेशात्, अपनीतशङ्कम्=नि शङ्कं यथा भवति तथा, कार्यं च=कर्तव्यं च, चशब्दस्तुल्यकालयोगे । इत्थं द्विजोत्तममाहात्म्यज्ञानसमकालमेव द्विजोत्तम-निधनानुकूलं मया चेष्टितव्यम् इत्यहो वैकल्यम्—इति भाव. । उपजातिः । सा चेयमुपजातिरिन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रा समिश्रता । तल्लक्षणञ्च—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग" । 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' । 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥ ९ ॥

[ प्रस्तुत श्लोक मे ब्राह्मणवध से सम्भावित शोक और घटोत्कच की मातृभक्ति दिखाई गई है— ]

अन्वय—[ यद्यपि ] द्विजोत्तमा., पृथिव्या, सदा, च, पूज्यतमाः [ भवन्ति इति अहं ] जानामि, नाम, [ तथापि ] मातु. नियोगात् अपनीत-शङ्कम्, अद्य, मया, एतत् अकार्यम् [ अपि ] कार्यम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—[ यद्यपि ] द्विजोत्तमा =यद्यपि श्रेष्ठ ब्राह्मण, पृथिव्याम्= पृथ्वी पर, सदा सर्वत्र च=सर्वदा और सभी स्थान पर, पूज्यतमा =अत्यन्त पूजनीय [ भवन्ति–इति अहं=होते हैं—यह मैं ] जानामि नाम=निश्चित रूप से जानता हूँ, [ तथापि=फिर भी ], मातु =माता के, नियोगात्= आदेश से, अपनीतशङ्कम्=शङ्का को छोडकर अर्थात् निःशंक होकर । अद्य=आज, मया=मुझको, एतत् अकार्यम् [ अपि ]=इस अकरणीय कार्य को [ भी ], कार्यम्=करना है ॥ ९ ॥

ब्राह्मणीति । जलविलन्नेन=तन्नाम्ना मुनिना । अनपेतराक्षसम्=अन-

---

नीय [होते] हैं—[यह मैं] निश्चित रूप से जानता हूँ । [ तथापि ] माता के आदेश से नि.शंक होकर आज इस अकरणीय कार्य को [भी] करना है ॥ ९ ॥

वृद्ध—हे ब्राह्मणी ! क्या तुम्हे याद नही है कि पूजनीय जलविलन्न मुनि ने कहा था कि—'यह वन [ सर्वथा ] राक्षसो से विहीन नहीं है । अतः बडी

---

१. 'अपनीय शङ्कम्' इति वा पाठ ।

मुनिनोक्तम्—अनपेतराक्षसमिदं वनमप्रमादेन गन्तव्यमिति ।
तदेवोत्पन्नं भयम् ।

ब्राह्मणी—किं दाणि अय्यो मज्झत्थवण्णो विअ दिस्सदि।
( किमिदानीमार्यो मध्यस्थवर्ण इव दृश्यते ) ।

वृद्धः—किं करिष्यामि मन्दभाग्यः ।

ब्राह्मणी—णं विक्कोसामो । ( ननु विक्रोशाम. ) ।

प्रथमः—भवति ! कस्य वयं विक्रोशामः ।

इदं हि शून्यं तिमिरोत्करप्रभै-
नंगप्रकारैरवरुद्धदिक्पथम् ।
खगैर्मृगैश्चापि समाकुलान्तरं

---

पैशा. अहीनाः राक्षसा. यस्मात् तत् राक्षसयुत वनम् । अप्रमादेन=अवधानेन गन्तव्यम् । तदेव भयम्=जलशिलमयवनतर्कित राक्षसभयमेव, उत्पन्नम्= उपस्थितम् । [1]मध्यस्थवर्ण इव=उदासीन इव दृश्यते भवान्, गणपतिशास्त्रि-महोदयेनाय शब्द द्विधा व्याख्यात (क) मध्यस्थ त्रिषु वर्गेषु मध्यगतो वर्ण, अर्थात् क्षत्रिय', स इव धीरव्यवहारिरस्त्रात । (ख) अथवा मध्यस्थस्य उदासीनस्येव वर्णश्छाया यस्य स । उपस्थितविपत्प्रतीकारयत्नाकरणात् ॥

इद हीति । तिमिरोत्करप्रभैः=तिमिरस्य उत्करा: स्तोमा राशय तेषां प्रभा इव प्रभा येषाम्, तमस्तोमश्यामैरित्यर्थ. । नगप्रकारैः=विविधै. वृक्षै. विभिन्नप्रकारैः पर्वतैर्वा । अवरुद्धदिक्पथम्=उपरुद्धदिङ्मार्गम्, वृक्षसकुलत्वात् अस्मिन् वने दिङ्मार्गो न दृश्यते; आवृत पन्था यस्मिन् तत् वनमित्यर्थः । खगै.—

---

सावधानी से जाना चाहिए ।' [ जो कहा था ] वही भय सामने उपस्थित हो गया है ।

ब्राह्मणी—किंकर्तव्यविमूढ से आप इस समय क्यों दिखाई दे रहे हैं ?

वृद्ध—मैं भाग्यहीन क्या कर सकता हूँ ?

ब्राह्मणी—हम लोग [ सहायता के लिए ] क्यो न ? चिल्लाएँ ।

प्रथम ( पुत्र )—माँ हम किसे बुलावें ?

क्योंकि, यह वन अत्यन्त सूना है, बडे-बडे वृक्षो [अथवा पर्वतो की शृङ्खला] के कारण पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से [ यहाँ ] दिशाओ के रास्ते रोक

---

१. तु० 'तथापि वयमत्र मध्यस्था' शाकु० ५.११ ।

वन निवासाभिमतं मनस्विनाम् ॥ १० ॥

वृद्धः—ब्राह्मणि ! न भेतव्य, न भेतव्यम् । मनस्विजननिवास-

---

पक्षिभि, मृगैः=पशुभिश्च समाकुलान्तरम्=सम्यक् रूपेण आकुल परिपूर्णम् अन्तरम् अन्तरालम् यस्य व्याप्तावकाशमित्यर्थः । तादृश, इद हि=पुरो दृश्यमान वनम्=अरण्यम् शून्यम्=निर्जनम्, मनस्विनाम्=प्रशस्तमनस्काना मुनीनामिति यावत्, तपोबलादियोगात् मनस प्राशस्त्यम् । निवासाभिमतम्=निवासाय अभिमतम् इष्टम् । अत अस्मद् विक्रोशध्वनि तु अरण्यरोदनमेव स्यात् । काव्य-लिङ्गालकार । वशस्थवृत्तम् । तल्लक्षण तु—'जतौ तु वशस्थमुदीरितं जरौ' ॥ १० ॥

[ प्रस्तुत श्लोक मे प्रथम पुत्र के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि यहाँ चिल्लाना बेकार है क्योकि— ]

अन्वय—हि इद, वन, शून्यम् । तिमिरोत्कर-प्रभैः, नगप्रकारैः, अवरुद्ध-दिक्पथम्, अपि, च, खगैः, मृगैः समाकुलान्तरम्, वन मनस्विनाम्, निवासा-भिमतम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हि इद=क्योकि यह, वनम्=जङ्गल, शून्यम्=अत्यन्त सूना है । तिमिर-उत्कर-प्रभैः=पुञ्जीभूत अन्धकार की प्रभा से, नगप्रकारैः=एव बडे वृक्षो [ अथवा पर्वतो की शृङ्खला ] से, अवरुद्धदिक्पथम्=दिशाओ के पथ रोक दिए गए है । अपि च=और खगैः मृगैः च=पशु और पक्षियो से, समाकुल अन्तरम्=[ इस जङ्गल का ] अन्तराल सम्यक् रूप से घिरा हुआ है [ अत हम लोगो की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ? अर्थात् यहाँ चिल्लाना अरण्यरोदन ही होगा ] [ इस प्रकार का यह वन तो ] मनस्विनाम्=तपस्वियो के ही निवासाभिमतम्=निवासयोग्य है ॥ १० ॥

विमर्श—'समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्ग समर्थनम्' इस लक्षण से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ १० ॥

---

दिए गए है, और पशु एव पक्षियो से [ इस जङ्गल का ] अन्तराल सम्यक् रूप से घिरा हुआ है, यह तो तपस्वियो के ही निवास के योग्य है । [ अत हम लोगो की आवाज यहाँ कौन सुनेगा ? ] ॥ १० ॥

वृद्ध—हे ब्राह्मणी ! मत डरो, मत डरो । यह वन मनस्वियो के निवास योग्य है—ऐसा सुनकर मेरा भय चला सा गया है । मैं सोचता हूँ कि पाण्डवो

योग्यमिति श्रुत्वा विगत इव मे सन्त्रासः। शङ्के नातिदूरेण[1] पाण्डवाश्रमेण भवितव्यम्। पाण्डवास्तु,

युद्धप्रियाश्च शरणागतवत्सलाश्च
दीनेषु पक्षपतिता कृतसाहसाश्च।
एव विधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां
दण्डं यथार्हमिह धारयितुं समर्थाः॥ ११॥

---

एतादृशो निग्रहे सक्षमा पाण्डवा अस्मान् रक्षितुं समर्था इत्यभिप्रायेणाह–पाण्डवास्तु, युद्धेति। पाण्डवा–भीमसेनप्रमुखा पञ्चपाण्डवा, प्रकृत्या युद्धप्रिया = रणरसिका, शरणागतवत्सलाः = शरणागतेषु जनेषु वत्सला स्निग्धा, दीनेषु–आर्तजनेषु पक्षपतिता–पक्षपाति कृतसाहसाश्च–कृतम् साहस् प्रदर्शित साहसं यैस्ते, एवंविधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानाम्–एतद्राक्षससदृशानां प्रतिभयाकृतिचेष्टितानां भयकराकारपरिताना दुर्वृत्तजनानामित्यर्थः। 'दारुण भीषण भीष्म घोर भीम भयानकम्। भयङ्कर प्रतिभयम्' इत्यमरः। तेषां यथार्हं–यथोचितम्, दण्ड धारयितुम्–नियमन कर्तुम् समर्था –शक्ता सन्तीति शेषः। एतादृशभयंकराकृतीनां निग्रहे पाण्डवा समर्था। परिकरालंकार। वसन्ततिलकावृत्तम्॥ ११॥

[ प्रस्तुत श्लोक मे वृद्ध के द्वारा पाण्डवो की शरणागतवत्सलता का प्रतिपादन हो रहा है—]

---

अन्वय—[पाण्डवा तु] युद्धप्रिया, च, शरणागतवत्सला दीनेषु, पक्षपतिता, कृतसाहसाश्च। इह, एवंविध–प्रतिभय–आकृति–चेष्टितानां, यथार्हम्, दण्ड धारयितु समर्था [ सन्ति ]॥ ११॥

का आश्रम यहाँ से बहुत दूर नही होना चाहिए, और पाण्डव तो–'बडे ही युद्धप्रिय हैं और शरण मे आए हुए मनुष्यो पर दया करने वाले हैं। पक्षहार्यों की सहायता करने वाले हैं और साहस कर्मा [ भी ] हैं। [ अत ] यहाँ पर इस प्रकार के भयङ्कर आकृति वाले एवं क्रूर कार्य करने वालो को यथोचित दण्ड देने मे [ वे ] समर्थ [ हैं ]॥ ११॥

---

१ 'न चातिदूरेण' इति वा पाठः।
२ द्र० 'प्रतिभयमभ्युदितास्यरण्यवासम्' स्वप्न० ६ १।
२ म० व्या०

प्रथम —भोस्तात ! न तत्र पाण्डवा इति मन्ये ।

वृद्ध —पुत्र ! कथं त्वं जानीषे ।

प्रथमः—श्रुतं मया तस्मादाश्रमादागतेन केनचिद् ब्राह्मणेन कथितं—शतकुम्भं नाम यज्ञमनुभवितुं महर्षेर्धौम्यस्याश्रमं गता इति ।

वृद्धः—हन्त, हता स्म ।

प्रथम —तात ! न तु सर्व एव । आश्रमपरिपालनार्थमिह स्थापित. किल मध्यम ।

वृद्ध —यद्येवं, सन्निहिता सर्वे पाण्डवा॰ ।

---

पदार्थ—[ पाण्डवा , तु = पाण्डव तो ] युद्धप्रिया = बड़े ही युद्धप्रिय हैं, च = और, शरणागतवत्सला = शरण मे आए हुए जन पर दया करने वाले हैं। दीनेषु = असहायो का, पक्षपतिना = पक्षपात करने वाले हैं, कृतसाहसाश्च = और साहसी कर्मो को करने वाले हैं, इह = यहाँ पर, एवंविधम् = इस प्रकार के, प्रतिमय-आकृति-चेष्टितानाम् = मयङ्कर स्वरूप और [ क्रूर ] कर्म करने वालो को, यथार्हम् = यथोचित, दण्ड धारयितुम् = दण्ड देने में, [ ते ] समर्था [ सन्ति ] = [ वे ] समर्थ हैं ॥ ११ ॥

विमर्श—साभिप्राय विशेषण होने से यहाँ परिकराऽलङ्कार है ।

शतकुम्भ नाम यज्ञम् = श्रौतादियागेषु नास्य नाम पठ्यते । हन्तेति विषादे । हता =आत्मरक्षा प्रति भग्नाशा इत्यर्थ. । इह = आश्रमे । मध्यमः =

---

प्रथम ( पुत्र )—हे तात ! मेरा अनुमव है कि पाण्डव आश्रम में नहीं हैं।

वृद्ध—तुम कैसे यह जानते हो ?

प्रथम ( पुत्र )—वहाँ से आते हुए किसी ब्राह्मण से हमने सुना है कि—वे शतकुम्भ नामक यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए महर्षि धौम्य के आश्रम पर गए हैं।

वृद्ध—ओह ! हम लोग मारे गए ।

प्रथम ( पुत्र )—हे तात ! वे सब [ वहाँ ] तो नही गए है । [ जैसा कि हमने सुना है ] आश्रम के परिपालनार्थ मध्यम पाण्डव [ भीम ] नियुक्त किये गए हैं।

वृद्ध—यदि ऐसा है [ तो ] सभी पाण्डव उपस्थित ही हैं ।

प्रथमः—स चाप्यस्यां वेलायां व्यायामपरिचयार्थं विप्रकृष्ट-देशस्थ इति श्रूयते।

वृद्धः—हन्त, निराशाः स्म। भवतु, पुत्र! व्यपश्रयिष्ये[1] तावदेनम्।

प्रथमः—अलमलं परिश्रमेण।

वृद्धः—पुत्र! निर्वेदप्रत्यर्थिनी खलु प्रार्थना। भवतु, पश्याम-स्तावत्। भो पुरुष! अस्त्यस्माकं मोक्षः?

घटोत्कचः—मोक्षोऽस्ति समयतः।

वृद्धः—कः समयः?

घटोत्कचः—अस्ति मे तत्रभवती जननी। तयाऽहमाज्ञप्तः—पुत्र! ममोपवासनिसर्गार्थमस्मिन् वनप्रदेशे कश्चिन्मानुषः [2]परि-मृग्यानेतव्य इति। ततो मयाऽऽसादितो भवान्।

मध्यमपाण्डवो भीमसेनः। अस्यां वेलायाम्=एतस्मिन् समये, व्यायामपरिच-यार्थम्=व्यायामो मल्लव्यापारः, तस्य परिचयोऽभ्यासो दैनन्दिनमनुष्ठानं, तदर्थम्। विप्रकृष्टदेशस्थ=स्वाश्रमविदूरप्रदेशगतः, "स्याद् दूरं विप्रकृष्टम्" इत्यमरः। व्यपश्रयिष्ये=प्रार्थयिष्ये, वि+अप+आ+श्रि+लृट्, निर्वेद-प्रत्यर्थिनी=विरागो निर्बलत्वं वा, तस्य प्रत्यर्थिनी विरोधिनी खलु प्रार्थना। उपवासनिसर्गार्थम्=उपवासस्य निसर्गं उत्सर्गं, तदर्थम्, उपवासाङ्गभूत-

प्रथम (पुत्र)—[किन्तु हमने] यह भी सुना है कि—इस समय वे भी व्यायाम करने के लिए कहीं दूर चले गए हैं।

वृद्ध—ओह! हम लोगों को अब कोई आशा नहीं है। ठीक है, बेटा, तब हम इन्हीं से अनुनय विनय करें।

प्रथम (पुत्र)—नहीं, परिश्रम करना व्यर्थ है।

वृद्ध—हे पुत्र! प्रार्थना शान्ति की अभिलाषा से होगी। अच्छा, तो देखा जाय। हे पुरुष! हम लोगों के छुटकारे का क्या कोई उपाय भी है?

घटोत्कच—हाँ! एक शर्त पर छुटकारा हो सकता है।

वृद्ध—क्या शर्त है?

घटोत्कच—मेरी पूजनीया माता हैं। उन्होंने यह आदेश दिया है कि—

१ '०पाश्रयिष्ये' इति वा पाठः। २ 'प्रतिगृह्या०' इति वा पाठः।

पत्न्या चारित्रशालिन्या द्विपुत्रो मोक्षमिच्छसि ।
बलाबलं परिज्ञाय पुत्रमेकं विसर्जय ॥ १२ ॥

वृद्ध —हं भो राक्षसापसद ! किमहमब्राह्मण ?

---

पारणार्थमित्यर्थ. । समयः=शपथ, 'समय शपथाचार कालसिद्धान्तसंविद' इत्यमर' ।

शपथस्य प्रकार प्रदर्शयति–पत्न्येत्यादिना । त्व यदि, चारित्रशालिन्या=पतिव्रतया धर्मपत्न्या सह, द्विपुत्रः=पुत्रद्वयविशिष्टः, मोक्षम्=मद्धस्ताद् मोचनम्, इच्छसि=अभिलषसि । तर्हि त्रिषु अन्यतमम् एक पुत्रम् बलाबलम्=बलाबले, 'विप्रतिषिद्ध चानधिकरणवाचि' ( पा० सू० २४।१४ ) इति विकल्पाद् द्वन्द्वैकवद्भाव । तेषा प्रियत्वम्, रक्षणीयत्वम् अरक्षणीयत्व वा, परिज्ञाय=पर्यालोच्य, विसर्जय=परित्यज, मह्यम् अर्पय इत्यर्थ । एव 'पुत्रमेकमुत्सृजन्त द्विपुत्र पत्न्या सह त्वा मोचयिष्ये इति समय । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥१२॥

अन्वय—[ हे वृद्ध ! ] चारित्रशालिन्या, पत्न्या [ सह ], द्विपुत्र [ यदि मत्त ], मोक्षम्, इच्छसि, [तर्हि] बलाबल, परिज्ञाय, एक, पुत्र, विसर्जय ॥१२॥

पदार्थ—[ हे वृद्ध ! ], चारित्रशालिन्या पत्न्या=सदाचारी और शीलवती पत्नी [ और ] द्विपुत्र =दो पुत्रो के सहित [यदि मत्त =यदि मुझसे] मोक्षम् इच्छसि=मुक्ति की इच्छा रखते हो, [ तर्हि=तो ], बलाबलम्=योग्य और अयोग्य का, परिज्ञाय=विचार करके एक पुत्रम्=एक पुत्र को, विसर्जय=छोड दो ॥ १२ ॥

राक्षसापसद=राक्षसेषु मध्ये हीन !, हे नीचराक्षस ! वृद्धोऽहं श्रुत-

---

'हे पुत्र ! इस वनप्रदेश से मेरे उपवास की पारणा के लिए किसी मनुष्य को खोजकर लाओ ।' तभी आप मेरे द्वारा आक्रमित हुए हैं । अत —

[हे वृद्ध !] सदाचारी एव शीलवती पत्नी और दो पुत्रो के सहित [यदि मुझसे] मुक्ति की इच्छा रखते हो [ तो ], योग्य और अयोग्य का विचार करके एक पुत्र को छोड दो ॥ १२ ॥

वृद्ध—ओह ! हे दुष्ट राक्षस ! क्या मैं ब्राह्मण नही हूँ ?

ब्राह्मणः[1] श्रुतवान् वृद्धः पुत्रं शीलगुणान्वितम् ।
पुरुषादस्य दत्त्वाहं कथं निर्वृतिमाप्नुयाम् ॥ १३ ॥

घटोत्कचः—

यद्यर्थितो द्विजश्रेष्ठ ! पुत्रमेकं न मुञ्चसि ।
सकुटुम्ब क्षणेनैव विनाशमुपयास्यसि ॥ १४ ॥

वृद्ध—एष एव मे निश्चयः—

वान्=श्रुत शास्त्र तद्वान्, शास्त्रज्ञ । शीलगुणान्वितम्=शीलरूपगुणेन समन्वितम्, पुत्रम्=तनयम् 'आत्मस्तनयस्सूनुः सुतः पुत्रः' इत्यमरः । पुरुषादस्य=पुरुष नरम् अत्ति खादतीति पुरुषादः तस्य नरभक्षकस्य राक्षसस्य दत्त्वा=अर्पयित्वा, कथम्=केनोपायेन, निर्वृतिम्=सुखम् आप्नुयाम्=लभेय । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १३ ॥

अन्वय—[ हे राक्षस ! ] अहम्, वृद्ध, श्रुतवान्, ब्राह्मण, शीलगुणान्वितम्, पुत्र, पुरुषादस्य, दत्त्वा, कथम्, निर्वृतिम् आप्नुयाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—[ हे राक्षस ! ] अहम्=मैं, वृद्ध=बुड्ढा [ अर्थात् बुजुर्ग ], श्रुतवान्=शास्त्रज्ञ, ब्राह्मण=ब्राह्मण होकर, शीलगुणान्वितम्=शील और गुण से युक्त, पुत्रम्=पुत्र को, पुरुषादस्य=मानव-भक्षी राक्षस को, दत्त्वा=देकर, कथम्=किस प्रकार, निर्वृतिम्=मुक्ति को, आप्नुयाम्=प्राप्त करूँगा ॥ १३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ !=द्विजेषु विप्रेषु श्रेष्ठ पूज्यतम तत् सम्बुद्धौ, प्रशस्य श्र, यदि=चेत्, अर्थित=मया याचित सन्, एकम्=त्रिषु अन्यतमम् एकम्, पुत्रम्=तनयम्, न मुञ्चसि=न अर्पयसि, तर्हि, सकुटुम्ब=परिवार-सहित, पुत्रकलत्रोपेत, क्षणेनैव=झटिति, विनाशम्=विनष्टो भविष्यसि, उपयास्यसि=प्राप्स्यसे । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १४ ॥

[हे राक्षस] मैं बुजुर्ग और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण होकर शील एवं सब गुण से युक्त पुत्र को नरभक्षी [राक्षस] को देकर किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करूँगा ? ॥१३॥

घटोत्कच—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यदि माँगे हुए एक पुत्र को नहीं छोड़ोगे [ तो ] क्षण में ही सपरिवार विनाश को प्राप्त हो जाओगे ॥ १४ ॥

वृद्ध—[ ठीक है ] मेरा भी यही निश्चय है कि—

[1] 'किमहम्' इति वा पाठः ।

कृतकृत्यं शरीरं मे परिणामेन जर्जरम्।
राक्षसाग्नौ सुतापेक्षी होष्यामि विधिसंस्कृतम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणी—अय्य ! मा मा एवं। पदिमत्ताधम्मिणी पदिव्वदत्ति

अन्वय—हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि, अर्थित, एकम्, पुत्रम्, न, मुञ्चसि, (तर्हि) क्षणेनैव, सकुटुम्ब, विनाशम्, उपयास्यसि ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे द्विजश्रेष्ठ=हे ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ ! [ अर्थात् पूज्यतम ब्राह्मण ] यदि=यदि, अर्थित =याचित [ मांगे हुए ], एकम्=एक, पुत्रम्=पुत्र को, न मुञ्चसि=नही छोड दोगे, [तर्हि=तो], क्षणेनैव=क्षणमात्र मे, सकुटुम्ब = परिवार के सहित, विनाशम्=विनाश को, उपयास्यसि=प्राप्त होगे ॥ १४ ॥

कृतेति। सुतापेक्षी=सुतस्य पुत्रस्य अपेक्षा अस्ति यस्य स, सुतरक्षणार्थीत्यर्थ। [अहम्] परिणामेन=वृद्धावस्थया, वृद्धत्वस्य परिपाकेन, जर्जरम्= शिथिलम्, कृतकृत्यम्=कृतार्थम्, कृत कृत्य येन तम्, ऋणत्रयापाकरणरूप स्वधर्मोऽनुष्ठितो येनेत्यर्थ। विधिसस्कृतम्=विधिपूर्वकोऽनुष्ठान सस्कृत पूतम्, मे=मम वृद्धस्य, शरीरम्=पार्थिवविग्रहम्, राक्षसाग्नौ=हवि स्थानीय स्वशरीर राक्षसरूपेऽग्नौ, राक्षस एव अग्नि राक्षसाग्नि तस्मिन्, होष्यामि= आहुतिकरिष्यामि। इद कृतकृत्य शिथिल च शरीर सुतरक्षार्थं राक्षसमिम समर्पयिष्यामि। रूपकालङ्कार। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वय—परिणामेन, जर्जरम्, म, शरीरम्, कृतकृत्यम्। विधिसस्कृतम्, [ शरीरम् ] सुतापेक्षी, राक्षसाग्नौ, होष्यामि ॥ १५ ॥

पदार्थ—परिणामेन=आयु बीत जाने मे, जर्जरम्=शिथिल, मे शरीरम्= मेरा शरीर, कृतकृत्यम्=कृतार्थ हो चुका है। विधिसस्कृतम्=अनुष्ठानो से पवित्र [शरीरम्=शरीर को], सुतापेक्षी=अपने लडके की रक्षा के लिए, [मैं स्वय ही] राक्षसाग्नौ=राक्षस की [क्षुधा रूप] अग्नि मे, होष्यामि=हवन कर दूंगा ॥१५॥

पतिव्रता=पतिपरायणा, पतिमात्रधर्मिणी=पतिरेव एकमात्र धर्मो यस्या

आयु के विपरिणाम [ बीत जाने ] से जर्जर मेरा शरीर कृतार्थ हो चुका है। [ अत ] अनुष्ठानो से पवित्र [ इस ] शरीर को अपने लडके की रक्षा के लिए राक्षस की [ क्षुधा रूप ] अग्नि मे हवन कर दूंगा ॥ १५ ॥

ब्राह्मणी—हे आर्य ! ऐसा आपको नही सोचना चाहिए, क्योंकि पतिव्रता

णाम । गहीदफलेण एदिणा सरीरेण अय्यं कुलं अ रक्खिदुमिच्छामि । ( आर्य ! मा मैवम् । पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रतेति नाम । गृहीतफलेनैतेन शरीरेणार्यं कुलं च रक्षितुमिच्छामि ) ।

घटोत्कचः—भवति ! न खलु स्त्रीजनोऽभिमतस्तत्रभवत्या ।

वृद्धः—अनुगमिष्यामि भवन्तम् ।

घटोत्कचः—आः ! वृद्धस्त्वमपसर ।

प्रथम.—भोस्तात ! ब्रवीमि खलु तावत् किञ्चित् ।

वृद्ध —पुत्र ! कथय ।

प्रथम —

मम प्राणैर्गुरुप्राणानिच्छामि परिरक्षितुम् ।

---

सा पत्यभावे धर्मविहीनेत्यर्थ । गृहीतफलेन=कृतकार्येण, गृहीत प्राप्त फल पुत्रोत्पादनरूप प्रयोजन येन । तथा च महाभारते—

'यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि ।
कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ॥
मुक्ते प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान् ।
त्वत्प्रसूति प्रिया प्राप्ता न मा तप्स्यत्यजीवितम् ॥

( महाभा० बकवधपर्वणि १५८ ७,३३ )

स्त्रीजन., न खल्वभिमत =नैवेष्ट घटोत्कचजनन्या । उक्त च महाभारते—'अवध्या स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये ।' (महाभा० अ० १५७ ३१)

वृद्ध अस्थिपञ्जरमात्र शरीरस्त्वम् उपवासपारणाय अनुपयुक्त, अत, अपसर=इतो दूरं गच्छ ।

पितुर्देहत्यागमसहमानो ज्येष्ठ. पुत्र. परिवारस्य परित्राणाय स्वप्राणान् समर्पयन् वदति=ममेत्यादिना । मम=आत्मन, प्राणै =जीवनदानेन,

---

स्त्री के लिए पातिव्रत-धर्म ही सब कुछ है । अत इस कृतकृत्य शरीर से आर्य और कुल की रक्षा मैं चाहती हूँ ।

घटोत्कच—हे देवि ! किन्तु मेरी पूज्या माँ को स्त्री-अभिप्रेत नहीं है ।

वृद्ध—तो मैं ही आप के साथ अनुगमन करूँगा ।

घटोत्कच—अरे वृद्ध ! तुम अलग हटो ।

प्रथम ( पुत्र )—हे तात ! तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

वृद्ध—कहो बेटा ।

प्रथम ( पुत्र )—मैं अपने प्राणो के द्वारा [ माता-पिता ] गुरुजनो के

रक्षणार्थं कुलस्यास्य मोक्तुमर्हति मा भवान् ॥ १६ ॥

द्वितीय—आर्य ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठ श्रेष्ठ कुले लोके पितृणा च सुसंप्रिय ।
ततोऽहमेव यास्यामि गुरुवृत्तिमनुस्मरन्[1] ॥ १७ ॥

---

गुरुप्राणान्=गुरूणा प्राणान् तान्, गुरो वृद्धस्य पितु भवत प्राणान् असून्; परिरक्षितुम्=परित्रातुम्, इच्छामि । [ अत ] भवान्, अस्य, कुलस्य=कुटुम्बस्य, रक्षणार्थम्=परित्राणार्थम्, मा मोक्तुमर्हति=परित्यक्तु योग्योऽस्ति । मम परित्यागो भवता कर्तव्य इत्यर्थ । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वय—मम, प्राणै, गुरुप्राणान् परिरक्षितुम्, इच्छामि, [ अत. ] अस्य, कुलस्य, रक्षणार्थम्, भवान्, मा, मोक्तुम्, अर्हति ॥ १६ ॥

पदार्थ—मम=मेरे, प्राणै=प्राणो के द्वारा, गुरुप्राणान्=[ माता पिता आदि ] गुरुजनो के प्राणो के, परिरक्षितुम्=परित्राण के लिए, इच्छामि=मैं सोचता हूँ । [अत ] अस्य=इसलिए इस, कुलस्य=कुल की, रक्षणार्थम्=रक्षा के लिए, भवान्=आप, मा मोक्तुम्=मुझे छोड देने मे, अर्हति=समर्थ है ॥ १६ ॥

एव वदन्त ज्येष्ठ भ्रातर वारयन् मध्यम पुत्र कथयति–ज्येष्ठ इति । लोके=इह ससारे, कुले=वशे, ज्येष्ठ–अग्रज , श्रेष्ठ=अतिशयेन प्रशस्य । गुणवान् ज्येष्ठो लोके पूज्यतम साधुभिश्चार्गाहितो भवति । तथा च मनु—

'ज्येष्ठ पूज्यतमो लोके ज्येष्ठ सद्भिरगर्हित ॥' ( मनु० ९.१०९ )

पितृणाम्=गुरुजनानाम्, सुसप्रियश्च=अत्यन्तप्रिय स्नेहपात्र भवति, अथवा पिण्डदाने अग्रजस्य अधिकार, अत अन्यपुत्रापेक्षया प्रियतर । ततः=तस्माद् कारणात्, तव रक्षणीयत्वादित्यर्थ । अहमेव=मध्यम एव, गुरुवृत्तिम्=ज्येष्ठ प्रति वृत्तिम् आचारम्, अनुस्मरन्=चिन्तयन्, यास्यामि=गमिष्यामि,

---

प्राणो की रक्षा करना चाहता हूँ । इसलिए इस परिवार की रक्षा के लिए मुझे छोड देने मे आप समर्थ है ॥ १६ ॥

द्वितीय ( पुत्र )—आर्य ! इस प्रकार न कहे । [ क्योकि— ]

ज्येष्ठ पुत्र परिवार में और लोक में सदा श्रेष्ठ [ अर्थात् पूज्य ] होता है, और माता-पिता को सबसे अधिक प्रिय भी होता है । अत अपने गुरुजनों के प्रति अपने कर्तव्य का स्मरण करता हुआ मैं [मध्यम पुत्र] ही जाऊँगा ॥१७॥

---

१ 'अनुस्मर' इति वा पाठ ।

तृतीयः—आर्यौ ! मा मैवम् ।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।

ततोऽहं कर्तुमस्म्यर्हो गुरूणां प्राणरक्षणम् ॥ १८ ॥

प्रथमः—वत्स ! मा मैवम् ।

---

चरमावसरारम्भार्थं रामसेन महति शोधे । ज्येष्ठो भ्राता विमातामावेऽनुजान् भ्रातॄन् भक्ताच्छादनादिभिः पितेव बिभृयात् । अनुजाश्च भ्रातरः पुत्रा इव ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मेण वर्तेरन् । इत्याचारमनुस्मरन् । यथा च मनुः—

'पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः ।

पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ (मनु० ९ १०८)

अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वय—ज्येष्ठः कुले, लोके श्रेष्ठः पितुः, च, सुप्रियः, ततः गुरुवृत्तिम्, अनुस्मरन्, अहमेव, यास्यामि ॥ १७ ॥

पदार्थ—ज्येष्ठः=ज्येष्ठ पुत्र, कुले=कुल [ एव ] लोके=संसार में, श्रेष्ठः=श्रेष्ठ होता है । पितुः च=और पिता को सुसुप्रियः=अत्यन्त प्रिय होता है । ततः=इसलिए, गुरुवृत्तिम्=अपने गुरुजनों के प्रति कर्तव्य का, अनुस्मरन्=स्मरण करता हुआ, अहमेव=मैं [मध्यम पुत्र] ही यास्यामि=जाऊँगा ॥१७॥

कनिष्ठ पुत्र समानपि भ्रातरौ वारयन्नाह—ज्येष्ठ इति । ज्येष्ठः भ्राता, पितृसमः =पितृवत् पूजनीय –इति, ब्रह्मवादिभिः =ब्रह्मज्ञानसम्पन्नैः मन्वादिधर्मशास्त्रकारैः, कथितः =प्रोक्तः । ततः =तस्मात् कारणात्, गुरूणाम्=अस्मज्ज्येष्ठानाम् 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे'–इत्यमरः । पिता ज्येष्ठौ भ्रातरौ च गुरवः तेषां गुरूणाम्, प्राणरक्षणम्=जीवनस्य परित्राणम्, कर्तुम्=सम्पादयितुम् अर्हः [ कनिष्ठः पुत्रः ], अहम् =मध्यम अस्मि । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १८ ॥

अन्वय—ज्येष्ठः, भ्राता, ब्रह्मवादिभिः, पितृसमः, कथितः । ततः, अहम्, [ एव ], गुरूणां, प्राणरक्षणम्, कर्तुम् अर्हः, अस्मि ॥ १८ ॥

---

तृतीय ( पुत्र )—आर्य, इस प्रकार न कहें । [ क्योंकि— ]

ब्रह्मवादियों के द्वारा ऐसा कहा गया है कि–बड़ा भाई पिता के समान होता है । इसलिए मैं ही अपने गुरुजनों की जीवन रक्षा करने में योग्य हूँ ॥ १८ ॥

प्रथम ( पुत्र )—वत्स, नहीं, ऐसा नहीं । [ क्योंकि— ]

वृद्धः—एह्येहि पुत्र !

विनिमाय गुरुप्राणान् स्वैः प्राणैर्गुरुवत्सल ! ।
अकृतात्मदुरावाप ब्रह्मलोकमवाप्नुहि ॥ २१ ॥

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । अम्ब ! अभिवादये ।

ब्राह्मणी—जाद ! चिरं जीव [ जात ! चिरं जीव ] ।

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

प्रथमः—एह्येहि वत्स !

---

राक्षसेन सह प्रस्थानायोद्यतस्य पुत्रस्य अभिवादनानन्तर वृद्धस्य आशीर्वचनम्-विनिमायेत्यादि । हे गुरुवत्सल=हे गुरुजनानुरागिन्, गुरुषु वत्सल भक्ति तत्सम्बुद्धौ, स्वैः प्राणैः=स्वकीयैः प्राणैः असुभिः, गुरुप्राणान्=पूज्यजनजीवनानि तान् विनिमाय=परिवर्त्य, ल्यबन्तप्रयोग, वि+नि=मेङ् प्रणिदाने, प्रणिदान विनिमय प्रत्यर्पण च, स्वप्राणविनिमयेन तेषां जीवनरक्षां विधातुमिति भाव । अकृतात्मदुरावापम्=अकृतात्मभिः दुरात्मभिः दुरावाप दुर्लभम् । दुःखेन अवाप्तु शक्यम्, दुर+अव+आप् अनधिगतात्मज्ञानैरित्यर्थं । ब्रह्मलोकम्=ब्रह्मणः लोक देवलोकविशेषम्, अवाप्नुहि=लभस्व । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥२१॥

अन्वय—हे गुरुवत्सल !, स्वैः, प्राणैः, गुरुप्राणान् विनिमाय, अकृतात्मदुरावापम्, ब्रह्मलोकम्, अवाप्नुहि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे गुरुवत्सल !=हे पूज्य जनों में अनुराग रखने वाले पुत्र, स्वैः प्राणैः=अपने प्राणों के द्वारा, गुरुप्राणान्=अपने पूज्यजनों के प्राण का; विनिमाय विनिमय (अर्थात् अदला बदली) करके, अकृतात्मदुरावापम्=अजितेन्द्रियों को सर्वथा दुर्लभ, ब्रह्मलोक=स्वर्गलोक को, अवाप्नुहि प्राप्त करो ॥२१॥

---

वृद्ध—आओ, आओ, मेरे पुत्र ।

पूज्य जनों के अनुरागी तुमने अपने प्राणों के विनिमय द्वारा गुरुजनों के प्राणों की रक्षा की है । अतः तुम्हें वह ब्रह्मलोक प्राप्त हो जो पापात्माओं को सर्वथा दुर्लभ है ॥ २१ ॥

द्वितीय ( पुत्र )—मैं अनुगृहीत हूँ । माँ ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

ब्राह्मणी—चिरजीवी होओ, मेरे पुत्र !

द्वितीय ( पुत्र )—मैं अनुगृहीत हूँ । भाई ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

प्रथम ( पुत्र )—आओ, आओ, मेरे भाई !

परिष्वजस्व गाढं मां परिष्वक्तः शुभैर्गुणैः ।
कीर्त्या तव परिष्वक्ता भविष्यति वसुन्धरा ॥ २२ ॥

द्वितीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

तृतीयः—आर्य ! अभिवादये ।

द्वितीयः—स्वस्ति ।

तृतीयः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

द्वितीयः—भोः पुरुष ! किञ्चिद् ब्रवीमि ।

---

अभिवादनस्य प्रत्युत्तरं प्रथमः सहोदरः यशोलाभाय एवम् अभिवदति—परिष्वजस्वेत्यादिना । शुभैः गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः शोभनगुणैः; परिष्वक्तः=उपेतः, त्वम्, माम्=ज्येष्ठं सहोदरं, गाढम्=दृढम्, परिष्वजस्व=आलिङ्ग । तव=भवतः; कीर्त्या=कुलरक्षणजन्येन यशसा, वसुन्धरा=वसूनि धारयतीति वसुन्धरा वसुमती पृथ्वी, 'सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा । गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः । परिष्वक्ता=परिव्याप्ता भविष्यति, अतः त्वम्, गाढालिङ्गनयोग्योऽसि । 'ष्वज' परिष्वङ्गे—इति धातोः अस्मिन् श्लोके अर्थत्रये प्रयोगः, यथा परिष्वजस्व=आलिङ्ग, परिष्वक्तः=उपेतः, परिष्वक्ता=व्याप्ता । अनुप्रासालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वय—शुभैः, गुणैः, परिष्वक्तः, [ त्वम् ], मां गाढं, परिष्वजस्व । तव, कीर्त्या, वसुन्धरा, परिष्वक्ता, भविष्यति ॥ २२ ॥

पदार्थ—शुभैः गुणैः=[ दया-दाक्षिण्य आदि ] शोभन गुणों से, परिष्वक्तः=विभूषित [ त्वम्=तुम ] मां=मुझे, गाढम्=गाढ रूप से, परिष्वजस्व=आलिंगित कर लो । तव=तुम्हारे, कीर्त्या=यश से, वसुन्धरा=[ सम्पूर्ण ] पृथ्वी, परिष्वक्ता=व्याप्त, भविष्यति=होगी ॥ २२ ॥

---

[दया-दाक्षिण्य आदि] शुभ गुणों से विभूषित तुम मेरा गाढालिंगन करो। तुम्हारी कीर्ति से सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त होगी ॥ २२ ॥

द्वितीय ( पुत्र )—मैं अनुगृहीत हूँ ।

तृतीय ( पुत्र )—आर्य ! आपको मेरा प्रणाम है ।

द्वितीय ( पुत्र )—तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो ।

तृतीय ( पुत्र )—मैं अनुगृहीत हूँ ।

द्वितीय ( पुत्र )—महाशय ! आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ ।

घटोत्कचः—ब्रूहि, ब्रूहि शीघ्रम् ।

द्वितीयः—एतस्मिन् वनान्तरे जलाशय इव दृश्यते । तत्र मे प्रकल्पितपरलोकस्य पिपासाप्रतीकारं करिष्यामि ।

घटोत्कचः—दृढव्यवसायिन् ! गम्यताम् । अतिक्रामति मातुराहारकालः । शीघ्रमागच्छ ।

द्वितीयः—भोस्तात ! एष गच्छामि । ( इति निष्क्रान्तः )

वृद्धः—हा हा परिमुषिताः स्मो भोः ! परिमुषिताः स्मः ।

यस्त्रिशृङ्गो मम त्वासीन्मनोज्ञो वशपर्वतः ।
स मध्यशृङ्गभङ्गेन मनस्तपति मे भृशम् ॥ २३ ॥

---

मातु पारणकालातिक्रमो मा भूत्, अतः शीघ्रं ब्रूहि—इति भाव । प्रकल्पितपरलोकस्य=लोकान्तरं प्रस्थातुमुद्यतस्य । पिपासाप्रतीकारम्=पातुमिच्छा पिपासा तस्या प्रतीकार शान्ति जलपानमित्यर्थ ।

दृढव्यवसायिन्=दृढ व्यवसाय लोकान्तर-गमनोद्यमो यस्य सः दृढव्यवसायी तस्य सम्बुद्धौ । परिमुषिताः=पुत्रस्य हरणात् परिलुण्ठिता ।

लुण्ठनजनितमनोव्यथा वृद्ध प्रकाशयति—यस्त्रिशृङ्ग इत्यादिना । यः, मम=स्थविरस्य, त्रिशृङ्गः=त्रीणि शृङ्गाणि पुत्रत्रयरूपाणि शिखराणि यस्य स, [ अन ] मनोज्ञः=हृद्य ; वशपर्वतः=वश एव पर्वत सुप्रतिष्ठत्वात्; आसीत्=अभूत्, सः वशपर्वत, मध्यमशृङ्गभङ्गेन=मध्यमपुत्ररूपशृङ्गस्य भङ्गेन पातेन हेतुना, मे मनः=मम मानसम्, 'चित्त तु चेतो हृदय स्वान्त हृन्मानस मन ' इत्यमर ; भृशम्=अत्यन्तम्; तपति=सन्तापम् अनुभवति । अतः सावयवरूपकालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २३ ॥

[ वृद्ध पिता अपना खेद इस प्रकार प्रकट करता है— ]

अन्वय—य , तु, मम, मनोज्ञ , वशपर्वतः त्रिशृङ्ग , आसीत् । स , मध्यशृङ्ग-भङ्गेन, मे, मन भृशम्, तपति ॥ २३ ॥

---

घटोत्कच—कहो, शीघ्र कहो ।

द्वितीय ( पुत्र )—इस घने जगल मे मुझे वहाँ जलाशय-सा दिखाई पड रहा है । वहाँ मैं परलोक यात्रा के लिए तैयार होने के लिए अपनी प्यास बुझा लूँ ।

घटोत्कच—हे दृढ निश्चय वाले ! जाओ, क्योकि मेरी माता के भोजन का समय बीत रहा है । ( वहाँ जाकर ) जल्दी आओ ।

द्वितीय ( पुत्र )—हे तात ! अब मैं जाता हूँ । ( चला जाता है ) ।

वृद्ध—हाय, हाय, हम लोग लूट लिए गए; ओह, हम लोग लूट लिए गए ।

हा पुत्रक ! । कथं गत एव ।

तरुण ! तरुणतानुरूपकान्ते !
नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे ! ।
कथमिह गजराजदन्तभग्न-
स्तरुरिव यास्यसि पुष्पितो विनाशम् ॥ २४ ॥

---

पदार्थ—य =जो; मम=मेरा, मनोज्ञ=मनोहर, वंश पर्वत = वंशरूपी पर्वत, त्रिशृङ्ग आसीत्=तीन शिखरो वाला था। स मध्य-शृङ्ग भङ्गेन=[ मध्यमपुत्र रूपी ] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से, मे मन = मेरा मन, भृशम्=अत्यन्त; तपति=सन्ताप का अनुभव कर रहा है ॥ २४ ॥

वृद्ध स्वमनोव्यथा ज्ञापयति—तरुणेत्यादिना । हे तरुण=हे युवन्; हे तरुणतानुरूपकान्ते=हे यौवनानुरूपशोभासम्पन्न; तरुणस्य भाव· तरुणता तस्या तरुणताया अनुरूपा सदृशी कान्ति शोभा यस्य तत्सम्बुद्धौ, नियमपराध्ययनप्रसक्तबुद्धे=हे अध्ययनतत्परमते, नियमपरा व्रतनिरता अध्ययनप्रसक्ता च बुद्धि यस्य तत्सम्बुद्धौ, इह=वने, गजराजदन्तभग्न:=गजेन्द्रोत्पाटित ; गजाना हस्तियूथस्य राजा स्वामी द्विरदपति , तस्य दन्त रद तेन भग्न उत्पाटित, पुष्पित:=सञ्जातपुष्प , तरुरिव[1]=वृक्ष इव, कथम्=केन प्रकारेण, विनाशम्=संहारम्, यास्यसि=प्राप्स्यसि। प्रथमचरणे 'तरुण-तरुण०'—इति यमकालङ्कार । तारुण्यभूषितस्य तनयस्य पुष्पितवृक्षेण सह सादृश्यत्वात् उपमालङ्कार । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षण तु—'अयुजि नयुग-रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ २४ ॥

[ पिता अपने सन्ताप को इस प्रकार प्रकट करता है— ]

अन्वय—हे तरुण, हे तरुणतानुरूप कान्ते !, नियम पराध्ययन प्रसक्तबुद्धे, इह, गजराज दन्त-भग्न , पुष्पित , तरु , इव, कथम्, विनाशम्, यास्यसि ॥२४॥

पदार्थ—हे तरुण !=हे युवक !, हे तरुणतानुरूप-कान्ते=हे युवावस्था

---

जो मेरा तीन शिखरो वाला मनोहर वंश रूपी पर्वत था, उसके [मध्यम पुत्र रूपी] मध्य शृङ्ग के टूट जाने से मेरा मन अत्यन्त सन्ताप का अनुभव कर रहा है।

हाय बेटा, क्या तुम चले ही गए।

हे युवक, हे युवावस्था की तरुणाई के अनुरूप कान्ति वाले, हे संयमी एव निरन्तर अध्ययन मे तत्पर चित्त वाले, यहाँ प्रमत्त गजराज के दन्ताघात से भग्न, फूलो से भरे हुए वृक्ष के समान किस प्रकार विनाश को तुम प्राप्त हुए हो ॥ २४ ॥

---

१ तु० 'नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्न' प्रतिमा० ६४।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। अतिक्रामति मातुराहारकालः। किन्तु खलु करिष्ये। भवतु दृष्टम्। भो ब्राह्मण! आहूयतां तव पुत्रः।

वृद्धः—आः, अतिराक्षसं खलु ते वचनम्।

घटोत्कचः—कथं रुष्यति। मर्षयतु भवान् मर्षयतु। अयं मे प्रकृतिदोषः। अथ किन्नामा तव पुत्रः?

वृद्धः—एतदपि न शक्यं श्रोतुम्।

---

की तरुणाई के अनुरूप कान्ति वाले!, नियम-पराध्ययन-प्रसक्त-बुद्धे=हे सयमी एव निरन्तर अध्ययन में तत्पर चित्त वाले!; इह=यहाँ, गजराज-दन्त-भग्न=प्रमत्त गजराज के दन्ताघात से भग्न, पुष्पित=फूलों से भरे हुए; तरु=वृक्ष, इव=के समान, कथम्=किस प्रकार, विनाशम्=विनाश को यास्यसि=] तुम ] प्राप्त हुए हो ॥ २४ ॥

विमर्श—इस श्लोक में पूर्णोपमा इस प्रकार बन पड़ी है—उपमान के रूप में 'तरु' और उपमेय ब्राह्मण कुमार है। तरुण और पुष्पित का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव ही साधारण धर्म है। अथवा 'विनाश यास्यसि' भी साधारण धर्म हो सकता है। उपमावाचक शब्द इव है।

चिरायते=विलम्ब्यते, चिरशब्दात् 'लोहितादिडाज्भ्य क्यप्' ( पा० सू० ३-१-१३ ) इति क्यप्।

अतिराक्षसम्=राक्षसान् अतिक्रान्तम्,=राक्षसोऽपीदृश क्रूर वचन न ब्रूयादिति भाव। रुष्यति=कुप्यति। मर्षयतु—क्षम्यताम्। प्रकृतिदोषः=अनुचितवक्तृत्व तु मम स्वभावगतदोष। अथेति प्रश्ने। किन्नामा=किं नाम यस्य स। तपस्वी=दीन, 'मध्यम'–इति पितृभ्याम् उपेक्षितत्वात्। सदृशम्=अनुरूपम् ॥

---

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर लगा रहा है। माता के आहार का काल व्यतीत हो रहा है। क्या किया जाय? अच्छा समझ गया। हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को बुलाओ।

वृद्ध—ओह, तुम्हारी वाणी अत्यन्त रूक्ष है।

घटोत्कच—क्यों रुष्ट हो रहे हैं? आप मुझे क्षमा करें, क्षमा करें। यह मेरा स्वभावगत दोष है। किन्तु आपके पुत्र का क्या नाम है?

वृद्ध—यह भी [ तुम हमसे ] नहीं सुन सकते।

घटोत्कचः—युक्तम्, भोः ! ब्राह्मणकुमार ! किन्नामा ते भ्राता ?

प्रथमः—तपस्वी मध्यमः ।

घटोत्कचः—मध्यम इति सदृशमस्य । अहमेवाह्वयामि । भो मध्यम ! मध्यम शीघ्रमागच्छ ।

( ततः प्रविशति भीमसेनः )

भीमः-कस्यायं स्वरः ?

खगशतविरुते विरौति तारं
 द्रुमगहने दृढसङ्कटे वनेऽस्मिन् ।
जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं
 बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य[1] ॥ २५ ॥

---

'मध्यम'—इति सम्बोधनशब्दश्रवणानन्तरम्, अहमेवाहूत इति मन्यमानस्य भीमसेनस्य प्रवेशं सूचयति—ततः इत्यादिना ।

स्वरसादृश्येन विस्मितस्य भीमसेनस्य कौतूहलं दर्शयति—खगेत्यादिना । खगशतविरुते=पक्षिशतस्य विरुतं शब्दः यस्मिन् ( तस्मिन् वने ), द्रुमगहने=द्रुमैः वृक्षैः गहने व्याप्ते; दृढसङ्कटे=भृशंनिबिडे, अत बाधापन्ने, अस्मिन् वने=अरण्ये, 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः, स्वरोऽयम्=अयं ध्वनिः तारम्=अत्युच्चं यथा भवति तथा; विरौति=शब्दायते । एवमेव, च=तथा, मनोज्वरम्=उत्कण्ठा कौतूहलं वा; जनयति=उत्पादयति; हि=यतः ; धनञ्जय-

---

घटोत्कच—ठीक है, हे ब्राह्मण बालक, तुम्हारे भाई का क्या नाम है ?

प्रथम ( पुत्र )—दीन मध्यम ।

घटोत्कच-'मध्यम' नाम इसके अनुरूप है । मैं ही बुलाता हूँ । हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ ।

( उसके बाद भीमसेन प्रवेश करते हैं )

भीम—यह किसका स्वर है ?

सैकड़ों पक्षियों के कलरव से युक्त, अत्यन्त संकटापन्न, अनेक गहन वृक्षों से संकुलित इस वन में उच्च स्वर से [ कौन ] पुकार रहा है । यह स्वर मेरे मन में अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है कि [ यह ] अर्जुन के स्वर के अत्यन्त समान है ॥ २५ ॥

---

१. 'धनञ्जयस्य शब्दः' इति वा पाठः ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः; अतिक्रामति मातुराहारकालः। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। उच्चैः शब्दापयामि। भो भो मध्यम! शीघ्रमागच्छ।

भीमः—भोः! को नु खल्वेतस्मिन् वनान्तरे मम व्यायामविघ्नमुत्पाद्य मध्यम! मध्यम! इति मां शब्दापयति। भवतु, पश्यामस्तावत्। (परिक्रम्यावलोक्य सविस्मयम्) अहो दर्शनीयोऽय

---

स्वरस्य = अर्जुनस्वरस्य, धन जयति, अरीन् निर्जित्य अर्जयतीति धनञ्जय। अस्य निरुक्तिर्यथा महाभारते—

सर्वान् जनपदान् जित्वा वित्तमाश्रित्य केवलम्।
मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम्॥ (४४२१३)

बहुसदृश =अत्यन्तानुकारी, अर्जुनवाण्या सदृशोऽस्य स्वर इति भाव। अत स्वबन्धुभाव द्योतयति। स्मरणालकार। पुष्पिताग्रा वृत्तम्॥ २५॥

[घटोत्कच के शब्द को सुनकर भीम इस प्रकार की सम्भावना प्रकट करते हैं—]

अन्वय—खग शत विरुते, दृढसकटे, द्रुम गहने, अस्मिन् वने, तार, विरौति अयम्, स्वर, मनोज्वरम्, जनयति हि धनञ्जयस्वरस्य, बहुसदृश॥ २५॥

पदार्थ—खगशत विरुते=सैंकडो पक्षियो की चहचहाहट से युक्त, दृढसकटे=अत्यन्त सकटापन्न, द्रुमगहने=अनेक गहन वृक्षों से सकुलित, अस्मिन् वने=इस वन मे, तार=उच्च स्वर से, विरौति=पुकार रहा है। अयम्, स्वर =यह स्वर, मनोज्वरम्=कौतूहल, जनयति=उत्पन्न कर रहा है; हि=कि, धनञ्जयस्वरस्य=[यह] अर्जुन के स्वर के, बहुसदृश =अत्यन्त समान [अस्ति=है]॥ २५॥

शब्दापयामि=आह्वयामि, शब्दाद् णिच्, पुगागम। अपाणिनीयोऽय प्रयोग। दूराह्वान तु न भरतसम्मत, यथा—दूराह्वान वधो युद्ध राज्यदेशादिविप्लव। दर्शनीयः=विशिष्टाकृतित्वात् द्रष्टु योग्य॥

---

घटोत्कच—ब्राह्मण बालक तो देर कर रहा है और, माता के आहार का काल व्यतीत हो रहा है। क्या किया जाय? अच्छा, समझ गया। जोर से बुलाऊँ। हे मध्यम, शीघ्र आओ।

भीम—आह, यह कौन है जो इस गहन वन मे मेरे व्यायाम मे विघ्न उत्पन्न करके 'मध्यम' 'मध्यम' कहते हुए मुझे बुला रहा है। अच्छा, तो देखूँ। (घूमकर और देखकर विस्मय के साथ) अहा, यह पुरुष तो दर्शन

पुरुषः । अयं हि,—

सिंहास्यः सिंहदंष्ट्रो मधुनिभनयनः स्निग्धगम्भीरकण्ठो
बभ्रुभ्रूः श्येननासो द्विरदपतिहनुर्दीप्त[1]विश्लिष्टकेशः ।
व्यूढोरा वज्रमध्यो गजवृषभगतिर्लम्बपीनांसबाहुः
सुव्यक्तं राक्षसोजो विपुलबलयुतो लोकवीरस्य पुत्रः ॥ २६ ॥

---

घटोत्कचस्य दर्शनीयत्वं वर्णयति—सिंहास्य इत्यादिना । सिंहास्य'= सिंहमुख, सिंहस्य मृगेन्द्रस्य आस्य मुखम् इव मुख यस्य स, सिंहदंष्ट्रः= व्याघ्रस्य दंष्ट्रा दन्त इव दंष्ट्रा यस्य स, मधुनिभनयनः=मधुनिभे रक्तवर्णत्वात् मधुतुल्ये नयने यस्य स, स्निग्धगम्भीरकण्ठः=स्निग्धो मधुर गम्भीरश्च कण्ठ कण्ठनादो यस्य स, बभ्रुभ्रूः=बभ्रू पिङ्गले भ्रुवौ यस्य स, श्येननासः=गृध्र-नास, श्येनस्य नासा इव नासिका यस्य स, द्विरदपतिहनुः=गजराजस्य हनुरिव हनु यस्य स, दीर्घविश्लिष्टकेशः=दीर्घा विश्लिष्टा विरला प्रकीर्णाश्च केशा कुन्तला यस्य स, 'चिकुर कुन्तलो बाल कच' केश शिरोरुह'—इत्यमर । व्यूढोरा=व्यूढ विस्तीर्णम् उरो वक्ष यस्य स; अपाणिनीयोऽयं प्रयोग । 'उर प्रभृतिभ्य कप्' (पा सू ५ ४.१५१) इत्यनेन कप्प्रत्ययाभाव । वज्रमध्यः=वज्र कुलिश तदिव काठिन्यादिना मध्यभाग यस्य स, गजवृषभगतिः=गजेन्द्रगति, वृषभशब्दोऽत्र श्रेष्ठवाचक, यथा—

स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जरा ।
सिंहशार्दूलनागाद्या पुंसि श्रेष्ठार्थवाचका ॥

लम्बपीनांसबाहुः—लम्बौ पीनौ पुष्टौ च अंसौ स्कन्धौ बाहू भुजे च यस्य स, विपुलबलयुतः=महद्बलसयुत, राक्षसौज=राक्षस्या जात घोरा-कृतित्वात्, लोकवीरस्य पुत्रः=लोके वीर शूर तस्य जगत्प्रख्यातशूरस्य पुत्र

---

के योग्य है। क्योंकि, यह—

ॐ सिंह के समान मुख वाला, सिंह के समान दाढो वाला, मदिरा के समान [ मादक ] आंखो वाला, चिकने और उन्नत कण्ठ वाला, भूरी भौहो वाला, श्येन पक्षी के समान नाक वाला, गजराज के समान ठोढी वाला, चमकीले और

---

१. दीर्घ-' इति पाठ ।

घटोत्कचः—चिरायते खलु ब्राह्मणवटुः। उच्चैः शब्दापयामि भो भो मध्यम ! शीघ्रमागच्छ।

भीमः—भोः ! प्राप्तोऽस्मि।

घटोत्कचः—न खल्वयं ब्राह्मणवटुः। अहो दर्शनीयोऽयं पुरुषः। य एष—

---

सूनुरस्तीति, सुव्यक्तम्=सुस्पष्टम्। इह बह्वीनामुपमाना ससृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षण तु—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्॥ २६॥

[ घटोत्कच के शरीर की गठन को देखकर भीम इस प्रकार उसका वर्णन प्रस्तुत करते हैं— ]

अन्वय—सिंहास्य, सिंहदंष्ट्र, मधुनिभनयन, स्निग्ध-गम्भीर कण्ठ, बभ्रुभ्रू, श्येननास, द्विरद-पति हनु, दीप्त विश्लिष्ट-केश, व्यूढोरा, वज्रमध्य, गज-वृषभ-गति, लम्ब-पीनांस-बाहु, विपुल बल-युत राक्षसीज, लोकवीरस्य, [ अयम् ] पुत्र सुव्यक्तम्॥ २६॥

पदार्थ—सिंहास्य =सिंह के समान मुख वाला, सिंह-दंष्ट्र =सिंह के समान दाढों वाला; मधु-निभ नयन =मदिरा के समान [ मादक ] आँखों वाला; स्निग्ध-गम्भीर-कण्ठ =चिकने और उन्नत कण्ठ [ अर्थात् ग्रीवा ] वाला, बभ्रु-भ्रू =भूरी भौहों वाला, श्येन-नास =श्येन [ =बाज ] पक्षी के समान [ लम्बी कुछ उठी हुई ] नाक वाला, द्विरदपति-हनु =गजराज के समान ठोढी वाला, दीप्त विश्लिष्ट-केश =चमकीले और बिखरे हुए बालों वाला, व्यूढ उरा =विस्तीर्ण वक्ष वाला, वज्रमध्य =वज्र के समान [कठोर] कटिप्रदेश, गजवृषभ गति =गजराज के समान [ मदमत्त ] चाल वाला;

---

बिखरे बालों वाला, विस्तीर्ण वक्ष वाला, वज्र के समान [ कठोर ] कटि-प्रदेश युक्त, गजराज के समान [ मदमत्त ] चाल वाला, लम्बी भुजाओं और विशाल कन्धों वाला, विपुल शक्ति सम्पन्न [ यह ] अवश्य ही किसी राक्षसी से उत्पन्न जगत् प्रसिद्ध योद्धा का पुत्र है॥ २६॥

घटोत्कच—ब्राह्मण-बालक तो देर कर रहा है। जोर से बुलाऊँ। हे मध्यम, हे मध्यम, शीघ्र आओ।

भीम—ओ, मैं आ गया।

घटोत्कच—यह तो ब्राह्मण बालक नहीं है। अहा, यह पुरुष तो दर्शन के योग्य है। जो, यह—

सिंहाकृतिः कनकतालसमानबाहुः
मध्ये तनुर्गरुडपक्षविलिप्तपक्षः[1]।
विष्णुर्भवेद् विकसिताम्बुजपत्रनेत्रो
नेत्रे ममाहरति बन्धुरिवागतोऽयम् ॥ २७ ॥

---

लम्ब-पीनांस-बाहु =लम्बी भुजाओं और विशाल कन्धों वाला; विपुल-बल-युत =अत्यन्त बलशाली; राक्षसीजः=राक्षसी से उत्पन्न; लोकवीरस्य=जगत् प्रसिद्ध योद्धा का, [ अयम्=यह ] पुत्र =पुत्र है; इति मुव्यक्तम्=यह स्पष्ट हो है ॥ २६ ॥

भीम दृष्ट्वा घटोत्कच स्वमनोभावं प्रकटयति—सिंहादिना । अयं पुरुषः सिंहाकृतिः=मृगेन्द्राकृति, सिंहस्य आकृतिरिव आकारो यस्य स ; कनकताल-समानबाहु =स्वर्णतालवृक्षसदृशबाहु, कनकस्य सुवर्णस्य ताल तालवृक्ष-तत्समानो बाहू भुजे यस्य स ; मध्ये=मध्यभागे, तनुः=कृश.; गरुडपक्षविलिप्त-पक्षः=गरुडपक्षाविव मसृणौ पार्श्वभागौ यस्य स इत्यर्थ । विकसिताम्बुजपत्र-नेत्रः=प्रफुल्लितपद्मदलसदृशलोचन, विकसितस्य अम्बुजस्य पत्रे दले इव नेत्रे यस्य स, किमयम् ?, विष्णुः भवेत्=अच्युत स्यात् ?; मम=घटोत्कचस्य; नेत्रे=चक्षुषी, आगत =आगतमात्रोऽयम्, न तु सम्भाषणादिना परीक्षात ; बन्धु-रिव=आत्मीयजन इव; आहरति=आकर्षयति, अनुराग जनयतीत्यर्थ । यथा किराते—'अमितस्त्व पृथासूनु स्नेहेन परितस्त्वर ।
अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मन ॥ ( ११.८ )
उपमालङ्कार । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

[ घटोत्कच भीम के रूप का वर्णन इस प्रकार करता है— ]

अन्वय—सिंहाकृति, कनक-ताल समान बाहु, मध्ये, तनु, गरुड-पक्ष-विलिप्त-पक्ष, विकसित-अम्बुज-पत्र नेत्र, अयम्, विष्णु, भवेद् । आगत, बन्धु, इव, [ अयम् ] मम, नेत्रे, आहरति ॥ २७ ॥

---

सिंह के समान आकृति वाले, स्वर्ण के ताड वृक्ष के समान लम्बी भुजाओं वाले, मध्यभाग में कृश, गरुड के पङ्खों के समान स्निग्ध पार्श्व-भाग वाले, और प्रफुल्लित कमल की पङ्खुडियों के समान आँखों वाले यह सम्भवत भगवान् विष्णु हो सकते हैं जो पास आते हुए बन्धु के समान मेरी आंखों को आकृष्ट कर रहे हैं ॥ २७ ॥

---

१ 'विलिप्तवक्षा' इति वा पाठ ।

भो मध्यम ! त्वां खल्वह शब्दापयामि ।

भीमः—अतः खल्वहं प्राप्तः ।

घटोत्कचः—किं भवानपि मध्यमः ?

भीमः—न तावदपरः ।

मध्यमोऽहमवध्यानामुत्सिक्तानां च मध्यमः ।
मध्यमोऽहं क्षितौ[1] भद्र ! भ्रातॄणामपि मध्यमः ॥ २८ ॥

---

पदार्थ—सिंहाकृति =सिंह के समान आकृति वाला कनकताल समान-बाहु =सुवर्ण के ताड के पेड के समान [ लम्बी ] भुजाओ वाला, मध्ये = मध्यभाग मे, तनु =कृश, गरुड-पक्ष विलिप्त-पक्ष =गरुड के पङ्खो के समान चिकने पार्श्वभाग वाला, विकसित अम्बुज पत्र-नेत्र =खिली हुई कमल की पङ्खुडियो के समान आंखो वाला, अयम्=यह, विष्णु भवेत्=[ सम्भवत. ] भगवान् विष्णु हो सकते है । आगतः बन्धु इव-पास आते हुए बन्धु के समान, [अयम्=यह] मम नेत्रे=मेरी आँखो को, आहरति–आकर्षित कर रहा है ॥२७॥

अहमेव सर्वथा मध्यम: नान्य कोऽपि इति प्रतिपादयति भीमसेन –मध्यम इत्यादिना । अहम्=भीमसेन ; अवध्यानाम्=शत्रुभिर्हन्तुम् अशक्याना पाण्डवाना मध्ये मध्यमोऽस्मि इति शेष । पाण्डवाना चावध्यत्व प्रसिद्धम् । उत्सिक्ताना च–शौर्योद्धताना ( उत् + सिच् + क्त ) च मध्ये ! मध्यम =मध्यमपाण्डवोऽहम्; भद्र=हे सौम्य, क्षितौ=पृथिव्याम्, अह मध्यमः=अहमेव मध्यमत्वेन लोके प्रख्यात । भ्रातॄणामपि=युधिष्ठिरादीना मध्येऽपि अहम्, मध्यमः=पञ्चसु पाण्डवेषु मध्ये मध्यम पाण्डवो भीमसेन इत्यर्थं । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २८ ॥

[ भीम अपना परिचय इस प्रकार देते है ]—

अन्वय—हे भद्र ! अवध्यानाम्, [ पाण्डवानाम्, मध्ये ] अहम्, मध्यम । च उत्सिक्तानाम्, [ अहम् ] मध्यम । क्षितौ, अहम्, मध्यम । भ्रातॄणाम्, अपि, [ अहम् एव ] मध्यम ॥ २८ ॥

---

हे मध्यम, मैं तो तुम्हे ही बुला रहा हूं ।

भीम—इसीलिए तो मैं आ गया ।

घटोत्कच—क्या आप भी 'मध्यम' हैं ।

भीम—फिर दूसरा तो नही ही है, क्योकि—

---

१ 'क्षिते' इति पाठ ।

घटोत्कच —भवितव्यम् ।
भीम.—अपि च,

मध्यम पञ्चभूताना पार्थिवानां च मध्यम ।
भवे[1] च मध्यमो लोके सर्वकार्येषु मध्यम ॥ २९ ॥

पदार्थ—हे भद्र=हे सौम्य ! अवध्यानाम्=शत्रुओ से न मारे जाने वाले, [पाण्डवानाम्, मध्ये=पाण्डवो के बीच मे] अहम्=मैं, मध्यम=मध्यम [पाण्डव] हूँ । च=और; उत्सिक्तानाम्=निष्कासितो के अथवा शौर्य मे गर्व करने वालो के बीच म [अहम्=मैं] मध्यम हूँ । क्षितौ=मध्यमलोक रूप इस पृथ्वी पर; अहम्=मैं; मध्यम=मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ । भ्रातॄणाम्=भाइयो के बीच, अपि=भी, [अहम् एव=मैं ही] मध्यम=मझला हूँ ॥ २८ ॥

आत्मनो मध्यमत्व पुन समर्थयति भीमसेन—मध्यम इत्यादिना । अहम्, पञ्चभूतानाम्=पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाना मध्ये, मध्यम.=पञ्चभूतेषु वायोर्मध्यमस्थानीयत्वेन तत्पुत्रोऽहमपि मध्यम । पार्थिवाना च=तथा पृथ्वीश्वराणा मम भ्रातॄणाम् अह मध्यम । अहम् लोके=अस्मिन् मृत्युलोके, भवे=भवो नाम मातृकुक्षेर्निर्गम तत्र मध्यम जन्मनाऽपि मध्यमोऽहमिति भाव । तथा, सर्वकार्येषु मध्यम =सर्वेषां जनाना कार्येषु, अह मध्यम =मध्यस्थः । एवमत्र भीमसेनस्य मध्यमत्वम् अष्टभि प्रकारै प्रतिपादितम् । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ २९ ॥

[अपनी उक्ति का स्पष्टीकरण करते हुए भीम कहते हैं]—

अन्वय—पञ्चभूताना [मध्ये अहम्] मध्यम ; च पार्थिवाना [मध्ये अहम्] मध्यम , च लोके भवे [अहम्] मध्यम , सर्वकार्येषु [अहम्] मध्यम ॥ २९ ॥

हे सौम्य, शत्रुओ से अवध्य [पाण्डवो मे] मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ, और शौर्य मे गर्व करने वाले [पाण्डवो] के बीच मैं मध्यम [पाण्डव] हूँ । [मध्यमलोक रूप] इस पृथ्वी पर मैं मध्यम [लोक का मनुष्य] हूँ, [और अपने] भाइयो के बीच भी मैं मध्यम [मझला भाई] हूँ ॥ २८ ॥

घटोत्कच—होगे ।

भीम—और भी—

[पृथ्वी, अप, तेज, वायु व आकाश इन] पञ्चभूतो मे मध्यम [पृथ्वी व आकाश के मध्यगत वायु का पुत्र] हूँ, और भाई राजाओ के मध्य मैं मध्यम हूँ और ससार मे उत्पन्न होने वाले [अपने भाइयो] के बीच मैं [जन्मना] मध्यम हूँ, और सभी मानवो के कार्यों मे मैं मध्यम [मध्यस्थ] रहने वाला हूँ ॥ २९ ॥

[1] 'मये इति वा पाठ ।

वृद्धः—

मध्यमस्त्विति सम्प्रोक्ते नूनं पाण्डवमध्यम ।
अस्मान् मोक्तुमिहायातो [1]दर्पान्मृत्योरिवोत्थित ॥ ३० ॥

पदार्थ—पञ्चभूतानाम्=[पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इन] पञ्चभूतो में [ पृथ्वी और आकाश के मध्य रहने वाली वायु का पुत्र ] [ अहम्=मैं ], मध्यम =मध्यम हूँ । च =और, पार्थिवानाम्=भाई राजाओ के [मध्ये अहम्=मध्य मैं ], मध्यम =मध्यम, च लोके भवे=और संसार में उत्पन्न होने वाले [अपने भाइयो] के बीच [अहम्=मैं] मध्यम=मध्यम हूँ । सर्वकार्येपु=सभी [मनुष्यो] के कार्यों मे, [अहम्=मैं], मध्यम =मध्यस्थ रहने वाला हूँ ॥२९॥

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक और इसके पहले श्लोक मे चार-चार वार 'मध्यम' शब्द का प्रयोग महाकवि भास ने मात्र उस पर बल देने के लिए किया है। विभिन्न स्थलो मे इसका अर्थ भी विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। फिर भी सक्षेप मे मध्यम का अर्थ सभी के बीच 'प्रमुखता' का द्योतक है। एक ही शब्द की पुनरुक्ति कवि की अपनी एक कला है, जिसे उन्होने अन्य स्थलो मे भी किया है जैसे बाइसवें श्लोक मे 'परिष्वज' का प्रयोग और अन्तिम श्लोक मे 'प्रभव' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों मे कई बार किया गया है।

भीमेनात्मनो मध्यमत्वकथनस्याभिप्रायम् अभिज्ञाय वृद्ध. स्वगतमाह—मध्यम इत्यादिना । मध्यमस्तु इति सम्प्रोक्ते=सम्यगुच्चारिते सति, नूनम्=निश्चितम्, पाण्डवमध्यम.=पाण्डवेपु मध्यमत्वेन प्रसिद्ध भीमोऽयम् । राक्षसभयाद् अस्मान्, मोक्तुम्=मोचयितुम्, इह=अस्मिन् स्थाने, मृत्यो.=अन्तकस्य, दर्पात्=गर्वात्; उत्थित=उद्युक्त इव, आयात=आगत । उत्प्रेक्षालकार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३० ॥

[ ब्राह्मण अपने मन मे विचार करता है कि ]—

अन्वय—[अहम्] मध्यम , इति, सम्प्रोक्ते, नूनम्, पाण्डवमध्यम । दर्पाद्, मृत्यो , इव अस्मात् [ राक्षसात् ], मोक्तुम्, उत्थित , इह, आयात ॥ ३० ॥

वृद्ध—

'मैं मध्यम हूँ'—ऐसा कहने से निश्चित रूप से [ यह ] पाण्डवो मे मध्यम [ भीम ] होंगे । मृत्यु के गर्वस्वरूप इस राक्षस से बचाने के लिए मानो उद्यत हुए से यहाँ आये हैं ॥ ३० ॥

---

१. 'दर्पान्मृत्युरिव' इति वा पाठ.।

( प्रविश्य )

मध्यमः—

अस्यामाचम्य पद्मिन्यां परलोकेषु दुर्लभम् ।
आत्मनैवात्मनो दत्तं पद्मपत्रोज्ज्वलं जलम् ॥ ३१ ॥

---

पदार्थ—[अहम्=मैं] मध्यमः=मध्यम हूँ, इति=ऐसा; सम्प्रोक्ते=कहने से, नूनम्=निश्चित रूप से, [ अयम्=यह ] पाण्डवमध्यमः=पाण्डवों में मध्यम [ भीम ] होंगे; दर्पाद् मृत्योः=मृत्यु के गर्व रूपी, अस्मात् [ राक्षसात् ]=इस [ राक्षस ] से; मोक्तुम्=बचाने के लिए; उत्थितः, इव=मानो उद्युक्त होकर; इह=यहाँ, आगतः=आये हैं ॥ ३० ॥

पिपासाशान्त्यर्थं जलाशयं समुपगतस्य मध्यमपुत्रस्य वचनम्—अस्यामित्यादि । अस्याम्=पुरोऽवस्थितायाम्; पद्मिन्याम्=सरसि, पद्मानि अस्या सन्ति इति पद्मिनी तस्याम्; परलोकेषु=स्वर्गादिषु लोकेषु, दुर्लभम्=दुःखेन लब्धुं योग्यम्; अप्राप्यमित्यर्थः । पद्मपत्रोज्ज्वलम्=कमलदलमिव उज्ज्वलम् अर्थात् निर्मलम्, जलम्=सलिलम्, आचम्य=पीत्वा, आत्मनैव=स्वेनैव, आत्मनः=स्वस्य, दत्तम्=अर्पितम् । 'सन्तानविहीनः जीवन्नेवात्मनः श्राद्धं कुर्याद्' इति बौधायनः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वय—परलोकेषु, दुर्लभम्, अस्याम्, पद्मिन्याम् पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्, जलम्, आचम्य, आत्मनैव, आत्मनः दत्तम् ॥ ३१ ॥

पदार्थ—अस्याम्=इस, परलोकेषु दुर्लभम्=परलोक में अप्राप्य, पद्मिन्याम्=कमलों से युक्त सरोवर के, पद्म-पत्र-उज्ज्वलम्=कमल की पङ्खुड़ियों के समान अर्थात् स्वच्छ, जलम्=जल को, आचम्य=आचमन करके, आत्मनैव=अपने से ही, आत्मनः=अपने को, दत्तम्=[ जल ] दे दिया है, क्योंकि पुत्र-विहीन होने से तर्पण कार्य की आशा नहीं है ॥ ३१ ॥

---

( प्रवेश करके )

मध्यम—

परलोक में अप्राप्य इस कमलों से युक्त सरोवर के कमल की पङ्खुड़ियों के समान अर्थात् स्वच्छ जल का आचमन करके अपने से ही अपने को ( जल ) दे दिया है [ क्योंकि पुत्रविहीन होने से तर्पण की आशा नहीं है ] ॥ ३१ ॥

( उपगम्य ) भोः पुरुष ! प्राप्तोऽस्मि ।

घटोत्कचः—[1]भवानिदानीं खल्वसि मध्यमः । मध्यम ! इत इतः ।

वृद्धः—( भीममुपगम्य ) भो मध्यम ! परित्रायस्व ब्राह्मणकुलम् ।

भीमः—न भेतव्य, न भेतव्यम् । मध्यमोऽहमभिवादये ।

वृद्धः—वायुरिव दीर्घायुर्भव ।

भीमः—अनुगृहीतोऽस्मि । कुतो भयमार्यस्य ।

वृद्धः—श्रूयताम् । अहं खलु कुरुराजेन युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्वे कुरुजाङ्गले यूपग्रामवास्तव्यो माठरसगोत्रश्च कल्पशाखाध्वर्युः केशवदासो नाम ब्राह्मणः । तस्य ममोत्तरस्या दिश्युद्यामकग्राम-वासी मातुल कौशिकसगोत्रो यज्ञबन्धुर्नामास्ति । तस्य पुत्रोप-

---

वायुरिव दीर्घायुर्भव = कल्पान्तकालजीवी भव, वायुर्हि प्राणाधिष्ठान-देवता । कुरुजाङ्गले = कुरुक्षेत्रे । माठरसगोत्र [2]—माठरेण ऋषिविशेषेण समान गोत्र यस्य स । कल्पशाखाध्वर्यु —कल्पो यज्ञविधानम्, तत्प्रतिपादिका शाखा कल्पशाखा, तस्या अध्वर्यु तदनुसरणपरो तदुक्तप्रयोगानुष्ठाननिपुण श्रौतकर्मसु ऋत्विग्विशेष इत्यर्थ. ।

---

( पास जाकर ) हे पुरुष, मैं आ गया ।

घटोत्कच—वस्तुत यहाँ तुम्ही मध्यम हो । हे मध्यम, इधर आओ, इधर आओ ।

वृद्ध—( भीमसेन के पास जाकर ) हे मध्यम, इस ब्राह्मणकुल का परित्राण करो ।

भीम—डरना नही चाहिए, डरना नही चाहिए । मैं मध्यम आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—वायु के समान दीर्घायु होवे ।

भीम—मैं अनुगृहीत हूँ । आपके भय का क्या कारण है ?

वृद्ध—सुनिए, मैं कुरुराज युधिष्ठिर से पहले शासित कुरुजाङ्गल [ =कुरुक्षेत्र ] में यूप ग्राम का रहने वाला माठरगोत्रीय कल्पशाखीय अध्वर्यु केशवदास नामक ब्राह्मण हूँ । उस ग्राम के उत्तर दिशा मे उद्यामक ग्राम वासी

---

१ 'भ्रातवान् इदानी खल्वसि' इति वा पाठ ।

२. तु० 'रैभ्यसगोत्र' स्वप्न० ६ पृ० २०७ । द्र० पा० महाभाष्य ।

**सीता**—ह विपरीओ खु धम्मो, ज जीवदि खु अअ पापरक्खसो।
[ह, विपरीत खलु धर्म, यद् जीवति खल्वय पापराक्षस ।]

**रावणः**—ननु देवि !

**सीता**—सत्तो सि। [शप्तोऽसि]

**रावण**—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेज !

देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे।
सोऽह मोह गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरै ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

---

हमिति—ह=खेदे ! विपरीत =विरुद्ध, पापराक्षस =पाप पापयुक्त चासौ राक्षस निशिचर, रावण इत्यर्थ ।

अन्वय —सेन्द्रादय देवा दानवा च मया रणे भग्ना । स अहम् अद्य सीताया त्रिभि अक्षरै मोह गत अस्मि।

देवा इति—सेन्द्रादय =इन्द्रादिभि सह, देवा =सुरा, दानवा = दैत्याश्च, मया=रावणेन, रणे=युद्धे, भग्ना =पराजिता, स =प्रसिद्ध, अह=रावण, अद्य=अस्मिन्दिवसे, सीताया =जानक्या, त्रिभि = त्रिसङ्ख्यकै, अक्षरै =वर्णै, 'शप्तोसि' इत्यात्मकै, मोह=मुग्धताम्, गत = प्राप्त, अस्मि। अनुष्टुप्छन्द ।

---

सीता—ओह ! धर्म भी बडा उल्टा है, जो पापी राक्षस (अभी) जी रहा है।

रावण—हे देवि !

सीता—(मेरे द्वारा) शाप दे दिये जाओगे।

रावण—ओह ! पतिव्रता का तेज (आश्चर्यजनक) है।

सम्पूर्ण इन्द्र इत्यादि देवता तथा राक्षस मेरे द्वारा युद्ध मे पराजित कर दिये गये, वही मैं आज सीता के (शप्तोऽसि—इन) तीन अक्षरो के द्वारा मुग्ध हो रहा हूँ।

[नेपथ्य मे]

जयतु देव । जयतु लङ्केश्वर । जयतु स्वामी । जयतु महाराज दश नाडिका पूर्णा । अतिक्रामति स्नानवेला । इत इतो महाराज ।

(निष्क्रान्तो सपरिवारो रावण)

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावण, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रिय । अयं कालो देवीमुपसर्पितुम् । (कोटरादवरुह्य) जयत्वविधवा ।

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना ।
त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

---

जयत्विति—लङ्केश्वर =लङ्केश रावण नाडिका=घटिका, पूर्णा = समाप्ता, स्नानवेला=स्नानसमय, अतिक्रामति=अत्येति ।

हन्तेति—हन्त=खेदे । निर्गत =निर्यात सुप्ता =शयिता, राक्षसस्त्रिय =राक्षसानामसुराणा स्त्रिय नार्य, अयम्=एष, काल —समय, देवी=सीताम्, उपसर्पितु =उपयातुम् अविधवा=सौभाग्यवती ।

अन्वय —विदितात्मना त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा नरेन्द्रेण रामेण अहं प्रेषित ।

प्रेषित इति—विदितात्मना=ज्ञातधृति, त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा=त्वयि सीताया गत स्थित य स्नेह प्रणय तस्मात् य सन्ताप, दु ख तेन विक्लवीकृत विह्वलीकृत चेत मन यस्य तेन, नरेन्द्रेण=राज्ञा रामेण=राघवेण प्रेषित अस्मि=प्रहित अस्मि । अनुष्टुपछन्द ।

---

देव विजयी होवें, लङ्केश्वर विजयी होवें, स्वामी विजयी होवें, महाराज विजयी होवें । दस बज गया । स्नान का समय बीत रहा है । महाराज इधर, इधर से (चलिए) ।

( सपरिवार रावण निकल जाता है )

हनुमान्—अरे । रावण निकल गया और राक्षसों की स्त्रियाँ सो गयी । देवी (सीता) के समीप चलने का यह (उचित) समय है । (कोटर से उतर कर) सुहागिनी (आप) की जय हो ।

आप (सीता) के स्नेह के सन्ताप से व्याकुल हृदय वाले आत्मज्ञ राजा राम के द्वारा मैं भेजा गया हूँ ।

घटोत्कचः—अथ किम् । राहुरेव ।

भीम.—आ —

निवृत्तव्यवहारोऽस्य सदारस्तनयैः सह ।
सर्वापराधेऽवध्यत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तमः ॥ ३४ ॥

---

कीर्णस्य व्याप्तस्य, पत्नीकान्तप्रभस्य च=पत्नी कान्तप्रभेव मनोहरा ज्योत्स्नेव यस्य तस्य; वृद्धस्य-स्थविरस्य, विप्रचन्द्रस्य=विप्रश्चन्द्र इव विप्रचन्द्र तस्य ब्राह्मणेन्दो, राहुरिव[1]=चन्द्रग्रसनशीला ग्रह इव, 'तमस्तु राहु स्वर्भानु. सैंहिकेयो विधुन्तुद ' इत्यमर । उत्थितः=आगतः । सावयवोपमालङ्कार. । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३३ ॥

[ भीम वृद्ध ब्राह्मण की स्थिति इस प्रकार प्रकट करते है ]—

अन्वय—पुत्र-नक्षत्र-कीर्णस्य, च, पत्नीकान्त प्रभस्य, वृद्धस्य, विप्र-चन्द्रस्य, भवान्, राहु , इव, उत्थित. ॥ ३३ ॥

पदार्थ—पुत्र-नक्षत्र कीर्णस्य=नक्षत्र के समान पुत्रो से, च=और; पत्नी-कान्त-प्रभस्य=मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी से परिवृत, वृद्धस्य= वृद्ध रूपी इस, विप्र-चन्द्रस्य=ब्राह्मण चन्द्र के लिए; भवान्=आप, राहु· इव=राहु के समान; [ किं ] उत्थित =[ ग्रसने को क्यो ] उद्यत हैं ॥३३॥

भीम घटोत्कच वारयति–निवृत्तेत्यादिना । निवृत्तव्यवहार.=व्यवहाराद् निवृत्त· ( प० तत्पु० ), राजदन्तादित्वाद् साधु, कार्यकारित्वशक्तिक्षयाद् अपगतः व्यवहार ऐहिकव्यापारो यस्य स·, सर्वापराधे अवध्यत्वात्= सर्वविधापराधप्रयोगेऽपि वधानर्हत्वाद्, यथाह मनु —

---

नक्षत्र के समान पुत्रो से घिरे हुए और मनोहर ज्योत्स्ना के समान पत्नी से परिवृत वृद्धरूपी इस विप्र-चन्द्र के लिए आप राहु के समान [ ग्रसने को क्यों ] उद्यत हैं ? ॥ ३३ ॥

घटोत्कच—और क्या ? [ मैं राहु के समान नही किन्तु ] राहु ही हूँ ।

भीम—आह,

---

१. ( i ) तु० 'राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते'–दूत० ७ ।
( ii ) 'किं द्रष्टव्य शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले' बालचरित १.११ ।
( iii ) 'आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखम्' मालती ९.३९।

घटोत्कच.—न मुच्यते ।

भीम —(आत्मगतम्) भोः ! कस्य पुत्रेणानेन भवितव्यम् ।

भ्रातॄणां मम सर्वेषां कोऽयं भो ! गुणतस्कर. ।
दृष्ट्वैतद् बालशौण्डीर्यं सौभद्रस्य स्मराम्यहम् ॥ ३५ ॥

'न जातु ब्राह्मण हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।' ( ८. ३८० ) सदार.= सपत्नीक , तनयैः=पुत्रै सह, अयम्=पुरोऽस्यमान., द्विजसत्तमः=द्विजेषु विप्रेषु सत्तम अतिप्रशस्त. ब्राह्मणश्रेष्ठ, मुच्यताम्=परित्यज्यताम् । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३४ ॥

[ घटोत्कच के यह कहने पर कि 'हाँ' मैं राहु ही हूँ''' भीम उसे इस प्रकार समझाते हैं ]—

अन्वय—निवृत्त-व्यवहारः, सर्वापराधे, अवध्यत्वात्, सदार , तनयैः , सह, अयम्, द्विजसत्तम, मुच्यताम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ—निवृत्तव्यवहार =[ वृद्ध होने के कारण ] सांसारिक कार्यों से जो निवृत्त हो चुका है, सर्वापराधे=दोषों का समुदाय भी विद्यमान होने पर; अवध्यत्वात्=ब्राह्मण अवध्य होने से, सदार =स्त्री के सहित; तनयैः =पुत्रों के साथ, अयम्=इस; द्विजसत्तम =ब्राह्मणश्रेष्ठ को; मुच्यताम्=छोड दो ॥ ३४ ॥

विमर्श—मनु के अनुसार बहुत पापी भी होने पर ब्राह्मण अवध्य है। उनके मत से उसे दूसरे देश मे छोड देना चाहिए । ( मनु० ८ ३८० ) ।

मया वारितोऽपि अयमेव दृढमकल्प इति कस्यचित् पाण्डवस्यैव पुत्र इत्याशङ्क्य भीमस्य स्वगतोक्ति.—भ्रातॄणामित्यादिना । भोः इति विस्मये । मम=भीमस्य; सर्वेषां भ्रातॄणाम्=युधिष्ठिरादीना सर्वेषा बान्धवानाम्, गुणतस्करः=गुणचोर , गुणानुकारीत्यर्थ , अयम्=पुरोवर्ती पुरुष , कः=कोऽसावित्यर्थ । अहम्, एतद्बालशौण्डीर्यम्=एतस्य सन्निहितस्य बालस्य शौण्डीर्यम् औद्धत्य दृष्ट्वा, सौभद्रस्य=कृष्णभगिन्या सुभद्राया अपत्यं पुमान्

दोषों का सकुल विद्यमान रहने पर भी ब्राह्मण के अवध्य होने से, स्त्री व पुत्रों के सहित इस ब्राह्मणश्रेष्ठ को छोड दो ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—मैं नहीं छोडता ।

भीम—( मन ही मन ) ओह, यह किसका पुत्र हो सकता है ?

( प्रकाशम् ) भोः पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कचः—न मुच्यते ।

मुच्यतामिति विस्रब्धं ब्रवीति यदि मे पिता ।
न मुच्यते तथा ह्येष गृहीतो मातुराज्ञया ॥ ३६ ॥

---

सौभद्रस्तस्य अर्जुनपुत्रस्य अभिमन्यो , स्मरामि = स्मरण करोमि । 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' (पा० सू० २ ३ ५२) इत्यनेन शेषत्वविवक्षया कर्मणि षष्ठी । अस्य गर्वोक्ति अभिमन्युसदृश इति भाव । स्मरणालङ्कार । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

[ घटोत्कच का औद्धत्य देखकर भीम अपनी सम्भावना इस प्रकार प्रकट करते हैं—]

अन्वय—भो !, मम, सर्वेषा, भ्रातृणाम्, गुण-तस्कर , अयम्, क ? एतद् बाल-शौण्डीर्यम्, दृष्ट्वा, अहम्, सौभद्रस्य, स्मरामि ॥ ३५ ॥

पदार्थ—भो !, मम = अरे ! मेरे, सर्वेषाम् = सभी, भ्रातृणाम् = भाइयो के; गुण तस्कर = गुणो को चुराने वाला अयम्-यह, क = कौन है ? एतद् = इसके, बालशौण्डीर्यम् = बालकोचित औद्धत्य को, दृष्ट्वा = देखकर, अहम् = मुझे, सौभद्रस्य-सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का; स्मरामि-स्मरण आ रहा है ॥३५॥

घटोत्कच आत्मन औद्धत्य प्रदर्शयन्नाह—मुच्यतामित्यादिना । मे = मम घटोत्कचस्य, पिता-जनक , अपि, यदि = चेत्, विस्रब्धम्-विश्वासयुक्त यथा भवति तथा, मुच्यताम् = परित्यज्यताम्, इति ब्रवीति = इत्य वदति, तथापि, न मुच्यते = मया न परित्यज्यते । तथा हि = यत , एष -ब्राह्मणपुत्र. मातु. आज्ञया-जनन्या निदेशात्; गृहीत -मया परिगृहीत । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥३६॥

अन्वय—यदि मे पिता 'विश्रब्ध मुच्यताम्' इति ब्रवीति, तथा न मुच्यते । हि, एष , मातु , आज्ञया, गृहीत ॥ ३६ ॥

---

अर मेरे सभी भाइयो के गुणो को चुराने वाला यह कौन है ? इसके बालोचित औद्धत्य को देखकर मुझे सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का स्मरण आ रहा है ॥३५॥

( प्रकट ) हे पुरुष, छोड दो ।

घटोत्कच—मैं नही छोडता ।

यदि मेरे पिता भी विश्वस्त रूप से 'छोड दो'-ऐसा कहें, फिर भी मैं नही छोडूँगा, क्योकि यह [मध्यम पुत्र मेरी] माता की आज्ञा से गृहीत है ॥ ३६ ॥

भीम —( सहर्षमात्मगतम् ) एवम्, हिडिम्बाया. पुत्रोऽयम् । सदृशो ह्यस्य गर्वः ।

रूपं सत्त्वं बलं चैव पितृभि सदृशं बहु ।
प्रजासु वीतकारुण्यं मनश्चैवास्य कीदृशम् ॥ ३९ ॥

( प्रकाशम् ) भो पुरुष ! मुच्यताम् ।

घटोत्कच —न मुच्यते ।

भीम —भो ब्राह्मण ! गृह्यतां तव पुत्रः । वयमेनमनुगमिष्यामः ।

द्वितीय —मा मा भवानेवम् ।

---

पाण्डवकुलोत्पन्नोऽपि घटोत्कच कथमेव निर्दय इत्याह भीमसेन —रूपमित्यादिना । अस्य=घटोत्कचस्य, रूपम्=आकृति ; सत्त्वम्=पराक्रम ; बलम्=सामर्थ्यम्, पितृभि =युधिष्ठिरादिभि जनकैं ; बहु=अत्यर्थम्; सदृशम्=तुल्यम्, किन्तु, प्रजासु=प्रजाजनेषु, वीतकारुण्यम्=निर्दयम्, वीत विगत कारुण्य यस्मात् ( बहु० ) तत्, मनः=चित्तम्, कीदृशम्=कथम् ? अस्य मन कुत्सित न तु पितृसदृशमित्यर्थं । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

[ घटोत्कच के विषय मे भीम मन मे यह सोचता है कि ]—

अन्वय—अस्य, रूपम्, सत्त्वम्, च, बलम्, बहु, पितृभि , एव, सदृशम्, [ किन्तु ] प्रजासु, वीतकारुण्यम्, मन कीदृशम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ —अस्य=इस [ लडके ] का, रूपम्, सत्त्वम्=रूप, पराक्रम, च बलम्=और शक्ति, बहु=सभी कुछ; पितृभि , एव=माता पिता के ही; सदृशम्=तुल्य है [ किन्तु ], प्रजासु=प्राणियो के प्रति; वीत-कारुण्यम्=दयाविहीन, मन =हृदय वाला, कीदृशम् [ जातम् ] कैसे हो गया ॥ ३९ ॥

---

भीम—( प्रसन्नता के साथ मन ही मन ) तो यह हिडिम्बा का पुत्र है । तब तो इसका गर्व अनुरूप ही है । क्योकि—

इसका रूप, पराक्रम और शक्ति सभी कुछ माता-पिता के ही सदृश है (किन्तु) प्राणियो के प्रति दयाविहीन हृदय वाला यह कैसे हो गया ? ॥ ३९ ॥

( प्रकट ) हे पुरुष, छोड दो ।

घटोत्कच—मैं नही छोडता ।

भीम—हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को ग्रहण करो । मैं ही इसका अनुगमन करूँगा ।

द्वितीय ( पुत्र )—नही, नही, आप ऐसा न करें ।

त्यक्ता प्रागेव मे प्राणा गुरुप्राणेष्वपेक्षया ।
युवा रूपगुणोपेतो भवांस्तिष्ठतु भूतले ॥ ४० ॥

भीम—आर्य ! मा मैवम् । क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम् । पूज्यतम खलु ब्राह्मण । तस्मान्मच्छरीरेण ब्राह्मणशरीरं विनिमातुमिच्छामि ।

घटोत्कच—[ आत्मगतम् ] एवम्, क्षत्रियोऽयम् । तेन गर्व । भवतु, इममेव हत्वा नेष्यामि । [ प्रकाशम् ] अथ केनाय वारितः ?

भीमः—मया ।

---

द्विजस्य मध्यम पुत्र भीम वारयन्नाह—त्यक्ता इत्यादिना । गुरुप्राणेषु=पूज्यानां जीवनेषु, अपेक्षया, मे=मम, प्राणाः=असव , प्रागेव=पूर्वमेव, त्यक्ताः=विमुक्ता , [ अत ] युवा=तरुण , भवान्-भीम , रूपगुणोपेत—रूपेण सौन्दर्येण तथा दयादिना गुणेन उपत युक्त , भूतले-पृथिव्याम्, तिष्ठतु=दीर्घकाल यावत् प्राणैर्युक्तोऽवतिष्ठतु । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वय—गुरु प्राणेषु, अपेक्षया, मे, प्राणा , प्राक्, एव त्यक्ता । [ अत ] युवा, भवान्, रूप गुणोपेत , भूतले, तिष्ठतु ॥ ४० ॥

पदार्थ—गुरु प्राणेषु=गुरुओ के प्राणो की, अपेक्षया=अपक्षा से, मे, प्राणा =अपने प्राणो का; प्राक् एव=पहले ही से, त्यक्ता.=मैंन त्याग किया है । [ अत ] युवा भवान्=युवक आप, रूप-गुणोपेत =रूप और गुण से युक्त होकर, भूतले=पृथ्वी पर, तिष्ठतु=रहे ॥ ४० ॥

---

गुरु जनो के प्राणो के बदले म अपने प्राणो का पहले से ही मैंने त्याग किया है । अत रूप एव गुणो से सम्पन्न युवा आप पृथ्वी पर रहे ॥ ४० ॥

भीम—आर्य, ऐसा न कहे । मैं क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हूँ और ब्राह्मण तो सबसे पूज्य होते हैं । अत मैं अपने ही शरीर से ब्राह्मण शरीर को बदलने का इच्छुक हूँ ।

घटोत्कच—( मन ही मन ) तो यह क्षत्रिय है । इसीलिए इसे इतना दम्भ है । ठीक है, मैं इसी को मारकर ले जाऊँगा । ( प्रकट ) तो यह किसके द्वारा रोका गया है ?

भीम—मेरे द्वारा ।

घटोत्कचः—किं त्वया ?

भीमः—अथ किम् ।

घटोत्कच —तेन हि भवानेवागच्छतु ।

भीम —एवम्, अतिवीर्यबल नानुगच्छामि। यदि ते शक्तिरस्ति, बलात्कारेण मा नय ।

घटोत्कचः—किं मा प्रत्यभिजानीते भवान् ?

भीमः—मत्पुत्र इति जाने ।

घटोत्कच —कथ कथ तव पुत्रोऽहम् ?

भीमः—कथं रुष्यति, मर्षयतु, मर्षयतु भवान्। सर्वा प्रजा क्षत्रियाणा पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते । अत एव मयाभिहितम् ।

घटोत्कचः—भीतानामायुध गृहीतम् ।

भीम.—

---

भीतानाम् आयुधम्=मयणायाुरोधोऽय भावमेव सूचयति । अत एव भयार्तानां पन्था ।

भीम सगर्व मयस्य स्वरूप पृच्छति—शपामीत्यादिना । हे भद्र=हे सौम्य, अहं भीम , सत्येन, शपामि=शपथ करोमि, भयम्[1]=मयनामक

---

घटोत्कच—क्या, तुम्हारे द्वारा ?

भीम—और क्या ?

घटोत्कच—तो आप ही चलिए ।

भीम—ऐसा, बलिष्ठ और पराक्रमी मैं इस प्रकार अनुगमन नहीं करूँगा। यदि तुम्हारे पास शक्ति हो तो मुझे बलपूर्वक ले चलो ।

घटोत्कच—आप नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ?

भीम—हाँ, मैं जानता हूँ कि 'तुम मेरे बेटे हो ।'

घटोत्कच—कैसे, मैं आपका पुत्र कैसे ?

भीम—क्यों रुष्ट होते हैं ? हमें क्षमा करें, क्षमा करें, क्योंकि सारी प्रजा क्षत्रियों द्वारा 'पुत्र' शब्द से ही अभिहित होती है। इसीलिए मेरे द्वारा ऐसा कहा गया ।

घटोत्कच—आपने तो डरपोक लोगों का आयुध ग्रहण कर लिया ।

---

१. तु० 'किमेतद् भो भय नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम्'—बाल० ३ ८ ।

शपामि सत्येन भयं न जाने
ज्ञातुं तदिच्छामि भवत्समीपे ।
किंरूपमेतद् वद भद्र ! तस्य
गुणागुणज्ञः सदृशं प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

घटोत्कचः—एष ते भयमुपदिशामि, गृह्यतामायुधम् ।
भीम.—आयुधमिति । गृहीतमेतत् ।
घटोत्कच·—कथमिव ।

---

पदार्थ, न जाने=कीदृग् तदिति न जानामि। तद्=भयम्, भवत्समीपे=त्वदन्तिके, ज्ञातुम्=अवगन्तुम्, इच्छामि=गच्छामि, एतद्=भयस्य, किं रूपम्—किमाकारं च, वद=ब्रूहि, हि, तस्य=भयस्य, गुणागुणज्ञः=गुणदोषाभिज्ञ, भूत्वा, सदृशम्=तदनुरूपम्, प्रपत्स्ये=करिष्यामि। उपजाति वृत्तम् ॥ ४१ ॥

[घटोत्कच के व्यवसाय को जानने की इच्छा से भीम इस प्रकार पूछते हैं]—

अन्वय—हे भद्र !, [ अहम् ], सत्येन, शपामि, [ यत् ], भयम् न जाने, तत्, ज्ञातुम्, भवत्, समीपे, इच्छामि। एतत् रूपम्, किम् ? वद। तस्य, गुणागुणज्ञ, सदृशम्, प्रपत्स्ये ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे भद्र=हे सौम्य !' [अहम्=मैं] सत्येन=सचमुच, शपामि=शपथ खाता हूँ। [ यत्=कि ], भयम्=भय को न जाने=मैं नहीं जानता हूँ। तत्=उसीको, ज्ञातुम्=जानने के लिए, भवत् समीपे=आप के समीप; इच्छामि=इच्छा कर रहा हूँ। एतत्=इसका; रूपम्=रूप, किम्=क्या है ? वद=कहो, तस्य=उसके, गुणागुणज्ञ=गुणों और अवगुणों को जानने के बाद; सदृशम्, प्रपत्स्ये=जैसा होगा वैसा करेंगे ॥ ४१ ॥

---

भीम—हे सौम्य, मैं सचमुच शपथ खाता हूँ कि भय को मैं नहीं जानता। अत आपके समीप उसी को जानने के लिए इच्छुक हूँ। इसका रूप क्या है ? कहो। उसके गुणों और अवगुणों को जानने के बाद जैसा होगा वैसा करेंगे ॥४१॥

घटोत्कच—ठीक है, मैं बताता हूँ कि 'डर क्या है।' अपना आयुध ले लो।

भीम—आयुध ? लो यह ले लिया।

घटोत्कच—किस तरह ?

भीमः—

काञ्चनस्तम्भसदृशो रिपूणां निग्रहे रतः।
अयं तु दक्षिणो बाहुरायुधं सदृशं मम॥ ४२॥

घटोत्कचः—इदमुपपन्नं पितुर्मे भीमसेनस्य।

भीम.—अथ कोऽयं भीमो नाम?

---

कथमहं सायुध इति भीमसेन कथयति–काञ्चनेत्यादिना। रिपूणाम् = शत्रूणाम्, निग्रहे = दमने, रत =संलग्न, काञ्चन-स्तम्भसदृश =स्वर्णस्तम्भ-तुल्य, काञ्चनस्य सुवर्णस्य स्तम्भ तेन सदृश, अयम् = शरीरवर्ती, दक्षिण = वामेतर, बाहु =भुज, मम–भीमसेनस्य, सहजम्[1] = सहजात स्वाभाविकम्; आयुधम्=शस्त्रम्। अत आयुधस्यान्यस्य न आवश्यकता—इति भाव। उपमा-लङ्कार। अनुष्टुप् वृत्तम्॥ ४२॥

[ अन्य अस्त्रों को अनावश्यक समझते हुए भीम अपने हाथ को ही शस्त्र रूप में बताते हैं ]—

अन्वय—काञ्चनस्तम्भ सदृश, रिपूणा, निग्रहे, रत, अयम्, दक्षिण बाहु, मम, सहजम्, आयुधम् [ अस्ति ]॥ ४२॥

पदार्थ—काञ्चन स्तम्भ सदृश = सुवर्ण के खम्भे के समान, रिपूणाम् = शत्रुओं का, निग्रहे = दमन करने मे, रत =संलग्न, अयम् = यह, दक्षिण बाहु = दाहिना हाथ, मम = मेरा, सहजम् = स्वाभाविक, आयुधम् = शस्त्र, [अस्ति = है ]॥ ४२॥

---

भीम—स्वर्ण स्तम्भ के समान शत्रुओं का दमन करने मे संलग्न यह दाहिना हाथ ही मेरा स्वाभाविक शस्त्र है॥ ४२॥

घटोत्कच—यह तो मेरे पिता भीमसेन के लिए सम्भव है।

भीम—तो, तो यह 'भीम' कौन है?

---

१ तु० (i) 'सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ'—पञ्चरात्र २ २५।
(ii) 'गिरितटकठिनांसौ एव बाहू ममैतौ प्रहरणमपरं तु त्वादृशां [दुर्बलानाम्]'—बाल० ३ ११।
(iii) 'आर्यक भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्रं बाहुर्भविष्यति'—मृच्छ० २ १७।

विश्वकर्ता शिवः कृष्णः शक्रः शक्तिधरो यमः।
एतेषु कथ्यतां भद्र ! केन ते सदृशः पिता ॥ ४३ ॥

घटोत्कचः—सर्वैः।

भीमः—धिगनृतमेतत्।

घटोत्कचः—कथम् ? कथम् अनृतमित्याह। क्षिपसि मे गुरुम्।

---

कोशः—रिपूणाम्—'रिपौ वैरिसपत्नारि द्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' अमरकोषः।
'कोऽयं भीमो नाम' इति पृच्छति भीमसेनः—विश्वेत्यादिना। विश्वकर्ता—ब्रह्मा, विश्वस्य जगतः कर्ता निर्मातेति भावः। शिवः—महेश्वरः, कृष्णः—विष्णुः, कर्षति जनेभ्यः दुःखान् यः सः कृष्णः, 'विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः' इत्यमरः। शक्रः—इन्द्रः, 'जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः' इत्यमरः। शक्तिधरः—स्कन्दः 'धरतीति'धरः भवते, धरः कुमारः, षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः' इत्यमरः। यमः—कृतान्तः, 'कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड् यमः' इत्यमरः। एतेषु—देवविशेषेषु मध्ये, ते—तव, पिता—जनकः, केन—देवेन, सदृशः—तुल्यः, अस्ति इति शेषः, भद्र—हे सौम्य, कथ्यताम्—उच्यताम् एष्वन्यतमेन सदृशप्रभावशाली यदि यः कोऽपि स्यात् तमहं वीरं गणयेयम्, न तु ततो हीनगुणमिति भावः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥४३॥

अन्वयः—विश्वकर्ता, शिवः, कृष्णः, शक्रः, शक्तिधरः, यमः—हे भद्र ! कथ्यताम् एतेषु ते पिता केन सदृशः ? ॥ ४३ ॥

पदार्थ—विश्वकर्ता=जगत् के रचयिता ( ब्रह्मा ), शिवः=भगवान् शङ्कर, कृष्णः=विष्णु, शक्रः=इन्द्र, शक्तिधरः=कुमार कार्तिकेय, यमः=यमराज, एतेषु=इन (देवताओं) के बीच, हे भद्र !=हे सौम्य, कथ्यताम्=कहो, ते पिता=तुम्हारे पिता केन सदृशः=किसके सदृश, वर्तते—हैं ॥ ४३ ॥

सर्वैः=पूर्वोक्तैः षड्भिः। क्षिपसि=निन्दसि। प्रहरामि=ताडयामि, गिरिकूटम्=पर्वतशृङ्गम् ॥

---

जगत् के कर्ता ब्रह्मा, भगवान् शङ्कर, विष्णु, इन्द्र, कुमार कार्तिकेय व यमराज—इन देवों के मध्य, हे सौम्य, कहो तुम्हारे पिता किसके सदृश हैं ?

घटोत्कच—सभी के समान हैं।

भीम—ओह, झूठ, यह बिलकुल झूठ है।

घटोत्कच—कैसे, यह कथन झूठ कैसे है ?

भवतु, इमं स्थूलं वृक्षमुत्पाट्य प्रहरामि। ( उत्पाटय - प्रहरति ) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। एतद् गिरिकूटमुत्पाट्य प्रहरामि।

शैलकूटं मयाक्षिप्तं प्राणानादाय यास्यति।

भीमः—

रुष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेत् वने ॥ ४४ ॥

घटोत्कचः—( प्रहृत्य ) कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्।

---

मया=घटोत्कचेन, आक्षिप्तम्=प्रक्षिप्तम्, शैलकूटम्=गिरिशिखरम्; अस्य, प्राणान्=असून्, आदाय=गृहीत्वा; यास्यति=गमिष्यति। वने=अरण्ये; वन्य.=वने भव वन्य, रुष्ट अपि=कुपितोऽपि, कुञ्जरः=गज, व्याघ्रम्=शार्दूलम्; न धर्षयेत्[1]=न परिभवेत्। लोकोक्त्यलङ्कार। तल्लक्षण तु–'लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते।' अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वय—मया, आक्षिप्तम्, [ इदम् ] शैलकूटम्, [ तव ] प्राणान्, आदाय, [एव] यास्यति। रुष्ट, अपि, वन्य, कुञ्जर, वने, व्याघ्रम्, न धर्षयेत् ॥४४॥

पदार्थ—मया=मेरे द्वारा; आक्षिप्तम्=फेंका गया, [ इदम् ] शैलकूटम्=यह पर्वत-शिखर, [तव] प्राणान्=तुम्हारे प्राण, आदाय [एव]=लेकर ( ही ), यास्यति=जायगा। रुष्ट अपि=क्रुद्ध होकर भी, वन्य=जङ्गली, कुञ्जर=हाथी, वने=जङ्गल मे; व्याघ्रम्=सिंह को, न धर्षयेत्=भर्त्सना नहीं करता है ॥४४॥

---

तो तुम हमारे पूज्य की निन्दा करते हो। अच्छा तो इस विशाल वृक्ष को उखाड कर प्रहार करूँ। ( उखाड कर प्रहार करता है ) कैसे ? मैं तो इससे भी इसे नहीं मार सकता। तो क्या किया जाय। अच्छा, समझा। इस पहाड की शिखर को ही उखाड कर प्रहार करूँ।

मेरे द्वारा फेंका गया यह पर्वत-शिखर [अब] तुम्हारे प्राण लेकर ही जायगा।

भीम—किन्तु,

क्रुद्ध होकर भी जङ्गली हाथी जङ्गल मे सिंह का धर्षण नहीं करता ॥४४॥

घटोत्कच—( प्रहार करके ) कैसे ? मैं तो इससे भी इसे मारने मे समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ ? अच्छा, समझा।

---

१. तु० 'न व्याघ्र मृगशिशव. प्रधर्षयन्ति–'प्रतिमा० ५.१८।

गंज इव दृढपाशैः पीडितो मद्भुजाभ्याम् ।

भीम —( आत्मगतम् ) कथं गृहीतोऽस्म्यनेन । भो सुयोधन ! वर्धते खलु शत्रुपक्षः । कृतरक्षो भव । ( प्रकाशम् ) भो पुरुष ! अवहितो भव ।

घटोत्कच —अवहितोऽस्मि ।

भीमः—( नियुद्धबन्धमवधूय )

व्यपनय बलदर्पं दृष्टसारोऽसि वीर !

---

उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य, मद्भुजाभ्याम्=मम वाहुभ्याम्, पाडित =दृढ बद्ध ; दृढपाशैः=दृढरज्जुभि बद्ध , गज इव=हस्तीव, कथम्=केन प्रकारेण, व्रजसि=गच्छसि, मम भुजपाशमुल्लङ्घ्य कथमपि गन्तुं न शक्नोषीत्यर्थ. । 'गज इव दृढपाशैः' इत्युपमालङ्कारः ॥

वर्धते खलु=शत्रुपक्ष वृद्धि प्राप्नोति खलु, मत्सूनो शक्त्या सहायभूतया त्वत्पक्षादभ्यधिकबलो भवतीत्यर्थ । अवधूय=तिरस्कृत्य ॥

भीम स्वपरिश्रमलाघव प्रकाशयन्नाह—व्यपनयेत्यादिना । हे वीर=हे पराक्रमशालिन्, दृष्टसार =प्रत्यक्षीकृतबल , दृष्ट सारो यस्य स , 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमर । एवभूतस्त्वम्, असि । अत , बलदर्पम्=बलस्य विक्रमस्य दर्पं गर्वम् व्यपनय=परित्यज । हि=यत , बाहुयुद्धे=मल्लयुद्धे मुष्टियुद्धे वा, बाह्वो युद्ध तस्मिन्, मम=भीमसेनस्य, परिखेद =परिश्रम , न विद्यते=न वर्तते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

अन्वय—दृढपाशैः , गज, इव, मद्भुजाभ्याम्, पीडितः, बाह्वो. वीर्यम्, उल्लङ्घ्य, त्वम्, इह, कथम् व्रजसि ।

पदार्थ—दृढपाशै.=सुदृढ बन्धन मे बँधे हुए, गज इव=हाथी के समान; मद्भुजाभ्याम्=मेरी भुजाओं से, पीडित =बँधे हुए, बाह्वो =मेरी भुजाओ की, वीर्यम्=शक्ति का, उल्लङ्घ्य=उल्लङ्घन करके, त्वम् इह=तुम इस वन मे,

---

भीम—( मन ही मन ) इससे मैं कैसे पकड लिया गया ? ओ दुर्योधन तुम्हारा शत्रुपक्ष बढ रहा है । अब अपनी रक्षा के लिए सतर्क हो जाओ । ( प्रकट ) हे पुरुष, अपनी रक्षा मे तैयार हो जाओ ।

घटोत्कच—हाँ, मैं चौकस हूँ ।

भीम—( बाहुपाश को छुडाकर )—

न हि मम परिखेदो विद्यते बाहुयुद्धे ॥ ४६ ॥

घटोत्कचः—कथमनेनापि न शक्यते हन्तुम्। किन्नु खलु करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। अस्ति मातृप्रसादलब्धो मायापाशः। तेन बद्ध्वैनं नेष्यामि। कुतः खल्वापः। भो गिरे। आपस्तावत्। हन्त स्रवति। ( आचम्य मन्त्रं जपति ) भोः पुरुष !

मायापाशेन बद्धस्त्वं विवशो न गमिष्यसि।

---

कथम्=किस प्रकार; व्रजसि=जा सकते हो ?

अन्वय—हे वीर ! बल-दर्पम्, व्यपनय। दृष्ट-सार, असि; हि, बाहुयुद्धे मम, परिखेद, न, विद्यते ॥ ४६ ॥

पदार्थ—हे वीर !=हे पराक्रमी, बलदर्पम्=अपने बल का घमण्ड, व्यपनय=छोड दो, दृष्टसार असि=तुम्हारी शक्ति देख ली गई। हि=क्योंकि, बाहु-युद्धे=मल्लयुद्ध में, मम=मुझे, परिखेद =परिश्रम, न विद्यते=नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

कुतः खल्वाप [1] ? आपस्तावत् 'स्रवन्तु' इति शेष। स्रवति अर्थात् गिरिणाप्रदत्ता।

मायापाशस्य प्रभाव वर्णयति घटोत्कच —मायेत्यादिना। मायापाशेन—मायामय पाश मायापाश. तेन मायाया पाशेन अर्थात् ऐन्द्रजालिक-प्रयोगानुष्ठानेन बद्ध सन् त्वम् इदानीं, विवशः=परतन्त्र ; विगत वश स्वातन्त्र्य यस्य स ; न गमिष्यसि=अंग-चलनशक्ति-विरहात् यत्र तत्र गन्तुं न सक्षमो भविष्यसि; अत अधुना, उत्सवे—वर्षारम्भे अनुष्ठेयोत्सवे, शक्रध्वज इव=इन्द्र-

---

हे वीर, अपने बल का दम्भ छोड दो। तुम्हारी शक्ति देख ली गई है क्योंकि मल्लयुद्ध मे मुझे परिश्रम नही करना पडा ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—क्या मैं इससे भी इसे नही मार सकता। फिर क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया। मेरे पास तो माता के प्रसाद से प्राप्त एक माया-पाश भी है। उससे ही बाँधकर इसे ले जाऊँगा। किन्तु जल कहाँ से प्राप्त करें ? हे गिरि, मुझे जल दो। अहा, यह बहने लगा। ( आचमन करके मन्त्र जपता है ) हे पुरुष,—

माया पाश से बँधे हुए परतन्त्र तुम अब कहीं न जा सकोगे और

---

१. तु० पञ्चरात्र, दूतवाक्य, प्रतिज्ञा, अभिषेक, प्रतिमा।

राजसे रज्जुभिर्बद्धः शक्रध्वज इवोत्सवे ॥ ४७ ॥

( इति मायया बध्नाति )

भीमः—कथं मायापाशेन बद्धोऽस्मि । किमिदानीं करिष्ये । अस्ति महेश्वरप्रसादलब्धो मायापाशमोक्षो मन्त्रः । तं जपामि । कुतः खल्वापः ? भवतु, भो ब्राह्मणकुमार ! आनय कमण्डलुगता अपः ।

वृद्धः—इमा आपः ।

---

ध्वज इव, शक्रस्य इन्द्रस्य ध्वजः केतुः इव, रज्जुभिः बद्धः राजसे=शोभसे । परित्यक्तशक्तिविरहात् त्वं यष्टिरिव शोभसे इत्यर्थः इन्द्रध्वजो नाम वृष्ट्यर्थं राज्ञा पूज्य इन्द्रसम्बन्धी कोऽपि ध्वजो वेणुयष्टिमय । तदुक्तं यथा भविष्योत्तरपुराणे-

एवं यः कुरुते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर ।

पर्जन्यः कामवर्षी स्यात् तस्मिन् राष्ट्रे न संशयः ।

शक्रध्वज इवेत्युपमालङ्कारः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४७ ॥

अन्वय—मायापाशेन, बद्धः, विवशः, त्वम्, अनुगमिष्यसि । उत्सवे, रज्जुभिः, बद्धः, शक्रध्वज, इव, राजसे ॥ ४७ ॥

पदार्थ—मायापाशेन=इन्द्रजालिक बन्धन के द्वारा, बद्धः=बँधे हुए, विवशः=परतन्त्र होकर, त्वम्=तुम, अनुगमिष्यसि=मेरा अनुगमन करोगे । उत्सवे=सावत्सरिक उत्सव मे, रज्जुभिः=रस्सियो से, बद्धः=बँधे हुए, शक्रध्वज इव=इन्द्र की ध्वजा के समान, राजसे=शोभित होगे ॥ ४७ ॥

---

सावत्सरिक उत्सव मे रस्सियों से बँधे हुए इन्द्र की ध्वजा के समान शोभित होगे ॥ ४७ ॥

( इस प्रकार माया से बाँधता है )

भीम—अरे, क्या मैं मायापाश से बँध गया ? अब क्या करूँ ? अच्छा, समझ गया । मेरे पास तो भगवान् शङ्कर के प्रसाद से प्राप्त मायापाश से छुटकारे का मन्त्र है । उसको ही जपता हूँ । किन्तु जल कहाँ है ? ठीक है, हे ब्राह्मण कुमार, कमण्डलु का जल लाओ ।

वृद्ध—यह जल लीजिए ।

( भीम जल लेकर और आचमन करके मन्त्र जपकर माया को हटाते हैं )

( भीम आचम्य मन्त्रं जप्त्वा माया मोचयति )

घटोत्कचः—अये पतितः पाशः। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। भो पुरुष! पूर्वसमयं स्मर।

भीमः—समय इति। एष स्मरामि। गच्छाग्रतः।

( उभौ परिक्रामतः )

वृद्धः—पुत्रका! किं कुर्मः। अयं गच्छति वृकोदरः।

आक्रम्य राक्षसमिमं ज्वलदुग्ररूप-
मुग्रेण बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम्।

---

समयानुरोधात् अनुगच्छन्तो भीमसेनस्य पराक्रमं वृद्धो वर्णयति—आक्रम्येत्यादिना। ज्वलदुग्ररूपम्=प्रज्वलितभयङ्कररूपम्; ज्वलत् उग्रं भयङ्करं रूपं स्वरूपं यस्य तम्, उग्रेण=घोरेण, बाहुबलवीर्यगुणेन युक्तम्=भुजबल-पराक्रमगुणेन सहितम्, इमम्=पुरो दृश्यमानम्, राक्षसम्=घटोत्कचम्; आक्रम्य=अभिभूय, एषः=भीमसेन, शनकैः=मन्दं मन्दम्, सलीलम्=लीलया सहितम्, शीघ्रम्=वेगपाति, आसारवर्षम्=धारासम्पातवृष्टिम्, 'धारासम्पात आसारः' इत्यमरः। अवधूय=तिरस्कृत्य, गोवृषभ इव=गोषु वृषभः महोक्ष इव, वृषश्रेष्ठो वा, प्रयाति=गच्छति। यथा गोवृषभः धारासम्पातवृष्टिं तिरस्कृत्य स्वेच्छया सलीलं गच्छति, तथायं भीमसेनोऽपि राक्षसबाधाम् अवधूय विस्रब्धम् अनुसरतीत्यर्थः। गोवृषभ इवेत्युपमालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्॥

[भीम के जाने पर खेद युक्त वृद्ध अपनी व्यथा इस प्रकार प्रकट करता है–]

अन्वय—ज्वलदुग्ररूपम्, उग्रेण, बाहु-बल-वीर्य गुणेन, युक्तम्, इमम्, राक्षसम्, आक्रम्य, एषः, शनकैः, असार वर्षम्, शीघ्रम्, अवधूय, गोवृषभ, इव, सलीलम्, प्रयाति॥ ४८॥

पदार्थ—ज्वलद् उग्र-रूपम्=प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, उग्रेण=अत्यन्त

---

घटोत्कच—अरे, यह पाश तो छूट गया। अब क्या करूँ? अच्छा, समझ गया। हे पुरुष, पहले की हुई शर्त का स्मरण करो।

भीम—शपथ? अच्छा, मैं स्मरण करता हूँ। ठीक है, आगे चलो।

( दोनों जाते हैं )

वृद्ध—हे पुत्रो! हम लोग क्या करें? यह भीमसेन तो जा रहे हैं। प्रदीप्त और उग्र रूप वाले, अत्यन्त प्रचण्ड, भुजाओं के बल एवं शौर्य से

एष प्रयाति शनकैरवधूय शीघ्र-
मासारवर्षमिव गोवृषभः सलीलः ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—इह तिष्ठ । त्वदागमनमम्बायै निवेदयामि ।
भीमः—बाढम् । गच्छ ।
घटोत्कचः—( उपसृत्य ) अम्ब, अभिवादये घटोत्कचोऽहम् । चिराभिलषितो भवत्या आहारार्थमानीतो मानुष ।
( प्रविश्य )
हिडिम्बा—जाद ! चिर जीव । कीदिसो माणुसो आणीदो । [ जात चिरं जीव । कीदृशो मानुष आनीतः ] ?
घटोत्कचः—भवति ! वाङ्मात्रेण मानुषो, न वीर्येण ।

---

प्रचण्ड, बाहु बल-वीर्य गुणेन=भुजाओं के बल एवं शौर्य से, युक्तम्=युक्त, इमम्=इस; राक्षसम्=राक्षस को, आक्रम्य=हराकर, एष=यह [भीम], शनकै=धीरे-धीरे; सलीलम्=लीला के सहित, शीघ्रम्=वेग से गिरने वाली, आसारवर्षम्=मूसलाधार वृष्टि को, अवधूय=तिरस्कृत करके, गोवृषभ इव=वृषभ के समान प्रयाति=जा रहे हैं ॥ ४८ ॥

घटोत्कचोऽहम्=घटोह ( घट+ऊहम् ) घटवद् वितर्क्यम् अस्य—तदुप लक्षित शिर यस्य स घटोहास्य; स चासौ उत्कचश्च । रूपमात्रेण मानुष—आकृत्या एव मानव, न वीर्येण=न पराक्रमेण । अत्र काकूत्या घटोत्कच भीमसेनस्य निन्दा करोति । 'वाङ्मात्रेण' इति पाठान्तरे जात्यभिलापकशब्दमात्रेणेत्यर्थं इति गणपतिशास्त्रिणा व्याख्यातम् ।

---

युक्त इस राक्षस को अभिभूत करके यह [भीम] धीरे-धीरे उसी प्रकार लीला-सहित जा रहे हैं जैसे वेग से गिरने वाली मूसलाधार वृष्टि की परवाह न करके श्रेष्ठ वृषभ जाता है ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—यहीं रुको । मैं तुम्हारे आगमन की सूचना माता को दे दूँ ।
भीम—ठीक है, जाओ ।
घटोत्कच—( समीप जाकर ) माँ, यह मैं घटोत्कच प्रणाम करता हूँ । बहुत दिनों से आप द्वारा अभिलषित मनुष्य आपके आहार के लिये लाया हूँ ।
( हिडिम्बा का प्रवेश )
हिडिम्बा—पुत्र, चिरञ्जीवी होओ । किस प्रकार का मनुष्य लाये हो ?
घटोत्कच—वह कहने का ही मनुष्य है, बल से नहीं ।

हिडिम्बा—किं वह्मणो। [ किं ब्राह्मणः ]।

घटोत्कच —न ब्राह्मण ।

हिडिम्बा—आदु थेरो। [ अथवा स्थविरः ]।

घटोत्कच.—न वृद्ध ।

हिडिम्बा—किं वालो। [ किं बालः ]।

घटोत्कच —न बाल ।

हिडिम्बा—जइ एव्व पेक्खामि दाव णं। [ यद्येव पश्यामि तावदेनम् ]।

( उभौ परिक्रामत )

हिडिम्बा—किं एसो माणुसो आणीदो। [ किमेष मानुष आनीत ]।

घटोत्कच —भवति ! कोऽयम् ।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! दव्वद खु अअ। [ उन्मत्तक ! दैवत खल्वयम् ]।

घटोत्कच —आः कस्य दैवतम् ?

---

उन्मत्तक—ह भ्रातनित्त ।

---

हिडिम्बा—क्या ब्राह्मण है ?

घटोत्कच—ब्राह्मण नही है।

हिडिम्बा—तो क्या वृद्ध है ?

घटोत्कच—वृद्ध भी नही है।

हिडिम्बा—तो क्या वालक है।

घटोत्कच—वालक भी नही है।

हिडिम्बा—यदि ऐसा है तो इसे मैं देखूंगी।

( दोनो जाते है )

हिडिम्बा—क्या यही मनुष्य लाये हो ?

घटोत्कच—माँ, यह कौन है ?

हिडिम्बा—अरे जडमति, यह हम लोगों के देवता हैं।

घटोत्कच—आह, किसके देवता हैं ?

हिडिम्बा--तव अ मम अ। [ तव च मम च ]।
घटोत्कच--क प्रत्यय ?
हिडिम्बा-एसो पच्चओ। जेदु अय्यउत्त। [ एष प्रत्ययः। जयत्वार्यपुत्र ]।
भीम. ( विलोक्य ) का पुनरियम्। अये, देवी हिडिम्बा।

अस्माकं भ्रष्टराज्यानां भ्रमतां गहने वने।
जातकारुण्यया देवि ! सन्तापो नाशितस्त्वया ॥ ४९ ॥

हिडिम्बे ! किमिदम्।
हिडिम्बा--( कर्णे ) अय्यउत्त ईदिसं विअ। [ आर्यपुत्र ! ईदृशमिव ]।

---

जतुगृहदाहानन्तरम् अरण्यवासकाले हिडिम्बया उपकृतमात्मान स्मरतो भीमसेनस्य कृतज्ञतासूचक वचनम्--अस्माकमिति। हे देवि=हे हिडिम्बे; भ्रष्टराज्यानाम्=भ्रष्ट च्युत राज्य येभ्य तेषा विनष्टराज्यानाम्; गहने=दुर्गमे, वने=अरण्ये, भ्रमताम्=इतस्तत सञ्चरताम्, अस्माकम्=युधिष्ठिरादीना भ्रातृणाम्, जातकारुण्यया=उद्भूतदयया वा, त्वया=भवत्या हिडिम्बया; संतापः=क्लेश ; नाशित =शमित । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ४९ ॥

अन्वय--हे देवि !, भ्रष्टराज्यानाम् भ्रमताम्, गहने, वने, अस्माकम्, जातकारुण्यया, सताप , त्वया, नाशित ॥ ४९ ॥

पदार्थ--हे देवि !=हे देवि, भ्रष्टराज्यानाम्=विनष्ट राज्य वाले; अस्माकम्=हम लोगो के, गहने वने=गहनवन मे, भ्रमताम्=घूमते हुए, जातकारुण्यया=उत्पन्न दयालुता के कारण, त्वया=तुम्हारे द्वारा; सताप=हमारे क्लेश, नाशित =नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥

---

हिडिम्बा--तुम्हारे और मेरे।
घटोत्कच--क्या प्रमाण है ?
हिडिम्बा--यही प्रमाण है कि 'आर्यपुत्र की जय हो।'
भीम--( देखकर ) यह कौन है ? अरे, देवी हिडिम्बा।
हे देवि, विनष्ट राज्य वाले हम लोगो के गहन वन मे घूमते हुए उत्पन्न दयालुता के कारण तुम्हारे द्वारा हमारे क्लेश नष्ट कर दिये गये ॥ ४९ ॥
हिडिम्बे, यह क्या है ?
हिडिम्बा--( कान मे ) आर्यपुत्र, यह ऐसा ही है।

भीमः—जात्या राक्षसी, न समुदाचारेण ।

हिडिम्बा—उम्मत्तअ ! अभिवादेहि पिदरं [ उन्मत्तक ! अभिवादय पितरम् ] ।

घटोत्कच —भोस्तात !

अज्ञानात्तु मया पूर्वं यद्भवान्नाभिवादितः ।
अस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ५० ॥

अहं स धार्तराष्ट्रवनदवाग्निर्घटोत्कचोऽभिवादये । पुत्रचापलं क्षन्तुमर्हसि ।

---

घटोत्कच भीमम् अभिवादयन् स्वापराधस्य मार्जनं प्रार्थयति—[1]अज्ञानादित्यादिना । मया=घटोत्कचेन, भवान्=पूज्य भीमतात ; यत् अज्ञानात्=तातोऽयमिति परिचयविरहात्, पूर्वम्=प्राक्, न अभिवादितः=प्रणामादिना समुदाचारेण न सत्कृतः ; अस्य पुत्रापराधस्य=अनभिवादनरूपस्य पुत्रकृतस्यागसः ; प्रसादम्=अनुग्रहम्, कर्तुम्=विधातुम्; अर्हसि=योग्योऽसि । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५० ॥

अन्वय—मया, अज्ञानात्, पूर्वं यत् भवान् न अभिवादितः, अस्य, पुत्रापराधस्य, प्रसादम्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ ५० ॥

पदार्थ—मया-मेरे द्वारा, अज्ञानात्-अज्ञान के कारण, पूर्वम्-पहले, यत्=जो, भवान्=आपका, न अभिवादितः=अभिवादन नहीं किया गया, अस्य=इस, पुत्रापराधस्य=पुत्र के द्वारा किये गये अपराध को, प्रसादम्=क्षमा, कर्तुम्-करने के लिए, अर्हसि=योग्य होइए [1]अर्थात् मेरा अपराध क्षमा कीजिए और मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए ॥ ५० ॥

---

भीम—तुम जन्म से राक्षसी हो, न कि आचरण से ।

हिडिम्बा—ओ जडमति, अपने पिता का अभिवादन करो ।

घटोत्कच—ओ तात—

अज्ञान के कारण मेरे द्वारा पहले जो आपका अभिवादन नहीं किया गया
पुत्र द्वारा किये गये इस अपराध को क्षमा कीजिए ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रवंशरूपी वन के लिए वनाग्नि के समान मैं घटोत्कच -आपको

---

१. तु० पञ्चरात्र २ ६८ ।

५ म० व्या०

भीमः—एह्येहि पुत्र ! व्यतिक्रमकृतं क्षान्तमेव । ( इति परिष्वज्य ) अयं सः धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः । पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि । पुत्र ! अतिबलपराक्रमो भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—एवम्, भीमसेनपुत्रोऽयं घटोत्कचः ।

भीमः—पुत्र ! अभिवादयात्रभवन्तं केशवदासम् ।

घटोत्कचः—भगवन् ! अभिवादये ।

वृद्धः—पितृसदृशगुणकीर्तिर्भव ।

घटोत्कचः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

वृद्धः—भो वृकोदर ! रक्षितमस्मत्कुलं स्वकुलमुद्धृतं च । गच्छामस्तावत् ।

---

धार्तराष्ट्रवनदवाग्निः=दुर्योधनादयः धृतराष्ट्रस्य पुत्राः, ते धार्तराष्ट्रा एव वनम्, तस्य दवाग्निः वनाग्निः ।

---

प्रणाम करता हूँ । पुत्र-कृत चपलता को क्षमा करें ।

भीम—आओ, आओ पुत्र, तुम्हारे द्वारा किये गये अपराध को तो पहले ही क्षमा कर दिया गया । ( आलिङ्गन करके ) यही वह धृतराष्ट्रवंशरूपी वन की दावाग्नि है । पिता का हृदय तो सर्वदा पुत्रापेक्षी ही होता है । पुत्र, अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—इस प्रकार यह भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है ।

भीम—पुत्र, इन पूजनीय केशवदास का अभिवादन करो ।

घटोत्कच—भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध—पिता के समान गुण एवं कीर्ति वाले होओ ।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वृद्ध—हे भीम, आपने हमारे कुल की रक्षा की, और अपने कुल का भी उद्धार किया । अब हम लोग चलें ।

भीमः—

अनुग्रहात् तु भवतः सर्वमासीदिदं शुभम्।
आश्रमोऽदूरतोऽस्माकं तत्र विश्रम्य गम्यताम् ॥ ५१ ॥

वृद्ध—कृतमातिथ्यमनेन जीवितप्रदानेन। तस्माद् गच्छामस्तावत्।

भीम.—गच्छतु भवान् सकुटुम्बः पुनर्दर्शनाय।

वृद्ध.—बाढम्। प्रथमः कल्पः।

---

भीम ब्राह्मणस्य सत्कारं कुर्वन्नाह—अनुग्रहादित्यादि। इदं सर्वम्=पाण्डवकुलोद्धरणं स्वकुलरक्षणञ्चेदं सकलम्, भवतः=तव ब्राह्मणस्य, अनुग्रहात्=अनुकम्पात, शुभम्=मङ्गलम्, आसीत्=अभवत्, भवत्परित्राणार्थमागतस्य मम भीमस्य दारपुत्रसमागमसिद्धया मांगलिकमभवदिदं सर्वं। अस्माकम्=पाण्डवानाम्, आश्रम =आवास, अदूरत =सन्निकट एव वर्तते। तत्र=आश्रमे, विश्रम्य=मदीयातिथ्यस्वीकारादिना मार्गसञ्चरणपरिश्रमम् अपनीय, गम्यताम्=सुखपूर्वक गन्तव्यदेशं प्रति प्रस्थीयताम्। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५१ ॥

अन्वय—भवत, अनुग्रहात्, इदम्, सर्वम्, शुभम्, आसीत्। अस्माकम्, आश्रम, अदूरत [ वर्तते, अत ] तत्र, विश्रम्य, गम्यताम् ॥ ५१ ॥

पदार्थ—भवत =आपकी, अनुग्रहात्=अनुकम्पा से, इदम्=यह, सर्वम्=सब कुछ, शुभम्=शुभ ही, आसीत्=हुआ। अस्माकम्=हमलोगों का, आश्रम =निवासस्थान, अदूरत [ वर्तते ]=दूर नहीं [ है ]। [ अत ] तत्र=वहाँ, विश्रम्य=विश्राम करके, गम्यताम्=यात्रा कीजिए ॥ ५१ ॥

---

भीम—आपकी अनुकम्पा से यह सब कुछ शुभ ही हुआ। हम लोगों का आश्रम यहाँ से दूर नहीं है। अत वहाँ विश्राम करके फिर आगे यात्रा करें ॥ ५१ ॥

वृद्ध—इस जीवन-दान के द्वारा तो आपने सम्पूर्ण आतिथ्य कर ही दिया। अत हम लोग चलें।

भीम—कुटुम्बसहित पुन दर्शन देने के लिए आप जायें।

वृद्ध—अच्छा, बहुत अच्छा विचार है।

( सपुत्रत्रयकलत्रो निष्कान्त. केशवदास )

**भीमः—हिडिम्बे ! इतस्तावत् । वत्स ! घटोत्कच ! इतस्तावत् । तत्रभवन्त केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि सम्भावयिष्यामः।**

[ भरतवाक्यम् ]

**यथा नदीनां प्रभवः समुद्रो**
**यथाहुतीनां प्रभवो हुताश ।**

---

आश्रमपदद्वारमात्रम्=आश्रमद्वारावधिकम् । सम्भावयिष्यामः= अनुगमिष्याम, अर्थात् अनुगमनेन सत्करिष्यामः ।

'प्रशस्ति शुभशमनम्'—इत्युक्तरूप शुभशमन प्रयोगान्ते प्रयुञ्जान आह— भरतवाक्यम्=भरतस्य नटस्य वाक्य वचनम् । नाटकाभिनयसमाप्तौ सामाजिकेभ्यो नटेनाशीर्दीयते इत्यर्थः ।

नट शुभाशसन करोति—यथेत्यादिना । यथा समुद्र =येन प्रकारेण सरित्पति, 'समुद्रोऽब्धिरकूपार पारावार सरित्पति ' इत्यमर. । नदीनाम्= सरिताम्, प्रभव -स्वामी उत्पत्तिलयहेतुत्वात्, यथा हुताशः=येन प्रकारेण, हुतम् अश्नातीति हुताश अग्नि, आहुतीनाम्=होमानाम्, प्रभव =स्वामी भोक्तृत्वात् । यथा मनः=येन प्रकारेण चित्तम् इन्द्रियाणाम्=चक्षुरादीनाम्, प्रभवम्=स्वामी प्रेरकत्वात्, तथा=तेनैव प्रकारेण, भगवान्=भग ऐश्वर्यादि षट्क सद्वान्,

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥" विष्णुपुराणे इत्युक्तत्वात् ।

उपेन्द्रः=इन्द्रावरज, भगवान् विष्णुरित्यर्थ । 'उपेन्द्रइन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुज ' इत्यमर, न =अस्माकम्, प्रभु =ईश्वर भवेदिति शेष । मालारूपकालङ्कार । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । तल्लक्षण तु– उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' ॥५२॥

---

( अपने तीनो पुत्रो और पत्नी के सहित केशवदास का निष्क्रमण )

भीम—ओ हिडिम्बे, इधर आओ । वत्स, घटोत्कच, इधर आओ । इन आदरणीय केशवदास को हम लोग आश्रम के द्वार तक तो पहुँचा दें ।

[ उत्पत्ति और लय के कारण ] जैसे नदियो का स्वामी समुद्र है, भोक्ता होने के कारण ] जैसे आहुतियो का स्वामी अग्नि है और [ प्रेरक

यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि
तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः ॥ ५२ ॥

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

॥ मध्यमव्यायोगं नाम नाटकं समाप्तम् ॥

— ० —

अन्वय—यथा, नदीनाम्, समुद्र , प्रभव, यथा आहुतीनाम्, हुताश , प्रभव., अपि, यथा, इन्द्रियाणाम्, मन , प्रभवम्; तथा भगवान्, उपेन्द्रः, न , प्रभुः ॥५२॥

पदार्थ—यथा=जैसे; नदीनाम्=नदियो का, समुद्र प्रभवः=स्वामी समुद्र है, यथा=जैसे, आहुतीनाम्=आहुतियो का; हुताश प्रभवम्=स्वामी अग्नि है, अपि=और; यथा=जैसे, इन्द्रियाणाम्=समस्त इन्द्रियो का; मन. प्रभव =स्वामी मन है, तथा=वैसे ही, भगवान्=ऐश्वर्यों वाले, उपेन्द्र =भगवान् विष्णु, न =हम [ सामाजिक लोगो के ] प्रभु =ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

विमर्श—महाकवि भास ने प्रभु शब्द का प्रयोग इस श्लोक मे तीन बार किया है। यह उनकी विशेषता है, जो पहले भी की गयी है।

नटराज नमस्कृत्य देवीं च भरत तथा।
भागीरथ्यास्तटे काश्या लकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥
श्रीमद्रामकुबेरस्य मालवीयस्य सूनुना।
सुधाकरेण रचिता व्याख्या व्यायोगसगता ॥ २ ॥

—.०.—

होने से चक्षु आदि ] इन्द्रियो का स्वामी जैसे मन ही है उसी प्रकार षड्-ऐश्वर्य युक्त भगवान् विष्णु हम सामाजिको के ईश्वर हैं ॥ ५२ ॥

( सभी का निष्क्रमण )

॥ 'मध्यमव्यायोग' नामक नाटक समाप्त ॥

इस प्रकार प० रामकुबेर मालवीय ( भूतपूर्व साहित्यविभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और सम्पूर्णानन्दसस्कृत विश्व-विद्यालय ) के आत्मज डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

—.०.—

## मध्यमव्यायोग के श्लोकों की छन्द-योजना

| छन्द का नाम | अक्षर संख्या | श्लोकाङ्क | योग | लक्षण |
|---|---|---|---|---|
| अनुष्टुप् [ श्लोक ] | ८ | २, ७; १२-२३; २८-३१; ३३-४०; ४२-४५; ४७, ४९-५१ | ३४ | श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ |
| उपेन्द्रवज्रा | ११ | ५२ | १ | उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । |
| उपजाति | ११ | ९,४१ | २ | स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । } इत्यनयोः उपजाति. |
| पुष्पिताग्रा | १२/१३ | ४, २४, २५ | ३ | अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा । |
| वंशस्थ | १२ | १० | १ | जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । |
| वसन्ततिलका | १४ | १, ३; ८, ११; २७, ४८ | ६ | ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ ग । |
| मालिनी | १५ | ५; ६, ३२; ४६ | ४ | ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । |
| स्रग्धरा | २१ | २६ | १ | म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यति युता स्रग्धरा कीर्तितेयम् । |
|  |  |  | ५२ |  |

## मध्यमव्यायोग के सुभाषित

# श्लोकानुक्रमणिका

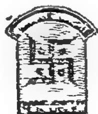
कृष्णदास संस्कृत सीरीज
६५

महाकविश्रीभासप्रणीतम्

# दूतवाक्यम्

'ज्योत्स्ना'-'सरला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहित-
विस्तृत-भूमिका-परिशिष्टादि-विभूषितम्

सम्पादको व्याख्याकारश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम० ए०, पी० एच्० डी०, साहित्याचार्य
[ संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
१९८७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४४
मूल्य : रू० ६–००



पो० बा० नं० ११०८
चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग ), वाराणसी–२२१००१
[ भारत ]

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी–२२१००१ ( भारत )
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
95



# DŪTAVĀKYA

OF

BHASA

*Edited With Sanskrit & Hindi Commentaries; Critical Introduction, Explanatory Notes and Appendices*

By

**Dr. Sudhakar Malaviya**

M. A., Ph. D., Sahityacarya

*Department of Sanskrit, Banaras Hindu University*



KRISHNADAS Academy

*VARANASI-221001*

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi–221001.

( INDIA )

First Edition

1987

Price Rs. 6–00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi–221001 ( India )

Phone : 63145

# आशीर्वाद

ग्रन्थाध्ययननिर्मग्नो मालवीयः सुधाकरः ।
प्रसिद्धिं प्राप्नुयान्नित्यं ग्रन्थसंस्कारकर्मणि ॥

—विश्वनाथ भट्टाचार्यः

कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः ।
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥

—दूतवाक्य २९

दोषों को भूल जाना चाहिए और भाइयों से भ्रातृस्नेह करना चाहिए, क्योंकि भाइयों के साथ सम्बन्ध रखना लोक एवं परलोक दोनों ही में श्रेयस्कर है ॥ २९ ॥

# दो शब्द

महाकवि भासकृत दूतवाक्य नामक एकाङ्की नाटक का प्रस्तुत संस्करण विश्वविद्यालय एवं सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्य रूप से तैयार किया गया है। इस संस्करण में पाठभेद सहित मूलपाठ, उसकी संस्कृत व्याख्या, श्लोकों के अन्वय, हिन्दी अनुवाद तथा उपयोगी विस्तृत भूमिका और उसकी समीक्षा भी दी गई है। टिप्पणी में व्याकरण सम्बन्धी प्रकृति-प्रत्यय आदि का स्पष्टीकरण, समासादि का निर्देश, कोश, विसंगतियों का समाधान एवं अलङ्कार तथा छन्दों का उल्लेख किया गया है।

इस एकाङ्की में पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवों के भाग ( हिस्सा ) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर भगवान् कृष्ण के विराट् रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है। एकाङ्की बहुत छोटा है। मात्र छप्पन श्लोक ही हैं और कुछ ही घण्टों में मञ्चनीय है।

यद्यपि इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्राप्त हैं। फिर भी मुझे पं० गणपति शास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पूज्य पिता श्री स्व० पं० रामकुबेर मालवीय ( साहित्य-विभागाध्यक्ष, का०हि०वि०वि० और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय ) के पुनीत चरणों में बैठकर भास के नाटकों का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे आज साहित्य पथ में देखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इसका श्रेय कृष्णदास अकादमी के निदेशक बन्धुद्वय श्री विट्ठलदास गुप्त एवं श्री ब्रजमोहनदास गुप्त को ही है। उनके औदार्य का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

रथयात्रा, १९८७<br>
संस्कृत विभाग<br>
का. हि. वि. वि., वाराणसी

विदुषां वशंवद<br>
सुधाकर मालवीय

# विषय-सूची

मे भास के तीन उद्धरण दिए हैं।[1] राजशेखर [१०वीं शती] ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक को 'काव्यमीमांसा' मे उत्तम कोटि का स्वीकार किया है।[2]

अभिनवगुप्त [१० वी शती] ने अभिनवभारती मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[3] इसके अतिरिक्त 'ध्वन्यालोकलोचन' मे इस नाटक से एक श्लोक भी उद्धृत किया है। किन्तु यह सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में प्राप्त नही है।[4] महाराज भोज [११ वी शती] ने 'शृङ्गारप्रकाश' मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' का उल्लेख किया है।[5] रामचन्द्र गुणचन्द्र[१२वी शती] ने नाटयदर्पण' मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' से एक श्लोक उद्धृत किया है।[6] आलङ्कारिक जयदेव

---

१. (क) शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनी। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति. ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम्, अंक ४

(ख) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२

(ग) यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः। काव्यालंकार १५
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥ चारु० १२

२. भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

३. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्। अभिनवभारती १७४
(स्वप्न० अक २)

४ सञ्चितपक्ष्मकपाटं नयनद्वारं स्वरूपताडनेन।
उद्घाटय सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

५ स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप। वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श। स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे।
शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक का संक्षेप।

६ यथा भास कृते स्वप्नवासवदत्ते—
शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः—

[१२ वीं शती] ने 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना मे उन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है।[1] इस प्रकार प्राचीन समय मे भास का सस्कृत साहित्य में बडा गौरवपूर्ण स्थान था।

## भास कि नाटको की खोज और उनका एककर्तृत्व

संस्कृत साहित्य के इतने प्रसिद्ध रत्न होने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानो को इनका केवल नाम ही मालूम था। इनके काल, जीवन वृत्त और ग्रन्थो के विषय मे कुछ भी ज्ञान न था। सौभाग्यवशात् १९१२ में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक त्रिवेन्द्रम् से अनन्तशयनं ग्रन्थमाला मे प्रकाशित कराए और उन्हें भास की रचना बतलाया।

ये नाटक मध्य संस्कृत नाटको मे कुछ विलक्षण थे। संस्कृत नाटको के आरम्भ मे ग्रन्थकार अपना परिचय देते हैं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककार इस शैली का अनुसरण करते हैं। परन्तु इन नाटको मे ग्रन्थकार का नाम नहीं स्मरण किया गया है। जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली मे राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत है, जिसमे 'स्वप्नवासवदत्तम्' को उत्कृष्ट नाटक बताया गया है। प्रस्तुत तेरह नाटको मे एक 'स्वप्ननाटक' भी है जिसमे वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कथा है। प० टी गणपति शास्त्री ने अनुमान किया कि राजशेखर निर्दिष्ट स्वप्न वासवदत्ता यही है, और क्योंकि स्वप्नवासवदत्ता के कर्त्ता राजशेखर द्वारा भास माने गये हैं अतः प्रस्तुत स्वप्न नाटक के कर्त्ता भी भास ही हैं उन्होने आगे लिखा कि—१. क्योकि रचना शैली आदि मे ये सब नाटक एक ही प्रकार के हैं, अत इनके कर्त्ता भास ही होगे। एतद्देशीय और विदेशीय अनेक विद्वानो ने प० टी० गणपति शास्त्री द्वारा निकाला गया परिणाम स्वीकार कर लिया। २. परन्तु अनेक ऐसे भी विद्वान् हैं जो ऐसा नही मानते। उनके

---

पदाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥ (नाट्यदर्पण)

१ भासो हास कविकुलगुरु कालिदासो विलास। (प्रसन्नराघव)

अनुसार ये नाटक भास के नही हैं।

३. इन दोनो मतो के अतिरिक्त एक तीसरा मत हैं। उसके मानने वालों का कथन है कि भारत के केरल आदि दक्षिण प्रान्तो मे प्राचीन कवियों के अनेक नाटको का संक्षेप और परिवर्तन जो किया गया उसका यही प्रयोजन था कि ये नाटक रंगमंच पर आसानी से अभिनीत हो सकें। इसी कारण शकुन्तला आदि नाटको का भी सक्षिप्त एव परिवर्तित रूप वहाँ मिलता है। इसी प्रकार त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित होने वाले ये स्वप्न-नाटक आदि तेरह ग्रन्थ भी प्राचीन नाटको का सक्षेप एव रूपान्तर ही हैं।

यह तीसरा मत कुछ विद्वानो को मान्य है। इसका कारण यह है कि अनेक प्राचीन ग्रन्थकारो ने भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' के नाम से कई श्लोक अपने अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किए हैं। सम्प्रति मुद्रित 'स्वप्न-नाटक' मे वे सब श्लोक नहीं प्राप्त होते। अत विद्वानो का अनुमान है कि प्रस्तुत 'स्वप्न नाटक' मे अनेक श्लोक सम्भवत. सक्षेप के कारण लुप्त हो गए। अस्तु इस विवाद के रहते हुए भी इतना तो सुनिश्चित ही है कि भास ने कोई 'स्वप्न वासवदत्तम्' आदि तेरह नाटक रचा था और प्रस्तुत 'स्वप्ननाटक' उसी का रूपान्तर है। इस रूपान्तर का मूल से कितना अन्तर है यह कुछ कहा नही जा सकता।

पं० टी गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित अन्य बारह नाटको के अन्त में भी ग्रन्थकार का नाम निर्देश नही प्राप्त होता। यही नही प्रारम्भ में भी कवि अपने नाम का स्मरण भी नही करता। किन्तु रचनाशैली की समानता के कारण पं० टी० गणपति शास्त्री ने यही परिणाम निकला कि यह तेरह नाटक एक ही कवि की कृति हैं और वह कवि भास ही हैं। फिर भी जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं वे इस प्रकार है—

१ इन रूपको मे कवि का नाम दिया गया, अत. यह भास की रचनाओ पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२. इनमे सूत्रधार नान्दी के बाद प्रवेश करता है। यह विशेषता इन

तेरह रूपको की ही नही, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपको की है।

३. इनमे उपलब्ध नाट्यकला भास की ही अपनी नही, अपितु वैसी नाट्यकला तो दक्षिण भारत के सभी रूपको मे मिलती है।

४ इन रूपको मे भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमो का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतक नहीं है, क्योकि निषिद्ध दृश्य तो पश्चकालीन रूपको मे सामान्यत. अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५ जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उसे भी ठोस आधार नही कहा जा सकता, क्योकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्ष काव्य, पुराण साहित्य और अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थो मे बिखरे मिलते हैं। दूसरे, प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखो की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त रूपको की प्राकृत, हस्तलेखो के लेखन स्थल एव काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६ बाद के लेखको ने जो पद्य उद्धृत किए हैं, उन्हे उन्होने भास से सबद्ध नही बताया है।

७ सुभाषित ग्रन्थो मे उपलब्ध कुछ पद्य त्रिवेन्द्रम् मे मिले रूपको मे नही मिलते।

८ महामहोपाध्याय के० शास्त्री प्रभृति विद्वानो ने इन्हे 'आश्चर्यचूडामणि' 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक' की एकत्र प्राप्ति के आधार पर शक्तिभद्र की रचनाएं माना है।

९ कुछ विद्वानो ने शूद्रक को भास से अभिन्न सिद्ध करते हुए मृच्छकटिक, चारुचरित, अविमारक तथा वत्सराजचरित को शूद्रक की कृतियाँ माना है। कुछ ने 'चारुदत्त' को मृच्छकटिक का अभिनयोचित सक्षिप्त संस्करण माना है।

१० डा० बार्नेट इन रूपको को भास का न मान कर पाण्डव राजाओ के सभा कवियो द्वारा लिखित मानते हैं, जब कि अन्य विद्वान् इनके कर्तृत्व का श्रेय पल्लव नरेशो के सभा कवियो को देते हैं।

११. रामावतार शर्मा के अनुसार कुछ रूपक भास प्रणीत अवश्य हैं किन्तु सब रूपकों की रचना भास ने नहीं की थी।

१२ केरल प्रदेश मे ही इनकी उपलब्धि होने से कुछ विद्वान् इन्हें किसी केरल देशीय नाटककार की कृतियाँ मानते हैं। डाक्टर कुन्हन राजा ने इन पर केरल का प्रभाव दर्शाया है तथा 'चारुदत्त' में केरलीय उत्पत्ति के चार शब्दो को प्रस्तुत किया है। डॉ० टामस ने इस मत का विरोध किया है। कुप्पुस्वामी शास्त्री ने 'सबन्ध' शब्द के आधार पर इन रूपको मे मलाबार के 'सबन्ध विवाहो' की ओर सकेत माना है, किन्तु आर० कवि ने इसका विरोध किया है। वस्तुत ये रूपक केरल के परम्परानुयायी अभिनेता चाक्यारो के भण्डार का एक अग है। पिशरोति का कथन है कि इन रूपको के प्रस्तावना भाग बाद मे जोड दिए गए थे, जब कि मुख्य दृश्यो मे मौलिक रूपको को स्थानीय रङ्गमञ्च की आवश्यकता के अनुकूल ढालकर अथवा सक्षिप्त करके सुरक्षित रखा गया है।

## नाटकों का एक-कर्तृत्व—

किन्तु सभी नाटको का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इनमे कुछ ऐसी समानताएँ प्राप्त होती हैं जिनके साक्ष्य पर विद्वानो को निश्चित रूप से मानना पडता है कि ये सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृति हैं। अस्तु, विद्वानों के द्वारा जिन तर्कों और समानताओ के आधार पर भास का कृतित्व स्वीकार किया गया है। वे दो प्रकार के है—(क) आकृति साम्य और (ख) विषय साम्य।

### (क) आकृति साम्य—

१. इन नाटको मे वर्णभार को छोडकर प्रारम्भिक पूर्वरग को 'प्रस्तावना' न कहकर स्थापना कहा गया है।

२ इन नाटकों मे आदि अन्त प्राय एक प्रकार का है; जैसे—

(अ) अनेक नाटको के प्रारम्भ मे मुद्रालकार द्वारा पात्रो की सूचना दे दी गयी है।

(ब) प्रायः सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार.' इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ होते हैं।

(स) इनमें मे अधिकाश नाटकों मे 'भरतवाक्य' एक जैसा ही है, जैसे—'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' जहाँ यह नहीं मिलता वहाँ इसी प्रकार का कोई अन्य श्लोक रहता है। इस प्रकार लगभग नाटकों मे 'राजसिंह प्रशास्तु न.' यह अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

३ इन नाटकों मे भरतप्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियम का पूर्णतया पालन न किया जाना भी यही सूचित करता है कि इनका कर्ता कोई एक ही व्यक्ति है। जैसे युद्ध व मृत्यु आदि रंगमंच पर ही प्रदर्शित किए गये हैं, तथा अभिषेक, पूजा, शपथ या अर्घ्य प्रक्षालनार्थ जल रङ्गमञ्च पर ही लिया गया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा एवं दूराह्वान की योजना भी रंगमञ्च पर कर दी गयी है।

४. इन नाटकों मे भूमिका बहुत छोटी प्राप्त होती है और प्रारम्भिक सवाद के वाक्य भी प्राय. समान ही हैं, जैसे—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि अये—अङ्ग पश्यामि।'

५ सभी नाटकों के नामो का उल्लेख उन नाटकों के अन्त मे ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

(ख) विषय साम्य—

१. इन सभी नाटकों मे एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों, वाक्यों श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है। वही उपमा और उत्प्रेक्षा जो नाटक में आ गई है दूसरों मे भी मिलती है। सूत्रकार ने ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है। जिनकी सख्या १२७ है।

२ इन रूपकों मे अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे-आप्रच्छ प्रयोग परस्मैपद में है।

३ अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य ( पताका-स्थानक ) का प्रयोग मिलता है।

४. कतिपय अप्रचलित छन्दो का प्रयोग इनमे प्राप्त होता है। जैसे—सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पडते हैं। जैसे—स्वप्नवासवदत्तम्, 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

६. इनमे से अनेक नाटको मे छोटे पात्रो के नामो मे भी समानता है जैसे—'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' व 'दूतवाक्य' मे कञ्चुकी का नाम 'बादरायण' है। इसी प्रकार 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिमा' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और अभिषेक चारो नाटको मे प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

७. प्राय: सभी नाटकों मे नाट्यनिर्देशों की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश हैं उनमे दो तीन निर्देश साथ साथ दिये गये हैं, जैसे—'निष्क्रम्य पुन प्रविश्य' या 'सविस्मयं परिक्रम्यावलोक्य च' आदि।

इस प्रकार सभी नाटको मे समान दृश्यो की अवतारणा, समान भाव और समान शब्दो एवं समान वाक्यो की उपलब्धि से और अन्ततः समान वर्णन पद्धति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि इन नाटको का प्रणेता निश्चित ही कोई एक व्यक्ति है जो राजशेखर और अभिनवगुप्त के साक्ष्य से भास ही हैं।

### भास का काल

महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्र मे स्मरण किए जाने से यह निश्चित ही है कि भास कालिदास के पहले प्रथित-यश वाले हो चुके थे। किन्तु कालिदास का काल ही निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् कालिदास का काल ४०० ई० मानते हैं। अतः उनके अनुसार भास ४०० ई० से प्राचीन थे। अन्य विद्वान् कालिदास को प्रथम शती का मानते हैं। अत उनके अनुसार भास ई० की प्रथम शती के पहले विद्यमान थे। इसी आधार पर पं० टी० गणपति शास्त्री भास को तृतीय ई० पू० मानते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र मे 'अपीह श्लोकौ भवतः' कहकर जो दो श्लोक उद्धृत किए हैं इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मिलता है।' चाणक्य चन्द्रगुप्त के

मन्त्री थे। उन्होंने निश्चित ही यह श्लोक भास से लिया होगा क्योंकि यदि स्मृति से लेते तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। जैसा कि इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० राजगद्दी पर आसीन हुए थे, अतः भास का समय उनसे लगभग ५० वर्ष पूर्व मानना ठीक होगा। भास के 'प्रतिमा-नाटक' में बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उनके अर्थशास्त्र का उल्लेख अवश्य करते। अतः भास के काल की निम्नतम सीमा ४०० ई० पू० ही सिद्ध होती है।

लोकमान्य तिलक के अनुसार भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि नहीं है।[3] वस्तुतः 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता-ध्यान' नाम से जो श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो 'भीष्म द्रोणतटां जयद्रथजलाम्' आदि श्लोक उद्धृत है, यह महाकवि भास के 'ऊरुभङ्ग' का आदि श्लोक है।[4] कुछ विद्वान् भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध करते हैं।[5] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। बेलवल्कर के मत से शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू०

---

१. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।
(कौटि० अर्थ० १० ३, प्रतिमा० ४.२)।

२. भो. काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।
(प्रतिमा० अंक ५)

३. लोकमान्यतिलककृत गीता रहस्य, पृ० ५६०।

४. गीता रहस्य, पृ० ५६१।

५. जे० बी० ए० एस० डी०, बंगाल, जयसवाल, पृ० २५९, १९१३।

होना चाहिए।[1]

भास की निम्नतम-सीमा पर विचार के बाद उनकी उपरितम सीमा का विचार आवश्यक है। भास के नाटको मे कुछ का सम्बन्ध वत्सराज उदयन से है। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५ ई० पू० के मध्य था।[2] इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पूर्व से पहले भी नही मानी जा सकती। अत भास का काल ३०० ई० पू० होना चाहिए।

भास के नाटको मे प्राप्त अनेक आभ्यन्तर प्रमाण भी इसी काल की ओर सकेत करते हैं। इन नाटको मे पाए जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगो से यह स्पष्ट है कि पाणिनि के पूर्व भास के नाटको की रचना हो चुकी थी। भास के प्राकृत कालिदास के प्राकृतो की अपेक्षा प्राचीन मालूम पडते हैं। भास के नाटको से व्यक्त सामाजिक अवस्था मौर्यकाल की सामाजिक अवस्था के समान है। भासकृत नाटको की रचना शैली भरत के 'नाट्यशास्त्र' मे वर्णित शैली से प्राचीन है। 'मानवीय धर्मशास्त्र' उपलब्ध 'मनुस्मृति' का परामर्श नही करता। वह शब्द धर्मसूत्रकार गौतम द्वारा उल्लिखित मानवीय धर्मशास्त्र का बोधक है। गौतम का काल ई० पू० ६०० माना जाता है। महेश्वरकृत 'योगशास्त्र' के समय का ठीक पता नही चलता। इसी प्रकार 'प्राचेतस श्राद्धकल्प' का भी पता नही चलता। भास के भरतवाक्यो मे आए 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालूम पडता है कि भास उपर्युक्त तीनो राजाओ मे से किसी एक के राजकवि थे। 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से ऐसा प्रतीत होता है कि भास वत्सराज उदयन को अमर बनाना चाहते है। इस प्रकार नाटको के आभ्यन्तर साक्ष्यो के आधार पर भी वह ई० पू० ३०० शती के ही सिद्ध होते हैं।

---

१ बेलवल्कर, एस० के०, ओरि० कान्फ्रे०, १९१९, भाग २, पृ० १८९–२०४।

२. अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३८–३९।

## भास की कृतियाँ और उनके कथा-स्रोत के आधार

कथा स्रोतो के आधार पर भास की कृतियो का विभाजन हम पाँच प्रकार मे कर सकते हैं—

| | कथा स्रोत का आधार |
|---|---|
| १. प्रतिमानाटक | रामायण |
| २. अभिषेक | |
| ३. मध्यमव्यायोग | महाभारत |
| ४. दूतवाक्य | |
| ५ दूतघटोत्कच | |
| ६ कर्णभार | |
| ७ ऊरुभङ्ग | |
| ८. पञ्चरात्र | |
| ९. बालचरित | हरिवंश |
| १०. स्वप्नवासवदत्तम् | बृहत्कथा |
| ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण | |
| १२. अविमारक | |
| १३. चारुदत्त | लोकप्रचलित व काल्पनिक |

(च) यज्ञफल—

इन उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भी भासकृत मानते हैं। इसे गोण्डल निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने १९४१ मे प्रकाशित किया। यह रामायण पर आधारित है। इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर झाला का कथन है कि 'यज्ञफल' भास के अन्य नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है। किन्तु इसमे बहुत सी नवीन बातें हैं जो भास के समय मे नही थी। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेम की दृढता के लिए सीता से उद्यान मे मिलते हैं। राम को भी दुष्यन्त के ही समान शंका होती है कि यह कही ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नही हैं। विश्वामित्र नगर एवं ग्राम्यजीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं, आदि। अत. सम्भव है कि 'यज्ञफल' भास के नाटको के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना हो।

## भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

### (क) रामायण पर आधृत नाटक—

१. प्रतिमानाटक—इसमे रामवनगमन, सीताहरण आदि से लेकर रावणवधपर्यन्त सम्पूर्ण राम-कथा संक्षेप मे वर्णित है। यह सात अंक का है। दशरथ की प्रतिमा को देखकर उनके दिवंगत हो जाने का अनुमान भरत द्वारा नगर के बाहर ही कर लिए जाने से इसका नाम 'प्रतिमानाटक' है।

२ अभिषेक—इसमे किष्किन्धाकाण्ड से राम के राज्याभिषेक तक की कथा सक्षेप मे है। यह छ अक का नाटक है। राज्याभिषेक के कारण ही इसका नाम 'अभिषेक' है।

### (ख) महाभारत पर आधृत नाटक—

३. मध्यमव्यायोग—इस एकाकी मे मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच से ब्राह्मण के मध्यम पुत्र के मुक्ति की कथा है। 'मध्यम' शब्द भीम और उस बालक दोनों का बोधक होने से इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' है।

४ दूतवाक्य—इस एकाकी मे पाण्डव पक्ष से दुर्योधन के पास कृष्ण के दूत बनकर जाने और वहाँ उनके द्वारा पाण्डवो के भाग (हिस्सा) माँगने पर दुर्योधन द्वारा कृष्ण को पकड़ने की आज्ञा देने पर कृष्ण के विराट रूप ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

५ दूतघटोत्कच—इस एकाकी मे अभिमन्यु की मृत्यु के बाद घटोत्कच दूत बनकर कृष्ण का सदेश कौरवो के पास ले जाता है। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच गरमा-गरमी हो जाती है जिसे धृतराष्ट्र शान्त करते हैं। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिए जाने की धमकी देकर चला जाता है। इस एकाकी मे 'भरतवाक्य' नही है।

६ कर्णभार—इस एकाकी मे द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवो की ओर से कर्ण के सेनापति हो जाने पर युद्ध का सारा भार कर्ण पर आ पडता है। यह उनके लिए भारस्वरूप हो जाता है जबकि ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को वे कवच और कुण्डल दान मे दे देते हैं।

७. ऊरुभङ्ग—इस एकाकी मे द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा (=ऊरु) को भङ्ग करके उसका वध करने की

कथा वर्णित है। संस्कृत साहित्य मे मात्र यही एक दु:खान्त नाटक है।

८. पञ्चरात्र—इसमें दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने और यज्ञ पूर्ण होने पर द्रोण को मुँहमागी दक्षिणा देने के लिए कहता है। द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप मे पाण्डवो को आधा राज्य देने की माँग की। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तभी ऐसा हो सकेगा। कौरवो ने विराट् की राजधानी पर गायों के लिए आक्रमण किया। राजकुमार उत्तर कौरवो से लड़ते हैं। अज्ञातवास मे पाण्डवो की सहायता से उसकी विजय होती है, और पाण्डवों के प्रकाश में आ जाने पर द्रोण द्वारा प्रतिज्ञा की याद दिलायी जाती है। इस पर दुर्योधन आधा राज्य दे देने के लिए मान जाता है।

(ग) हरिवंश पर आधृत नाटक–

९ बालचरित—इसमे भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। पाँच अङ्कों में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध पर्यन्त की कथा वर्णित है।

(घ) बृहत्कथा पर आधृत नाटक–

१० स्वप्नवासवदत्तम्—इसमे वत्सराज उदयन के वासवदत्ता के साथ स्वप्न मे मिलन की कथा है। इसीलिए इसका नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' है। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के महल से वासवदत्ता के हरण के बाद उदयन विलासी हो जाते है। इससे शत्रु आरुणि को आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। किन्तु उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण आरुणि को परास्त करने के लिए मगधराज दर्शक से सहायता लेने के लिए वासवदत्ता को मिलाकर लावाणक मे उनके अग्नि मे जल मरने की समाचार उड़ा देते हैं और वासवदत्ता को मगधराज की कुमारी पद्मावती के पास धरोहर रूप मे रख देते हैं। बाद मे उदयन का विवाह पद्मावती से होता है। एक बार उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है। उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। वासवदत्ता प्रकट होती है और उदयन का उनसे मिलन होता हैं। उधर उदयन का सेनापति रुमण्वान् आरुणि को युद्ध मे पराजित कर देता है। इस प्रकार छः अंको का यह सुखान्त नाटक है।

११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमे वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी

के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण और प्रेम विवाह का वृत्तान्त है। प्रद्योत द्वारा उदयन के कैद कर लिए जाने पर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को छुड़ाने और वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसीलिये इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है। चार अक के इस 'ईहामृग' नामक नाटकभेद मे यौगन्धरायण को पूर्ण सफल दर्शाया गया है।

१२ अविमारक—इसमे राजा कुन्तिभोज की कुमारी कुरङ्गी और सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन के प्रेम विवाह की कथा है। विष्णुसेन का ही दूसरा नाम अविमारक है। विष्णुसेन ने किसी समय 'अवि' नामक भेड़-रूपधारी राक्षस को मारा था। इसीलिए इस नाटक का नाम 'अविमारक' है।

(ङ) काल्पनिक–

१३. चारुदत्तम्—इसमे निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त एव गणिका वसन्तसेना के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है। नायक के नाम पर ही नाटक का नाम 'चारुदत्त' रक्खा गया है। यह चार अक का 'प्रकरण' है।

## भास की नाट्यकला और दूतवाक्य

इस प्रकार महाकवि भास ने अपने प्रायः सभी नाटको की कथावस्तु रामायण एव महाभारत से ली हैं। कुछ बृहत्कथा पर आधृत हैं और एक काल्पनिक इतिवृत्त है। भास ने जो भी कथास्रोत तत्तद् ग्रन्थो से ग्रहण किया उसे उन्होने अपने रुचि के अनुसार बदल दिया है। इसी कारण प्राय सभी कथानक बडे ही रोचक हो गए हैं और मञ्चन के योग्य हो गए हैं। इनमे नाट्यनिर्देश बहुत कम हैं जिसे अभिनेता को स्वय ही करना है। दूतवाक्य मे भी इसी प्रकार 'नाट्यनिर्देश' बहुत कम हैं और महाभारत के ही पात्रो को लेकर घटना क्रम वर्णित है। नाटक बहुत बड़ा नही है। मात्र कुछ घण्टो का ही दृश्य है जिसमे नाटक पूर्ण हो जाता है। अत इसका सफलतापूर्वक मञ्चन किया जा सकता है।

## दूतवाक्य-समीक्षा

**कथानक की पृष्ठभूमि—**

जब बारह वर्ष के वनवास एवं विराट के यहाँ रहकर एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूर्ण करके पाण्डव इन्द्रप्रस्थ लौट आए और प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने कौरवों से राज्य का आधा भाग मांगा, तब दुर्योधन ने आधा राज्य देने से इन्कार कर दिया। फलतः पाण्डवों ने समझौते के लिए दुर्योधन के पास श्रीकृष्ण को दूत बनाकर भेजा।

**दूतवाक्य की कथावस्तु—**

दूतवाक्य की कथावस्तु का प्रारम्भ हस्तिनापुर के राजप्रासाद से होता है। सूत्रधार के नान्दीपाठ के अनन्तर कञ्चुकी घोषणा करता है कि महाराज दुर्योधन समागत राजाओं के साथ मन्त्रणा करेंगे। तभी रङ्गमञ्च पर दुर्योधन का आगमन होता है। सभी बड़े लोगों और राजाओं के पहुँचने पर और उनके स्थान ग्रहण कर लेने के बाद दुर्योधन उनसे मन्त्रणा करता है कि कौन कौरवों का सेनापति होगा? शकुनी की मन्त्रणा पर उन सभी समाजनों ने यह निर्णय लिया कि भीष्म ही सेनापति होंगे। इसी के बाद काञ्चुकीय आता है और कहता है कि पुरुषोत्तम नारायण पाण्डवों के दूत बनकर पधारे हैं। कृष्ण को 'पुरुषोत्तम' सुनकर दुर्योधन खीझ उठता है और कहता है कि मात्र गोपालक को क्या पुरुषोत्तम कहा जाना चाहिए? सभी समाजनों को वह आज्ञा देता है कि कोई भी केशव के आने पर खड़ा न होवे। केशव का सम्मान मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो उन्हें बन्दी बनाने में ही अपना हित समझता हूँ। क्योंकि कृष्ण के बन्दी हो जाने पर पाण्डव स्वयं ही निस्तेज और श्रीहीन हो जायेंगे। वे नेत्रहीन हो जायेंगे और उनके मतिहीन हो जाने पर मेरे लिए समस्त पृथ्वी शत्रुविहीन हो जायगी।

अतः जो केशव के सम्मान में खड़ा होगा वह बारह स्वर्ण मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा। ऐसा कहकर दुर्योधन द्रौपदी के चीरहरण के समय का चित्र मँगाता है। वह उसे देखने में तल्लीन हो जाता है। वह चित्र में

अङ्कित भाव भङ्गिमाओ पर विचार करते हुए भीम एवं अर्जुनादि पर व्यङ्ग्य कसता जाता है। जब कृष्ण उस मन्त्रशाला मे प्रवेश करते हैं तो वहाँ का दृश्य देखकर सोचते है कि धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और अर्जुन की सच्ची मित्रता के कारण मैं आज इस समराभिमानी और दूसरो की बात न मानने वाले सुयोधन के पास अनुचित दूत कार्य के लिए आया हूँ। अर्जुन के बाणरूपी वायु से प्रदीप्त भीम की क्रोधाग्नि से ये कौरव तो मरे हुए ही हैं। फिर सुयोधन तो कटुभाषी, शठ, गुणद्वेषी और अपने स्वजनो के प्रति निर्दय भी हैं। अत वह किसी भी प्रकार सन्धि न करेगा। जब कृष्ण सभा भवन मे प्रविष्ट होते है। सभी राजा उठ खडे होते हैं, किन्तु बडे ही हडबडाहट मे रहते हैं। उस सम्भ्रम की स्थिति देखकर दुर्योधन बारह स्वर्णमुद्रा के दण्ड की याद भी दिलाता है किन्तु वह स्वयं कृष्ण के तेज से सम्भ्रमात् अपने आसन से गिर पडता है और सोचता है कि बडे ही उत्साह के साथ सकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था। परन्तु केशव के प्रभाव से मैं विचलित हो ही गया। वह केशव को बैठने के लिए कहता है। वासुदेव भी सबको बैठाकर स्वय भी बैठ जाते हैं और चित्रपट की दर्शनीयता व्यक्त करते हुए द्रौपदी के केश एव वस्त्राकर्षण की भर्त्सना करते हैं। सुयोधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओ के अपमान को पराक्रम समझता है। नही तो इस ससार मे कौन ऐसा निर्लज्ज है कि जो अपने दोषों को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ?

कृष्ण के कहने पर चित्रपट हटा दिया जाता है और दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पाण्डवो का कुशल पूँछता है। कृष्ण कहते हैं कि वे कुशल से हैं और आपके शरीर एवं राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता और आरोग्य पूँछकर युधिष्ठिरादि पाण्डवो ने निवेदन किया है—

'हम लोगो ने बहुत कष्ट झेले हैं। अब उस अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की अवधि भी पूर्ण हो चुकी है। अत हमारा न्यायोचित पैतृक राज्य बाँट दिया जाय।'

दुर्योधन इस पर कहता है कि कैसा पैतृक राज्य ? मेरे चाचा पाण्डु तो मृगया के समय मुनि के शाप से ग्रस्त हो गए थे। तभी से वे तो स्त्रियो

के प्रति विरक्त हो गए थे। अत. मैं उन अन्य देवों के सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तानों के साथ पितृ सम्बन्ध कैसे बना सकता हूँ ?'

इस बात पर कृष्ण उनके पूर्वजों का इतिहास बताते हुए पूँछते हैं कि 'जब विलासी राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त हो गए तब व्यास के सयोग से नियोग द्वारा उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र कैसे राज्य प्राप्त कर सकते हैं ?' अत इस विवाद से क्या लाभ ? आपको क्रोध त्यागकर वही करना चाहिए जो युधिष्ठिर आदि कहते हैं।

दुर्योधन कहता है कि 'हे दूत ! तुम तो राज्य व्यवहार भी नही जानते। राज्य का उपभोग तो बल से होता है। यह माँगने की वस्तु नही है। यदि उन्हें राज्याकाङ्क्षा है तो वे पौरुष दिखलायें और यदि उन्हें शान्ति चाहिए तो मुनियो के आश्रम म चले जायें।'

पाण्डवो के प्रति इन कठोर वचनो को न कहने के लिए कृष्ण उसे मना करते हुए कहते हैं कि पुण्य कर्मों के सचय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनो एव मित्रो को धोखा देता है वह निश्चय ही व्यर्थ परिश्रम वाला होता है।' दुर्योधन को बान्धवो के प्रति स्नेहालु होने के कृष्ण के इस मन्तव्य पर दुर्योधन कहता है कि आपने अपने पिता के श्यालक कस पर क्यों नही स्नेह दिखाया। इसका उत्तर कृष्ण देते हैं कि कस तो मेरी माता को कितनी ही बार पुत्र विरह से पीडित करके और अपने वृद्ध पिता को बन्दी बनाकर स्वय ही मृत्यु द्वारा मारा गया। अत नीतिज्ञो की वीरता तो नि सन्देह देश और काल के अनुसार होती है। अब हमारा परिहास आप यही तक रहने दें और भाइयो से भ्रातृ स्नेह करें। इसी से लोक और परलोक दोनो ही मे आपका कल्याण है।

अन्तत. दुर्योधन कह देता है कि देवात्मजों और मनुष्यो मे बन्धुत्व स्थापित नही हो सकता।

दुर्योधन के इस उत्तर पर कृष्ण उस पद्यात्मरो से क्षुब्ध करते हुए भयभीत करते हैं। वे कहते हैं कि तुम अर्जुन के बल एव पराक्रम को क्या नहीं जानते ? अर्जुन वही हैं जिसने किरात वेशधारी भगवान् शङ्कर को

युद्ध से प्रसन्न किया था। खाण्डव वन को नष्ट करती हुई अग्नि की महावृष्टि को बाणो के जाल से रोक दिया था। इन्द्र को पीडित करने वाले निवातकवचो का वध किया और अकेले ही विराट नगर मे भीष्म आदि महारथियो को परास्त कर दिया था। इतना ही नही जब चित्रसेन ने तुम्हे बाँध लिया था तो अर्जुन ने तुम्हे भी उसके चगुल से बचाया था। इस प्रकार यदि तुम पाण्डवो को उनका दाय भाग नही दोगे तो वे जबर-दस्ती छीन लेंगे।

कृष्ण के वचनो से आहत होकर दुर्योधन कहता है कि मैं किसी भी प्रकार से राज्य क्या उसका तृण भी नही दे सकता। कृष्ण ने उसे 'अयशो लुब्ध' 'अपयश के लोभ वाला' कहकर सम्बोधित किया और कहा कि तुम तृण बीच मे रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो। इस पर दुर्योधन ने कृष्ण को भला बुरा कहा। कृष्ण ने कहा कि क्या तुम हमारा अपमान करते हो। उसने कहा—हाँ! पहले तो कृष्ण जाने को उद्यत होते है। किन्तु बाद मे बिना सन्देश कहे नही जाना चाहते। सुयोधन बात ही नहीं करना चाहता। अतः कृष्ण कुरुवश के शाप की बात कहते है और जाने को उद्यत होते हैं। तभी केशव को बाँध लेने के लिए दुर्योधन आज्ञा करता है किन्तु कोई भी उद्यत नही होता है। जब कोई भी तैयार नही होता है तो वह स्वय बाँधने के लिए उठ खडा होता है। जब कृष्ण को यह ज्ञान हो जाता है कि यह तो सचमुच ही पाश लेकर मुझे बाँधने दौड पड़ा है तब भगवान् कृष्ण विराट् रूप धारण करते है। इतने पर भी जब दुर्योधन शान्त नही होता है तो वह कहते हैं कि अच्छा! तो मैं ही पाण्डवो का कार्य करूँगा। भगवान् सभी को जृम्भित कर देते हैं। कृष्ण क्रुद्ध हो जाते हैं और सुदर्शन चक्र का आवाहन करते हैं। सुदर्शन कहते हैं कि आप पृथ्वी का भार उतारने आए है। अत. इसे आप आज यदि मार देंगे तो सभी युद्ध से विरत हो जायेंगे और आपका मुख्य कार्य सिद्ध न हो सकेगा। इस मन्त्रणा पर भगवान् कृष्ण शान्त हो जाते हैं। बाद मे मञ्च पर अन्य आयुध कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख और नन्दन नामक खड्ग भी आते हैं किन्तु सुदर्शन सभी को लौटा देते हैं।

गरुड़ के आने पर तो समस्त चराचर जगत् हिल उठता है। अतएव पुत्र गरुड़ को भी वे आदरपूर्वक लौटने के लिए कहते हैं। बाद में स्वयं भी मेरुगुहा की ओर वे प्रस्थान कर जाते है।

भगवान् कृष्ण भी जब पाण्डव शिविर की ओर जाने को उद्यत होते हैं तभी धृतराष्ट्र वहाँ आ जाते हैं और अपने पुत्र के अपराध के लिए क्षमा माँगते हैं। भाँति-भाँति से अनुनय विनय करके वह उनके चरणों पर गिर पड़ते हैं। भगवान् उन्हें उठाते हैं और भरतवाक्य के अनन्तर नाटक समाप्त हो जाता है।

## कथानक समालोचन और उसका महाभारतीय परिवेश

दूतवाक्य की कथा उद्योग पर्व के अवान्तर खण्ड भगवद्यान पर्व से ली गई है। दौत्य कर्म की प्रधान कथा को मात्र एक ही अङ्क में यहाँ प्रदर्शित किया गया है। यहाँ दुर्योधन की निकृष्टता पर और भगवान् कृष्ण के दिव्य स्वरूप पर अधिक प्रभाव डाला गया है। (१) महाभारत में कृष्ण को पकड़ने के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है यद्यपि दुर्योधन शकुनि, कर्ण एवं अन्य लोगों के साथ कृष्ण को पकड़ने के लिए मन्त्रणा करता है। (२) दिव्य अस्त्रों के प्राकट्य का दृश्य कवि द्वारा कल्पित है जो मात्र मञ्चन को प्रभावी बनाने के लिए किया है (३) सम्पूर्ण दूत-वाक्य में कृष्ण ने सदैव दुर्योधन के लिए 'सुयोधन' (युद्ध से युद्ध करने योग्य) सम्बोधन का ही प्रयोग किया गया है। कवि कृष्ण के सामने दुर्योधन को दुःख से युद्ध करने योग्य बिल्कुल नहीं मानता। महाभारत में इस सम्बोधन पर इतना ध्यान नहीं रक्खा गया है। (४) दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र के लिए व्यास से उनकी उत्पत्ति का व्यङ्ग्य कवि की अपनी प्रतिभा है[1]। (५) युधिष्ठिरादि पाण्डु पुत्रों पर अन्य देवों की सन्तान होने का आक्षेप महाभारत में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरा हुआ है। किन्तु दुर्योधन पर भी यह आक्षेप हो सकता है। इस प्रकार आक्षेप प्रस्तुत करके कवि ने

१. व्यासेन जातं पुनरम्बिकायाम् ...... पृ० २५।

चमत्कार प्रस्तुत किया है।

विराट् रूप के प्रदर्शन को महाभारत मे मात्र चार ही लोग देख पाए थे—भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र, विदुर और सञ्जय। यहाँ पर 'कथं न दृष्टः केशवः' केशव नही दीखते, कहाँ गए 'अयं केशवः'[1] यह केशव है—आदि के द्वारा अपने ढङ्ग से इतिवृत्त को रखकर कवि द्वारा दुर्योधन पक्ष के लोगो मे सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है। इस प्रकार महाभारत के दूतकर्म की ही घटना को कवि ने यहाँ अपने ढाँचे मे ढालकर नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। इस नाटक के रस आदि के विषय मे प० गणपति शास्त्री का मत इस प्रकार है—

**दूतवाक्यस्य रसः—**

अस्य 'दूतवाक्यम्' इति संज्ञया आनुगुण्यं पाण्डवदूतस्य श्रीकृष्णस्य वाक्यमत्र प्रधानमिति कृत्वा परिस्फुटमेव। अत्र रसस्तु वीरः, साम्नोपच्छन्दने परुषभाषणेन संक्षोभणे वा भगवता कृतेऽपि युद्धोत्साहस्य सुयोधनगतस्य अविचाल्यस्य प्रतीतेः। अथवा—

अत्र रसो धर्मवीरः; अष्टादशाक्षौहिणीबलसमुदयस्य तदधिष्ठातॄणां पौण्डवकौरवाणां च क्षेमस्य परमधर्मभूतस्यार्थे भगवतात्मपरिभवमनादृत्य प्रयत्नस्य करणाद् भगवद्गतस्य धर्मोत्साहस्य स्थायिनः सर्वतः परिस्फूर्तेः।

एतच्च रूपकं ख्यातेतिवृत्ततया सुयोधनरूपख्यातोद्धतनायकाश्रयतया वीराख्यदीप्तरसवत्तया एकाङ्कतया च धनञ्जयोक्तव्यायोगलक्षणबहुांशयोगाद् व्यायोगव्यपदेशमर्हति—

> ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।
> हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद् रसाः॥
> अस्त्रीनिमित्तसङ्ग्रामो जामदग्न्यजये यथा।
> एकाहचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः॥ (दश० ३)

धर्मवीररसपक्षे नायकस्य श्रीकृष्णस्य धीरोदात्ततया मा भूदयं व्यायोगः, अपितु वीथीसञ्ज्ञो रूपकभेदो वाच्यः। सा हि भरतेन लक्षिता—

---

१. अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य..........अहो दीर्घत्वं केशवस्य...पृ० ५६।

'सर्वरसलक्षणाढ्या युक्ता ह्यङ्गैस्त्रयोदशभि ।
वीथीस्यादेकाङ्का तथैकहार्या द्विहार्या वा ॥
—इति (ना० शा०)

अत्र सर्वरसलक्षणाढ्येति रसविशेषनियमाभावो बोध्यते, न तु एकत्रैव सर्वरसयोगनियम । द्विहार्येति च प्रधानपात्रद्वयप्रयोज्यत्वमर्थ । एवञ्च कथञ्चिद् वीथीलक्षणयोग स्पष्ट ।

वस्तुतस्तु भासरूपकाणा प्रचरन्नाटयशास्त्रापेक्षया प्राचीनतायाः प्रतिमानाटकोपोद्घाते स्थापितत्वात् तेष्वर्वाचीनलक्षणान्यनुगमयितु नातीव सरम्भ शोभत इति तत्त्वम् ॥

'दूतवाक्य' नाम का कारण

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवो की ओर से दूत बनकर कौरवो के शिविर मे जाते हैं और उन्ही के वचनो की इस नाटक मे प्रधानता होने से इस नाटक का नाम 'दूतवाक्य' है। भगवान् कृष्ण के नीतियुक्त वचन ( =वाक्य ) कभी तो साम अर्थात् सान्त्वना भरे शब्दो से दुर्योधन को शान्त करते है और कभी कठोर वचनो से उसे धर्षित करते हैं। सम्पूर्ण नाटक दूतवेषधारी श्रीकृष्ण के वचनो से अनुस्यूत है। अत नाटक का नाम 'दूतवाक्य' सार्थक है।

नाटक में रस

सम्पूर्ण नाटक वीररस से अनुप्राणित वचनो से व्याप्त है। श्रीकृष्ण द्वारा अपने अस्त्रो का एकाएक आवाहन करना और उनके विराट रूप प्रदर्शन म अद्भुत रस का पुट दिया गया है। 'यह केशव हैं' 'अरे केशव कहाँ है' आदि द्वारा सम्भ्रम पैदा कर दिया गया है। कवि द्वारा यहाँ प्रधान रूप से आरभटी वृत्ति का प्रयाग है।

नाटक का प्रकार

नाटकीय दृष्टि से 'दूतवाक्य' 'व्यायोग' की श्रेणी का नाटक है। व्यायोग एकाङ्की होना चाहिए। इसकी घटना ऐतिहासिक होती है। इसका नायक गर्वीला होता है। यह स्त्री से असम्बद्ध होता है और इसमें

युद्ध आदि होते हैं। ये सभी लक्षण 'दूतवाक्य' में घटते हैं। व्यायोग की व्युत्पत्ति है 'व्यायुज्यन्ते बहुपुरुषा अस्मिन्निति।' अर्थात् बहुत से पुरुषपात्र जिसमें होते हैं। इसका लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार है—

> ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
> हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः॥
> एकाङ्कश्च भवेदस्त्री निमित्तसमरोदयः।
> कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः॥
> राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः।
> हास्यशृङ्गारशान्तेभ्य इतरेऽत्राङ्गिनो रसाः॥

इस प्रकार व्यायोग का नायक राजर्षि, दिव्यपुरुष या धीरोद्धत होना चाहिए। यहाँ भगवान् कृष्ण दिव्य पुरुष हैं और इनका चरित्र भी इतिहास प्रसिद्ध है। अतः 'दूतवाक्य' नाटक के दस प्रकारों में से 'व्यायोग' की कोटि का नाटक है।

### दूतवाक्य में नाट्यकला

भास के नाटक 'नाट्यकला' की दृष्टि से नितान्त सुन्दर हैं। अन्य नाटकों की भाँति यहाँ भी दूतवाक्य में भास ने नाटकीय घटनाओं का सन्निवेश अत्यन्त सुसङ्गत रूप से किया है। कथोपकथन में अस्वाभाविकता कहीं भी प्रतीत नहीं होती। छोटे-छोटे वाक्यों में विचित्र भाव भरे पड़े हैं।

'दूतवाक्य' एक 'घटना प्रधान' रूपक है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने की बहुत छोटी सी घटना को भास ने अपनी प्रतिभा से अनूठा रूप दे दिया है। श्रीकृष्ण के प्रभाव का वर्णन तथा केशापकर्षण चित्र का प्रसङ्ग प्रस्तुत करके दुर्योधन के चरित्र पर अत्यन्त कुशलता से प्रकाश डाला गया है।

प्रवाहपूर्ण भाषा एवं चमत्कारपूर्ण तथा उपयुक्त शब्दावली वाले कथोपकथन का सहारा लेकर भास ने यहाँ श्रीकृष्ण एवं दुर्योधन के वार्तालाप में जान डाल दी है, जैसे दुर्योधन की उक्ति है—

कथं कथं दायाद्यमिति ? भोः—
वने पितृव्यो मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥२१॥

'अर्थात् वन में शिकार खेलते समय मेरे कृतापराधी चाचा पाण्डु को जब शाप मिला तभी से वे स्त्री से विरत हो गए। फिर दूसरे के पुत्रों के साथ दायाद्य कैसा ?'

इसका इतना सटीक उत्तर श्रीकृष्ण देते हैं कि कथोपकथन में जान आ जाती है—

पुराविदं भवन्तं पृच्छामि—
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेण प्राप्तः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एवं लभेत राज्यं जनकः कथं ते ? ॥ २२ ॥

अर्थात् विचित्रवीर्य के क्षयरोग से ग्रस्त हो जाने पर पुनः अम्बिका से व्यास द्वारा क्या तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र नहीं उत्पन्न हुए थे ?

भास राजनीतिक सिद्धान्त 'वीरभोग्यावसुन्धरा' को ही दुर्योधन की ललकार द्वारा कथोपकथन मे प्रस्तुत कर अत्यन्त चमत्कार पैदा कर देते हैं, जैसे—

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थात् राज्य न तो मांगा जाता है और न तो उसे दीन दुखिया लोगों को दान में ही दिया जाता है यदि राज्य की इच्छा हो तो पाण्डव लड़कर ले लें। यदि शान्ति की इच्छा हो तो आश्रम में चले जायें।

## चरित्रचित्रण

प्रस्तुत नाटक दूतवाक्य में प्रधान रूप से दो ही पात्र वासुदेव और दुर्योधन हैं। वृद्ध धृतराष्ट्र एवं काञ्चुकीय प्रसङ्गात् प्रस्तुत किए गए हैं।

नाटक मे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव एव द्रौपदी तथा कौरव पक्ष के शकुनि, द्रोण और गाङ्गेय भीष्म की चर्चा आयी है।

**वासुदेव**

महाकवि भास द्वारा वासुदेव का चित्रण दिव्य पुरुष के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। भास सम्भवत वैष्णव थे। इसीलिए उन्होने वासुदेव को भगवान् नारायण के रूप मे प्रस्तुत किया है। सभा भवन मे बैठे हुए दुर्योधन के सामने उसका काञ्चुकीय श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहता है। भगवान् कृष्ण के प्रताप का प्रभाव कौरवो मे बहुत अधिक है क्योकि दुर्योधन के निषेध कर देने पर भी सभी राजसभासद वासुदेव के आते ही खडे हो जाते हैं। दुर्योधन स्वय भी सशकित है कि वह भी कही वासुदेव के आगमन पर खडा न हो जाय। इसीलिए वह अपना ध्यान द्रौपदी के वस्त्राप कर्षण वाले चित्र की ओर लगाता है किन्तु भगवान् वासुदेव का इतना प्रभाव था कि दुर्योधन की अभिलाषा पूर्ण नही होती और वह भी स्वय उठ खडा होता है। इतना ही नही अपितु श्रीकृष्ण की भर्त्सना पर चित्रपट को भी उनके प्रताप से आहत होकर वापस भेज देता है। भगवान् कृष्ण के चरित्र पर दुर्योधन द्वारा अत्यन्त सबल आक्षेप किये जाते हैं, किन्तु वासुदेव के तर्कयुक्त वचनो से वे शिथिल हो गए।

भगवान् की वाणी को सुनकर आए सुदर्शन के अनुसार वे इस प्रकार के हैं—

अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसरक्षणोद्यत ।
एकोऽनेकवपु श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदन ॥ ४३ ॥

'वे अव्यक्त अर्थात प्रकृति के आदिभूत हैं। वे चिन्तन की सीमा के परे है, ससार की रक्षा करने मे तत्पर है, और शत्रुसेना का सहार करने वाले हैं। शोभा सम्पन्न वह अनेक रूप धारण करने वाले है।

धृतराष्ट्र तो उन्हे भगवान् नारायण, विप्रो के प्रिय, शार्ङ्गपाणि तथा त्रिदशाध्यक्ष कहकर सम्बोधित करते है।

भगवान् वासुदेव का चरित्र यहाँ दिव्य मानव के रूप मे कवि ने प्रस्तुत किया है। वे एक कुशल एव नीति विशारद दूत है। दुर्योधन के ही शब्दो

में वे पाण्डवों के मूल शक्ति के रूप में हैं। उनके बिना पाण्डव मरे से हैं। इसीलिए धृतराष्ट्र भी 'पाण्डवश्रेयस्कर' (पृष्ठ ७६) (पाण्डवों का कल्याण करने वाले) शब्द से उन्हें सम्बोधित करते हैं।

वासुदेव मानव के ही समान आवेश में आ जाते हैं। वे दुर्योधन को क्रोध में 'शठ', 'बान्धवनिस्नेह', 'काक', 'केकर', 'पिङ्गल' आदि कठोर शब्दों से सम्बोधित कर डालते हैं। अन्ततः रोष में समुदाचार को भी भूल जाते हैं—वे सुदर्शन से कहते हैं—'रोषात् समुदाचारो नावेक्षित ।' (पृ० ६४)। वे दुर्योधन का कभी भी दुर्योधन करके सम्बोधित नहीं करते हैं। सदैव उसे सुयोधन कहते हैं। उनकी दृष्टि में वह सुख से युद्ध करने योग्य है। इस प्रकार भासकृत भगवान् वासुदेव का चरित्र स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि पर चित्रित है।

## दुर्योधन

दुर्योधन इस नाटक का धीरोद्धत पात्र है। यहाँ पर उसे भास ने यथावत् खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसका बाह्य व्यक्तित्व तीसरे श्लोक में इस प्रकार है—

'वह श्याम वर्ण का युवक है। वह श्वेत रेशमी उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए है। उसके मस्तक पर सुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चँवर शोभायमान है। उसके शरीर पर अङ्गराग लगा है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग आभूषणों के मणियों की छटा से इस प्रकार जगमगा रहे हैं जैसे तारों के मध्य में पूर्णिमा का चन्द्र शोभा पा रहा हो॥'

दुर्योधन अत्यन्त अहंकारी है। वह गर्वीला, दुष्टवादी, गुणद्वेषी, हठी, उद्धत, युद्धप्रिय, बन्धुनिस्नेह एवं अशिष्ट है। वह आत्मीयजनों का निरादर करने वाला है। वासुदेव कहते हैं कि—

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठ स्वजननिर्दय.।
सुयोधनो हि मा दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

उसके अहंकार का उदाहरण 'राज्य नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते' आदि में मिलता है जहाँ वह कहता है कि 'राज्य किसी से

मांगा नही जाता और न तो दीनो को दान मे ही दिया जाता है यह तो युद्ध मे जीता जाता है।'

अन्ततः वह कह ही देता है कि चाहे कुछ भी हो जाय किन्तु मैं तृण मात्र भी नहीं दे सकता—

परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण को पकड लेने का प्रयास उसके अहंकार की पराकाष्ठा है। इस प्रकार भास ने दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का चित्रित किया है।

**दिव्यास्त्र**

भगवान् वासुदेव के दिव्यास्त्र भी पात्रो के रूप मे यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योकि सुदर्शन के ही कहने से तो वासुदेव को समुदाचार का ध्यान आता है। भास द्वारा दिव्यास्त्रो का इस प्रकार से प्रस्तुतीकरण नाटक के प्रभाव एवं चमत्कार को और भी बढा देता है। वस्तुतः भगवान् कृष्ण के सभाभवन से बाहर आते ही नाटक का तो सहसा अवसान ही हो जाता है। अतः कार्य को प्रचलित रखने के लिये और भगवान् कृष्ण के रोष का परिचय देने के लिये इस प्रकार का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक था।

—सुधाकर मालवीय

## पात्राणि

| | | |
|---|---|---|
| काञ्चुकीय. | — | दुर्योधनभृत्यः । |
| दुर्योधनः | — | धृतराष्ट्रस्य ज्येष्ठ पुत्र. । |
| वासुदेवः | — | श्रीकृष्ण । |
| सुदर्शनः | — | श्रीकृष्णचक्रायुधाभिमानीदेवः। |
| धृतराष्ट्र: | — | पाण्डोर्ज्यष्ठभ्राता । |



पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद्विफलश्रमः ॥

—दूतवाक्य २५

पुण्य कर्मों के सञ्चय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनों (अथवा मित्रों) को धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥ २५ ॥

भासनाटकचक्रे

# दूतवाक्यम्

'ज्योत्स्ना'-'सरला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

---

## प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

---

* ज्योत्स्ना *

यत्कृपालवमात्रेण प्रपूर्यन्ते मनोरथाः ।
वाग्देवीं विघ्नराजं च तौ वन्देऽहं पुनः पुनः ॥ १ ॥
पित्रा गुरुवरां पद्मां नौमि ज्ञानप्रदायिनीम् ।
यस्याः सवित् सुधाम्भोधेः सीकरोऽपि रसार्णवः ॥ २ ॥
भासनाटकरत्नस्य रसमानसमन्विता ।
नाट्यस्य दूतवाक्यस्य व्याख्या नव्या विरच्यते ॥ ३ ॥
टीकामभिनवां रम्यां 'ज्योत्स्ना' च सरलां तथा ।
करोति बालबोधाय मालवीयः सुधाकरः ॥ ४ ॥

अथ कविकुलमूर्धन्यः तत्रभवान् श्रीभासः दूतवाक्याभिधाने रूपके निर्विघ्नपरिसमाप्तिसूचिकायाः पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गायाः नान्द्याः समनन्तरं सूत्रधारस्य प्रवेशं सूचयति—नान्द्यन्ते इत्यादिना । नान्द्यन्ते=नन्दिरानन्दः, तस्या इयं नान्दी नाम नाटक-प्रयोगारम्भे देवतापरिषदानन्दार्थमभिनयप्रारम्भ-

---

* सरला *

( नान्दीपाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश )

सूत्रधार —

पाद पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सव स व ।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे ॥ १ ॥

---

सूचनार्थं च सम्पाद्यमाना वादित्र क्रियोच्यते ।'[1] तस्या नान्द्या अन्ते अवसाने नान्दीसमापनानन्तरमित्यर्थं । तत =तदनन्तर, गीतादिक्रियापरिसमाप्त्य-व्यवहितोत्तरकाले इत्यर्थः । सूत्रधार =सूत्र प्रयोगानुष्ठान धारयति निर्वाहयतीति सूत्रधार । प्रविशति रङ्गम् ।

अन्वय —उपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सव. स पाद व पायात्, तनुताम्रनखेन येन खे नमुचि व्याविद्ध ॥ १ ॥

संस्कृत टीका—उपेन्द्रस्य=इन्द्रानुजस्य, वामनस्य, उपगत इन्द्रम् अनुगत्वात् इति उपेन्द्र., सर्वलोकोत्सव.=सर्वेषा लोकाना जगताम् उत्सव. हर्षहेतु, स —प्रसिद्ध, पाद =चरण., व =सामाजिकान् पायात् = रक्षतात् । तनुताम्रनखेन=अल्परक्तनखेन । तनव अल्पाकृतय, ताम्रा अरुणाश्च नखा यस्य, तेन तथाभूतेन । एतेन बाल भावानुत्तीर्णत्वमुक्तम् । येन=पादेन, खे=आकाशे, नमुचि =तन्नामा बलिबन्धु असुर, व्याविद्ध =प्रक्षिप्त. । नमुचिव्यावेधनकथा पुराणेष्वनुसन्धेया । इन्द्रेण तु नमुचिर्नामासुर समुद्रफेनेन निहत । अत्र नमुचिव्यावेधनलक्षणस्य चापदाना-द्भुतस्य कथनेन परमाद्भुतविश्वरूपप्रदर्शननिमित्तो दुर्योधननिग्रहो भगवत्कृतो ग्रन्थप्रतिपाद्यो द्योतित । 'सर्वलोकोत्सव स व' इत्यत्र छेकानुप्रास । अनुष्टुप्वृत्तम् ॥ १ ॥

---

सूत्रधार—भगवान् वामन (विष्णु) का वही सर्वलोकानन्दकारी, कुछ कुछ अरुण नख वाला चरण आप सामाजिको की रक्षा करे, जिसने नमुचि दैत्य को आकाश मे फेंक दिया था ॥ १ ॥

---

[1] नान्दी यथा—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
(सा० द० ६ २४)

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते।। अङ्ग ! पश्यामि।

( नेपथ्ये )

भो भो प्रतिहाराधिकृता ! महाराजो दुर्योधन समाज्ञापयति।

सूत्रधार — भवतु विज्ञातम्।

---

एवमार्यमिश्रान् = आर्या = कुलशीलक्षमाधर्मसत्यादिसद्गुणसम्पन्ना सभ्या. ते च ते मिश्रा = पूज्या, तान् श्रेष्ठसामाजिकान्, एवम् = अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण, विज्ञापयामि = सूचयामि। अये = इत्यव्ययमाश्चर्ये विषादे वा, अये इति विज्ञापनाभङ्गेनोत्पन्न विषादम्। अकस्माच्छब्दश्रवणेन संजातमाश्चर्यं वा द्योतयति। किन्नु खलु — म इति वितर्के, किं कारणम् ? मयि = सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = विज्ञापनव्यासक्तचित्ते विज्ञाप्यबोधनार्थं-मुद्यते। शब्द इव — अनिश्चितरूप शब्द, श्रूयते = कर्णगोचरीभवति। अङ्ग = इति सम्बोधने सम्भ्रमे वा, पश्यामि = शब्दस्य विशेषाकार निमित्त च परीक्ष्य ज्ञास्यामि।

नेपथ्यम् = जवनिकान्तर्भागो नटप्रसाधनस्थल वा, वक्ष्यमाणाकार शब्दो नेपथ्ये प्रवृत्त इत्यर्थ। शब्दस्याकारमाह-भो भो इत्यादि।

भवत्विति। भवतु — शब्दस्य भवा प्राप्तावसरं, लोट. प्राप्तकालार्थ-त्वात्। प्राप्तावसरत्वोक्त्या च शब्दस्य विज्ञाप्य वस्तुसम्बद्धत्व प्रत्यायितम्। विज्ञातम् = अवगतम्, शब्दस्य निमित्तम् इति शेष।

---

इस प्रकार मैं आप महानुभावो को सूचित करता हूँ। अरे, सूचना देने मे व्यस्त मुझको कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है ? अच्छा, देखूँ तो।

( नेपथ्य मे )

हे हे द्वारपालाधिकारियो ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं—

सूत्रधार—अच्छा, समझा—

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह ।
मन्त्रशाला रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ।। २ ।।

( निष्क्रान्तः )

।। स्थापना ।।

( ततः प्रविशति काञ्चुकीयः )

---

अन्वयः—धार्तराष्ट्राणां पाण्डवैः सह विरोधे उत्पन्ने (सति) भृत्यः दुर्योधनाज्ञया मन्त्रशाला रचयति ।। २ ।।

संस्कृत टीका—धृतराष्ट्रस्य अपत्य पुमान् धार्तराष्ट्र तेषाम्, धार्तराष्ट्राणां=धृतराष्ट्राणां=धृतराष्ट्रपुत्राणां सुयोधनादीनाम्, पाण्डवैः सह=पाण्डुपुत्रैर्युधिष्ठिरादिभि सह, विरोधे=वैरे, उत्पन्ने सति=प्रादुर्भूते सति, दुर्योधनाज्ञया=दुःखेन युद्धचत इति दुर्योधनः तस्य आज्ञा, तया, कौरवज्येष्ठदेशेन, भृत्यः=भरतीति भृत्य दुर्योधनस्य सेवक., मन्त्रशाला=मन्त्रस्य शाला ताम्, कार्यसम्मन्त्रणार्था सभाम्, विचारगृह सभास्थानमिति यावत्, रचयति=योजयति, मन्त्रसभायोगानुकूलमाचरतीत्यर्थ. । तच्च मन्त्रसभासमवायार्हपार्थिवाह्वानाय प्रतिहाराधिकृतानां प्रेरणम् । एतन्निमित्तमेव शब्दस्योत्थानमिति तात्पर्यम् । अत्राप्यनुष्टुप् छन्द ।। २ ।।

विज्ञाप्य विज्ञापन नेपथ्योत्थशब्दविवरणमङ्गया निर्वृत्त मन्त्वानस्य सूत्रधारस्य निष्क्रमणमाह—निष्क्रान्त इति । स्थापनेति । एव कथावस्तवशस्य स्थापनात् स्थापना । क्वचित् प्रस्तावनेति पाठ । स्थापना प्रस्तावनेति पर्यायौ । स्थापनायां कविकाव्यनामानुकीर्तनं तदुत्कीर्तनसमुदाचारप्रवृत्तिकालादरूप रूपकस्य प्राचीनत्वं गमयति ।

सूचितस्य भृत्यस्य प्रवेशमाह—तत इत्यादि । भो भो इत्यादि ।

---

पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र के पुत्रों का विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण दुर्योधन की आज्ञा से उनके भृत्य सभागृह की योजना कर रहे हैं ।। २ ।।

( चला जाता है )

।। स्थापना ।।

( इसके बाद कञ्चुकी का प्रवेश )

काञ्चुकीय.—भो भो. प्रतिहाराधिकृताः ! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति—अद्य सर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि । तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति । ( परिक्रम्यावलोक्य ) अये, अय महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते । य एष.,

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीय·
सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गराग ।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्यगत· शशाङ्क· ॥ ३ ॥

प्रतिहाराधिकृता.=प्रतिहारो द्वार तस्मिन्नधिकृता· तत्र स्थित्वा राज्ञ· आज्ञा ये पृत्या· प्रतिपालयन्ति ते, द्वाररक्षाधिकारिणः सर्वपार्थिवै· सह=सर्वं. पार्थिवै· पृथिव्या ईश्वरै साकम्; मन्त्रयितुम्=आलोचयितुम्, आलोचन चैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयस्य पाण्डवयुद्धार्थं संगृहीतस्य सेनापतिनिर्धारण· विषय स्पष्टीभविष्यति । अभिवर्तते=अभिमुखमागच्छति ।

अन्वयः—श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः सच्छत्रचामरवरो रचिता· ङ्गरागो विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः श्रीमान् नक्षत्रमध्ये पर्यगतः शशाङ्क· इव (विभाति) ॥ ३ ॥

संस्कृत टीका—दूत· दुर्योधन विशिनष्टि—श्यामो युवा इति । श्याम =कृष्णवर्णः, युवा=तरुणः, सितदुकूलकृतोत्तरीय·=सितेन धवलेन

काञ्चुकीय—हे प्रतिहारियो ! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं कि 'आज मैं अखिल राजमण्डल के साथ मन्त्रणा करना चाहता हूँ । अत· सभी राजाओं को बुलाओ । [ घूमकर और देखकर ] अरे यह तो महाराज दुर्योधन इधर ही आ रहे हैं, यह जो है—

वह तो वही श्याम वर्ण युवक है—जो श्वेत रेशमी उत्तरीय धारण किए हैं, जिसके मस्तक पर सुन्दर छत्र और श्रेष्ठ चँवर शोभायमान हैं, तथा जिसके शरीर पर अङ्गराग लगा है एवं जिसके अङ्गप्रत्यङ्ग । मणियों की छटा से ऐसे कान्तिमान् हो रहे हैं जैसे नक्षत्रो [ तारों मध्य पूर्णिमा ... गा रहा हो ॥ ३ ॥

( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो दुर्योधनः )

दुर्योधनः—

> उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षं
> प्राप्तं रणोत्सवमिमं सहसा विचिन्त्य ।
> इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना-
> मुत्कृत्तदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुम् ।। ४ ।।

---

दुकूलेन क्षौमेण सूक्ष्मवस्त्रेण वा कृतम्=विहितम्, उत्तरीयं=प्रावारः येन स तथोक्तः, सच्छत्रचामरः=सत् समीचीनं छत्रं चामरवरश्च यस्मिन् स शोभनच्छत्रव्यजनवरः, रचिताङ्गरागः=रचितः अङ्गरागः अङ्गानुलेपनं येन सः विहिताङ्गानुलेपनः विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः=विभूषणमणिद्युतिभिः आभरणरत्नकान्तिभिः रञ्जितानि रूषितानि अङ्गानि यस्य सः, आभरणोत्पलमणिकान्तिशोभितविग्रहः, श्रीमान् श्रीः=अस्ति अस्य श्रीमान् शोभायुक्तः, [ यः एषः =दुर्योधनः सः ] नक्षत्रमध्ये=नक्षत्राणां मध्ये तस्मिन्, उडुगणपरिवृतः, पर्वगतः=पर्वणि गतः, पूर्णिमां प्राप्तः, शशाङ्कः इव=शशः मृगः अङ्के=क्रोडे यस्य सः, चन्द्रः इव, प्रियदर्शनत्वात् शोभते इति शेषः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। ३ ।

टिप्पणी— दुकूलं तु क्षौमेऽपि सूक्ष्मवाससि इति केशवस्वामी । द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । संव्यानमुत्तरीयं चेत्यमरः ।

अन्वयः—उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षम् इमं रणोत्सवं प्राप्तम् इति सहसा विचिन्त्य पाण्डवबले वरवारणानां मुखानि उत्कृत्तदन्तमुसलानि कर्तुम् इच्छामि । ४ ।।

संस्कृत टीका—उद्धूतरोषमिव=उद्धूतः निरस्तः रोषः=कोपः

---

[ इसके बाद उपर्युक्त प्रकार की छटा से सम्पन्न दुर्योधन का प्रवेश ]

दुर्योधन—इस युद्धोत्सव के एकाएक उपस्थित हो जाने पर विचार करके मेरा हृदय प्रसन्न होकर मानो क्रोधरहित हो गया है । अब मैं पाण्डव-सेना के श्रेष्ठ गजराजों के मूसलाकार दन्तों को उखाड़ फेंकना चाहता हूँ ।। ४ ।।

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम्।

दुर्योधनः—सम्यक् कृतम्। प्रविश त्वमवरोधनम्।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

---

पाण्डवविषयो येन तद्, विनष्टक्रोधमिव, मे=मम, हृदय=चित्त, सहर्ष=हर्षयुक्तं भवति। इवेति सम्भावनायाम्। तेन रोषस्य सतोऽप्युद्भूतमदयभासमानतोक्ता, सा च चित्तवृत्त्यन्तरेणाभिभवादित्याशयः। एवं च रोषन्ययकारेण हर्षं उदित इति तात्पर्यम्। कथं हर्षोदयस्तत्राह—इमं=वर्तमान, रणोत्सव=रणस्य उत्सवः तम्, युद्धमेवानन्दहेतुत्वाद् उत्सवम्, संग्राममहम्, प्राप्तम्=समागतम्, इति सहसा विचिन्त्य=इति झाक विमृश्य, अतः पाण्डवबले=पाण्डवानां बल तस्मिन्, पाण्डवानां सैन्ये, वरवारणानां=प्रशस्तगजानाम्, वराश्च ते वारणाः तेषाम्, मुखानि=आननानि, उत्कृत्तदन्तमुसलानि=उत्कृत्ताः छिन्नाः दन्तमुसला, दन्ता मुसला इव येषु तानि तथाभूतानि, उत्पाटितरदानि, कर्तुम्=विधातुम्, इच्छामि=ईहे। एवञ्च इच्छायाः फलप्राप्तिकाल प्रत्यासन्नो युद्धस्यासन्नत्वादिति निश्चयो हर्षोदये कारणमित्युक्तं भवति। 'इच्छा हि' इति क्वचित् पाठ। तथा हि शब्दो हेतौ, यस्मात् कारणादित्यर्थः। इच्छा=काम, ममास्तीत्यर्थगम्यम्। अतः अस्मिन् रणे पाण्डवसैनिकगजानां विनाश करोमीति विवेकः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

टिप्पणी—हृदयं—'चित्तं तु चेतो हृदयम्' इत्यमरः। उत्सवः-'महस्तूत्सवतेजसो'—इत्यमर।

संस्कृत टीका—जयत्विति। समानीतम्=आहृतम्। सम्यगित्यादि।

---

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो। महाराज की आज्ञा से अखिल राजमण्डल को बुला लिया गया है।

दुर्योधन—बहुत अच्छा किया। अब तुम अन्तःपुर में जाओ।

काञ्चुकीय—जैसी महाराज की आज्ञा। (चला जाता है)

दुर्योधनः—आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीसमुदयः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हति ? किमाहतुर्भवन्तौ—महान् खल्वयमर्थः। मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति।

सदृशमेतत्। तदागम्यतां मन्त्रशालामेव प्रविशामः। आचार्य ! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। पितामह ! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। मातुल ! अभिवादये। प्रविशतु

---

अवरोधनम्=अन्तःपुरम्। आर्यावित्यादि। वैकर्णवर्षदेवौ=राजविशेषौ, वैकर्तनवर्षदेवाविति क्वचित् पाठः। एकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः=एकादश या अक्षौहिण्यः, सेनापरिमाणविशेषाः ता एव बलानि सैन्यानि तेषां समुदयः सङ्घातः।

टिप्पणी—'त्रिहयं पञ्चपादातं यदेकरथकुञ्जरम्।
सैन्यं सा पत्तिरेतस्मात्त्रैगुण्यात् स्युर्यथाक्रमम्॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः।
अनीकिनीत्यनीकिन्यः पुनरक्षौहिणी दश॥"
—इति वैजयन्तीकोशः।

संस्कृत टीका—किमाहतुरित्यादि। एतच्च पृष्टयोः रङ्गमपृष्टयोः प्रतिवचनस्यानुवादभङ्ग्या प्रकाशनम्। इदमाकाशभाषितमित्युच्यते। यदाह दशरूपके—

'किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥'

सदृशं=युक्तम्। तदागम्यतमित्यादीनि=आहूतागतान् द्रोणभीष्मादीन्

---

दुर्योधन—हे आर्य वैकर्ण एवं वर्षदेव ! बतलाइए—जो मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या आप लोग कहते हैं ? वस्तुतः यह विषय महत्त्वपूर्ण है। अतः मन्त्रणा करके ही इस सम्बन्ध में वक्तव्य दें।

यह उचित ही है। तो आइए, मन्त्रशाला [ सभाभवन ] में ही प्रवेश करें। आचार्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप मन्त्रशाला में प्रवेश

भवान् मन्त्रशालाम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! प्रविशतां भवन्तौ। भो भो. सर्वक्षत्रिया.! स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तः। वयस्य! कर्ण! प्रविशामस्तावत्।

( प्रविश्य )

। आचार्य! एतत् कूर्मासनम्, आस्यताम्। पितामह! एतत् सिंहासनम्, आस्यताम्। मातुल! एतच्चर्मासनम्, आस्यताम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! आसातां भवन्तौ। भो भो. सर्वक्षत्रियाः! स्वैरमासतां भवन्त.। किमिति किमिति महाराजो नास्त इति। अहो सेवाधर्मः। नन्वयमहमासे। वयस्य कर्ण! त्वमप्यास्स्व। (उपविश्य)

---

प्रति सत्कारवाक्यानि। कूर्मासनम्=कूर्माकाराङ्कितम् आसनम्, स्वैरं=नि.शङ्कम्।

किमितीति। किमिति किमिति=कुतः कुतः, असितु शङ्कमानानिव सर्वक्षत्रियान् पश्यन् पृच्छति। शङ्कन्त इति क्रियाध्याहारः। तैरुक्तं शङ्काहेतुमनुवादमङ्गया प्रकाशयति—महाराज इत्यादि। अत्र इतिशब्दानन्तरं 'किं ब्रूथे'ति शेषः। सेवाधर्मः=सेव्यानुरोधसमुदाचारः, अनुपविष्टे सेव्ये अनुपवेशनलक्षण.। ननु=इति अनुनये। वयस्य=हे सखे!।

---

करें। पितामह! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मन्त्रशाला मे प्रवेश करें। मामा! आपका अभिवादन करता हूँ। आप मन्त्रशाला मे प्रवेश करें। आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनो भी प्रवेश करें। हे हे समस्त क्षत्रिय राजाओ! आप सब भी स्वेच्छापूर्वक [ शनै शनै ] प्रवेश करें। हे मित्र कर्ण! सब तो हम भी प्रविष्ट होएँ।

( प्रवेश करके )

आचार्य! यह कूर्मासन है इस पर आप बैठें। पितामह! यह सिंहासन है इस पर आप बैठिए। मामा! ( यह चर्मासन है इस पर आप बैठिए ) आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनो [ यथेच्छ ] बैठें। हे हे समस्त क्षत्रियगण! आप भी स्वेच्छापूर्वक बैठ जाइए। यह क्या? यह क्या? महाराज नहीं बैठेंगे अहो सेवाधर्म ( धन्य है )। अच्छा मैं भी यहीं बैठ

आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम्—अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदय । अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति ।' किमाहतुर्भवन्तौ—अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यतीति । भवतु, मातुलेनाभिधीयताम् । किमाह मातुलः—अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्य. सेनापतिर्भवितुमर्हतीति । सम्यगाह मातुलः । भवतु भवतु, पितामह एव भवतु । वयमप्येतदभिलपाम' ।

सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादै-
चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः ।
गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैरभिषेकतोयै
सार्धं पतन्तु हृदयानि नराधिपानाम् ॥ ५ ॥

---

अत्रेत्यादि । अत्रभवान्=पूज्य, गान्धारराज.=शकुनि, गान्धाराणा राजा । 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' इति समासान्तः ।

अत्रभवतीत्यादि । गाङ्गेये=गङ्गाया अपत्यं पुमान् गाङ्गेयः भीष्मः । तस्मिन् । वयमपीत्यादि स्थाने 'अहमप्येनदभिलपामीति' क्वचित् पाठः ।

अन्वय.—चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पै. सेनानिनादपटहस्वनशंखनादैः ( उपलक्षितै ) गाङ्गेयमूर्ध्निपतितै. अभिषेकतोयैः सार्धं नराधिपाना हृदयानि पतन्तु ॥ ५ ॥

---

जाता हूँ । मित्र कर्ण ! तुम भी यही बैठ जाओ ।

[ बैठकर ]

आर्य वैकर्ण और वर्षदेव ! बतलाइए-हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, कौन इसका सेनापति होने योग्य है ? क्या कहा आप लोगो ने—माननीय गान्धार देश के राजा बतलाएँगे ? तो अच्छा मामा ही कहें । क्या कहा मामा ?—श्रीमान् गङ्गा तनय (=भीष्म) के होते हुए और कौन सेनापति होने के योग्य हो सकता है ?

मामा ने ठीक ही कहा । अच्छा, अच्छा, पितामह ही [सेनापति] होवें । हम भी यही चाहते है कि—

प्रचण्ड प्रभञ्जन [झंझावात] से विक्षुब्ध महासागर के समान सेना के

दरस्तव पुरुषोत्तम । स गोपालकस्तव पुरुषोत्तम । बार्हद्रथापहृत-विषयककीर्तिभोगस्तव पुरुषोत्तम । अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचार । सगर्वं खल्वस्य वचनम् । आ अपध्वस ।

काञ्चुकीय—प्रसीदतु महाराज । सम्भ्रमेण समुदाचारो विस्मृत । ( पादयो पतति ) ।

---

श्रीकृष्णस्य पुरुषोत्तमत्वविशेषण निसर्गद्वेषित्वादसहमान आह—मेत्यादि । मा तावदिति प्रतिषेधोऽनिष्टवचनविषय । किंशब्द आक्षेपे, कोपाद् द्विरुक्ति । आक्षेप्य तु पुरुषोत्तमत्वम् । तच्च विरुद्धधर्मोद्भावनया त्रि खण्डयति—१ कसभृत्य =कसस्य सेवक । २ दामोदर =दाम रज्जु उदरे यस्य निबद्ध चौर्यनिवारणाय जनन्या स, तथाभूत —आभ्या विशेषणाभ्या नीचवृत्तित्वम् आबालदुश्शीलत्व चोक्तम् । तव पुरुषोत्तम =त्वत्पक्षे पुरुषोत्तम । नीचवृत्ति दुश्शील च जन त्व पुरुषोत्तम मन्यसे, धिक् त्वमित्यभिप्राय । ३ गोपालक =आभीर । अनेन कुलहीनता सूचिता । बार्हद्रथापहृतविषयकीर्तिभोग =बार्हद्रथेन जरासन्धेन अपहृत विषयो देश कीर्तिर्भोगश्च यस्य स तथा । एनेन शौर्यहीनतोक्ता । पार्थिवासन्नम् आश्रितस्य =राजान्तिक सेवमानस्य, समुदाचार =व्यवहारक्रम , आ =इति कोपे । अपध्वस =नष्टो भव मदन्तिकात् मद्समापसरेत्यर्थ । अनुदात्तेत्त्व लक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात् परस्मैपदम् ।

प्रसीदत्वित्यादि । सम्भ्रमेण=त्वरया ।

---

[रस्सी से बाधा गया] दामोदर ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? वह गौओं का पालक ही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध ने जिसका राज्य कीर्ति और ऐश्वर्य छीन लिया था वया वही तुम्हारा पुरुषोत्तम है ? आश्चर्य है कि राजाओं के सन्निकट रहने वाले [ तुच्छ ] सेवकों का भी ऐसा [ अनुचित ] आचरण हो सकता है । यह वाणी तो बडी गर्वीली है । यहाँ से दूर हटो ।

काञ्चुकीय—महाराज प्रसन्न हो, महाराज प्रसन्न हो । हडबडाहट के कारण मैं अपने आचरण को भूल गया था । [ चरणों पर गिरता है ]

दुर्योधन —सम्भ्रम इति । आ. मनुष्याणामस्त्येव सम्भ्रमः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

काञ्चुकीय.—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दुर्योधनः—इदानीं प्रसन्नोऽस्मि । क एष दूत प्राप्त ।

काञ्चुकीय.—दूत. प्राप्त. केशव. ।

दुर्योधन —केशव इति । एवमेष्टव्यम् । अयमेव समुदाचार । भो भो राजान ! दौत्येनागतस्य केशवस्य किं युक्तम् । किमाहुर्भवन्त । अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्य. केशव इति । न मे रोचते । ग्रहणमस्यात्र हित पश्यामि ।

---

सम्भ्रमेति । आ=इति स्मरणे । अमनुष्याणामिति पाठे मनुष्यभासानामित्यर्थः ।

इदानीमित्यादि । क एष =इति प्रश्नो न्याय्य समुदाचार भावयितुम् ।

केशव इति । एवम् एष्टव्य=निर्विशेषणनामधेयमात्रग्रहणलक्षण एव प्रकार एषतुमर्ह इत्यर्थः । किं युक्तम्=कीदृश सम्भावनमनुरूपम् । अर्घ्यदानेन=अर्घाय पूजायै हितम् अर्घ्यम् तस्य प्रदानेन न रोचते=अर्थात् पूजनम्; ग्रहण=बन्दीकरणम् ।

---

दुर्योधन—सम्भ्रम ! आह मनुष्य के आने से इतनी हड़बड़ाहट, उठो, उठो ।

काञ्चुकीय—अनुगृहीत हूँ ।

दुर्योधन—अब मैं प्रसन्न हूँ । कौन सा दूत आया है ?

काञ्चुकीय—केशव नामक दूत आया है ।

दुर्योधन—'केशव' यह, हाँ ऐसे कहना चाहिए । यही आचरण ठीक है । हे राजाओ ! दूत रूप में आए केशव के प्रति क्या [व्यवहार] उचित है ? आप लोगों ने क्या कहा कि अर्घ्यदान आदि से केशव का सम्मान करना चाहिए । यह मुझे पसन्द नहीं है । मैं तो उसे बन्दी बनाने में ही अपना हित समझता हूँ ।

ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे
हृतनयना इव पाण्डवा भवेयु ।
गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना ॥ ६ ॥

अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण

---

टिप्पणी—एष्टव्य —इच्छार्थकस्य इष्धातोः तव्यत् प्रत्ययः ।

अन्वयः—ग्रहणमुपगते च वासुभद्रे पाण्डवा हृतनयना इव भवेयु । पाण्डवेषु गतिमति रहितेषु अखिलापि क्षितिः असपत्ना मम भवेत् ॥ ६ ॥

संस्कृत टीका—ग्रहणस्य हितत्वमुपपादयति—ग्रहणमिति । ग्रहण-मुपगते=ग्रहण बन्दीकरणम्, उपगते प्राप्ते सति वासुभद्रे=कृष्णे, पाण्डवा=युधिष्ठिरादय, हृतनयना इव=नेत्रहीना इव, हृतानि नयनानि येषा ते, विनष्टचक्षुषः इव यथा स्यात् तथा, भवेयु=स्यु । पाण्डवेषु= पाण्डुपुत्रेषु सत्सु गतिमतिरहितेषु=गतिश्च मतिश्च तयोः रहिता, तेषु पथप्रदर्शकबुद्धिदातृरहितेषु, अथवा गत्या शरणेन कृष्णात्मना मत्या कृष्णदीय-मानया बुद्धया च रहितेषु सत्सु अखिलापि=समस्तापि, क्षिति=भूमि, मम=दुर्योधनस्य, असपत्ना=विपक्षरहिता, निश्शत्रु सती वा, भवेत्= स्यात् । मार्गविना शत्रूणामसहायतया युद्धेऽनुद्योगात् प्राणपरित्यागाद् वेति भावः । अथवा, मम भवेत्=ममैव भवेत्, मदेकस्वामिका भवेत् । पुष्पिताग्रा-वृत्तम् ॥ ६ ॥

टिप्पणी—वासुभद्रे–वासुदेवनामैकदेशस्य वासुशब्दस्य सौम्यार्थकभद्र पदयुक्तस्याय प्रयोगः, रामभद्रवत् । यद्वा, 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदवत्तव्य' इतिपाणिनिशासनात् वासुपद वासुदेवपदबोधकमिति विवेक ।

संस्कृत टीका—प्रत्युत्थानमात्रेणापि कृष्ण सम्भावयितुर्दण्डमा-

---

वासुदेव के बन्दी बन जाने पर पाण्डव नेत्र-हीन से हो जायँगे और उनके [शारीरिक] गति एव मति से हीन हो जाने पर यह समग्र पृथ्वी मेरे लिए शत्रुहीन हो जायगी ॥ ६ ॥

और भी, जो यहाँ केशव के सम्मान मे खड़ा होगा । वह बारह स्वर्ण-

दण्ड्यः। तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः। को नु खलु ममाप्रत्युत्थानस्योपायः। हन्त दृष्ट उपायः। बादरायण ! आनीयतां स चित्रपटो ननु, यत्र द्रौपदीकेशाम्बरावकर्षणमालिखितम्। (अपवार्य) तस्मिन् दृष्टिविन्यासं कुर्वन् नोत्थास्यामि केशवस्य।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराज। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। अयं स चित्रपटः।

दुर्योधनः—ममाग्रतः प्रसारय।

---

विवृति—अपि चेत्यादि। अत्र = सभामध्ये। प्रत्युपास्यति = प्रत्युत्थानसमुदाचारमनुष्ठास्यति। द्वादशसुवर्णभारेण = सुवर्णः कर्षः द्वादशकर्षात्मको नाणकविशेषो द्वादशसुवर्णं इति व्यपदिष्टः, द्वादशसुवर्णानां भारः पलसहस्रद्वयं द्वादशसुवर्णभारः, तेन, दण्ड्यः = दण्डयितुं योग्यः, दण्डनीय इत्यर्थः। महतो दण्डस्य विधानं प्रत्युत्थानस्य महापराधत्वबोधनार्थम्। प्रत्युत्थातुः परस्य विहितदण्डोऽपि कृष्णसम्मुखदर्शने अप्रत्युत्थानमात्मना कर्तुमशक्यं मन्यमानश्चिन्तयति—कोन्वित्यादि। चित्रपटः = आलेख्यपटः, ननु = इति सम्भ्रमे, तस्मिन् = चित्रपटे, एवञ्च कृष्णदर्शनच्छद्मना प्रत्युत्थानं परिहरिष्यामीत्यभिप्रायः।

ममेत्यादि। प्रसारय = विस्तारय, अर्थात् चित्रपटम्। अहो इत्यादि। एष = आलिखितः, दुःशासनः, कैशहस्ते = कचकलापे।

टिप्पणी—द्वादशसुवर्ण०—'सुवर्णो ना स्वर्णकर्षे' इति मेदिनी। 'भारः

---

मुद्रा के दण्ड के योग्य होगा। अतः आप लोग सावधान रहें। [स्वगत] मेरे न उठने का कौन सा उपाय हो सकता है ? ठीक है, एक उपाय सूझा। [प्रकट में] अरे बादरायण ! वह चित्रपट तो ले आओ जिसमें द्रौपदी का चीरहरण चित्रित किया गया है। [हटाकर] उसी पर दृष्टि जमाकर केशव के आने पर भी नहीं उठूँगा।

काञ्चुकीय—महाराज की जो आज्ञा। [निकलकर और फिर पुनः प्रवेश करके] महाराज की जय हो। यह वह चित्रपट है।

दुर्योधन—इसे मेरे समक्ष फैला दो।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (प्रसारयति)

दुर्योधन—अहो दर्शनीयोऽय चित्रपट। एष दु.शासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्। एषा खलु द्रौपदी,—

दु.शासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते॥ ७॥

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्ष सभास्तम्भ तुलयति। एष युधिष्ठिर,

---

सहस्रद्वितय पलाना च गरिम्ण च' इति यादवः।

अन्वय —दु शासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना (द्रौपदी) राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखा इव शोभते॥ ७॥

संस्कृत टीका—(एषा द्रौपदी) दु शासनपरामृष्टा=दुश्शासनकरगता, दुश्शासनेन-दुर्योधनकनिष्ठभ्रात्रा, परामृष्टा=केशाकृष्टा सती, सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना=सम्भ्रमेण सवेगेन उत्फुल्ले अति विकसिते लोचने यस्या' सा, सक्षुभितविकसितनेत्रा, राहुवक्त्रान्तरगता=राहोः वक्त्रं तस्य अन्तरगता=राहुवदनमध्यप्राप्ता, चन्द्रलेखा=चन्द्रस्य, लेखा, इन्दुकला, इव=यथा, शोभते=प्रतिभाति॥ ७॥

संस्कृत टीका—एष इत्यादि। भीम =भीमसेन, सर्वराजसमक्षं=सर्वराजानां सर्वेषां राज्ञां प्रत्यक्ष यथा भवति तथा। प्रवृद्धामर्ष=सवृद्धकोप.,

---

काञ्चुकीय—जो महाराज की आज्ञा। [फैला देता है]

दुर्योधन—अहा! यह चित्रपट वस्तुत दर्शनीय है। यह दु शासन है, जिसने द्रौपदी के केशो को हाथो मे पकड रक्खा है। यह द्रौपदी है जो—

दु शासन से आक्रान्त होने पर भय से नेत्र विस्फारित किए हुए इस समय मानो राहु के जबडे मे फसी हुई चन्द्रकला के समान शोभा पा रही है॥ ७॥

यह दुरात्मा भीम है जो अखिल राजसमूह के सामने अपमानित होती हुई द्रौपदी को देखकर प्रचण्ड क्रोध मे भरकर मन्त्रशाला के स्तम्भ को उखाड़ने की चेष्टा मे है। यह युधिष्ठिर है जो,

सत्यधर्मघृणायुक्तो ,द्यूतविभ्रष्टचेतनः ।
करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम् ॥ ८ ॥

एष इदानीमर्जुनः,

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ-
स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत् ।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम् ॥ ९ ॥

---

तुलयति = चलयति । यद्वा, उन्मिमीते = उन्मानमिह तारतम्यपरीक्षणं, किमनेन स्तम्भेन शत्रून् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तत्सारफल्गुता दृष्ट्या पर्यालोचयतीत्यर्थः , युधिष्ठिरः = धर्मसूनुः ।

अन्वयः—सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः ( युधिष्ठिरः ) अपाङ्गविक्षेपैः वृकोदरं शान्तामर्षं करोति ॥ ८ ॥

संस्कृत टीका — सत्यधर्मघृणायुक्त = घृणा अकार्यविषया जुगुप्सा, सत्यश्च धर्मश्च घृणा च ताभिः युक्तः, सत्यधर्मदयासहितः, द्यूतविभ्रष्टचेतनः = द्यूतेन अक्षक्रीडया तन्निमित्तपराजयेनेत्यर्थः, विभ्रष्टा = नष्टा, चेतना संविद् यस्य सः, एवभूतः एषः विश्रुतगतः, युधिष्ठिरः, अपाङ्गविक्षेपैः = सेङ्गितैः कटाक्षावलोकनैः, अपाङ्गानां—कटाक्षाणां विक्षेपाः— प्रक्षेपाः तैः, वृकोदरं = भीमं, वृकः—वृकनामाग्निः, उदरे जठरे, यस्य तम्, शान्तामर्षं = शान्तः–उपशमितः, अमर्षः क्रोधः यस्य तम्, शमितकोपं, करोति = विदधाति ॥ ८ ॥

टिप्पणी—घृणा—'घृणा जुगुप्साकृपयोः' इति मेदिनी ॥ ८ ॥

अन्वयः—रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठः अर्जुनः तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा सर्वराज्ञः उत्सादयन्निव शनैः गाण्डिवज्यां समाकर्षति ॥ ९ ॥

---

सत्य, धर्म और दया से युक्त होकर भी जूए के खेलने से मतिभ्रष्ट हो, आँखों के इशारे से ही भीम के क्रोध को शान्त कर रहा है ॥ ८ ॥

और, अब यह अर्जुन है, जिसके—

नेत्र क्रोध से व्याकुल हो रहे हैं, अधरोष्ठ ( क्रोध के कारण ) फड़क रहे

एप युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति। एतौ नकुलसहदेवौ,
कृतपरिकरवन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ
परुपितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ।

---

संस्कृत टीका—क्रमश अर्जुनमपि विशिनष्टि—रोपाकुलेत्यादिना। रोपाकुलाक्ष.—रोपेण क्रोधेन आकुले व्याप्ते, अक्षिणी—नेत्रे यस्य स:, स्फुरिताधरोष्ठ = अधरोष्ठ:-अधरदन्तच्छद येन स, एव: अर्जुन:, तत् = तत्कालीनं, रिपुमण्डलं = रिपूणा मण्डलं, शत्रुराजकं, तृणाय मत्वा = अकिञ्चित्कर ज्ञात्वा, तृणमिवानादृत्येत्यर्थ., सर्वराज्ञ.—सर्वे च ते राजान. सर्वराजान:, तान्, सर्वान् द्रौपदीपरिभवस्य कर्तृन् अनुमन्तॄन् द्रष्टृश्च नृपान्, उत्सादयन्निव = ध्वंसयिष्यन्निव, शनै: = मन्द यथा स्यात् तथा, गाण्डिवज्या = गाण्डिवाख्यस्य चापस्य मौर्वीम्, समाकर्षति = सम्यक् प्रकारेण आकर्षणं करोति ॥ ९ ॥

टिप्पणी—तृणाय—'मन्यकर्मण्यनादरे' इति चतुर्थी। सर्वराज्ञ.—'राजाहस्सखिभ्य.' इति समासान्तस्याकरणमनित्यत्वात्। 'सर्वराजान्' इत्येव क्वचित् पाठ.। उत्सादयन्निव—उद् + सद् + णिच् + लृट् (शतृ प्रत्यय:), 'लृट: सद्वा' इति लृट: शत्रादेश: प्रकृत्यर्थस्य समाकर्षणक्रियां प्रति फलत्वविवक्षया। (क) अत्र उत्प्रेक्षालङ्कार:। (ख) उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

संस्कृत टीका—एप इत्यादि। निवारयति = अर्थात् युद्धोद्यमात्।

अन्वय:—कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ परुपितमुखरागौ स्पष्ट-

---

हैं, और जो समस्त राजमण्डल को तृणवत् समझ रहा है, उन सब राजाओं को नष्ट भ्रष्ट कर देने की इच्छा से धीरे-धीरे गाण्डीव की डोरी को खींच रहा है ॥ ९ ॥

यह युधिष्ठिर अर्जुन को रोक रहा है। यह दोनो नकुल और सहदेव हैं—

जिन दोनो ने कमर कस ली है और जिन दोनों ने ढाल और तलवार संभाल ली है, जिन दोनो के मुंह कठोर वर्ण अर्थात् रक्त वर्ण के हो रहे हैं

विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ ॥ १० ॥

एष युधिष्ठिर कुमारावुपेत्य निवारयति—

---

दष्टाधरोष्ठौ विगतमरणशङ्कौ सत्वरं मे भ्रातरं मृगपोतौ हरिमिव तेजसा अभिप्रयातौ ॥ १० ॥

संस्कृत टीका—कृतपरिकरबन्धौ=कृत परिकरबन्धः प्रगाढगात्रबन्धः याभ्यां तौ, चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ=चर्मनिस्त्रिंशौ फलकखड्गौ हस्तयोर्ययोस्तौ—फलकखड्गौ पाणौ, पल्लवितमुखरागौ=पल्लवितः परुषो रक्षः कृतः मुखरागो मुखप्रकाशो ययोस्तौ—ताम्राननौ, स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ=स्पष्टं दन्तेन दष्टः अधरोष्ठः ययोस्तौ—चर्विताधरोष्ठौ, विगतमरणशङ्कौ=विगता विनष्टा मरणस्य मृत्योः शङ्का सन्देहः ययोस्तौ, सत्वरं, मे=मम दुर्योधनस्य, भ्रातरं=दुःशासनम् मृगपोतौ=हरिणडिम्भौ, मृगस्य पोतः तौ हरिमिव=सिंहमिव, तेजसा=वीर्येण, अभिप्रयातौ=प्रत्यवस्थितौ। अत्र मृग-पोतोपमया नकुलसहदेवयोरभियानस्योपहास्यत्वं द्योतितम्। उपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

टिप्पणी—तु० 'न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति। (प्रतिमा० ५।१८), यथ लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते (अभिषेक० ३ २०)। सत्वरम्—त्वरया सह वर्तते सत्वरम्—शीघ्रमेव। चर्म०—चर्म च निस्त्रिंशश्च चर्मनिस्त्रिंशौ (द्व० स०) चर्मनिस्त्रिंशौ हस्तयोः ययोः तौ (बहु०)। निस्त्रिंश—निर्गतः त्रिंशद्भ्योऽङ्गुलिभ्य इति निस्+त्रिंशद्+डच ॥ १० ॥

---

और जो अपने अधरोष्ठ को स्पष्ट रूप से दाँतों से दबाए हुए उसी प्रकार मरण भय की चिन्ता से रहित ये मृगशावक अपने तेज से मेरे भाई पर शीघ्रता से आक्रमण कर रहे हैं जैसे हरिण के बच्चे सिंह पर ॥ १० ॥

यह युधिष्ठिर दोनों कुमारों के पास जाकर उन्हें रोक रहा है।

नीचोऽहमेव विपरीतमति कथं वा
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणा
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्यु ॥ ११ ॥

---

अन्वय — विपरीतमति, नीच कथम् अद्य नयानयज्ञौ रोषं परित्यजतम्, द्यूताधिकारम् अवमानम् अमृष्यमाणा सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्यु. ॥ ११ ॥

संस्कृत टीका—नकुलसहदेवौ निवारयता धर्मजेन सभाया पुरा यदुक्तं वाक्य, तत् प्रकृतानुगुण्यात् स्मरति—नीच इति। विपरीतमति =विपरीता आत्मयोगक्षेमप्रतिकूला मति द्यूतगोचरा यस्य स तथाभूत, अहमेव= युधिष्ठिर एव, नीच = अधम. भवामीति शेषः। वा=अन्यथाशब्दार्थे, नीचत्वाभावे इत्यर्थ, कथ=केन हेतुना, अद्य=इदानी, द्यूतपराजितसमुदाचारानुष्ठानयोग्येऽस्मिन् समये इत्यर्थः। नयानयज्ञौ=नयम् अनयञ्च जानीत', द्यूतनीत्यनीतिवेदिनौ, युवा, रोष=क्रोध, परित्यजत=परिजहीतं, द्यूत विजितैर्नामिदृश परिभवः सोढव्य एव, न तु पराक्रमेण सद्य प्रतिकर्तुं योग्य इति भाव.। पराक्रमेण को दोषस्तत्राह—द्यूताधिकारं=द्यूतस्य-कैतवस्य अधिकार—क्रीडासामर्थ्यम्, द्यूतेन अधिक्रियते प्रस्तूयत इति द्यूताधिकार', त द्यूतनिमित्तकमित्यर्थ, अवमानम्=अपमानम्, अमृष्यमाणा =असहमाना, अर्थात् विक्रमेण प्रतिकर्तुं सद्यो व्यवस्यन्त पुरुषाः, सत्त्वाधिकेषु= सत्त्वं पराक्रम तेनाधिकेषु महापराक्रमशालिषु मध्ये, वचनीयपराक्रमाः= वचनीय' अकालप्रयोगान्निन्द्य पराक्रम. विक्रमो येषां ते तथोक्ता; स्युः=( केन प्रकारेण ) भवेयु.। वसन्ततिलका छन्द ॥ ११ ॥

---

मैं ही नीच हूँ नही तो मेरी मति विपरीत कैसे हो जाती। तुम दोनो नीति और अनीति को जानते हो अत. आज रोष को त्याग दो। अन्यथा द्यूतजन्य अपकार को न सहने के कारण हम लोग ही अधिक पराक्रमशील लोगो के द्वारा निन्दनीय पराक्रम वाले माने जायेंगे ॥ ११ ॥

इति। एष गान्धारराजः,

अक्षान् क्षिपन् स कितवः प्रहसन् सगर्वं
सङ्कोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यपि गां नयज्ञः ॥ १२ ॥

---

अन्वयः—कितवः स अक्षान् क्षिपन् सगर्वं प्रहसन् स्वकीर्त्या द्विषतां मुदं सङ्कोचयन्निव स्वैरासनः (सन्) रुदन्तीं द्रुपदराजसुतां काक्षेण पश्यति नयज्ञः स गामपि लिखति ॥ १२ ॥

संस्कृत टीका—गान्धारराजं विशिनष्टि—अक्षानिति। कितवः=द्यूत, स =शकुनि, अक्षान्=पाशकान्, क्षिपन्=प्रसारयन्, सगर्वं=गर्वेण सहितं सदर्पं, प्रहसन्=हास्यं कुर्वन्, स्वकीर्त्या=स्वस्य कीर्तिः तया, आत्मयशसा अक्षदेवननैपुण्यजन्मना, द्विषतां=शत्रूणां, पाण्डवानां, मुदं=हर्षं, मोदनम् इति मुद् ताम्, सङ्कोचयन्निव=निवारयन्निव, स्वैरासनः=स्वैरं स्वच्छन्दम् आसनम्—उपवेशनस्थानं यस्य सः, यद्वा—स्वच्छन्दम् अगणितगुरुजनसान्निध्यम् आसनम् उपवेशप्रकारो यस्य स, स्वच्छन्दोपविष्टः सन्, रुदन्तीं=अश्रुमुञ्चन्तीम्, द्रुपदराजसुता=द्रुपदानां राजा, तस्य सुता, ताम्—द्रुपराजकुमारीं द्रौपदीं, काक्षेण=अपाङ्गेन, अक्षिकोणेन, पश्यति=अवलोकयति, नयज्ञः=नीतिज्ञः, सः=मम मातुलः, शकुनिरित्यर्थः, गामपि=(कुत्सितेन पाशकेन) भूमिं, लिखति च=उट्टङ्कयति ॥ १२ ॥

टिप्पणी—काक्षेण—अक्षिकोणेन पश्यति। अत्रगणपतिशास्त्रिणः—

---

यह गान्धारराज हैं,

जो जुए में तथा कूटनीति में कुशल गर्व के साथ हँसते हुए, पासों को फेंकते हुए तथा अपनी कीर्ति से शत्रुओं के हर्ष को सकुचित करते हुए अपने आसन पर बैठे-बैठे रोती हुई द्रौपदी को तिरछी दृष्टि से देखता है और पृथ्वी पर (पांसे से) रेखा भी खींच रहा है (अथवा अपनी कुत्सित दृष्टि से पृथ्वी पर रेखाएँ खींच रहा है) ॥ १२ ॥

एतावाचार्यपितामहौ ता दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ। अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता। अहो युक्त लेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपट। प्रीतोऽस्मि। कोऽत्र।

काञ्चुकीय —जयतु महाराज।

दुर्योधन —बादरायण! अनीयता स विहगवाहनमात्रविस्मितो दूत।

---

'अक्षम् इन्द्रिय तच्च प्रकृतेऽक्षिरूपम्। ईषदक्ष काक्षम्, 'ईषदर्थे' पा० सू० ६ ३ १०५ इति को कादेश।' लिखत्यपि मां—अत्र 'लिखत्यभिख' इत्यव पाठ। सम्मुखस्यमाकाशमित्यर्थ, आकाशे दृष्टिं स्थाप्य स्वाभिप्राय निश्चिनोतीवेति भाव। नयश्च—'नयौ नीतिद्यूतविशेषयो' इति मेदिनी॥ १२॥

संस्कृत टीका—ता=द्रौपदीमित्यर्थ, लज्जायमानौ=लज्जामनुभवन्तौ। पटान्तान्तर्हितमुखौ=वस्त्राप्रच्छन्नवदनौ, अहो=इति श्लाघायाम्, अस्य=चित्रपटस्य, वर्णाढ्यता=वर्णसम्पन्नता, भावोपपन्नता=भावेन स्वभावेन आलेखनीयवस्तुगतेन, चित्रकाराभिप्रायेण वा उपपन्नता सवादिता युक्तलेखता=युक्त अन्यूनानतिरिक्त लेखो रेखन यस्मिन् स युक्तलेख तस्य भावस्तत्ता लेखौचित्यम्।

बादरायणेत्यादि। विहगवाहनमात्रविस्मित=विहग पक्षी गरुड तद्रूप वाहन तन्मात्रेण विस्मित गर्वित, दूत=सन्देशहर, कृष्ण इति

---

यह हैं आचार्य और पितामह जो द्रौपदी को देखकर लज्जित होते हुए वस्त्रों मे मुँह छुपाये हुए हैं। इस चित्र के रगो की श्रेष्ठता प्रशसनीय है, अभिव्यञ्जना और समुचित चित्रकारी (कितनी प्रभावमयी है) कितनी भावो की सुस्पष्टता है इस चित्रपट मे! मैं प्रसन्न हो गया हूँ। कोई है यहाँ?

कञ्चुकी—महाराज की जय हो।

दुर्योधन—बादरायण! उस दूत को ले आओ जिसका वाहन पक्षी (गरुड) है और जो आश्चर्यान्वित हो रहा है।

काञ्चुकीय —यदाज्ञापयति महाराज । ( निष्क्रान्त )

दुर्योधन —वयस्य कर्ण !

प्राप्त किलाद्य वचनादिह पाण्डवाना
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमति स कृष्ण ।
श्रोतु सखे ! त्वमपि सज्जय कर्ण ! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य ॥ १३ ॥

---

यावत् ।

टिप्पणी—पटान्तान्त०—पटस्य वस्त्रस्य अन्तेन अञ्चलेन अन्तर्हिते आच्छादिते मुखे याभ्या तादृशौ । वर्णाढ्यता—वर्णाना रञ्जकद्रव्याणाम् आढ्यता सम्पन्नता । वर्णस्य आढ्यता ( ष० त० ) । आढ्यता—आ+ध्यै+क=आढ्य, तस्य भाव आढ्यता, आढ्य+तल् । भावोपपन्नता—भावेन उपपन्नता ( तृ० त० ) । उपपन्न —उप+पद्+क्त, उपपन्न तस्य भावे तल् । विहग०—विहायसा गच्छतीति विहग ( गम्+ड ) स एव वाहन यस्य विहगवाहनम् ( कर्म० ), तदेव विहगवाहनमात्र ( नित्य० ), तेन विस्मित ( तृ० त० ) ।

अन्वय —अद्य इह कृष्णमति स कृष्ण पाण्डवानां वचनात् दौत्येन भृत्य इव प्राप्त किल । हे सखे ! कर्ण त्वमपि नारीमृदूनि युधिष्ठिरस्य वचनानि श्रोतु कर्णौ सज्जय ॥ १३ ॥

संस्कृत टीका—अद्य=सम्प्रति, स कृष्णमति =मलिनबुद्धि , कृष्णा कलुषिता मति बुद्धि यस्य स स =प्रसिद्ध कृष्ण =वासुदेव , पाण्डवाना=पाण्डुपुत्राणां, वचनात्=वचसा, दौत्येन=दूतस्य भाव , तेन

---

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा । (प्रस्थान)

दुर्योधन—मित्र कर्ण !

पाण्डवों के कहने पर यह कृष्ण बुद्धि कृष्ण यहाँ दूत बनकर सेवक के समान आया है । अत हे कर्ण, तुम भी नारियों के समान कोमल युधिष्ठिर की वाणी को सुनने के लिये अपने कानों को तैयार रखो ॥ १३ ॥

( ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च । )

वासुदेव —अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया चाहवदर्पमनुक्तग्राहिणं सुयोधनं प्रति मयाप्यनुचितदौत्यसमयोऽनुष्ठितः । अद्य च,

---

दूतकार्येण, भृत्यः इव = दासः इव, प्राप्तः, किल = सम्प्राप्तः, अतः हे सखे ! = मित्र ! कर्ण = राधेय, त्वमपि = भवानपि, युधिष्ठिरस्य = पाण्डवज्येष्ठस्य, नारीमृदूनि = स्त्रीवचनविकलवानि, नारी इव मृदूनि, वचनानि = स्त्रीवत् कोमलानि वचांसि, श्रोतुं = आकर्णयितुं, कर्णौ = निजश्रोत्रे, सज्जय = प्रसञ्जय । अत्र उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १३ ॥

टिप्पणी—कृष्णमतिः—कृष्णा मतिर्यस्य सः (बहु०) । भृत्यः--बिभर्ति इति भृत्यः—भृ + क्यप्—तुक् च । दौत्येन—दूतस्य भावः दौत्यम्—दूत + ष्यञ् । नारीमृदूनि—नार्याः वचनानि इव मृदूनि (मध्यमपद०) ॥ १३ ॥

संस्कृत टीका—धर्मराजवचनात् = धर्मराजस्य युधिष्ठिरस्य वचनात्, धनञ्जयाकृत्रिममित्रतया च = धनञ्जयस्य अर्जुनस्य अकृत्रिमं निरुपाधिकं मित्रं सुहृद् तस्य भावस्तत्ता (स्वाभाविकी मित्रता), तथा च, आहवदर्पम् = आहवे युद्धे दर्पः अहङ्कारो यस्य तम्, अनुक्तग्राहिणम् = उक्तावधीरिणम्, मयापि, अनुचितदौत्यसमयः अनुष्ठितः = अननुष्ठितपूर्वानुचितकर्मणापि कृतः, समयशब्द आचारे सङ्केते वा ।

टिप्पणी — आहवदर्पम्—आह्वयन्तेऽरयोऽत्र इति आहवः रणः, आहवस्य दर्पः यस्य तम् ( बहु० ), आ + ह्वे + अप् ( सम्प्रसारणे गुण ), दृप् + घञ् = अच् वा । अनुक्तग्राहिणं—उक्तं न गृह्णाति उक्तं अवधीरयति इति अनुक्तग्राही तम् । सुयोधनम्--सुखेन युध्यतेऽसौ, सुयो-

---

( तब वासुदेव और कञ्चुकी प्रवेश करते हैं )

वासुदेव—धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और धनञ्जय ( अर्जुन ) की सच्ची मित्रता के कारण मैं आज समराभिमानी और दूसरों की बात न मानने वाले दुर्योधन के पास अनुचित दूतकार्य के लिए आया हूँ ।

कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ—
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य ।
भीमस्य कोपशिखिना युधि पार्थपत्रि—
चण्डानिलैश्च कुरुकानन विनष्टम् ॥ १४ ॥

---

युद्ध—युध् + क्विप्, सप्तमी। अनुचितदोहलसमयः—न उचित अनुचितः दोहदस्य समयः आचारः, दोहदसमयः (ष० त०) अनुचितः। अनुष्ठित—अनु + स्था + क्त।

अन्वय—कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य भीमस्य कोपशिखिना पार्थपत्रिचण्डानिलैश्च कुरुकानन युधि विनष्टम् ॥ १४ ॥

संस्कृत टीका—कृष्णापराभवभुवा=कृष्णायाः द्रौपद्याः पराभवः तिरस्कारः, तस्मात् भूः उत्पत्तिः तेन, द्रौपदीतिरस्कारसमानोत्पन्नेन रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य=रिपुवाहिनीभाना रिपुवाहिनी, रिपुसैन्यं, तत्रत्यानाम् इभानां गजानां कुम्भस्थल्याः मस्तकपिण्डस्य दलने पातने तीक्ष्णा निर्दया या गदा आयुधविशेषः तस्याः धरस्य धारयितु भीमस्य=वायुपुत्रस्य, कोपशिखिना=कोपाग्निना, कोप एव शिखी, तेन क्रोधवह्निना, पार्थपत्रिचण्डानिलैश्च=पार्थस्य अर्जुनस्य पत्रिणः बाणा एव चण्डानिलाः=तीक्ष्णवायवः, तैश्च, अर्जुनबाणरूपैश्चण्डमारुतैश्च, कुरुकानन=कुरवः एव कुरुमेव वनो बहुशाखत्वात् वनं, तस्य वनम्, कौरवारण्यम्, युधि=संग्रामे, महाभारते, विनष्टम्=नाशं प्राप्तम् पश्यामीति शेषः। भाविन्येनाभिमतस्य विनाशस्य भूतत्ववचनम् अचिरात्तदुत्पत्तिज्ञापनार्थम्। अत्र साङ्गरूपकालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १४ ॥

---

द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न होने वाली, शत्रु की सेना के गजराजों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाली तीक्ष्ण गदा का धारण करने वाले भीम की क्रोधाग्नि से तथा अर्जुन के बाणों की प्रचण्ड वायु के झोंकों से युद्ध में कुरुवनकानन नष्ट हो जायगा ॥ १४ ॥

इद सुयोधनशिबिरम्। इह हि.—

आवासा पार्थिवाना सुरपुरसदृशा स्वच्छन्दविहिता
विस्तीर्णा शस्त्रशाला बहुविधकरणै शस्त्रैरुपचिता।
हेषन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा बृहन्ति करिण
ऐश्वर्यं स्फीतमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम् ॥ १५ ॥

---

टिप्पणी—वाहिनी—वाह अस्ति अस्या इति, वाह + इनि + ङीप। कोपशिखिना—शिखा अस्यास्तीति शिखी (शिखा+इनि), कोप एव शिखी अग्नि कोपशिखी, तेन। पार्थ—पृथाया अपत्य पुमान्, पार्थ—पृथा+अण्। पत्र पक्ष अस्यास्तीति पत्री (पत्र+इनि)। चण्डानिला—चण्डाश्च ते अनिला चण्डानिला ॥ १४ ॥

अन्वय—सुरपुरसदृशा स्वच्छन्दविहिता पार्थिवाना आवासा बहुविधकरणै शस्त्रै उपचिता विस्तीर्णा शस्त्रशाला मन्दुरस्था, तुरगवरघटा हेषन्ते करिण बृहन्ति एतत् स्फीत ऐश्वर्य स्वजनपरिभवात् आसन्नविलयम् दृश्यते ॥ १५ ॥

संस्कृत टीका—सुरपुरसदृशा = अमरपुरतुल्या, सुराणा देवाना पुराणि नगराणि तै सदृशा तुल्या, स्वच्छन्दविहिता = स्वतन्त्रनिर्मिता, स्वच्छन्देन स्वेच्छया विहिता निर्मिता, पार्थिवाना = पृथिव्या ईश्वरा, तेषा नृपाणाम्, आवासा = निवासस्थानानि बहुविधकरणै = बहुप्रकारसाधनै, शस्त्रै = आयुधै, उपचिता = वृद्धिङ्गता, विस्तीर्णा = विशाला शस्त्रशाला = शस्त्राणाम् आयुधाना शाला गृहाणि, आयुधागाराणि, मन्दुरस्था = मन्दुराया वाजिशालाया अश्वशालास्था, तुरगवरघटा = अश्वश्रेष्ठ

---

यह सुयोधन की छावनी है। यहाँ पर राजाओ के निवास स्थान अमरावती के समान स्वच्छन्द बने हैं। विशाल शस्त्रशाला अनेक प्रकार के शस्त्रो से सगृहीत है। अश्वशाला मे श्रेष्ठ अश्व हिनहिना रहे हैं और गजशाला मे गजराज चिग्घाड रहे हैं। यह विशाल वैभव केवल आत्मीयजनो के अनादर करने के कारण ही नष्ट होने के कगार पर है ॥ १५ ॥

भो !

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः ।
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति ॥ १६ ॥

---

समूहाः, हेषन्ते=शब्दायन्ते, ह्रेषन्ते, करिणः=गजाः, बृंहन्ति=गर्जन्ति, एतत्=पुरतो दृश्यमानम्, स्फीतम्=प्रवृद्धम् ऐश्वर्यम्=गृहतुरगादिवैभव-मित्यर्थः, स्वजनपरिभवात्=स्वजनानां स्वबन्धूनां परिभवः तिरस्कारः, तस्मात् कुटुम्बानादरात्, आसन्नविलयम्=आसन्नो विलयो यस्य तत्, विनाशोन्मुखं, दृश्यते इति शेषः । अत्र उपमालङ्कारः । सुवदनावृत्तम् । तल्लक्षणम्—ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता म्लौ गः सुवदना ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मन्दुरस्थाः—'वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः । तुरगवर-घटाः—तुरेण वेगेन गच्छतीति तुरगः, तुरगेषु वराः तुरगवराः. (स० त०), तेषां घटाः समूहाः । हेषन्ते—'अश्वानां हेषा ह्रेषा तु निःस्वनः' इत्यमरः । बृंहन्ति—बृंहणं करिगर्जितमित्यमरः । स्फीतम्—स्फाय (वृद्धि करना)+क्त, स्फीभावः । इह तृतीयपादान्तलघोर्वैकल्पिकं गुरुत्वं बोद्धव्यम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः सुयोधनः मां दृष्ट्वा हि कार्यं नैव करिष्यति ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—दुष्टवादी=अप्रियवक्ता, दुष्टं कर्णकटु वदति भाषते इति दुष्टवादी, गुणद्वेषी=गुणान् सद्भावान् द्वेष्टि इति गुणद्वेषी क्षमादि-गुणद्वेष्टा शठः=धूर्तः स्वजननिर्दयः=स्वजनेषु स्वकीयेषु जनेषु निर्दयः दयारहितः, निष्कृपः, सुयोधनः=दुर्योधनः, माम्=केशवं, दृष्ट्वा=अवलोक्य, हि=इति निश्चये, कार्यं=कौरवपाण्डवसन्धिरूपं प्रयोजनम्, नैव करिष्यति=कथमपि न विधास्यति । अनुष्टुप्छन्दः ॥ १६ ॥

टिप्पणी—दुष्टवादी—दुष्टं वदितुं शीलं यस्य सः (उप० स०) । गुण-

---

अरे !

यह कटुभाषी, गुणद्वेषी, स्वजनों के प्रति क्रूर दुरात्मा दुर्योधन मुझे देखकर कभी भी कार्य (कर्त्तव्य) नहीं करेगा ॥ १६ ॥

भो बादरायण ! किं प्रवेष्टव्यम् ।

काञ्चुकीयः—अथ किमथ किम् । प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभः ।

वासुदेवः—( प्रविश्य ) कथं कथं मां दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः । अलमलं सम्भ्रमेण । स्वैरमासतां भवन्तः ।

दुर्योधनः—कथं कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः । अलमलं संभ्रमेण । स्मरणीयः पूर्वमाश्रावितो दण्डः । नन्वहमाज्ञप्ता ।

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! किमास्से ।

दुर्योधनः—( आसनात् पतित्वा आत्मगतम् ) सुव्यक्तं प्राप्त एव

---

द्वेषी—गुणेषु द्वेषो यस्य सः (बहु०) गुणविरोधी । स्वजननिर्दयः—निर्गता दया यस्मात् स ( 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या' इति पञ्चमीसमासः ) ।

संस्कृत टीका—भोः=इति विषादसूचनार्थम् । किं मया प्रवेष्टव्यम्, अथ किम् अथ किम्=अङ्गीकारे द्विरुक्तिः. सम्भ्रमे वा । पद्मनाभ =पद्म कमलं नाभौ यस्य (बहु०); क्षीरसागरशयनसमये तस्य नाभेः सकमलात् । सम्भ्रान्ताः=प्रत्युत्थाने व्यग्राः । अहम्=इति स्वाज्ञानुष्ठापननियन्तृत्व द्योतयति । किमास्से=कुशली वर्तसे किमित्यर्थः । कुशलप्रश्नसमुदाचार ईदृशो भासनाटकेषूपलभ्यते ।

---

हे बादरायण ! क्या प्रवेश करना चाहिए ?

कञ्चुकी—हाँ अवश्य ! पद्मनाभ प्रवेश करें (प्रवेश करने के योग्य ) हैं ।

वासुदेव—( प्रवेश करके ) अरे यह क्या ! सभी क्षत्रिय मुझे देखकर क्यों संभ्रान्त हो गये हैं ! अरे आप सम्भ्रम न करें । आप लोग स्वच्छन्द बैठिये ।

दुर्योधन—अरे ! केशव को देखकर क्यों सम्भ्रान्त हो गये ! संभ्रम न करें । क्या तुम्हे पूर्वघोषित दण्डाज्ञा भूल गयी । निश्चय ही आज्ञा करने वाला मैं हूँ ।

वासुदेव—( पास जाकर ) हे दुर्योधन ! आप कैसे बैठे हैं ?

केशव ।

उत्साहेन मतिं कृत्वाप्यासीनोऽस्मि समाहितः ।
केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम् ॥ १७ ॥

अहो बहुमायोऽयं दूतः । ( प्रकाशम् ) भो दूत ! एतदासनमास्यताम् ।

---

आसनात् पतित्वेति । पतित्वा—अत्र पतनं च ससम्भ्रमं चलनम्, सम्भ्रमे च केशवप्राप्तिज्ञानं निमित्तम् ।

अन्वयः—उत्साहेन मतिं कृत्वा अपि समाहितः (सन्) आसीनोऽस्मि । केशवस्य प्रभावेण अहम् आसनात् चालितोऽस्मि ॥ १६ ॥

संस्कृत टीका—अत्र आसनादचलने प्रयत्नमास्थितस्यापि मम कृष्णप्राप्तिज्ञानमात्रेण ससम्भ्रमं यच्चलनं मञ्जातं तद् कृष्णस्य माहात्म्यादित्याह—उत्साहेनेति । उत्साहेन=उत्साहगुणयुक्तेन, अविशङ्कयेत्यर्थः, मतिम्=बुद्धिं, अनुत्थाननिश्चयम्, कृत्वा=विधाय, अपि=च समाहित ( सन् )=अविक्षिप्तचित्त, सावधान सन्, आसीनोऽस्मि=उपविष्टोऽस्मि । (तथापि अहम्) केशवस्य=नारायणस्य, प्रभावेण=माहात्म्येन, तेजोविशेषेणेत्यर्थ, अहम्=दुर्योधन, आसनात्=निजोपवेशनस्थानात्, सिंहासनादित्यर्थः, चलितोऽस्मि=सम्भ्रमोत्थितोऽस्मि ॥ अनुष्टुप्छन्द ॥ १७ ॥

टिप्पणी—उत्साहेन—उत्=सह् + घञ् । मति—मन् + क्तिन् । समाहित—सम् + आ + धा + क्त ।

संस्कृत टीका—अहो इत्यादि । बहुमाय=बह्वी बहुप्रकारा माया शाम्बरी यस्य सः ।

---

दुर्योधन—( आसन से गिरकर, स्वगत हो ) स्पष्ट है कि केशव आ गये ।

बड़े उत्साह, के साथ संकल्प करके मैं सावधान होकर बैठा था, परन्तु केशव के प्रभाव से मैं आसन से विचलित हो गया ॥ १७ ॥

अरे ! यह दूत बहुत मायावी (जादूगर) है । (प्रकट मे) ओ दूत ! इस आसन पर बैठो ।

वासुदेव—आचार्य ! आस्यताम्। गाङ्गेयप्रमुखा राजान ! स्वैरमासता भवन्त । वयमप्युपविशाम । (उपविश्य) अहो दर्शनीयोऽय चित्रपट । मा तावत्। द्रौपदीकेशधर्षणमत्रालिखितम्।

अहो नु खलु

सुयोधनोऽय स्वजनावमान पराक्रम पश्यति बालिशत्वात्।

को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृण सभासु ॥ १८ ॥

---

प्रत्युत्थानापचारेणात्मान सम्भावय द्रोणभीष्मादीन् प्रसित्सकुर्वन्नाह—आचार्येत्यादि। गाङ्गेयप्रमुखा =भीष्मप्रमुखा मुख प्रगत मुख्य। आपातदर्शनप्रवृत्त द्रौपदीकेशाकर्षणलिखितचित्रपटप्रेक्षणसलग्नदुर्योधन केशव आक्षिपति—मा तावदिति। अहो नु खलु=इति आश्चर्ये।

टिप्पणी—बहुमाय—बह्वी माया यस्य (बहु०)। गाङ्गेयप्रमुखा—गाङ्गेय भीष्म प्रमुखो येषा ते।

अन्वय—अय सुयोधन बालिशत्वात् स्वजनावमान पराक्रम पश्यति। लोके को नाम नष्टघृण सभासु स्वयम् आत्मदोषम् उद्घाटयेत् ॥ १८ ॥

संस्कृत टीका—अय=एष, दुष्टमति, सुयोधन =दुर्योधन, बालिशत्वात्=बालिश मूर्ख तस्य भाव बालिशत्व मौर्ख्यम्, तस्मात् मूर्खत्वात्, स्वजनावमानम्=स्वबन्धूनाम् अवमानम् अपमानम्, आत्मीयजनावमानम्, पराक्रम पश्यति=शौर्य (मन्यते), अवलोकयति, विचारयतीत्यर्थ, लोके=भुवने, को नाम=बुद्धिमान् कोऽन्य, नष्टघृण=नष्टा अपगता घृणा दया यस्य स, विगतकृप, निर्जुगुप्स, सभासु=राजपरिषत्सु, स्वय=स्वैनै-

---

वासुदेव—आचार्य ! बैठिये। भीष्म प्रभृति राजाओ !

आप सब स्वेच्छा से बैठ जाइये। हम भी बैठ जाते हैं। (बैठकर) अहो ! यह चित्रपट दर्शनीय है। परन्तु रहने दो, इसमे तो द्रौपदी के केशवस्त्राकर्षण का चित्र अकित है। अहो निस्सदेह !

दुर्योधन मूर्खता के कारण अपने बन्धुओ के अपमान को पराक्रम समझता है। नही तो इस ससार में कौन ऐसा निर्लज्ज व्यक्ति है, कि जो अपने दोषो को इस प्रकार सभा के बीच उद्घाटित करेगा ? ॥ १८ ॥

सर्वाः अपनीयतामेष चित्रपटः।

दुर्योधनः—बादरायण ! अपनीयतां किल चित्रपटः।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। ( अपनयति। )

दुर्योधनः—भो दूत !

धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो
भ्राताऽर्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः।
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ
सर्वे सभृत्याः कुशलोपपन्नाः ॥ १९ ॥

---

वेत्यर्थः, आत्मदोषं—आत्मनः स्वस्य दोषं पापम्, उद्घाटयेद्—प्रकाशयेद्। दुर्योधनं विहाय कोऽन्यः जनः एवंविधं कार्यं कर्तुं शक्नोतीति विवेकः ॥ १८ ॥

टिप्पणी—वाग्मित्वात् — वाच्+इन् वाचि (वाणि) रमति इति वाग्मिनः, वाचि+रमो+क—इ—म। वाग्मिनस्य भावः वाग्मित्वम्। आत्मदोषं—आत्मना स्वस्य दोषम्, दुष्+घञ्। उद्घाटयेत्—उद्+घट्+णिच्+विधिलिङ् ॥ १८ ॥

अन्वयः—धर्मात्मजः वायुसुतः भीमश्च त्रिदशेन्द्रसूनुः मे भ्राता अर्जुनः च विनीतौ अश्विसुतौ तौ यमौ च सभृत्याः सर्वे कुशलोपपन्नाः (सन्ति) ॥ १९ ॥

संस्कृत टीका—दुर्योधनः दूतं कुशलवार्तां पृच्छति-धर्मात्मज इत्यादि। भोः दूत ! धर्मात्मजः—धर्मस्य यमस्य आत्मजः सुतः धर्मपुत्रः, युधिष्ठिरः, वायुसुतः—वायोः पवनस्य सुतः पुत्रः, भीमः च—वृकोदरः, त्रिदशेन्द्रसूनुः—

---

अरे ! दूर करिये इस चित्रपट को।

दुर्योधन—बादरायण ! इस चित्रपट को हटा दो।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा ! ( ले जाता है )।

दुर्योधन—हे दूत !

धर्मपुत्र युधिष्ठिर, वायुपुत्र भीम, मेरे भ्राता सुरेन्द्रसुत अर्जुन और अश्विनीकुमार के दोनों विनयशील पुत्र नकुल और सहदेव, सब अपने सेवकों सहित कुशल से तो हैं ? ॥ १९ ॥

वासुदेव.—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य। अथ किमथ किम्। कुशलिन सर्वे। भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामय च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादय पाण्डवा —

अनुभूत महद् दुःखं सपूर्णं समयः स च।
अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्य तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

---

त्रिदशानामिन्द्र तस्य सूनु:, देवेन्द्रपुत्र, मे=मम, भ्राता=बन्धु; अर्जुन च, विनीतौ=विनम्रौ, अश्विसुतौ=अश्विनो: सुतौ, अश्विनीकुमारपुत्रौ, तौ च, यमौ=सहजातौ, नकुलसहदेवावित्यर्थ, सभृत्या=सपरिजना, सर्वे=अशेषा, कुशलोपपन्ना=कुशलं कल्याणं, उपपन्ना युक्ता:, सकुशला. सन्ति किमिति शेष, इह प्रश्नकाकु = उपजाति वृत्तम् ॥ १९ ॥

टिप्पणी—त्रिदशेन्द्रसूनु—तिस्र. दशा. अवस्था बाल्यकैशोरप्रौढावस्था. येषा ते त्रिदशा. देवा, तेषाम् इन्द्र अधिपति, तस्य सूनु। अश्विसुतौ—अश्विनो: सुतौ (ष० त०)

सस्कृत टीका—सदृशमित्यादि। अथ किम्=इत्यङ्गीकारे। बाह्याभ्यन्तरे=शरीरे च बहिर्भवे आभ्यन्तरभवे देहे च। तत्राभ्यन्तरं शरीरं मन। अनामयम्=आरोग्यम्।

टिप्पणी—बाह्याभ्यन्तरे—बाह्यश्च आभ्यन्तर च तयो: समाहार: बाह्याभ्यन्तरम्। अनामयम्—न आमय (नञ स०)।

अन्वय:—महद् दुःखम् अनुभूतं स च समयः सम्पूर्णः। अस्माकमपि यद् धर्म्यं यद दायाद्य (अस्ति) तद् विभज्यताम् ॥ २० ॥

---

वासुदेव—गान्धारी पुत्र के लिए ऐसा (व्यवहार) उचित ही है। हाँ अवश्य। वे सब कुशल से हैं। आपके शरीर और राज्य की बाहरी तथा भीतरी कुशलता एव आरोग्य को पूँछकर युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवो ने निवेदन किया है—

हम लोगो ने बहुत कष्ट उठाये हैं और उस (अज्ञातवास की) प्रतिज्ञा की अवधि समाप्त हो चुकी है, इसलिये अब हमारा न्यायोचित पैतृक राज्य बाँट दिया जावे ॥ २० ॥

इति ।

दुर्योधन —कथं कथं दायाद्यमिति ।

वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गत-
कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान् ।
तदाप्रभृत्येव स दारनिस्पृहः
परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत् ॥ २१ ॥

---

संस्कृत टीका—दूतकार्यं कुर्वन् श्रीकृष्ण. युधिष्ठिरादीना वार्ताम् उद्देश्यं च दुर्योधन प्रति प्रकाशयति—अनुभूतमित्यादि । महत=अत्यन्तं, दुःखम्=कष्टम्, अनुभूत५=भुक्तम्, स. च समय =त्रयोदशवर्ष-पर्यन्तं वनवास, पूर्वनिर्धारितः काल: इत्यर्थः, सम्पूर्णः=पूर्णता गतः, धर्मातीत. । अस्माकमपि=पाण्डवानामपि, यत्, धर्म्यम्=धर्मादनपेतम् धर्म्यं तदनुसारि, दायाद्यम्=दाय. कुलधनं तद्रूपम् आद्यम् आदनीयं भोग्यं वस्तु, पितृरिक्थम्, विभज्यताम्=विभागं कृत्वा अस्मभ्यं देहीति विवेकः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

टिप्पणी—स च समय.—एकवर्षाज्ञातवाससङ्कुलसचिवो द्वादशवर्षवन-वाससङ्केतः । धर्म्यम्=धर्मात् अनपेतम्, धर्मेण प्राप्यम्, धर्म=यत् । दायाद्यम्—दायं विभजनीयं धनम्, दायाद्यम्, दाय+आ+दा+क, दायाद+ष्यञ् । 'दायाद्यं=पितृरिक्थम्, दाय कुलधन दायरूपम् अदनीयं भोग्यं वस्तु दायाद्यमिति व्युत्पत्ति.' इति गणपतिशास्त्रिणः ।

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । इति शब्दानन्तरम् उच्यत इति शेषः । एवञ्च पार्थाना दायाद्यमेव नास्तीत्यर्थ ।

अन्वय—पितृव्य वने मृगया प्रसङ्गतः कृतापराध. (सन्) मुनिशापम् आप्तवान् तदा प्रभृत्येव दारनिस्पृह स परात्मजाना पितृतां कथं

---

दुर्योधन—कैसा ? पैतृक-राज्य कैसा ?

मृगया में तत्पर हमारे चाचा पाण्डु को मुनि के प्रति ( हत्या का ) अपराध करने पर शाप लगा था। तभी से वे स्त्रियों के प्रति विरक्त हो

व्रजेत् ॥ २१ ॥

संस्कृत टीका—अस्माभिर्भुज्यमानं पितृव्यस्य पाण्डोर्धनं पार्थान् प्रति तदा दायाद्यं स्याद्, यदि पाण्डुस्तेषां पिता स्यात्। स तु तान् प्रति पितैव न भवतीत्याह—वन इति। पितृव्य=पितृभ्राता पाण्डुः, वने=अरण्ये, मृगयाप्रसङ्गत =आखेटप्रसक्त्या, कृतापराध =कृत विहित अपराध. येन स मृग्या सह, मृगरूपं धृत्वा क्रीडतः किन्दमाख्यस्य मुनेर्वधरूप अपराध (सन्), मुनिशापम्=मुने किन्दमाख्ये शाप श्रापम् अर्थात् 'पत्नीससर्गे मरिष्यसी' इत्येवमात्मक मुनेर्निग्रहवचनम्, आसवान्=प्राप्तवान्। तदा प्रभृत्येव=तत् समयादारभ्यैव, स=मम पितृव्य पाण्डु, दारनिस्पृह =दारेभ्य निर्गता स्पृहा यस्य स, स्त्रीप्रसङ्ग रहित सजात इति शेष। अत, परात्मजाना=परेषाम् अन्येषा धर्म वायुशक्राश्विनाम् आत्मजा. पुत्रा परात्मजा, तेषाम्, परैर्जातानां पुत्राणाम्, पितृता=जनकभावम्, कथम्=केन प्रकारेण, व्रजेत्=प्राप्नुयात्, नैव व्रजेदित्यर्थ। वशस्थ वृत्तम् ॥ २१ ॥

टिप्पणी—दारनिस्पृह —न स्पृहा यस्य निस्पृह, दारेषु स्त्रीषु निस्पृह दारनिस्पृह पितृताम्—पितु भाव पितृता, पितृ+तल्+टाप। (क) कृतापराध —कस्मिश्चित् समये किन्दमनामा महर्षि मृगरूप धृत्वा क्रीडां चकार। तदा आखेटमन्विष्यमाण नृपति पाण्डु तौ दृष्ट्वा मृगञ्च मत्वा शरैर्जघान। स च महर्षि मृगरूप विहाय तस्मै त्वमपि यदा स्त्रीप्रसङ्ग करिष्यसि तदा पञ्चत्व प्राप्स्यसीति' शाप ददौ (द्र० महाभा० आदि० १२३)।

पितृता—पितृधनभावत्व कथ व्रजेत् अर्थात् ये औरसा पुत्रा तेषामेव पित्र्य धन नान्यजातानामिति दुर्योधनस्याशय। (ख) एक बार जगल मे मुनि किन्दम मृगरूप में अपनी प्रिया के साथ सभोग मे सलग्न थे। राजा

गये थे। अत वह अन्य (देवादिको) के पुत्रो के साथ पितृत्व सबन्ध कैसे बना सकते हैं? ॥ २१ ॥

वासुदेव —पुराविद भवन्त पृच्छामि ।
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्ति क्षयेण यात पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्य जनक कथ ते ॥ २२ ॥

---

पाण्डु ने मृगया करते हुए इस मृग का वध कर दिया। मरने से पहले ऋषि ने मृगरूप को त्यागकर उन्हे शाप दे दिया कि 'तुम ज्यो ही स्त्री का आलिङ्गन करोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' अत उन्होने मृत्यु के भय से स्त्रीप्रसङ्ग का परित्याग कर दिया था। उनकी पत्नी कुन्ती एव माद्री ने देवताओ से सन्तान प्राप्त की थी।

अत दुर्योधन का आशय यह है कि तब पाण्डु उनके पिता कैसे बन सकते थे [ द्र० महाभा० आदि० १२३ ]।

सस्कृत टीका—पुरेत्यादि। पुराविद = पुरावृत्तम्,

टिप्पणी—पुराविद-पुराण वेत्ति इति पुराविद्, यद्वा, पुरा वेत्तीति त प्राग्वेत्तारम्। पुरा + विद् + क्विप्।

अन्वय —विषयी विचित्रवीर्य क्षयेण विपत्ति यात पुन व्यासेन अम्बिकाया जात एष धृतराष्ट्र ते जनक राज्य कथ लभेत ? ॥ २२ ॥

सस्कृत टीका—विषयी = विषयासक्त, विचित्रवीर्य = तव पितामह, क्षयेण = क्षयरोगेण, विपत्ति = मृत्यु यात = प्राप्त, पुन = पश्चात् तद् मरणानन्तर व्यासेन = महर्षिणा द्वैपायनेन, अम्बिकाया = विचित्रवीर्य-भार्यायाम्, जात = उत्पन्न, एष = अयम्, धृतराष्ट्र, ते = तव, जनक = पिता, राज्यम् = मण्डलाधिपत्यम्, अपितुविचित्रवीर्यस्य, कथ = केन न्यायेन, क्या भीत्येश्वर्य, लभेत = प्राप्येत, सोऽप्यनधिकारीति भाव ॥ २२ ॥

---

वासुदेव—पूर्वजों के इतिहास को अच्छी तरह जानने वाले आप से मैं पूछता हूँ—

विलासी विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से (ग्रस्त हो) मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब व्यास के सयोग से उत्पन्न तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र कैसे राज्य को प्राप्त कर सकते हैं ? ॥ २२ ॥

मा मा भवान्—

एवं परस्परविरोधविवर्धनेन
शीघ्रं भवेत् कुरुकुलं नृप ! नामशेषम् ।
तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोषं
यत् त्वा युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

---

टिप्पणी—विषयी—विषयः अस्ति अस्य इति, विषय+इनि। विपत्ति—वि+पद्+क्तिन्। कथं लभेत=यदि परात्मजो धृतराष्ट्रो विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजः पुत्रः इति कृत्वा 'अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥' इति शास्त्रात् क्षेत्रिरिक्थं लभेत, तर्हि पार्था अपि क्षेत्रजाः पाण्डोः क्षेत्रिभूतस्य रिक्थं लभेरन्नेवेति भावः ॥ २२ ॥

संस्कृत टीका—मा मा भवान्=मा मा कथयत्वित्यर्थगम्यम् ।

अन्वयः—हे नृप ! एवं परस्परविरोधविवर्धनेन शीघ्रं कुरुकुलं नामशेषं भवेत्। भवान् रोषम् अपकृष्य तत्कर्तुम् अर्हति, यत् त्वाम् युधिष्ठिरमुखाः प्रणयात् ब्रुवन्ति ॥ २३ ॥

संस्कृत टीका—कथने दोषमाह—एवं परस्परमिति। हे नृप=हे राजन्, एवम्=इत्थम्, परस्परविरोधविवर्धनेन=परस्परस्य विरोधः वैरभावः, तस्य विवर्धनं, तेन, मिथः वैरभावेन (सर्वं) कुरुकुलम्=कुरूणां कुलं, कौरववंशः, शीघ्रम्=झटिति, नामशेषम्=नष्टम्, नाम्ना संज्ञया शेषम् अवशिष्टम्, भवेत्=स्यात्, सर्वस्य विनाशे नाम्न एवावशिष्टत्वादिति भावः। तत्=तस्मात् कारणात् भवान्=दुर्योधनः, रोषम्=

---

नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो।

हे नृप ! इस प्रकार आपस में विरोध बढ़ाने से इस कुरुवंश का शीघ्र ही नामशेष रह जायगा। इसलिए क्रोध को छोड़कर आपको वही करना उचित है जो युधिष्ठिर आदि पाण्डव प्रेम के कारण आपको करने के लिए कहते हैं ॥ २३ ॥

दुर्योधन —भो दूत ! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम् ।

राज्य नाम नृपात्मजै सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहस
स्वैर वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्ट शमायाश्रमम् ॥ २४॥

समर्थम् अपहृत्य=विहाय नियम्य, तत्कर्तुं —विधातु, भवान् अर्हति=योग्योऽस्ति। यत=वाक्य, त्वा=भवन्तम्, युधिष्ठरमुखा =युधिष्ठिर धमपुत्र, युधिष्ठिर मुखम् आदि येषा ते, प्रणयात्=स्नेहाद् प्रेमत, ब्रुवन्ति=कथयन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २३ ॥

टिप्पणी—नृप—नृन् पातीति नृप भूपाल, तत्सम्बुद्धौ । नामशेष-नाम एव शेषो यस्य तत् । अपकृष्य—अप+कृष+ल्यप ।

सस्कृत टीका—भो दूतेत्यादि । भवानिति अराजकुलप्रसूतत्व द्योतयति । अत एव राज्यव्यवहारानभिज्ञत्वयाचोयुक्तिरुपपन्नतरा । राजत्व हि यदुकुलस्य खण्डित पूर्वपुरुषययातिशापात् ।

अन्वय —सहृदयै नृपात्मजै रिपून् जित्वा राज्य नाम भुज्यते । लोके तत् न तु याच्यते पुन न च वा दीनाय दीयते । नृपतित्वम् आप्तु काङ्क्षा चेत् ते अचिरात् साहस कुर्वन्तु वा शमाय शान्तमतिभि जुष्ट आश्रम स्वैर प्रविशन्तु ॥ २४ ॥

सस्कृत टीका—सहृदयै =सचित्तै , समुन्नतचित्तैरित्यर्थ , नृपात्मजै = नृपस्य औरसै पुत्रै , रिपून्=शत्रून् जित्वा=अभिभूय, राज्य नाम=

---

दुर्योधन —ऐ दूत ! तुम राज्य व्यवहार भी नही जानते ।

सहृदय राजपुत्र शत्रुओ को जीतकर राज्य का उपभोग करते हैं । राज्य ससार मे न तो माँगा ही जाता है (क्योंकि माँगने से नहीं मिलता) और न ही दीन याचकों को दिया ही जाता है । यदि उन्ह राजत्व प्राप्त करने की कामना है तो तुरन्त साहस से काम लें अथवा शम के सेवनार्थ वे शान्तबुद्धि मुनियों से सेवित आश्रम मे प्रवेश करें ( अर्थात् तपस्वी हो जावें )॥ २४ ॥

वासुदेव —भो सुयोधन ! अलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् ।

पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् य सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रम ॥ २५ ॥

---

विषयो नाम, नाम इति सम्भावनायाम्, भुज्यते=अनुभूयते, यथास्माभि-स्तथेत्यर्थं । लोके=भुवने तत्=राज्य, न तु याच्यते=नैव भिक्ष्यते । यथा पार्थैस्तथेत्यर्थं वा=अन्यथा, दीनाय=दरिद्राय न तु पुन दीयते=नैवप्रदीयते । एव राज्यव्यवहारस्य स्थितौ पार्थैर्यत् कर्तव्य तद् बोधयति—नृपतित्व=राज्यम्, आप्तु=लब्धु, काङ्क्षा=इच्छा, चेत्=अस्ति यदि, ते=पार्था, अचिरात्=अविलम्बम्, साहस=युद्धम्, कुर्वन्तु=विदधतु अर्थादस्माभि सह । वा=पक्षान्तरे, राज्येप्साभावे इत्यर्थ । शमाय=शान्त्यर्थम् शान्तमतिभि=निर्मत्सरबुद्धिभि अर्थाद् मुनिभि, जुष्ट=सेवितम्, आश्रम=मुनिगृह, स्वैर=स्वच्छन्दम् प्रविशन्तु=गच्छन्तु । विना युद्ध नाह किञ्चिदपि दातुमिच्छामीति भाव । शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥ २४ ॥

टिप्पणी—सहृदयै —हृदयेन सह वर्तते इति सहृदया , तै (बहु०) नृपतित्वम्—नृपते भाव नृपतित्वम् । नृपति+त्व । शान्तमतय —शान्ता मति येषा ते (बहु०) शान्तमतय तै । जुष्टम्—जुष+क्त ।

सस्कृत टीका—अलमित्यादि । अलमलम्=न युज्यत इत्यर्थेऽलशब्द । द्विरुक्तिर्वार्ढ्याय । परुषम्=निष्ठुरम् ।

अन्वय —य पुण्यसञ्चयसम्प्राप्ता नृपश्रियम् अधिगम्य सुहृद्बन्धून् वञ्चयेत् स विफलश्रम भवेत् ॥ २५ ॥

---

वासुदेव—हे सुयोधन ! अपने बान्धवो के प्रति ऐसे कठोर वचन न कहो ।

पुण्य कर्मों के सञ्चय से प्राप्त होने वाली राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सहृदय बन्धुजनो ( अथवा मित्रो ) को धोखा देता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है ॥ २५ ॥

दुर्योधनः—

स्यालं तव गुरोर्भूपं कसं प्रति न ते दया।
कथमस्माकमेव स्यात् तेषु नित्यापकारिषु ॥ २६ ॥

---

संस्कृत टीका—यः=पुरुषः, पुण्यसञ्चयसम्प्राप्ताम्=सञ्चितपुण्योपनताम्, पुण्यानाम् सुकृतानां सञ्चयः तेन प्राप्ता अधिगता ताम्, नृपश्रियम्=नृपस्य राज्ञः श्री लक्ष्मीः ताम, राज्यलक्ष्मीम्, अधिगम्य=सम्प्राप्य, सुहृद्बन्धून्=मित्रज्ञातीन्, वञ्चयेत्=प्रतारयेत्, नृपश्रीसविभागेन नानुगृह्णीयात्, स, विफलश्रमः=व्यर्थपरिश्रमः, भवेत्=स्यात्। अर्थात् स्वबन्धुभि विरोधे कृते तयैव आयासः विफलो भविष्यतीति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ २५ ॥

टिप्पणी—विफलश्रमः—विफलः इष्टासिद्ध्या निष्फलः अनिष्टप्राप्त्या विपरीतफलो वा श्रमः वञ्चनविषय आयासो यस्य स तथा, भवेत्, सुहृद्बन्धुविषया वञ्चनया इष्टासिद्धिरनिष्टप्राप्तिश्च भवतीत्यभिप्रायः।' इति गणपतिशास्त्रिण ॥ २५ ॥

अन्वयः—तव गुरोः स्यालं भूपं कसं प्रति ते दया न, एवं नित्यापकारिषु तेषु अस्माकं ( दया ) कथं स्यात् ? ॥ २६ ॥

संस्कृत टीका—तव गुरोः=ते पितुः वसुदेवस्य, स्यालं=पत्नीभ्रातरम् अर्थात् स्वमातुलम्, भूपम्=राजानम्, कंसं प्रति एतन्नामानं मथुराधिपतिम्, प्रति, ते=तव, दया=अनुकम्पा न=नासीत्। स हि निहतस्त्वयेत्यर्थः, एव=सुहृद्बन्धुमुख्ये स्वमातुलेऽपि तव दया नैत्येव स्थिते इत्यर्थः। नित्यापकारिषु=नित्यं सततम् अपकारः अपकरणम् अस्ति एषाम् ते, अहितकारिषु, तेषु=पाण्डवेषु विषये, अस्माकं=कौरवाणाम् ( दया ),

---

दुर्योधन—हे दूत !

अपने पिता के साले कंसराज के प्रति तुम्हे दया न आयी, तो सदा अपकार करने वाले उन लोगो ( पाण्डवो ) के प्रति हमे कैसे दया आ सकती है ? ॥ २६ ॥

अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि ।

> ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम् ।
> विक्रोशन् घोषयात्रायां फाल्गुनेनैव मोक्षितः ॥ ३३ ॥

---

नामक वन था। यह वन इन्द्र के लिए पवित्र भूमि थी। अग्निदेव ने उस वन पर क्रोध कर उसे जलाना चाहा। अर्जुन ने तब इसकी रक्षा की थी। तदर्थ उनसे गाण्डीव धनुष और अनेक बाण पुरस्कार में प्राप्त किए। ३ पाण्डव जब छद्मवेश में थे तब दुर्योधन ने विराट्नगर की गायों का अपहरण कर लिया था। उसी समय विराट्नगर में आश्रय प्राप्त अर्जुन ने भीष्मादि कौरव महारथियों को जीतकर उन गायों की रक्षा की थी ॥ ३२ ॥

अन्वय --ननु चित्रसेनेन नभस्तलं नीयमानः विक्रोशन् त्वं घोषयात्रायां फाल्गुनेनैव मोक्षितः ॥ ३३ ॥

संस्कृत टीका—ननु=इति किं न स्मर्यते ? चित्रसेनेन=तन्नाम्ना गन्धर्वेण, नभस्तलं=आकाशतलम्, स्वर्गन्धर्वपुरम्, नीयमानः=बलाद् आकृष्यमाणः, विक्रोशन्=आर्तनादं कुर्वन्, त्वं=दुर्योधन, घोषयात्रायां=घोषाणां गोपानां यात्रायाम्, यद्वा, गोहरणमार्गे, घोषयात्रापर्वे वा ( महा० भा० २४३ वन० )। फाल्गुनेनैव=अर्जुनेनैव, न तु स्वल्पसुहृत्समैः कर्णादिभिः, मोक्षितः=मोचितः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—नभस्तलम्=नभसः तलम् ( ष० त० ), विक्रोशन्—वि+क्रुश्+शतृ। (क) चित्रसेन नामक गन्धर्व ने दुर्योधन को पकड लिया और आकाशमार्ग से उसे अपने गन्धर्वनगर को ले चला। तभी आर्तनाद सुनकर अर्जुन ने उसे बचाया। यह कथा महाभारत के वनपर्व में २४३ अध्याय में है। इसी का अन्तर्विभाग घोषयात्रापर्व है ॥ ३३ ॥

---

फिर एक और तुम्हारी देखी हुई घटना कहता हूँ।

जब तुम घोषयात्रा में चित्रसेन द्वारा आकाश में ले जाये जा रहे थे उस समय चिल्लाते हुए तुमको अर्जुन ने ही छुडाया था ॥ ३३ ॥

किं बहुना,—

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज ! ।
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ॥ ३४ ॥

दुर्योधनः—कथम् ? कथं हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः ।

---

अन्वय—हे धृतराष्ट्रज, मद्वाक्यात् राज्यार्धं दातुमर्हसि अन्यथा पाण्डवाः सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—हे धृतराष्ट्रज !=हे धृतराष्ट्रपुत्र ! मद्वाक्यात्=मम कथनात्, राज्यार्धम्=अर्धं राज्यं राज्यार्धं, दातुमर्हसि=(पाण्डवेभ्यः) अर्पयितुम् योग्योऽसि, अन्यथा=यदि मद्वचनात् न दास्यसि तर्हि, पाण्डवाः=युधिष्ठिरादयः, सागरान्तम्=समुद्रसीमाम, गां=महीम्, हरिष्यन्ति हि=त्वां पराजित्य, बलाद् ग्रहीष्यन्त्येव । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—धृतराष्ट्रज !=धृतराष्ट्राज्जातः, तत्सम्बुद्धौ, धृतराष्ट्र+जन+ड । राज्यार्धम्—राज्यस्य अर्धः असमो यः, कश्चिदंशो राज्यार्धं तम् । समांशविवक्षायां तु अर्धशब्दस्य क्लीबत्वाद्, 'अर्धं नपुंसकम' इति समासे अर्धराज्यमिति स्यात् । असमाशदानोक्त्या च—

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ (महा०)

इति महाभारतोक्तः पञ्चग्रामप्रार्थनरूपः अवरपक्षः सूचितः । सागरान्ताम्—सागरा अन्ता यस्याः ताम् (बहु०) । गाम्—स्वर्गेषु पशु-वाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले । लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौ—इत्यमरः ॥ ३४ ॥

संस्कृत टीका—कथमित्यादि । कथंशब्दो गर्हायाम् । हरिष्यन्तीत्यत्र काकुः ।

---

अधिक क्या कहा जाय ?

हे धृतराष्ट्र-पुत्र ! मेरा कहना मानकर आप राज्य का आधा भाग दे दीजिये । नहीं तो पाण्डव सागर तक की सारी पृथ्वी को अवश्यमेव छीन लेंगे ॥ ३४ ॥

दुर्योधन—कैसे, पाण्डव कैसे छीन लेंगे ?

प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमरूपी
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः ।
परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये ।। ३५ ।।

---

अन्वयः--यदि भीमरूपी मारुतः युद्धे प्रहरति, यदि शक्रः साक्षात् पार्थरूपेण प्रहरति, हे परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिः पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये तृणमपि न दास्ये ।। ३५ ।।

संस्कृत टीका--यदि=चेत्, भीमरूपी=वृकोदररूपधारी, मारुतः=वायुदेव, युद्धे=संग्रामे, प्रहरति=प्रहार करोति यदि=चेत्, शक्रः=इन्द्रः, साक्षात्=प्रत्यक्षम्, पार्थरूपेण प्रहरति=अर्जुनरूप धृत्वा अचिरभाविनि रणे प्रहारं करोति, तथापि, हे परुषवचनदक्ष !=परुषवचने कठोरवचनप्रयोगे दक्षः निपुण, तत्सम्बुद्धौ, हे निष्ठुरभाषणचतुर !, त्वद्वचोभिः=त्वद्वचनानुसारेण, पितृभुक्ते=पित्रा भुक्त तस्मिन्, मत्पित्रानुभूते, धृतराष्ट्रेण शासिते इत्यर्थः, वीर्यगुप्ते=वीर्येण पराक्रमेण गुप्ते रक्षिते, मद्वीर्यरक्षिते, स्वराज्ये=स्वराष्ट्रे, तृणमपि=परमाल्पमंशमपीत्यर्थं न दास्ये=न वितरिष्यामि । मालिनीवृत्तम् ।। ३५ ।।

टिप्पणी--मारुतः प्रहरति यदि--वायुदेवः पुत्रपक्षपातात् प्रहरिष्यति चेदित्यर्थः, वर्तमानसामीप्ये लट् । प्रहरतिरिहाकर्मक आयुधप्रयोगो वर्त्तते । प्रहरत्वित्यध्याहार, अनुज्ञायां च लोट्, काम प्रहरणमभ्यनुजानामि न ह्यहं प्रहरणाद् बिभेमीत्यभिप्रायः । पार्थरूपेण--पृथायाः पुत्रः पार्थ, पार्थस्य रूपं (ष० त०) तेन पार्थरूपेण ।। ३५ ।।

---

चाहे युद्ध में पवनदेव भीम का रूप धारण कर प्रहार करें, अथवा साक्षात् इन्द्र भी पार्थ ( अर्जुन ) के रूप में आक्रमण करें, पर हे कटु-भाषण में दक्ष ! तुम्हारे कहने पर मैं उस राज्य का तृण के बराबर भाग भी न दूंगा जिसका उपभोग मेरे पिता ने किया है और जिसकी रक्षा मैंने भुजबल से की है ।। ३२ ।।

वासुदेवः—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल तृणान्तराभिभाष्यकाः ।

दुर्योधनः—भो गोपालक ! तृणान्तराभिभाष्यो भवान् ।

अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च ।
मल्लानपि मुनिर्लज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः ॥ ३६ ॥

---

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । कुरुकुलकलङ्कभूत ?=कुरूणां कुलस्य कलङ्कभूतः (सुप्सुपा०), अयशोलुब्ध=न यशः अयश तत्र लुब्ध=अपकीर्तिलोभिन्, तृणान्तराभिभाष्यकाः=तृणेन अन्तरं व्यवधानं येषाम् अभिभाष्येण सह ते तृणान्तराः, तृणान्तराः सन्तोऽभिभाष्यकाः तृणान्तराभिभाष्यकाः, तृणान्तराभिभाष्य.=तृणमन्तरत कृत्वैव त्वमस्माकमभिभाष्यो न साक्षादित्यभिप्रायः ।

अन्वय —अवध्यां प्रमदां (हत्वा) हयं गोवृषं च (हत्वा) मल्लानपि हत्वा मुनिर्लज्जः साधुभिः वक्तुम् इच्छसि ॥ ३६ ॥

संस्कृत टीका—अवध्यां=वधानर्हां, प्रमदां=स्त्रियं, पूतना नाम दानवीं, हयं=अश्वरूपं केशिनामानमसुरम्, गोवृषम्=अरिष्टर्षभं दानवम्, मल्लान् अपि=मुष्टिकचाणूरादीनपि मल्लजातिभवान्, हत्वा=विनाश्य, मुनिर्लज्ज=मुनरा निर्गता लज्जा यस्मात्, सः=लज्जारहितः, साधुभिः=मद्विधैः सह, वक्तुम्=आलपितुम्, इच्छसि=वाञ्छसि । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३६ ॥

---

वासुदेव—हे कुरुकुल के कलंक ! हे अपयश के लोभी ! तुम बीच में तृण रखकर ही मुझसे बात करने योग्य हो ।

दुर्योधन—हे ग्वाले ! अवश्य तुम बीच में तृण रखकर ही वार्तालाप के योग्य हो ।

अवध्य स्त्री, अश्व और गो ( वृषभ ) की हत्या करके और मल्लों को भी मारकर लज्जा का अनुभव न करने वाले तुम ( हम जैसे ) सज्जनों से बात करना चाहते हो ?

वासुदेवः—भोः सुयोधन ! ननु क्षिपसि माम् ।

[दुर्योधनः—ननु सत्यमेवैतत् ।

वासुदेवः—गच्छामि तावत् ।

दुर्योधनः—गच्छ गच्छ पशुखुरोद्धतरेणुरूषिताङ्गो व्रजमेवम् । विफलीकृतः काल ।

---

टिप्पणी—अवध्या—'अहिंस्या प्रमदामाहुः सर्वधर्मेषु पार्थिव'—इति भारतोक्ति. । मल्लान्—व्रात्यपूर्वाया क्षत्रियाया क्षत्रियाज्जाता मल्ला उच्यन्ते, ते च मुष्टियुद्धाद्यभ्यासवृत्तयः । सुनिर्लज्जः अबलामृगदुर्बलहननं शिष्टगर्हितं कृतवतो हि लज्जोचिता । साधुभि—त्वया सह अस्माकं राज्ञामालपनमपि गर्हितमिति विवेकः । (क) १ कृष्ण ने बाल्यावस्था मे पूतना नामक राक्षसी का वध किया था । स्त्रियो का वध वर्जित होने से उसी का यहाँ संकेत है । २ केशी एवं अरिष्ट नामक राक्षसो ने क्रमशः घोडे और बैल का रूप धारण किया था । इनका भी वध कृष्ण ने किया था । घोडे एवं बैल का वध भी प्रशस्त नहीं है । ॥ ३६ ॥

अवध्या प्रमदा—'अहिंस्यां प्रमदामाहु सर्वधर्मेषु पार्थिव'-महाभा० सभा० २१.१५ । तु ५२, ५३ अ० । हयम्, गोवृषम्—

'अथारिष्ट इति ख्यात दैत्य वृषभविग्रहम् ।
जघान तरसा कृष्ण. पशूना हितकाम्यया ॥
केशिनामा ततो दैत्यः राजन् तुरगविग्रहः ।'

महाभा०, सभा० ५३ २८-२९ ।

संस्कृत टीका—भो इत्यादि । क्षिपसि=तिरस्करोषि, निन्दसि । गच्छेत्यादि । व्रजमेव=गोष्ठमेव, गोपालकस्य गोष्ठगमनं युक्तम् ।

---

वासुदेव—हे सुयोधन ! क्या तुम मेरा अपमान करते हो ?

दुर्योधन—यह सत्य है ।

वासुदेव—अच्छा तो मैं जाता हूँ ।

दुर्योधन—जाओ, पशुओ के खुरो से उठी हुई धूलि से अपने अगो को कलुषित करने वाले तुम व्रज को ही जाओ । तुमने व्यर्थ ही समय नष्ट किया है ।

वासुदेव —एवमेवास्तु । न वयमनुक्तसन्देशा गन्तुमिच्छाम । तदाकर्ण्यतां युधिष्ठिरस्य सन्देशः ।][1]

दुर्योधन – आः, अभाष्यस्त्वम् ।

अहमवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा ।
अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भाषे ॥ ३७ ॥

---

विफलीकृत =अनभिभाष्याभिभाषणे विनियुक्तत्वात् । अभाष्य =वाणीप्रयोगानर्हः ।

अन्वय —अवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा अहम् अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः भवद्विधैः सह न भाषे इति कथयामि ॥ ३७ ॥

संस्कृत टीका—अवधृतपाण्डरातपत्र =अवधृतम् गृहीतं पाण्डरं शुभ्रम् आतपत्रं छत्रं येन स, अवधारितश्वेतछत्रः, द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा= द्विजवराणां ब्राह्मणश्रेष्ठानां हस्ताभ्यां कराभ्यां धृतं धारितं यदम्बु जलं तेन सिक्तः अभिषिक्तः मूर्धा शिरः यस्य स तादृशः, वैदिकद्विजकरधृतजलसेचित मस्तकः, अहम्=दुर्योधनः, अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः =अवनतस्य मदधरःवरस्य नृपमण्डलस्य अनुयात्रैः अनुयायिभिर्भृत्यैरित्यर्थः भवद्विधैः =त्वत्सदृशैः । कसभृत्य इतिवत् क्षेपोऽयम्, सह=साकम् न भाषे=न ब्रवीमि (इति) कथयामि=प्रतिजाने, कथयत कथयामीत्युक्तिर्हि विशिष्टे कथने प्रतिज्ञानरूपे पर्यवस्यति । प्रतिज्ञानविषयश्च भवादृशैः साकम् अभाषणम् । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३७ ॥

---

वासुदेव—ऐसा ही सही । परन्तु हम बिना सन्देश कहे नहीं जाना चाहते । तो युधिष्ठिर के सन्देश को सुनो ।

दुर्योधन—अरे तुम तो बात करने के योग्य ही नहीं हो ।

मेरे सिर पर श्वेत राजच्छत्र रखा गया है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने अपने हाथों से मेरे मस्तक पर अभिषेक जल सिञ्चित किया है । मैं कहता हूँ कि तुम जैसे व्यक्तियों से मैं बात भी नहीं करता जो मुझसे निम्न श्रेणी के राजाओं के अनुयायी हैं ॥ ३७ ॥

---

1 देवधरसंस्करणे कोष्ठकचिह्नाङ्कितः पाठोऽयं न लभ्यते ।

वासुदेवः—न व्याहरति किल मा सुयोधनः। भोः !
शठ ! बान्धवनि स्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! ।
त्वदर्थात् कुरुवशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ३८ ॥
भो भो राजान. ! गच्छामस्तावत् ।

---

टिप्पणी—अवधृत०—अवधृत पाण्डर आतपत्र येन स. (बहु०) आतपत्र—आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्। द्विजवर०—द्विजेपु वरा द्विजवरा ( स० त० ), तेषा हस्ता (प० त०), तैं धृतम् अम्बु (तृ०त०), तेन सिक्त मूर्धा यस्य स: (बहु०)। अवनत०—नृपाणा मण्डल नृपमण्डलम् (प०त०), अवनत नृपमण्डल (कर्म०) तद् अनुयात्रा येषा तैः ॥ ३७ ॥

सस्कृत टीका—व्याहरति=वदति। किल=इति निश्चये।

अन्वयः—शठ ! बान्धवनि स्नेह ! काक ! केकर ! पिङ्गल ! त्वदर्थात् अय कुरुवश: अचिरात् नाशम् एष्यति ॥ ३८ ॥

सस्कृत टीका—शठ=हे धृष्ट, वञ्चक, बान्धवनि.स्नेह=बान्धवेपु निर्गतः स्नेहः यस्य सः तत् सम्बुद्धौ, हे भ्रातृनिष्कृप !, काक=कटु-भाषित्वात् हे काक सदृश !, केकर=वलिर, वक्रलोचन, हे विकृताक्ष !, पिङ्गल=हे मर्कट, चपलत्वात् हे वानरकल्प !, त्वदर्थात्=त्वन्निमित्तात्, अयं=वर्तमान., कुरुवश=कुरूणा वश, अचिरात्=शीघ्रम् एव, नाशं=अभावम्, एष्यति=प्राप्स्यति। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—केकर—तारकामपाङ्ग आकृष्य वीक्षको हि केकरः। 'काककेकर' इत्येकपद वा उपमानसमासात्। 'वलिरः केकरे' इत्यमर ॥ ३८ ॥

संस्कृत टीका—अथ जिगमिषु भगवन्त बद्धुं सुयोधनस्य सरम्भ—

---

वासुदेव—सुयोधन तो मुझसे बात भी नहीं करता।

हे शठ ! बन्धु विरोधी ! काक ( कुटिल स्वभाव ), भैंगे, और पिंगल ( शाखामृग ) तेरे ही कारण यह समग्र कुरुवंश शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जायगा ॥ ३८ ॥

हे ! हे राजाओ, हम अब जाते हैं।

दुर्योधन.—कथं यास्यति किल केशवः। दुःशासन! दुर्मर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धे! दुष्टेश्वर! दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बध्यताम्। कथमशक्ताः। दुःशासन! न समर्थः खल्वसि।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः।
हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं
स्ववचनकृतदोषो बध्यतामेव शीघ्रम् ॥ ३९ ॥

---

कथं यास्यतीत्यादिना प्रकाश्यते। दूतसमुदाचारम् अतिक्रान्तः=दूतमर्यादामतिक्रम्य स्थितः, अतोऽपराधी बन्धनार्ह इत्यर्थः। न समर्थः=अर्थात् केशवं बद्धुम्।

अन्वयः—करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता पशुपकुलनिवासाद् आनुजीव्यानभिज्ञः हृतभुजबलवीर्यः एष स्ववचनकृतदोषः स कृष्णः पार्थिवानां समक्षं शीघ्रं बध्यताम् ॥ ३९ ॥

संस्कृत टीका—करितुरगनिहन्ता=करिणः उत्पलापीडाख्यस्य गजस्य तुरगस्य अश्वासुरस्य च निहन्ता, कंसहन्ता=कंसस्य हन्ता वधकर्ता। पशुपकुलनिवासात्=गोपालगृहनिवासात्, नीचकुलनिवासादिति भावः, आनुजीव्यानभिज्ञः=आनुजीव्यस्य अनुजीविकर्मणः

---

दुर्योधन—केशव भला जाने कैसे पायेगा? दुःशासन! दुर्मर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धि! दुष्टेश्वर! दूतोचित आचरण का अतिक्रमण करने वाले केशव को बाँध लो।

अरे, क्या तुम (इस कार्य के लिए) असमर्थ हो? दुःशासन! क्या तुम भी असमर्थ हो?

यह कृष्ण गज (कुवलयापीड), अश्व (घोटकासुर) और कंस को मारनेवाला है। पशु पालने वालों के साथ निवास करने के कारण यह दास-कर्मों से अनभिज्ञ है। यह भुजबल और वीर्य से रहित है। राजाओं के सामने इसने स्वयं वचन कहने का अपराध किया है, अतः इसे शीघ्र बाँध लिया जाय ॥ ३९ ॥

अयमशक्तः । मातुल ! बध्यतामयं केशवः । कथं पराङ्मुखः पतति । भवतु अहमेव पाशैर्बध्नामि । ( उपसर्पति )

वासुदेवः—कथं मवितुकामो मां किल सुयोधनः । भवतु सुयोधनस्य, सामर्थ्यं पश्यामि । ( विश्वरूपमास्थितः )

---

अनभिज्ञः अपरिचितः, हृतभुजबलवीर्यः—हृतं भुजानां बलवीर्यं येन नष्टबाहुबलपराक्रमः, एषः—कृष्णः, स्ववचनकृतदोषः—स्ववचनेन कृतः दोषः येन, ममावमाननारूपोऽपराधः यन सः, सः—तादृशः, कृष्णः—वासुदेवः, पार्थिवानाम्—राज्ञाम् समक्षम् — अक्ष्णः समक्षं प्रत्यक्षम् शीघ्रम्मदिति बध्यताम्—बद्धः क्रियताम् । मालिनीवृत्तम् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—करितुरग०—करी च हस्ती च तुरगश्च अश्वश्चेति करितुरगौ तयो निहन्ता विनाशकः ( ष० त० ), नि+हन्+तृच । पशुप० पशून् पालयन्ति इति पशुपाः आभीराः, तेषां कुलं वंशः तस्मिन् निवासः तस्मैरत् । आनुजी०या०—आनुजीवन्तीति अनुजीविन आनुजीविनः भावः आनुजीव्यम् तदनभिज्ञः । हृतबल०—बलं च वीर्यं च बलवीर्ये, भुजयोः बलवीर्ये (ष०त०) हृतभुजबलवीर्ये यस्य सः (बहु०) ॥ ३९ ॥

संस्कृत टीका—बन्धु कृतप्रयत्न दुश्शासनस्याशक्तिमुपालभ्याह—अयम शक्त इति । शकुनिं चोदयति मातुलेत्यादि कथमित्यादि । पतति—बद्धु किमपि चेष्टित्वा परिश्रान्तो भुवि पततीत्यर्थः, भवतु—इति निषेधऽव्ययम्, दुश्शासनादयो मा बध्नन्तु ॥

मयमित्यादि । मवितुकाम —मवितु बन्धु काम इच्छा यस्य स । विश्वरूपम्—विश्व कृत्स्न जगत्, तदात्मकं रूपम् अपरिच्छिन्नम् आत्मनः

---

यह तो असमर्थ है । हे मामा ! इस केशव को बांध लो । क्या यह तो मुंह के बल गिर पड़े । अच्छा ! मैं ही इसे पाश से बांधता हूं ॥

( पाश को उठाकर समीप आता है )

वासुदेव—क्या सुयोधन सचमुच मुझे बांधने की इच्छा करता है ? अच्छा सुयोधन की शक्ति को भी देखता हूं ( परीक्षा करता हूं ) ( विराट रूप धारण करते हैं ) ।

दुर्योधन—भो दूत !

सृजसि यदि समन्तात् देवमाया. स्वमाया·
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारै. सुरास्त्रैः।
हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो
नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाद्य ॥ ४० ॥

---

स्वरूपमित्यर्थः। आस्थितः—अङ्गीकृतवान्।

टिप्पणी—भवितुकामः-भवितुं कामः यस्य (बहु०)। भव बन्धने भ्वादि.।

अन्वयः—यदि देवमाया· स्वमाया. समन्तात् सृजसि, यदि त्व दुर्निवारैः सुरास्त्रैः प्रहरसि, मया अद्य नरपतिगणमध्ये हयगजवृषभाणा पातनात् जातदर्पः त्व बध्यसे ॥ ४० ॥

संस्कृत टीका—भगवतो विश्वरूपप्रदर्शन मोहादिन्द्रजालप्रयोगं मन्यमान आह—सृजसीत्यादि। यदि=चेत्, देवमाया·=देवाना माया, स्वमायाः=आत्मसृष्टा माया·, समन्तात्=सर्वासु दिक्षु, सृजसि=विदधासि, यदि, वा=अथवा, त्वम्=कृष्णः, दुर्निवारैः अप्रतिहतैः, सुरास्त्रैः=दिव्यास्त्रै., अपि देवास्त्रै·, प्रहरसि=प्रहारं करोषि। इह 'सृजसि यदि' इत्यत्र 'सृज' इत्यध्याहारः। अर्थात् यथाकामं मायाः सृज, न मे त्वन्मायासर्गाद् भयमिति भाव.। तथा 'प्रहरसि यदि' इत्यत्र 'प्रहर' इत्यध्याहार, अर्थात् यथाकाम प्रहर; न मे सुरास्त्रप्रहाराद् भयमिति भाव·। अद्य=अस्मिन्नहनि, नरपति-गणमध्ये=नरपतीनां गणः तस्य मध्यं तस्मिन्, नृपमण्डलमध्ये=हयगज-वृषभाणा=हयाश्च गजाश्च वृषभाश्च हयगजवृषभाः, तेषाम्, करितुरगवृषाणाम् पातनात्=वधात्, जातदर्प=जात उत्पन्नः

---

दुर्योधन—हे दूत !

चाहे तुम चारो ओर अपनी माया या देवमाया का सर्जन करो, चाहे अमोघ दिव्यास्त्रो से प्रहार करो, परन्तु अश्व, गज, वृषभ आदि को मारने पर अहंकार करने वाले तुमको इस नृपमण्डल के बीच में अभी बाँधता हूँ ॥ ४० ॥

आ. तिष्ठेदानीम्। कथ न दृष्टः केशव। अय केशवः। अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य। आ तिष्ठेदानीम्। कथ न दृष्टः केशव.। अयं केशवः। अहो दीर्घत्व केशवस्य। कथ न दृष्ट केशव.। अय केशवः। सर्वत्र मन्त्रशालाया केशवा भवन्ति। किमिदानी करिष्ये। भवतु. दृष्टम्। भो भो राजान! एकैकः केशवो वध्यताम्। कथ स्वयमेव पाशैर्बद्धा पतन्ति राजानः। साधु भो जम्भक! साधु!

मत्कार्मुकोदरविनि सृतबाणजालै-
विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्।

---

दर्प गर्व यस्य स:, त्वम्=वासुदेव, मया=दुर्योधनेन, बध्यस=बन्धन प्राप्स्यसे। मालिनीवृत्तम्॥ ४०॥

टिप्पणी—दुर्निवारै—दु खेन निवारयितु शक्यानि, तै.। पातनात्—पत्+णिच्+ल्युट्। हयगज०—हयश्च अश्वश्च (केशिघोटकश्च) गजश्च हस्ती च (कुवलयापीडगजश्च) वृषभश्च बलीवर्दश्च (वृषभासुरश्च) इति हयगजवृषभा', तेषाम्॥ ४०॥

संस्कृत टीका—अथात्यद्भुतभगवद्विश्वरूपदर्शनोद्भ्रान्तस्य भ्रमविलसितवर्णनायोपक्रम.—आस्तिष्ठेत्यादिना। दृष्टस्य भगवतो झटिति तिरोभावादाह—कथमित्यादि। पुनराविर्भावादाह—अय केशव इति। नृपान् केशवबन्धनार्थमुद्यम्य पाशैरात्मानमेव बद्ध्वा भूमौ पतितान् दृष्ट्वाह—कथं स्वयमेवेत्यादि। जम्भक!=मायाविन्!।

अन्वयः—बाष्परुद्धनयना परिनि श्वसन्त. पाण्डुतनया. मत्कार्मुको-

---

अरे! अब खडे रहो। केशव कैसे दिखाई नही पडता। यह है केशव। अहो आश्चर्यकारी है इसका वामनत्व! अरे, अब ठहर जा। केशव क्यो दिखलाई नही पडता। यह है केशव। ओह, केशव की विशालता! केशव क्यों दिखलाई नही पडता? यह है केशव। सब ओर मन्त्रशाला मे अनेक केशव हैं। अब मैं क्या करू? अच्छा, समझ गया। हे हे राजाओ! तुममे से एक एक अलग-अलग करके केशव को पकड लो क्या राजा लोग स्वय पाशो मे बँधकर गिर पडे? बहुत अच्छा, हे मायावी, बहुत अच्छा!

पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिविरोपनीतं
त्वां बाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः ॥ ४१ ॥

( निष्क्रान्तः )

---

दरविनिःसृतबाणजालै विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रं शिविरोपनीतं त्वां पश्यन्तु ॥ ४१ ॥

संस्कृत टीका—दुर्योधनः स्वनिश्चितां प्रतिकृतिं सूचयन् दूतं स्वकृतनिकारपरिणतिं प्रदर्शयति मदिरयादिना। बाष्परुद्धनयनाः = बाष्पैः अश्रुभिः उपरुद्धानि आवृतानि नयनानि नेत्राणि येषां ते, तादृशाः, परिनिःश्वसन्तः = परितः सर्वतः निःश्वसन्तः ( शोकजन्यं ) उच्छ्वासं गृह्णन्तः, पाण्डुतनयाः = युधिष्ठिरादयः पाण्डोः पुत्राः मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः = मम सुयोधनस्य, कार्मुकम् धनुः, तस्य उदरात्, विनिःसृताः प्रक्षिप्ताः, बाणजालानि शरसमूहाः तैः, विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्—विद्धात् वेधयुक्तात् क्षरति प्रस्रवति क्षतजानि रुधिराणि तैः रञ्जितं लोहितीकृतं सर्वगात्रं सर्वशरीरं यस्य सः, तम्, स्रवद्रक्तारुणितसर्वावयवम्। रुधिराप्लावितशरीरमित्यर्थः, शिविरोपनीतं = शिविरे सैनिकावासस्थाने उपनीतं प्रापितम् त्वाम् = श्रीकृष्ण, पश्यन्तु = अवलोकयन्तु। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—परिनिःश्वसन्तः — परि + निस + श्वस + शतृ—परिनिःश्वसत्। मत्कार्मुक०—कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकम्, कर्म + उकञ्, मत्कार्मुकस्य उदरं मत्कार्मुकोदरं, तस्मात् विनिःसृतानि बाणजालानि (कर्म०), विद्धम्—व्यध + क्त क्षतात् जायते इति क्षतजं ( कर्म० ), ( जन + ड ), रक्तम् क्षरत्—क्षर + शतृ—क्षरत्क्षतजं [ कर्म० ] तेन रञ्जितानि ( तृ० त० ) सर्वाणि च तानि गात्राणि यस्य ॥ ४१ ॥

---

मेरे धनुष से निकली हुई बाणावली से विद्ध, घावों से प्रवाहित रुधिर से रँगे हुए तुम्हारे शरीर को अपने शिविर के पास आहें भरते हुए और अविरल अश्रु बहाते हुए पाण्डुपुत्र देखें ॥ ४१ ॥

( प्रस्थान )

( विलोक्य ) अये अय भगवान् हस्तिनापुरद्वारे दूतसमुदाचारेणोपस्थित । कुत खल्वाप, कुत खल्वाप । भगवति आकाशगङ्गे ! आपस्तावत् । हन्त स्रवति । ( आचम्योपसृत्य ) जयतु भगवान् नारायण ( प्रणमति ) ।

वासुदेव —सुदर्शन ! अप्रतिहतपराक्रमो भव ।

सुदर्शन —अनुगृहीतोऽस्मि ।

---

आस्ते' इति शेष । अनुष्टुपृछन्द ॥ ४३ ॥

टिप्पणी— अव्यक्तादि —न व्यक्त अव्यक्त ( नञ् त० ) अव्यक्तस्य आदि ( ष० त० ), वि + अञ्ज + क्त + । अचिन्त्यात्मा—न चिन्त्य अचिन्त्य (नञ् त०) अचिन्त्यः आत्मा यस्य स ( बहु० ) । तु०—'अणोरणीयान् महतो महीयान् ।' लोकसरक्षणोद्यत —लोकाना सरक्षण लोकसरक्षणम् (ष० त०) तस्मिन् उद्यत —तु०'परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ।' (गीता) । अनेकवपु — अनेकानि वपूषि यस्य स ( बहु० ) तु० 'अनेकरूपरूपाय ।' एकोऽह बहुस्याम्' इति श्रुतिरपि तदेव प्रतिपादयति । श्रीमान्—श्री अस्ति अस्य (बहु०), श्री + मतुप । द्विपद्बल०—द्विपता बल द्विपद्बल (ष०त०) तस्य निषूदन, द्विष + शतृ, नि + सूद + ल्युट । (क) यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है ॥ ४३ ॥

सस्कृत टीका—अये इत्यादि । कुत खल्वाप —अभिषेचनार्थम् आप जलम्, अत्र द्विरुक्ति सम्भ्रमात् । स्रवति=शौचार्थमर्पित जल स्वगङ्गा

---

(देखकर) अरे हस्तिनापुर के द्वार पर यह दूत के रूप में भगवान् उपस्थित हैं जल कहाँ से लूँ ? जल कहाँ से लूँ ? हे भगवती आकाशगङ्गे ! जल दीजिये । अहा यह जल बरस रहा है, ( आचमन करके और समीप आकर ) भगवान् नारायण की जय हो । ( प्रणाम करता है ) ।

वासुदेव—हे सुदर्शन ! तुम्हारा पराक्रम अजेय हो ।

सुदर्शन—मैं कृतज्ञ हुआ, आपने कृपा की ।

वासुदेव —दिष्टया भवान् कर्मकाले प्राप्तः। भगवानाज्ञापयतु।
सुदर्शन.—कथ कथ कर्मकाल इति। आज्ञापयतु।

किं मेरुमन्दरकुल परिवर्तयामि
संक्षोभयामि सकल मकरालय वा।
नक्षत्रवशमखिल भुवि पातयामि
नाशक्यमस्ति मम देव! तव प्रसादात् ॥ ४४ ॥

---

स्यन्दमतीत्यर्थः, अप्रतिहतपराक्रम —अप्रतिहत. दुर्निवारः पराक्रमो यस्य सः, अप्रतिहतबल·, दिष्टया = इति हर्षेऽव्ययम्, कर्मकाले = कर्मणः काल कर्मकाल·, (ष० त०) तस्मिन्, क्रियाकाले।

अन्वयः—हे देव! किं मेरुमन्दरकुल परिवर्त्तयामि वा सकल मकरालयं संक्षोभयामि वा अखिल नक्षत्रवश भुवि पातयामि, तव प्रसादात् अशक्य न अस्ति ॥ ४४ ॥

संस्कृत टीका—हे देव = हे भगवन्, किं = इति प्रश्ने विनिमये वा, मेरुमन्दरकुल = मेरुश्च मन्दरश्च मेरुमन्दरौ, एतन्नामकौ पर्वतविशेषौ, मेरुमन्दरयो· पर्वतयो कुलं राजिम्, परिवर्तयामि = परिवर्तितं करोमि? मेरुकुलस्थाने मन्दरकुल तत्स्थाने मेरुकुल च स्थापयामि किमित्यर्थः? वा = अथवा, सकल = सम्पूर्णं, मकरालय = मकराणा ग्राहादीनाम् आलयं निवासस्थानम्, समुद्रमिति यावत् 'संक्षोभयामि = मथ्नामि, वा = अथवा, अखिल = समग्रम्, नक्षत्रवश = नक्षत्राणा वंश नक्षत्रमण्डलम्, भुवि = पृथिव्यां, पातयामि = पतित करोमि। वस्तुतस्तु, तव = भवत·, प्रसादात् =

---

वासुदेव—मैं प्रसन्न हूँ कि आप कार्य करने के समय पर ही आये हो।
सुदर्शन—कौन से कार्य का समय है? भगवान् आज्ञा देवें, आज्ञा करें।

क्या मेरु मन्दरादि पर्वत समूह को उलट दूँ? क्या मकरो के निवासस्थान महासागर में हलचल मचा दूँ? क्या समग्र नक्षत्र-मंडल को भू पर गिरा दूँ? हे देव, आपकी कृपा से मेरे लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ॥ ४४ ॥

भो भोः ! शार्ङ्ग, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः। गम्यतां स्वनिलयमेव। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि। अये इय कौमोदकी प्राप्ता।

---

पार्श्वे=सन्निधौ; नवसलिलदपार्श्वे=नूतनमेघोपान्ते, चारु=मनोहरम्, विद्युल्लता इव=विद्युत् तडित् लतेव वल्लीव दीर्घप्रसृतत्वाद् विद्युल्लता-(उपमित०), सेव, भाति=कृष्णस्य देहोपान्ते प्रकाशते। मालिनी वृत्तम् ॥ ४७ ।

टिप्पणी—तनुमृदु०—तनूनि सूक्ष्माणि मृदूनि कोमलानि ललितानि सुन्दराणि अङ्गानि अवयवा यस्य (तत्) तनु च तद् च तद् मृदु (कर्म०) तनुमृदु च तत् ललित (कर्म०), तनुमृदुललितम् अङ्गं यस्य तत् (बहु०)। स्त्रीस्वभावोपपन्नं—स्त्रीणा स्वभावः स्त्रीस्वभाव (ष० त०), तेन उपपन्नम्। हरिकरधृतमध्य—हरे करः [ष० त० ], तेन धृतं मध्यं यस्य तद् (बहु०)। कनक०—कनकेन खचितं कनकखचित (तृ० त०) कनकखचित पृष्ठं यस्य तद् (बहु०)। शत्रुसङ्घैककाल—शत्रूणा संघः, (ष० त०) शत्रुसघस्य एककालः [कर्म०] एकश्च असौ काल एककाल [कर्म०]। नवसलिलदपार्श्वे—नव नूतन सलिलद [सलिल ददातीति] जलद, तस्य पार्श्वम् समीपम्, तस्मिन् ॥ ४७ ॥

संस्कृत टीका—भो भो, इत्यादि। निवृत्त.=कृष्णान्तिकगमनो-द्यमान्निवृत्तस्य स्थित इत्यर्थः। पुनश्च शार्ङ्गमित्यानिदेवाभिप्रायम्। 'निवृत्तम्' इति वा पाठः।

टिप्पणी—कौमोदकि—को. पृथिव्या पालकत्वात् मोदक कौमोदकः विष्णुः तस्य इय कौमोदको [अण्]।

---

हे शार्ङ्ग ! भगवान् का क्रोध अब शान्त हो गया है। अतः तुम अपने स्थान को चले जाओ। अहा ! चला गया। अच्छा मैं भी जाता हूँ। '' अरे यह कौमोदकी आ गयी !

मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया
सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा
गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या
व्रजति नभसि शीघ्रं मेघवृन्दानुयात्रा ॥ ४८ ॥

---

अन्वय.—मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या मेघवृन्दानुयात्रा [कौमोदकी] शीघ्रं नभसि व्रजति ॥ ४८ ॥

संस्कृत टीका—मणिकनकविचित्रा=मणिभिः रत्नैः कनकैः सुवर्णैश्च विचित्रा विभूषिता, रत्नै. स्वर्णैश्च अलङ्कारभूतैश्चित्रवर्णा, चित्रमालोत्तरीया=चित्रा चित्रवर्णा माला पुष्पस्रग् उत्तरीयम् ऊर्ध्ववस्त्रं यस्याः सा, सुररिपुगणगात्रध्वंसने=सुररिपूणां दानवानां गणानां समूहानां गात्राणां शरीराणां ध्वंसने विनाशने, जाततृष्णा=जाता उत्पन्ना तृष्णा प्रबल अभिलाषो यस्या सा, गिरिवरतटरूपा=गिरीणां वर तस्य तटम् शृङ्ग इव रूपम् आकार यस्या सा, तथा च गिरिवरतटस्य पर्वतराजोत्सेधस्येव रूपम् आकृतिर्यस्याः सा, तादृशी, दुर्निवारा=अनिवर्तनीया, अतिवीर्या=अति महत् वीर्यं पराक्रमो यस्या सा, अतिपराक्रमशालिनी, मेघवृन्दानुयात्रा=मेघवृन्दं जलदसमूहः अनुयात्रम् अनुगं यस्या सा, जलदसमूहानुगा, [इयम्=कौमोदकी गदा], शीघ्रम्=झटिति, नभसि=गगने, व्रजति=गच्छति। मालिनी वृत्तम् ॥ ४८ ॥

टिप्पणी.—मणिकनकविचित्रा—मणयश्च कनकं च मणिकनकानि [द्वन्द्व], तैः विचित्रा [तृ०त०], ( चित्रा इति विचित्रा—प्रादि० ) । चित्र-

---

यह स्वर्ग और मणिमाणिक्यादि से खचित है। सुन्दर मालाओं का इसका उत्तरीय है। देवताओं के शत्रुदल के शरीरों का नष्टभ्रष्ट करने की तृष्णा इसे रहती है। यह गिरिवर तट के समान (दृढ) है इसके अनन्त बल का सामना करना अति कठिन है। यह आकाश से तेजों के साथ आ रही है—मेघ-माला इसका अनुसरण कर रही है ॥ ४८ ॥

हे नन्दक ! प्रशान्तरोषो भगवान् । गम्यताम् । हन्त निवृत्तः । यावद् गच्छामि । अये एतानि भगवदायुधवराणि ।

सोऽयं खड्गः खरांशोरपहसिततनुः स्वैः करैर्नन्दकाख्यः
सेयं कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा ।
सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापयष्टिः
सोऽयं गम्भीरघोषः शशिकरविशदः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः ॥५१॥

---

प्रयाति=व्रजति, महोल्केव=महती उल्का प्रज्वलिताग्रं काष्ठम्, तदिव विभाति=शोभते । अनुष्टुप् छन्द ॥ ५० ॥

टिप्पणी—वनिताविग्रह—वनितायाः विग्रह इव विग्रहः यस्य ( उप० बहु० ) । उल्का-उष्+क; षस्य ल् ॥ ५० ॥

अन्वय—स्वैः करैः खरांशोः अपहसिततनुः नन्दकाख्यः सोऽयं खड्गः, या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा सा इयं कौमोदकी प्रलयघनरवज्यारवा सा एषा शार्ङ्गाभिधाना चापयष्टिः । गम्भीरघोषः शशिकरविशदः सोऽयं पाञ्चजन्यः शङ्खराट् अस्ति ॥ ५१ ॥

संस्कृत टीका—एवं निवर्तितानि स्वान्तिके सम्भूय स्थितानि सर्वाणि भगवदायुधान्युद्दिश्याह—सोऽयमित्यादि । स्वैः=स्वकीयैः, करैः=रश्मिभिः, खरांशोः=सूर्यस्य, खराः तीक्ष्णाः अंशवः किरणाः यस्य, तस्य, अपहसिततनुः=अपहसिता उपहासं प्रापिता तनुः यस्य सः,

---

हे नन्दक ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है । अब आप अपने स्थान पर पधारिये । अहा ! यह लौट गया । अब मैं भी जाता हूँ । अरे, ये ही तो भगवान् के श्रेष्ठ आयुध हैं ।

नन्दक नाम का यही वह खड्ग है—जो अपनी किरणों से प्रचण्ड सूर्य की भी विडम्बना करता है । यही कौमोदकी गदा है जो देवताओं के शत्रुओं के कठोर उरस्थलों को विदीर्ण करने में दक्ष है । यही शार्ङ्ग नाम का धनु है—जिसकी डोरी का निर्घोष प्रलय के मेघों की प्रचण्ड गर्जना के समान है और यही शङ्खराज पाञ्चजन्य है जो चन्द्रकला के समान स्वच्छ है और जिसका घोष गंभीर है ॥ ५१ ॥

हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य !
दैत्यान्तकृन्नन्दक ! शत्रुवह्ने ! ।

तादृशः, तिरस्कृततैक्ष्ण्यः, नन्दकाख्यः = नन्दकनामा, सः = प्रसिद्धः, अयं = पुरोदृश्यमानः, खड्गः = असिः, या = गदा, सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा = सुराणां देवानां रिपवः शत्रवः, तेषां कठिनानां उरःस्थलानां वक्षःस्थलानां क्षोदने भेदने विदारणे वा दक्षा कुशला, दानवपक्षवक्षःस्थलभञ्जनसमर्था, सा = पूर्वविज्ञाता एव, इयं = पुरोवर्तमाना, कौमोदकी = कौमोदकीनाम्नी गदा, प्रलयघनरवज्यारवा = प्रलये प्रलयकाले ये घनाः मेघाः तेषां रवः स्वनः इव ज्यायाः मौर्व्याः रवः टङ्कृतिः यस्याः सा, सा = प्रसिद्धा, एषा = पुरोदृश्यमाना, शार्ङ्गाभिधाना = शार्ङ्गनाम्नी, चापयष्टिः = धनुर्दण्डः; 'चापरेखा' इति वा पाठः, चापेषु रेखा चापरेखा धनुःप्रधानं सा, गम्भीरघोषः = गम्भीरः गभीरः घोषः गर्जनं यस्य सः, शशिकरविशदः = शशिनः चन्द्रस्य कराः किरणाः इव विशदः समुज्ज्वलः, सोऽयं = सर्वजनविदितः एषः, पाञ्चजन्यः = एतन्नामकः शङ्खः, शङ्खराट् = शंखराजः, अस्तीति शेषः। उपमालङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम् ॥ ५१ ॥

टिप्पणी—खरांशोः—खराः अंशवः यस्य स खरांशुः, तस्य (बहु०)। अपहसिततनुः—अपहसिता तनुः येन (बहु०)। सुररिपु०—उरसः स्थलं उरःस्थलम्, कठिनम् उरःस्थलं कठिनोरःस्थलम्, सुररिपूणां कठिनोरःस्थलम्, तस्य क्षोदे विनाशे दक्षा। प्रलयघन०—प्रलये घनाः प्रलयघनाः, तेषां, रवः इव ज्यारवः यस्याः सा (बहु०)। शार्ङ्गाभिधाना—शार्ङ्गम् अभिधानं नाम यस्याः सा (बहु०)। चापयष्टिः—चापस्य यष्टिः (ष० त०)। गम्भीरघोषः—गम्भीरः घोषो यस्य स (बहु०)। शशिकरविशदः—शशिनः करः शशिकरः, शशिकर इव विशदः (उप० स० )। शंखराट्—शङ्खानां राट् राजा इति (ष० त०) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे शार्ङ्ग ! कौमोदकि ! पाञ्चजन्य ! दैत्यान्तकृन्नन्दक !

हे शार्ङ्ग ! हे कौमोदकि ! हे पाञ्चजन्य ! हे दैत्यों का संहार करने वाली अग्नि के समान नन्दक ! भगवान् कृष्ण का क्रोध दूर हो गया है; अतः आप

प्रशान्तरोषो भगवान् मुरारि
स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत् ॥ ५२ ॥

हन्त निवृत्ताः । यावद् गच्छामि । अये अत्युद्धतो वायुः । अतितपत्यादित्य । पर्वताः चलिताः । क्षुब्धा सागराः । पतिताः वृक्षाः । भ्रान्ता मेघा । प्रलीना वासुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वरा । किन्नु खल्विदम् । अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्त ।

---

शत्रुवह्ने ! अत्र हि भगवान् मुरारिः शान्तरोषः । स्वस्थानमेव तावद् गच्छ ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हे शाङ्गं !=हे धनु.श्रेष्ठ, कौमोदकि=विष्णोः गदे, पाञ्चजन्य !=विष्णोः शङ्ख !, दैत्यान्तकृत्=हे असुरनाशकर, नन्दक=नन्दकाख्य खड्ग, शत्रुवह्ने.=शत्रूणा तत्सम्बोधने, हे रिपुदाहक !, अत्र=अस्मिन् समये, भगवान्=षड्ऐश्वर्यसम्पन्न, मुरारिः=कृष्ण, प्रशान्तरोष=प्रशान्त दूरीभूतः रोषः क्रोध. यस्य तादृश., अतः इति शेषः । तावद्=अतः स्वस्थानम्=स्वनिलयम्, एव=हि, गच्छ=व्रज । उपजाति वृत्तम् ॥ ५२ ॥

टिप्पणी—दैत्यान्तकृत्–दिते अपत्यं पुमान् दैत्य; दिति+ण्य, दैत्यानां दानवाना अन्त. दैत्यान्त. (ष० त०) दैत्यान्त करोतीति [उप०] कृत्–कृ+क्विप् ॥ ५२ ॥

संस्कृत टीका—हन्तेत्यादि । हन्त=इति हर्षे । अत्युद्धत.=अतिशयेन उद्धूत. अत्युत्कम्पित, अतितपति=अतिशयेन तपति, आदित्य=सूर्य । क्षुब्धा.=मर्यादामतिक्रमितुं प्रवृत्ताः । प्रलीना=प्रकर्षेण लीनाः, अदर्शन गता. । इदं वातात्युत्कम्पनसूर्यातितपनादिकम्, किन्नु खल्विदम्=आज्ञातम्,

---

सब अपने-अपने स्थान को जाइये ॥ ५२ ॥

अहा ! ये सब लौट गये । अब मैं जाता हूँ । प्रभंजन (वायु) तीव्र वेग से चलने लगा है । सूर्य अत्यन्त तप रहे हैं । पर्वत हिलने लग गये हैं । सागर क्षुब्ध हो उठे हैं । वृक्ष गिर रहे हैं । मेघ अस्त-व्यस्त हो रहे हैं । वासुकि आदि सर्पराज छिप गये हैं । यह भला क्या है ? अरे !

सुरासुराणां परिखेदलब्धं येनामृतं मातृविमोक्षणार्थम् ।
आच्छिन्नमासीद् द्विषतो मुरारेस्त्वामुद्वहामीति वरोऽपि दत्त ॥५३॥

केन निमित्तेन सम्भूतमिति न ज्ञायत इत्यर्थः, अज्ञातार्थे किंशब्दः । अये—इति स्मरणे,' तच्च निमित्तविषयम्, गरुडः—भगवतः वाहनः, प्राप्तः—सन्निहितः । एवञ्च भगवत्कैङ्कर्याय सन्निधास्यतो गरुडस्य सकोपगतिवेगो वाय्वतिकम्पादेर्निमित्तमिति फलितम् ।

टिप्पणी—उद्धूत—उद् + धू + क्त ।

अन्वयः—येन सुरासुराणां परिखेदलब्धं अमृतं मातृविमोक्षणार्थं द्विषतः आच्छिन्नम् आसीत् त्वां उद्वहामि इति मुरारेः वरोऽपि दत्तः ॥ ५३ ॥

संस्कृत टीका—गरुडस्य प्रभावमाह—सुरेति । येन=गरुडेन, सुरासुराणां=देवदैत्यानाम्, परिखेदलब्धं=परितः खेदः, तेन लब्धम्, अतिपरिश्रमप्राप्तम्, परिखेदेन समुद्रमथनायासेन लब्धमिति भावः । अमृतं=सुधां, मातृविमोक्षणार्थं=मातुः विनतायाः विमोक्षणार्थं सपत्नीमातृकद्रूदास्यान्मोचनाय, द्विषतः=शत्रोरिन्द्रात्, आच्छिन्नम्=बलाद् गृहीतं, स्वायत्तीकृतं तदन्तादित्यर्थः, आसीत्=अभूत्, त्वाम्=भवन्तम्, उद्वहामि=वहनं करोमि, इति=इत्थम्, मुरारेः=उपेन्द्रस्य, वरोऽपि=ईप्सितार्थोऽपि, दत्तः=प्रदत्तः, आसीत्, 'त्वा विष्णुम् उद्वहामि' इति एवंरूपः वरः दत्तः, स गरुड इति पूर्वेणान्वयः । उपजातिवृत्तम् । ५३ ॥

टिप्पणी—सुरासुराणां—सुराश्च असुराश्च, तेषाम् । मातृविमोक्षणार्थम्—मातुः विमोक्षणम्, तस्मै इति सुपर्णासुरत्वार्थम् । परिखेदलब्धम्—परिखेदेन लब्धम् (तृ॰त॰) । आच्छिन्नम्—आ + छिद् + क्त । (क) अमृतहरणविष्णुवरदानकथा महाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशाध्यायेऽनुसन्धेया ।

---

यह भगवान् का वाहन श्रेष्ठ गरुड आ गया ।

जिस अमृत को देवासुरों ने बड़े श्रम से प्राप्त किया था उसे ही अपनी माता को छुड़ाने के लिए इन्होंने शत्रु [इन्द्र] से बरबस छीन लिया था । उस समय इन्होंने भगवान् को यह वर दिया था कि 'मैं आपको अपनी पीठ पर उठाया करूँगा' ॥ ५३ ॥

गृह्यताम् ।

वासुदेव —सर्वं गृह्णामि । किं ते भूय प्रियमुपहरामि ।

धृतराष्ट्र —यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।

वासुदेवः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

धृतराष्ट्र —यदाज्ञापयति भगवान् नारायण ।

( निष्क्रान्त. )

---

पादप्रक्षालनार्थं तोयम् ।

सर्वमित्यादि । भूय· प्रियम्=बहुतरं प्रियम्, उपहरामि=करोमि । गच्छत्वित्यादि । पुनर्दर्शनरूपमीप्सित फलमुद्दिश्य सम्प्रति गमनमभ्यनुजानामीत्यर्थः ।

यदित्यादि । यद् आज्ञापयति=यत् कर्तव्यत्वेनादिशति । तद् गमनमनुतिष्ठामीत्याशय· ।

टिप्पणी—अर्घ्यम्—अर्घ+देयार्थे यत् । पाद्यम्–पाद+यत् । प्रशस्तिः शुभशसनम्' इत्युक्तलक्षणा प्रशस्ति वक्ष्यन् तस्या अनुकार्यवाक्यत्वायोगादाह–भरतेति । भरतवाक्यम्=भरतस्य नटस्यानुकर्तुर्वाक्य भरतवाक्यम् । प्रशस्तिमाह—इमामिति ।

---

को स्वीकार करें ।

वासुदेव—मैं सब कुछ स्वीकार करता हूँ । कहिये, मैं आपका क्या हित कर सकता हूँ ।

धृतराष्ट्र—यदि भगवान् मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे बढकर मुझे और क्या चाहिये ।

वासुदेव—अब आप पधारिये, फिर दर्शन दीजियेगा ।

धृतराष्ट्र—भगवान् की जैसी आज्ञा ।

( प्रस्थान )

( भरतवाक्यम् )

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्का राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ५६ ॥

---

अन्वयः—नः राजसिंहः सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमां महीं प्रशास्तु ॥ ५६ ॥

संस्कृत टीका—नः=अस्माकं, राजसिंहः=राजा सिंह इव, शौर्यधैर्यादियोगाद् राजसिंहः, सिंहसदृशपराक्रमो राजा, सागरपर्यन्तां=सागराः समुद्राः पर्यन्ताः अन्तिमाः सीमा, यस्याः सा ताम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्=हिमवान् हिमालयपर्वतः विन्ध्यः विन्ध्याचलश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ तौ एव कुण्डले कर्णकुण्डलस्थापन्नौ यस्याः सा ताम्, आर्यावर्तस्य उत्तरदक्षिणसीमभूतौ पर्वतविशेषौ कुण्डले शोभाकरत्वात् कुण्डलस्थानीयौ यस्यास्ताम् । एकातपत्राङ्काम्=एकम् अद्वितीयम् आतपत्रं छत्रम् अङ्कः चिह्नं यस्या सा ताम्, एकः अधिपत्येकत्वाद् एक एव, न त्वनेकः आतपत्राङ्कः श्वेतच्छत्ररूपमधिपतिचिह्नं यस्यास्तां तथाभूताम्, इमाम्=दृश्यमानाम्, महीम्=पृथिवीम्, प्रशास्तु=प्रशासनं करोतु, अधिकरोतु एकाधिपतिविशिष्टत्वाकारेण शासनविषयीकरोतु । अस्माकं—राजा—समग्राया भारतभुवोऽप्रतिमो भर्ता स्यादिति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इयं पृथ्वी यस्याः पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि समुद्रो विराजते, तथा यस्याः उत्तरस्यां दिशि हिमालयः, दक्षिणस्यां च दिशि विन्ध्याचलः कर्णकुण्डलरूपेण शोभते—राजाधिराजेन एकच्छत्राधिपेन प्रशासिता भवतु । अस्माकं राजा भूमेरस्याः कृत्स्नायाः सार्वभौमो भूयादिति श्लोकपरमार्थः ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—एकातपत्राङ्काम्—आतपाद् त्रायते इति आतपत्रम् ( प०

---

( भरत वाक्य )

हमारे राजसिंह इस सागर-मेखलित पृथ्वी पर शासन करें जो एकच्छत्र राज्य वाली है तथा हिमालय और विन्ध्याचल जिसके कुण्डल हैं ॥ ५६ ॥

( निष्क्रान्ता सर्वे )

॥ दूतवाक्यं समाप्तम् ॥

———०———

स० ) एकम् आतपत्रम् ( कम० ) एकातपत्रम् अङ्क यस्या सा, ताम् (बहु०)। राजसिंह —राजा सिंह इव (उप० समास)। 'सिंहशार्दूलनागाद्या पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः'–इत्यमरः। प्रशास्तु–प्र + शास + लोट ( आशिषि ) ॥ ५६ ॥

नटराजं नमस्कृत्य देवीं च भरतं तथा।
भागीरथ्यास्तटे काश्यां लकाक्षेत्रे सुशोभने ॥ १ ॥
श्रीमद्रामकुबेरस्य मालवीयस्य सूनुना।
सुधाकरेण रचिता व्याख्या ज्योत्स्ना समन्विता ॥ २ ॥

॥ इति डा० सुधाकरमालवीयकृताया दूतवाक्यस्य 'ज्योत्स्ना' व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥

॥ समाप्तमिदं दूतवाक्यं नाम नाटकम् ॥

———०———

( सभी का प्रस्थान )

॥ दूतवाक्य समाप्त ॥

॥ इस प्रकार महाकवि प० रामकुबेर मालवीय के आत्मज डा० सुधाकर मालवीय कृत दूतवाक्य नाटक की 'सरला' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

———०———

## परिशिष्ट-१

### श्लोकानुक्रमणिका



## दूतवाक्य के श्लोकों की छन्दयोजना

| छन्द का नाम | अक्षर संख्या | श्लोकाङ्क | योग | लक्षण |
|---|---|---|---|---|
| अनुष्टुप् (श्लोक) | ८ | १, २, ७, ८, १६, १७, २०, २१ २७, २९ ३१, ३३, ३४, ३६, ३८, ४३, ४६, ५०, ५५, ५६, | २२ | श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ |
| उपजाति | ११ | ९, १८, १९, २२, २८, ५२, ५३ | ७ | स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । इत्यनयोरुपजाति उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। |
| पुष्पिताग्रा | १२/१३, | ६, ३७ | २ | अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। |
| वंशस्थ | १२ | २१ | १ | जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। |
| वसन्ततिलका | १४ | ३५, ११ १६, २३, ४१, ४२, ४४, ४९, ५४ | १३ | ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ ग । |
| मालिनी | १५ | १०, ३५, ३९, ४०, ४५, ४७, ४८ | ७ | ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । |
| शार्दूलविक्रीडितम् | १९ | २४, ३२ | २ | सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् । |
| सुवदना | २० | ११ | १ | ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता म्लौ ग सुवदना । |
| स्रग्धरा | ५१ | ५१ | १ | म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यति युता |
|  |  |  | ५६ | स्रग्धरा कीर्तितेयम् । |

## परिशिष्ट-२

### सुभाषित-संग्रह

१—आः ! मनुष्याणामस्त्येव सम्भ्रम । [पृ० १३]

२—अलमलं बन्धुजने परुषमभिधातुम् । [पृ० ३०]

३—कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतरा ।
सम्बन्धो बन्धुभि श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि ॥ २९ ॥

४—को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृण सभासु ॥ १८ ॥

५—देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम् [पृ० ३२]

६—द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणा ।
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमा स्यु ॥ ११ ॥

७—पुण्यसञ्चयसम्प्राप्यामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् य सुहृद्बन्धून् स भवेद्विफलश्रम ॥ २५ ॥

८—राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते ।
तल्लोके न हि याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ॥ २४ ॥

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला
३८

भासनाटकचक्रे

# दूतघटोत्कचम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार –
पण्डित रामनाथत्रिपाठी शास्त्री




चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
वाराणसी
१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६
मूल्य : ३-००


के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी–२२१००१ ( भारत )

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी–२२१००१ ( भारत )
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA

38



# DŪTAGHATOTCACH

OF

## MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

*'Kalyani' Sanskrit-Hindi Commentaries*

BY

Pt. RAMANATH TRIPATHI SHASTRI




**Chaukhamba Amarabharati Prakashan**

. 'NASI–221001

'79

# भूमिका

## महाकवि भास

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से हैं। कविकुलगुरु कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से प्रश्न कराया है कि प्रथितयश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की कृतियों का अतिक्रमण कर, वर्तमान कवि कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों किया जा रहा है ?[1] इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में महाकवि भास अत्यन्त प्रसिद्ध थे और उनके नाटकों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। हर्ष के सभा-पण्डित बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका ( १—नाटकीय व्यङ्ग्य 'पताका स्थान' २—ध्वजा ) से युक्त देवकुलों के तुल्य अपने नाटकों से अच्छा यश प्राप्त किया।[2] यहाँ यह अवधेय है कि संस्कृत के नाटक सामान्यतया नान्दी से प्रारम्भ होते हैं किन्तु भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं और उनमें नान्दी का सर्वथा अभाव रहता है। वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत महाकाव्य में भास को 'जलणमित्त'—ज्वलनमित्र ( अग्नि का मित्र ) कहा है।[3] भास ने वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने की झूठी खबर फैलाकर नाटकीय वस्तु-विकास का उपयुक्त अवसर निकाला है। अतः बहुत सम्भव है इसी से भास को 'ज्वलनमित्र कहा गया है। राजशेखर ने अपनी 'काव्य-

---

१ 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।'—मालविकाग्निमित्र

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित।

३. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारि अन्दे अ आणन्दो ॥—गउडवहो।

प्रकार का भरत वाक्य है। शेष नाटको के भरत वाक्य मे भी प्राय 'राजसिंह प्रशास्तु न' इस वाक्य का प्रयोग अवश्य मिलता है।

५—इन सभी नाटको की भाषा तथा शैली मे अद्भुत समानता पायी जाती है।

६—इन नाटको मे भरत-प्रतिपादित नाट्यनियमो का कठोरता से पालन नहीं किया गया है। मृत्यु, युद्ध आदि का रगमञ्च पर प्रदर्शन किया गया है तथा अभिषेक, पूजा, शपथ अथवा अश्रु-प्रक्षालन के लिये जल रङ्गमञ्च पर लाया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा तथा दुराह्वान की भी योजना रगमच पर ही की गयी है।

७—इन नाटको मे कुछ शब्दो का प्रयोग उनके प्रचलित अर्थों से भिन्न अर्थ मे किया गया है। जैसे—आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग अनेकत्र ऐसे अर्थो मे हुआ है जिसका विधान नाट्य शास्त्र मे नहीं है।

८—इन सभी नाटको मे 'आकाशभाषित' की योजना प्राय मिलती है।

९—इनमे से कई नाटको मे छोटे छोटे पात्रो के नामो मे अभिन्नता पायी जाती है। जैसे—प्रतिज्ञा योगन्धरायण और दूतवाक्य इन दोनो नाटको में कञ्चुकी का नाम बादरायण है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्त, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और अभिषेक इन चारो नाटको मे प्रतिहारी का नाम विजया है।

१०—प्राय सभी नाटको मे नाट्यनिर्देश की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश दिये भी गये हैं उनमे दो- दो, तीन-तीन निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुन प्रविश्य'।

११—इन सभी नाटको के नामो का उल्लेख तत्तन्नाटको के अन्त मे ही किया गया है, अन्यत्र नही।

१२—अधिकाश नाटको मे 'पताका स्थान' और 'मुद्रालङ्कार' का एक समान प्रयोग किया गया है।

१३—इन नाटको मे पाणिनीय व्याकरण के नियमो का कडाई से पालन नहीं किया गया है, अत अनेकत्र अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

१४—इन सभी नाटकों मे समान भावना, समान दृश्यो की अवतारणा,

समान शब्दो और समान वाक्यो की उपलब्धि एवं समान वर्णन-पद्धति द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त समानताओ के आधार पर यह स्पष्ट सिद्ध है कि इन नाटको का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति था। इन नाटको मे से स्वप्नवासवदत्त की रचना भास द्वारा हुई, इसमे राजशेखर का पूर्वोक्त साक्ष्य उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'अभिनव भारती' मे स्वप्नवासवदत्त का उल्लेख किया है।[1] फलत. अन्य नाटकों को भी भासकृत माना गया है जो पूर्वोक्त समानताओ के आधार पर नितान्त युक्त है।

## भास का समय

कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' मे भास को आदर पूर्वक स्मरण किया है, अतः स्पष्ट सिद्ध है कि भास कालिदास से प्राचीन थे। कुछ लोग कालिदास का समय ४०० ई० बताते हैं तदनुसार भास ४०० ई० से पूर्व के सिद्ध होते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास का समय ईसा की प्रथम शताब्दी निश्चित करते हैं, उस आधार पर भास ईसा की प्रथम शताब्दी से प्राचीन ठहरते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ मे 'अपीह श्लोकौ भवत' कह कर दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमे दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' मे मिलता है। जो इस प्रकार है—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

चाणक्य ने उक्त श्लोक को अवश्य ही भास से लिया होगा। यदि किसी स्मृति का होता तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। इतिहासकार चाणक्य का समय ई० पू० ४०० मानते हैं अत. भास इससे प्राचीन ठहरते हैं।

भास के प्रतिमानाटक मे बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र मे रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[2] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उसके अर्थशास्त्र का उल्लेख

१. क्वचित्क्रीड.—यथा वासवदत्तायाम्।
२. भो॰ काश्यप गोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये॰॰॰ बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं।॰॰

भास के नाटको की प्रमुख विशेषता उनकी अभिनेयता है। ये सभी नाटक थोडे हेर फेर के साथ बडी सरलता से रगमच पर अभिनीत होने योग्य बने हैं। इनमे न तो वर्णन की प्रचुरता है और न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही है अत इनके अभिनय मे किसी तरह के प्रतिरोध की गुञ्जाइश नही है।

भास का नैपुण्य चरित्रचित्रण मे अद्वितीय है। वे अपने पौराणिक पात्रो को इतनी वास्तविकता मनोवैज्ञानिकता और मार्मिकता से चित्रित करते है कि वे पाठको अथवा दर्शको को सर्वथा नवीन लगते हैं। भास ने पद्यो के माध्यम से अपने पात्रो मे सवाद कराने का जो ढग अपनाया है वह भी उनकी नाट्यकला के वैलक्षण्य का द्योतक है। किसी पद्य को कई भागो मे विभक्त कर उन्ह वे अपने विभिन्न पात्रो के मुख से कथोपकथन के रूप मे प्रस्तुत करवाते हैं जिससे सवादो मे भावोत्तजकता और चुटीलापन पैदा हो जाने से विशेष नाटकीयता आ जाती है। भास के प्राय सभी पात्र अन्तर्द्वन्द्व युक्त होने के कारण काल्पनिक नही लगते अतएव उनके प्रति दर्शको के हृदय मे पूर्ण सहानुभूति उत्पन्न होती है। अपने नाटको मे भास ने इसी उद्देश्य से सघर्षपूर्ण घटनाक्रम की सृष्टि की है।

नाटको को प्रभावोत्पादक बनाने मे भास की कवित्वशक्ति का भी बडा हाथ है। इनकी कविता मे प्रवाह और प्रसाद है। भास न प्रसङ्ग वश अपने नाटका म सन्ध्या, रात्रि, तपोवन मध्याह्न इत्यादि का जो वर्णन किया है वह बडा ही सजीव तथा पूरे दृश्य का बिम्ब ग्रहण कराने मे पूर्ण सफल हुआ है। मानवीय तथा बाह्य प्रकृति के चित्रण मे भास बेजोड है। रात के सघन अन्धकार का प्रभावशाली वर्णन देखिए—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलता गता ॥ —बालचरित १।१५

भास के इस पद्य का पूर्वार्द्ध अपने वैशिष्ट्य क कारण अलकारशास्त्र मे उत्प्रेक्षा का प्रसिद्ध उदाहरण माना जाता हैं।

भास के नाटको म सुन्दर से सुन्दर उपमाए मिलती है—

सूर्य इव गतो राम , सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगत ।
सूर्य दिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥प्रतिमा २।७

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्ताऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।। प्रतिमा ३।१०

भास ने अनेकत्र पात्रों के मुह से जो नीतिवाक्य कहलवाये हैं वे भी भर्तृहरि के नीतिश्लोकों के समान ही हृदयावर्जक हैं। इस प्रकार भास के नाटकों में नाटकीय विधान के साथ कवि व वस्तु का सद्योग मिलता है।

## भास की शैली

भास के नाटकों की शैली अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है। प्रसाद माधुर्य और ओज इनकी शैली के विशेष गुण हैं। भास को विकट बन्ध क्लिष्ट कल्पना और लम्बे लम्बे समस्त पदों से घृणा है क्योंकि नाटक के लिये ये सब सर्वथा अनुपयुक्त हैं। छोटे छोटे सरल वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना भास की शैली की प्रमुख विशेषता है। इनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों एवं सूक्तियों से अलङ्कृत छोटे छोटे वाक्यों की व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता को देखकर सहज अनुमान होता है कि इनके समय में संस्कृत लोक व्यवहार की भाषा रही होगी। यद्यपि इनकी शैली प्रायः प्रसाद एवं माधुर्यगुण से ही अधिक सम्पन्न है तथापि प्रसंगानुकूल वीर रस की अभिव्यक्ति में ओज का भी आश्रय लिया है और वीर रस की व्यंजना में भी इन्हें पूरी सफलता मिली है।

भास के नाटकों में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा जैसे सरल भावों रूपक एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है। सीमित शब्दों तथा सरल भाषा में हृदगत भावों को अभिव्यक्त करना भास की अपनी विशेषता है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की करुण दशा का चित्र सीधे सादे शब्दों में देखिए—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥
हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ।।—प्रतिमा २।३।४

भास ने दर्शक या पाठक का कौतूहल बढ़ाने के लिए कहीं कहीं ऐसे

नाटकीय-व्यंग्यों की अवतारणा की है कि वे दर्शक या पाठक के हृदय को सहसा झकझोर देते हैं। जैसे—'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन राजा उपयुक्त है, उसी समय कञ्चुकी आकर सहसा कहता है—'वत्सराज'। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल जाता है, यद्यपि कञ्चुकी कहने आया था कि वत्सराज बन्दी बना लिया गया, जैसा कि आगे वह स्वयं स्पष्ट करता है। इसी प्रकार 'अभिषेक' नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा? उसी समय एक राक्षस सहसा आकर कहता है 'राम'। यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि राम ने इन्द्रजित को मार डाला। भास की यह पद्धति अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

भास अल्प शब्दों के द्वारा भाव-व्यंजना के अतिरिक्त कहीं-कहीं शब्द-प्रयोग के बिना ही, या यों कहिए कि मौन का आश्रय लेकर हृद्गत समस्त भावों की मार्मिक व्यंजना कर देते हैं। जैसे—'अनुव वैव वन गता-।'—प्रतिमा २।१७। इससे बढकर शैली की सक्षिप्तता और क्या हो सकती है? राम-लक्ष्मण-सीता के अकथनीय हृद्गत भावों के मर्मस्पर्शी चित्र भी उपस्थित कर दिये और अपनी ओर से उसके लिए एक भी शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा। अतः भास की शैली नाटककारों के लिए आदर्श शैली कही जानी चाहिए।

## भास के दोष

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी मिलती हैं। जैसे—( १ ) 'निष्क्रम्य प्रविशति' आदि द्रुतगतिवाले नाटकीय निर्देशों का आधिक्य इनकी वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न कर देता है। ( २ ) इनके नाटकों में कालान्विति का भी अभाव है जिसे स्वप्नवासवदत्त, चारुदत्त, बालचरित, अभिषेक आदि नाटकों में स्पष्ट देखा जा सकता है। ( ३ ) कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों का ( 'बालचरित' में ) मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित होना अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता है। ( ४ ) नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्यों ( युद्ध, मरणादि ) को भी रंगमच पर दिखाया गया है। ( ५ ) अपरिचित पात्रों का सहसा प्रवेश नाट्यशास्त्र-विरुद्ध है। इससे अस्वाभाविकता भी आ जाती है।

किन्तु ये दोष साधारण हैं। इनसे भास के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।'

---

# दूतघटोत्कच : समीक्षा

## कथावस्तु

इस नाटक का कथानक अभिमन्यु के मरण के बाद की घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। कौरवों की चाल से अर्जुन को कुरुक्षेत्र छोड़कर संशप्तक राजाओं से लड़ने के लिए दक्षिण प्रदेश में जाना पड़ा। अर्जुन के साथ ही श्रीकृष्ण के भी चले जाने से पाण्डवों को असहाय समझ कौरवों की तरफ से द्रोणाचार्य ने कौशलपूर्ण ढंग से पद्मव्यूह ( चक्रव्यूह ) बनाकर उसके भेदन में पाण्डवों को अशक्त जान ललकारा।

युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को इस व्यूह भेदन के लिए भेजा और स्वयं चारों पाण्डव उसके पीछे जाने के लिए तैयार हुए। अकेले अभिमन्यु से ही पार न पा सकने से कौरवों ने वरप्राप्त जयद्रथ ( दु:शलापति तथा दुर्योधन का बहनोई ) के द्वारा पाण्डवों को अवरुद्ध कर भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया। सब कौरवों ने छल कपट का आश्रय ले एकाकी बालक अभिमन्यु को निहत्था कर मार डाला।

नाटक के प्रारम्भ में नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार विष्णु की प्रार्थना कर ज्यों ही नाटक की सूचना देने को तत्पर होता है, उसे कोलाहल सुनाई देता है जिससे वह समझ जाता है कि संशप्तकों से लड़ने के लिए अर्जुन के चले जाने पर, भीष्मवध से चिढ़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अभिमन्यु को घेर कर मार डाला और उसके बाणों से क्षत-विक्षत राजा लोग अर्जुन की प्रतिहिंसा से डरे हुए अपने अपने शिविर में प्रवेश कर रहे हैं। इधर अभिमन्यु के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाने के लिए भट धृतराष्ट्र के पास जाता है और कहता है कि अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम दिखाने वाले बालक अभिमन्यु को कौरव-वीरों ने मार डाला। इस समाचार से स्तब्ध धृतराष्ट्र से गान्धारी कहती है कि इस बालक के वध से कुलनाश का समय उपस्थित हो गया। धृतराष्ट्र भी कहते हैं कि जब पुत्र शोक से सन्तप्त अर्जुन क्रुद्ध होकर

धनुष ग्रहण करेगा तो पूरे विश्व का विनाश हो जायगा। वहीं उनकी पुत्री दुशला भी बैठी है। वह कहती है कि जिसने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को विधवा बनाया उसने अपनी स्त्री को भी वैधव्य दिया है। धृतराष्ट्र के पूछने पर भट ( जयवात ) ने बताया कि अभिमन्यु को बहुत से राजाओं ने मिल कर मारा किन्तु इसके निमित्त थे जयद्रथ। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—यदि जयद्रथ निमित्त थे तो वे मारे गये। दुश्शला भी रोने लगती है। लोग दुश्शला को समझाते हैं किन्तु धृतराष्ट्र कहते हैं कि कृष्ण, बलराम और पाण्डवों के स्नेहभाजन अभिमन्यु को मार कर संसार मे कौन है जो जीवित बचेगा? भट के यह बताने पर कि संशप्तको के साथ युद्ध करने के लिए दूर गये हुए अर्जुन को दिखाने के लिए ही युधिष्ठिर आदि पाण्डव मृतक अभिमन्यु को रोक रखे है, धृतराष्ट्र को पक्का विश्वास हो जाता है कि अब कौरवों को विनष्ट होने से कोई बचा नही सकता। यहाँ तक तो कथा की पृष्ठभूमि अथवा पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। अब आगे दुर्योधन, दु:शासन और शकुनि आदि के प्रवेश के साथ कथा के उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ समझना चाहिए। दुर्योधन आदि अभिमन्यु के मारे जाने से बहुत प्रसन्न होते हैं और धृतराष्ट्र का अभिवादन करते हैं किन्तु वे आशीर्वाद देने के स्थान पर मौन धारण किये रहते हैं। कारण पूछने पर धृतराष्ट्र कहते हैं—'कृष्ण और अर्जुन के प्रिय अभिमन्यु को मार कर तुम लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हो अत आशीर्वाद देना व्यर्थ है। सौ पुत्रों के बीच हुई एक प्रियपुत्री दुःशला भी तुम लोगों की कृपा से वैधव्य को प्राप्त हो गयी।' इस पर दुर्योधन ने कहा कि अकेले जयद्रथ ने नही, अभिमन्यु को बहुत से वीरों ने रोक कर मारा। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने भर्त्सना करते हुए कहा कि अकेले बालक को मिल कर मारते हुए तुम लोगो की भुजाएँ गिर क्यो नही गयी। दुर्योधन ने इसका सटीक उत्तर यह कह कर दिया कि छलपूर्वक भीष्मपितामह को मारने वाले पाण्डवो की भुजाएं नहीं गिरी तो आप हमारी ही भर्त्सना क्यो कर रहे हैं। धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा कि जब अकेले बालक अभिमन्यु ने इतना पराक्रम दिखाया तो पुत्र-मरण से शोकार्त अर्जुन कितना पराक्रम दिखायेंगे? अवज्ञापूर्वक दुर्योधन के पूछने पर कि अर्जुन का कैसा पराक्रम है,

धृतराष्ट्र ने कहा—अर्जुन के पराक्रम के विषय मे तुम निवात-कवच दानवों के जीवनरूप उपहार से अर्चित इन्द्र से पूछो, किरात वेष मे अर्जुन के अस्त्रों से परितुष्ट हुए शङ्कर से पूछो, खाण्डव वन मे सर्पों की आहुति से तृप्त हुए अग्नि से पूछो और पूछो उस चित्राङ्गद नामक गन्धर्व से जो तुम्हें बाँधकर आकाश मे ले जा रहा था और उस समय अर्जुन ने ही तुम्हें बचाया था।

धृतराष्ट्र की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा—'मेरी सेना मे महारथी कर्ण अर्जुन से प्रभाव और पराक्रम मे कम नहीं है।' धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—'कर्ण बेचारा तो हास्यास्पद है। इन्द्र ने उसका कवच ले लिया है। वह अधर्मी और प्रमादी है। कपट द्वारा सीखे गये उसके अस्त्र भी विफल हो गये हैं अत वह अर्जुन की क्या तुलना कर सकता है?

इतने मे शकुनि कहने लगा—'आप हम लोगो की भर्त्सना करने मे समर्थ हैं।'

धृतराष्ट्र ने कहा—अरे शकुनि! द्यूतक्रीडा मे दक्ष तू ने जो कर्म किया है, उसी का यह परिणाम है कि कौरव कुल की यह द्वेषाग्नि शिशु की आहुति के पश्चात् भी नहीं शात हो रही है।

उसी समय शंख, पटह और सिंहनाद मिश्रित घोर शब्द सुनाई पडा और दुर्योधन ने उसके कारण का पता लगाने के लिए भट ( जयत्रात ) को पाण्डवो के शिविर मे भेजा। भट ने जाकर और लौट कर बताया कि कृष्ण से बारम्बार प्रेरित होकर अर्जुन ने मृतपुत्र को गोद मे लेकर प्रतिज्ञा की है कि जिस कौरव पक्षीय ने मेरे पुत्र का वध किया है और जो राजागण उससे सन्तुष्ट हुए हैं उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूँगा और यदि ऐसा न कर सका तो चितारोहण कर प्राण दे दूँगा।

यह सुन कर दुर्योधन आदि प्रसन्न हो कहते हैं कि द्रोणाचार्य की मन्त्रणा से ऐसा व्यूह रचा जायेगा कि अर्जुन जयद्रथ का पता न पा सकेंगे और चितारूढ़ हो जायेंगे। उनकी बात सुनकर धृतराष्ट्र कहते हैं कि चाहे तुम लोग पृथ्वी मे समा जाओ, चाहे आकाश मण्डल मे उड जाओ किन्तु कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट अर्जुन के बाण तुम लोगो का पीछा सर्वत्र करेंगे।

'उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः ॥
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम् ।
प्रख्यातमितिवृत्त च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥
भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ ।
युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ॥'

इस नाटक मे बुद्धिप्रपञ्चित प्रख्यातवृत्त, करुणरस, वाग्युद्ध तथा जयपराजय और बहुस्त्री परिदेवन आदि बातें पायी जाती हैं। अत. इसे 'उत्सृष्टिकाङ्क' के अधिक निकट पाकर अधिक विद्वान् 'उत्सृष्टिकाङ्क' मानते हैं। वास्तव मे निश्चित रूप से इसे किसी एक कोटि मे नही रक्खा जा सकता है।

सामान्य विशेषताएँ—डा० गणपति शास्त्री के अनुसार यह नाटक न सुखान्त है न दु खान्त। इस नाटक मे वीर तथा करुण रस का अद्भुत सम्मिलन है। घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के कथोपकथन मे वीर रस की झलक मिलती है और धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुश्शला की उक्तियो से करुण-रस की धारा प्रवाहित होती है। प्रभाव की दृष्टि से करुण रस का प्रकर्ष अधिक है क्योकि यहाँ वीररस करुण मूलक ही है। दु ख एवं विषाद की घनी छाया पूरे नाटक मे बराबर बनी हुई है।

यह नाटक भरत वाक्य के बिना ही सहसा समाप्त हो जाता है अत कुछ लोग इसे अपूर्ण मानते हैं। संभव है इसमे आगे भी कुछ अश रहा हो किन्तु जहाँ तक नाटक के उद्देश्य की बात है वह पूर्ण सफल है।

डा० विन्तर नित्स और डा० पुसालकर ने इस नाटक के अन्तिम श्लोक के विषय मे जो श्रीकृष्ण के सन्देश के रूप मे हैं आशका व्यक्त की है कि यह श्लोक संदर्भ से बाहर प्रतीत होता है। जो भी हो, श्लोक अपने स्थान पर नितान्त उचित है। यह ज्ञातव्य है कि घटोत्कच श्रीकृष्ण के तीन सन्देश लेकर वहाँ आया है—पहला धृतराष्ट्र के लिए, दूसरा दुर्योधन के लिए और तीसरा सब कौरवो के लिए।

भास ने अपने अन्य नाटको की भाँति इसमे भी नाटकीय व्यङ्ग्य की उपस्थापना की है जो अत्यन्त कारुणिक है। अभिमन्यु के मारे जाने का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनो शोकनिमग्न करुण विलाप

कर रहे थे। वहीं पास में बैठी दुश्शला के मुख से सहसा अनजान में उसी के पक्ष में भयानक अमाङ्गलिक सत्य वचन निकल पड़ा—'जिसने इस समय वह उत्तरा को वैधव्य दिया है उसने अपनी युवतियों को भी वैधव्य दिया है।' इसके बाद ही भट सूचित करता है कि अभिमन्यु को अनेक राजाओं ने मिल कर मारा है किन्तु उसका निमित्त जयद्रथ था। यह सुन कर धृतराष्ट्र शोकसन्तप्त होकर कहते हैं—'हन्त जयद्रथो निहत।' उधर दुश्शला भी वैधव्य प्राप्ति की अनिवार्य संभावना से रो पड़ती है।

इस नाटक में धृतराष्ट्र के विषाद और दुर्योधनादि के हर्ष इन दो विरोधी भावों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संवादों का चोटीलापन बढ़ते-बढ़ते उग्र रूप धारण कर लेता है, उसी समय भास कथानक में मोड़ लाकर उस प्रसंग को वहीं आगे बढ़ने से रोक देते हैं। धृतराष्ट्र और दुर्योधन के परुष वार्तालाप से परिस्थिति गम्भीर होते ही घटोत्कच के सहसा प्रवेश ने उसे संभाल लिया, अन्यथा भट के अनुसार आगे की घटना बड़ी ही भयंकर होती—

'क्रूरमेव नरपतिं नित्यमुद्यतशासनम्।
यः कश्चिदपरो ब्रूयान्न तु जीवेत्स तत्क्षणम्।। ३२ ।।

इसी प्रकार धृतराष्ट्र द्वारा शकुनि की भर्त्सना की जाने पर नेपथ्य में भूकम्प के साथ भारी ध्वनि होती है और सब का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाता है जिससे शकुनि को धृतराष्ट्र की वक्रोक्तियों का उत्तर देने का अवसर नहीं मिलता है और परिस्थिति की गम्भीरता वहीं शान्त हो जाती है।

अन्त में भी घटोत्कच और दुर्योधन आदि के बीच वार्तालाप बढ़ते-बढ़ते युद्ध तक की नौबत आ जाती है। क्रुद्ध घटोत्कच युद्ध के लिये चुनौती देने लगता है—

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः।
उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद् गन्तुमिच्छेद् यमालयम्।।५०।।

बात बिगड़ती देख कर धृतराष्ट्र 'पौत्र घटोत्कच! मर्षयतु मर्षयतु भवान्। मद्वचनावगन्ता भव।'—अपनी अनुनयात्मक बातों से बात बना लेते हैं। भास की कला की भंगिमाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट एवम् अनुपम हैं।

# पात्र-परिचय

## पुरुष पात्र

| | | |
|---|---|---|
| १ | धृतराष्ट्र | दुर्योधन का पिता। |
| २ | भट | जयभात नामक समाचार वाहक। |
| ३ | दुर्योधन | धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र, कुरुराज। |
| ४ | दुःशासन | दुर्योधन का छोटा भाई। |
| ५ | शकुनि | दुर्योधन का मामा। |
| ६ | घटोत्कच | हिडिम्बा ( राक्षस-कन्या ) मे भीम से उत्पन्न पुत्र, जो दूत बन कर उपस्थित हुआ है। |

## स्त्री पात्र

| | | |
|---|---|---|
| १ | गान्धारी | दुर्योधन की माता। |
| २. | दुःशला | दुर्योधन की बहिन, जयद्रथ की पत्नी। |
| ३. | प्रतिहारी | द्वारपालिका। |



भासनाटकचक्रे

# दूतघटोत्कचम्

## 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

### प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । )

---

❀ कल्याणी ❀

नीलाम्बुदाभाय मनोहराय परात्मने गो-द्विजपालकाय ।
ब्रह्मादिसेव्याय दयापराय नमोऽस्तु कृष्णाय जनार्दनाय ॥

अथ तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो नटैः स्वानुष्ठितवाद्य-वादनादिरूपया नान्द्या रङ्गसामाजिकवृन्दे समुन्मुखीकृते सति, निर्विघ्न चिकीर्षितग्रन्थसमाप्तये, तस्य सानन्दाभिनयसम्पत्तये, सामाजिकानामानुषङ्गिक-मङ्गलसिद्धये च शिष्टाचारज्ञापितस्मृतितर्कित-श्रुतिबोधितकर्तव्यताकमाशीर्वादा त्मकं स्वरचितं नान्द्यात्मकं मङ्गलं सूत्रधारमुखेन पाठयितुं ततो नाटकीयकथा-वस्तूपक्षेपं कारयितुं च रङ्गमञ्चे सूत्रधारं प्रवेशयन्निर्दिशति—नान्द्यन्ते इति । नान्द्यन्ते—नान्दी = आनकः ( 'दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नान्दूश्च नान्द्यपि' इति वैजयन्ती ), नान्द्याः, उपलक्षणत्वाद् वाद्यान्तराणामपि अन्ते = अवसाने ( भावे सप्तमी ) । ततः = तदनन्तरम्, वाद्यनादनादिरूपनान्दीसमापनानन्तर-मेवेत्यर्थः, क्रियान्तरेण कालक्षेपमकृत्वेति भावः । 'ततः' इति पदेन नान्दी-समापनसूत्रधारप्रवेशक्रिययोर्मध्ये क्रियान्तराभावो द्योत्यते, अन्यथा 'नान्द्यन्ते' इति भावे सप्तम्यैव सूत्रधारप्रवेशक्रियाभावावगमात् 'ततः' इति पदस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत । 'नान्दी' इति पदेनात्र वाद्यवादनरूपैव नान्दी ग्राह्या, न तु कवि-रचिता 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्ना-

---

( वाद्यवादनात्मक नन्दी के समाप्त होने पर उसके
बाद ही सूत्रधार प्रवेश करता है । )

सूत्रधार —

नारायणस्त्रिभुवनैकपरायणो व
पायादुपायशतयुक्तिकर. सुराणाम् ।

---

न्दीति सञ्ज्ञिता ॥'—इति लक्षणलक्षिता मङ्गलश्लोकपाठात्मिका नान्दी तस्या सत्काव्यरूपतया रङ्गप्रयोज्यत्वेन सूत्रधारादे कस्यचित्प्रवेश विना प्रयोक्तुम शक्यत्वात् । प्रविशति रङ्गमञ्चे समागच्छति । सूत्रधार —सूत्र धारयतीति सूत्रधार' ( कर्मण्यण् ) प्रधानन्. । "वर्णनीय कथासूत्र प्रथम येन सूच्यते । रङ्गभूमि समाक्रम्य सूत्रधार' स उच्यते ॥" इति तल्लक्षणम । भरतस्त्वाह — "नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥" इति ॥

नाटकग्रन्थप्रारम्भे कविनिबद्धा मङ्गलपद्यरूपामाशीर्वादात्मिका नान्दी सूत्रधार पठति--नारायण इति । त्रिभुवनैकपरायण – त्रयाणा भुवनाना समाहार त्रिभुवनम [ समाहारद्विगु, 'पात्राद्यन्तस्य न' इति वार्तिकेन 'अकारान्तोत्तरपदोद्विगु स्त्रियामिष्ट' इति प्राप्तस्य स्त्रीत्वस्य निषेधे 'स नपुसकम्' इति नपुसकत्वम् । ] त्रिभुवने = त्रैलोक्ये, लक्षणया त्रैलोक्यप्राणिरक्षणे इत्यर्थ एक = प्रधान, परायण = तत्पर । एतेन नारायणस्य विष्णुत्वेन जगत्पालन-हेतुत्व सूचितम् । सुराणाम् = देवाना, विजयायेति भाव । उपायशतयुक्तिकर उपायानाम् – कूटोद्योगानाम्, शतानि = शतसङ्ख्यकानि, तेषाम् युक्ति = योजना, ता करोतीति तथोक्त, विविधकूटनीतिप्रयोगेणासुरान् सहृत्य देवाना विजयप्रद इत्यर्थ । एतेन नारायणस्य सुरहितकारित्व सूचितम् । लोकत्रया-विरत०—त्रयोऽवयवा यस्य तत् त्रयम् [ 'सख्याया अवयवे तयप्' इति तयप् तद्धितप्रत्यय । 'द्वित्रिभ्या तयस्यायज्वा' इति तयस्यायजादेश । ] लोकाना त्रयमिति लोकत्रयम् ( षष्ठीसमास ) । त्रयाणा लोकाना समुदाय इति यावत् । लोकत्रयस्य = त्रिभुवनस्य ('लोकस्तु भुवने जने, इत्यमर ।) अविरतम् = सततम्, अभिनीयमानमिति भाव., यन्नाटकम् तस्य तन्त्रम् = कला, तस्य यद् वस्तु =

---

सूत्रधार—तीनो लोको ( प्राणियो की रक्षा ) मे मुख्यतया तत्पर, देवो के ( विजयार्थ ) सैकडो उपायो की योजना करने वाले तथा तीनो लोकों के

लोकत्रयाविरतनाटकतन्त्रवस्तु-
प्रस्तावनाप्रतिसमापनसूत्रधारः ॥ १ ॥

( परिक्रम्य ) एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि । अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । भवतु पश्यामि ।

---

कथावस्तु, तस्य प्रस्तावना = स्थापना, समापनम् = उपसंहारश्च, तस्य सूत्रधार = प्रधाननट . जगतामुत्पादक संहारकश्चेति भाव । एतेन नारायणस्य ब्रह्मरूपत्वेन जगद्विधातृत्व, रुद्रत्वेन च जगत्संहारकत्व च सूचितम् । नारायण — नारा = आप , अयनं यस्य स तथोक्त , विष्णुरित्यर्थ । [ "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव । ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायण स्मृत ॥" इति मनुस्मृति ( १।१० ) ] क्षीरसागरवासीत्यर्थ । व = युष्मान् ( सामाजिकान् ) । पायात् = रक्ष्यात् ( पा रक्षणे धातोराशिषि लिङ् ) । यो नारायणो विष्णुरूपेण त्रैलोक्यं पालयति, ब्रह्मरूपेण जगन्ति सृजति, रुद्ररूपेण च संहरति, यश्च विविधकूटनीतिप्रयोगेण देवैरसुरान् सहाय्यं तान् विजयिन कुर्वन्ति, स नारायणो युष्माक ( सामाजिकानान् ) सर्वतो रक्षा क्रियात् इति सरलार्थ । वसन्ततिलक वृत्तम् 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ ग ' इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

परिक्रम्येति । परिक्रम्य = अभिनयविशेष कृत्वा, कानिचित् पदानि सचर्येत्यर्थ । एवम् = ईदृशम् । आर्यमिश्रान्–आर्याश्च ते मिश्रा इति आर्यमिश्रा = महानुभावा , तान् । मिश्रा – आदरणीया । आर्यलक्षण च–"कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृत ॥" इति । विज्ञापयामि = सूचयामि । अये = विस्मयद्योतकमव्ययपदम् । मयि = सूत्रधारे इत्यर्थ । विज्ञापनव्यग्रे–विज्ञापनम् = सूचनम् , तत्र व्यग्र = साभिप्रायं व्यस्त , तस्मिन् ( भावे सप्तमी ) । भवतु–भो ( "सम्बोधनार्थकाः

---

सतत ( अभिनीयमान ) नाटक की कला-सम्बन्धी कथा वस्तु की प्रस्तावना एवम् उपसंहार के सूत्रधार नारायण आप लोगो की रक्षा करें ॥ १ ॥

( घूमकर ) आप महानुभावो को ऐसा सूचित करता हूँ । अरे ! क्या बात है । मेरे सूचना देने में व्यस्त होते ही शब्द-सा सुनाई दे रहा है । अच्छा देखता हूँ ( क्या बात है ) ।

( नेपथ्ये । )

भो भो निवेद्यतां निवेद्यतां तावत् ।

सूत्रधार—भवतु । विज्ञातम् । एष खलु संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये तदनन्तरमुपगतभीष्मवधामर्षितैर्धार्तराष्ट्रैः परिवार्य निपातितः कुमारोऽभिमन्युः । तथाहि—

यान्त्यर्जुनप्रत्यभियानभीता यतोऽर्जुनस्तां दिशमीक्षमाणाः ।

---

स्यु प्याट्पाडङ्ग हे हे भो " इत्यमर )। नेपथ्ये = कुशीलवकुटुम्बस्य स्थान नेपथ्य तत्र ।

सूत्रधार इति । संशप्तकानीकनिवाहिते—संशप्तका = सम्यक् शपथङ्गीकारो येषां ते ( समासान्त कप् ) । त्रिगर्तराजपुत्रा सुशर्मादय इत्यर्थ । तेषामनीके = सैन्ये , निवाहिते = सुदूरमपनीते । जनार्दनसहाये = सकृष्णे इत्यर्थ । धनञ्जये = अर्जुने ( भावे सप्तमी ) । उपगतभीष्मवधामर्षितैः - उपगत - घटित यो भीष्मस्य = भीष्मपितामहस्य वध , तेन अमर्षितैः = सजातक्रोधैः । धार्तराष्ट्रैः —धृतराष्ट्रस्य अपत्यानि पुमास धार्तराष्ट्रा दुर्योधनादय ( 'तस्यापत्यम्' इति अपत्यार्थे अण् तद्धितप्रत्यय । ) तै परिवार्य = सर्वत आच्छाद्य । निपातित = हत । कुमार = राजकुमार । अभिमन्यु = तन्नामा अर्जुनपुत्र ।

यान्तीति । सूत्रधार कोलाहलहेतु निरूपयति—यान्तीति । अर्जुनप्रत्यभियानभीता —अर्जुनस्य प्रत्यभियानम् = वैरशोधनार्थमाक्रमणम्, तस्माद् भीता = भयाकुला । यत = यया दिशा अर्जुन (गत इति शेष ) वा दिशम् ईक्षमाणा = पश्यन्त , परावर्तत अर्जुनो न वेति विलोकयन्त इति भाव । सौभद्रबाणाङ्कित-

---

( नेपथ्य में )

अजी अजी, निवेदन किया जाय निवेदन किया जाय ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया । निश्चय यह संशप्तकों की सेनाओं द्वारा कृष्ण समेत अर्जुन को दूर ले जाये जाने पर, उसके बाद, भीष्मपितामह के हुए वध के कारण कुपित धृतराष्ट्र के पुत्रों के द्वारा अभिमन्यु चारों तरफ से घेरकर मार डाला गया । इसी लिए—

सुभद्रा के पुत्र ( अभिमन्यु ) के बाणों से क्षत-विक्षत अतएव हतचेतन

नराधिपाः स्वानि निवेशनानि सौभद्रबाणाङ्कितनष्टसञ्ज्ञाः ॥ २ ॥

( निष्क्रान्तः )

स्थापना ।

( ततः प्रविशति भटः । )

भटः - भो भो ! निवेद्यतां तावत्पुत्रशतश्लाघ्यबान्धवाय विज्ञान-

---

नष्टसंज्ञाः—सौभद्रः—सुभद्राया अपत्यंपुमान् सौभद्र ( अपत्यार्थे अण्, ढक्प्रत्ययोऽपि भवति यदा 'सौभद्रेय' इत्यपि ) अभिमन्युः, तस्य बाणैः अङ्किता = क्षतविक्षता इत्यर्थः, अत एव नष्टा संज्ञा = चेतना येषां तथाभूताः अभिमन्युना बाणैर्दुरवस्था प्रापिता इति भावः । नराधिपा —अधिकं पान्ति इति अधिपाः ( आतश्चोपसर्गे' इति क, 'आतोलोप इटि च' इति आकारलोपः ) नराणाम् अधिपाः इति नराधिपा = राजानः । स्वानि = स्वकीयानि । निवेशनानि = शिविराणि ( निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनम्, नि + √विश् + ल्युट्, कृत्यल्युटोबहुलम्) यान्ति=गच्छन्ति । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोमिश्रणादुपजातिवृत्तम् ॥२॥

इति स्थापना ( प्रस्तावना )

भट इति । भटः = सैनिक । पुत्रशतश्लाघ्यबान्धवाय—पुत्राणां शतम् इति पुत्रशतम् । पुत्रशतं च श्लाघ्याः = सुयोग्या बान्धवाश्च = सम्बन्धिनो मित्राणि च यस्य तस्मै, शतपुत्रश्लाघ्यबान्धवयुक्तायेत्यर्थः । विज्ञानविस्तारित०—विज्ञानेन = प्रज्ञया विस्तारितौ विस्तारं गमितौ विनयाचारौ - विनयः सदाचारश्च, तावेव दीर्घे = विशाले, चक्षुषी = नेत्रे यस्य तस्मै । प्रज्ञावर्धितविनयाचाररूपविशालनेत्रसम्पन्नायेत्यर्थः ।

---

राजा लोग, अर्जुन के पुनः आक्रमण से डरे हुए, जिधर अर्जुन गये हैं, उसी दिशा की ओर देखते हुए, अपने शिविरों को जा रहे हैं ॥ २ ॥

( चला गया )

इस प्रकार स्थापना ( प्रस्तावना ) समाप्त हुई ।

( तदनन्तर भट प्रवेश करता है । )

भट – अजी अजी ! सौ पुत्रों तथा प्रशस्य बान्धवों से युक्त, प्रज्ञा से

विस्तारितविनयाचारदीर्घचक्षुषे महाराजाय धृतराष्ट्राय । एष खलु

योधस्यन्दनवाजिवारणवधैर्विक्षोभ्य राज्ञां बलं
बालेनार्जुनकर्म येन समरे लीलायता दर्शितम् ।
सौभद्रः स रणे नराधिपशतैर्वेगागतैः सर्वशः
खे शक्रस्य पितामहस्य सहसैवोत्सङ्गमारोपितः ॥ ३ ॥

---

भटो धनञ्जयपुत्रस्य शौर्यं वर्णयन् तन्मरणं निवेदयति—योधस्यन्दनेति । योधानाम् = सैनिकानाम्, स्यन्दनवाजिनाम् = रथाश्वानाम्, वारणानां च = गजानां च, वधैः = हननैः । राज्ञाम् = नृपाणाम्, बलम् = सैन्यम्, विक्षोभ्य = विक्षुब्धं कृत्वा, येन बालेन = बाल्यावस्थायुक्तेन अभिमन्युना । लीलायता = क्रीडां कुर्वता । समरे = युद्धे । अर्जुनकर्म-अर्जुनस्य कर्म दर्शितम् – प्रकटीकृतम्, अर्जुनेनेव तेन शत्रुविनाशः कृत इति भावः । रणे = संग्रामे । सः = तादृशो वीरः । सौभद्रः = अभिमन्युः । नराधिपशतैः = असख्यनृपतिभिः । वेगागतैः — वेगेन = त्वरया, आगतैः = सम्प्राप्तैः । सर्वशः = सर्वतः । खे = स्वर्गे । पितामहस्य = पितुः = अर्जुनस्य पिता = पितामहः इन्द्रः तस्य । उत्सङ्गम् = अङ्कम् । सहसैव = झटित्येव । आरोपितः स्थापितः । सहसा सर्वतो विनिपत्यासंख्यनृपैरभिमन्युर्हत इति भावः ।

अर्जुनकर्म दर्शितमित्यत्रार्जुनकर्म सदृशं कर्मेति बोधनादसम्भवद्वस्तुसम्बन्धनिदर्शनाऽलङ्कारः । 'नराधिपशतैरभिमन्युर्हतः' इति गम्यार्थस्यैवोक्तिवैचित्र्यपूर्वकमभिधानात् पर्यायोक्तालङ्कारश्च । द्वयोर्निरपेक्षेण संस्थितेः संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, तल्लक्षणं च यथा—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' । इति ॥ ३ ॥

---

विस्तार को प्राप्त विनय सदाचार रूप विशाल नेत्रों वाले महाराज धृतराष्ट्र से निवेदन किया जाय । यह—

सैनिकों के रथों के घोड़ों तथा हाथियों के विनाश से जिस बालक ने क्रीडा करते हुए ( अनायास ) युद्ध में अर्जुन का सा कर्म प्रदर्शित किया, वह सुभद्रा का पुत्र ( अभिमन्यु ) युद्ध में चारों ओर से वेगपूर्वक आये हुए सैकड़ों नृपों के द्वारा सहसा ही स्वर्ग में ( अपने ) पितामह ( इन्द्र ) की गोद में बैठा दिया गया ॥ ३ ॥

( ततः प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी दुःशला प्रतिहारी च । )

धृतराष्ट्रः--कथं नु भोः !

क एतच्छ्रुतिपथदूषणं कृतं मे
कोऽयं मे प्रियमिति विप्रियं ब्रवीति ।
कः ऽस्माकं शिशुवधपातकाङ्किताना
वंशस्य क्षयमवघोषयत्यभीतः ॥ ४ ॥

---

तत इति । गान्धारी=तन्नाम्नी धृतराष्ट्रभार्या दुर्योधनजननी च । दुःशला= धृतराष्ट्रपुत्री, दुर्योधनभगिनी जयद्रथपत्नी च । प्रतीहारी = द्वारपालिका ।

अभिमन्युवधं श्रुत्वा धृतराष्ट्रः सशोकक्रोधमाह—केनैतदिति ।

केन = केनजनेनेत्यर्थः । एतत् = सौभद्रो हत इत्येतद्वचो विश्राव्येतिभावः । मे = मम, धृतराष्ट्रस्येत्यर्थः । श्रुतिपथदूषणम् = श्रुत्योः = कर्णयोः पन्थाः इति श्रुतिपथः कर्णविवरमित्यर्थः ( 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति अप्रत्ययः समासान्तः ) तस्य दूषणम् = आघातः । कृतम् = विहितम् । सौभद्रो हत इति वृत्तान्तः विश्राव्य केन मम कर्णावाहताविति भावः । कोऽयम् = अयं को जनः ? यो मे = मम, प्रियम् = अभीष्टम् इति ( मत्वा ) विप्रियम् = अनिष्टम् । ब्रवीति = वदति । कः – को जनः इत्यर्थः, शिशुवधपातकाङ्कितानाम्—शिशुः = बालः, अभिमन्युरित्यर्थः, तस्य वधः एव पातकः तेन अङ्किताः = लाञ्छिताः, तेषाम्, अस्माकम् = कौरवाणामित्यर्थः, वंशस्य क्षयम् = विनाशम् । अभीतः = निर्भीकः सन् । अवघोषयति = उच्चैर्वदति, सर्वत्र प्रसारयतीत्यर्थः । अभिमन्युवधवृत्तान्तं श्रुत्वा मे कर्णकुहरे नितरां पीडिते एतादृशवृत्तान्तश्रवणेन मम कर्णौ दूषविमा-पभूताम्, एतच्छ्रवणमपि पापं मन्ये । ममेदं प्रियं भवेदिति मत्वैवायं जन इमं वृत्तान्तम् श्रावयत्, स तु न जानाति यन्नितरामप्रियमेतन्मे । एतद्वृत्तान्तश्रावणे नाय निर्भीको जनोऽस्मान् शिशुवधपापलाञ्छितान्, अस्माकं वंशोच्छेदं चाव घोषयति । यद्यभिमन्युहतस्तर्हि कौरवाणां नाशो विनिश्चित इति धृतराष्ट्रोक्ते

---

( तदन्तर धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुःशला तथा प्रतिहारी का प्रवेश )

धृतराष्ट्र—अजी, ( यह ) कैसे !

किसने मेरे कर्णपथ को यह दूषित किया ? यह कौन मेरा प्रिय समझ कर

गान्धारी—महाराअ ! अत्थि उण जाणोअदि केवलं पुत्तसंखअकारओ कुलविग्गहो भविस्सदि त्ति । [ महाराज ! अस्ति पुनर्ज्ञायते केवलं पुत्रसंक्षयकारकः कुलविग्रहो भविष्यति । ]

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! ज्ञायते ।

गान्धारी—महाराअ कदा णु खु । [ महाराज कदा नु खलु । ]

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! शृणु—

अद्याभिमन्युनिधनाज्जनितप्रकोपः
सामर्षकृष्णधृतरश्मिगृहीतप्रतोदः ।

---

राशय. । प्रहर्षिणी वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।' इति ॥ ४ ॥

गान्धारीति । केवलम् = फलान्तरशून्यमित्यर्थः । कुलविग्रह. = कौरवपाण्डवयुद्धम् । धृतराष्ट्र इति । ज्ञायते ( मयापीति शेष. ) अयं कुलविग्रह पुत्रसक्षयकारक एव भविष्यति इत्यहमपि जाने इति धृतराष्ट्रोक्तेराशय ।

गान्धारीति । कदा – कस्मिन् समये । तादृशस्य युद्धस्य सम्भावना कदा ? इति गान्धारीप्रश्नस्याशय ।

धृतराष्ट्रः । कुलविग्रहस्य स्वरूपं प्रतिपादयति—अद्याभिमन्युनिधनादिति । अद्य = अस्मिन् दिने, अभिमन्युनिधनात् = स्वपुत्रस्याभिमन्योर्विनाशात् । जनितप्रकोप.— जनितः = उत्पादित , कोप = क्रोध यस्य स तथोक्त , प्रकुपित हृदयः । सामर्षकृष्ण०—सामर्षम् = सकोप यथा स्यात्तथा, कृष्णेन धृतौ =

---

अप्रिय कथन कर रहा है ? कौन निर्भय होकर शिशु ( अभिमन्यु ) के वधरूप पाप से लाञ्छित हमारे वंश के विनाश की घोषणा कर रहा है ? ॥ ४ ॥

गान्धारी—महाराज, तथ्य यह है कि ( कौरव और पाण्डव दो कुलों का विग्रह केवल पुत्रों के विनाश का हेतु होगा, ऐसा मालूम हो रहा है ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! ( मैं भी ) समझता हूँ ।

गान्धारी—महाराज कब ( ऐसी सम्भावना है ) ?

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! सुनो,

अब अभिमन्यु के वध से अत्यन्त कुपित, और क्रुद्ध कृष्ण के द्वारा गृहीत रश्मिरज्जु ( लगाम ) तथा चाबुक वाला अर्जुन अपने उग्र धनुष ( गाण्डीव )

पार्थ. करिष्यति तदुग्रधनु सहायः
शान्ति गमिष्यति विनाशमवाप्य लोकः ॥ ५ ॥

गान्धारी—हा वच्छ अभिमञ्जो ! ईसिसे यि णाम पुरुसक्खअकारए कुलविग्गहे वत्तमाणे बालभावणिमज्जण अम्हाणं भग्गक्कमेण करअतो कहिं दाणिं पोत्तअ ! गदोसि ! [ हा वत्स अभिमन्यो ! ईदृशेऽपि नाम पुरुषक्षयकारके कुलविग्रहे वर्तमाने बालभावनिमज्जनमस्माकं भाग्यक्रमेण कुर्वन् कुत्रेदानीं पौत्रक ! गतोऽसि ! ]

---

गृहीतौ, रश्मिगुणाः = वल्गा, प्रतोद = कशा च यस्य स । उग्रधनु सहाय - उग्रम् = कठोरम्, धनु = गाण्डीवम्, सहाय यस्य स । पार्थ. = पृथा कुन्ती तस्या पुत्र, अर्जुन इत्यर्थ । तत् तत् कर्म, करिष्यति ( येन ) लोक = समस्तलोक । विनाशमवाप्य = विनष्टो भूत्वा । शान्ति गमिष्यति - प्रशान्तिस्थो भविष्यति । सर्वाञ्छत्रून् विनाश्य लोके शान्ति स्थापयिष्यतीत्यर्थ । वसन्ततिलक वृत्तम् । तल्लक्षण तु प्रागेवोक्तम् ॥ ५ ॥

गान्धारीति । ईदृशेऽपि = अनर्थकारिणि इत्यर्थ । नामेति निन्दायाम् । पुरुषक्षयकारके—पुरुषाणाम् = वीरजनानामित्यर्थ क्षयम् = विनाश करोतीति तस्मिन् वर्तमाने = प्रवर्तमाने इत्यर्थ, कुलविग्रहे = कौरवपाण्डवयुद्धे । बालभावनिमज्जन कुर्वन्—बालभावात् = बाल्यादेतो निमज्जनम्—सम्यक् प्रवेशमित्यर्थ, कुर्वन् । अस्माकं भाग्यक्रमेण = भाग्यदोषेणेत्यर्थ । पौत्रक-पुत्रस्यापत्य पुमान् पौत्र ( अपत्यार्थेऽण् ) अनुकम्पित पौत्र' इति पौत्रक, तत्सम्बुद्धौ हे पौत्रक ! ( 'अनुकम्पायाम्' ५।३।७६ इति सूत्रेण अनुकम्पायुक्तार्थाभिधायिन पौत्रशब्दात् स्वार्थे क तद्धितप्रत्यय । )

---

को सहायता से वह ( शौर्य ) करेगा ( जिससे ) समस्त लोक विनष्ट होकर शान्ति को प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

गान्धारी—हाय वत्स अभिमन्यु ! हमारे भाग्य दोष के कारण, हो रहे नरसंहारक कुल-विग्रह में तुम बाल भाव में वारण प्रवेश कर, हे प्रिय पौत्र ! अब कहाँ चले गए ?

दुःशला - जेण दाणिं वहूए उत्तराए वेधव्वं दाइद, तेण अत्तणो जुवदिजणस्स वेधव्वमादिट्ठं। [ येनेदानीं वध्वै उत्तरायै वैधव्यं दत्तं, तेनात्मनो युवतिजनाय वैधव्यमादिष्टम्। ]

धृतराष्ट्रः—अथ केनैष व्यसनार्णवस्य सेतुबन्धः कृतः।

भटः—महाराज! मया।

धृतराष्ट्रः—को भवान्।

भटः—महाराज! ननु जयत्रातोऽस्मि।

धृतराष्ट्र—जयत्रात!

केनाभिमन्युर्निहतः कस्य जीवितमप्रियम्।

---

येन = पुरुषेण। इदानीम् = सम्प्रति। वध्वै उत्तरायै = अभिमन्युभार्यायै उत्तरायै (सम्प्रदाने चतुर्थी)। वैधव्यम् = विगतो धवः = पतिर्यस्याः सा विधवा, तस्या भाव वैधव्यम्, विधवा शब्दात् 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' पा० ५।१।१२४ इति सूत्रेण ष्यञ् तद्धितप्रत्ययः। अभिमन्यु हत्वा तद्भार्यामुत्तरां यो विधवामकार्षीत्, सोऽप्यचिरेणैव हतो भूत्वा स्वपत्नीमवश्यमेव विधवां करिष्यतीति दुःशलोक्तेरभिप्रायः।

धृतराष्ट्र इति—अथेति प्रश्नारम्भे। व्यसनार्णवस्य—व्यसनम् = विपद्, तदेव अर्णव = सिन्धुः, तस्य।

धृतराष्ट्रो जयत्रातनामानं भटं पृच्छति—केनाभिमन्युरिति। जयत्रात! केन = केन पुरुषेण, अभिमन्युः = तदभिधानोऽर्जुनपुत्र, निहत. = मारितः।

---

दुःशला—जिसने इस समय बहू उत्तरा को वैधव्य दिया है, उसने अपनी स्त्रियों को विधवा होने का आदेश दिया है।

धृतराष्ट्र—अच्छा, विपत्ति-सिन्धु पर यह किसने पुल बाँधा है? (अर्थात् यह समाचार किसने सुनाया है?)।

भट—महाराज! मैंने।

धृतराष्ट्र—तुम कौन हो?

भट—महाराज! अरे मैं जयत्रात हूँ।

धृतराष्ट्र—जयत्रात! किसने अभिमन्यु को मारा! किसे (अपना)

पञ्चानां पाण्डवाग्नीनामात्मा केनेन्धनीकृतः ॥ ६ ॥

भटः—महाराज ! बहुभिः किल पार्थिवैः समागतैर्निहतः कुमारोऽभिमन्युः । स्यात्तु जयद्रथो निमित्तभूतः ।

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निमित्तभूतः ।

भटः—महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—हन्त जयद्रथो निहतः ।

( तच्छ्रुत्वा दुःशला रोदिति । )

धृतराष्ट्रः—कैषा रोदिति ।

---

कस्य = पुरुषस्य, जीवितम् = जीवनम्, अप्रियम् = अनभिलषितम्, को मृत्युं वाञ्छति येनाभिमन्युर्हतः ? अभिमन्युहननेन तस्य मरणं ध्रुवमिति भावः । केन = पुरुषेण, पञ्चानाम् = पञ्चसंख्याकानाम्, पाण्डवाग्नीनाम्—पाण्डवाः = युधिष्ठिरादय एवाग्नयस्तेषाम्, आत्मा = स्वशरीरम्, इन्धनीकृतः = न इन्धनम् अनिन्धनम्, अनिन्धनम् इन्धनत्वेन प्रापितः इन्धनीकृतः ( अभूततद्भावे च्विः ) । रूपकालङ्कारः । अनुष्टब्वृत्तम्—तल्लक्षणं यथा—'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।' इति ॥ ६ ॥

भट इति । किलेति वार्तायाम् । बहुभिः = बहुसंख्याकैः । पार्थिवैः—पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवाः = राजानः, तैः ( पृथिवीशब्दात् 'तस्येश्वरः' पा० ५।१।४२ इति सूत्रेण अण् ) समागतैः = मिलितैरित्यर्थः ।

---

जीवन अप्रिय हो गया ? पाण्डव रूप पञ्चाग्नि के लिए किसने अपने को इन्धन बना लिया ? ॥ ६ ॥

भट—महाराज ! सुना जाता है—बहुत से राजाओं ने मिल कर कुमार अभिमन्यु को मारा, किन्तु सम्भवतः उसका निमित्त जयद्रथ था ।

धृतराष्ट्र—खेद का विषय है, क्या जयद्रथ निमित्त हुआ ?

भट—महाराज ! और क्या !

धृतराष्ट्र—शोक है ( तब तो ) जयद्रथ मारा गया ।

( यह सुन कर दुःशला रोती है । )

धृतराष्ट्र—यह कौन रो रही है ?

विप्रियं कृत्वा को हि नाम जीविष्यति । ]

धृतराष्ट्र —सत्यमाह तपस्विनी दुःशला । कुत —

कृष्णस्याष्टभुजोपधानरचिते योऽङ्के विवृद्धश्चिरं
यो मत्तस्य हलायुधस्य भवति प्रीत्या द्वितीयो मदः ।
पार्थानां सुरतुल्यविक्रमवतां स्नेहस्य यो भाजनं
तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वेदुष्कृतैर्जीवितम् ॥८॥

---

अर्जुनस्य । विप्रियम् = अप्रियम् ।

धृतराष्ट्र इति । तपस्विनी वराकी ।

धृतराष्ट्रो दुःशलाया प्रागुक्तिं समर्थयन्नाह—कृष्णस्येति । य = अभिमन्यु, कृष्णस्य वासुदेवस्य, अष्टभुजोपधानरचिते—अष्टौ भुजा एव उपधानम् = उपबर्हं, तेन रचिते = विहिते, अङ्के = उत्सङ्गे, चिरम् = बहुकालं यावत्, अद्यावधीति भाव । विवृद्ध = वृद्धिं गत । य अभिमन्यु, मत्तस्य = मदान्वितस्य, हलायुधस्य हल – लाङ्गलम्, आयुधम् = अस्त्रं यस्य स हलायुध = बलराम, तस्य, प्रीत्या = स्नेहेन द्वितीय = पूर्वादतिरिक्तं, मद भवति—मदिरापानजमदाद्व्यतिरिक्तो भागिनेय स्नेहजमदो भवतीत्याशय । य = अभिमन्यु सुरतुल्यविक्रमवताम्—सुरतुल्य = देवसमान विक्रम = पराक्रम अस्त्येषामिति सुरतुल्यविक्रमवन्त, तेषाम् ( अत्र नित्ययोगेमतुप्, अन्यथा सुरतुल्यो विक्रमो येषां तेषां सुरतुल्यविक्रमाणामिति बहुव्रीहेस्तदर्थ प्रतिपत्तिकरत्वेन मतुपो वैयर्थ्य-प्रसक्ति', 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर' इति ) पार्थानाम् = पृथापुत्राणां युधिष्ठिरादीनाम्, स्नेहस्य = वात्सल्यस्य, भाजनम् = पात्रम्, तम् = तादृशम् अभिमन्युं हत्वा व्यापाद्य, स्वैः = स्वकीयैः, दुष्कृतैः = पापैः, इह = जगति, चिरम् = बहुकालम्, जीवितम् = जीवनम्' उपलप्स्यति =

---

ऐसे अर्जुन का अप्रिय करके जीवित रहेगा ?

धृतराष्ट्र—बेचारी [illegible]शला सच कह रही है । क्योंकि—

जो ( अभिमन्यु) कृष्ण की आठ भुजाओ की तकिया से युक्त उनकी गोदी में आज तक पल कर बडा हुआ, जो मत्त बलराम का, स्नेह [illegible] कारण दूसरा मद था और जो देवो के समान पराक्रमशाली पाण्डवो के स्नेह का भाजन

जयत्रात ! अथ तदवस्थं पुत्रं दृष्ट्वा किं प्रतिपन्नं तेन गाण्डीवधन्वना ।

भटः—महाराज ! किं मार्जुनसमीपे वृत्तमेतत् ।

धृतराष्ट्र —कथमर्जुनोऽपि नासीत् ।

भट —महाराज ! अथ किम् ?

धृतराष्ट्रः—कथमिदानीं वृत्तमेतत् ।

भटः—श्रूयताम् संशप्तकानीकनिवाहिते जनार्दनसहाये धनञ्जये स

---

प्राप्स्यति, न कोऽपीति भाव. । लभ्धातो. परस्मैपदस्य चिन्त्यम् । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरः पुन पृच्छति जयत्रातम्—अथेति । अथेति प्रश्नवाक्यारम्भे । तदवस्थम्—सा अवस्था यस्य स तदवस्थ तम्' निहतमिति भाव. प्रतिपन्नम् = अनुष्ठितम् । गाण्डीवधन्वना—गाण्डीव धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वा, तेन गाण्डीव धन्वना अर्जुनेन । समासे गाण्डीवधनुश्शब्दे सकारस्य 'धनुषश्च' (५।४।१३२) इत्यनङ् । टकार इत् । अकार उच्चारणार्थं । उकारस्य यण् ।

भट इति । अर्जुनसमीपे = अर्जुनस्य विद्यमानतायामित्यर्थः । एतत् = अभिमन्युनिधनम् । वृत्तम् = जातम् ।

कथमिदानीं वृत्तमेतदिति धृतराष्ट्रेण पृष्टो भट आह—श्रूयतामिति । जनार्दनसहाये = श्रीकृष्णे इत्यर्थ., धनञ्जये = अर्जुने, संशप्तकानीकनिवाहिते-संशप्तका. = त्रिगर्तराजपुत्रा सुशर्मादय, तेषामनीकं = सैन्यं. निवाहिते =

---

था, उसको मार कर इस संसार मे कौन अपने पापो के कारण चिर जीवन पायेगा ॥ ८ ॥

जयत्रात ! अच्छा, इस अवस्था वाले पुत्र को देख कर उस गाण्डीवधारी अर्जुन ने क्या किया ?

भट—महाराज ! क्या यह ( घटना ) अर्जुन के रहते हुए हुआ है ?

धृतराष्ट्र—क्यों, अर्जुन भी वहाँ नहीं थे ।

भट—महाराज ! और क्या ?

धृतराष्ट्र—तो सम्प्रति यह कैसे हुआ ?

भट—महाराज, सुनें । संशप्तको की सेनाओं द्वारा कृष्ण समेत अर्जुन के

बालभावाददृष्टदोषः संग्राममवतीर्णः कुमारोऽभिमन्युः।

धृतराष्ट्रः—हन्त युक्तरूपोऽस्य वधः। को हि संनिहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं शक्तः। अथ शेषाः पाण्डवाः किमनुतिष्ठन्ति।

भटः—महाराज! श्रूयताम्।

चितां न तावत्स्वयमस्य देहमारोपयन्त्यर्जुनदर्शनार्थम्।
तेषां च नामान्युपधारयन्ति यैस्तस्य गात्रे प्रहृतं नरेन्द्रैः॥ ९॥

---

सुदूरमपनीते (भावे सप्तमी)। बालभावात् = बाल्यात्, बालोचितचापल्यवशादिति यावत्। अदृष्टदोषः—न दृष्टः दोषः = हानिर्येन सः, संग्राममवतीर्णः = रणभूमिं प्रविष्टः।

धृतराष्ट्र इति। हन्तेति खेदे। युक्तरूपोऽस्य वधः—युक्तम् - सुव्यवस्थितम्, रूपम् = रीतिर्यस्य स तादृशः, अस्य अभिमन्योः, वधः = हननम्। तस्य स्थितौ सर्वथाऽभिमन्युवधस्य संभावनाऽऽसीदेवेति धृतराष्ट्रोक्त्याशयः। संनिहितशार्दूलाम्—संनिहितः = विद्यमानः, शार्दूलः = सिंहः यस्यां ताम्। धर्षयितुम् = प्रवेष्टुमित्यर्थः। शेषाः = अर्जुनाद् व्यतिरिक्ताः। अनुतिष्ठन्ति = कुर्वन्ति।

धृतराष्ट्रेण पृष्टो भटः पाण्डवानां क्रियां वर्णयति—चितां नेति। (युधिष्ठिरादयस्ते शेषाः पाण्डवाः) तावत् = प्रथमम्। अर्जुनदर्शनार्थम्—अर्जुनस्य दर्शनायेदमित्यर्जुनदर्शनार्थम्, आगत्यार्जुनः पुत्रशवं पश्यतु इत्युद्देश्येति भावः। अस्य = अभिमन्योः, देहम् = शरीरम्, शवमिति यावत्। चिताम्—मृतं दग्धुं सञ्चितकाष्ठराशिम्, स्वयम् = स्वकरैरिति भावः। न आरोपयन्ति = न स्थापयन्ति। यैः नरेन्द्रैः = नृपैः, तस्य = अभिमन्योः, गात्रे = शरीरे, प्रहृतम् = प्रहारः कृतः, तेषाम् = नृपाणाम्, नामानि = अभिधेयानि,

---

बहुत दूर ले जाये जाने पर वह कुमार अभिमन्यु बालक होने के कारण कोई हानि न देख कर संग्राम भूमि में उतर पड़ा।

धृतराष्ट्र—शोक। इसके वध का ढंग सुव्यवस्थित था (अर्थात् वध की सर्वथा संभावना थी)। कौन सिंह के रहते गुफा में प्रविष्ट हो सकता है? अच्छा, बाकी पाण्डव क्या कर रहे हैं?

भट—महाराज! सुना जाय—

अर्जुन (भी) देख ले, इसलिए (शेष पाण्डव) इस (अभिमन्यु) के शव

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! तदागम्यताम् । गङ्गाकूलमेव यास्यावः ।

गान्धारी—महाराअ ! णं तहिं गाहामो । [ महाराज ननु तत्र गाहावहे । ]

धृतराष्ट्रः—गान्धारि ! शृणु ।

अद्यैव दास्यामि जलं हतेभ्यः स्वेनापराधेन तवात्मजेभ्यः ।
न त्वस्मि शक्तः सलिलप्रदानैः कर्तुं नृपाणां शिबिरोपरोधम् ॥ १० ॥

( ततः प्रविशति दुर्योधनो दुश्शासनः शकुनिश्च । )

दुर्योधनः—वत्स दुश्शासन ।

---

तान् हन्तुमिति भाव । उपधारयन्ति = सचिन्तयन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रो गङ्गाकूलगमनहेतुं गान्धारी विज्ञापयति—अद्यैवेति । गान्धारि ! स्वेन = स्वकीयेन, अपराधेन = अभिमन्युवधात्मकेनेति भाव । हतेभ्य = हनिष्यमाणेभ्य इति भाव । तव = गान्धार्या, आत्मजेभ्य = पुत्रेभ्य ( सम्प्रदाने चतुर्थी ) । अद्यैव अस्मिन्नेव काले । जलम् = जलाञ्जलिं दास्यामि । सलिलप्रदानैः = जलाञ्जलिदानैः । तु = किन्तु, नृपाणाम् = राज्ञाम् शिबिरोपरोधम् = शिबिरे उपरोधः = अवरोध तम्, कर्तुं न शक्त अस्मि, एते स्वैर्दुष्कृत्यैरवश्यमेव मरिष्यन्ति तदेतानवरोद्धुमसमर्थोऽहं तेभ्यो जलाञ्जलिं दास्यामीति भाव. । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

---

को स्वयं चिता पर नहीं रख रहे हैं तथा जिन राजाओं ने उसके शरीर पर प्रहार किया है उनके नामों का सचिन्तन कर रहे हैं ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र—गान्धारी । तो आओ, हम ( दोनों ) गङ्गातट को ही चलें ।

गान्धारी—महाराज । हम ( दोनों ) वहाँ स्नान करेंगे ।

धृतराष्ट्र—गान्धारी ! सुनो—

अपने ही अपराध से मारे जाने वाले तुम्हारे पुत्रों को आज ही मैं जलाञ्जलि दूँगा किन्तु इस जलाञ्जलि-दान के द्वारा मैं राजाओं के शिबिर को ( युद्ध से ) रोक नहीं सकता ॥ १० ॥

( तदनन्तर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि प्रवेश करते हैं । )

दुर्योधन—वत्स दुःशासन !

यातोऽभिमन्युनिधनात् स्थिरता विरोध
प्राप्तो जयः प्रचलिता रिपवो निरस्ता. ।
उन्मूलितोऽस्य च मदो मधुसूदनस्य
लब्धो मयाऽद्य सममभ्युदयेन शब्द. ॥ ११ ॥

दुश्शासन —अहो नु खलु,
रुद्धा पाण्डुसुता जयद्रथबलेनाक्रम्य शत्रोर्बलं
सौभद्रे विनिपातिते शरशतक्षेपैर्द्वितीयेऽर्जुने ।

---

दुर्योधनोऽभिमन्युवधजनितप्रसन्नता दु शासन प्रति वर्णयति—यात इति । अभिमन्युनिधनात्—अभिमन्यो निधनम् = मरणम्, तस्मात् । विरोध द्वेष, स्थिरताम् = सुदृढत्वम्, यात = गत । जय प्राप्त – लब्ध । निरस्ता = पराजित', रिपव = शत्रव, प्रचलिता = प्रकम्पिता । अस्य = गर्वितस्येत्यर्थ, मधुसूदनस्य—मधुम् = तन्नामान दैत्य सूदयति नाशयतीति मधुसूदन = श्री कृष्ण, तस्य । मद = दर्प, उन्मूलित = उत्पाटित विनाशित इत्यर्थ. । मया= दुर्योधनेन, अभ्युदयेन समम् = उत्कर्षेण सह । शब्द = उपाधिः सम्राडित्येव-मिति भाव । अद्य = इदानीम् । लब्ध = प्राप्त । साम्प्रत सर्वाण्यभीष्टानि मे लब्धानि, न किंचिदवशिष्यत इति भाव । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ११ ॥

दुशासनोऽपि स्वपक्षोत्कर्ष व्यनक्ति—रुद्धा इति । जयद्रथबलेन—जयद्रथस्य बलेन = सैन्येन, शत्रो = विपक्षस्य, बलम् = सैन्यम् आक्रम्य = पराजित्य, पाण्डुसुता = अर्जुनादन्यनिरिक्ता युधिष्ठिरादयश्चत्वारोऽपि पाण्डवा, रुद्धा. = चक्रव्यूहप्रवेशान्निवारिता । द्वितीयेऽर्जुने = अर्जुनतुल्यपराक्रमशालिनि, सौभद्रे=

---

अभिमन्यु के निधन से ( हमारा और पाण्डवों का ) विरोध दृढ हो गया, ( शत्रुओं पर ) हमें विजय मिल गयी, पराजित शत्रु काँप उठे हैं ( घबरा गये हैं ), इस कृष्ण का दर्प विनष्ट हो गया तथा मैंने अभ्युदय के साथ-साथ ( सम्राट् की ) उपाधि ( भी ) प्राप्त कर ली ॥ ११ ॥

दु शासन—अहो ! निश्चय ही ।

जयद्रथ की सेना ने शत्रु सेना को आक्रान्त कर पाण्डवों को ( चक्रव्यूह में प्रवेश करने से ) रोक दिया तथा ( वीरता में ) द्वितीय अर्जुन ( उस ) सुभद्रा-

प्राप्तेश्च व्यसनानि भीष्मपतनादस्माभिरद्याहवे
तीव्राः शोकशराः कृताः खलु मनस्येषां सुतोत्सादनात् ॥१२॥

शकुनिः—

जयद्रथेनाद्य महत्कृतं रणे नृपैरसम्भावितमात्मपौरुषम्।
प्रसह्य तेषां यदनेन संयुगे समं सुतेनाप्रतिमं हृतं यशः ॥ १३ ॥

---

सुभद्रापुत्रेऽभिमन्यौ, शरशतभेदैः—शराणां शतानि तेषां क्षेपैः = आघातैः सम्पातितशराघातैरित्यर्थः। विनिपातिते = विनाशिते (भावे सप्तमी) भीष्मपतनात्—भीष्मस्य = पितामहस्य, पतनात् = विनाशात्, व्यसनानि = दुःखानि, प्राप्तैः = गतैः, अस्माभिः = कौरवैः, अद्य = अस्मिन् दिने, आहवे = संग्रामे, खलु = निश्चयेन, सुतोत्सादनात्—सुतस्य = अभिमन्योः, उत्सादनात् = हननात्, एषाम् = पाण्डवानाम्, मनसि = हृदये, तीव्राः, शोकशराः = शोका एव शराः = बाणाः, कृताः = गाढं निखाता इत्यर्थः। यैः पाण्डवैः पूर्वं पितामहं हत्वा वयं शोकाकुलीकृताः, सम्प्रति संग्रामे तत्पुत्रवधात्तेषां हृदये अस्माभिः शोकशल्यानि गाढं निखातानीति कृतार्थाः वयं जाता इति भावः। 'शोकशराः' इत्यत्र रूपकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १२ ॥

शकुनिरपि जयद्रथं प्रशंसन्नाह—जयद्रथेनेति। अद्य – अस्मिन् दिने, रणे = युद्धे, जयद्रथेन, नृपैः – अन्यैर्नृपतिभिरित्यर्थः, असम्भावितम् = अचिन्तितम्, महत् = विपुलम्, आत्मपौरुषम् = स्वपराक्रमः, कृतम् = प्रदर्शितम्, यत् = यस्मात्, अनेन = जयद्रथेन, संयुगे = रणे, प्रसह्य = बलात्, सुतेन समम् – पुत्रेणाभिमन्युना सह तेषाम् = पाण्डवानाम्, अप्रतिमम् = नास्ति प्रतिमा यस्य तत्, समन्ताद्विस्तृतमित्यर्थः। यशः – कीर्तिः, हृतम् = विनाशितम्। सहोक्तिरलङ्कारः।

---

पुत्र को सैकड़ों शरों के आघातों से मार दिये जाने पर, (पहले) भीष्मपितामह के मरण से दुःख पाये हुए हम लोगों ने आज संग्राम में इन (पाण्डवों) के पुत्र का वध कर देने से, इनके हृदय में तीखे शोकरूपी बाण धँसा दिये ॥१२॥

शकुनि—आज युद्ध में जयद्रथ ने अपना वह महान् पराक्रम प्रदर्शित किया, राजा लोग जिसकी कल्पना भी नहीं कर सके थे। क्योंकि इस (जयद्रथ)

दुर्योधनः—मातुल ! इतस्तावत् । दुश्शासन ! इतस्तावत् । तत्र-भवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

शकुनिः—वत्स दुर्योधन ! मा मैवम् ।

कामं न तस्य रुचितः कुलविग्रहोऽय-
मस्मांश्च गर्हयति स प्रियपाण्डवत्वात् ।
युद्धोत्थितैर्जयमवाप्य हि तुल्यरूप
एवं प्रहृष्टवदनैरभिगन्तुमेनम् ॥ १४ ॥

---

वंशस्थवृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।' इति ॥ १३ ॥

विजयलाभानन्तरं पूज्यं पितरं प्रणन्तुमुद्यतं दुर्योधनं निवारयति शकुनिः—काममिति । तस्य = धृतराष्ट्रस्य, अयम् = प्रवर्तमानः, कुलविग्रहः = वंशवैरम्, कामम् = यथेष्टम्, न रुचितः = न रोचते इत्यर्थः । स = धृतराष्ट्रः, प्रियपाण्डवत्वात्—प्रिया पाण्डवा युधिष्ठिरादयो यस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् पाण्डवेषु स्नेहाधिक्यादिति भावः । अस्मान् दुर्योधनादीन् च, गर्हयति = निन्दति । हि = निश्चयेन, जयम् अवाप्य = लब्ध्वा, एवम् = अनेन प्रकारेण, युद्धोत्थितैः-युद्धात् उत्थितैः = निवृत्तैः, प्रहृष्टवदनैः = प्रसन्नमुखैः, एनम् = धृतराष्ट्रम्, अभिगन्तुम् = प्रणामार्थंगमनम् । तुल्यरूपम् = युक्तम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् १४

---

ने युद्ध में उन ( पाण्डवों ) के पुत्र के साथ ही उनके अनुपम यश को भी बल पूर्वक छीन लिया ॥ १३ ॥

दुर्योधन—मामा ! इधर ( आओ ) । दुःशासन ! इधर ( आओ ) पूज्य पिता जी को हम सब प्रणाम करेंगे ।

शकुनि—वत्स दुर्योधन ! नहीं, ऐसा नहीं ।

उन्हें यह आपस का झगड़ा बिल्कुल पसन्द नहीं है । उन्हें पाण्डव अधिक प्रिय हैं, अतः वे हम लोगों की निन्दा किया करते हैं । इस लिए ( युद्ध में ) विजय प्राप्तकर, युद्ध से निवृत्त होकर प्रसन्न मुख हम लोगों का इनके पास अभिवादनार्थ जाना युक्त होगा ॥ १४ ॥

दुर्योधनः—मातुल ! मा मैवम् । यथा तथा भवतु । तत्रभवन्तं तातमभिवादयिष्यामः ।

उभौ—बाढम् । ( परिक्रामतः । )

दुर्योधनः—तात ! दुर्योधनोऽहमभिवादये ।

दुश्शासनः—तात ! दुश्शासनोऽहमभिवादये ।

शकुनिः—शकुनिरहमभिवादये ।

सर्वे—कथमाशोर्वचनं न प्रयुज्यते ।

धृतराष्ट्रः—पुत्र ! कथमाशीर्वचनमिति ।

सौभद्रे निहते बाले हृदये कृष्णपार्थयोः ।
जीविते निरपेक्षाणां कथमाशीः प्रयुज्यते ॥ १५ ॥

---

आशीर्वचनमप्रयुञ्जानो धृतराष्ट्रस्तत्र हेतुं प्रतिपादयति—सौभद्र इति । कृष्णपार्थयोः - कृष्णश्च पार्थश्च इति कृष्णपार्थौ तयोः = कृष्णार्जुनयोः, हृदये= हृदयस्वरूपे, परमप्रिये इति भावः, बाले=बालके, सौभद्रे=सुभद्रापुत्रे अभिमन्यौ, निहते = मारिते ( भावे सप्तमी ) । जीविते = जीवने, निरपेक्षाणाम् = उदासीनानाम्, कथम्=केन प्रकारेण, आशीः प्रयुज्यते = आशीर्वचनं प्रयोक्तुं शक्यते । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

---

दुर्योधन—मामा ! नही ऐसा नही । जो कुछ भी हो । पूज्य पिता जी को हम सब प्रणाम करेंगे ।

दोनो ( शकुनि और दुःशासन )—बहुत ठीक । ( घूमते हैं ) ।

दुर्योधन—पिता जी ! मैं दुर्योधन अभिवादन करता हूँ ।

दुःशासन—पिता जी ! मैं दुःशासन अभिवादन करता हूँ ।

शकुनि—मैं शकुनि अभिवादन करता हूँ ।

सब—क्यो आशीर्वाद नही दिया जा रहा है ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, आशीर्वाद कैसे दूँ ?

कृष्ण और अर्जुन के हृदयरूप, बालक अभिमन्यु के मारे जाने पर तुम सब जीवन के प्रति उदासीन हो चुके हो, अतः तुम लोगो को कैसे आशीर्वाद दिया जाय ॥ १५ ॥

दुर्योधन —अये,

> भूमिकम्प सशब्दोऽय कुतो नु सहसोत्थितः ।
> उल्काभिश्च पतन्तीभि· प्रज्वालितमिवाम्बरम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र —पुत्र ! एव मन्ये,

> सुव्यक्त निहितं दृष्ट्वा पौत्रमायस्तचेतस ।
> उल्कारूपाः पतन्त्येने महेन्द्रस्याश्रुबिन्दव· ॥ २६ ॥

---

दुर्योधन सहसोत्पात पश्यन् साश्चर्यं प्राह—भूमिकम्प इति । अयम् = दृश्यमान, सशब्द —शब्देन सहित, भूमिकम्पः = भूकम्प, सहसा = अकस्मात्, कुत = कस्मात्, नु इति वितर्के, उत्थित = प्रादुर्भूतः । पतन्तीभि = आकाशात् पतनशीलाभि, उल्काभि = आकाशस्थदाहकतत्त्वै, अम्बरम् = आकाशम्, प्रज्वालितम् = प्रज्वलितमिव कृतमित्यर्थ । उत्प्रेक्षाऽलङ्कार । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उत्प्रेक्षते तदुल्काविषये—सुव्यक्तमिति । पौत्रम् = अभिमन्युम्, सुव्यक्तम् = सुस्पष्ट यथा तथा, निहतम् = मृतमित्यर्थः, दृष्ट्वा = विलोक्य, आयस्तचेतस — आयस्तम् = दु खितम्, चेत हृदय यस्य तथोक्तस्य, पीडितहृदयस्येत्यर्थं, महेन्द्रस्य = सुराधिपस्येन्द्रस्य, एते = दृश्यमाना, उल्कारूपा, अश्रुबिन्दव, पतन्ति = आकाशाद् भूमिम् आपतन्ति । अत्रोल्कापातस्य महेन्द्राश्रुबिन्दुपातत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कार । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥२६॥

---

दुर्योधन —अरे !

यह सहसा ( भयानक ) शब्द के साथ भूकम्प कैसे हो रहा है ? ( आकाश से टूट कर ) गिरती हुई उल्काओ से आकाश प्रज्वलित-सा कर दिया गया है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र—पुत्र ! ऐसा समझता हूँ—

सुस्पष्ट ( अपने ) पौत्र ( अभिमन्यु ) को मारा गया देख कर दुखित-हृदय इन्द्र के ये अश्रुबिन्दु उल्कारूप मे गिर रहे हैं ॥ २६ ॥

दुर्योधनः—जयत्रात ! गच्छ, पाण्डवशिविरे शङ्खपटहसिंहनादरवा-न्मिश्रः किंकृतोऽयं शब्द इति ज्ञायताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति । (निष्क्रम्य प्रविश्य ।) जयतु महाराज । संशप्तकानीकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन धनञ्जयेन निहतं पुत्रमङ्कस्थमश्रुभिः परिषिच्य जनार्दनावभर्त्सितेन प्रतिज्ञातं किलानेन ।

दुर्योधन.—किमिति किमिति !

भटः—

तस्यैव व्यवसायतुष्टहृदयैस्तद्विक्रमोत्साहिभि-

---

दुर्योधन इति । शङ्खपटहसिंहनादरवोन्मिश्रः—शङ्खा, पटहा = भेर्यः, सिंहनादाः = वीराणां गर्जितानि च, तेषां रवैः = शब्दैः, उन्मिश्रः = सम्मिलितः, प्रवृद्धिं गत इत्यर्थः ।

भट इति—संशप्तकानीकनिवाहितप्रतिनिवृत्तेन – संशप्तकानाम् अनीकैः = सैन्यैः (आदौ) निवाहितः = दूरापनीतः (पश्चात्) प्रतिनिवृत्तः, = प्रत्यागतः तेन । धनञ्जयेन=अर्जुनेन । निहतम् = घातितम् । अश्रुभिः परिषिच्य = बाष्पैरार्द्रितं कृत्वा । जनार्दनेन = श्रीकृष्णेन अवभर्त्सितः = निन्दितः तेन जनार्दनावभर्त्सितेन । प्रतिज्ञातम् = प्रतिज्ञा कृता । किलेति वार्तायाम् ।

भटो ज्ञातं भूकम्पादिहेतुं दुर्योधनाय निवेदयति—तस्यैवेति । तस्यैव = अर्जुनस्यैव, व्यवसायतुष्टहृदयैः—व्यवसायेन = उद्योगेन, प्रतिज्ञयेत्यर्थः,

---

दुर्योधन—हे जयत्रात ! जाओ, पाण्डवों के शिविर में शङ्ख, भेरी और सिंहनाद के शब्द से मिश्रित यह शब्द क्यों हो रहा है, मालूम करो ।

भट—जो आज्ञा । ( जाकर, प्रवेश कर ) महाराज की जय हो । संशप्तकों की सेनाओं द्वारा दूर ले जाये जाने के बाद लौट कर इस अर्जुन ने मारे गये पुत्र को गोद में रख कर, आँसुओं से उसे आर्द्र कर कृष्ण के द्वारा निर्भर्त्सित ( प्रेरित ) होकर प्रतिज्ञा की है ।

दुर्योधन—क्या ! क्या !

भट—उस ( अर्जुन ) की प्रतिज्ञा से सन्तुष्ट हृदय, उसके पराक्रम से उत्साहसम्पन्न, प्रसन्नमुख राजाओं ने अपनी जीत निश्चित समझकर हर्षातिरेक

स्तुष्टास्यैर्जितमित्यवेक्ष्य सहसा नाद प्रहर्षात्कृत.।
आक्रान्ता गुरुभिर्धराधरवरै संक्षोभितै पार्थिवै-
भूमिश्चागतसभ्रमेव युवतिस्तस्मिन् क्षणे कम्पिता ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र —

प्रतिज्ञासारमात्रेण कम्पितेय वसुन्धरा ।

---

तुष्टानि = प्रसाद गतानि हृदयानि = चेतासि येषा तादृशै । तद्विक्रमोत्साहिभि तस्य = अर्जुनस्य, विक्रमेण = पराक्रमेण, उत्साहिभि = उत्साहसम्पन्नै (उत्साहशब्दात् 'अत इनिठनौ इति मत्वर्थ इनि )। तुष्टास्यै = तुष्टानि = प्रसन्नानि आस्यानि = मुखानि येषा ते तुष्टास्यास्तै । जितम् = अस्माभि = पराजित कौरवकुलमिति अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, निश्चित्येत्यर्थ, सहसा = झटिति, प्रहर्षात् = आनन्दातिरेकात् नाद कृत = गर्जित कृतम् । गुरुभि = महद्भि धराधरवरै = पर्वतश्रेष्ठै, सक्षोभितै = सरब्धै, समुत्तेजितै, पार्थिवै = नृपै, आक्रान्ता = अधिष्ठिता, पक्ष स्वायत्तीकृता, आगतसम्भ्रमा-आगत = प्राप्त, सम्भ्रम = आतङ्क यस्यास्तादृशी । युवतिरिव = अङ्गनेव । भूमि = पृथ्वी । तस्मिन् क्षणे = तस्मिन् काले, कम्पिता = सजातकम्पाऽभवत् । महद्भि पर्वतसदृशै सक्षुब्धैर्नृपतिभिरधिष्ठिता पृथ्वी स्वायत्तीकृता तरुणीवाकम्पतेत्यर्थ । भूकम्पस्य नादस्यापि चेदमेव कारणमिति भाव । 'आगतसभ्रमेव युवतिरित्यत्रोपमालङ्कार । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि भटोक्ति निशम्य भविष्यदनर्थं प्रतिपादयति—प्रतिज्ञासारेति । प्रतिज्ञासारमात्रेण—प्रतिज्ञाया सार = दार्ढ्यम्, तन्मात्रेण, इयम् वसुन्धरा = पृथिवी । कम्पिता = अकम्पत । धनुषि = गाण्डीवे, स्पृष्टे = गृहीते, त्रैलोक्यम् = त्रिलोकी । विचलिष्यति = कम्पिष्यते । यस्यार्जुनस्य प्रतिज्ञाबलेनैव धरा

---

से सहसा सिंहनाद किया । महान् पर्वतो के समान उन सक्षुब्ध राजाओ से अधिष्ठित ( आक्रान्त ) पृथिवी, गृहीत ( आक्रान्त ) अतएव घबडायी हुई युवती के समान कॉंप उठी ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र—प्रतिज्ञा के प्रताप से ही पृथ्वी कॉंप उठी । ( गाण्डीव ) धनुष

सुव्यक्तं धनुषि स्पृष्टे त्रैलोक्यं विचलिष्यति ॥ २८ ॥

दुर्योधनः — जयद्रथ ! किमनेन प्रतिज्ञातम् ।

भटः —

येन मे निहतः पुत्रस्तुष्टिं ये च हते गताः ।
इव सूर्येऽस्तमसम्प्राप्ते निहनिष्यामि तानहम् ॥ २९ ॥ इति ।

दुर्योधनः —प्रतिज्ञाव्याघाते किं प्रायश्चित्तम् ।

भटः —चितारोहणं किल गाण्डीवेन सह ।

---

कम्पितः स यदा गाण्डीवमादाय युद्धाद्यतो भविष्यति तदा तु त्रैलोक्यमेव कम्पिष्यत इति सुस्पष्टं प्रतीयत इति धृतराष्ट्राकूताशयः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥२८॥

भटो दुर्योधनेन पृष्टः सन्नर्जुनस्य प्रतिज्ञां स विज्ञापयति–येनेति । येन = वीरेण, मे = मम, अर्जुनस्येत्यर्थः, पुत्रः = सुतः, अभिमन्युरित्यर्थः, निहतः = मारितः, ये च = वीराः, (तस्मिन्) हते = मारिते (भावे सप्तमी), तुष्टिम् = प्रसन्नताम्, गताः = याताः । तान् = शत्रून्, श्वः = आगामिनि दिवसे, सूर्येऽस्तमसम्प्राप्ते सूर्यस्यास्ताचलगमनात्पूर्वमेवेत्यर्थः, अहम् = अर्जुनः निहनिष्यामि = मारयिष्यामि । इत्यर्जुनेन कृता प्रतिज्ञेति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २९ ॥

दुर्योधन इति । प्रतिज्ञाव्याघाते–प्रतिज्ञायाम् व्याघातः = विघ्नः, तस्मिन् (भावे सप्तमी) अपूर्णायां प्रतिज्ञायां सत्यामित्यर्थः । प्रायश्चित्तम्–प्रायस्य = पापस्य, चित्तम् = विशोधनं यस्मात्तम् । (निपातनात् सुडागमः) पापनिष्कृतिरित्यर्थः । ('प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते' इति हेमाद्रिः) ।

भटः —गाण्डीवेन सह–करेण गाण्डीवं धनुर्गृहीत्वेत्यर्थः । ('सहयुक्तेऽप्रधाने'

---

उठाने पर तीनों लोक डगमगा जायेगा—यह सुस्पष्ट है ॥ २८ ॥

दुर्योधन – हे जयद्रथ ! इस (अर्जुन) ने क्या प्रतिज्ञा की है ?

भट—जिसने मेरे पुत्र को मारा है और मारे जाने पर जो लोग प्रसन्न हुए हैं उन सबको मैं कल सूर्यास्त के पूर्व ही मार डालूँगा—ऐसी (प्रतिज्ञा की है) ॥ २९ ॥

दुर्योधन—प्रतिज्ञा पूरी न होने पर कौन सा प्रायश्चित्त करेगा ?

भट—निश्चय गाण्डीव धनुष के साथ चिता पर चढ़ना ।

प्रयामि सौभद्रविनाशचोदितः दिदृक्षुरद्यारिमनार्यचेतसम् ।
विचिन्तयंश्चक्रधरस्य शासनं यथा गजेन्द्रोऽङ्कुशशङ्कितो बलिम् ॥३३॥

( अधो विलोक्य ) इदमस्योपस्थानगृहद्वारम् । यावदवतरामि । ( अवतीर्य ) आत्मनैवात्मानं निवेदयिष्ये । भोः ।

---

घटोत्कचः स्वाऽऽगमनप्रयोजनं कथयति—प्रयामि सौभद्रेति । सौभद्रविनाशचोदित —सुभद्राया अपत्य पुमान् सौभद्रः = अभिमन्युः, तस्य विनाशः = निहनम्, तेन चोदितः = प्रेरित, अहम् = घटोत्कच इत्यर्थः । अद्य = इदानीम्, अनार्यचेतसम्—न आर्यमिति अनार्यम् = निकृष्टम्, चेतः = हृदयं यस्य तम् , दुराशयमित्यर्थः । अरिम् शत्रुम् , दिदृक्षुः = द्रष्टुमिच्छु ( सन्नन्ताद् दृश्धातो 'सनाशंसभिक्ष उ' इति कर्तरि उ प्रत्यय, 'न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थतृनाम्' इति षष्ठी निषेधे 'अरिमि'त्यत्र कर्मणि द्वितीयैव । ) यथा = येन प्रकारेण गजेन्द्र = हस्तिश्रेष्ठ, अङ्कुशशङ्कितः—अङ्कुश = भल्ली, तस्माद् शङ्कितः = सशङ्क, बलिम् = आहारम्, ( तथा ) चक्रधरस्य—धरतीति धरः, चक्रस्य धरः इति चक्रधर = श्रीकृष्णः, तस्य शासनम् = आज्ञाम्, विचिन्तयन् = विचारयन्, प्रयामि = गच्छामि । यथा कश्चिद् गजेन्द्रोऽङ्कुशात् सशंकः स्वाहारं ग्रहीतुं प्रयाति तथैवाहमपि श्रीकृष्णाज्ञया शत्रुं द्रष्टुं गच्छामीत्यर्थः । उपमाऽलंकारः । वंशस्थं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।' इति ॥ ३३ ॥

इदमस्येति । इदम् = पुरोवर्ति । अस्य शत्रोः, दुर्योधनस्य । उपस्थानगृहद्वारम्—उपस्थानगृहम् = सभाभवनम्, तस्य द्वारम् । आत्मनैव = स्वयम्, आत्मानं निवेदयिष्ये=स्वपरिचयं दास्यामि ।

---

मैं सुभद्रा के पुत्र ( अभिमन्यु ) के संहार से प्रेरित होकर, चक्रधर कृष्ण की आज्ञा को सोचता हुआ, दुष्टहृदय शत्रु को देखने की इच्छा से जा रहा हूँ, जैसे अङ्कुश से सशङ्क गजराज अपना) दैनिक आहार लेने जाता है ॥ ३३ ॥

( नीचे देखकर ) यह सभागृह का द्वार है । तो उतरता हूँ । ( उतर कर ) स्वयं ही अपना परिचय दूँगा । अजी,

हैडिम्बोऽस्मि घटोत्कचो यदुपतेर्वाक्यं गृहीत्वा गतो
द्रष्टव्योऽत्र मया गुरुः स्वचरितैर्दोषेर्गतः शत्रुताम् ।

दुर्योधन —

एह्येहि प्रविशस्व शत्रुभवनं कौतूहलं मे महत् ।
धृष्टं श्रावय मां जनार्दनवचो दुर्योधनोऽहं स्थितः ॥३४॥

घटोत्कच —( प्रविश्य ) अये अयमत्रभवान् धृतराष्ट्रः । अनार्यशत-

---

घटोत्कचः स्वयमेव स्वपरिचयं ददाति—हैडिम्बोऽस्मीति । यदुपतेः = श्रीकृष्णस्य, वाक्यम् = वचनम्, सन्देशमित्यर्थः, गृहीत्वा, आगतः = सम्प्राप्तः, हैडिम्बः = हिडिम्बा तन्नाम्नी राक्षसकुलोत्पन्ना स्त्री, तस्याः, अपत्यं पुमान् हैडिम्बः (अपत्यार्थेऽण्) = हिडिम्बापुत्रः, घटोत्कचः = तन्नामा, अस्मि । स्वचरितैः —स्वेन आत्मना चरितैः = कृतैः, दोषैः = अपराधैः, शत्रुतां गतः = शत्रुभावं प्राप्तः, गुरुः = श्रेष्ठः, ( 'गुरुस्तु गीष्पती श्रेष्ठे' इत्यमरः ) मया = घटोत्कचेन, अत्र, द्रष्टव्यः = दर्शनीयः ।

तच्छ्रुत्वा दुर्योधनः प्राह —एह्येहीति । एहि = आगच्छ । शत्रुभवनम् = रिपुगृहम्, प्रविशस्व = प्रवेशं कुरु ( आत्मनेपद—प्रयोगश्चिन्त्यः, पाणिनीयव्याकरणे तादृशविधानाभावात् । ) मे = मम, दुर्योधनस्येत्यर्थः । महत् = परमम्, कौतूहलम् = औत्सुक्यम् ( वर्तते ) । धृष्टम् = निर्भयं यथा स्यात्तथा, जनार्दनवचः —जनार्दनस्य = श्रीकृष्णस्य वचः = वचनम्, सन्देशमिति यावत् । माम् = दुर्योधनम्, श्रावय = कर्णगोचरीकुरु । अहं दुर्योधनः, स्थितः, श्रोतुमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

घटोत्कचो धृतराष्ट्रं पश्यन् साश्चर्यमाह—अये अयमिति । अये = आश्चर्यसूचकमव्ययपदम् । अयम् = पुरतो दृश्यमानः, अत्रभवान् = पूज्यः । अनार्य-

---

श्री कृष्ण के वाक्य ( सन्देश ) को ग्रहण करके आया हुआ मैं हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच हूँ । मुझे यहाँ अपने ही किये अपराधों के कारण शत्रु बने हुए गुरुजनों से मिलना है !

दुर्योधन—आओ, आओ । शत्रु के गृह में प्रवेश करो, मुझे बड़ी उत्सुकता है, निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्ण का वचन (सन्देश) मुझे सुनाओ, मैं दुर्योधन ( सुनने को ) स्थित हूँ ॥ ३४ ॥

घटोत्कच—( प्रवेश कर ) अहो ! यह पूज्य धृतराष्ट्र हैं, सौ अधम पुत्रों

स्योत्पादयिता। अयं ननु ललितगम्भीराकृतिविशेषः। आश्चर्यमाश्चर्यम्।

वृद्धोऽप्यनाततवलीगुरुसंहतासः
श्रद्धेयरूप इव पुत्रशतस्य धृत्या।
मन्ये सुरैस्त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै-
स्त्रासान्निमीलितमुखोऽत्रभवान् हि सृष्टः॥ ३५॥

घतस्य—अनार्याणाम् = दुष्टानां शतम्, शतसंख्याकानां दुर्योधनादिदुष्टाना मित्यर्थः। उत्पादयिता = जनक। नन्विति निश्चये। ललितगम्भीराकृति-विशेष—ललित = सुन्दर, गम्भीर = सयत आकृतिविशेष यस्य स।

घटोत्कचो धृतराष्ट्रं वर्णयति—वृद्ध इति। वृद्ध = जरठ, अपि, अनातत-वलीगुरुसहतास—न आतता = विस्तारिता, अनुद्भूतेत्यर्थं, वली (सिकुडन, झुर्री इति भाषायाम) तया गुरु = मासलाविरर्थं, संहतौ – मिलितौ असौ= स्कन्धौ यस्य स तथाविध। पुत्रशतस्य = शतसङ्ख्याकाना पुत्राणामित्यर्थ, धृत्या = धारणेन, श्रद्धेयरूप इव—श्रद्धातु योग्य श्रद्धेय, तादृश रूप यस्य स तथोक्त। त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै—त्रिदिवम् = स्वर्गं, ('स्वरव्यय स्वर्ग नाक-त्रिदिव त्रिदशालया' इत्यमर) तस्य रक्षणे पालने जाता = उत्पन्ना, शङ्का = सन्देहो येषा तं, धृतराष्ट्र कदाचित्स्वर्गं स्वायत्तीकुर्यादिति जातसन्देहैरि-त्यथ, त्रासात् = भयात्, निमीलितमुख — निमीलितम् – मुद्रितनेत्रयुक्तमित्यर्थं, मुखम् = आनन यस्य स तथाविध अन्ध इत्यर्थः। हि=निश्चयेन, अत्रभवान् = पूज्य, धृतराष्ट्र, सृष्ट = रचित इति मन्ये = सभावयामि। कदाचिदय धृतराष्ट्र स्वर्गं स्वायत्तीकुर्यादिति भीतेषु देवेषु ब्रह्मणा धृतराष्ट्रोऽन्ध सृष्ट इति भाव। उत्प्रेक्षालङ्कार। वसन्ततिलक वृत्तम्॥ ३५॥

---

क जनक। निश्चय ही इनकी सुन्दर, गम्भीर आकृति बड़ी विशिष्ट है। बड़ा आश्चर्य है।

वृद्ध है, फिर भी झुर्रियाँ नही पडी हैं अतएव इनके कन्धे पर मासल और सुपुष्ट हैं। सौ पुत्रो के रखने से ये श्रद्धेय रूप हैं। मालूम होता है कि निश्चय हा स्वर्गलोक को रक्षा मे देवताओ को शङ्का हो गयी थी, अतएव (ब्रह्मा ने) इन पूज्य (धृतराष्ट्र) को अन्धा हो बनाया॥ ३५॥

( उपसृत्य ) पितामह ! अभिवादये घटोत्क--( इत्यर्धोक्ते ) न न अयमक्रमः । युधिष्ठिरादयश्च मे गुरवो भवन्तमभिवादयन्ति । पश्चाद्घटोत्कचोऽहमभिवादये ।

धृतराष्ट्रः—एह्येहि पुत्र !

न ते प्रियं दुःखमिदं ममापि
यद् भ्रातृनाशाद् व्यथितस्तवात्मा ।
इत्थं च ते नानुगतोऽयमर्थो
मत्पुत्रदोषात् कृपणीकृतोऽस्मि ॥ ३६ ॥

---

धृतराष्ट्रो घटोत्कचं सान्त्वयन्नाह—न ते प्रियमिति । यत्, भ्रातृनाशात्—भ्रातु = अभिमन्यो नाशात् = वधात् । तव = घटोत्कचस्य, आत्मा = हृदयम्, व्यथितः = दुःखितः, ते = तव, इदम् = भ्रातृनाशजनितम्, दुःखम् = सन्तापः, मम = धृतराष्ट्रस्यापि न प्रियम् = प्रीतिकरम्, त्वमिवाहमपि दुःखमनुभवामीति भावः । इत्थम् = अनेन प्रकारेण च, अयम् = वक्ष्यमाण इत्यर्थः, अर्थः = आशयः, ते = तव ( कृद्योगे कर्तरि षष्ठी ) न अनुगतः = न ज्ञातः । मत्पुत्रदोषात्—मम = धृतराष्ट्रस्य य पुत्रः = दुर्योधनः, तस्य दोषात् = तत्कृतापराधात्, कृपणीकृतोऽस्मि—अकृपणः कृपणः कृतः इति कृपणीकृतः ( अभूततद्भावे च्विः )=कदर्थीकृतोऽस्मि, दयनीयां दशां प्रापितोऽस्मीति भावः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३६ ॥

---

( समीप जाकर ) पितामह ( बाबा जी ) ! 'अभिवादन करता हूँ मैं घटोत्क···' ( ऐसा आधा वाक्य कहने पर ) नहीं नहीं, यह क्रम रहित है। युधिष्ठिर आदि मेरे गुरुजन आपको अभिवादन कर रहे हैं, तत्पश्चात् मैं घटोत्कच अभिवादन करता हूँ।

धृतराष्ट्र—आओ आओ पुत्र !

जो भाई ( अभिमन्यु ) के मारे जाने से तुम्हारी आत्मा व्यथित है, यह तुम्हारा दुःख मुझे भी प्रिय नहीं है। और इस प्रकार तुम इस बात को नहीं समझते, मैं अपने पुत्रों के अपराध से कदर्थित ( दयनीय दशा को प्राप्त ) कर दिया गया हूँ ॥ ३६ ॥

घटोत्कच.—अहो कल्याण. खल्वत्रभवान् । कल्याणानां प्रसूतिं पितामहमाह भगवांश्चक्रायुधः।

धृतराष्ट्रः (आसनादुत्थाय।) किमाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुधः।

घटोत्कचः—न न न। आसनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो जनार्दनस्य सन्देशः।

धृतराष्ट्र.—यदाज्ञापयति भगवांश्चक्रायुध (उपविशति।)

घटोत्कच.—पितामह! श्रूयताम्। हा वत्स अभिमन्यो! हा वत्स कुरुकुलप्रदीप। हा वत्स यदुकुलप्रवाल! तव जननीं मातुलं च मामपि परित्यज्य पितामहं द्रष्टुमाशया स्वर्गमभिगतोऽसि। पितामह! एकपुत्रविनाशादजुनस्य तावदादृशो खल्ववस्था, का पुनर्भवतो भविष्यति।

---

घटोत्कच इति। अहो विस्मयादिबोधकमव्ययपदम्। कल्याण = सौभाग्यशाली। खलु = निश्चयेन। कल्याणानाम् = शुभानाम्। प्रसूतिम् = जनकम्, उत्पादयितारम्। पितामहम् = पितु पितरम्, धृतराष्ट्रमित्यर्थं, चक्रायुध = चक्रम् आयुध यस्य स, श्रीकृष्ण इत्यर्थः। आत्मबलाधानम् स्वसैन्य

---

घटोत्कच – अहा, निश्चय ही आप बड़े सौभाग्यशाली है। कल्याणो के जनक आप पितामह से भगवान् चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) ने कहा है।

धृतराष्ट्र (आसन से उठकर) भगवान् चक्रपाणि की क्या आज्ञा है?

घटोत्कच—नही, नही, नही। आप आसन पर बैठे ही श्रीकृष्ण का सन्देश सुने।

धृतराष्ट्र भगवान् चक्रपाणि की जो आज्ञा।

घटोत्कच—पितामह! सुनिए। हाय वत्स अभिमन्यु! हाय कुरुवंश के दीपक! हाय वत्स यदुकुल के अङ्कुर! तुम अपनी माता मामा और मुझ (पिता) को भी छोडकर पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आशा से स्वर्गलोक को चले गये। हे पितामह! एक पुत्र के विनष्ट हो जाने से तो अर्जुन की यह अवस्था हुई है, फिर (सौ पुत्रो के विनष्ट होने पर) आप की क्या अवस्था होगी (सोचिए)। तो शीघ्र अब आप अपनी सेनाओ को लौटा ले, ताकि पुत्रशोक से उठी आग तुम्हारे प्राण रूप हवि को न जलाये।

ततः क्षिप्रमिदानीमात्मश्लाघानं कुरुष्व। यथा ते पुत्रशोकसमुत्थितोऽग्निर्न दहेत् प्राणमयं हविरिति।

धृतराष्ट्रः—

सक्रोधव्यवसायेन कृष्णेनैतदुदाहृतम्।
पश्यामीव हि गाण्डीवी सर्वक्षत्रवधे धृतः ॥३७॥

सर्वे—अहो हास्यमभिधानम्।

घटोत्कचः—किमेतद्धास्यते।

दुर्योधनः—एतद्धास्यते—

---

प्रत्यावर्तनम्। पुत्रशोकसमुत्थित—पुत्रमरणजन्यशोकसमुद्भूत। प्राणमयम् = प्राणात्मकम्।

श्रीकृष्णसन्देशं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो घटोत्कचमाह—सक्रोधेति। सक्रोधव्यवसायेन—क्रोधेन सहितः सक्रोधः, तादृशो व्यवसाय उद्योगो यस्य तेन। कृष्णेन = वासुदेवेन, एतत् = वचः, उदाहृतम् = कथितम्। हि = यत। गाण्डीवी—गाण्डीवं धनुरस्यस्येति गाण्डीवी ('अत इनिठनौ' इति इनिः)—अर्जुन। सर्वक्षत्रवधे—सर्वेषां क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणां वधे = विनाशे, धृतः = नियुक्तः श्रीकृष्णेनेति भाव। इति पश्यामि = अवगच्छामीवेत्यर्थः। उत्प्रेक्षालंकारः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ३७॥

सर्वे इति। अभिधानम् = कथनम्, श्रीकृष्णस्येति भाव। हास्यम् = हसनीयम्।

---

धृतराष्ट्र—क्रोध के आवेश मे सचेष्ट होकर ऐसा श्रीकृष्ण ने कहा है, मैं तो प्रत्यक्ष देख सा रहा हूँ कि (उनके द्वारा) गाण्डीवधारी अर्जुन समस्त क्षत्रियो के विनाश मे नियुक्त कर दिया गया है॥ ३७॥

सब लोग—अहा, कैसा हास्यास्पद सन्देश है।

घटोत्कच—इसमे हँसने की क्या बात है?

दुर्योधन—हँसने की यह बात है—

देवैर्मन्त्रयते सार्धं स कृष्णो जातमत्सरः ।
पार्थेनैकेन यो वेत्ति निहतं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥

घटोत्कच —

हससि त्वमहं वक्ता प्रेषितश्चक्रपाणिना ।
श्रावितं पार्थकर्मेदमहो युक्तं तवैव तु ॥ ३९ ॥

अपि च, भवतापि श्रोतव्यो जनार्दनसन्देशः ।

दुश्शासनः—मा तावत् भोः ! क्षत्रियावमानिन् !

---

दुर्योधनः श्रीकृष्णसन्देशस्य हास्यत्वमुपपादयति—देवैरिति । जातमत्सरः—जातः = उत्पन्नः मत्सरः = ईर्ष्या यस्य स तथोक्तः । सः = प्रसिद्धः, कृष्णः = वासुदेवः, देवैः सार्धम् = सुरैः सह, मन्त्रयते = मन्त्रणां करोति । यः = कृष्णः, एकेन अद्वितीयेन, पार्थेन = अर्जुनेन, राजमण्डलम् = नृपसमूहम्, निहतम् = विनाशितम्, वेत्ति = जानाति । तद्वाक्यमेव तत्कथनमिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥

घटोत्कचो दुर्योधनं निन्दति—हससीति । त्वम् = दुर्योधनः, हससि = हास्यं करोषि, अहम् = घटोत्कचः, वक्ता = सन्देशवाहकः, चक्रपाणिना—चक्रं पाणौ यस्य स चक्रपाणिः श्रीकृष्णः तेन, प्रेषितः = प्रहितः, पार्थकर्म—पार्थस्य = अर्जुनस्य कर्म = कृत्यम्, श्रावितम् कर्णगोचरीकृतम्, अहो ! इदम् = एतादृशं कर्म, सन्देशं श्रुत्वा हसनमित्यर्थः । तवैव = तव दुर्योधनस्यैव तु युक्तम् = उचितम् । त्वदतिरिक्तो नान्यः कश्चिदेव कर्तुं समर्थः, मूढस्त्वं श्रीकृष्णसन्देशं तिरस्करोषीति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३९ ॥

---

वह कृष्ण देवताओं के साथ मन्त्रणा किया करता है ( अब देवताओं की सङ्गति से ) वह ईर्ष्यालु हो गया है जो केवल एक अर्जुन के द्वारा समस्त राज-समुदाय को मारा गया समझता है ॥ ३८ ॥

घटोत्कच—चक्रपाणि भगवान् कृष्ण के द्वारा भेजा हुआ मैं सन्देश कह रहा हूँ और तुम मखौल कर रहे हो । मैं पार्थ का कर्म सुना चुका । अहो, यह ( हंसी उड़ाना ) तुम ( मूढ ) को उचित ही है ॥ ३९ ॥

और भी, आप भी श्रीकृष्ण का सन्देश सुन लें ।

दुःशासन—अजी, ऐसा नहीं ! हे क्षत्रियों का अपमान करने वाले !

पृथिव्या शासनं यस्य धार्यते सर्वपार्थिवैः ।
सन्देशं श्रोष्यतेऽप्यन्यो न राज्ञस्तस्य सन्निधौ ॥ ४० ॥

घटोत्कच —कथं दुश्शासनो व्याहरति अरे दुश्शासन । अराजा नाम भवता चक्रायुधः । हं भो !

मुक्ता येन यदा पुरा नृपतयः प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया
येनार्घ्यं नृपमण्डलस्य मिषतो भीष्माग्रहस्ताद्धृतम् ।

---

दुःशासनो घटोत्कचं निवारयति—पृथिव्यामिति । पृथिव्याम् भुवि, यस्य दुर्योधनस्य, शासनम् = आदेशम्, सर्वपार्थिवैः —सर्वे च ते पार्थिवाः तैः, समस्तभूपतिभिः, धार्यते = शिरसा गृह्यते, पाल्यत इत्यर्थः । अपि=फलत इत्यर्थः । तस्य राज्ञः दुर्योधनस्य, सन्निधौ = उपस्थितौ, अन्यः नृपसन्देशभिन्न इत्यर्थः, सन्देशः, न श्रोष्यते—न वर्णगोचरीकरिष्यते । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥४०॥

घटोत्कच इति । व्याहरति = ब्रवीति । चक्रायुधः = श्रीकृष्णः । हमिति क्रोधद्योतकमव्ययम् ।

घटोत्कचः स क्रोधं श्रीकृष्णस्य राजश्रेष्ठत्वमुपपादयति—मुक्ता येनेति । पुरा = पूर्वकाले, यदा = यस्मिन् समये, प्रभ्रष्टमानोच्छ्रया = प्रभ्रष्टः = विनष्टः, मानस्य = सम्मानस्य उच्छ्रयः - विकासः इत्यर्थः, येषां तादृशाः, नृपतयः = राजानः, जरासन्धकारागारे बद्धा आसन् इति शेषः । (तदा) येन = श्रीकृष्णेन (तदवस्था राजानः) मुक्ता = मुक्तिं प्रापिताः, नृपमण्डलस्य = राजसमुदयस्य, मिषतः = पश्यतः ('षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी) नृपमण्डलमनादृत्येर्थः । येन = श्रीकृष्णेन, भीष्माग्रहस्तात्—भीष्मस्य अग्रहस्त -

---

जिस का आदेश पृथिवी पर राजा धारण करते हैं (स्वीकार कर पालन करते हैं) अतएव उस राजा के सम्मुख अन्य (जो राजा का नहीं है) सन्देश नहीं सुना जायगा ॥ ४० ॥

घटोत्कच—क्या दुःशासन बोल रहा है ? अरे दुःशासन ! चक्रपाणि श्री कृष्ण तुम्हारे लिए राजा नहीं हैं क्या ? हुम, अजी—

पहले जब (जरासन्ध के कारागार में जो बन्द थे) उन राजाओं को जिनका सम्मान नष्ट किया जा चुका था, जिन श्रीकृष्ण ने मुक्त कराया,

श्रीर्यस्याभिरता नियोगसुमुखी श्रीवक्षशय्यागृहे
श्लाघ्यः पार्थिवपार्थिवस्तव कथं राजा न चक्रायुधः ॥४१॥

दुर्योधन —दुश्शासन ! अलं विवादेन ।

राजा वा यदि वाऽराजा बली वा यदि वाऽबली ।
बहुनात्र किमुक्तेन किमाह भवतां प्रभुः ॥ ४२ ॥

घटोत्कच —अथ किमथ किम् । प्रभुरेव त्रैलोक्यनाथो भगवाश्चक्रायुध । विशेषतोऽस्माकं प्रभु । अपि च—

---

हस्तस्य अग्रभाग तस्मात् । अर्घ्यम् = पूजोपहार , हृतम् = स्वीकृतम् । यस्य=श्रीकृष्णस्य, श्रीवक्षशय्यागृहे—श्रीवक्ष =सौन्दर्ययुक्त वक्ष , तदेव शय्यागृहम् तस्मिन् , नियोगसुमुखी—नियोगेन=आदेशेन सुमुखी = सुप्रसन्ना, अभिरता = लब्धाभिरामा । श्लाघ्य = प्रशंसनीय , पार्थिवपार्थिवः—पार्थिवाना पार्थिव , राजराज , चक्रायुध = श्रीकृष्ण , तव = दु शासनस्य, कथम् =केन प्रकारेण, न राजा = न नृप । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ४१ ॥

दुर्योधनो दु शासन विवादान्निवारयन्नाह—राजा वेति । यदि ( कृष्ण ) राजा वा = नृपो वा, अराजा वा = नृपभिन्नो वा, बली = बलवान् वा, अबली = निर्बलो वा स्यात्, अत्र = अस्मिन् विषये, बहुना उक्तेन किम् = बहुना कथनेन प्रयोजन नास्तीत्यर्थ । भवताम् = युष्माकम् , घटोत्कचस्ये-

---

जिन श्रीकृष्ण ने राज समूह के देखते देखते भीष्म के हाथ से अर्घ्यदान लिया, जिन श्रीकृष्ण के आदेश पालन मे लक्ष्मी को प्रसन्नता होती है और वह उनके श्रीवक्षस्थल रूप शयनागार मे आनन्द प्राप्त करती है, वे प्रशस्य, राजाधिराज श्रीकृष्ण क्यो कर तुम्हारे लिए राजा नही हैं ॥ ४१ ॥

दुर्योधन--दु शासन । अब विवाद बन्द करो ।

श्रीकृष्ण चाहे राजा हो या अराजा, चाहे बली हो या निर्बल, इस विषय मे अधिक कहने से क्या ( प्रयोजन ) ? तुम्हारे स्वामी ने क्या कहा है ( वह बताओ ) ॥ ४२ ॥

घटोत्कच--और क्या और क्या ? भगवान् श्रीकृष्ण तीनो लोको के स्वामी प्रभु ही हैं । विशेषत हमारे स्वामी हैं । और भी—

अवसितमवगच्छ क्षत्रियाणां विनाशं
नृपशतविनिचितया लाघवं चास्तु भूमेः ।
न हि तनयविनाशादुद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः
समरशिरसि कश्चित्फाल्गुनस्यातिभारः ॥ ४३ ॥

शकुनि —

यदि स्याद्वाक्यमात्रेण निर्जितेयं वसुन्धरा ।

---

त्यर्थः, प्रभु = स्वामी, कृष्ण इत्यर्थः, किम् आह = किं वदति, तदुच्यतामिति भावः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

भटोऽश्वघोषोऽर्जुनस्य कृत्यं श्रावयति—अवसितमिति । क्षत्रियाणाम् = नृपाणाम्, विनाशम् = निहननम्, अवसितम् = समाप्तम्, अर्जुनेन कृतमिति भावः । अवगच्छ = जानीहि । नृपशतविनिचितया—नृपाणाम् दुर्योधनादीनां कौरवाणामित्यर्थः, शतम् = शतसङ्ख्याकानां दुर्योधनादीनां नृपविशेषाणां हतानामिति भावः । विनिचिति = एकत्रावस्थापनं तया, भूमेः = पृथिव्याः, लाघवम् = लघुता, पृथिव्या भारलाघवमिति भावः, अस्तु = भवतु । तनयविनाशात्—तनयस्य = पुत्रस्य अभिमन्योः विनाशः = संहारः तस्मात्, उद्यतोग्रास्त्रमुक्तैः — उद्यतानि = गृहीतानीत्यर्थः, उग्राणि = भीषणानि यानि अस्त्राणि = आयुधानि तेषां मुक्तानि = प्रहारा इत्यर्थः, (भावे क्त) तैः, समरशिरसि = रणाग्रे, रणप्राङ्गणे इत्यर्थः । फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य, कश्चित् = कोऽपि, अतिभारः = महत्कार्यम्, न हि = नैवास्ति । समावरणमर्जुनस्य सुकरमेव, लीलयैव तथा कर्तुं स समर्थ इति भावः । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।" इति ॥ ४३ ॥

शकुनिर्भटोक्तं वचोऽधिक्षिपति—यदि स्यादिति । यदि = चेत्, वाक्यमात्रेण = वचनमात्रेणैव, इयम् = अतिविस्तीर्णा, वसुन्धरा = पृथ्वी, निर्जिता =

---

क्षत्रियों का विनाश हुआ समझो । सौ (दुर्योधनादि) राजाओं के (वध का) ढेर लग जाने से पृथिवी का भार हलका हो । पुत्र (अभिमन्यु) के वध से उठे हुए भीषण अस्त्रों के प्रहारों से युद्ध में अर्जुन के लिए (यह) कोई बड़ा भारी काम नहीं होगा ॥ ४३ ॥

शकुनि—यदि कहने मात्र से यह पृथिवी जीत ली जाय, यदि बात-बात

वाक्ये वाक्ये यदि भवेत् सर्वक्षत्रवध. कृत ॥ ४४ ॥

घटोत्कच —शकुनिरेष व्याहरति । भो शकुने !

अक्षान्विमुञ्च शकुने ! कुरु बाणयोग्य-
मष्टापद समरकर्मणि युक्तरूपम् ।
न ह्यत्र दारहरण न च राज्यतन्त्र
प्राणा पणोऽत्र रतिरुग्रबलैश्च बाणै ॥ ४५ ॥

---

स्वायत्तीकृता स्यात् भवत् यदि – चेन वाक्ये वाक्ये = वचने वचने, कथन मात्रेणैवेत्यर्थं । सवक्षत्रवध = सर्वेषा क्षत्राणाम् = क्षत्रियाणाम् वध = विनाश कृत = विहितो भवेत् तर्हि नास्त्यतिभारोऽर्जुनस्येति भाव । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥४४॥

घटोत्कच शकुनिमधिनिपति--अक्षान्विमुञ्चेति । अक्षान् = द्यूतोपयोगिन पाशान् विमुञ्च = परित्यज । हे शकुने ! समरकर्मणि = युद्धव्यापारे, युक्त रूपम् = योग्यम् बाणयोग्यम् = शरानुरूपम्, अष्टापदम्,–फलकम् यत्र वा अष्टकोष्ठयुक्त यद् द्यूतक्रीडाया प्रयुज्यते, अष्टाङ्गमित्यप्यभिधीयते । कुरु = विधेहि । अत्र = युद्धभूमावित्यर्थ दारहरणम् = दाराणा हरणम् द्रौपदीचीर-हरणम् इत्यर्थ । न हि = नैवास्ति । राज्यतन्त्रम् = राज्यापहरणमित्यर्थं, न च = नैव च वर्तते । अत्र = युद्धभूमौ, प्राणा पण = ग्लह उग्रबलै = प्रचण्ड-शक्तिशालिभि , बाणै = शरैश्च, रति = आनन्दानुभूति , क्रीडा स्व तु नात्र समर्थं इति भाव । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ४५ ॥

---

मे सब क्षत्रियो का वध कर दिया जाय ( तो अवश्य अर्जुन के लिए कोई बडा भार नही होगा ) ॥ ४४ ॥

घटोत्कच—यह शकुनि बोल रहा है ? हे शकुनि !

पाँसो को छोड दो । हे शकुनि अपने क्रीडाफलक को युद्धकर्म के योग्य और बाणो के अनुरूप बना लो । यहाँ स्त्री का चीरहरण नही करना है और न राज्यापहरण करना है, यहाँ तो प्राणो को दाँव पर लगाना है और प्रचण्ड-शक्तिशाली तीखे बाणो से क्रीडा करनी है (जो तुम्हारे बस की बात नही)।४५।

दुर्योधनः—भो भोः। प्रकृतिं गतः।

क्षिपसि वदसि रूक्षं लङ्घयित्वा प्रमाणं
न च गणयसि किञ्चिद्व्याहरन्दीर्घहस्तः।
यदि खलु तव दर्पो मातृपक्षोग्ररूपो
वयमपि खलु रौद्रा राक्षसोग्रस्वभावाः ॥ ४६ ॥

घटोत्कचः—शान्तं शान्तं पापम्। राक्षसेभ्योऽपि भवन्त एव क्रूरतराः।

---

दुर्योधन इति। प्रकृतिम् = स्वभावम्। गतः = प्राप्तः, राक्षसभावमनुसृत्य व्याहरसि स्वमित्याशयः।

दुर्योधनो घटोत्कचं भर्त्सयति—क्षिपसि वदसीति। प्रमाणम् = मर्यादाम्, लङ्घयित्वा अतिक्रम्य, क्षिपसि = निन्दां करोषि, रूक्षम् = कठोरम् वदसि = ब्रवीषि। दीर्घहस्तः—दीर्घौ = विशालौ, हस्तौ = बाहू यस्य सः (त्वं घटोत्कच.) व्याहरन् = जल्पन्, न च किञ्चित् = न हि किमपि वाच्यमवाच्यं वा गणयसि = विचारयसि। यदि = चेत् खलु = निश्चयेन, मातृपक्षोग्ररूप.—माता = जननी राक्षसकुलोत्पन्ना हिडिम्बा, तस्याः पक्षेण = सम्बन्धेन, उग्रम् = प्रचण्डं रूपं यस्य स तादृशः, दर्पः = गर्वः, भवत = तव घटोत्कचस्य (अस्ति) तर्हि वयमपि = कौरवा अपि, राक्षसोग्रस्वभावा. राक्षसानामिव उग्र = उद्धतः स्वभाव = प्रकृतिर्येषां ते तथाविधा, रौद्राः = भयङ्कराः खलु। तदस्माभिः विग्रहेण पर्याप्तमिति भाव। मालिनी वृत्तम् ॥ ४६ ॥

---

दुर्योधन—अजी, अजी तुम (अपने) स्वभाव (राक्षसपन) पर उतर आये।

तुम मर्यादा का उल्लङ्घन कर (हम सब की) निन्दा करते हो, कठोर वचन बोलते हो, तुम विशाल बाहुओं वाले वाद विवाद करते हुए (वाच्य तथा अवाच्य का) कुछ विचार नहीं करते हो। यदि तुम्हें अपनी माता (हिडिम्बा) के पक्ष वालों (राक्षसों) का प्रचण्ड गर्व है तो हम भी राक्षसों की तरह उग्र स्वभाववाले भयङ्कर हैं ॥ ४६ ॥

घटोत्कच—पाप शान्त हो। राक्षसों से भी बढ़कर आप लोग ही क्रूर हैं।

कुत —
न तु जतुगृहे सुप्तान् भ्रातॄन् दहन्ति निशाचरा
शिरसि न तथा भ्रातु पत्नी स्पृशन्ति निशाचरा ।
न च सुतवधं सख्ये कर्तुं स्मरन्ति निशाचरा
विकृतवपुषोऽप्युग्राचारा घृणा न तु वर्जिता ॥ ४७ ॥

दुर्योधन —
दूत खलु भवान् प्राप्तो न त्व युद्धार्थमागत ।

---

घटोत्कचो दुर्योधनस्य राक्षसेभ्योऽपि क्रूरत्वमनुपपादयति न तु जतुगृहे इति । निशाचरा = राक्षसा, जतुगृहे = लाक्षागृहे, सुप्तान् = शयानानित्यर्थं, भ्रातॄन् = बन्धून्, न तु दहन्ति = न भस्मसात्कुर्वन्ति । तथा = तेनैव प्रकारेण, निशाचरा = राक्षसा, भ्रातु = बन्धो, पत्नीम् = भार्याम् शिरसि = मस्तके न स्पृशन्ति = स्पर्शं न कुर्वन्ति । किं च निशाचरा, सख्ये = सङ्ग्रामे, सुतवधम् = पुत्रहननं कर्तुं न स्मरन्ति = पुत्र हन्तु मनस्यपि न कुर्वन्तीति भाव । विकृतवपुष –विकृतम् = विरूपितम्, भीषणमिति यावत्, वपु = शरीर येषा ते तथाभूता, उग्राचारा –उग्र = कठोर, आचार = व्यवहारो येषा ते तथाभूता अपि, तु = किन्तु ( तै निशाचरै ) घृणा = दया, न वर्जिता = न त्यक्ता । भवद्भिस्तु सर्वथा दयापरित्यक्ता तद्राक्षसेभ्योऽपि भवन्त क्रूरतरा इति भाव । अत्र प्रागुक्तकौरवक्रूरतरत्वोपपत्तये पादचतुष्टयवाक्यार्थाना हेतुत्वेनोपन्यासात् काव्यलिङ्गमलङ्कार । हरिणी वृत्तम् । तल्लक्षण यथा—' न समरसलाग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।' इति ॥ ४७ ॥

दुर्योधनो दौत्येन समागत घटोत्कच निर्दिशति—दूत खलु भवानिति । भवान = त्व घटोत्कच खलु = निश्चयेन, दूत = सन्देशवाहक, प्राप्त = आगत,

---

क्योंकि—राक्षस तो लाक्षागृह मे सो रहे भाइयो को नही जलाते हैं । निशाचर तो भौजाई के सिर पर हाथ नही लगाते हैं । निशाचर तो युद्ध मे पुत्र का वध करने की बात सोच भी नही पाते हैं । उनका शरीर भीषण और व्यवहार उग्र भले ही हो, किन्तु उन्होने दया का परित्याग तो नही किया है ॥ ४७ ॥

दुर्योधन—(देखो) तुम दूत बन कर आये हो, युद्ध के लिए नही आये हो,

गृहीत्वा गच्छ सन्देशं न वयं दूतघातकाः ॥ ४८ ॥

घटोत्कचः —( सरोषम् ) किं दूत इति मां प्रधर्षयसि । मा तावद् भोः ! न दूतोऽहम् ।

अलं वो व्यवसायेन प्रहरध्वं समाहृताः ।
ज्याच्छेदाद् दुर्बलो नाहमभिमन्युरिह स्थितः ॥४९ ॥

महानेष कैशोरकोऽस्य मे मनोरथः ।

अपि च,

दष्टोष्ठो मुष्टिमुद्यम्य तिष्ठत्येष घटोत्कचः ।

---

त्वं युद्धार्थम् = युद्धं कर्तुं न आगतः, सन्देशम्, गृहीत्वा = आदाय, गच्छ = याहि, वयं दूतघातकाः न ( स्मः ) विवादाद्विरतो भूत्वा सन्देशमादाय गच्छ स्वस्थानम्, नो चेद्धनिष्यसे इति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४८ ॥

घटोत्कच इति । प्रधर्षयसि = अवमन्यसे ।

अलमिति । वः = युष्माकम्, व्यवसायेन = व्यापारेण । अलम् = निषेधार्थकमव्ययपदम् । समाहृताः = सम्मिलिताः । प्रहरध्वम् = ( मयि ) कुरुत प्रहारम् । ज्याच्छेदात्—ज्यायाः = मौर्व्याः, छेदात् = कर्तनात्, दुर्बलः = विवशः, असहायः, अभिमन्युः, अहम् – घटोत्कचः, इह = अत्र तव सभागृहे, न स्थितः = नास्मीति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

दष्टोष्ठ इति । दष्टः ओष्ठः = अधरोष्ठ इत्यर्थः, येन सः ('ओत्वोष्ठयोः समासे वा' इति वचनेन पररूपमेकादेशः ) मुष्टिम्, उद्यम्य = उत्थाप्य, एषः = अयम्, घटोत्कचः, तिष्ठति = वर्तते । कश्चित् पुमान् = कोऽपि पुरुषः, यमालयम् = यमपुरम्,

---

अतः सन्देश लेकर (वापस) जाओ । हम दूतों का वध नहीं करते हैं ॥ ४८ ॥

घटोत्कच—(क्रोध के साथ) क्या दूत मानकर मुझे अपमानित कर रहे हो ? अजी ऐसा नहीं मैं दूत नहीं हूँ ।

तुम लोगों का व्यापार समाप्त हो । तुम सब एक जुट होकर मुझपर प्रहार करो, मैं प्रत्यञ्चा कट जाने से विवश हुआ अभिमन्यु नहीं हूँ । यहाँ खड़ा हूँ । मेरा यह किशोरावस्था का बहुत बड़ा उद्दाम मनोरथ है ।

और भी—

यह घटोत्कच ( क्रोध से ) ओठ काट कर मुट्ठी तान कर खड़ा है । कोई

उत्तिष्ठतु पुमान् कश्चिद्गन्तुमिच्छेद्यमालयम् ॥ ५० ॥

( सर्वे उत्तिष्ठन्ति । )

धृतराष्ट्र —पौत्र घटोत्कच ! मर्षयतु मर्षयतु भवान् ! मद्वचनावगन्ता भव ।

घटोत्कच —भवतु भवतु। पितामहस्य वचनाद् दूतोऽहमस्मि । तथापि हि न शक्नोमि रोष धारयितुम् । किमिति विज्ञाप्य ।

दुर्योधन —आ कस्य विज्ञाप्यम् । मद्वचनादेव स वक्तव्य ।

किं व्यर्थं बहु भाषसे न खलु ते पारुष्यसाध्या वय

---

गन्तुम् यातुम्, इच्छेत्=अभिलषेत्, उत्तिष्ठतु = योद्धुमभिगच्छेत् ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र इति । मर्षयतु=क्षमताम् । मद्वचनावगन्ता —अवगच्छति इति अवगन्ता, ममवचनस्यावगन्ता इति तथोक्त भव—मम वचन शृणोतु, श्रुत्वा च तदनुसरत्विति भाव ।

दुर्योधन कृष्ण सन्दिशति—किम = किमर्थम्, बहु=अत्यन्तम्, व्यर्थम्=निरर्थकम्, भाषसे = जल्पसि । वयम् = कौरवा, खलु=निश्चयेन, ते = तव= कृष्णस्य, पारुष्यसाध्या —पारुष्येन = अपभाषनेन साध्या = वश्या, न

---

पुरुष यमपुरी जाना चाहता हो तो उठे ॥ ५० ॥

( सब उठते हैं )

धृतराष्ट्र—पौत्र घटोत्कच ! तुम क्षमा करो, क्षमा करो । मेरी बात का ख्याल करो ।

घटोत्कच— अच्छा, अच्छा । पितामह के वचन से मैं दूत हूँ । तथापि मैं क्रोध को रोक नहीं सकता हूँ । ( कहिए ) क्या प्रार्थना है ?

दुर्योधन—ओह, किसकी प्रार्थना ? मेरे वचन से (कृष्ण से) ऐसा कहना –

कोपान्नार्हसि किंचिदेव वचनं युद्धं यदा दास्यसि ।
निर्याम्येष निरन्तरं नृपशतच्छत्रावलीभिर्वृ॒तः
स्तिष्ठ त्वं सह पाण्डवैः प्रतिवचो दास्यामि ते सायकैः ॥ ५१ ॥

घटोत्कच —पितामह ! एष गच्छामि ।

धृतराष्ट्रः—पौत्र ! गच्छ, गच्छ ।

घटोत्कचः —भो भो राजानः श्रूयतां जनार्दनस्य पश्चिमं सन्देशं ।

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यत्काङ्क्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ ।

( भविष्याम )। कोपात्=क्रोधात् किञ्चिदेव = किमपि, वचनम्, नार्हसि=न योग्योऽसि, वक्तुमिति शेषः । यदा = यस्मिन् समये, युद्धं दास्यसि=संग्राम करिष्यसि, निरन्तरम्=सततम् नृपशतच्छत्रावलीभिः —नृपाणां शतानि तेषां छत्रावलीभिः वृत , एष =अहं दुर्योधन , निर्यामि=निर्गच्छामि ( वर्तमानसामीप्ये लट् )। त्वम्=त्वं, पाण्डवैः सह तिष्ठ—पाण्डवानां साहाय्यं कुर्वित्यर्थः । ते=तव कृष्णस्य, प्रतिवचः =प्रत्युत्तरम्, सायकैः = बाणैः , दास्यामि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

घटोत्कच इति । पश्चिमं = अन्तिमं ।

सन्देशं श्रावयति—धर्मं समाचरेति । धर्मं समाचर = धर्माचरणं कुरु । स्वजन-व्यपेक्षां कुरु—स्वजनानां व्यपेक्षा = विशिष्टा अपेक्षा ताम्, अनुरोधम्, समादरमिति यावत् कुरु = विधेहि । इह = अत्र संसारे, मनसि = हृदये, यत् काङ्क्षितम् = अभिलषितम्, तत् सर्वम्, अनुतिष्ठ = सम्पादय । जात्योपदेश —

क्यों व्यर्थ बढ़ चढ़कर बोलते हो ? हम तुम्हारी धमकियों से हार मानने वाले नहीं । क्रोधवश कुछ भी कहना तुम्हें उचित नहीं है । जब युद्ध छेड़ोगे मैं सैकड़ों राजाओं के छत्रों से निरन्तर परिवृत निकलूँगा । तुम पाण्डवों के साथ रहो, तुम्हारे वचन का उत्तर बाणों से दूँगा ॥ ५१ ॥

घटोत्कच—पितामह ! यह मैं जा रहा हूँ ।

धृतराष्ट्र—पौत्र ! जाओ, जाओ ।

घटोत्कच—अजी, अजी राजाओ ! श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश सुन लो—
धर्म का आचरण करो, स्वजनों का सम्मान करो, जो कुछ अभीष्ट हो सब

जात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभि सममुपैष्यति व कृतान्त ॥ ५२ ॥ इति ।

( निष्क्रान्ता सर्वे । )

दूतघटोत्कच नामो सृष्टिकाङ्क समाप्तम् ॥

—०×०—

जातौ भव जात्य = सजाति हित इति यावत्, तस्य उपदेश इव, पाण्डवरूप धारी—पाण्डव = अर्जुन, तस्य रूप धरतीति, अर्जुनस्वरूप धृत्वा कृतान्त = यम, सूर्यांशुभि समम् = सूर्यकिरणै सह, सूर्ये समुदिते सत्येवेत्यर्थ । व = युष्मान् उपैष्यति = आगमिष्यति, स युष्मान् विनाशयिष्यतीति भाव । वसन्त तिलक वृत्तम् । उपमालकार । उपमेये पाण्डवे उपमानस्य कृतान्तस्याभेदारोपाद्रूपकम् 'सूर्यांशुभि समम् उपैष्यति' इत्यत्र सहोक्तिरलङ्कारश्च ॥ ५२ ॥

इति कल्याणीत्याख्याया सस्कृतव्याख्याया प्रथमोऽङ्क
समाप्त चदूतघटोत्कच नामोत्सृष्टिकाङ्कम् ॥

—०×०—

इस जगत् मे कर लो, पाण्डव (अर्जुन) के रूप मे हितोपदेश के समान यमराज सूर्य की किरणो के साथ तुम्हारे पास पहुँचेगा ॥ ५२ ॥

( सब चल जाते हैं )

दूतघटोत्कच उत्सृष्टिकाङ्क समाप्त



# परिशिष्ट

## टिप्पणी : नोट्स

### प्रथम अङ्क

पृष्ठ १—नान्द्यन्ते—नान्दी समाप्त होने पर। नान्दी शब्द के दो अर्थ होते हैं :—

(१) नन्दन्ति देवा अस्याम् अथवा नन्दयति देवद्विजनृपादीन् इति नान्दी। भरतमुनि ने नान्दी की परिभाषा की है—

"देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति कीर्तिता॥"

विश्वनाथ कविराज के अनुसार—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥"

अर्थात् मङ्गलाचरणरूप पद्य जो रूपकग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध किया जाता है उसे 'नान्दी' कहते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी 'नान्दी' स्तकाव्यरूप होती है जिसका प्रयोग सूत्रधार अथवा उसका सहायक रंगमंच पर उपस्थित हुए बिना नहीं कर सकता है। यहाँ अभी कोई ऐसा व्यक्ति तो प्रविष्ट नहीं हुआ है, अतः 'नान्द्यन्ते' में प्रयुक्त नान्दी शब्द आशीर्वचनसंयुक्त देवतादिस्तुतिरूप मङ्गलश्लोकपरक नहीं हो सकता है।

(२) नान्दी शब्द का दूसरा अर्थ है—भेरी या आनक (देशी भाषा में 'नगाड़ा')। यह शब्द अन्य वाद्यों का भी उपलक्षण है। इस नान्दी शब्द का सामान्यरूप से अर्थ होता है—नाट्य प्रयोग के पहले, नटों के द्वारा किया गया माङ्गल्य गायनवादनादि।' यहाँ नान्दी शब्द का प्रयोग इसी दूसरे अर्थ में हुआ है। भास के सभी नाटकों में प्रारम्भ में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति

सूत्रधार ' वाक्य पाया जाता है। वहाँ सर्वत्र नान्दी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिए। इसी नान्दी के समाप्त होने पर सूत्रधार रंगमंच पर आता है और तब कवि रचित मङ्गलाचरणरूप पद्य ( नान्दी ) का पाठ करता है।

तत —'तत ' शब्द से यह सूचित होता है कि गायनवादनादिरूप नान्दी के समाप्त होने पर तुरन्त अविलम्ब ( उसके बाद ही ) सूत्रधार प्रविष्ट होता है।

सूत्रधार —सूत्रमभिनेयसूचन धारयतीति सूत्रधार । वह प्रधान नट जो सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर अभिनेय नाटक की सूचना तथा उसका संक्षिप्त परिचय सामाजिकों को देता है, सूत्रधार कहलाता है—

'वर्णनीय कथासूत्र प्रथम येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधार स उच्यते॥'

भरतमुनि के अनुसार—

''नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥''

अर्थात् नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहते हैं, उसे जो सँभालता है वह सूत्रधार कहा जाता है ( आधुनिक शब्दावली में 'स्टेज डाइरेक्टर )।

श्लोक १—इस रूपक ग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध मङ्गलाचरणरूप पद्य 'नान्दी' है। इसमें देव नारायण की स्तुति की गयी है और उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि वे सामाजिकों का कल्याण करें।

"आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति सज्ञिता॥" (साहित्यदर्पण)

इस कविरचित नान्दी का पाठ सूत्रधार करता है। 'सूत्रधार पठेन्नान्दीम्' ( भरतमुनि )।

भास के नाटकों को छोड़कर अन्य रूपक ग्रन्थों में कविकृत नान्दी के बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधार ' का उल्लेख पाया जाता है। इसके अनुसार कुछ विद्वानों का कहना है कि कवि निबद्ध नान्दी का पाठ किसी अन्य नट का कर्तव्य है। ऐसा ही मानने से वहाँ 'नान्द्यन्ते सूत्रधार ' वाक्य की सङ्गति बैठ सकती

है। वास्तव में वहाँ भी भरतमुनि के अनुसार सूत्रधार ही नान्दी पाठ करता है। अमङ्गल से बचने के लिए ही नान्दी के पूर्व उसका उल्लेख नहीं किया जाता है। ग्रन्थ का आरम्भ मङ्गलश्लोक से होना चाहिए।

पृष्ठ ३—आर्यमिश्रान्–आर्य और मिश्र ये दोनों शब्द विशेषण हैं। इनका कर्मधारय समास होने पर 'आर्यमिश्र' समस्त पद बनता है। इसका अर्थ होता है—आदरणीय, योग्य, पूज्य सज्जन पुरुष। यहाँ इसका प्रयोग रङ्ग सामाजिकों के लिए हुआ है जिससे उनके प्रति आदर भाव प्रकट किया गया है।

अङ्ग—यह संबोधक अव्यय है जिसका अर्थ है—"अच्छा", "अच्छा, श्रीमान्।"

संशप्तक—सम्यक् शापमङ्गीकारो यस्य स संशप्तकः। वह योद्धा जिसने युद्ध से न भागने की शपथ खायी हो। सुशर्मा आदि त्रिगर्तराजपुत्र 'संशप्तक' कहे जाते थे। 'त्रिगर्त' भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित एक देश का नाम है जिसे आज 'जालन्धर' कहते हैं।

श्लोक २—पितामहस्य—पितुः पिता=पितामह, ( पितृ + डामहच् )। आरोपितः—आ + √रुह् + णिच् + क्त ( कर्मणि ) 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' रुह्धातोः पकारान्तादेशः।

श्लोक ४—श्रुतिपथ—श्रुत्योः पन्था इति श्रुतिपथः। षष्ठी समास होने पर 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' इति समासान्त 'अ' प्रत्यय। 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि ( इन् ) का लोप। दूषणम्—√दूष् + ल्युट् ( यु = अन ), नकार को णत्व। विप्रियम्—वि + √प्री + क ( 'इगुपध ज्ञाप्रीकिरः कः' ) यहाँ 'वि' विलोम अर्थ प्रकट करता है अतः 'विप्रिय' का अर्थ है अप्रिय, अरुचिकर। क्षयम्—√क्षि + अच् = क्षय. ( एरच् ) द्वितीयान्त क्षयम्। अभीत.—न भीतः, √भी + क्त ( अकर्मकत्वात्कर्तरि )।

श्लोक ५—निधन = मरण। जनित—√जन् + णिच् + क्त ( कर्मणि )। रश्मि—गुण = लगाम, रास। प्रतोद = ( प्र + √तुद् + घञ् ) लम्बा

पाण्डवों को रोका। विदग्ध ( निपुण ) होकर भी उसने अविदग्ध ( मूर्ख ) का-सा आचरण किया।

श्लोक १७—इस अंक में श्लोक १७ से २४ तक धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के बीच नोक-झोंक पूर्ण जो बातें हुई हैं, वे पठनीय और मननीय हैं। इनसे महाकवि भास की संवाद-योजना तथा तर्कपूर्ण विवेचन शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। धृतराष्ट्र के निष्पक्ष उज्ज्वल हृदय को दर्शकों एवं पाठकों के समक्ष भास ने खोल कर रख दिया है। इसी प्रकार दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि के कलुषित हृदय की भी झलक दिखाने में वे सफल हुए हैं। धृतराष्ट्र पाण्डवों के पक्ष का समर्थन करते हैं और दुर्योधन आदि उनका खण्डन करते हुए अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

श्लोक १९—स्वच्छन्दमृत्युः—भीष्म पितामह को अपने पिता से इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। अतः उनकी मृत्यु उनकी इच्छा पर निर्भर थी अतः शरशय्या पर पड़े वे उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते रहे। जब सूर्य ने बसन्त विषुव को पार किया तब कहीं उन्होंने अपने प्राण त्यागे।

स्वेनोपदेशेन कृतात्मतुष्टिः—भीष्म ने पाण्डवों से स्वयम् अपनी मृत्यु का उपाय बताया था। ऐसा करने पर भी उन्हें दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता हुई थी। उन्हीं के उपदेशानुसार ही अर्जुन ने शिखण्डी की सहायता से युद्ध में उन्हें घायल किया था।

श्लोक २०—मवषा न. पश्यताम्—यहाँ अनादर अर्थ प्रकट हो रहा है ( सर्वानस्माननादृत्येत्यर्थः ) अतः 'षष्ठी चानादरे' सूत्र के अनुसार षष्ठी हुई है। सूत्रस्थ चकार के बल से सप्तमी भी होती है।

युध्यताम्—यह शतृप्रत्ययान्त है। किन्तु 'युध्' धातु आत्मने पदी है अतः इसे शानजन्त होना चाहिए। दीक्षित जी के अनुसार 'अनुदात्तेत्वलक्षण-मात्मनेपदमनित्यम्' इस परिभाषा के बल से आत्मनेपद की अनित्यता होने से परस्मैपद हुआ और लट् को 'शतृ' आदेश। अथवा युधमिच्छन्ति इति

युध्यन्ति–भावार्थकक्यन्त युध् शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' सूत्र से क्यजन्त होने से परस्मैपद हुआ।

गृह्य—√ग्रह् + (क्त्वा) ल्यप्। वस्तुतः यहाँ क्त्वा को ल्यप् नहीं हो सकता है क्योंकि ग्रह् धातु के पूर्व उपसर्ग का प्रयोग नहीं है अतः 'गृहीत्वा' होना चाहिए। 'गृह्य' यह प्रयोग अपाणिनीय है। भास के नाटकों में इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोग बहुधा मिलते हैं।

श्लोक २२—निवातकवच—निर्गतः वातः यस्मिन् तत् निवातम् = सुदृढम्, अभेद्यमित्यर्थः) निवातं कवचं येषां ते निवातकवचाः। निवातकवच नामक दैत्य थे। सम्भवतः अभेद्य कवच धारण करने के ही कारण वे निवातकवच नाम से प्रसिद्ध थे। वे इन्द्र को अत्यन्त पीडित किया करते थे। इन्द्र के कहने से अर्जुन ने उनका विनाश किया था।

खाण्डव—कुरुक्षेत्र प्रदेश में खाण्डव नामक वन था। वह इन्द्र को बहुत प्रिय था। उसे अग्नि ने कृष्ण और अर्जुन की सहायता से जलाया था। अर्जुन के डरों। से उसमें रहने वाले सर्प भागने नहीं पाये थे, सब जलकर भस्म हो गये थे।

कैरातरूपम् हरन्—अस्त्रों की प्राप्ति के लिए अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप कर रहे थे। वहाँ किरातवेषधारी शिव से अर्जुन का युद्ध हुआ था। अर्जुन के पराक्रम से शङ्कर जी ने प्रसन्न होकर उन्हें 'पाशुपत' अस्त्र प्रदान किया था। चित्राङ्गदम्—एक बार चित्राङ्गद (अथवा चित्रसेन) गन्धर्व ने दुर्योधन को बाँध लिया था। अर्जुन ने ही उसे चित्राङ्गद से छुड़ाया था।

श्लोक २३—शक्रापनीतकवच.—कर्ण के जन्म के साथ ही अभेद्य कवच से उसका शरीर आच्छादित था। देवता और दानव भी हजारों अस्त्रों से उसका भेदन नहीं कर सकते थे। उस कवच के रहते कर्ण पराजित नहीं किया जा सकता था। पाण्डवों का काम बनाने के लिए इन्द्र विप्रवेष में आकर कर्ण से उसका कवच दान में माँग ले गया था।

अर्धरथ—अर्धः रथ यस्य सः। रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धा

को रथी कहते हैं। कतिपय दोषों के कारण कर्ण को महाभारत में अधरथी ( अर्धरथ ) कहा गया है—

'रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः॥' इति।

व्याजोपलब्धविफलास्त्रबलः—परशुराम का नियम था कि वे ब्राह्मणों को ही अस्त्रोपदेश करते थे, क्षत्रियों को नहीं। कर्ण ने अपने को ब्राह्मण बता कर उनसे अस्त्र विद्या प्राप्त की। कर्ण के साथ एक दिन परशुराम समिधा और कुश लाने के लिए वन में गये। थक कर वे कर्ण की जाँघ पर सिर रख कर सो गये। दुर्दैव वश वज्रमुख नामक कीड़ा ( महाभारत में अलर्क नामक कीडा ) कर्ण की जाँघों में काटने लगा। गुरु की निद्रा भङ्ग न हो अत: कर्ण ने उस पीड़ा को सह लिया। रुधिर के स्पर्श से परशुराम जगे और उस सहन-शक्ति से कर्ण को क्षत्रिय समझने में उन्हें देर नहीं लगी। क्रुद्ध परशुराम ने कर्ण को शाप दिया—समय पड़ने पर तेरे शस्त्र काम न आवेंगे।

पृष्ठ ३३—प्रायश्चित्तम्—प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यस्मात्। बहुव्रीहि समास निपातन से सुडागम। पाप से निस्तार पाने के लिए धार्मिक साधना को प्रायश्चित्त कहते हैं।

श्लोक ३०—यथा तथा = जैसे-तैसे। खिन्नाशयाः—आशय का अर्थ हृदय लेने पर अर्थ होगा—खिन्न हृदय वाले। आशय का अर्थ इच्छा भी है, तब अर्थ होगा भग्न इच्छा वाले। ज्वलन = अग्नि।

श्लोक ३१—कृष्णचक्षुष —कृष्णश्चक्षुर्येषा ते, कृष्ण हैं नेत्र जिनके अर्थात् कृष्ण के द्वारा निर्दिष्ट। नभस्थलम्—'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य.' इति विसर्ग लोप।

श्लोक ३२—नित्यमुद्यतशासनम्—उद्यतम् = तत्पर शासनम् = आदेशः यस्य तम्। भाव यह है कि जो अपराध के अनुसार सदा तुरन्त दण्ड का विधान करता है। क्रूरम् = कठोर ( वचन )।

श्लोक ३३—दिदृक्षु-—द्रष्टुमिच्छतीति दिदृक्षति, दिदृक्षतीति दिदृक्षुः, √दृश् + सन् + उ ( सनाशंसभिक्ष उः )। बलिम्—बलि शब्द के अनेक अर्थ हैं यहाँ दैनिक आहार से तात्पर्य है।

पृष्ठ ३६—उपस्थानगृहम्—सभाभवन।

श्लोक ३४—स्वचरितै.—स्वेन = आत्मना चरितानि = कृतानि तै, अपने ही द्वारा किये गये। द्रष्टव्य—√दृश् + तव्य। गुरुः = श्रेष्ठ, गुरुजन। प्रविशस्व-प्रपूर्वक विश्धातु के आत्मने पद में लोट् मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार प्र + √विश् के लिए आत्मने पद का विधान नहीं है अतः 'प्रविश' प्रयोग समीचीन है।

श्लोक ३५—वर्ली - ('वलि' भी लिखा जाता है) [√वल् + इन् + पक्षे ङीप्] चमड़े पर सिकन या झुर्री। गुरु = महान्, विपुल। संहृत = सुहृद। अस = कन्धा, बाहुमूल।

धृत्या-√धृङ् अवस्थाने + क्तिन्। विद्यमान होना, रहना, जीवित रहना। पुत्रशतस्य धृत्या = सौ पुत्रों की विद्यमानता से, सौ पुत्रों के रहने से। त्रिदिव = स्वर्ग। निमीलितमुख = अन्धा। सृष्टः = √सृज् + क्त = रचा गया।

श्लोक ३६—कृपणीकृत—कृपण + च्वि + √कृ + क्त, कदर्थित किया गया, दयनीय दशा को प्राप्त कराया गया। अनुगतः—अनु + गम् + √क्त, ज्ञात, समझा हुआ।

पृष्ठ ४०—कल्याणः = सौभाग्यशाली, आनन्दप्रद। प्रसूति = उत्पन्न करने वाला। पितामह—पिता का पिता, धृतराष्ट्र भीम का चचा था अतएव भीम के पुत्र घटोत्कच ने उसे पितामह कहा है। प्ररोह = अङ्कुर। मातुल = मामा, मातुर्भ्राता मातुलः, मातृ + डुलच्। पितामह द्रष्टुमाज्ञया- पितामह (इन्द्र) के दर्शन की आज्ञा से। इन्द्र वस्तुतः अर्जुन के जनक थे, अतः इन्द्र को अभिमन्यु का पितामह कहा गया है।

हास्यते-√हस् + णिच् + कर्मणि लट्। णिजन्त हस् धातु का भी 'उपहास करना' अर्थ होता है।

श्लोक ४१—श्रीवक्षशय्यागृहे—'वक्ष' शब्द साधु नहीं है। शुद्ध शब्द 'वक्षस्' है अतएव विसर्ग के श्रूयमाण होने से 'श्रीवक्षः शय्यागृहे' पाठ होगा

# दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तछन्दःसूची

अनुष्टुप् (श्लोक)—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

पद्य संख्या—६, ७, ११, १७, १८, २१, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३२, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४४, ४८, ४९, ५० ।

इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । १०, १६, ३० ।

उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ (इत्यनयोरुपजातिः) २, ९, १९, ३६ ।

शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः । २० ।

वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । १३, ३३ ।

प्रहर्षिणी—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् । ४ ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । १, ५, ११, १४, २३, ३५, ४५, ५२ ।

मालिनी—न न मयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः । ४३, ४६ ।

हरिणी—न स म र स ला ग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता । ४७ ।

शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् । ३, ८, १२, २२, २७, ३४, ४१, ५१ ।



## दूतघटोत्कचगत-प्रयुक्तालङ्कारसूची

उपमा—साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः । पद्य संख्या २०, २७, ३३, ५२ ।

रूपक—रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे । ६, १२, २२, ५२ ।

उत्प्रेक्षा—भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना । २५, २६, ३५, ३७ ।

काव्यलिङ्ग—हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते । ४७ ।

सहोक्ति—सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वाचकं द्वयोः ।

सा सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत् ॥ १३, ५२ ।

निदर्शना—सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित् ।

यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ॥ ३ ॥

पर्यायोक्त—पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते । ३ ।

### दूतघटोत्कचगत अपाणिनीय प्रयोग सूची—

(१) तं हत्वा क इहोपलप्स्यति चिरं स्वैर्दुष्कृतैर्जीवितम् । ( श्लोक ८ )

उप + √लभ् + लृट् = उपलप्स्यते प्रयोग शुद्ध है । भास ने आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग किया है ।

(२) व्यायामोष्णं गृह्य चापं करेण ( श्लोक २० )

√ग्रह् से क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर 'ल्यप्' आदेश व्याकरणशास्त्र-विरुद्ध है ।

### दूतघटोत्कचगत-सुभाषित

को हि सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं समर्थः ॥



# श्लोकानुक्रमणिका





चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला
१९

भासनाटकचक्रे

# कर्णभारम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार
श्री वैद्यनाथ झा




चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
वाराणसी
१९७७

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३४
मूल्य : २-००


के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
( भारत )

अपर च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ ( भारत )
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
19

# KARNABHĀRAM

OF

## BHASA

Edited with the
*"Indukala" Sanskrit-Hindi Commentaries*

By
Pt. VAIDYANATH JHA




Chaukhamba Amarabharati Prakashan
VARANASI–221001
1977

से स्वीकार करता है तो कोई नीति पूर्ण एवं प्रेम पूर्ण कथाओं में ही अपनी उत्कट अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं। नाटक में एक साथ ही सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है। नाटक मे कहो तो अतिशय आनन्द दायक कथोपकथन का विन्यास रहता है तो कही पर पत्थर की तरह कठोर वस्तु को भी पिघलाने वाला गीत-संलाप। यही नहीं, कही-कही दर्शकों को हास्य में डुबा देने वाले शारीरिक वाचनिक और मानसिक चेष्टाओं के प्रदर्शन का अवसर भी मिल जाता है। परिणाम-स्वरूप नाटक में एक साथ ही विभिन्नरुचि वाले दर्शकों का मनोरञ्जन हो जाता है। नाटक क अतिरिक्त अन्य किसी काव्याङ्ग में यह विशेषता देखने को नहीं मिल सकती है जो कि एक ही स्थान पर मानव-मात्र को अलौकिक आनन्द प्रदान कर सके।

नाटक के स्वरूप के विषय में भरत मुनि ने जो कहा है उससे भी नाटक का सर्वाधिक महत्व और रमणीयता परिलक्षित होती है। जैसे—

नाना-भावोपसम्पन्न नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

भावार्थ यह है कि विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न भाव मुद्रायुक्त लोक वृत्त का अनुकरण ही नाटक है। नाटक में आयी हुई घटना प्रत्यक्ष और वास्तविक की तरह मालूम पड़ती है। इस लिये नाटक रस में निमग्न मानव कुछ क्षणों के लिये अपने सभी मनोविकारो से उस समय अलग हो जाता है।

यद्यपि काव्य के अनेक लक्ष्य स्वीकृत किये गये है, तथापि उनमें प्रधान लक्ष्य जन-रञ्जन के साथ ही जन-शिक्षण भी है। मनो-रञ्जन के साथ ही जैसा उपदेश दर्शक नाटक से प्राप्त करता है, वैसा किसी अन्य काव्याङ्ग से नही प्राप्त कर सकता है।

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतत् भविष्यति॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हित बुद्धि — विवर्धनम्।
लोकोपदेश — जननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥

काव्य का चरम लक्ष्य "ब्रह्मास्वाद सहोदर रसास्वाद" है। केवल श्रव्यात्मक काव्य से काव्यसाधना के द्वारा परिपक्व बुद्धि वाले सहृदय सामाजिक ही रसास्वाद प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि उसकी विशद अनुभूति के लिये जिस कवितामय वातावरण की आवश्यकता होती है उसका निर्धारण सर्वसाधारण नहीं कर सकता। परन्तु नाटक दृश्य काव्य है, इसमें अभिनय का प्राधान्य होता है, इस लिये अभिनय दर्शन के द्वारा सर्वसाधारण मनुष्य भी रसास्वाद करता है, क्यों कि मानव जिस शक्ति के द्वारा रस निमग्न कर दिया जाता है नाटक में उस शक्ति की अधिकता होती है। यह सर्वसिद्धान्त सिद्ध है कि सुनी हुई वस्तु की अपेक्षा देखी गयी वस्तु में अधिक प्रभावोत्पादकता और आकर्षण होता है। अधिक आकर्षक होने के कारण दृश्य काव्य की रमणीयता निर्विवाद है। इस लिये कहा भी है

"काव्येषु नाटक रम्यम्"।

महाकवि भासः—

यद्यपि मैंने पहले काव्यों में नाटक का स्थान क्या है इसका विवेचन किया है तदनन्तर मुझे प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहिए, परन्तु किसी कृति के विवेचन के पहले उस कृति के कलाकार के सम्बन्ध में जान लेना अपेक्षित ही नहीं आवश्यक भी होता है तो "कर्णभार" के विवेचन के पहले यदि उक्त नाटक के कलाकार महाकवि "भास" के विषय में कुछ विचार करें तो असगत न होगा।

कविता कामिनी के हास महाकवि भास संस्कृत नाटकों के विकास परम्परा में देदीप्यमान चट मणि हैं जिनकी कीर्ति-कौमुदी का अजस्र प्रकाश काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रहा और सुदूर दक्षिण से लेकर अनन्त उत्तर तक तथा पूरब से लेकर पश्चिम तक चमकता रहा। नाटक को पञ्चमवेद कहलाने का जो सम्मान प्राप्त हुआ और कालिदास ने जो "नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" कहा इसकी सम्यक् परिपुष्टि भासकृत नाटकों से होती है। नाटक में तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं तो भास का महत्व और भी बढ़ जाता है।

बीसवीं सदी के आरम्भ तक भास के नाटकों के स्वरूप से लोग बिल्कुल अज्ञात थे, केवल यत्र-तत्र भास के कुछ प्रशस्ति वाक्य ही सुनने को मिलते थे। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने १९१२ ई० में भास के १३ नाटकों का अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण प्रकाशन कराया। हमने पहले लिखा है कि भास के नाटक पहले अज्ञात थे किन्तु उनके प्रशस्ति वाक्य सुने जाते थे। उनमें वाणी के वरदपुत्र कालिदास ने अपने नाटक "मालविकाग्निमित्र" में सूत्रधार से प्रश्न करवाया है—

( १ ) प्रथित-यशसा भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्त्तमानस्य कवे कालिदासस्य कृतोबहुमानः। इति॥

( २ ) हर्ष के सभा पण्डित "बाण" ने भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है—

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ ( हर्षचरित )

अब यहाँ प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि भास कृत नाटक पहले इतने लोकाभिमत थे कि कालिदास, बाण जैसे उत्कृष्ट कवि से उनका उल्लेख किये बिना नहीं रहा गया तो वे कृति फिर लुप्त कैसे हो गये जो 'टी० गणपति शास्त्री" ने उसे पुन. प्रकाशित करवाया। सुमिल्ल आदि के नाटक आज भी अलभ्य हैं। अत. इसका समुचित उत्तर नहीं दिया जा सकता। तथापि विद्वानों ने इसका उत्तर देने का प्रयास किया है—

( १ ) देश में मुसलिम शासन के प्रसार के साथ ही साथ संस्कृत ग्रन्थों पर भी विपत्तियाँ आने लगीं। चूँकि उस समय मुसलमान का बोल-बाला था और भास ने अपने नाटकों में, "राजसिंह" का, पृथ्वीपालन का आदेश देते थे वर्णन किया अत. वैदिक धर्म के प्रचारक भास के नाटकों पर मुसलमानों की कुदृष्टि पड़ना कोई असम्भव नहीं और सम्भवतः इसी कारण इनके नाटक लुप्त हो गये होंगे। कुछ प्रतियाँ बच इसलिये गयीं क्योंकि वे प्रतियाँ मलयालम लिपि में लिखित थीं और वह लिपि मुसलमानों के लिये अबोध्य थी अतः वे इसे विनष्ट नहीं कर पाये होंगे।

( २ ) बाह्य आक्रमण के पुनः पुनः होने से भारत वासी अपने जीवन से निराश हो चुके थे। अतः वीरता पूर्ण नाटकों को देखने की अपेक्षा अब वे धर्म एवं दर्शन की ओर आकृष्ट हो गये थे। अतः भास के ये नाटक प्रचलन से उठ गये।

कुछ भी हो अपने लालित्यपूर्ण नाटकों से संस्कृत वाङ्मय के भण्डार को परिपूर्ण कर भास ने जो स्थान प्राप्त किया है वह सर्वथा महत्त्वास्पद ही है।

भास का समयः—

संस्कृत के अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह "भास" ने अपनी रचनाओं में न तो अपने समय की चर्चा की या न अपने स्थिति की। पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों का मत इनके विषय में वैसे ही परस्पर विरुद्ध हैं जैसे कवि कुल गुरु कालिदास के विषय में। उन मत मतान्तरों को तीन भाग में विभक्त कर उनको यथार्थता पर विचार यदि किया जाय तो सुविधा रहेगी।

प्रथम मत :—

महामहोपाध्याय डा० गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के मतानुसार महा कवि भास पाणिनि और कौटल्य से भी प्राचीन हैं। कौटिल्य ने युद्ध भूमि में सेनाओं के उत्साहवर्द्धन के लिये जिन जिन श्लोकों को प्रस्तुत किया है उनमें—

"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृतेन युध्येत्।"

यह श्लोक भास रचित 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में भी मिलता है। भास विरचित "प्रतिमा-नाटक" में भी पण्डितमूर्धन्य रावण ने "बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम् अधीये" कहकर अपनेको बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा है। भास का कौटिल्यसे पूर्ववर्तित्व इससे भी सिद्ध होता है क्योंकि भास के समय में कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र न बना हो।

भास की रचनाओं में पाणिनि प्रोक्त व्याकरण नियम की अव्यवस्था बहुशः पायी जाती है। यदि भास के समय पाणिनि होते या उनसे पूर्व हो चुके होते तो भास जैसे महाकवि क्या उक्त व्याकरण के नियम का उल्लंघन कर सकते थे। अत भास का समय पाणिनि से पूर्व मानना कोई अनुचित नहीं होगा।

शूद्रक कृत "मृच्छकटिक" नाटक पर भास रचित "दरिद्र-चारुदत्त" का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है, एवं विन्सेन्ट स्मिथ के कथनानुसार शूद्रक का शासन १२० से १९७ ई० पू० तक था। अतः भास ने "दरिद्र-चारुदत्त" की रचना यथा संभव ई० पू० चौथी या पाँचवीं शताब्दी में की होगी।

यद्यपि डा० टी० गणपति शास्त्री ने भास को बुद्धके पूर्ववर्ती माना है, परन्तु भास के नाटकों में जिन नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का वर्णन मिलता है वे सब सम्भव है बुद्ध के समय ही प्रसिद्धि प्राप्त किये होंगे। अतः बुद्ध के पश्चात् ही भास का समय माना जा सकता है।

द्वितीय मत ( २-३ ई० पू० ) मैंने पहले ही इस बात को चर्चा की है कि कालिदास ने अपने नाटक में भास की प्रशंसा की है। चूंकि कालिदास का समय डा० कीथ के अनुसार चौथी शताब्दी माना गया है, अतः भास का समय ३५० ई० तक माना जा सकता है। अपि च, अश्वघोष के नाटकों में भास की चर्चा बिल्कुल नहीं है अपितु "बुद्ध चरित" के एक श्लोक का स्पष्ट प्रभाव इसके प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" में मिलता है। अतः भास को अश्वघोष ( द्वितीय शताब्दी ) के बाद एवं कालिदास ( चतुर्थ या पंचम शताब्दी ) के बाद मानना चाहिए।

कुछ लोगोंने स्वप्न-वासवदत्तादि १३ नाटकों के कर्ता भास को न मानकर किसी केरल प्रदेशीय कवि को माना है और उनके मतानुसार उस कवि का समय सातवीं शताब्दी है।

इस प्रकार पाश्चात्य ऐतिहासिक गवेषकों के मतों के अध्ययन कर लेने के पश्चात् हम जिस-किसी भी प्रकार इसी निश्चय पर पहुँच पायेंगे कि "भास" मौर्य काल के पूर्व इस लिये विद्यमान थे कि इन्होंने भी तात्कालिक कवि की तरह अपने नाटकों में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। एवञ्च इन्हें कौटिल्य ( ४ थी शताब्दी ई० पू० ) के पश्चात् नहीं माना जा सकता।

## भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

### ( १ ) प्रतिमा

इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें राम-वनवास से लेकर रावण-वध पर्यन्त कथा वर्णित है। भरत कृत नाटयशास्त्र नियम के विरुद्ध दशरथ को

मृत्यु प्रस्तुत नाटक में रंग मंच पर ही अभिनीत की गयी है। अयोध्या के मृत राजाओं की प्रतिमाएँ देवकुल में स्थापित की जाती थी अतः उक्त नाटक का नाम "प्रतिमा" रखा गया।

( २ ) अभिषेक

छः अङ्कों के इस नाटक में किष्किन्धा सुन्दर तथा युद्ध काण्ड की रामायण-कथा वर्णित है।

( ३ ) अविमारक

इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के प्रेम की कहानी है। अविमारक का संकेत कामसूत्र में मिलता है। इस नाटक में प्रेम का सुन्दर एवं सरस चित्रण है।

( ४ ) बालचरित

इसमें श्री कृष्ण जन्म से लेकर कंसवध तक की कथाएँ वर्णित हैं। इसमें पाँच अङ्क हैं। कृष्णके बाल चरित का बहुत ही सजीव वर्णन प्रस्तुत नाटक में है।

( ५ ) पञ्चरात्र

इस नाटक में कवि ने महाभारत की एक कथा का चित्रण बिल्कुल अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर नवीन ढंग से किया है। दुर्योधन यज्ञ के समय आचार्य द्रोण को दान देने की प्रतिज्ञा करता है। उस दान में द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दे दो य दान माँग लेते हैं। शकुनि की सलाह से दुर्योधन स्वीकृति दे देता है परन्तु उसमें एक शर्त लगा देता है कि यदि पाँच रातों में इस बात की जानकारी पाण्डवों को लग जाए तब हम उन्हें आधा राज्य दे देंगे। जब कि पाण्डव लोग विराट नगर में थे। द्रोणाचार्य के प्रयास से पाण्डवों को इस बात का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य दे देता है। यही कथानक इस नाटक में बड़े ही मनोरम ढंग से वर्णित किया गया है।

( ६ ) मध्यमव्यायोग

इस नाटक में मध्यम पाण्डव ( भीम ) का मध्यम ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और हिडिम्बा से मिलन यह अन्त में वर्णित है। इसमें पुत्र का पिता

को न पहचानते हुए धृष्टता पूर्वक माँ के सम्मुख लाकर उपस्थित करने का वर्णन बड़े ही सरस एवं कौतूहलपूर्ण ढंग से वर्णित है।

## (७) दूतवाक्य

इस में महाभारत के युद्ध के पहले श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर कौरवों के पास जाते हैं यह कथा वर्णित है। कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाटकीयता का बड़ा ही महत्वपूर्ण दिग्दर्शन प्रस्तुत नाटक में किया गया है।

## (८) दूतघटोत्कच

इस नाटक में अभिमन्यु से दुःख सतप्त, एवं क्रुद्ध अर्जुन को प्रतिज्ञा कर लेने के बाद घटोत्कच पाण्डवो के पक्ष मे दूत बनकर दुर्योधन के पास उसके विनाश की सूचना देने जाता है। उद्धत घटोत्कच एवं दुर्योधन के वार्तालाप का चित्रण इसमे बहुत ही कौतूहल पूर्ण है।

## (९) कर्णभार

इस एकाकी नाटक में खिन्न मना कर्ण प्रवेश करता हुआ शल्य से अपने अध्ययन काल की बातों को बताता है कि परशुराम से मैंने किस प्रकार छल से शस्त्र विद्या सीखी, एवं 'यह क्षत्रिय है' ऐसा जानकर उन्होंने कैसे भीषण शाप मुझे दे डाला इत्यादि। अन्त में ब्राह्मण वेष में इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल की याचना करते हैं, शल्य के मना करने पर भी यश को स्थायी बताते हुए कर्ण उन्हें कवच-कुण्डल दे देता है। इसी कथा का अपने ढंग से कवि वर्णन करता है।

## (१०) स्वप्नवासवदत्तम्

यह कौशाबी के राजा उदयन की कथा पर आधारित है। इस नाटक में प्रिया में आसक्त राजा उदयन के राज-काज से बिल्कुल विमुख हो जानेपर शत्रुओं द्वारा अधिकृत राज्य भाग के अपहरण हो जाने पर उसका मन्त्री यौगन्धरायण (वासवदत्ता की अनुमति से) वासवदत्ता के लावाणक वन में जल जाने की झूठी खबर प्रसारित करवा कर, वासवदत्ता को गुप्त वेश में मगधराज की लड़की पद्मावती के पास रख देता है। वासवदत्ता को पद्मावती के पास रखने का कारण था कि ज्योतिषियों ने बताया था कि उदयन का दूसरा विवाह

पद्मावती से होगा। इस प्रकार यौगन्धरायण की चाल से मगध नरेश दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है। पद्मावती के समुद्र गृह में सोया हुआ उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है उसी समय वहाँ पर वासवदत्ता भी उपस्थित रहती है। वह स्वप्न आगे चलकर यथार्थ हो जाता है। अन्त में यौगन्धरायण सभी खोया हुआ राज्य मिल जाने पर भेद खोल देता है। इस नाटक में शुद्ध प्रेम का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है।

( ११ ) प्रतिज्ञायौगन्धरायण

इसमें भी उदयन की ही कथा वर्णित है। इसको हम स्वप्नवासवदत्तम् के पहले का नाटक कह सकते हैं। इसमें उदयन बनावटी लोहे के हाथी के छल से महासेन अवन्तिराज के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। वहाँ पर इसी अवस्था में वह अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने लगता है एवं उसी क्रम में उदयन एवं वासवदत्ता का प्रेम हो जाता है, और वह प्रेम इस स्तर तक बढ़ जाता है कि उदयन, यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है।

( १२ ) ऊरुभंग

इसमें भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध तथा दुर्योधन के ऊरुभंग की कथा वर्णित है।

( १३ ) चारुदत्त

इसमें उज्जयिनी के सार्थवाह चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रेम की कथा निरूपित है। चारुदत्त की कथा का आधार लोक कथा ही जान पड़ती है।

ऐसा जान पड़ता है कवि अपनी प्रतिभा से उन सभी क्षेत्र की कथाओं को नाटकीय रूप देना चाहता था जो उस समय लोक कथाके रूपमें हो कि वा ऐतिहासिक। जैसे स्वप्नवासवदत्तम् कर्णभारकी कथा जहां एक तरफ से ऐतिहासिक आधार पर आधारित है वहीं चारुदत्त और अविमारक की कथा बूढ़ी दादी-नानियों के द्वारा बच्चोंके मनोविनोद के लिये कही कथा की तरह प्रतीत होती है। यह कवि की अनुपम प्रतिभा का द्योतक ही तो है।

## भास का वैशिष्ट्य

संस्कृतके नाटकोंमें काव्यत्व खास गुण है; और ह्रासोन्मुख काल में तो यह काव्यत्व इतना बढ गया कि नाटक अपने स्वत्व को भी खो बैठे। संस्कृत नाटकों का मुख्य लक्ष्य रसानुभूति उत्पन्न करना रहा है न कि चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व बताना। और यही कारण है कि संस्कृत नाटकों में काव्यत्व अधिक पाया जाता है।

आधुनिक जिन नाटककारों पर "इब्सन" अथवा "गाल्र्सवर्दी" का प्रभाव पड़ा है वे यथार्थ चित्रण के इतने पक्षपाती दिखाई पड़ते हैं कि उनकी पद्धति ही प्राचीन नाटकों की पद्धति से अलग हो गयी है। नाटककार अपनी कृति के माध्यम से सफल तभी माना जायगा जब कि वह "नाटक में काव्यत्व का समावेश करता हुआ भी नाटक के स्वाभाविक गुण, जैसे—निबन्ध घटना चक्र की प्रवाहमयता, नाटकीय कौतूहल, दृश्यों का प्राकृतिक विनियोग और दर्शकगत प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखे। इस माने में कालिदास जैसे खरे उतरते हैं संस्कृत के अन्य कवि नहीं उतरते दिख पड़ते हैं। भवभूति केवल कविता के प्रवाह में बह जाते हैं।

भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बनकर आता है। भास की कविता में ऐसा नहीं जान पड़ता है कि कविने इसे बहुत खींच-तान कर जोड़ा हो। वह ऊपर से जुड़ी नहीं प्रतीत होती। भास के कवित्व पूर्ण पद्य घटनाचक्र को प्रवाहित करते जान पड़ते हैं। भास के नाटकों की प्रभावोत्पादकता उसके सरल भाषा से पूर्ण एवं असमाश्रित या अल्प समाश्रित पात्रों का संवाद और प्रसंगानुकूल भावों से पूर्ण पद्य से स्वभावतः ही अनूठी है।

भास का खास लक्ष्य नाटकीय योजना था। भास की शैली प्रसाद गुण युक्त है, किन्तु वीर रस के वर्णनोंमें वह ओज का भी प्रदर्शन करती है। इस प्रकार कवि की दृष्टि से अश्वघोष की अपेक्षा भास हल्के हैं। इनके नाटकों के अध्ययन के पश्चात् यह समझ में आता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में (प्रतिमा) में न वह रसवत्ता ही पायी जाती है या न तो पात्रों का उतना प्रभाव पूर्ण चरित्र चित्रण ही हो पाता है जो एक नाटककार के लिए अपेक्षित है।

महाभारत से सम्बद्ध नाटकों को भी प्रथम श्रेणी का इस लिए माना जाता है क्योंकि उनमें वर्णित कथानकों में रचयिता की भावनाएँ उदात्त दिखाई पड़ती हैं एवं चरित्र-चित्रण भी रसानुकूल नियोजित किया गया है। उदयन कथा से सम्बद्ध नाटकों को हम कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ कह सकते हैं क्योंकि इन नाटकों में वर्णित कथाओं में उपस्थित नाटकीय परिस्थिति के द्वारा कवि पूर्ण रूपेण सफल दिखाई देता है। प्रणय जैसे विलक्षण विषय का अवलम्ब लेकर कवि ने इन नाटकों में मानव मन का बहुत ही सजीव सरस एवं स्पष्ट चित्रण किया है। भास ने इन नाटकों में सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह बड़े मनोरम ढंग से किया है।

नाट्यकला, जिस समय बाल्य अवस्था में पलने में झूल रही थी, भास ने अपनी रचना के माध्यम से उस शिशु को पृथ्वी पर चलाने का बहुत ही साहस एवं महत्त्व पूर्ण प्रयत्न किया। इस कारण ही उनके नाटकों में 'पूर्ण परिपक्व नाटकीय निर्देश' ( निष्क्रम्य प्रविशति ) कथानक रूपों में यत्र-तत्र काल-निर्णय का ध्यान न देने जैसे दोष दिखाई पड़ते हैं।

इन प्रचुर: त्रुटियों के रहने पर भी भास की कला महान् है। उसमें अपेक्षित प्रौढ़ता के न रहने पर भी भाव-गाम्भीर्य और रमणीयता है।

भास की शैली—

अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं से पूर्ण शैली के कारण भास की अभिव्यञ्जना बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इनके नाटकों में श्रृंगार और ओज के साथ ही माधुर्य की संयोजना इतने सुन्दर ढंग से की गयी है जो सहृदयों को अनायास ही मुग्ध कर देती है। इनकी शैली अलंकारों पर ही नहीं अपितु भावनाओं को स्पष्ट कर अपने को कृतकृत्य मानती है। परिणाम स्वरूप कृत्रिमता का स्थान स्वाभाविकता ने ले लिया है। भास ने उन अलंकारों का प्रयोग किया है जो बहुत ही सरलता से समझ में आ जाते हैं, अतः वे स्वाभाविक से लगते हैं और उनसे वस्तु चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भास को भाव योजना की एक अपूर्व सफलता मिली है। इसका कारण उनकी सरल शैली और अद्भुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही है। इनके नाटकों में दुरूह कल्पना का अभाव,

समासाल्पता एवं प्रवाहमयता को देखकर कुछ विद्वानों ने उन पर रामायण का प्रभाव माना है जो उचित भी प्रतीत होता है।

भास ने लोकोक्तियों के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है। जैसे—

"आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण वार्यते ( मध्यम व्यायोग )
दृप्तोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं दर्पयेद्वने ( मध्यम व्यायोग )
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य—पङ्क्तिः ( स्व०:वास० )
इत्यादि ॥

## कर्णभार का एक समालोचनात्मक अध्ययन

कोई भी कलाकार अपनी रचना के प्रसार के लिए एक छोटा सा आधार पहले ग्रहण करता है; पश्चात् अपनी प्रतिभा; तर्क, और कल्पना के द्वारा उसीका विस्तार करता है। प्रस्तुत नाटक में भी भासने महाभारत की एक छोटी सी कथा का आधार लिया और उसी को अपनी अद्भुत सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा नाटक का रूप दिया है।

इस नाटक में निबद्ध कथावस्तु महाभारत में अनेक जगह बिखरी है; नाटककार ने उसे अपनी कल्पना के माध्यम से एक जगह निबन्धित किया जो सहृदयों को सहज ही आनन्दप्रद सिद्ध हुई।

कपट वेश में ब्राह्मण का रूप ग्रहण कर इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन के विजय के लिये कर्ण से उसका जन्मजात कवच और कुण्डल माँग लेते हैं। अपने पिता सूर्य के द्वारा स्वप्न में कवच कुण्डल न देने की चेतावनी देने के बाद भी कर्ण अपनी दान देने की सहज प्रवृत्ति या दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण इन्द्र को कवच-कुण्डल दे देता है। दान लेकर लज्जित इन्द्र पुन. कर्ण को "विमला" नाम की शक्ति देते हैं परन्तु दानवीर कर्ण दान के बदले कुछ भी नहीं लेने का अपना निश्चय उस देवदूत को सुनाता है, परन्तु पश्चात्ताप से संतप्त इन्द्र अपने मन: संतोष के लिये उसे "ब्राह्मण की आज्ञा है" शक्ति लेने को बाध्य कर देते हैं। महाभारत में यह कथा उस समय वर्णित है जिस समय पाण्डव लोग वन में निवास कर रहे थे परन्तु महाकवि भास ने नाटक

में उसे युद्ध क्षेत्र में अभिनीत कर अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए दर्शकों को कर्ण के प्रति संवेदना प्रकट करने को बाध्य कर दिया है। जो कर्ण युद्ध क्षेत्र में कुपित यमराज सा लगता था वही आज अपनेको अनुत्साहित पा रहा है, परशुराम के अभिशाप से उसके शस्त्र मूर्छित से लग रहे हैं और ऐसी दशा में सहज कवच-कुण्डल का भी चला जाना दर्शकों के लिए अवश्य करुण सिद्ध होगा।

महा कवि भास अपने नाटक के नायक को उस उच्च भूमिका पर उतारना चाहते हैं जो एक वीर के लिये होनी चाहिए। कर्ण यद्यपि विपरीत परिस्थिति; अभिशाप और कवच-कुण्डल के चले जाने से अपने को निःसहाय पाता है; फिर भी शल्य के यह कहने पर कि आप ठगे गये, अर्थात् आप को दान नहीं देना चाहिए था वह उसे फटकारता है। कर्ण कहता है कि संसार में सभी भावात्मक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं यहाँ तक कि विद्या भी समय आने पर विस्मृत हो जाती है परन्तु यश नहीं विनष्ट होता, दूसरी बात यदि मैं युद्ध में विजयी हुआ तो राज भोग करूँगा और यदि मारा गया तो स्वर्ग प्राप्त करूँगा एक सच्चा मनस्वी वीर ही कह सकता है। इस तरह नाटकों का जो लक्ष्य विद्वानों को अभिमत है उसमें यह नाटक सहज ही खरा सिद्ध हुआ है।

## महाभारत और कर्णभार की कथावस्तु में भेद

( क ) महाभारत में ब्राह्मणयाचकके रूप में इन्द्रका कर्ण से कवच-कुण्डल माँगने की कथा उस समय आती है जिस समय पाण्डव वनवास कर रहे थे। परन्तु प्रस्तुत नाटकमें कवि ने इस कथाका संयोजन एक ऐसे समय किया है जो प्रेक्षकों के लिए प्रभावोत्पादक, आश्चर्यजनक और कौतूहलपूर्ण है, साथ ही युद्धके ऐन-मौके पर सहज कवच-कुण्डल का चला जाना करुणा-पूर्ण भी है।

( ख ) महाभारत में "कल इन्द्र तुम से कवच कुण्डल भिक्षा माँगेगा तुम मत देना" इस बातकी सूचना सूर्य स्वप्न में आकर कर्ण को पहले ही दे देते हैं, परन्तु भास ने इस बात का संकेत अपने नाटक में कहीं नहीं किया। परिणाम स्वरूप नाटक प्रभावशाली एवं कौतूहल-पूर्ण रहा। अन्यथा उस घटना के

संघटन से हो सकता है दर्शकों को युद्ध के समय अचानक कवच कुण्डल माँग लेने से कर्ण के प्रति जो सहानुभूति उत्पन्न हुई थी समाप्त हो जाती।

( ग ) महाभारत में कर्ण कवच-कुण्डल देकर स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है परन्तु इस नाटक में कर्ण निःस्पृह होकर स्वयं उक्त दोनों का दान करता है। देवदूत के द्वारा शक्ति के देने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता, फिर ब्राह्मण की आज्ञा है ऐसा कहने पर विवश होकर ग्रहण करता है। प्रस्तुत कल्पना के द्वारा कवि ने कर्ण को जो महत्वास्पद स्थान दिया सम्भवतः मूल कथा के आधार पर वह कुछ हीन सा प्रतीत होता।

( घ ) महाभारत में शल्य, बार-बार कर्ण को अपनी कटूक्तियों से धर्षित एवं अनुत्साहित करता रहता है, परन्तु प्रस्तुत नाटक का शल्य एक सच्चे सारथी की तरह समयोचित परामर्श कर्ण को देता है एवं संवेदना प्रकट करता है।

( ङ ) प्रायः संस्कृत के अन्य सभी नाटकोंमें यह देखनेको मिलता है कि जो पात्र शूद्र, स्त्री, या अशिक्षित हों वही प्राकृत-भाषा में बोलते अभिनीत किये जाते है, परन्तु इस नाटक में ब्राह्मण रूपमें इन्द्र प्राकृत भाषा में बोलते दिखाई देते हैं। इत्यादि॥

## नाटक का नामकरण

प्रायः जो शब्द कथानक के पूरे अन्तर्हित अर्थ का प्रकाशन अपने लघु शब्दावलियों से कर दे वही नाटकों का शीर्षक या नाम कहा जाता है। कभी-कभी कथानकों के बीच में घटित घटनाओं के आधार पर भी नाटकों का नामकरण दिया जाता है। प्रस्तुत नाटक में ऐसी कोई घटना नहीं दिखाई पड़ती जो "कर्णभार" शब्द की स्पष्ट व्याख्या कर सके। परन्तु इस विषय में विद्वानों ने जो कुछ व्याख्यायें की है उनका उल्लेख कर पश्चात् यथामति मैं भी कुछ विचार करने का प्रयत्न करूँगा।

प्रो० ए० डी० पुसलकर जी का कहना है कि चूँकि दार्शनिक रूप दान में पहले से ही दे दिये गये कवच और कुण्डल भार स्वरूप हो गये थे और उन्हीं के

दान को केन्द्र बिन्दु मानकर प्रस्तुत नाटक की रचना की गयी है अतः इसका नाम कर्णभार रखा गया। डा० विण्टर नित्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के दुर्धर्षकार्य को केन्द्र बिन्दु मानकर किया है। डा० भट्ट कर्णभार की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि कर्ण के ऊपर कौरव सेना का सञ्चालन और उनकी रक्षा का भार सौंपा गया था जो उसके लिये चिन्ता का विषय बन गया था और उसीको चरितार्थ करने का प्रयास इस नाटक में किया गया है और चिन्ता कर एक अर्थ भार भी माना जा सकता है अतः इस नाटक का नाम कर्ण भार रखा गया।

यथार्थ रूप में यदि विचार किया जाय तो इस नाटक का कर्णभार नाम कर्ण के मानसिक दुःख, अचानक उसके मन का निरुत्साहिता को ध्यान में रखकर रखा गया है। कर्ण महाभारत का बहुत ही उच्चस्तर का सेनानी है। वह अपने जीवन में बराबर इस बात का स्पष्टी करण संसार के सामने करने का प्रयास करता रहा है कि कर्ण और अर्जुन में कौन बड़ा योद्धा है वह अर्जुन से सर्वदा द्वन्द्व युद्ध का इच्छुक रहा है और आज जब वह युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के साथ युद्ध करने का अवसर पाता है अचानक उसका मन भारी सा होने लगता है वह अपने को निरुत्साह पाता है, उसके घोड़े उसे युद्ध से लौट चलने का संकेत सा कर रहे हैं, उसके अस्त्र-शस्त्र वीर्य हीन से उस प्रतीत होते हैं, यही सब उसके भारस्वरूप हो गये और इसीलिये इसका नाम कर्णभार रखा गया।

## दो बातें

महा कवि भास की यह कृति कर्णभार जो अपने छोटे कलेवर के द्वारा भी सहृदयों को 'ब्रह्मानन्द स्वाद सहोदर'' की अनुभूति कराने में समर्थ है,'' विद्वानों के समस्त छात्रों के उपकार की दृष्टि से प्रकाशित होने जा रहा है। आशा है यह नवीन संस्करण अपने लक्ष्य पूर्ति में सफल होगा। यद्यपि इस पुस्तक की अन्य कई टीकाएँ बाजार में उपलब्ध हैं फिर भी इस संस्करण का प्रकाशित होने का कारण यह है कि जहाँ-जहाँ महाकविभास पौराणिक कथाओं का संकेत अपने छोटे से वाक्य के द्वारा करके अग्रसर हो गये, उन स्थलों

का स्पष्टीकरण करते हुए कथानक को सरल ढंग से समझाने का प्रयास इस संस्करणमें किया गया है। अब यह अपने लक्ष्य में कहाँ तक ठीक है इसका उत्तर विद्वान्; सहृदय आलोचक या उपकृत छात्र ही दे सकते हैं लेखक नहीं। इसकी भूमिका प्रस्तुत करने में कतिपय इतिहास ग्रन्थों को देखना पड़ा है और उनकी सहायता ली गयी है अतः मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ।

कर्णभार की प्रस्तुत व्याख्या मैं क्या कर सकता था जो कुछ भी किया वह पूज्य गुरु चरण श्री प० कीर्त्यानन्द झा जी का शुभाशीर्वाद एवं मित्रवर श्री राधारमण ठाकुरजी का सहयोग ही है। अतः इन दोनों व्यक्तियों की कृतज्ञता का अनुभव कर मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ। एवञ्च सबसे बड़ा कृतज्ञ तो अग्रजस्वरूप पं० श्री हरेकान्त जी मिश्र का हूँ जिन्होंने अपनी अंगुली का सहारा देकर इसपथ पर चलना सिखाया। प्रकाशक महोदय ने जो मुझे इस संस्कृत सेवा का अवसर प्रदान किया अत. उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

मेरे परिश्रम की सफलता विद्यार्थियों के लाभ से ही है, अतः यदि छात्र गण इससे कुछ भी लाभान्वित हुए तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

वाराणसी<br>
वि० सं० २०३४

वैद्यनाथ

॥ श्री. ॥



# कर्णभारम्

## 'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्



### प्रथमोऽङ्कः

राधा-पूजित-पाद-पद्म - युगलं कृष्णं प्रणम्याधुना।
कीर्त्यानन्द-गुरुं प्रणम्य शिरसा छात्रस्तदीयो मुदा।
टीका "मिन्दुकला" करोमि सरला छात्रोपकाराय वै।
भासाविष्कृत-कर्णभा सुकृतेः काश्यां गुरोः सन्निधौ॥

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

सूत्रधार—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकन-भ्रान्तनारी-
नरदनुजसुपर्वव्रातपातालतलोक ।
करजकुलिश-पाली-भिन्नदैत्येन्द्रवक्षा
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः ॥ १ ॥

तत्रभवान् सकलकविकुलचूडामणिः, कालिदासादिभिः संकीर्तितगुणगण',
प्रतिज्ञायौगन्धरायणाद्यनेक-नाटक-निर्माता, कविताकामिन्याः हासः महाकविर्भासः

कोशः—व्यग्रो व्यासक्त आकुले।

भावार्थः—सूत्रधारः दर्शकान् किञ्चिद् विवक्षति तदैव नेपथ्ये कोलाहल इव शृणोति तदेव कथयति कथमयं कोलाहल इति पश्यामि।

हिन्दी:—इस प्रकार आप महानुभावों को मैं सूचित करता हूँ कि ( घूम कर ओर नेपथ्य की ओर कान लगाकर ) अरे! जिस समय मैं सूचना देने में संलग्न हूँ कुछ कोलाहल सा सुन रहा हूँ। अच्छा देखूँ तो, क्या है ?

( पर्दे के पीछे )

विशेष—नाटक में "नेपथ्य" उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर नाटक के सभी पात्र वस्त्राभूषण धारण करते हैं, वेशभूषा से सुसज्जित होते हैं। रङ्गमञ्च और प्रेक्षागृह जहा सब पात्र सुसज्जित होते हैं उसके बीच में लगे हुए पर्दे को भी सुविधा के लिये 'नेपथ्य" कहा जाता है।

भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय। भवतु विज्ञातम्।

सूत्रधारः—

संग्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः।
निवेदयति संभ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

( निष्क्रान्तः )

॥ प्रस्तावना ॥

( ततः प्रविशति भटः )

अन्वयः—जाते, तुमुले, संग्रामे, कलिताञ्जलिः, संभ्रान्तः, भृत्यः, दुर्योधनाज्ञया कर्णाय, निवेदयति ॥ २ ॥

व्याख्या:—जाते = संप्राप्ते; तुमुले = भयङ्करे संग्रामे = रणे, कलिताञ्जलि = कलितः = विहितः अञ्जलिः = हस्तसम्पुटो येनासौ, अञ्जलिं बध्वा इत्यर्थः। संभ्रान्तः = व्यग्रः; भृत्य. = परिचारक ; दुर्योधनाज्ञया = कौरवाधिपादेशेन, कर्णाय = अङ्गेश्वराय, निवेदयति = सूचयति। "श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु

पञ्चमम । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ॥ इति लक्षणानुसारमत्र "अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

समासः—कलितः अञ्जलिर्येन सः कलिताञ्जलिः ( तृ० तत्० ) । दुर्योधनस्य आज्ञया दुर्योधनाज्ञया ( ष० तत्पुरुष ) ।

कोशः—संप्रहाराभिसम्पातकलिसंस्फोट-संयुगाः ।

अभ्यामर्दसमाघातसंग्रामाभ्यागमाहवाः ॥

तुमुलं रण संकटे इत्यमरः । अववादस्तु निर्देशो निदेशः शासनं च सः । शिष्टिश्चाज्ञा च इत्यमरः । भृत्ये दासेरदासेय दासगोप्यकचेटकाः । नियोज्य-किङ्करप्रैष्य भुजिष्यपरिचारका इत्यमरः ॥

भावार्थः—सूत्रधारः नेपथ्ये किञ्चिदाकर्ण्य दर्शकान् कथयति यत् कथमय कोलाहलो जातः इति ज्ञात मया घोरे रणसङ्कटे समागते व्याकुलः दुर्योधनानुचरः तदाज्ञया कर्णाय निवेदयति यत् इदानीं संग्रामोऽभूदिति ॥

हिन्दी:—हे ! हे ! ( लोगों ) महाराज अङ्गनरेश कर्ण को सूचित करें !

सूत्रधारः—अच्छा जान लिया ।

भयङ्कर युद्ध उपस्थित हो जाने पर घबड़ाया हुआ दुर्योधन का दूत उसकी आज्ञा से हाथ जोड़कर अङ्गदेशाधिपति महाराज कर्ण को युद्ध की सूचना दे रहा है ॥ २ ॥ [ सूत्रधार चला जाता ]

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

विशेषः—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्र-प्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा" ॥ 'साहित्यदर्पण" के इस लक्षण के अनुसार यहाँ पर प्रयोगातिशय नामक तृतीय प्रस्तावना है ।

कथा को आगे बढ़ाने के लिये "नाटक के आरम्भ में सूत्रधार द्वारा जो भूमिका प्रस्तुत की जाती है उसे प्रस्तावना कहते हैं ।

( ततः प्रविशति भटः )

भटः—भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय युद्धकाल उपस्थित इति ।

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्ताद्
मुदितनृपतिसिंहैः सिंहनादः कृतोऽत्र ।
त्वरितमरि-निनादैर्दुस्सहालोकवीरः
समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

अन्वय—पार्थकेतो, पुरस्ताद्; करितुरगरथस्थैः मुदितनृपतिसिंहैः; अत्र सिंहनादः कृत.। अरिनिनादैः; दुस्सहालोकवीरः अधिगतार्थः; नागकेतुः; त्वरितम्, समरम्, प्रस्थितः ॥ ३ ॥

व्याख्याः—पार्थस्य = अर्जुनस्य केतो = ध्वजस्य पुरस्ताद् = अग्रतः करिण = नागाः = वाजिन, रथाः = स्यन्दमानि तेषु तिष्ठन्ति, तैरिति = करितुरगरथस्थैः नागाश्वस्यन्दनस्थितैः, मुदिता. = प्रसन्ना नृपतय = अर्जुनपक्षपातिन भूपतय एव सिंहाः = नृपतय तैः मुदितनृपतिसिंहैः = प्रसन्न-राजपञ्चाननैरितियावत्, अत्र = युद्धे; सिंहनाद = सिंहगर्जन कृतमिति । अतः अरिनिनादैः = शत्रुजनैः; दुस्सहः = वोढुमशक्य परैरिति यावत्; आलोक. = तेजोविशेष ; यस्य स चासौ वीरश्च = शूरश्चेति दुस्सहालोकवीरः = अपरिमितप्रभाशालीयोद्धा इत्यर्थः; अधिगतार्थ = ज्ञातप्रयोजन.; नागकेतु. = नाग. = हस्ती केतौ=ध्वजे यस्य सः नागकेतु. = हस्तिध्वजः; त्वरितम् = शीघ्रम् समरम् = युद्धस्थल "प्रतीति शेष." प्रस्थित = प्रचलित ॥ "ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकै" इति लक्षणानुसारमत्र "मालिनी" छन्दः ॥ ३ ॥

समासः = करिणश्च तुरगाश्च रथाश्चेति करितुरगरथम् (द्वन्द्व०) तेषु तिष्ठन्ति ये ते करितुरगरथस्थास्तैः पूर्वोक्तैः ॥ पृथाया अपत्यं पुमान् पार्थः; पार्थस्य केतुः पार्थकेतुस्तस्य (ष० तत्पुरुष)। मुदिताश्चतेनृपतय. मुदितनृपतय तएव सिंहाः तैः पूर्वोक्तैः। दुस्सहः आलोको यस्य स दुस्सहालोक. (बहु०) स चासौ वीरश्च दुस्सहालोकवीर. (द्वन्द्वः)। अधिगतः अर्थो येन स अधिगतार्थ (बहुव्रीहि.)। नाग केतुर्यस्य स नागकेतु. (बहुव्रीहिः)।

कोशः—दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः ।
मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करीत्यमरः ॥

घोटके वीतितुरग-तुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धव सप्तय.। इत्यमरः। याने चक्रिणि युग्यार्थे शताङ्ग. स्यन्दनो रथः इत्यमरः। ग्रहभेदे ध्वजे केतुः इत्यमरः। राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः। रिपौ वैरि सपत्नारिद्विषद् द्वेषणदुर्हृदः। इत्यमरः॥

भावार्थः—अर्जुनस्य पताका समक्षं हस्त्यश्वरथस्थैः प्रसन्नैः सिंह-सदृशबलशालिभि. नृपैः रणाङ्गणे सिंहनादो विहितः, अत एव शत्रुगर्जनैरमित-तेजोवान् दुर्योधन' शीघ्रमेव युद्धस्थलं प्रति प्रयात इति।

हिन्दीः—( भट प्रवेश करता है )

भटः—ऐ लोगों! महाराज अङ्गनरेश ( कर्ण ) को निवेदन कर दें कि युद्ध का समय उपस्थित हो गया है।

अर्जुन की ध्वजा के सामने हाथी, घोड़े और रथ पर बैठे हुए, प्रसन्न, सिंह के समान वीर राजाओं ने यहाँ रणभूमि में सिंह गर्जना की, शत्रुगर्जना के कारण जिसके तेजो विशेष को दूसरा सहन नहीं कर सकता एवं जिसके ध्वज में मणिमय हाथी का चिह्न है वे दुर्योधन शीघ्रता' से रणभूमि के लिये प्रस्थान कर चुके हैं॥ ३॥

( परिक्रम्य विलोक्य ) अये अयमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृत. शल्यराजेन सह स्वभवनान्निष्क्रम्य इत एवाभिवर्तते। भोः किं न खलु युद्धोत्सव-प्रमुखस्य दुष्पराक्रमस्या-भूतपूर्वो हृदयपरितापः।

एष हि—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्य
शौर्ये च संप्रति सशोकमुपैति धीमान्।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्ण.॥ ४॥

शल्यः—बाढम् । ( चोदयति )

कर्णः—अहो नु खलु ।

अन्वयः—तावत्, मम, शरमार्ग-लक्ष्यभूता.; क्षितिपतयः; सजीवशेषाः; मा संप्रासाः । रणशिरसि; कुरूणा; प्रियं कर्तव्यं ( वर्तते ) यदि स धनञ्जयो मे द्रष्टव्यो भवेत् ॥ ५ ॥

व्याख्याः—तावत् = अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेष्वित्यर्थः; मम = कर्णस्य शर । णाम् = बाणानाम्, मार्गे = पथि, लक्ष्यभूताः = लक्ष्यत्वं गताः; क्षितिपतयः = राजानः; सजीवशेषाः – प्राणवन्तः; मा संप्रासाः = नाऽभूवन् । सर्वे हता इत्यर्थः (अद्यतने) रणशिरसि = युद्धमध्ये; कुरूणाम् = धार्तराष्ट्राणाम्; प्रियम् = अभीष्टम्; कर्तव्यम् = कार्यम् ( वर्तते ) यदि = चेत्; सः = अस्मद्प्रतिभट ; धनञ्जयः = अर्जुन मे = मम द्रष्टव्य = दृष्टिगोचर.; भवेत् = स्यात् । कौरवाभीप्सितमर्जुनवधं विधाय तेषामभिलाषं पूरयिष्यामि ॥ अत्र प्रहर्षिणी छन्द । तल्लक्षणञ्च "म्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षणीयम्" ॥ ५ ॥

समासः—शराणाम् मार्गः = शरमार्गं ( ष० तत्० ) तस्य लक्ष्यभूताः शरमार्गलक्ष्यभूताः ( ष० तत्पु० ) । जीवेन सहिता इति सजीवा त एव शेषाः सजीवशेषा. । रणस्य शिरः रणशिरः तस्मिन् रणशिरसि ( ष० तत्पु० )

कोशः—पृषत्कबाणा विशिखा अजिह्मगखगाशुगाः ।
　　कलम्बमार्गणशरा पत्रीरोप इपुर्द्वयोः । इत्यमरः ।
　　अयनं वर्त्म - मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिरित्यमरः ॥
　　अभीष्टे अभीप्सितं हृद्य दयितं वल्लभ प्रियमित्यमरः ॥

भावार्थः—कर्ण स्वमनोगतं भाव . व्यनक्ति यद्; अद्यावधि पूर्वेषु युद्धेषु मम बाणलक्ष्यीभूताः केऽपि राजानः जीवन्तः सन्त नागच्छन् । अद्य यदि युद्धे अर्जुने दृष्टिगोचरो भवेत् तर्हि तं निहत्य कौरवाभिलाष पूरयामीति ॥

हिन्दी —( भट के चले जाने के बाद पूर्वनिर्दिष्ट कर्ण और शल्य प्रवेश करतेहैं । )

कर्णः—आज तक ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि कोई भी राजा मेरे बाणों के रास्ते में आकर जीवित चला गया हो। आज इस युद्ध में, मैं कौरवों का अभिलाषा पूर्ण कर दूँ यदि अर्जुन को देख जाऊँ तो ॥ ५ ॥

शल्यराज ! जहाँ पर वह है मेरे रथ को वहीं ले चलो।

शल्यः—अच्छा। ( रथ ले जाता है )

कर्णः—ओहो, यह कैसे—

अन्योन्यशस्त्र-विनिपात-निकृत्तगात्र—
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु।
क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

भो कष्टम्।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः।
युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अन्योन्येति। अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारणरथेषु; महाहवेषु, क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणः; ममापि, चेतसि; युद्धकाले, वैधुर्यमापतति ॥ ६ ॥

व्याख्याः—अन्योन्यम् = मिथः; शस्त्राणाम् = बाणादीनाम् विनिपातैः = प्रहारैः. निकृत्तगात्राः = विक्षतविग्रहाः; योधाः = सैनिकाः; अश्वाः = हयाः; वारणाः = हस्तिनः रथाः = स्यन्दनाः येषु; तेषु महाहवेषु = महारणेषु, क्रुद्धः = कुपितः अन्तकः = यमराजः तत्प्रतिमम् = तादृशः; विक्रमः = पराक्रमो यस्य; ( तस्य ) ममापि = कर्णस्यापि चेतसि = हृदये; युद्धकाले = रणसमये; वैधुर्यम् = दैन्यम्, आपतति = आगच्छति ॥ ६ ॥ अत्र वसन्त तिलका वृत्तं लक्षणन्तु पूर्वोक्तमेव ॥

समासः—अन्योन्य शस्त्राणां विनिपातः = अन्योन्यशस्त्रविनिपातः ( ष० तत्पु० ) निकृत्तानि गात्राणि येषां ते निकृत्तगात्राः ( बहुव्रीहिः ) अन्योन्यशस्त्र-

अन्वयः—अयमेति। अयं सः क्रमलब्धशोभनः, काल आगतः अयं गुणप्रकर्षः, दिवसः, आगतः, मया हि, निरर्थम् अस्त्रम्, शिक्षितम्, पुनश्च, मातुर्वचनेन वारितः, अस्मीति शेषः ॥ ८ ॥

व्याख्याः—अयम् = उपस्थितः, सः = बहुसमय-प्रतीक्षितः, क्रमेण = दिवस-क्रमेण लब्धः = प्राप्तः, शोभनः = रमणीयः कालः = समयः आगतः = सम्प्राप्तः, अयम् = एव गुणप्रकर्षः = सद्गुणप्रकृष्टः दिवसः = वासरः आगत = प्राप्तः, हि = परन्तु मया = कर्णेन, निरर्थम् = निष्प्रयोजनम्, अस्त्रम् = आयुधम् शिक्षितम् = अभ्यस्तम् पुनश्च = भूयोऽपि मातुर्वचनेन = कुन्तिवचसा वारित. = निषिद्धोऽ-"स्मी"ति शेषः। पद्येऽस्मिन् 'वंशस्थ" नामक छन्दः। तल्लक्षणञ्च "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इति ॥ ८ ॥

समास.—क्रमेण लब्धः = क्रमलब्धः (तृ० तत्पु०) क्रमलब्धश्चासौ शोभनः क्रमलब्धशोभनः (कर्मधारय) गुणानां प्रकर्षोऽयस्मिन्निति, गुणप्रकर्षः (बहुव्री०)।

कोश.—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः। इत्यमरः। सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्। इत्यमरः। घस्रो दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ। इत्यमरः। व्याहार उक्तिर्लपितं भाषित वचनं वचः। इत्यमर।

भावार्थ—चिरकालात् प्रतीक्षितोऽयं समयोऽप्यागतः। सद्गुणः युक्तोऽयं वासरोऽप्यागतः "युद्धस्य"। किन्तु मया परशुरामेण व्यर्थमेवास्त्रं शिक्षितम्, एवञ्च मात्रा कुन्त्या "युधिष्ठिरादिके अस्त्रप्रहारो मा कृथा." इति बहुवारं निषिद्धोऽस्मि ॥ ८ ॥

हिन्दीः—मैं जिसकी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रहा था वह युद्ध का समय भी आ गया और आज का दिन भी अनेक सद्गुण से युक्त है (अत एव उपयुक्त है)। परन्तु मैंने शस्त्रों का अभ्यास व्यर्थ ही किया, और माँ कुन्ती ने "युधिष्ठिरादि पर शस्त्रप्रहार न करना" ऐसा कहकर बहुत बार मना भी किया है ॥ ८ ॥

ओ! शल्यराज, मेरे शस्त्रों की कहानी सुन लीजिये।

शल्य—मुझे भी इस कहानी को सुनने का कौतूहल है। ( सुनाइये )

कर्ण—पहले एक बार मैं परशुराम के समीप गया था।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

विद्युल्लता–कपिलतुङ्ग–जटा–कलाप-
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम्।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

अन्वय:—विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलापम्, उद्यत्प्रभावलयिनम्, परशुं दधानम्, क्षत्रान्तकम्, मुनिवरम्, भृगुवंशकेतुम्, निकटे, गत्वा, प्रणम्य, निभृत, स्थितः, अस्मि ॥ ९ ॥

व्याख्याः—विद्युल्लता = सौदामिनीलता, 'इव" कपिलाः = पिशङ्गा', पिङ्गलवर्णा इत्यर्थः, तुङ्गाः = महान्तः जटाः = सटा. "तासा' कलापः = निचयो यस्य तम, उद्यन्ती = उर्ध्वं गच्छन्ती, या प्रभा = ज्योति तस्या. वलयम् = प्रकोष्ठ यस्य तम्, स्फुरत्कान्तिपरिधिमन्तमित्यर्थ.; परशुम् = कुठारम् 'एतन्नामकास्त्र-विशेषम्', दधानम् = धारयन्तम्, क्षत्रान्तकम् = क्षत्रियाणाम् कालम् मुनि-वरम् = ऋषिश्रेष्ठम्, भृगुवंशकेतुम् = भार्गवकुलकेतुम्, निकटे = समीपे गत्वा = उपसृत्य, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, निभृत = शब्दरहित स्थित. = अव-स्थित', अस्मि = सवृत्त । अत्र वसन्ततिलका छन्द ॥ ९ ॥

समासः—विद्युदेव लता = विद्युल्लता; वद्वत्कपिलाः विद्युल्लताकपिला, जटायाः कलापः जटाकलापः, ( ष० तत्पु० ) तुङ्गाश्च ते जटा कलापाः तुङ्ग-जटाकलापाः; विद्युल्लताकपिलाश्च ते जटाकलापाविद्युल्लता–कपिलजटाकलापा यस्य तम्, उद्यन्तीचैवा प्रभा च उद्यत्प्रभा ( कर्मधारयः ) उद्यत्प्रभैव वलय यस्य तम्, उद्यत्प्रभावलयिनम् ।

कोशः—तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि । इत्यमर' । कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ इत्यमरः । स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड् भाभा-श्छविद्युति दीप्तयः रोचिशोचि. । व्रतिनस्तु जटा सटा इत्यमर । निभृतविनीत-प्रश्रिताः समा. । इत्यमरः समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत् इत्यमरः ।

भावार्थः—विद्युत्प्रभेवकान्तिमन्तं जटाकलापं धारयन्तं क्षत्रियकुलान्तकं कुठारनामकस्त्रविशेषधारिणं परशुराम-नामकं भार्गव-कुलकेतुं समीपं गत्वा तूष्णीं स्थितः आसमिति, कर्णः स्वशस्त्राभ्यास-प्रसंगं कथयति शल्यम् ॥

हिन्दी —बिजली के समान पीली एवं बड़ी जटा समूह को धारण करने वाले; प्रभामण्डल से परिवेष्ठित; "परशु" नामक अस्त्रविशेष धारण करनेवाले; क्षत्रियकुल के लिये काल समान, मुनिश्रेष्ठ, भृगुकुलकेतु ( परशुराम ) के समीप जाकर प्रणाम करके मैं चुपचाप बैठ गया ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि । को भवान् किमर्थमिहागत इति ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः भगवन् अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः उक्तोऽहं भगवता ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि न क्षत्रियाणामिति ।

शल्य —अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियवंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्ण —ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं मया ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः कतिपय कालातिक्रमे कदाचित् फलमूलसमित्कुशकुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः —ततः स गुरुर्वन-भ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपगतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

हिन्दी—शल्यः—उसके बाद ?

कर्णः—तब फिर परशुराम ने आशीर्वाद देकर मुझे पूछा कि; आप कौन है और यहाँ किस लिये आये हैं ?

शल्यः—उसके बाद ?

कर्ण—तब भगवन् ! "सम्पूर्ण अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ" ऐसा मैंने कहा।

शल्य—तब फिर ?

कर्ण—उसके बाद भगवान ( परशुराम ) ने मुझसे कहा कि; मैं केवल ब्राह्मणों को ही अस्त्र विद्या सिखलाता हूँ, क्षत्रियों को नहीं।

शल्य—परशुराम की क्षत्रियों से पुरानी दुश्मनी है। तब फिर ?

कर्ण—"मैं क्षत्रिय नहीं हूँ" ऐसा मैंने कहकर अस्त्र सीखना प्रारम्भ कर दिया।

शल्य—तब क्या हुआ ?

कर्ण—तब कुछ दिनों के बाद एक बार फलमूल लकड़ी कुशा और फूल इत्यादि लाने के लिये जंगल को जाते हुए गुरु के साथ मैं भी जंगल चला गया।

शल्य—उसके बाद ?

कर्ण—तब फिर जंगल में भ्रमण करने के कारण थक कर गुरुजी मेरी गोद में सो गये।

शल्य—उसके बाद क्या हुआ ?

कर्णः—अतः

कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान्ममोरुद्वये
निद्राच्छेदभयादसह्यातगुरोर्धैर्यात्तदावेदना।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितो
बुद्ध्वा मां च शशाप काल-विफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ॥१०॥

अन्वयः—दैवात्, वज्रमुखेन, नामकृमिणा, ममोरुद्वये, कृत्ते, तदा, गुरोः, निद्राच्छेदभयात्, वेदना, धैर्यात्, असह्यत। सहसा; क्षतजाप्लुतः, सः उत्थाय; मां च बुद्ध्वा, रोषानलोद्दीपितः; कालविफलानि, ते, अस्त्राणि, सन्तु इति ( मां ) शशाप।

व्याख्याः—दैवात् = दुर्भाग्यात्, वज्रेण = कुलिशेन; मुखम् = आस्यं यस्य तेन; एतन्नामकेन कृमिणा = कीटेन मम = कर्णस्य ऊरुद्वये = जङ्घाद्वये, कृत्ते =

सत्ते, तदा = तस्मिन समये, गुरो = जामदग्न्यस्य निद्राच्छेद-भयात् = निद्राभङ्ग-भयात्; वेदना = दष्टोद्गमकष्टम्, धैर्यात् = साहसात् असह्यत = सोढा। सहसा= अकस्मात्; क्षतजाप्लुन = रक्तासञ्चित, स = गुरुर्परशुराम; उत्थाय = निद्रां विहाय, मा = कर्णं च बुद्ध्वा = एव विध साहस क्षत्रियातिरिक्तेपु न भवतीदं क्षत्रिय एवेति ज्ञात्वा; रोष = मन्यु एव अनल = वह्नि, तेन उद्दीपित = प्रज्वलित "सन्" कालविफलानि = समयासहायकानि, ते = ममोपदिष्टस्य कर्णस्य अस्त्राणि = आयुधानि सन्तु = भवन्तु इति = एव प्रकारेण (मा) शशाप = शाप दत्तवान् ॥ अत्र शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द ॥ १० ॥

समास—वज्रवद्मुखं यस्य स वज्रमुखस्तेन। निद्रायाश्छेद = निद्राच्छेद, (प० तत्०) तस्य भय निद्राच्छेदभय (प० तत्०) तस्मात्। क्षतात् जात = क्षतज (पञ्चमी तत्०) तेन आप्लुत = क्षतजाप्लुत. (तृ० तत्०)। रोष एव अनलः तेनाद्दीपित रोषानलोद्दीपित (तृ० तत्०)। काले विफलानि = कालविफलानि (स० तत्पु०)।

कोश—दैव दिष्ट भागधेयम्। इत्यमर। सक्थिक्लीबे पुमानुरु। स्यान्निद्रा शयनं स्वाप स्वप्न सवेश इत्यपि। इत्यमर। कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुट्क्रुधौ स्त्रियो ॥ इत्यमर।

भावार्थ—ममाङ्क सुप्ते गुरौ मम दौर्भाग्यात वज्रमुख-नामक कश्चन कीट-विशेष मदूरुयुगले दष्टवान, अह च गुरोर्निद्राभङ्गो मा भूदिति निश्चत्य सेवा-त्रुटिर्नस्यादिति भयेन च ता वेदनामहम सहित, क्षतजेन शोणितेनार्द्र गुरु सहसोत्थाय एतादृश साहसे क्षत्रियातितरेपु वर्णेपु नैव भवितुमर्हति क्षत्रिय एवैष इति मा बुद्ध्वा ममोपदिष्टानि तवायुधानि प्रयोजन-समये विफलानि सन्त्विति मा शप्तवान् ॥ १० ॥

हिन्दी—मेरी गोद म जब भगवान् परशुराम (गुरुजी) सो गये तब मेरे दुर्भाग्य वश वज्रमुखनामक एक कोडे ने मेरे दोनो जाघो में काट लिया, 'गुरुजी की निद्रा भङ्ग न हो जाए" इस भय से मैंने उस वेदना को उस समय सह लिया, परन्तु खून के स्पर्श से गुरुजी अचानक जाग पडे और यह क्षत्रिय हो हैं (क्योंकि ऐसा साहस अन्य जाति के लोगों में नहीं हो सकता) ऐसा मुझ

जानकर 'समय आने पर मेरे सिखलाये तुम्हारे अस्त्र विफल हो जाएँ" ऐसा शाप दे डाला।

शल्यः—अहो कष्टमभिहितं तत्र भवता।

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम्। (तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वीर्याणीव दृश्यन्ते। अपि च

> इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा
> मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः।
> गजाश्च सप्तच्छददानगन्धिनो
> निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम्॥ ११॥

[illegible]

अन्वयः—इमेति। हि, दैन्येन, निमीलितेक्षणाः, इमे, मुहुः, स्खलन्तः, विवशाः, तुरङ्गमाः; सप्तच्छददानगन्धिनः, गजाश्च रणे, निवर्तनम्, इव, निवेदयन्ति।

शब्दार्थः—हि = यतः, दैन्येन = दीनतया, निमीलितानि = मुद्रितानि ईक्षणानि = अक्षीणि येषां ते इमे = पुरोवर्तिनः, मुहुः = वारंवारम्, स्खलन्तः = पतन्तः विवशाः = स्वातन्त्र्यहीनाः; तुरङ्गमाः = घोटकाः, सप्तच्छदस्य = सप्तपर्णस्य 'एतन्नामकपुष्पविशेषस्येत्यर्थः; दानस्य दानवारेः इव गन्धः = सुगन्धो येषां ते गजाश्च = हस्तिनश्च, रणे = युद्धे; निवर्तनम् = परावर्तनम्; इव = यथा निवेदयन्ति = प्रार्थयन्ति इति। अत्र वंशस्थं वृत्तम्। तल्लक्षणञ्च पूर्वोक्तमेव॥

समासः—निमीलितानि ईक्षणानि येषां ते = निमीलितेक्षणाः सप्त संख्याकाः छदाः यस्य सः सप्तच्छदः (बहु०) तस्य गन्ध इव दानगन्धो येषां ते सप्तच्छददानगन्धिनः।

कोशः—युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्, इत्यमरः।

भावार्थः—इमे मदीया अश्वा कातर्येण सम्पुटिताक्षणाः, सततः भूयोभूयः स्खलन्ति, सप्तपर्णस्य गन्धवत् येषां दानवारिः गन्धोऽस्ति ते गजाश्च युद्धे परावर्तनं मन्ये निवेदयन्ति॥

हिन्दी—शल्य—ओहो ! मुनि ने बहुत ही दु:खद बात कह डाली।

कर्ण—अच्छा, तब तक मैं अपनी अस्त्र-कथा की परीक्षा करता हूँ। (वैसा करके) ये अस्त्र भी निःसत्त्व से लग रहे हैं।

और भी। ये दीन बने, परवश घोड़े आँख बन्द किये हुए बार-बार ठोकर खाकर स्खलित हो रहे हैं, और सप्तपर्ण नामक पुष्प के गन्ध के समान जिनके मद का गन्ध है वे हाथी भी युद्ध में पीछे लौट जाने का मानो निवेदन सा कर रहे हैं।

शङ्ख, दुन्दुभियाँ भी नहीं बज रही हैं।

शल्य —भो कष्टं किं नु खल्विदम्।

कर्ण —शल्यराज ! अलमलं विषादेन।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

अन्वय —हतः, अपि, स्वर्गम्, लभते, जित्वा, तु, यशः लभते, लोके, बहुमते, रणे, निष्फला, नास्ति ॥

व्याख्या —शोक-सतप्तं शल्यमवलोक्य कर्णस्तं संतोषयति हतोऽपीत्यादिना। हतः = मृतः अपि = "युद्धे" स्वर्गम् = देवलोकम्, लभते याति; जित्वा = विजयं प्राप्य, यशः = कीर्तिं लभते = प्राप्नोति, लोके = संसारे, उभे = स्वर्गकीर्ती, बहुमते = श्लाघ्ये अतः, रणे = युद्धे, निष्फलता = फलराहित्यं "कदापि" नास्ति = न भवति अत्र अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

कोश —स्वरव्यय स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः। इत्यमरः। यशः कीर्तिः समज्ञा च। इत्यमरः ॥

भावार्थ—शल्यं सन्तोषयति कर्णः यत्, हे यन्तः! यद्यपि स्थितिरनुकूला नास्ति तथापि न भेतव्यं यतो हि युद्धे मारितः स्याम तर्हि स्वर्गं प्राप्स्यामि, यदि च विजेष्यामि तर्हि यशः प्राप्स्यामि संसारे द्वावपि श्लाघ्यावेव, अतः युद्धं निष्फलं नैव भवति ॥

हिन्दी—शल्य—ओह ! बहुत ही दु:ख की बात है। ये सब क्या हो रहे हैं?

अर्थः—सूत! अधिक विषाद करना व्यर्थ है।

युद्धस्थल में योद्धा के मारे जाने पर वह स्वर्ग पाता है और यदि विजयी होता है तो वह यश प्राप्त करता है और संसार में स्वर्ग और यश ये दोनों अविनश्वर ही हैं। अत एव युद्ध में निष्फलता नहीं रहती।

अपि च—

इमे हि युद्धेष्वनिवर्तिताशा
हया सुपर्णेन समानवेगाः।
श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाता
रक्षन्तु मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

स्वस्त्यस्तु गोब्राह्मणानाम्; स्वस्त्यस्तु पतिव्रतानाम्। स्वस्त्यस्तु रणेष्वपराङ्मुखानां योधपुरुषाणाम्। स्वस्त्यस्तु मम प्रातःकालस्य। एष नौः प्रसन्नोऽम्ब।

अन्वयः—हि; युद्धेष्वनिवर्तिताशाः सुपर्णेन समानवेगाः, श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाताः, इमे, हयाः, यद्यपि, रक्षितव्यम्; "तथापि" मां, रक्षन्तु ॥ १३ ॥

व्याख्या—हि = निश्चयम्; युद्धेषु = रणेषु, अनिवर्तिताशाः = अप्रतिहताभिलाषाः; सुपर्णेन = वैनतेयेन गरुडेनेत्यर्थः, समानवेगाः = सदृशगतयः; श्रीमत्सु = शोभासम्पन्नेषु काम्बोजकुलेषु = काम्बोजाभिधेयवंशेषु, जाताः = प्राप्तजन्मानः; इमे = मदीयाः पुरोवर्तमानाः, हयाः = अश्वाः; यद्यपि रक्षितव्यम् = युद्धे मया रक्षणीयम्; "तथापि मामवश्यमनुकूलमनयात्" मा = वर्ष्म (रक्षकम्) रक्षन्तु = पान्तु ॥ अत्रोपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोः संमिश्रणादुपजातिश्छन्दः ॥

गोब्राह्मणानाम् = गोविप्राणाम्, स्वस्त्यस्तु = कल्याणमस्तु, पतिव्रतानाम् = पातिव्रत्यधर्मचारिणीनाम् स्त्रीणां स्वस्त्यस्तु = कल्याणं भवतु। रणेषु = युद्धेषु; अपराङ्मुखानाम् = अनिवर्तितवदनानाम्; योध—पुरुषाणाम् = सैनिकानाम्, स्वस्त्यस्तु = कल्याणमस्तु; प्रातःकालस्य = प्रभातसमयस्य, मम = कर्मस्य स्वस्त्यस्तु = कल्याणमस्तु।

समासः—निवर्तिता आशा येषान्ते निवर्तिताशाः; न निवर्तिताशाः अनिवर्तिताशाः, (नञ् समास)॥

भावार्थः—यद्यपि इमे सफलितमनोरथा गरुडसमानवेगवन्त. काम्बोजाः घोटका युद्धे मया रक्षितव्या सन्ति तथापि अपशकुन-दर्शनादसमर्थं मामेव ते रक्षन्तु ॥ १३ ॥

हिन्दी—जिन्होंने युद्ध में कभी भी आशाभग्न नहीं किया, जो गरुड के समान वेग वाले हैं, शोभासम्पन्न कम्बोजकुलोत्पन्न वे घोडे यद्यपि मेरे रक्षणीय हैं ( मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिए ) फिर भी इस समय वे मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

गौओं और ब्राह्मणों का कल्याण, पातिव्रत्यधर्मावलम्बन करने वाली स्त्रियों का कल्याण हो, युद्धस्थल में जो कभी भी विमुख नहीं हुए हों उन योधागण का कल्याण हो; अवसर पाये हुए मेरा भी कल्याण ही। अच्छा, तो अब मैं प्रसन्न हो गया हूँ ॥

समर—मुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा।
ममशरवरवेगै—रर्जुनं पातयित्वा
वनमिवहतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

अन्वय —पाण्डवानाम् असह्यम्; समरमुखम् प्रविश्य, प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराज च बद्ध्वा। मम; शरवरवेगै, अर्जुनम्; पातयित्वा, हतसिंहम् वनम्; इव; सुप्रवेश करोमि ॥ १४ ॥

व्याख्या—पाण्डवानाम् = पाण्डुसुतानाम्, असह्यम् = दुर्धर्षम्; समर-मुखम् = युद्धस्थलम्; प्रविश्य = अन्तर्गत्वा, प्रथितगुणगणेन = प्रसिद्ध-गुण-समूहेन आढ्य = श्लाघ्यतम्, धर्मराजम् = युधिष्ठिरम्, च = तथा बद्ध्वा = निगडैर्निगृह्य। मम = कर्णस्य, शरवरवेगै = श्रेष्ठबाणप्रहारै, अर्जुनम् = धनञ्जयम् "अस्मद् प्रसिद्धप्रतिभटम्"; पातयित्वा = निहत्य, हतसिंहम = मृतवनपतिम् वनम् = अरण्यम्, इव = यथा, सुप्रवेशम् = सरलतया प्रवेशार्हम् करोमि = विदधामि ॥ मालिनीनामक छन्दोऽत्र ॥ १४ ॥

समास—समरस्यमुख = समरमुखम्। गुणाना गण = गुणगण. ( ष० तत्० ) प्रथितश्चासौ गुण–गण = प्रथितगुण ( कर्म० ) तेन आढ्यस्तम् =

प्रथितगुणगणाढ्यम् =( तृ० तत्० ) शरेषु वरः = शरवरा (सप्त० तत्० ) तेषां वेगैः = शरवरवेगैः ( ष० तत्० )। हतः सिंहो यत्र तम् = हत-सिंहम् ( बहु० )।

कोशः—प्रतीते प्रथितख्यात-वित्त-विज्ञात विश्रुताः । इत्यमरः. समूह निवहव्यूह-संदोह विसरव्रजाः—समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः इत्यमरः। सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्ष केसरी हरिः ॥ इत्यमरः। अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनमित्यमरः ॥

भावार्थः—पाण्डवानां दुर्धर्षं सेनाव्यूहे प्रविश्य धर्मराजं बद्ध्वा प्रमुखयोद्धारमर्जुनं मारयित्वा, एतेषां व्यूहं सरलतया प्रवेशयोग्यं यथा स्यात्तथा करोमि ॥ १४ ॥

हिन्दी—पाण्डवों के दुर्धर्ष सेनाओं के बीच प्रवेश करके; प्रसिद्धगुण समूह से श्लाघ्य धर्मराज को बाँधकर; अपने तीक्ष्ण बाणों के वेग से अर्जुन को गिराकर जिस वन का सिंह मार दिया गया हो और वह वन जैसा सरल तरीके से प्रवेश करने योग्य होता है उसी प्रकार पाण्डव व्यूहको भी बना देता हूँ ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद्रथमारोहाव ।

शल्यः— बाढम् ।

( उभौ रथारोहणं नाटयतः )

कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां रथः ।

हिन्दी—शल्यराज ! अच्छा तो अब हम लोग रथपर चढ़ें ।

शल्य—अच्छा

( दोनों रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं )

कर्ण—शल्यराज ! जहाँ वह प्रसिद्ध अर्जुन है वहीं मेरे रथ को ले चलिए ।

( नेपथ्ये )

भोः कण्ण महत्तरं भिक्खं याचेमि [ भो कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे ]

कर्णः [ आकर्ण्य ] अये वीर्यवान् शब्दः ।

शक्र—हे मेघ गण ! तुम लोग भी सूर्य के साथ ही चले जाओ। ( कर्ण के समीप जाकर ) हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्णः—दृढ प्रीतोऽस्मि भगवन्।

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके
राजेन्द्र मौलिमणिरञ्जितपादपद्मः।
विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥ १६ ॥

अन्वयः—एष; अहम्; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्म, अद्य, लोके, कृतार्थ—गणनाम्, यातः, तु विप्रेन्द्रपादरजसा, पवित्रमौलिः, कर्ण. भवन्तम् नमस्करोमि ॥ १६ ॥

व्याख्या:—एष = रणे उपस्थित, अहम् = राधेय ; राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्म —राजेन्द्राणाम् = नृपश्रेष्ठानाम्; मौलिषु मस्तकेषु. "रञ्जिता." मणय = हीरकादय, तैं रञ्जितम् = रक्तीकृतम् पादपद्म = चरणकमलम् यस्य स, अद्य = अस्मिन् दिवसे; लोके = संसारे; कृतार्थ–गणनाम् – सम्पादित प्रयोजनमहत्व्याम्, यात = प्राप्त ; तु = किन्तु, विप्रेन्द्रस्य = ब्राह्मणश्रेष्ठस्य भवत· पादरजसा = चरणधूलिना, पवित्रमौलि = पूतमस्तक; कर्ण = एतन्नामक., भवन्तम् = याचकत्वेनोपस्थित विप्रम्; नमस्करोमि = प्रणमामि ॥ वसन्ततिलका नामकम् = छन्द ।

समासः—कृता अर्था यैस्ते कृतार्था ( बहु० ) तेषां गणनाम् - कृतार्थगणनाम् ( ष० त० ), राज्ञामिन्द्र राजेन्द्र ( ष० तत्० ) तेषां मौलि = राजेन्द्रमौलि ( ष० तत्० ) तेषु ये मणय = राजेन्द्रमौलिमणय ( बहु० ) तै रञ्जितं पादपद्म यस्य स राजन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्म ( बहु० व्री० )। विप्रेषु इन्द्र विप्रेन्द्र ( स० तत्० ); तस्य पाद. विप्रेन्द्रपाद ( ष० तत् ) तस्य रज विप्रेन्द्रपादरज. तेन विप्रेन्द्रपादरजसा ( ष० तत्० )

कोश —लोकस्तु भुवने जने; इत्यमर । चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रय ; इत्यमर । रेणुर्द्वयो स्त्रियांधूलि पांशुर्ना न द्वयो रज ; इत्यमर. । पवित्र प्रयत पूत ; इत्यमर. ॥

भावार्थ —"सर्वेषामभ्यागतो गुरुः" इति वाक्यानुसारेण आतिथेयः कर्णः विप्रं नमस्कुर्वन् कृतकृत्यमात्मानं मन्यते इति कथनमस्ति "यस्य मम कर्णस्य पादपद्मं नृपश्रेष्ठानां मस्तकस्थितैः मणिभिः रज्यते सोऽहं भवत्पादधूलिपूत—मस्तकः भवन्तं प्रणमामि ॥ १६ ॥

हिन्दी—मैं अत्यन्त खुश हूँ भगवान् । जिसके चरणों को श्रेष्ठ राजागण अपने मस्तकमणि से सुशोभित करते रहते हैं, वह कर्ण आपकी चरणधूलि से पवित्र मस्तक वाला अपने को कृत–कृत्य मानता हुआ आपको प्रणाम करता है ।

शक्रः—( आत्मगतम् ) किं नु खलु मया वक्तव्यं यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये दीर्घायुर्भविष्यति । यदि न वक्ष्ये मूढ इति मां परिभवति । तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि । भवतु दृष्टम् । ( प्रकाशम् ) ( भो कण्ण ! सुय्ये विअ चन्दे विअ हिमवन्ते विअ, साअले विअ, चिट्ठदु दे जसो ) । भो कर्ण ! सूर्य इव, चन्द्र इव, हिमवानिव, सागर इव तिष्ठतु ते यशः ।

हिन्दी—( अपने मन में ही ) इस समय मुझे क्या कहना चाहिए, यदि 'दीर्घायु' हो यह कहता हूँ तो दीर्घायु हो जायगा । यदि कोई आशीर्वाद न दूं तो मुझे मूर्ख समझेगा । इसलिए इन दोनों को छोड़कर क्या कहूँ ? अच्छा ! सोच लिया ( स्पष्ट रूप में ) हे कर्ण सूर्य के समान, चन्द्रमा के समान, हिमालय के समान और समुद्र के समान आपका यश स्थिर रहे ।

कर्ण —भगवन् किं न वक्तव्यं दीर्घायुर्भवेति । अथवा एतदेव शोभनम् ! कुतः —

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः ।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

अन्वय —धर्मेति । धर्मः, पुरुषेण, यत्नैः, साध्यः । हि नृपश्रियः, भुजङ्गजिह्वाचपलाः, तस्मात्, प्रजापालनमात्रबुद्ध्या; हतेषु, देहेषु, गुणाः, धरन्ते ।

व्याख्याः—धर्मः = शास्त्रविहितं कर्म, पुरुषेण = मानवेन, यत्नैः = प्रयासैः, साध्यः = विधातव्यः । हि = यतः, नृपश्रियः = राजविभवाः, भुजङ्गानां = भुजगानाम्, जिह्वा इव = रसना इव चपलाः = चञ्चलाः 'अस्थिराः'

इति यावत, तस्मात् = राजलक्ष्म्या अस्थिरत्वात्, प्रजानाम् = जनानाम् पालनम् = रक्षणम्; मात्रम् = स्वबुद्ध्या = विचारेण 'राज्यं करणीय न तु विलास विचारेण" इति शेष; "यतो हि" हतेषु = मृतेषु, देहेषु = शरीरेषु गुणा = यशांसि 'एव" धरन्ते = प्राणयन्ति। अत्रोपजाति वृत्ति ॥ १७ ॥

समास –भुजङ्गाना जिह्वा = भुजङ्गजिह्वा ( ष० तत्० ) नृपाना श्रिय – नृपश्रिय ( ष० तत्० ) भुजङ्गजिह्वावच्चपला नृपश्रिय = भजङ्गजिह्वाचपलानृपश्रिय ( मध्यमपदलोपी ) प्रजाना पालन = प्रजापालन ( ष० तत्० ) तस्मात्रावद्ध्या प्रजापालनमात्रबुद्ध्या।

कोश –स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्य श्रेयसी सुकृत वृष । इत्यमर । सर्प पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गम ॥ इत्यमर । रसज्ञा रसना जिह्वा। प्रजा स्यात सन्ततौ जने । इत्यमर ।

भावार्थ —पुरुषेण धर्म बहुप्रयासैः कर्तव्य, यतोहि राजैश्वर्यादिक भुजङ्गरसनावच्चञ्चला भवति। अत प्रजापालनमात्रविचारेण राज्यङ्कर्तव्यं न भोग-विलासादि-दृष्ट्या यतो हि स्वर्गते मनुष्ये अस्मिन् ससारे तत्कीर्तिरेव त जीवयति ॥ १७ ॥

हिन्दी—

कर्ण —भगवन् ! आपने 'दीर्घायु हो' ऐसा आशीर्वाद क्यो नही दिया ? अथवा आपने जो कहा वही अच्छा।

क्योंकि—

मनुष्य को प्रयास पूर्वक धर्म का ही पालन करना चाहिए। राज-लक्ष्मी तो सर्प को जीभ की तरह चञ्चल है। अत प्रजापालन करने की बुद्धि मात्र से ( विचार से ) राज्य करना चाहिए, क्योकि मनुष्य के मर जाने पर ( इस ससार मे ) उसका यश ( धर्म ) ही उसे जीवित रखता है।

भगवन ! किमिच्छसि किमह ददामि।

शक्र—महत्तर भिक्ख याचेमि। [ महत्तरा भिक्षा याचे। ]

कर्ण—महत्तरा भिक्षा भवते प्रदास्ये। श्रूयन्ता मद्विभवा ।

हिन्दी—भगवन् ! आप क्या चाहते हैं। आपको मैं क्या दूँ ?

शक्र—मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ।

कर्ण—मैं बहुत बड़ी भिक्षा दूँगा ( मेरा वैभव सुनिए। )

गुणवदमृत-कल्पक्षीरधाराभिवर्षि
द्विजवर ! रुचि तं ते तृप्तवत्सानुयात्रम् ।
तरुणमधिक-मर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनक-शृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

अन्वय —हे द्विजवर ! गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि, तृप्तवत्सानुयात्रम्; तरुणम्, अधिकम्, अर्थिप्रार्थनीयम्, पवित्रम् विहितकनक-शृङ्गम्-गोसहस्रं, रुचित, ते तुभ्यम्, ददामि ॥ १८ ॥

व्याख्या —हे द्विजवर ! = हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ !, गुणवताम् = गुणयुताम्; अमृतकल्पानाम् = सुधासमानानाम्, क्षीराणाम् = दुग्धानाम् धाराभिवर्षम् = अधिकप्रस्रवण शीलमस्येति तथाभूतम्; तृप्त = सन्तुष्ट, वत्सै = अर्भकै, अनुयात्रम् = अनुगच्छन्तम् तरुणम् = युवानम्, अधिक् = बहुलम्, अर्थिभि = याचकै, प्रार्थनीयम् = याचनीयम्; पवित्रम् = पूतम्, विहित-कनकशृगम् = रचित-स्वर्ण—विषाणम् गवा = धेनूनाम सहस्रम् = दशशत—सख्याकम्; रुचिरम् = मनोहारि ते = तुभ्यम् ददामि = प्रयच्छामि ॥ १८ ॥

समास —गुणमस्यास्तीति = गुणवान् तेषाम्, अमृतकल्पानाम् क्षीराणाम् ( या ) धारा ( तस्याः ) अभिवर्षण शीलमस्यति गणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि; तृप्तश्चासौ वत्साश्चेति = तृप्तवत्साः ( कर्मधारय ) तैरनुयात्रम् = तृप्तवत्सानुयात्रम्, अर्थिभि प्रार्थनीयम् अर्थिप्रार्थनीयम् ( तृ० तत्० ) कनकस्य शृङ्गम् = कनकशृङ्गम् ( ष० तत्० ) विहितं च तत् कनकशृङ्गम् विहितकनकशृङ्गम् ( कर्मधारय ) । गवां सहस्रम् = गोसहस्रम् ( ष० तत्० ) ।

कोश —हृष्टे मत्तस्तृप्त प्रह्ल प्रमुदितः प्रीतः। इत्यमरः। वयस्थतरुणो युवा। इत्यमर। वनीपको याचनको मार्गणो याचकार्थिनौ। इत्यमर। स्वर्णं कनकं हेम हाटकम्। इत्यमर।

भावार्थः—हे विप्रवर ! यदि भवते रोचते तर्हि गुणवता सुधातुल्यानां क्षीराणां या अभिवर्षणं कुर्वते, संतुष्टा वत्सतरा यासामनुगच्छन्ति, तरुण;

विशेषा याचकैश्च या प्रार्थनीया सन्ति, पवित्राणि सन्ति, यासां शृंगाणि स्वर्ण खचितानि सन्ति तथा भूता. दशशत-सङ्ख्याकाः गा तुभ्यं ददामि ॥ १८ ॥

हिन्दी—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ यदि आप चाहें तो, अमृत तुल्य दुग्ध देने वाली, सन्तुष्ट बछड़े जिनके पीछे चलते हों, तरुणियाँ हैं, अधिक हैं; जो याचकों द्वारा माँगने योग्य हैं, जिनकी सींगें सोने से मढ़ दी गयी हैं ऐसी पवित्र हजारों गायें मैं आपको दूँ ॥ १८ ॥

शक्र—गो सहस्स त्ति । मुहुत्तअं खिरं पिबामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि । (गोसहस्रमिति । मुहूर्तकं क्षीरं पिबामि । नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि ।)

कर्ण—किं नेच्छति भवान् । इदमपि श्रूयताम् ।

रवितुरग-समानं साधनं राजलक्ष्म्याः
सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् ।
सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि ॥ १९ ॥

अन्वयः—रवितुरगेति । रवितुरगसमानम्, राजलक्ष्म्याः; साधनम्, सकल-नृपतिमान्यम्, मान्यकाम्बोज-जातम्, सुगुणम्; अनिलवेगम्; युद्धदृष्टापदानम्, बहुसहस्रम्, ते सपदि, ददामि ॥ १९ ॥

व्याख्याः—रवेः = दिनकरस्य, तुरगाः = घोटकाः, तत्समानम् = तत्तुल्यम्, राजलक्ष्म्याः = नृपश्रियः, साधनम् = हेतुभूतम्, सकलानाम् = सम्पूर्णानाम्; नृपतीनाम् नृपाणाम्, मान्यम् आदरणीयम्, मान्यानाम् = आदरणीयानाम्, काम्बोजानाम् = काम्बोजदेशोद्भवानाम्; "कुले" जातम् = उत्पन्नम्, सुगुणम् = सुन्दरगुणयुक्तम्, अनिलवेगम् = वायुजवम्, युद्धे = रणे दृष्टम् = प्रदर्शितम्; अपदानम् = अवदानम् "वीरतापूर्णकार्यमित्यर्थः" येन तथाभूतम्, वाजिनाम् = अश्वानाम्, बहुसहस्रम् = अपारमित दशशतसङ्ख्याकम्, ते = तुभ्यम्, सपदि — सद्यः ददामि = प्रयच्छामि ।

समासः—रवेः तुरगः = रवि तुरगः ( ष० तत्० ) तत् समानम् रवितुरग-समानम् । सकलानां नृपतीनां मान्यम् सकलनृपतिमान्यम् ( बहु० ) । मान्या-

इयते काम्बोजाः मान्यकाम्बोजाः ( कर्मधारय० ) तेषु जातः=मान्यकाम्बोजजात ( स० तत्० ) । युद्धे दृष्टानि अपदानि येन तत् युद्धदृष्टापदानम् ( बहु० ) ।

कोशः—सूरसूर्यार्यमादित्य द्वादशात्म दिवाकराः इत्यमरः। श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः। पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः। इत्यमरः।

भावार्थः—यदि तुभ्यं गोसहस्रं न रोचते तर्हि चेदिच्छसि, दिनकराश्व-समानवेगतुल्यान्, नृपश्रियः हेतुभूतान्, निखिलनृपति-प्रशस्यान्, सम्मान्यकम्बोज-देशोत्पन्न कुलोत्पन्नान्; सद्गुणान्वितान्, वायुसदृशवेगवतः; युद्धे प्रदर्शितपराक्रमान् असंख्यसहस्रान् घोटकान् तुभ्यं ददामि ॥ १९ ॥

हिन्दी—

शकः—क्या ? हजार गौएं । थोड़े समय तक दूध पीऊँगा ! मुझे यह नहीं चाहिए, कर्ण ! मुझे नहीं चाहिए।

कर्ण—क्या आप गाय नहीं चाहते ? तो यह भी सुनिए। सूर्य के घोड़ों की तरह, राजलक्ष्मी के उपायभूत, सम्पूर्ण राजाओं से प्रशंसनीय कम्बोज देश से होनेवाली काबुली जाति में उत्पन्न, हवा की तरह वेग वाले; जिन्होंने अपना पराक्रम युद्धभूमि में दिखा दिया है, ऐसे हजारों घोड़े मैं आपको तुरत दे रहा हूं ॥ १७ ॥

शक्रः—भस्सत्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण । णेच्छामि । [ अश्व इति । मुहूर्तकमारोहामि । नेच्छामि कर्ण । नेच्छामि । ]

कर्णः—किं नेच्छति भगवन् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं
गिरिवर-निचयाभं मेघ-गम्भीरघोषम् ।
सितनखदशनानां वारणानामनेकं
रिपुसमर-विमर्दं वृन्दमेतद्ददामि ॥ २० ॥

अन्वय —मदसरित-कपोलम्, षट्पदैः सेव्यमानम्; गिरिवर-निचयाभम्; मेघगम्भीरघोषम्; रिपुसमर-विमर्दम्; एतत् वारणानामनेकम्; वृन्दम्; ददामि ॥ २० ॥

व्याख्याः—मदैः = दानवारिभिः, सरिता = आप्लाविता ; कपोला = गण्डस्थलानि येषा तत्, षट्पदैः = भ्रमरैः, सेव्यानम् = युक्तम्; गिरिवराणाम = पर्वतश्रेष्ठानाम निचयः = समूहः; तस्य आभा इव आभा = कान्तिर्यस्य तथा भूतम्; मेघानां = जलदानाम्, यः गम्भीरः = ओज-सम्पन्नः, घोषः = दाब्दः तेन युक्तम्, सिताः = श्वेता, नखा = करजा, दशनानि = दन्ताः येषां तथाभूतानाम्, रिपुसमर-विमर्दम् = शत्रुरणध्वंसकम्, वारणानाम = हस्तीनाम, अनेकम् = अधिकम्; वृन्दम् = समूहम् ददामि = प्रयच्छामि । मालनी नामकमत्र छन्द. ॥२०॥

समासः—मदैः सरितौ कपोलौ यस्य तत् मदसरित् कपोलम् ( बहु० ) गिरिषु वरा = गिरिवराः ( स० तत० ) तथा निचय = गिरिवरनिचय ( ष० तन० ) तस्य आभा इव आभा यस्य तत् गिरिवरनिचयाभम् । गम्भीरश्चासौ घोषः गम्भीरघोष ( कर्मधारय ) मेघस्य गम्भीर-घोष = मेघ- गम्भीरघोषः ( ष० तत० ) तद्वत गम्भीरघोषो यस्य तत् मेघगम्भीर नख इव दशनानि चेति = ( द्वन्द्व ) नखदशनम्, सितानि नखदशनानि येषां तथाभूतानां- मिति = सितनखदशनानाम् ( बहुव्रीहिः ) ।

कोश—मदो दानम् । अथ नदी सरित । इत्यमर । मधुव्रता मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः । द्विरेफ पुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालय । इत्यमर. । अद्रि गोत्र गिरि ग्रावाल शैल शिलोच्चया. ॥ इत्यमरः ।

भावार्थ—यदि भवते अश्व न रोचते तर्हि मद वारिभि सिक्तकपोलान, भ्रमरैरुपेतान् मेघाना गम्भीरघोषेव गम्भीरशब्दशालिन; श्वेत नखदशन- शालिन, अनेक, शत्रुसमर विनाशकन् हस्तीन् तुभ्य ददामि ॥ २० ॥

हिन्दी—

शक्र—क्या घोडे ? मुहूर्तभर चढूँगा। नही मुझे नही चाहिए । नही चाहिए ।

कर्ण—क्या नही चाहते भगवन् ! अच्छा और भी सुनें । मदजल से जिनके गण्डस्थल भीग गये हैं, जो भ्रमरो से सुशोभित हो रहे हैं, जो ऊंचे पवतो के समूह के समान शोभा वाले हैं, मेघ की तरह ओजस्वी शब्द वाले हैं शत्रुओ के रण को नष्ट करने वाले हैं, उजले नख और दाँत वाले हैं उन हाथियोंके समूह को आपको देता हूँ ॥ २० ॥

शक्रः—गमत्ति । मुहुत्तअं आलुहामि । णेच्छामि कण्ण ! णेच्छामि [ गच्छति । मुहूर्तकमारोहामि । नेच्छामि । कर्ण ! नेच्छामि ।

कर्णः—किं नेच्छति भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् । अपर्याप्तं कनकं ददामि ।

शक्रः—गह्णिअ गच्छामि । ( किञ्चिद्गत्वा ) णेच्छामि कण्ण । णेच्छामि । ( गृहीत्वा गच्छामि । ( किञ्चिद् गत्वा ) नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि । )

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि ।

शक्रः—पुहुवीए किं करिस्सम् । [ पृथिव्याः किं करिष्यामि ]

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि ।

शक्रः—अग्गिट्टोम फलेण किं कय्यम् [ अग्निष्टोम-फलेन किं कार्यम् ।

कर्णः—तेन हि मच्छिरो ददामि ।

शक्रः—अविहा अविहा [ अविहा अविहा ]

हिन्दीः—क्या हाथी ? कुछ समय तक चढूँगा । मैं नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता ।

कर्णः—क्या आप इसे भी नहीं चाहते ! और भी सुनिए । अपरिमित सोना दे दूँ ।

शक्रः—लेकर चला जाऊँगा ( थोड़ी दूर जाकर ) मुझे नहीं चाहिये कर्ण ! नहीं चाहिये ।

कर्णः—तब जीतकर पृथिवी दे दूं आपको ।

शक्रः—पृथिवी लेकर क्या करूँगा ?

कर्णः—तब "अग्निष्टोम" नामक यज्ञ का फल आपको दूँगा ।

शक्रः—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या करूँगा ।

कर्णः—तो अपना मस्तक आपको दूँगा ।

शक्रः— भगवान् रक्षा करे ! रक्षा करे ।

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम् ।

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्त्रैः।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते रुचितं यदि स्यात् ॥ २१ ॥

अन्वयः—अङ्गैः; सहैव; जनितम्; सहस्त्रैः, अपि, देवासुरैः न भेद्यम्; इदं मम देहरक्षा, कुण्डलाभ्यां सह कवचम्, तथापि, यदि, रुचितं स्यात्; भगवते, मया, प्रीत्या देयम् ॥ २१ ॥

व्याख्याः—अङ्गैः = अवयवैः, सहैव = साकमेव, जनितम्; = उत्पन्नम्; सहस्त्रैः = असंख्यैः; "अपि" न भेद्यम् = अच्छिद्यम्; इदम् = देहसंसक्तम्, मम= मामकीनम्; देहरक्षा (भूतम्) = शरीर-संरक्षकी-भूतम्; कुण्डलाभ्याम् = कर्णमण्डनाभ्याम् सह = सार्धम् कवचम् = वर्म; तथापि = अथापि (भवद्भिर्नयाच्यमस्मद्देहरक्षाभूतत्वात् तथापीति भावः) यदि = चेत् रुचितम् = इच्छितम् स्यात् = भवेत् (तर्हि) भगवते = भवते; मया = कर्णेन, प्रीत्या = प्रसन्नतया, देयम् = दातुं योग्यमस्ति। अत्र वसन्ततिलका वृत्तिः ॥ २११ ॥

समासः—देहस्य रक्षा = देहरक्षा (ष० तत्०) देवाश्च असुराश्चेति = देवासुरा (द्वन्द्व) तैः देवासुरैः ॥

कोशः—अङ्ग प्रतीको ऽवयवो ऽपघन. इत्यमर। सार्धं तु साकं सत्रा समं सह। इत्यमरः। अथ तनुत्रं वर्म दंशनम्। उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचो ऽस्त्रियाम् इत्यमरः।

भावार्थः—यदि भवद्भ्यो मया प्रदत्तमेतानि वस्तूनि न रोचन्ते तर्हि, मम शरीरेण साकमेवोत्पन्नं देवराक्षसैरपि न खण्डनीय कुण्डलाभ्यां सहितं कवचं यदि भवद्भ्यो रोचते, तर्हि तदपि (यद्यपि तेन मम देहरक्षा भवति) अस्मद् देह-रक्षाभूतं सप्रसन्नोऽहं तुभ्यं ददामि ॥ २१ ॥

हिन्दी—डरें न। डरें न। आप प्रसन्न हों। और भी सुनें।
मेरे अङ्गों के साथ ही उत्पन्न, हजारों देवदानवों से भी न भेदन करने

योग्य, मेरे शरीर के रक्षक भूत यह कुण्डलों के साथ कवच है, फिर भी यदि आप इसे चाहें तो मैं सुखी से आपको दे दूँ ॥ २१ ॥

शक्रः—( सहर्षम् ) देदु, देदु ( ददातु, ददातु )

कर्णः—( आत्मगतम् ) एष एवास्य कामः। किं नु खल्वनेककपट-बुद्धेः कृष्णस्योपाय । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तम् नुशोचितुम् । नास्ति संशयः। ( प्रकाशम् ) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्य न दातव्यम् ।

हिन्दी—शक्र—( हर्ष के साथ ) दीजिए। दीजिए।

कर्णः—( मन में ही ) यही इसकी इच्छा थी। अवश्य ही अनेक कपट व्यवहार में जिसकी बुद्धि हमेशा लगी रहती है उस कृष्ण का ही उपाय है। अच्छा वह भी हो। अनुचित सोचना बेकार है ( धिक्कार )। कोई शंका नहीं। ( स्पष्ट रूप में ) लीजिए।

शल्यः—अङ्गराज ! नहीं देना चाहिए। नहीं देना चाहिए।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं वारयितुम् । पश्य

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

तस्माद् गृह्यताम् ( निकुरय ददाति )

अन्वयः—कालपर्ययात्, शिक्षा, गच्छति, सुबद्धमूला, पादपा.निपतन्ति। जलस्थानगतं च जलं शुष्यति, हुतं च, दत्तं च तथैव, तिष्ठति ॥ २२ ॥

व्याख्या—कालपर्ययात् = समयपरिवर्तनात्, शिक्षा = विद्या क्षयं = विस्मृतिं गच्छति = याति, सुबद्धमूला = सुदृढ मूला; पादपा. = वृक्षाः, निपतन्ति = धराशायिताः भवन्ति, जलस्थान-गतम् = तडागप्राप्तम्, च = तथा; जलम् = उदकम्, शुष्यति = शुष्कतां प्राप्नोति, ( परन्तु ) हुतञ्च = वैदिकमन्त्रेण

यज्ञेषु हवन-कुण्डेषु प्रक्षिप्तम्; दत्तञ्च = सुपात्रेभ्यो प्रतिपादितम्; तथैव = यथा स्थितमेव तिष्ठति = सुरक्षितं भवति ॥ २२ ॥

**समासः**—कालस्य पर्ययः—कालपर्ययः ( ष० तत्० ) तस्मात् । सुष्ठु बद्धानि मूलानि येषान्ते सुबद्धमूला ( बहुव्रीहि० ) । जलस्य स्थानम्=जलस्थानम् (.ष० तत्० ) तस्मिन् गतम् = जलस्थानगतम् ( सप्त० तत० )

**कोशः**—कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समय इत्यमर. । वृक्षोमहीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः इत्यमरः । आप स्त्री भूम्निवार्वारि सलिलं कमल जलम् । इत्यमरः ।

**भावार्थः**—सांसारिकानि सर्वाण्यपि वस्तूनि क्षयशीलानीति ध्वनति कर्णे । यत् समय-परिवर्तनादभ्यस्ताऽपि विद्या विस्मृता भवति, सुदृढमूला अपि वृक्षाः प्राचीनेषु सत्सु पतन्ति, तडागस्था आपोऽपि शुष्यन्ति परन्तु वैदिक-मन्त्रेण याज्ञिक हवनकुण्डेषु प्रक्षिप्तं सत्पात्रेभ्यो दत्तं च वस्तु यथाप्रवत्तमेव तिष्ठति ॥२२॥

**हिन्दी**—शल्यराज ! मत रोकिए ! देखिए । समय परिवर्तन होनेपर अभ्यास की गई विद्या भी विस्मृत हो जाती है, मजबूत जडवाले ( पुराने ) वृक्ष भो धराशायी हो जाते है, तालाब का पानी भी ( गर्मीमें ) सूख जाता है, किन्तु हवनमें आहुत किया हुआ और अच्छे पात्र को दिया गया वस्तु उसी तरह सुरक्षित रहता है ॥२२॥

इसलिए ग्रहण कीजिए । ( काटकर देता है )

**शक्रः**—( गृहीत्वा आत्मगतम् । ) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवार्जुनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावतमारुह्यार्जुन-कर्णयोर्द्वन्द्व-युद्धं पश्यामि । ( निष्क्रान्त. )

**शल्यः**—भो अङ्गराज ! वञ्चित. खलु भवान् ।

**कर्णः**—केन ?

**शल्यः**—शक्रेण ।

**हिन्दी**—

शक्र —( लेकर मनही मन ) ओह् ये ले लिये गये। पहले ही अर्जुन की विजय के लिये देवताओंने जिसका समर्थन किया था, इस समय उस कार्य को मैंने कर डाला इसलिए ऐरावत पर चढ़कर मैं भी अर्जुन और कर्ण का मल्ल युद्ध देखूंगा। ( निकल जाता है। )

शल्य—हे अंगराज ! आपको ठग लिया।

कर्ण—किसने ?

शल्य—इन्द्र ने।

शक्रः—न खलु। शक्रः खलु मया वञ्चितः। कुतः

अनेक – यज्ञाहुति – तर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः।
सुरद्विपास्फालन — कर्कशाङ्गुलि-
र्मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—द्विजैः, अनेक-यज्ञाहुति-तर्पितः, किरीटवान्, दानवसंघमर्दनः, सुरद्विपास्फालन-कर्कशाङ्गुलिः पाकशासनः खलु मया कृतार्थः ॥ २३ ॥

व्याख्या —द्विजैः = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैः, अनेकेषु = बहुषु = यज्ञेषु = मखेषु; आहुतिभिः = शाकल्यादिभिः ; तर्पितः = संतुष्टः, किरीटवान् = मुकुटमण्डितः ; दानवानाम् = दैत्यानाम्; संघ = समूह, तस्य मर्दनः = ध्वंसक, दैत्य-समूह विनाशक इत्यर्थः। सुरद्विपस्य = ऐरावतस्य, स्फालनैः = सचालनैः कर्कशा = परुषा "रूक्षा इति यावत्; अङ्गुलयः = करशाखा. यस्य सः, पाकशासनः = इन्द्रः खलु = निश्चयेन, मया = कर्णेन कृतार्थः = सतोषितः इति। अत्र "वंशस्थ" नामक छन्दः ॥ २३ ॥

समास —न एके = अनेके च ते यज्ञाः = अनेकयज्ञाः ( कर्मधारय ) तेषां आहुतयः = अनेकयज्ञाहुतयः; ( ष० तत्० ) ताभिः. तर्पितः. यः सः = अनेक यज्ञाहुतितर्पितः ( बहुव्रीहिः )।

दानवानां संघः = दानवसंघः ( ष० तत्० ) दानवसंघस्य मर्दनः = दानवसंघमर्दनः ( ष० तत्० )। सुराणां द्विपः = सुरद्विपः ( ष० तत्० ) तस्य

स्फालनम् = सुरद्विपास्फालनम् ( प० तत्० ) तेन कर्कशाः अंगुलयो यस्य सः = सुरद्विपास्फालन-कर्कशांगुलिः;

कोशः—यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः । इत्यमरः । दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विप । इत्यमरः । इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजा पाकशासनः । इत्यमरः ।

भावार्थः—द्विजातिभिः बहुषु आहुतिभिर्संतुष्टः, मुकुटमण्डितः, असुरकुल-विमर्दकः, ऐरावत-संचालनेन यदीयाः अंगुलयो रूक्षाः सञ्जाताः सः, इन्द्रः मया कृत-कृत्य कृतः अतः इन्द्र एव मया वञ्चित न खलु तेनाहम् । इति भावः ॥२३॥

हिन्दीः—नहीं । मैंने ही इन्द्र को ठग लिया क्योंकि—ब्राह्मणक्षत्रिय, और वैश्यों के द्वारा अनेकयज्ञोंमें दी गयी आहुतियों से संतुष्ट; मुकुटमण्डित; दैत्य-समूह को विनष्ट करनेवाले; ऐरावत हाथीको चलाने के कारण जिनकी अंगुलियाँ कठोर हो गयी उन इन्द्रको मैंने कृतकृत्य कर दिया ॥ २३ ॥

( प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण )

देवदूतः—भोः कर्ण ! कवचकुण्डलग्रहणाज्जनितपश्चात्तापेन पुरन्दरेणानुगृहीतोऽसि । पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला—नाम शक्तिरियं प्रतिगृह्यताम् ।

कर्णः—धिग्; दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।

कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मयातिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ।

देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।

कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

देवदूतः—बाढम् । ( निष्क्रान्तः )

कर्णः—शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

शल्यः—बाढम् । ( रथारोहणं नाटयतः )

हिन्दी—

( ब्राह्मण वेश में प्रवेश करके )

देवदूत—हे कर्ण ! कवच और कुण्डल ले लेने के कारण पश्चात्ताप करते हुए इन्द्र के द्वारा तुम अनुगृहीत हो। पाण्डवों में से किसी एक को मारने के लिये यह अमोघ अस्त्र "विमला" नामकी शक्ति स्वीकार करो।

कर्ण—धिक् ! मैं दान का बदला नहीं लेता।

देवदूत—ब्राह्मण के कहने से ले लो।

कर्ण—ब्राह्मण का कथन ! पहले मैंने कभी नहीं टाला है। ( अच्छा ) मुझे कब मिलेगी ( शक्ति )।

देवदूत—जभी उसका स्मरण करोगे तभी मिल जायगी।

कर्ण—अच्छा अनुगृहीत हूं। आप लौट जाएं।

देवदूत—बहुत अच्छा। ( निकल जाता है। )

कर्ण—शल्यराज ! तब ( तक ) हम दोनों रथ पर चढ़ें।

शल्य—अच्छा ( दोनों रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं। )

कर्णः—अये शब्द इव श्रूयते। किं नु खल्विदम्।

शङ्खध्वनिः प्रलय-सागर-घोषतुल्यः
कृष्णस्य वा न तु भवेत् स तु फाल्गुनस्य।
नूनं युधिष्ठिरपराजय-कोपितात्मा
पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥ २४ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः।

शल्यः—बाढम् !

अन्वयः—शङ्खध्वनीति। प्रलयसागरघोषतुल्यः; शङ्खध्वनिः; कृष्णस्य, वा तु फाल्गुनस्य भवेत्, युधिष्ठिर-पराजयकोपितात्मा, पार्थः नूनम्, अद्य, यथाबलम्; युद्धम् करिष्यति ॥ २४ ॥

व्याख्या—शङ्खध्वनीति। प्रलयसागरस्य = प्रालेय-समुद्रस्य; घोषः = ध्वनिः, तेन तुल्यः = समानः, शङ्खध्वनिः = कम्बुशब्दः, कृष्णस्य = वासुदेवस्य, वा = अथवा, तु फाल्गुनस्य = अर्जुनस्य, भवेत् = स्यात्; युधिष्ठिरस्य = धर्मराजस्य

पराजयेन = पराभवेन, कोपितः = क्रुद्ध, आत्मा = हृदयं यस्य सः; पार्थः = अर्जुनः, नूनम् = निश्चयेन, अद्य = अस्मिन् दिवसे, यथाबलम् = स्वशक्त्यनुरूपम्; युद्धम् = रणम्; करिष्यति = विधास्यति ॥ अत्र वसन्ततिलका वृत्तिः ॥ २४ ॥

**समासः**—शङ्खस्य ध्वनिः = शङ्खध्वनिः (ष० तत्०)। प्रलयस्य सागर = (ष० तत्०) तस्य घोषः = प्रलयसागरघोष (ष० तत्०) तेन तुल्यः = प्रलयसागरघोषतुल्यः (तत् पुरुष)। युधिष्ठिरस्य पराजयः = युधिष्ठिरपराजयः (ष० तत्०), कोपितश्चासौ आत्मा = कोपितात्मा (कर्मधा य) युधिष्ठिर-पराजयेन कोपितात्मा यस्य स युधिष्ठिर-पराजय-कोपितात्मा (बहुव्रीहि०) ॥

**कोशः**—शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियौ। सवर्तः प्रलय कल्पक्षय कल्पान्त इत्यपि। इत्यमरः। समुद्रोऽब्धिर-कूपार पारावारी सरित्पतिः। उदन्वानुदधिः सिन्धु सरस्वान् सागरोऽर्णः। इत्यमरः ॥

**भावार्थः**—प्रलयसामयिक-सागरशब्द-तुल्यः कस्यचिच्छङ्खध्वनिः श्रूयते; सध्वनिः कृष्णस्य अथवा अर्जुनस्य भवेत्। स्वाग्रज-पराभवेन क्रुद्धात्मा यावच्छक्तिः निश्चयमेव युद्ध करिष्यति ॥ २४ ॥

हिन्दी—

कर्ण—अरे! शब्द सा सुनाई दे रहा है। यह क्या है? यह प्रलयकालीन समुद्र की तरह गम्भीर ध्वनि वाला या तो कृष्ण का शंख है, या अर्जुन का। युधिष्ठिर के पराजय से क्रुद्ध होकर अर्जुन आज अवश्य यथाशक्ति युद्ध मुझसे करेगा ॥ २४ ॥

शल्यराज! जहाँ अर्जुन है मेरे रथ को वहीं ले चलिये।

शल्य—बहुत अच्छा।

(भरत वाक्यम्)

सर्वत्र सम्पद सन्तु नश्यन्तु विपद सदा।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेक प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

अन्वयः—सर्वत्र, सम्पद, सन्तु सदा, विपद, नश्यन्तु।
राजगुणोपेतः, एकः राजा, नः, भूमिम्, प्रशास्तु ॥

व्याख्या:—सर्वत्र = सम्पूर्णे संसारे, सम्पदः = वैभवाः, सन्तु = भवन्तु, सदा = सर्वकाले, विपदः = विपत्तयः; नश्यन्तु = नष्टाः भवन्तु; राजगुणोपेत = नृपगुण-संयुक्तः "दयादाक्षिण्यादिभियुक्त इत्यर्थः" एकः = अद्वितीयः; राजा = नृपतिः, नः = अस्माकम्; भूमिम् = वसुन्धराम्; प्रशास्तु = पालयतु ॥

समासः—राज्ञः गुणः = राजगुणः (ष० तत्) तेनोपेतः राजगुणोपेतः (तृ० तत्)।

कोशः—अथ सम्पदि संपत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च। इत्यमरः। विपत्तौ विपदापदौ। इत्यमरः।

राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः इत्यमरः ॥

भावार्थः—अत्र खलु भगवान् भासः स्वनाटकावसाने भरत-वाक्यमर्थात् मङ्गलवाक्यं-प्रयुङ्क्ते सर्वत्रेति। तस्यायं भावः अखिले जगति सम्पत्तयः भवन्तु; विपत्तयो नश्यन्तु सर्वदा; दयादाक्षिण्यादियुक्तः एकाकी सम्राट् एनामस्मद् सम्बन्धिनीं पृथ्वीं रक्षतु ॥ इति शम् ॥ २५ ॥

"जलपुरा" ग्राम-निवासिना श्रीपाह्वेन "वैद्यनाथ"।
शर्म्मणा रचिता "इन्दुकला" नाम्नी टीका सम्पूर्णा ॥

हिन्दी—सम्पूर्ण जगत् में सम्पत्तियाँ हों, हमेशा विपत्तियाँ विनष्ट होती रहें; राजा के समस्त गुणों से युक्त कोई एक राजा हमलोगों की इस पृथ्वी का शासन करे ॥ २५ ॥



कृष्णदास संस्कृत सीरीज

८५

महाकविभासविरचितम्

# ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० रामप्रभा ओझा

साहित्यविभागाध्यक्ष

श्रीभागवत-महाविद्यालय, रुस्मी, वाराणसी-५



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८६

Oriental Publishers and Distributors
Post Box No. 1118
Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi–221001
( INDIA )

First Edition
1986
Price Rs. 5–00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 1008, Varanasi–221001 ( India )
Phone : 63145

# प्राक्कथन

संस्कृत नाटकों के महान् लेखक महाकवि भास ने अपनी कल्पना से महाभारत के प्रसङ्ग-विशेष (भीम द्वारा दुर्योधन का ऊरुभङ्ग) को अपने एकांकी नाटक 'ऊरुभङ्ग' में अत्यन्त आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुत इस नाटक ग्रन्थ का अध्ययन अध्यापन मात्र साहित्य के छात्र तथा अध्यापकों तक ही सीमित नहीं है, अपितु महाभारत की कथा में अभिरुचि रखने वाले सामान्य जन भी इसे पढ़ने की आकांक्षा रखते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद अत्यन्त अपेक्षित था तथा छात्रों के हित में इस ग्रन्थ की सरलतम संस्कृत व्याख्या भी आवश्यक थी, जिसे दृष्टि में रखते हुए मैंने ऊरुभङ्ग का सरल हिन्दी अनुवाद तथा 'प्रभा' नाम्नी संस्कृत टीका की रचना कर आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। यद्यपि इसकी अन्य टीकायें भी उपलब्ध हैं, तथापि इस टीका को अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों में उपलब्ध पाठ भेद को फुटनोट द्वारा नीचे दर्शाया गया है तथा आवश्यकतानुसार तत्तद् पाठों की व्याख्या कर प्रसङ्ग के अनुरूप उसकी सङ्गति दिखलाई गई है।

इस कार्य में आदरणीय डॉ० सुधाकर मालवीय जी से निरन्तर प्रोत्साहन उचित निर्देश के साथ-साथ ग्रन्थ की अनुपलब्ध प्रति प्राप्त कराने में विशेष योगदान रहा है। पूज्य गुरुजनों प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रो० कैलासपति त्रिपाठी एवं डॉ० श्रीनारायण मिश्र जी द्वारा समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होता रहा है। अतः इन सभी विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस लघु नाटक की हिन्दी-संस्कृत टीका की रचना मेरा प्रथम प्रयास है, अत इसमे कुछ त्रुटि हो तो सुधीजन उसे सुधार कर पढें तथा हमे सूचित करें ताकि अग्रिम संस्करणो मे उसे सशोधित किया जा सके।

विद्वानो का स्नेही
डॉ० रामप्रभा ओझा

# भूमिका

## महाकवि भास

संस्कृत साहित्य के नाटककारों में सर्वप्रथम भास का नाम आता है, क्योंकि अन्य नाटककारों के पूर्ववर्ती महाकवि कालिदास ने ससम्मान भास का उल्लेख[1] किया है, जिससे यह स्पष्ट है कि कालिदास की काव्य रचना के समय भास के नाटक अत्यन्त प्रचलित हो चुके थे। महाकवि कालिदास के बाद भी कवियों तथा आलङ्कारिकों ने भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान करते हुए आवश्यकतानुसार अपने ग्रन्थों में उनके श्लोक उद्धृत किये हैं। भास के सम्बन्ध में महाकवि बाणभट्ट ने हर्ष चरित में कहा है "सूत्रधार से *आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका से सुशोभित मन्दिरों* की तरह, अपने नाटकों से भास ने *बहुत यश प्राप्त किया*[2]। काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर ने भास के नाटकचक्र का उल्लेख करते हुए उनके नाटकों की अग्निपरीक्षा तथा "स्वप्नवासवदत्तम्" की उत्कृष्टता बतलायी है[3]। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार दशम शती के आरम्भ में राजशेखर द्वारा भास के एक नाटक के नाम का प्रथमतः उल्लेख किया गया है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है[4]।

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ( मालविकाग्निमित्रम् )

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ ( हर्षचरितम् )

३. भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास।

भास के नाटक चक्र का उल्लेख बाद मे काल क्रम के अनुसार लुप्त प्रायः हो रहा था, किन्तु १९१२ मे महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने अन्वेषण कर इनके १३ नाटको को "अनन्तशयन ग्रन्थ माला" मे प्रकाशित कर संस्कृत के विद्वानों के समक्ष उपस्थित किया।

भास के नाटकचक्र के सम्बन्ध मे अनुसन्धानशील भारतीय तथा विदेशीय संस्कृत के विभिन्न विद्वान् दो विरुद्ध पक्ष उपस्थित करते हैं। एक पक्ष के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटक भास रचित हैं। किन्तु दूसरा पक्ष इसे स्वीकार नही करता। दूसरे पक्ष के अनुसार इन रूपको के कुछ ही अंश भासकृत हैं, शेष केरलवासी किसी कवि ने पूर्ण किया है। विदेशी विद्वान् डा० बार्नेट, डा० सिल्वन लेवी, डा० बुल्नर तथा भारतीय विद्वान् डा० कुप्पु शास्त्री आदि इस पक्ष के समर्थक हैं। महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश मे लाये गये भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटको को उनके नाटकचक्र के रूप मे मानने वाले देशी विदेशीय विद्वानो मे डा० कीथ, डा० टामस, डा० स्वरूप आदि प्रमुख है। इन विद्वानो ने अत्यन्त गवेषणापूर्वक भास के नाटकचक्र के विरोधी युक्तियो के विरुद्ध "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटको के रचयिता भास को ही माना है।

## समय निर्धारण

संस्कृत साहित्य के कवियो का समय निर्धारण विद्वानो के बीच बहुत दिनो से एक समस्या बनी हुई है। अतः भास का कोई निश्चित समय, निर्धारित करना कोई सामान्य बात नही है। तथापि अनुसधानशील विद्वानों ने भास की कृतियो का अन्तः परीक्षण तथा अन्य विद्वानो द्वारा उद्धृत उनके पद्यो या ग्रन्थ के नाम के आधार पर भिन्न भिन्न समय का अनुमान किया है। अभी तक विद्वानो ने ई० पू० ६०० से १० वी शताब्दी के बीच भास के होने का अनुमान लगाया है।

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री एवं म०म० हरप्रसाद शास्त्री कुछ विद्वानो ने भास का समय पाणिनि एव चाणक्य से प्राचीन ई. पू.

४०० से ६०० होने की सम्भावना की है। पं० रामावतार शर्मा एवं श्री काणे आदि विद्वानों की दृष्टि में भास का स्थितिकाल ईसा की नवीं १०वीं शताब्दी होना चाहिए। डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल तथा प्रसिद्ध ध्रुव आदि के अनुसार भास २ री- १ली शताब्दी के पूर्व वे है। डाक्टर बार्नेट एवं प्रो० देवधर आदि विद्वानों ने भास का काल ईसा की ६ठी ७वीं शताब्दी माना है। इस प्रकार भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।

महाकवि भास के समय निर्धारण में उपर्युक्त ईसा की नवीं दसवीं शताब्दी का होना तो कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि ७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट ने भास के नाटकचक्र का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषता बतलाई है। ई की छठी ७वीं शताब्दी में भास का होना कहा जाय तो भी कुछ उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि ७वीं शताब्दी के पहले ही भास के नाटकों को अधिक ख्याति मिल चुकी होगी तभी महाकवि बाण ने अपने ग्रन्थ में आदर पूर्वक उसका उल्लेख किया। यदि यह मत माना जाय तो समसामायिक होने वाले महाकवि बाण भास के नाटकों से इतने भलिभाँति परिचित न होते कि उनकी प्रशंसा किये बिना न रहते।

भास का समय निश्चितरूप से विक्रमकालीन महाकवि कालिदास से प्राचीन होना चाहिए। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ 'मालविकाग्निमित्रम्' में भास का नाम बहुत आदर पूर्वक उल्लेख किया है। ऐसे भी नाट्य रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत प्राचीन होना चाहिए। भास के नाटकों पर भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र का प्रभाव प्राय नहीं देखा जाता जबकि महाकवि कालिदास के नाटक नाट्यशास्त्रीय परम्परा का पूर्णतया अनुसरण करते हैं।

पं० टी० गणपतिशास्त्री ने सबल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि महाकवि भास का स्थिति काल ई. पू ४ थी है। इसके अनुसार भास की नाटक रचना पर भगवान् पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट "नटसूत्र" के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। भास, पाणिनि के पहले हों या बाद में किन्तु पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' का प्रभाव भास की कृतियों में

नही देखा जाता है। यदि भास को नाट्यशास्त्र की रचना के बाद माना जाय तो इनके नाटको मे नाट्यशास्त्रीय परम्परा को छाप अवश्य पडती।

भास के कृतियो का अन्त.परीक्षण किया जाय तो भी भास का समय ईसा के पूर्व ही मानना उचित होगा। भास ने अपने नाटको मे जिस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति का चित्रण किया है वह कालिदास द्वारा चित्रित सामाजिक परिस्थितियो से प्राचीन जान पडती है। पं० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास के 'प्रतिमा नाटक' मे प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि मे बालुका (बालू) का छोटना जो वर्णित है उसके अनुसार भास ई. पू. ५वीं शताब्दी पूर्व के होगे। उनका तर्क है कि ६०० ई० पूर्व आपस्तम्ब मे बालुका-स्तरण का उल्लेख है, अतः उसका तत्कालीन प्रभाव प्रतिमा के उक्त प्रसङ्ग मे पडा है। भास के 'अविमारक' मे जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है वह मनुस्मृति काल मे अवैध माना गया है। विद्वानो ने मनुस्मृति का काल ई० पू० २री शताब्दी माना है। इसके बाद यदि भास के नाटको की रचना होती तो मनुस्मृति के वैवाहिक विधान को अवश्य ध्यान मे रखा गया होता। अतः भास का काल मनुस्मृति के पूर्व ही मानना पडेगा। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने भी भास के कृतियो का अन्त· एवं बाह्य परीक्षण द्वारा महाकवि भास का समय पञ्चम शती या चतुर्थ शती वि० पू० स्वीकार किया है। उपर्युक्त विद्वानो के मत ही भास के समयनिर्धारण मे अब तक प्रबल प्रमाण हैं। अतः इन विद्वानो का मत स्वीकारते हुए भास का समय ई० पू० ४थी शती मानना ही उचित है।

## भास के ग्रन्थ

महाकवि भास के पं० गणपतिशास्त्री द्वारा उल्लिखित "स्वप्नवासवदत्तम्" आदि १३ नाटक ही ग्रन्थ के रूप मे उपलब्ध हैं। भास ने अपने नाटको के लिए विविध क्षेत्रो से कथावस्तु को संगृहीत किया है। इनके नाटक विषयानुसार पांच श्रेणी मे आते हैं।

(क) महाभारताश्रित—पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्ण-'र, दूतवाक्य तथा ऊरुभङ्ग।

(ख) भागवताश्रित—बालचरित ।
(ग) रामकथाश्रित—प्रतिमानाटक तथा अभिषेक ।
(घ) लोककथाश्रित—दरिद्रचारुदत्त और अविमारक ।
(ङ) उदयनकथाश्रित—प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्ता ।

पञ्चरात्र—महाकवि भास ने महाभारत के विराट पर्व की कथा को अपनी कविकल्पना से नवीनरूप में परिवर्तित किया है। द्रोण की आज्ञा से दुर्योधन के द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देना, कौरवों के साथ अभिमन्यु का लड़ाई के लिए आना, अभिमन्यु को बन्दी बनाना आदि कवि द्वारा वर्णित घटनायें महाभारत की कथा से संगत नहीं होने से इसे कविकल्पना प्रसूत कहना उचित जान पड़ता है।

मध्यमव्यायोग—इसमें प्रयुक्त "व्यायोग" शब्द दशरूपकों में आता है। 'मध्यम' शब्द भीम एवं एक ब्राह्मण बालक का वाचक है। भीम के पुत्र घटोत्कच द्वारा ब्राह्मण बालक के वध हेतु उद्यत होने पर भीम उसकी रक्षा के लिए आ जाता है। अनभिज्ञता में पिता पुत्र में युद्ध होता है, घटोत्कच के पराक्रम से प्रभावित होकर भीम उससे परिचय पूछता है। तदनन्तर दोनों हिडिम्बा के पास जाते हैं। कवि अपनी कल्पना से इन तीनों का अद्‌भुत सम्मिलन करा कर पाठकों के मन में अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न कर देता है।

दूतघटोत्कच—इसमें दुर्योधन और घटोत्कच का वीरतापूर्ण सम्वाद नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कर्णभार—महाकवि भास ने इसमें कर्ण की दानशीलता को अत्यन्त ललित रूप में वर्णित किया है।

दूतवाक्य—इसमें दुर्योधन के मानमर्दनयुक्त भगवान् कृष्ण की वीरतापूर्ण वाणी नाटकीय सवाद की दृष्टि से अत्यन्त हृदयहारिणी है।

ऊरुभङ्ग—ऊरुभङ्ग में दुर्योधन को भीम के द्वारा गदायुद्ध में परास्त कर उसकी जङ्घा चूर्ण करने का विशद वर्णन है।

बालचरित—इसमें भगवान् कृष्ण के बाललीला का ललित वर्णन

अत्यन्त मनोहर है। भागवत के उक्त प्रसङ्ग को कवि ने अपने भाव एवं भाषा से पाठको के लिए बहुत हृदयस्पर्शी बना दिया है।

प्रतिमानाटक—रामायण के अयोध्याकाण्ड के रामवनवास से लंकाकाण्ड के रावणवध तक की घटनाओ का वर्णन इस नाटक मे किया गया है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की मृत्यु के अनन्तर अपने ननिहाल से लौटते हुए भरत ने अयोध्या के समीप अपने पिता दशरथ की प्रस्तर प्रतिमा को देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान करते है, अत. इस प्रसङ्ग के अनुसार इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' है।

अभिषेक—इसमे रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लकाकाण्ड तक के प्रमुख प्रसङ्गो का रोचक वर्णन है। इस नाटक मे राम के राज्याभिषेक का वर्णन होने से इसका नाम 'अभिषेक' पडा है।

दरिद्र चारुदत्त—धनहीन किन्तु चरित्रवान् ब्राह्मण चारुदत्त एव वारवनिता वसन्तसेना के आदर्श प्रणय का वर्णन इस नाटक मे किया गया है।

अविमारक—इसमे कवि की कल्पना प्रसूत अविमारक एवं राजा कुन्तीभोज की पुत्री के प्रणय का वर्णन बहुत ही सुन्दर तथा सरस ढग से किया गया है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमे यौगन्धरायण द्वारा महासेन के यहाँ बन्दी बनाये गये उदयन को छुडाने के लिए उदयन के साथ वासवदत्ता का परिणय कराने हेतु जो नीति अपनायी गयी है वह अत्यन्त विस्मयावह है। इस नाटक मे मुख्य मन्त्री यौगन्धरायण की दृढ प्रतिज्ञा का उचित निर्वाह होने से इसका नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' है।

स्वप्नवासवदत्ता—राजा उदयन को अपने विरोधी राजाओ पर विजय प्राप्त करने के लिए दर्शक राजा की सहायता अपेक्षित है, अतः मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता के जलने की झूठी खबर फैलाकर उसे दर्शक के पास रखना तथा दर्शक की भगिनी का विवाह उदयन से कराना आदि का उपस्थापन इसमे अत्यन्त मनमोहक ढग से किया गया है। महाकवि भास ने इस नाटक की रचना मे अत्यधिक सफलता अर्जित की है।

स्वप्नवासवदत्ता को न केवल भासकृत नाटकों में ही उत्तम स्थान है, अपितु संस्कृत में श्रेष्ठ नाटकों में यह अन्यतम ही है।

उपर्युक्त नाटकग्रन्थों में प्रतिमा नाटक, स्वप्नवासवदत्ता एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण पूर्ण विकसित हैं, तथा मध्यमव्यायोग दूतघटोत्कच आदि एकांकी हैं। भास के सभी नाटकों को रङ्गमञ्च पर सरलता से दिखाया जा सकता है। इनके नाटकों में पात्रों के सम्वाद का विस्तार नहीं देखा जाता, जिससे दर्शकों के मन अरुचि पैदा हो।

## नाट्यकला

महाकवि भास के नाटकों में रङ्गमञ्च पर दिखाये जाने वाले भाव की भाँति ही भाषा का प्रयोग किया गया है। वह नाटकीय घटना को गतिशील बनाते हैं। नाटकों में जिस प्रकार पात्रों के सम्वाद अपेक्षित होते हैं तदनुरूप ही कवि ने संयोजित की है। वस्तुतः महाकवि भास का नाटकरचना की कुशलता लोकोत्तर ही है।

## काव्यशैली

महाकवि भास के नाटकों में अत्यन्त सरल प्रसादगुण युक्त नाट्यसौन्दर्य के परिपोषक शब्दों का प्रयोग बहुत सफलतापूर्वक किया गया है। इनके पद्यों के श्रवणमात्र से अर्थबोध हो जाता है। वस्तुतः दर्शक या श्रोता काव्य के अर्थबोध में होने वाली कठिनाई का सहन नहीं करते। दृश्यकाव्य की यही उत्तमता है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा का तत्क्षण अर्थबोध हो जाय। भास के नाटकों में इसी प्रकार के गद्य पद्य देखे जाते हैं।

भास ने अपने नाटकों में पात्रों के चरित्र के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। भास के नाटक काव्यगत सौन्दर्य से सुशोभित नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। नाट्याचार्यों द्वारा प्रतिपादित भारतीरीति को अपने नाटकों में भास ने पूर्णतया अपनाया है। भास का भारतीरीति एवं पात्रों की संवादरचना का अद्वितीय कलाकार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भास का शब्दार्थसंयोजन अभिव्यञ्जना से ओतप्रोत है। इस प्रकार रस भाव के अनुकूल एवं देश काल के अनुसार भास की भाषा को देखते हुए—

प्रसिद्ध आलङ्कारिक जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास ( भासो हासः ) कहा है।

### भास का वैशिष्ट्य

महाकवि भास नाट्यकला मे सिद्धहस्त हैं। इनके नाटको मे न केवल मनुष्य ही अपितु देव भी उपस्थित होते हैं। इन्होने बडी कुशलता से मनुष्यो एवं देवो का चरित्रचित्रण किया है। चरितचित्रण नाटको का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसका निर्वाह भास ने इतनी कुशलता से की है कि सहृदय सामाजिक इसे सहजरूप मे अपना सकें।

सूक्तियो से परिपूर्ण भास की वाणी सहृदयो के चित्त को आकृष्ट करती है। इनके नाटको मे दुरूह भावो को भी अति सरल एव प्रभावपूर्ण रीति से प्रकट किया गया है। भास के गद्य मे भी विचित्र वैलक्षय देखा जाता है। छोटे छोटे वाक्य भी मनोगत भावो को अभिव्यक्त करने मे सर्वथा सक्षम हैं।

यद्यपि नाटको मे सरस सुबोध एव असमस्त पदावली सर्वथा समादरणीय है तथापि प्रसङ्गानुसार दीर्घ समासयुक्त पदावली का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास ने अपने नाटको मे प्रसङ्गानुरूप समास बहुल पदावली को अपनाया है, पर उनके शब्द इतने सरल और ललित हैं कि अर्थावधारण मे पाठको एवं दर्शको को किसी प्रकार की कठिनाई नही होती है—

> चलविलुलितमौलि क्रोधताम्रायताक्षो
> भ्रमरमुखविदष्टा किञ्चिदुत्कृप्यमालाम्।
> असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी
> क्षितितलमवतीर्णे पारिवेषीव चन्द्रः॥

महाकवि भास पात्रो के मनोगत भाव परखने मे परम प्रवीण हैं। भास का प्रकृति वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है। अलङ्कारो मे उपमा एवं स्वभावोक्ति की छटा अतीव सुन्दर है। इनके नाटको मे निश्छल एवं शुद्ध प्रणय का वर्णन है। स्वप्नवासवदत्ता के नाटकीय घटना की मनोरम सङ्गति अद्वितीय है। इस प्रकार भास के नाटको मे काव्यापेक्षित समस्त वैशिष्टय मानो अहमहमिकया भरे पडे हैं।

## उरुभङ्ग का साहित्यिक पर्यालोचन

महाकवि भास रचित ऊरुभङ्ग का उपजीव्य महाभारत के एक घटना-विशेष का संक्षिप्तांश है, भले ही कवि ने पाठकों एवं दर्शकों में उत्कण्ठा जागृत करने के लिए अपनी कल्पना से इसके कथानक को कुछ अन्य ढंग से प्रस्तुत किया हो। यह मात्र एक अङ्क का रूपक है। प्रसङ्गानुसार इसके गद्य पद्य अत्यन्त ओजस्वितापूर्ण समासबहुल हैं तथापि इसकी ललित पदावली में सरल शब्दों का प्रयोग अत्यन्त मनमोहक है।

भास के नाटकों में प्रस्तावना, कवि का नाम आदि नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार होना चाहिये, जो नहीं देखा जाता। यद्यपि ऊरुभङ्ग में युद्ध का प्रसङ्ग होने से वीर रस का प्राधान्य अपेक्षित है तथापि कवि ने अपनी कल्पना से इसके कथानक को कारुण्यपूर्ण बना दिया है। 'शृङ्गारवीर-शान्तानामेकोऽङ्गी रसमिष्यते' इस नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार यह नाटक वीररस प्रधान होना उचित था। कवि ने इस नाटक में रङ्गमञ्च पर ही दुर्योधन की मृत्यु दिखलाया है जो नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

### कथा-सारांश

नान्दी पाठ के अनन्तर सर्वप्रथम सूत्रधार का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। वह शिष्ट परम्परा के अनुसार भीष्म, द्रोण आदि अजेय महायोद्धाओं से परिपूर्ण शत्रुरूपी महानदी को अर्जुनरूपी नौका का सञ्चालन करने वाले श्रीकृष्ण आप (सहृदय दर्शकों) को इस संसार सागर से पार करें, ऐसी मङ्गल कामना कर मान्य सभासदों से कुछ कहना चाहता है, तब तक कुछ शब्द सा सुनाई पड़ा। सूत्रधार आश्चर्यान्वित हो नेपथ्य की तरफ ज्यों ही देखता है, कि सब कुछ समय जाता है। तदनन्तर पारिपार्श्विक का प्रवेश होता है। वह सूत्रधार से पूछता है कि विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित ये वीर युद्धरूपी यज्ञ में अपनी देह की आहुति देने के लिए अपने प्रतियोद्धाओं का बलपौरुष निरेखते हुए इधर उधर क्यों घूम रहे हैं? इसका उत्तर देते हुए सूत्रधार कहता है—कौरवों के पक्ष में एकमात्र दुर्योधन ही

बचा है, पाण्डवो के पक्ष मे पाँच पाण्डव तथा कृष्ण शेष रह गये हैं, अतः मृत राजाओ से परिपूर्ण समन्त पञ्चक मे भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध प्रारम्भ होने पर राजाओ की मृत्यु के एकमात्र गृहस्वरूप इस रणक्षेत्र मे सैनिक प्रवेश कर रहे है।

स्थापना के अनन्तर तीन योद्धाओ का प्रवेश होता है। ये अपनी कल्पना के अनुसार भीम और दुर्योधन के बीच प्रवृत्त युद्ध एव युद्धस्थल का वर्णन विभिन्न प्रकार से कर रहे हैं। पहला कहता है—हम ऐसे सग्राम नामक आश्रमस्थल मे आये हैं जहाँ प्राणो की आहुति करने के लिए अग्नि-होत्र नामक यज्ञ और मृत राजाओ के लिए सूर्यलोक प्राप्ति का साधन है। दूसरा योद्धा युद्धस्थल में मरे पडे बडे बडे हाथियो की उपमा पर्वत से दे रहा है। तीसरा साङ्गरूपक मे युद्धस्थल पर यज्ञस्थल का आरोप करता हुआ हस्तियो के शुण्ड दण्ड को यूप, बाणो को कुशा आदि इस प्रकार युद्धस्थल मे पड़े हुए वस्तुओ का याज्ञीय पदार्थों के रूप मे उल्लेख कर रहा है। इस प्रकार रणभूमि का वर्णन करते हुए योद्धाओ का युद्ध वर्णन करता है।

कुरुकुल एवं यादव वंश के पूजनीय देवो—व्यास, बलराम, कृष्ण तथा विदुर आदि देवताओ के समक्ष भीम और दुर्योधन मे परस्पर गदायुद्ध आरम्भ होता है। दुर्योधन की गदाप्रहार से भीम घायल होकर गिर पड़ता है, जिसे देखकर व्यास विस्मित होते है। युधिष्ठिर और विदुर दु खी होते है, अर्जुन गाण्डीव को उठाता है और भगवान श्रीकृष्ण आकाश की ओर देखते हैं। शिष्य दुर्योधन के पराक्रम से प्रसन्न होकर रणदर्शी बलदेवजी हल को घुमा रहे हैं। गिरे हुए भीम को ताना देते हुए दुर्योधन कहता है कि वीर गिरे हुए दीन योद्धा पर प्रहार नही करते। इस प्रकार भीम का अपमान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने जघे पर ताडन करते हुए भीम को कुछ संकेत कर रहे हैं। भीम सम्भलते हुए उठकर अपनी गदा से दुर्योधन की जंघो पर प्रहार करता हे, जिससे घायल होकर दुर्योधन गिर पडता है। खून से लथपथ दुर्योधन को देखकर व्यास जी आकाश की ओर चले जाते हैं। अपने शिष्य दुर्योधन को कपटपूर्वक मारे जाने से बलदेव जी काफी क्रोधित होते हैं, जिनसे पाण्डवो को भयभीत देख कर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से अव-

गान्धारी को धैर्य दिलाता है। दूसरे जन्म मे भी तुम ही हमारी जननी होवो, यह सुनकर गान्धारी कहती है मेरे मनोनुकूल ही तुमने कहा है। देवियो को आश्वस्त करते हुए दुर्योधन कहता है—क्षत्रिये ! युद्धस्थल मे वीर योद्धा से लडते हुए मैं मारा गया। इस प्रकार युद्धस्थल मे मारे गये वीरो की पत्नियाँ नही रोती। पाण्डवो और कुन्ती की सेवा का निर्देश करते हुए दुर्जय से दुर्योधन कहता है—तुम शोक को छोडकर पाण्डवो के साथ मुझे तिलाञ्जलि देना। नेपथ्य से पुनः वीरतापूर्ण वाणी सुनाई पडती है।

गर्जना करते हुए क्रुद्ध अश्वत्थामा रङ्गमञ्च पर प्रविष्ट हो कर कहते हैं, कि मुझे पिता की तिलाञ्जलि देने मे व्यस्त होने के कारण दुर्योधन को छल से मारा गया, अत मैं कृष्णसहित पाण्डव कुल का विनाश कर डालूँगा। दुर्योधन के मना करने पर भी रात्रियुद्ध मे पाण्डवो को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं, दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को बिना अभिषेक ही विप्रवचनो द्वारा राजा बनाते हैं। इसके बाद दुर्योधन स्वर्गलोक चला जाता है। पुत्र विनाश से शोकाकुल धृतराष्ट्र राज्य को धिक्कारते हुए तपोवन जाने का सङ्कल्प करते हैं। अश्वत्थामा सौप्तिक वध के लिये उद्यत होते है। बलराम के द्वारा भरतवाक्य का पाठ किया जाता है, जिसमें पृथ्वी की रक्षा हेतु मङ्गल कामना की गई है।

## पात्रो का चरितचित्रण

महाकवि भास ने ऊरुभङ्ग मे कथानक के अनुसार ही पात्रो का चरित चित्रित किया है। भट्टनारायण द्वारा वेणीसंहार मे दुर्योधन को क्रूर, न्याय तथा शास्त्रविरुद्ध कार्य करने वाला चित्रित किया गया है, किन्तु ऊरुभङ्ग मे उसे अत्यन्त विनम्र, धीर वीर योद्धा के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

दुर्योधन—ऊरुभङ्ग मे दुर्योधन प्रमुख पात्र है। इसे "नेता विनीतो धुरन्धरस्त्यागी दक्ष प्रियंवद" इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप इस रूपक मे चित्रित किया गया है। भीम के साथ गदा युद्ध करते समय दुर्योधन अपनी युद्ध कला का परिचय देता है, जिसके अनुसार कवि को कहना पडता है, कि

भीम बलवान् अवश्य हैं, किन्तु दुर्योधन युद्ध कला में निपुण है। गदा प्रहार से घायल होकर गिरा हुआ वह भीम से कहता है उठो भीम गिरे हुए दीन योद्धा पर वीर प्रहार नहीं करते इस प्रसंग में दुर्योधन अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक न्यायोचित कार्य करता है।

श्रीकृष्ण के संकेत से भीम द्वारा वञ्चनापूर्वक किए गए गदा प्रहार से दुर्योधन के जाङ्घे टूट जाती है अतः वह पृथ्वी पर गिर जाता है। इस अन्याय पूर्ण प्रहार से बलराम जी क्रुद्ध होकर पाण्डवों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु दुर्योधन उन्हें ऐसा करने से मना करता है। वह बलराम जी से कहता है, कि जब आप भीम द्वारा मुझे छलपूर्वक मारा जाना स्वीकार करते हैं तो वस्तुतः मैं पराजित नहीं हुआ हूँ, अतः कुरुकुल को तिलाञ्जलि देने के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दीजिए। दुर्योधन की यह उदारता अद्भुत है।

धराशायी दुर्योधन के पास उसका शोकाकुल परिवार जब पहुँचता है तो वह अत्यन्त धैर्यपूर्वक माता पिता और परिवार को समझाते हुए अभिमान भरे शब्दों में कहता है, कि मैं युद्ध में लड़ते हुए वीर योद्धा द्वारा सबके समक्ष मारा गया हूँ। अपनी पत्नियों को क्षात्रधर्म का स्मरण दिलाते हुए दुर्योधन कहता है, कि वीरों की स्त्रियाँ युद्ध में लड़ते हुए पति के मारे जाने पर रोती नहीं हैं। दुर्योधन मातृभक्त पुत्र है, वह अगले जन्म में भी गान्धारी का ही पुत्र होने की कामना करता है। अपने पुत्र दुर्जय को समझाते हुए दुर्योधन का कहना है, कि हमारी तरह ही पाण्डवों की भी सेवा करना तथा अम्बा कुन्ती की आज्ञा का पालन करना, इससे दुर्योधन के अदम्य साहस, धैर्य तथा विशाल हृदय का परिचय मिलता है।

छल से दुर्योधन के मारे जाने के कारण क्रुद्ध अश्वत्थामा के द्वारा पाण्डवों के निशासमर द्वारा मारने की प्रतिज्ञा करने पर दुर्योधन कहता है कि राजाज्ञा का मान ही शरीर होता है, मैंने प्रतिष्ठा के लिए ही युद्ध ठाना था। वस्तुतः द्रौपदी का केशकर्षण, बालक अभिमन्यु का वध तथा पाण्डवों को अक्षव्याज से वन भेजना आदि जो मैंने पाण्डवों के साथ किया है उसकी

अपेक्षा पाण्डवो ने हमारे प्रति जो भी किया वह अत्यन्त अल्प है, इससे दुर्योधन के स्वाभिमान को कवि ने चित्रित किया है।

इस प्रकार ऊरुभङ्ग मे दुर्योधन अपने उज्ज्वल चरित्र से धीरोदत्त नायक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। रूपक के अन्त मे अपने मान के लिए पाण्डवो के साथ किए गए अन्यायपूर्ण कार्यो का उसे स्मरण होता है, अतः अश्वत्थामा द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है "फलमपरितोपस्य" इस प्रकार पश्चात्ताप का भाव भी उसमे द्योतित होता है। वस्तुत. दुर्योधन का चरित सर्वथा अनुकरणीय है।

बलदेव—महाकवि भास ने ऊरुभङ्ग मे बलदेव को भीम और दुर्योधन मे प्रवृत्त गदायुद्ध के दर्शक के रूप रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किया है। भगवान् कृष्ण के सकेत से भीम द्वारा किये गये गदप्रहार की चोट से दुर्योधन की जाङ्घे टूट जाने पर न्याय विरुद्ध कार्य करने वाले भीम पर अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बलदेव जी कहते हैं इस भीम ने अपने कुल के विनयमृद्धि को भी गर्त मे डाल दिया। दुर्योधन को धैर्यावलम्बन कराते हुए शिष्य के प्रति अत्यन्त स्नेह के कारण भीम को मारने के लिए उद्यत होते हैं, किन्तु दुर्योधन के यह कहने पर कि भीम की गदा मे प्रविष्ट होकर स्वय श्रीकृष्ण ने मुझे मारा है भीम का कोई अपराध नही है तब बलदेवजी शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार बलदेव जी के न्यायप्रियता, धर्मयुद्ध के अधिष्ठाता, तटस्थ किन्तु भगवान् के प्रति आस्था तथा शिष्य के प्रति प्रेम का परिचय मिलता है।

दुर्योधन के शोकाकुल परिवार को देख कर बलदेव जी अत्यन्त दु खी होते हैं, यहाँ तक कि नित्यस्तमित नेत्रो वाले धृतराष्ट्र को धैर्यावलम्बन कराने मे समक्ष नही होते है।

अश्वत्थामा—भीम द्वारा किये गये गदा प्रहार से दुर्योधन की जाङ्घे टूट जाने पर क्रुद्धावस्था मे अश्वत्थामा का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है। अश्वत्थामा युद्धप्रिय राजाओ को सम्बोधित करते हुए कहता है छल बल से मारे जाने वाला मैं दुर्योधन नही हूँ, न तो कुण्ठित अस्त्रो वाला कर्ण, अपितु महारथी द्रोण का पुत्र हूँ। अपने पिता के तर्पण कृत मे व्यस्त रहने के कारण ही दुर्योधन को इस अवस्था मे पडा देख रहा हूँ। वञ्चना पूर्वक

दुर्योधन के मारे जाने से वह काफी क्षुब्ध है अतः छल प्रयोग का संकेत करने वाले श्रीकृष्ण सहित समस्त पाण्डवों को मार डालने की प्रतिज्ञा करता है। दुर्योधन के मना करने पर अश्वत्थामा का कहना है कि भीम ने तुम्हारी जङ्घों के साथ तुम्हारे अभिमान को भी नष्ट कर डाला। किन्तु मैं सर्वथा कृतप्रतिज्ञ हूँ। इस प्रकार वह निशासमर में पाण्डवों को ध्वस्त करने का हठ कर ही लेता है। वह दुर्योधन के पुत्र दुर्जय को अपने वचनों द्वारा राजा के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

दुर्योधन के समय स्वयं को वहाँ उपस्थित न रहने में पितृतर्पण को कारण बतलाने से अश्वत्थामा का कौटिल्य द्योतित हो रहा है। दुर्योधन के मना करने पर भी पाण्डवों के विनाश करने की हठ को नहीं छोड़ता है। सौप्तिक वध के लिए उद्यत होने के कारण निर्दयी है। वह दुर्योधन के शोकाकुल परिवार को सहानुभूतिपूर्ण शब्दों द्वारा सान्त्वना नहीं दिलाता है। इस प्रकार ऊरुभङ्ग में कवि ने अश्वत्थामा को कुटिल निर्दयी हठी तथा आत्मश्लाघी के रूप में चित्रित किया है।

उपर्युक्त पर्यालोचन से भास के ऊरुभङ्ग के पात्रों का चरित्र कथानक के अनुरूप ही देखा जाता है।

—रामप्रभा ओझा

रथयात्रा, वि० स० २०४३
भगवा, वाराणसी

## पात्र-परिचय

**पुरुष-पात्र—**

| | | |
|---|---|---|
| सूत्रधार | — | प्रधान नट |
| पारिपार्श्विक | — | प्रधान नट का सहायक |
| राजा | — | दुर्योधन |
| बलदेव | — | युद्धद्रष्टा तथा दुर्योधन के गुरु |
| अश्वत्थामा | — | द्रोणाचार्य का पुत्र |
| धृतराष्ट्र | — | दुर्योधन के पिता |
| दुर्जय | — | दुर्योधन का पुत्र |
| तीनों भट | — | सैनिक |

**स्त्री-पात्र—**

| | | |
|---|---|---|
| गान्धारी | — | दुर्योधन की माता |
| पौरवी | — | दुर्योधन की पत्नी |
| मालवी | — | दुर्योधन की पत्नी |

—*—

॥ श्री ॥

भासनाटकचक्रे

# ऊरुभङ्गम्

'प्रभा' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

——*——

## प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

सूत्रधारः—

भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गान्धारराजह्रदां
कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्रोतसम् ।

---

* प्रभा *

प्रपद्य परमं देवं प्रपन्नार्तिहरं प्रभुम् ।
ऊरुभङ्गाभिधं काव्यं टीकया तनुते मया ॥

अथ तत्रभवान् महाकविर्भासः ऊरुभङ्गाभिधानं रूपककाव्यं चिकीर्षुरादौ भारतीयनाट्यशास्त्रपरम्परानुसारं प्रयुज्यमानां नान्दीं सूचयन् प्रारभते—"नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" इति।

नान्दी=रङ्गविघ्नोपशान्तये गीतवाद्यवादनादिरूपा सम्पादिता क्रिया 'नान्दीति' कथ्यते, "दुन्दुभिस्स्वानको भेरी भम्भा नासूच्च नान्द्यपि", इति कोशवचनविचारात् । अथवा नन्दयति=हर्षयति देवादीनिति 'नान्दी' "आशीर्वचनसंयुक्ता, स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां, तस्मान्नान्दीति संज्ञिता" इति शास्त्रसमर्थनात् । अत्र गीतवाद्यादिप्रयुक्ता क्रियैव 'नान्दी'ति सूचितवान् महाकविर्भासः । तस्याः नान्द्याः अन्ते=समाप्तौ, ततः=नान्दी-

---

( नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश )

सूत्रधार—भीष्म तथा द्रोण रूपी तट से युक्त जयद्रथरूपी जल वाले गन्धारराज (शकुनि) रूप गड्ढा है जिसमें तथा कर्ण, अश्वत्थामा, और

तीर्णः शत्रुनदी शरासिसिकता येन प्लवेनार्जुनः
शत्रूणां तरणेषु वः स भगवानस्तु प्लवः केशवः ॥ १॥

समाप्त्यनन्तरं, प्रविशति = प्रवेशं करोति, सूत्रधारः = नाटकस्य व्यवस्थापकः प्रधाननटः, सूत्रं धारयतीति 'सूत्रधारः' इति व्युत्पत्त्याधायकत्वात्। तल्लक्षणञ्च—' नाट्योपकरणादीनि 'सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥"

अन्वयः—अर्जुनः येन प्लवेन भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारराजह्रदा कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरा दुर्योधनस्रोतसः शरासिसिकता शत्रुनदी तीर्णा, सः प्लवः भगवान् केशवः शत्रूणां तरणेषु वः (प्लवः) अस्तु ॥१॥

व्याख्या—अर्जुनः = मध्यमपाण्डवः, येन प्लवेन = तरणसाधनविशेषेण नौकया, भीष्मद्रोणतटाम्—भीष्मः = शान्तनुतनयश्च, द्रोणः = द्रोणाचार्यश्चेति भीष्मद्रोणौ, तावेव तटे = तीरे, यस्याः सा जयद्रथजलाम्—जयद्रथः = सिन्धुराजः एव जलम् = आपः, यस्यास्ताः गान्धारराजह्रदाम्—गान्धारराजः = शकुनिः 'दुर्योधनमातुलः" एव ह्रदः = सरोवरः यत्र ताम् कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकराम् कर्णः = राधेयः, द्रौणिः = अश्वत्थामा, कृपः = कृपाचार्यः, एते त्रयो यथाक्रमम् ऊर्मिः = तरङ्गः, नक्रः = ग्राहस्योपजातिविशेषः, मकरः = जलजन्तुविशेषः, यत्र तादृशी कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकराम्, दुर्योधनस्रोतसम्—दुर्योधनः = कुरुराज एव स्रोतः = प्रवाहः यस्याः ताम्, शरासिसिकताम्—शराः = बाणाः, असयः = खड्गाः एव सिकता = बालुका यस्याः ताम्, शत्रुनदी—शत्रवः = कौरवाः एव नद्यः यत्र ताः शत्रुनदीम्, तीर्णः = पारमभूत् सः प्लवः = तरणिविशेषः भगवान् = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नः केशवः = श्रीकृष्णः, शत्रूणाम् = अरीणाम्, तरणेषु = सन्तरणेषु वः = युष्माकम्, प्लवोऽस्तु = भवतु,

---

कृपाचार्य ही क्रमशः बड़ी बड़ी लहरें, नक्र तथा मगर हैं दुर्योधन ही महान् स्रोत है, बाण, खड्ग ही बालूकामय राशि हैं, इस प्रकार के शत्रु (कौरव) रूपी नदी को मध्यमपाण्डव अर्जुन ने जिस तरणिरूप भगवान् श्रीकृष्ण के आधार पर पार किया वही भगवान् श्रीकृष्ण शत्रुओं से विजय प्राप्त करने के लिए आपके भी नौका बनें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान्विज्ञापयामि। अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्र शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि।

( नेपथ्ये )

एते स्मो भो ! एते स्म ।

सूत्रधार — भवतु, विज्ञातम्।

( प्रविश्य )

पारिपार्श्विक —भाव कुतो नु खल्वेते,

---

"साङ्गमङ्गिनो रूपणात् समस्तवस्तुविषयात्मक रूपकालङ्कार "। शार्दूलविक्रीडित वृत्त ' सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः " इति लक्षणसमन्वयात्।

एवमिति। एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान् = मान्यसहृदयान्, विज्ञापयामि = निवेदयामि। अय = आश्चर्यसूचक पदमिदम् किन्नु खलु = कस्तावद् हेतु, मयि = सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = निवेदनायोत्सुके सति, शब्द इव अस्पष्टो ध्वनिविशेष, श्रूयत = श्रुतिगोचरा भवति। अङ्ग = हन्त, पश्यामि = कीदृशोऽय ध्वनिविशेष इति जानामि।

(नेपथ्ये) नटाना वेशविन्यासस्थान नेपथ्यमित्युच्यते। तत्र

एते इति। एते = पुरुषा वयम् स्म = स्थिता स्म ।

प्रविश्य रङ्गभूमिमागत्य। पारिपार्श्विक = प्रधानपात्रविशेष ।

भाव इति। भाव = आदरसूचक सम्बोधनपदम्, तच्च पारिपार्श्वकेन सूत्रधाराय प्रयुज्यते "सूत्रधार वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्वक" इति निर्देशात्।

कुतो न इति। कुतो न = कस्माद्धेतो एते = पुरुषविशेष। इत्यप्रिम-

---

मैं पूज्य सहृदयो से निवेदन करता हूँ। अरे ! निवेदन के लिए व्यग्र होते हुए मुझे शब्द सुनाई दे रहा है, अच्छा, देख रहा हूँ।

[ नेपथ्य में ]

अरे ! हम हैं, हम हैं।

सूत्रधार—अच्छा, मैंने जान लिया।

[ प्रवेश कर ]

पारिपार्श्विक—श्रीमान् ! ऐसे क्यो ?

स्वर्गार्थमाहवमुखोद्यतगात्रहोमा
नाराचतोमरशतैर्विषमीकृताङ्ग-।
मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितैः शरीरै-
रन्योन्यवीर्यनिकषा पुरुषा भ्रमन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधार—मार्ष ! किं नावगच्छसि । तनयशतनयशून्ये[1] दुर्योधना-

---

सम्बन्धोऽपेक्ष्यते ।

अन्वय —स्वर्गार्थम् आहवमुखोद्यतगात्रहोमा, नाराचतोमरशतैः विषमीकृताङ्गा, मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितैः शरीरैः अन्योऽन्यवीर्यनिकषा पुरुषा भ्रमन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—स्वर्गार्थम् = स्वर्लोकप्राप्तिकामनया, आहवमुखोद्यतगात्रहोमा—आहवस्य = युद्धस्य, मुखे = मध्ये, उद्यत = प्रयुक्त, गात्राणाम् होम = आहुतिर्यैस्ते वीरा नाराचतोमरशतै —नाराचानाम् = अयोमय शस्त्रविशेषाणा, तोमराणाम् = तन्नामकशस्त्राणा, शतै = शतसख्याभि, विषमीकृताङ्गा —विषमीकृतानि—विभिन्नव्रणै नतोन्नतानि अङ्गानि = शरीराणि येषा ते, किं वा मत्तद्विपेन्द्रदशनोल्लिखितै मत्तानाम् = मदमस्तानाम् द्विपेन्द्राणाम् = गजेन्द्राणाम् यानि दशनानि = दन्तास्तै उल्लिखितै = आहतव्राणचिह्नितै, शरीरै = देहै परिलक्षिता सन्त, अन्योऽन्वीर्यनिकषा —अन्योऽन्यस्य = परस्परस्य वीर्यम् = पराक्रम एव निकषा = परीक्षणपाषाणो येषा ते पुरुषा = पराक्रमशालिन राजपुरुषा भ्रमन्ति = इतस्तत युद्धस्थले भ्रमण कुर्वन्ति ॥ २ ॥

सूत्रधार—मारिष इति–सूत्रधारप्रयुक्त पारिपार्श्विकाय सम्बोधनम् ।

---

स्वर्गप्राप्ति की कामना से सङ्ग्राम रूपी अग्नि के बीच अपने देह की आहुति करने वाले नाराच, तोमर आदि सैकडो शस्त्रो से जिनके शरीर क्षत विक्षत हो गये हैं, तथा मदमस्त हस्तियो के दातो से कटे हुए शरीर वाले आपस मे एक दूसरे की बलपरीक्षा मे सलग्न होकर इधर उधर घूम रहे हैं ॥ २ ॥

सूत्रधार—मारिष ! क्या तुम नही जानते कि धृतराष्ट्र के पक्ष मे

---

१ 'तनयशतनयनशून्ये' इति वा पाठ ।

वशेषे धृतराष्ट्रपक्षे, पाण्डवजनार्दनावशेषे युधिष्ठिरपक्षे, राज्ञां शरीर-समाकीर्णे समन्तपञ्चके,

एतद्रण हृतगजाश्वनरेन्द्रयोधं
सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपट प्रविद्धम्।
युद्धे वृकोदरसुयोधनयो: प्रवृत्ते
योधा नरेन्द्रनिधनैकगृह प्रविष्टा ॥ ३ ॥

किन्नेति—किं नावगच्छसि = कथं न जानासि। तनयाना = आत्मजानां शतमिति तनयशत तेन प्रयुक्तो यो नय = सामादिनीति तच्छून्ये = निष्फलिते, दुर्योधन एव अवशिष्ट यस्मिन् धृतराष्ट्रस्य पक्षे। धृतराष्ट्रपुत्रै प्रयुक्ता अपि सामादामादयो नीतय शत्रुशमनेऽसफला जाता, अतो मृतेपु शतभ्रातृपु दुर्योधन एव कौरवपक्षे जीवितोऽस्ति इति भाव। "तनयशतनयन-शून्ये" इति पाठभेदे तु—तनयानाम् = आत्मजनाम् शतम् = शतसंख्याकं तदेव नयने = आक्षिणी, ताभ्या शून्ये = अभावे धृतराष्ट्रपक्षे इत्येव योजनीयम्। पाण्डवजनार्दनावशेषे-पाण्डवा = युधिष्ठिरादय पञ्च पाण्डुपुत्रा, जनार्दन = श्रीकृष्ण इमे अवशिष्टा = अवशेषा, यत्र तस्मिन् युधिष्ठिरपक्षे = पाण्डवानां पक्षे, राज्ञाम् = नृपतीना "मृतानामिति शेष तेषा शरीरैः = देहै, समा-कीर्णे = व्याप्ते सति समन्तपञ्चके = कुरुक्षेत्राख्ययुद्धस्थले इत्यग्रिमश्लोकेन सम्बद्धयते—

अन्वय.—वृकोदरसुधनयो युद्धे प्रवृत्ते योधा हृतगजाश्वनरेन्द्रयोध नरेन्द्रनिधनैकगृह प्रविद्धम् सङ्कीर्णलेख्य चित्रपटम् इव एतद् रणं प्रविष्टा ॥ ३ ॥

व्याख्या—वृकोदर: = वृकनामाग्निरस्त्युदरे यस्य स भीमसेन, सुयोधन = कुरुराज तयो युद्धे = सङ्ग्रामे किं वा गदायुद्धे, प्रवृत्ते =

उनके सौ पुत्र मारे गये और एक मात्र दुर्योधन ही जीवित बचा है तथा युधिष्ठिर के पक्ष मे पाँचो पाण्डव सहित श्रीकृष्ण के अवशिष्ट रहने पर मृत राजाओं के शरीर से आच्छादित कुरुक्षेत्र में भीम एवं दुर्योधन में परस्पर गदा युद्ध प्रारम्भ होने पर यह युद्धक्षेत्र जो राजाओ की मृत्यु का एकमात्र

( निष्क्रान्तौ )

स्थापना

—*—

( ततः प्रविशन्ति भटास्त्रयः )

सर्वे—एते स्मो भो ! एते स्म ।

प्रथमः—

---

प्रस्तुते, हताः=शस्त्रैः प्राप्तप्रहाराः, गजाः=हस्तिनः, अश्वाः—वाजिनः, नरेन्द्राः=राजानः, योद्धाः=भटाः यत्र तत् नरेन्द्रनिधनैकगृहम्—नरेन्द्राणां= नृपतीनां निधनस्य,=विलयस्य, एकमात्रं गृहम्=स्थानम् तद् तद् प्रविद्धम्=प्रकर्षेण विद्धं प्रस्फोटितं वा, सङ्कीर्णलेख्यम्—परस्परं सलग्नानि लेख्यानि=चित्रितानि यत्तत् चित्रपटम्=आलेख्यस्थानम् इव=सदृशम् एतत्=कुरुक्षेत्राभिधं रणम्=रणक्षेत्रम्, प्रविष्टाः=प्रवेशमकुर्वन्। विविध-शलाकाभिश्चित्रित सच्चित्रं यथा प्रविद्धमवलोक्यते तथा विभिन्नास्त्रैः प्रहृतानि शरीराणि इतस्ततो व्याप्तानि यत्र तद्रणस्थलमपि प्रविद्धमवभासते इत्युपमा । वृत्तम् वसन्ततिलका ।। ३ ।।

स्थापना—वर्णनीयविषयस्य संक्षिप्तप्रस्तुतिः स्थापना कथ्यते, इत्यस्यापर-पर्यायौ प्रस्तावनामुखावपि स्तः ।

स्थापनानन्तरं त्रयो योद्धारः रङ्गस्थलं प्रविशन्ति ।

सर्वे=त्रयो योद्धारः,—एते=भटाः । तत्र प्रथमो योद्धा—

---

गृह स्वरूप है जहाँ मरे हुए हाथी, घोड़े, राजा तथा सैनिक समूह से आक्रान्त होने के कारण रेखाङ्कित चित्रपट के समान प्रतीत हो रहा है, उस समरभूमि में सैनिकगण प्रवेश कर रहे हैं ।। ३ ।।

( दोनों चले जाते हैं )

स्थापना

(इसके बाद तीन योद्धा प्रवेश करते हैं)

सभी—अये ! हमलोग यहाँ हैं, यहाँ हैं ।

वैरस्यायतनं बलस्य निकषं मानप्रतिष्ठागृहं
युद्धेष्वप्सरसां स्वयंवरसभां शौर्यप्रतिष्ठा नृणाम् ।
राज्ञां पश्चिमकालवीरशयनं प्राणाग्निहोमक्रतुं
सम्प्राप्ता रणसञ्ज्ञमाश्रमपदं राज्ञां नभःसङ्क्रमम् ॥४॥

---

अन्वय.—(वयम्) वैरस्य आयतनम्, बलस्य निकषं, मानप्रतिष्ठा, युद्धेषु अप्सरसां स्वयम्वरसभां नृणाम् शौर्यप्रतिष्ठा, राज्ञां पश्चिमकालवीरशयनं, प्राणाग्निहोमक्रतुं नभ सङ्क्रमं रणसञ्ज्ञम्, आश्रमपदं सम्प्राप्ताः ॥ ४ ॥

व्याख्या—वैरस्य = शत्रुतायाः, आयतनम् = गृहम्, पाठान्तरे आश्वयनम् = दर्पोचितं बलस्य = पराक्रमस्य, निकषम् = परीक्षणप्रस्तरः, मान = स्वाभिमानः प्रतिष्ठा = अन्येन सत् प्राप्तसम्मानम् तयोः मानप्रतिष्ठयोः, गृहम् = स्थैर्यस्थलम्, युद्धेषु = सङ्ग्रामाङ्गणेषु, अप्सरसां = देवाङ्गनानाम्, स्वयम्वरसभां = स्वयं वरयतीति स्वम्वरस्तदर्थमाहुता या सभा तद्रूपमाश्रमपदमित्यग्रेण सम्बन्धः । नृणाम् = मानवानाम्, शौर्यम् = शूरता च प्रतिष्ठा = सम्मानं च इति शौर्यप्रतिष्ठाम् राज्ञाम् = भूपतीनाम्, पश्चिमकाले = अन्तकाले, वीरशयनम् = वीरतासूचिकाशय्या, प्राणानाम् अग्निहोमाभिधं क्रतु = यज्ञम्, नभ सङ्क्रमम् = अत्र नभः इति पदेन सूर्यलोकं सङ्केतयति तेन सङ्क्रमितं रणसञ्ज्ञम् = युद्धनामकम्, आश्रमपदम् = आश्रमस्थलम्, सम्प्राप्ताः = आगता वयमिति आक्षिप्यते । अत्रैकस्मिन्नेव रणनामनि आश्रमपदे आयतनादीनामनेकधर्माणामारोपदर्शनान्मालारूपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ ४ ॥

---

पहला—हमलोग ऐसे सङ्ग्राम सञ्ज्ञक आश्रम स्थल में पहुँच आये हैं, जो शत्रुता के कारण योद्धाओं का परस्पर होने वाले आक्षेप कटाक्ष आदि का स्थान है, शूरता की कसौटी है, मान और प्रतिष्ठा का निकेतन है, समर में अपराङ्मुख योद्धाओं का वरण करने के लिए स्वर्गस्त्रियों की स्वयम्वर सभा है, पुरुषों के वीरता का प्रतिष्ठास्थल है, राजाओं की अन्तकालीन वीरशय्या है, प्राणाहुति के लिए अग्निहोत्र नामक यज्ञ तथा मृत भूपतियों को सूर्यलोक पहुँचने का मानो साधन है ॥ ४ ॥

द्वितीय.—सम्यग्भवानाह ।

उपलविषमा नागेन्द्राणां शरीरधराधरा
दिशि दिशि कृता गृध्रावासा हतातिरथा रथा ।
अवनिपतयः स्वर्गं प्राप्ताः क्रियामरणे रणे
प्रतिमुखमिमे तत्तत्कृत्वा चिरं निहताहता. ॥ ५ ॥

---

अन्वयः—क्रियामरणे रणे नागेन्द्राणां शरीरधराधरा उपलविषमा दिशि दिशि गृध्रावासा कृता रथा हतातिरथा अवनिपतयः स्वर्गं प्राप्ता, इमे प्रतिमुखम् निहता चिरम् तत् तत् कृत्वा हता ॥ ५ ॥

व्याख्या—क्रियामरणे=परस्पर शस्त्रप्रहारादिक्रियया मरणम्=मृत्यु यस्मिन् तस्मिन् रणे=सङ्ग्रामे, नागेन्द्राणाम्=करिवराणाम्, शरीरधराधरा—शरीराणि=देहा एव धराधरा=धरा=पृथ्वी तदाधृता धरा= पर्वता, उपलविषमा–उपलै=पाषाणखण्डै विषमा=उच्चावचा, अपि च दिशि दिशि=प्रतिदिशम्, गृध्रावासा—गृध्रा= पक्षिविशेषास्तै कृता आवासा=निवासस्थलानि, रथा=अश्ववाहनानि, हतातिरथा—हता= मरणं प्राप्ता अतिरथा=महारथिनो योद्धार, अवनिपतय=भूपतय, स्वर्ग=देवलोक, प्राप्ता=गता, इमे=योद्धार, प्रतिमुखम्=मुखं मुखं प्रति वर्तते इति प्रतिमुख आमने सामने इति लोकभाषायाम्, निहता=परस्पर कृतप्रहारा चिरं=बहुकाल यावत्=नानास्त्रप्रयोगरूप व्यापार कृत्वा हता= मृता इत्यर्थ । अत्र "धरा-रथा रणे हतादीनां पदानामावृत्तित्वेऽपि भिन्नार्थकत्वाद् यमकालङ्कार । "रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा" इति लक्षणसमन्वयाद् 'हरिणी' वृत्तम् ॥ ५ ॥

---

दूसरा—आपने ठीक कहा है ।

इस समरभूमि मे मृत गजेन्द्रो के शरीर, पर्वत की भांति प्रतीत होते हैं, शव मांस का अशन करने वाले गिद्धो ने प्रत्येक दिशाओ मे अपना आवास बना लिया है । महारथी योद्धाओ के मारे जाने के कारण रथ रिक्त पडे हुए हैं । मरे राजा स्वर्ग सिधार गये हैं तथा योद्धागण एक दूसरे पर परस्पर शस्त्राघात करते हुए गिर कर मरे पडे हैं ॥ ५ ॥

तृतीय —एवमेतत् ।

करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो
हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्त ।
ध्वजविततवितान सिंहनादोच्चमन्त्र
पतितपशुमनुष्य सस्थितो युद्धयज्ञ ॥ ६ ॥

---

अन्वय.—करिवरकरयूप बाणविन्यस्तदर्भ. हतगजचयनोच्च वैरवह्निप्रदीप्त ध्वजविततवितान सिंहनादोच्चमन्त्र पतितपशुमनुष्य युद्धयज्ञ सस्थित ॥ ६ ॥

व्याख्या—करिवराणाम् = गजेन्द्राणाम्, करा = शुण्डदण्डा एव यूपा = यज्ञप्रयुक्ता स्तम्भा एव यत्र स करिवरकरयूप, बाणा = शरा एव विन्यस्ता. = प्रकीर्णा, दर्भा = कुशा यत्र स बाणविन्यस्तदर्भ, हता = उपरता गजा = हस्तिन एव चयनानि = पुष्पसमूहस्तै उच्च = उत्थित, वैरस्य = शत्रुतायां, वह्नि = अग्नि यत्र, प्रदीप्त = प्रज्वलित, ध्वजा = पताका एव वितता = विस्तृता विस्तृता विताना पाठान्तरे तु विमाना = स्वर्गगमनसाधनानि यत्र, यत्रेति युज्यते, सिंहनादा = वीराणा सिंहवद्गर्जना एव उच्चमन्त्र = उच्चैरुदात्तो मन्त्रो यत्र स पतितपशुमनुष्य —पतिता = मृत्वा भूमौ पतिता पशव = बलिकर्माणि पशुरूपेण प्रयुक्ता मनुष्या = परिमानवा यत्र स युद्धयज्ञ = सङ्ग्रामाध्वर, सस्थित = इदानीमवरुद्ध । अत्रापि रूपकालङ्कार । "ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै" रिति लक्षणानुसरणान्मालिनी वृत्तम् ॥ ६ ॥

---

तीसरा—यह ऐसा ही है ।

जिस युद्धरूपी यज्ञ में बडे बडे हाथियो के शुण्डदण्ड ही यूपस्थानीय हैं, इधर उधर बिखरे हुए बाण ही कुशा हैं, मृत हस्तिसमूह ही मानो पुष्पोंकी ढेर है शत्रुता ही दहकती हुई अग्नि है, ध्वजा ही फैला चदोवा है, सैनिक की सिंहनाद के समान गर्जना ही पवित्र मन्त्रोच्चारण है तथा मरे हुए मनुष्य ही पशु रूप बलि हैं, वह अब समाप्त ही होने वाला है ॥ ६ ॥

---

१ 'विमान " इति पाठान्तरम् ।

प्रथमः—इदमपर पश्येतां भवन्तौ ।

एते परस्परशरैर्हृतजीवितानां
देहै रणाजिरमही समुपाश्रितानाम् ।
कुर्वन्ति चात्र पिशितार्द्रमुखा विहङ्गा
राज्ञा शरीरशिथिलानि विभूषणानि ॥ ७ ॥

द्वितीय —

प्रसक्तनाराचनिपातपातितः समग्रयुद्धोद्यतकल्पितो गजः ।
विशीर्णवर्मा सशर सकार्मुको नृपायुधागारमिवावसीदति ॥ ८ ॥

---

अन्वयः—अत्र एते पिशितार्द्रमुखा विहङ्गा परस्परशरैः हृतजीविताना देहैः रणाजिरमही समुपाश्रितानाम् राज्ञा विभूषणानि शरीरशिथिलानि कुर्वन्ति ॥ ७ ॥

व्याख्या—अत्र = युद्धभूमौ, एते=अग्रे विद्यमाना पक्षिण, पिशितार्द्रमुखा —पिशितेन = अभिनवमासखण्डेन, आर्द्रम्=सरसम् मुखम्= चञ्चुपुटा येषा ते विहङ्गा.=पक्षिण· परस्परशरैः—परस्परस्य = अन्योऽन्यस्य, शरैः =सायकैः, हृतजीवितानाम्—हृतानि = विनष्टानि, जीवितानि=असवो येषा तेषाम्, देहैः =मृतशरीरैः रणाजिरम्→सङ्ग्रामाङ्गणस्थानम्, समुपाश्रितानाम्—समागताना, राज्ञाम्=नृपतीना, विभूषणानि= मुकुटकेयूरादीन्याभरणानि, आकृष्य शरीरशिथिलानि—शरीराद् = देहाद्, शिथिलानि कुर्वन्ति= प्रतिपादयन्ति ॥ वसन्ततिलका वृत्तम् ।

अन्वय —प्रसक्तनाराचनिपातपातित समग्रयुद्धोद्यतकल्पित., विशीर्णवर्मा सशरै सकार्मुक गज नृपायुधागारम् इव अवसीदति ॥ ८ ॥

व्याख्या—प्रसक्तनाराचनिपातपातित — प्रसक्तानाम् = प्रतियोद्धारै

---

पहला—और आप दोनो यह भी देखिये ।

मास से आर्द्र मुख वाले ये पक्षी परस्पर शस्त्रप्रहार से मृत्यु को प्राप्त सङ्ग्रामाङ्गण मे पडे हुए राजाओ के शरीर से आभूषणो को खीच रहे हैं ॥ ७ ॥

दूसरा—युद्ध के लिए सर्वविध सजाये गये उत्सुक हाथी के शरीर पर

तृतीय.—इदमपर पश्येता भवन्तौ ।
माल्यैर्ध्वजाग्रपतितैः कृतमुण्डमाल
ल्लनैकसायकवर रथिन विपन्नम् ।
जामातर प्रवहणादिव बन्धुनार्यो
हृष्टा शिवा रथमुखादवतारयन्ति ॥ ९ ॥

---

निहन्तु प्रक्षिमानाम्, । नाराचानाम्=धनुर्विशेषाणाम्, निपातेन=प्रक्षेपण, पातित =भूमौ पातित, समग्रयुद्धोद्यतकल्पित —समग्राणा=समस्तानां, युद्धाना कृते उद्यत =उत्साहान्वित सन् आत्मना कल्पित =सज्जीकृत, विदीर्णवर्मा—विदीर्णम्=शत्रूणां प्रहारैः प्रस्फुटित वर्म=कवच तस्य स, सशरैः=बाणसहितोऽस्ति इति सशर, सकार्मुक, गज =हस्ती, नृपायुधागारम्—नृपाणाम्=राज्ञाम् आयुधागारम्—शस्त्रास्त्रगृहम् इव=सदृशम्, अवसीदति=विषण्णो भवति । अत्र वशस्थवृत्तम्— जतौ तु वशस्थमुदीरितो जरौ" इति लक्षणात् ॥ ८ ॥

अन्वय —हृष्टा शिवा ध्वजाग्रपतितैः माल्यैः कृतमुण्डमाल ल्लनैकसायकधर विपन्नम् रथिन बन्धुनार्य प्रवहणात् जामातरम् इव रथमुखात् अवतारयन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—हृष्टा =प्रफुल्लिता, शिवा =शृगालस्त्रिय, ध्वजाग्रपतितैः —ध्वजानाम्=केतूनाम् अग्रत, पतितैः =स्खलितैः माल्यैः =पुष्प-

---

निशाना साध कर निरन्तर बाण की वर्षा की गयी है, जिससे फलस्वरूप उसका कवच टूट गया है, उस पर बाण लगे हुए है तथा धनुष पड़े है, जिसस यह हाथी मानो राजाओ के शस्त्रागार के समान नष्ट भ्रष्ट हो रहा है ॥ ८ ॥

तीसरा—और आप दोनो इसे भी देखें ।

आनन्दमग्न होकर शृङ्गालवधुयें पताका के अग्रभाग से गिरी हुई मालाओ से अपने सिर को सजोती तीक्ष्ण बाणा स क्षत शरीर वाले रथी को रथ से खींचती हुई ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो सम्बन्धियो की स्त्रियाँ जमाता को पालकी से नीचे उतार रही हैं ॥ ९ ॥

सर्वे—अहो नु खलु निहतपतितगजतुरगनररुधिरकलिलभूमिप्रदेशस्य विक्षिप्तवर्मचर्मातपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्याकुलस्य शक्तिप्रासपरशुभिण्डिपालशूलमुसलमुद्गरवराहकर्णकणपकर्पणशङ्कुत्रासिगदादिभिरायुधैरवकीर्णस्य समन्तपञ्चकस्य प्रतिभयता।

स्रजैः, कृतमुण्डमालम् येन, तम्, रत्नैकसायकधरम्—रत्नैः = विभिन्नमणिभियुक्तः एकः सायकेषु = शरेषु तस्य वर = उत्तम यः तम्, पाठान्तरे तु—सायकस्य = शरस्य, धर = धारक इति सायकधर एकश्चासौ सायकवरश्चेति एकसायकवरः, लग्न = आविद्ध यस्मिन् स तम्, विपन्नम् = विपण्ण प्राणरहितं वा, रथिनम् = रथारूढं जनं योद्धारं वा, बन्धुतार्यं = सम्बन्धिस्त्रिय, प्रवहणात् = शिविकात, जामातरम् = पुत्रीपतिम् इव = सदृश, रथमुखात् = रथस्य अग्रत, अवतारयन्ति = अध भूमौ आनयन्तीत्यर्थ । अत्रोपमालङ्कारः वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ९ ॥

सर्वे इति । 'अहो' इति विस्मयजनक विशेषणम् । निहतपतितगजतुरगनररुधिरकलिलभूमिप्रदेशस्य—निहता = शस्त्रास्त्रै प्रहृता अतएव मृता सन्त पृथिव्या पतिता गजा = करिण, तुरगा = वाजिन, नरा मनुष्याश्च ये तेषा रुधिरेण = शोणितेन, कलिल = पङ्किल, भूमिप्रदेश = भूभाग यत्र तस्य, विक्षिप्तवर्मचर्मातपत्रचामरतोमरशरकुन्तकवचकबन्धादिपर्याकुलस्य-विक्षिप्तानि = यत्र तत्रावकीर्णानि, वर्माणि = कवचनानि, चर्माणि अस्त्रविशेष 'ढाल' इति हिन्दी भाषाया कथ्यते, आतपत्राणि = छत्राणि, चामराणि = प्राहिणी, तोमराणि = लौहनिर्मिता दण्डा, "शवरी" इति लोके कथ्यते, शराः = बाणा, कुन्ता = भल्लका कवचा = उराच्छादका. कबन्धा = छिन्नशिरासि शरीराणि, आदिपदादन्यानि क्षत विक्षतान्यङ्गानि यानि तै

सभी योद्धा—अरे यह कुरुक्षेत्र अत्यधिक भयानक लग रहा है, क्योंकि यहाँ का भूप्रदेश मृत हाथी, घोर मनुष्यो के रक्त से व्याप्त है तथा इधर उधर बिखरे पडे कवच, ढाल, तोमर, बाण, भाला कवच आदि अस्त्रो से भरा पडा है एव बरछी, प्रास, परशु, भिण्डिपाल, शूल, मुसल, मुद्गर, वराहकर्ण, शङ्कु, और भयकर गदा आदि अनेक आयुध यहाँ बिखरे हुए है ।

प्रयाग —इह हि,

रुधिरसरितो निस्तीर्यन्ते हतद्विपसङ्कुला
नृपतिरहिते सस्तैः सूतैर्वहन्ति रथान् हयाः ।
पतितशिरसः पूर्वाभ्यासात् प्रयान्ति कबन्धका
युधपरहिता मत्ता नागा भ्रमन्ति यतस्ततः ॥ १० ॥

---

शार्दूलविक्रम—आत्मश्लाघितम्, सन्निपातमहादेवविदितवीरसुतगुणगणवर्णनरसार्द्र-प्रभृति यथा तद्गुणाभिधायिविविधसूक्तैरवलोकितम्—शक्तिप्रभृति यदा आवर्त-निभिस्तापुरी—रत्नाकरे अवतीर्णस्य स्वातन्त्र्य सामन्तवर्धन—युद्धोत्सवम्, प्रतिपन्नता—मनस्कारितम् इति ।

अन्वय —हतद्विपसङ्कुला रुधिरसरितः निस्तीर्यन्ते नृपरहिते सूतैः हयाः रथान् वहन्ति पतितशिरसः कबन्धकाः पूर्वाभ्यासात् प्रयान्ति, युधप-रहिताः मत्ताः नागाः यतः ततः भ्रमन्ति ॥ १० ॥

व्याख्या—हताः—व्यापादिताः द्विपाः—गजाः एव सङ्कुलाः—समीपाः । रुधिरसरितः—शोणितनद्यः निस्तीर्यन्ते पारं गम्यते शूरैरिति शेषः, नृप-रहिते—नृपतिभिः रहिते—शून्ये अपि च सस्तैः—गुरुतरघातलोपभ्रष्टैः सूतैः—सारथिभिः अधिष्ठिताः हयाः—अश्वाः, रथान्—स्यन्दनान्, वहन्ति—नयन्ति गमयन्ति वा पतितशिरसः—शस्त्राणां प्रहारेण शिरांसि छि-न्नानि अधोपतितानि शिरांसि येषां ते कबन्धाः शिरःशून्याः देहाः, पूर्वाभ्या-सात्—शिरोऽभ्यासात् प्राक् शस्त्रप्रहारविक्रियाभ्यासतो योऽभ्यास तस्मात् प्रयान्ति—इतस्ततो धावन्ति युधपरहिताः—आरोहपुरुषैः विहीनाः मत्ताः—मदोन्मत्ताः, नागाः—हस्तिनः यतस्ततः—यत्र तत्र, भ्रमन्ति—विचरन्ति[illegible]

---

पहला—इस रणभूमि में—

मरे हुए हाथियों के शरीर से निकले रक्त प्रवाह वाली नदियाँ बह रही हैं। घोड़े, राजाओं से शून्य एवं सारथियों रहित रथों को खींच रहे हैं। कट कर गिरे हुए सिर वाले धड़ [illegible] शरीर, पूर्वाभ्यास के कारण इधर उधर भाग दौड़ कर रहे हैं। सवारों के अभाव में मदोन्मत्त हाथी यत्र तत्र भ्रमण कर रहे हैं ॥ १० ॥

द्वितीयः—इदमपर पश्येतां भवन्तौ । एते,

गृध्रा मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा
दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डाः ।
भान्त्यम्बरे विततलम्बविकीर्णपक्षा
मांसैः प्रवालरचिता इव तालवृन्ताः ॥ ११ ॥

---

भूत्वा गच्छन्तीति । हरिणीछन्द ॥ १० ॥

अन्वय.—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा दैत्येन्द्रकुञ्जरनताङ्कुशतीक्ष्ण-तुण्डाः विततलम्बविकीर्णपक्षा गृध्रा अम्बरे मासैं प्रवालरचिताः तालवृन्ता इव भान्ति ॥ ११ ॥

व्याख्या—मधूकमुकुलोन्नतपिङ्गलाक्षा —मधूकस्य=मधुवृक्षस्य 'महुआ' इति लोकप्रसिद्धस्य मुकुलवत्=कुड्मलसदृश, उन्नतानि=किञ्चिदुच्चत्वमा-प्तानि पिङ्गलानि=पीतवर्णानि, अक्षीणि=चक्षूंपि येपा ते, दैत्येन्द्रकुञ्जर-नताङ्कुशतीक्ष्णतुण्डा दैत्येन्द्रस्य=असुराधिपस्य बलेर्ये कुञ्जर =गज न शासितु यो नताङ्कुश नतोऽग्रभागो यस्य तादृशोऽङ्कुशस्तद्वद् तीक्ष्णानि तुण्डानि=मुखानि येषा ते, विततलम्बविकीर्णपक्षा —वितता:=अतिदीर्घा, अतएव लम्बा =लम्बायमाना, विकीर्णा =प्रसारिता पक्षा =हया येषा ते, गृध्रा =गृद्धा, अम्बरे=आकाशे, मासै=मासखण्डैर्युक्ता प्रबाल-रचिता =प्रवालैविद्रुमणिभि निष्पादिता, तालवृन्ता =तालनाम्नो वृक्षस्य विरचितं वृन्त=व्यजनम्, इव=सदृशं, भान्ति=शोभन्ते । अत्र 'वसन्त-तिलका' वृत्त वर्तते ॥ ११ ॥

---

दूसरा—आप दोनो यह भी देखें

ये महुए की कालिका की भाँति बडे बडे एव पीली आँखो वाले दैत्यराज बलि के हाथी को वश मे करने के लिए प्रयुक्त अंकुश के समान तीक्ष्ण चोच वाले तथा फैले हुए लम्बे पखो वाले गिद्ध अपने मुख मे मास के टुकडे को लेकर उडते हुए प्रवाल मणि से बने ताड के पख के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥ ११ ॥

तृतीयः—

एषा निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधा
व्यक्तीकृता दिनकरोग्रकरैः समन्तात्।
नाराचकुन्तशरतोमरखड्गकीर्णा
तारागणं पतितमुद्वहतीव भूमिः ॥ १२ ॥

प्रथमः—अहो ईदृश्यामप्यवस्थायामविमुक्तशोभा विराजन्ते क्षत्रियाः। इह हि,

---

अन्वयः—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः, दिनकरोग्रकरैः समन्तात् व्यक्तीकृता, नाराचकुन्तशरतोमरखड्गकीर्णा एषा भूमिः पतितं तारागणम् उद्वहति इव ॥ १२ ॥

व्याख्या—निरस्तहयनागनरेन्द्रयोधाः—निरस्ताः=उपरताः हयाः=अश्वाः, नागाः=गजाः, नरेन्द्राः=नृपतयः, योधाः=सैनिकाः यत्र सा, दिनकरोग्रकरैः—दिनकरस्य=सूर्यस्य उग्रकरैः=प्रचण्डांशुभिः, समन्तात्=परितः, व्यक्तीकृता=प्रकाशिता, नाराचकुन्तशरतोमरखड्गैः विविधास्त्रैः कीर्णा=आच्छादिता व्याप्ता वा, एषा भूमिः=पुरोदृश्यमाना युद्धभूमिः, पतितम्=गगनात् स्खलितं, तारागणम्=तारकमण्डलम् उद्वहति=दधाति इव। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १२ ॥

प्रथम इति। "अहो" इत्याश्चर्यसूचकं पदम्। ईदृश्यामपि=पञ्चत्वमवाप्तायामपि, अवस्थायाम्=दशायाम्, अविमुक्तशोभाः=अत्यक्तप्रभाः क्षत्रियाः=राजन्याः, विराजन्ते=शोभन्ते। इह हि=यतः—

---

तीसरा—मारे गये घोड़े, हाथी, राजाओं तथा सैनिकों से व्याप्त सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से प्रकाशित चारों तरफ बिखरे हुए नाराच, शर, कुन्त तोमर आदि शस्त्रों वाली यह समरभूमि, मानो आकाश से टूट कर गिरे हुए तारासमूह की शोभा धारण करती हुई दीख रही है ॥ १२ ॥

पहला—वाह! इस अवस्था (मृतावस्था) में भी क्षत्रियों के शरीर में कांति विद्यमान है। क्योंकि—

स्रस्ते'द्वर्तितनेत्रषट्पदगणा ताम्रोष्ठपत्रोत्करा
भ्रूभेदाञ्चितकेसरा स्वमुकुटव्याविद्धसर्वतिका।
वीर्यादित्यविबोधिता रणमुखे नाराचनालोन्नता
निष्कम्पा स्थलपद्मिनीव रचिता राज्ञामभीतैर्मुखैः ॥१३॥

अन्वय—रणमुखे राज्ञाम् अभीतैः मुखैः एषा सत्रो (स्त्वो) द्वर्तितनेत्रषट्पदगणा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा भ्रूभेदाञ्चितकेसरा स्वमुकुटव्यविद्धसर्वतिका वीर्यादित्यविबोधिता रणमुखे नाराचनालोन्नता निष्कम्पा स्थलपद्मिनी इव रचिता ॥ १३ ॥

व्याख्या—रणमुखे=युद्धमध्ये, राज्ञाम्=नृपतीनाम्, अभीतैः=अभयैः मुखैः=वदनैः, एषा=कुरुक्षेत्राभिधा भूमिः, सत्रोद्वर्तितनेत्रषट्पदगणा—सत्रे=रणक्रतौ पाठान्तरे सत्त्वेन=बलेन, सत्र सत्त्वयो उद्वर्तितानि=प्रस्फुटितानि, नेत्राणि=अक्षीणि एव षट्पदानाम्=मधुकराणाम्, गण=समूह यस्या सा, "स्रस्ते" इति पाठे तु स्रस्तानि=शिथिलीभूतानि, उद्वर्तितानि=विपरीत गतानि "उल्टा" लोकभाषायाम्, नेत्राणि=चक्षूंषि एव षट्पदानाम्=भ्रमराणाम् गण=सङ्घ यत्र सा, ताम्रोष्ठपत्रोत्करा—ताम्रा रक्तवर्णा ओष्ठा एव पत्रोत्करा=पल्लवचया यत्र सा, भ्रूभेदाञ्चितकेसरा=भ्रूभेदा एव अञ्चिता=प्रकीर्णा केसरा=परागा यत्र सा, स्वमुकुटव्याविद्धसर्वतिका—स्वमुकुटानि=राज्ञां शिरोभूषणानि एव व्याविद्धा=न्यूनविकासिता सर्वतिका=अभिनवदलानि यस्या सा, वीर्यादित्यवबोधिता—वीर्यमेव=शौर्यमेव, आदित्य=सूर्यं, तेन अवबोधिता=प्रबुद्धा विकासमवाप्ता वा, नाराचनालोन्नता=नाराच=सायका एव नामानि=

युद्ध के समय विस्फारित नेत्ररूप मधुकर से युक्त ताम्र के समान लाल २ ओष्ठरूप पत्रो वाली, भौ रूप केसर वाली यह रणभूमि राजाओ के मुखो से स्थलकमालिनी सी दीख रही है जो राजाओ के मुकुट रूपी कोयलो से सजी हुई, क्षात्रबल रूप सूर्य से विकसित तथा बाणरूपी कमलनाल से उन्नत है ॥ १३ ॥

१ "सत्रो (स्त्वो)" इति पाठभेद

द्वितीय —ईदृशानामपि क्षत्रियाणा मृत्यु प्रभवतीति न शक्य खलु विपमस्थै पुरुषै'रात्मबलाधान कर्तुम् ।

तृतीय —'मृत्युरेव प्रभवति क्षत्रियाणामिति ।

प्रथम —क सशय ।

द्वितीय —मा मा भवानेवम् ।

स्पृष्ट्वा खाण्डवधूमरञ्जितगुण सशप्तकोत्सादन
स्वर्गाक्रन्दहर निवातकवचप्राणोपहार धनु ।

---

कमलदण्डा, तै उन्नता=ऊर्ध्वंगता सती निष्कम्पा=स्थिरा भूमिर्वा, स्थल-कमलिनी=स्थलनलिनी इव, रचिता=कल्पिता । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ १३ ॥

द्वितीय इति । द्वितीयो भट मात्चर्यमाह—ईदृशानामिति । ईदृशानाम्=अतिवीर्यवताम्, क्षत्रियाणाम्=राजवश्यानाम् अपि मृत्यु =काल, प्रभवति=समर्थो भवति । विपमस्थै =आपत्तियुक्तै राजपुरुषै राज्ञाम्=क्षत्रियाणा बलस्य=पराक्रमस्य आदा (धा) न सर्वतो विनाश (साहाय्य वा) कर्तु न शक्यम् खलु इति निश्चय ।

अन्वय —पार्थेन खाण्डवधूमरञ्जितगुण सशप्तकोत्सादन स्वर्गा-

---

दूसरा—ऐसे वीर क्षत्रियो पर भी मृत्यु अपना प्रभाव दिखा ही देती है, वस्तुत प्रतिकूल परिस्थिति वाले पुरुष अपना पौरुष दिखाने मे सक्षम नही हो पाते ।

तीसरा—क्या क्षत्रियो पर भी मृत्यु का प्रभाव पडता है ?

पहला—इसमे क्या सन्देह ?

दूसरा—नही, नही, आप ऐसा न कहे—

आज अर्जुन ने खाण्डव वन म धूम से धूसरित प्रत्यञ्चा वाले, त्रिगर्त देश के सशप्तको का विनाशक, स्वर्गस्थितो की व्यथा को दूर करने वाले,

---

१ पाठान्तरम्—राजबला (दा धा) न ।

२ किं प्रभवति क्षत्रियाणामिति । इति पाठभेद ।

पार्थेना'स्त्रवलान्महेश्वररणक्षेपावशिष्टै: शरै-
दर्पोत्सिक्तवशा नृपा रणमुखे मृत्यो: प्रतिग्राहिता ।। १४ ।।

सर्वे—अये शब्द !

किं मेघा निनदन्ति वज्रपतनैश्चूर्णीकृता: पर्वता
निर्घातैस्तुमुलस्वनप्रतिभयै: किं दार्यते वा मही ।

---

क्रन्दहर निवातकवचप्राणोपहार धनु: स्पृष्ट्वा महेश्वररणक्षेपावशिष्टै: शरै: दर्पोत्सिक्तवशा नृपा: रणमुखे अस्त्र बलात् मृत्यो: प्रतिग्राहिता: ।। १४ ।।

व्याख्या — पार्थेन = अर्जुनेन खाण्डवधूमरञ्जितगुणम् - खाण्डवस्य = खाण्डवनामारण्यस्य दाहावसरे उद्धतेन धूमेन रञ्जित: = श्यामलीभूत: गुण: = प्रत्यञ्चा यस्य तद्, सशक्रकोत्सादनम्—सशक्रकानाम् = सैन्यानाम् उत्सादनम्, स्वर्गाक्रन्दहरम्—स्वर्गस्य = नाकलोकस्य य: आक्रन्द: = उत्पीडनम् तद्-हर्त्तारम्, निवातकवचप्राणोपहारम्—निवातकवचानाम् = कुबेरस्य यद्राजकोष: स्तस्य रक्षकाणा यक्षविशेषाणा प्राणा: = असव एव उपहार: = उपायन: यस्य तम्, धनु: = गाण्डीवनामानं कार्मुकं स्पृष्ट्वा = गृहीत्वा, महेश्वररणक्षेपावशिष्टै: —महेश्वर: = शङ्कर: किरातवेषधरस्तेन सार्द्धं यो रण: = सङ्ग्रामस्तत्र क्षेपाद् = सञ्चालनाद् अवशिष्टै: शरै: = बाणै: दर्पोत्सिक्तवशा —दर्पस्य = अभिमानस्य यदुत्सिक्तम् = आधिक्य तद्वशा: = तदायत्ता: नृपा: = राजान: रणमुखे = युद्धस्थले अस्त्र बलात् = शस्त्रबलप्रयोगाद् मृत्यो: = यमस्य प्रतिग्राहिता: = यमपुरं प्रेषिता इत्यर्थ: । अत्रातिशयोक्तिरलङ्कार: शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ।। १४ ।।

अन्वय — मेघा: निनदन्ति किम्, ( किं वा ) वज्रपतनैश्चूर्णीकृता:

---

निवातकवच जातीय राक्षसो का सहारक गाण्डीव धनुष को धारण कर बलपूर्वक किरातवेशधारी भगवान् शङ्कर के साथ किए गये सङ्ग्राम मे बचे हुए बाणो द्वारा मदोद्धत राजाओ को इस समराङ्गण मे मृत्युलोक पहुँचा दिया है ।। १४ ।।

सभी—अरे ! यह कैसा शब्द है ?

१ "पार्थेनाद्य" इत्यपि पाठ: ।

किं मुञ्चत्यनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुल
शब्दं मन्दरकन्दरोदरदरी सहृत्य वा सागरः ॥ १५ ॥

भवतु, पश्यामस्तावत्। ( सर्वे परिक्रामन्ति )

प्रथम —अये एतत्खलु द्रौपदीकेशघर्षणावमर्षितस्य पाण्डवमध्य

---

पर्वताः किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयं मही दार्यते ( किं वा ) सागरः मन्दरकन्दरोदरदरी सहृत्य अनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुल शब्दं मुञ्चति ॥ १५ ॥

व्याख्या—मेघाः = घनाः निनदन्ति = गर्जन्ति किम् ? (किं वा) वज्रपतनैः—वज्रस्य = अशनेः पतनैः = पातैः चूर्णीकृताः = चूर्णतामवाप्ताः पर्वताः = गिरयः 'निनदन्ति' इति क्रिययान्वयः। किं वा तुमुलस्वनप्रतिभयं—तुमुलस्य = युद्धसङ्कुलस्य यः स्वनः = कोलाहलः तेन प्रतिभयं = भयमुत्पादकं मही = पृथ्वी दीर्यते—विदार्यते अथवा सागरः = समुद्रः मन्दरकन्दरोदरदरी—मन्दरस्य = मन्दरगिरेः याः कदराः = गुहाः तासामुदरस्य = मध्यस्यलस्य याः दरी = कन्दरा ता सहृत्य = उद्भिद्य अनिलावधूतचपलक्षुब्धोर्मिमालाकुलम्—अनिलेन = मरुता, अवधूताः = सञ्चालितास्तैः चपलाः = चञ्चलाः क्षुब्धाः = क्षोभमवाप्ताः याः ऊर्मयः = लहर्यः तासां मालाभिः = समूहैः आकुलम् = व्याप्तं यथा स्यात्तथा शब्दम् = गर्जनां मुञ्चति = त्यजति यद्वशादयं भयङ्करः शब्दः श्रूयते इति सन्देहमिश्रितत्वात् ससंशयालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितञ्च वृत्तम् ॥ १५ ॥

प्रथम —अये इति विस्मयसूचकं विषादोत्पादकं वा पदम्। एतत्

---

क्या मेघ गरज रहे हैं ? अथवा वज्र गिरने से पर्वत चूर चूर हो रहे हैं, कि या कठोर शब्दों की टकराहट से यह पृथ्वी फट रही है, या मन्दराचल की गम्भीर गुफा से टकरा कर वायु द्वारा कम्पित होने के कारण चञ्चल एवं क्षुब्ध लहरियों से व्याकुल समुद्र ही गर्जना कर रहा है ॥ १५ ॥

अच्छा, तबतक देखा जाय।

[ सभी घूमते हैं ]

पहला—अरे द्रौपदी के केश कर्षण से क्रुद्ध पाण्डवों का मध्यम भाई

मस्य भीमसेनस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य महाराजदुर्योधनस्य च द्वैपायनहलायुधकृष्णविदुरप्रमुखाना कुरुयदुकुलदैवताना प्रत्यक्षं प्रवृत्त गदायुद्धम् ।

द्वितीयः—

भीमस्योरसि चारु¹काञ्चनशिलापीने प्रतिस्फालिते
भिन्ने वासवहस्तिहस्तकठिने दुर्योधनासस्थले ।
अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेष्वासज्यमानायुधे
यस्मिश्चण्डगदाभिघातजनित शब्द समुत्तिष्ठति ।। १६ ।।

---

खल्विति । एतत् = पुरोदृश्यमानम्, खल्विति वाक्यसयोजनसौन्दर्ये । द्रौपद्या = पाञ्चाल्या केशाना = वेणीना घर्षणेन = बलादाकर्षणेन अवमर्षितस्य = कुपितस्य पाण्डवमध्यमस्य भीमसेनस्य = वृकोदरस्य भ्रातृशतवधक्रुद्धस्य— भ्रातृणा = दु शासनादीना शतसख्यकाना भ्रातृणा वधेन = समरे हतेन क्रुद्धस्य = अवमर्षितस्य महाराजदुर्योधनस्य = कौरवाधिपस्य द्वैपायन = व्यास हलायुध. = बलराम कृष्ण = माधव विदुरश्च एतेषा प्रमुखाना कुरुयदुकुलदैवतानाम्—कुरुयदुकुलयो = कुरुयदुवशयो दैवतानाम् = पूज्याना प्रत्यक्षम् = समक्ष प्रवृत्तम् = आरब्ध गदायुद्धम् । द्वितीय —भीमस्येति ।

अन्वयः—चारुकाञ्चनशिलापीने उरसि भीमस्य प्रतिस्फालिते वासवहस्तिहस्तकठिने दुर्योधनासस्थले भिन्ने अन्योऽन्यस्य भुजद्वयान्तरतटेषु आसज्यमानायुधे यस्मिन् चण्डगदाभिघातजनित शब्द समुत्तिष्ठति ।। १६ ।।

व्याख्या—चारुकाञ्चनशिलापीने—चारु = शोभना 'तप्त' इति पाठे सति तप्त = अग्नौ शोधिता काञ्चनशिला = सुवर्णशिला इव पीने = पीवरे

---

भीमसेन तथा सौ भाईयो के वध से अत्यन्त क्रुद्ध हुए महाराज दुर्योधन के पूज्य जनो व्यास, बलराम, कृष्ण, विदुर, जो यदुकुल तथा कुरुकुल के दैवतरूप हैं के समक्ष परस्पर गदायुद्ध हो रहा है ।

दूसरा—अग्नि मे तपाये गये अत्यन्त उज्ज्वल सुवर्णशिला की भाँति भीमसेन के विशाल वक्ष स्थल पर हुए प्रहार तथा इन्द्र के ऐरावत हाथी के

---

१ 'तप्त' इति पाठान्तरम्

तृतीयः—एष महाराज,
शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुट क्रोधाग्निकाक्षानन:
स्थानाक्रामणवामनीकृततनु प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रय ।
यस्यैषा रिपुशोणिताद्रकलिला भात्यग्रहस्ते गदा
कैलासस्य गिरेरिवाग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनि ॥१७॥

---

भीमस्य=मध्यमपाण्डवस्य प्रतिस्फालिते=प्रताडिते वासवहस्तिहस्तकठिने—वासवस्य=इन्द्रस्य, हस्तिन:=गजस्यैरावतस्य य ह॰त=शुण्डादण्ड तद्वत्कठिने दुर्योधनासस्थले दुर्योधनस्य असस्थले=स्कन्धदेशे भिन्ने=भीमगदया प्रताडिते सति अन्योऽन्यस्य=परस्परस्य भुजद्वयान्तरतटेषु—भुजद्वयस्य=बाहुयुगलस्य अन्तरतटेषु=मध्यभागेषु आसज्यमानायुधे—आसज्यमानानि=प्रहृतानि आयुधानि=अस्त्राणि यत्र तस्मिन्, यस्मिन्=गदायुद्धे चण्डगदाभिघातजनित=प्रचण्डश्चासौ गदाभिघातजनित=समुद्भूत शब्द=घोरशब्द समुत्तिष्ठति=सर्वा दिश व्याप्नोतीत्यर्थ ॥ १६ ॥

*अन्वय*—*यस्य रिपुशोणिताद्रकलिला एषा गदा अग्रहस्ते कैलासस्य* गिरे. अग्ररचिता सोल्का महेन्द्राशनि इव भाति (सोऽयम्) शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुट क्रोधाग्निकाक्षानन स्थानाक्रामणवामनीकृततनु प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रय (अस्तीति) ॥ १७ ॥

व्याख्या—यस्य=राज्ञो दुर्योधनस्य रिपुशोणिताद्रकलिला-रिपु=शत्रु: भीम, तस्य शोणितेन=रक्तेन, आर्द्रकलिला=तरलत्वव्याप्ता एषा=पुरोदृश्यमाना गदा अग्रहस्ते=हस्तस्याग्रभागे कैलासस्य—कैलासाख्यस्य गिरे=

---

सूँड के समान अति कठोर दुर्योधन के कधे पर हुए प्रहार के कारण इन दोनों के परस्पर भुजाओ के मध्य प्रचण्ड गदा के आघात से होने वाला शब्द दिशाओ मे फैल रहा है ॥ १६ ॥

तीसरा—यह महाराज (दुर्योधन), जिसका मुकुट शिर के कम्पित होने से चञ्चल है, क्रोध के कारण रक्त नेत्र धधकती अग्नि के समान है, युद्ध मे शत्रु के प्रहार से बचने के लिए इधर उधर चलते हुए अपने शरीर को संकुचित करते हैं, तथा भीम के रक्त से रञ्जित गदा को दाहिने हाथ से

प्रथम —एष सप्रहाररुधिरसिक्ताङ्गस्तावद् दृश्यतां पाण्डव ।
निर्भिन्नाग्रललाटवान्तरुधिरो भग्नांसकूटद्वयः
सान्द्रैर्निर्गलितै प्रहाररुधिरैरार्द्रीकृतोर स्थल ।
भीमो भाति गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रण
शैलो मेरुरिवैष धातुसलिलासारोपदिग्धोपल ॥ १८ ॥

---

पर्वतस्य अग्ररचिता सोल्का = उल्कया सहिता महेन्द्राशनि —महेन्द्रस्य = इन्द्रस्य अशनि. = वज्र इव भाति = सुशोभते (स) = (दुर्योधनः) शीर्षोत्कम्पनवल्गमानमुकुट —शीर्षस्य = मूर्ध्नं कम्पनेन वल्गमानम् = प्रस्खलनमवाप्तम् मुकुटम् = मूर्द्धज क्रोधाग्निकाक्षानन —क्रोधाग्निना = कोपवह्निना काक्षानन = विस्तृतवदन स्थानाक्रामणवामनीकृततनु — स्थानाय आक्रमणं तस्मै वामनीकृता = लघुकृता तनु सन् प्रत्यग्रहस्तोच्छ्रय प्रत्यग्रे = तत्क्षणे एव हस्त = बाहु उच्छ्रय. = ऊर्ध्वीकृत (अस्तीति) शेष । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ १७ ॥

**प्रथम एष इति ।** एष सम्प्रहाररुधिरसिक्ताङ्ग —सम्प्रहारेण = शस्त्रप्रहारेण नि सृतरुधिरेण = रक्तेन सिक्ताङ्ग —सिक्तानि आर्द्राणि अङ्गानि यस्य सः एतादृश पाण्डव = भीम दृश्यताम् = अवलोक्यताम् ।

**अन्वय** — निर्भिन्नाग्रललाटवान्तरुधिर भग्नांसकूटद्वय सान्द्रै. निर्गलितै प्रहाररुधिरैं आर्द्रीकृतोर स्थल गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रण एष भीम धातुसलिलासारोपदिग्धोपल मेरु शैल इव भाति ॥ १८ ॥

---

बार बार ऊपर उठाता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो कैलास पर्वत के अग्रभाग से रचित इन्द्र का चमकता हुआ वज्र ही सुशोभित हो रहा हो ॥ १७ ॥

पहला—गदाप्रहार के कारण खून से लथपथ शरीर वाले मध्यमपाण्डव भीमसेन को देखें—

गदाप्रहार के कारण जिसके फटे मस्तक से रक्त निकल रहा है तथा दोनो स्कन्ध टूट गये हैं, भीषण शस्त्राघात से बहते हुए रुधिर से जिसका वक्ष स्थल आर्द्र हो गया है एव गदा के प्रचण्ड प्रहार से चलते हुए रुधिर से

---

१. निर्गलितेत्यन्यत्र पाठ

द्वितीय—भीमा गदां क्षिपति गर्जति वल्गमानः
शीघ्रं भुजं हरति तस्य कृतं भिनत्ति ।
चारीं गतिं प्रचरति प्रहरत्यभीक्ष्णं
शिक्षा'न्वितो नरपतिर्बलवांस्तु भीमः ॥ १९ ॥

---

व्याख्या—निर्भिन्नाग्रल्लाटवान्तरुधिर—निर्भिन्नम् = विदीर्णम् अर्थात् गदाप्रहारेण प्रस्फुटितम् अग्रम् = पुरोभागो यस्य तादृशं यल्ललाटम् = मस्तकं तस्माद् वान्तम् = उद्गीर्णं रुधिरं यस्य स, भग्नांसकूटद्वय = भग्नौ एकत्रावेव कूटमङ्गे रिव यस्य स, सान्द्रे = निबिडे, निर्गलिते = निःसृते, प्रहाररुधिरे = गदाप्रहारजनितरक्ते, आर्द्रीकृतम् अत एव शोणमिश्रितं वक्षःस्थलं यस्य सः गदाभिघातरुधिरक्लिन्नावगाढव्रण—गदाघातेन = गदाप्रहारेण निःसृतेन रुधिरेण = रक्तेन क्लिन्ना = पार्द्रा अवगाढा = व्याप्ता व्रणा यस्य स, एष = युद्धासक्तः पुरोदृश्यमानः भीमः = वृकोदरः धातुसलिलासारोपदिग्धोपल—धातूनाम्—पर्वतीयधातुगैरिकादीनां, सलिलासारे = जलप्रवाहे उपदिग्धा = समभ्याप्ताः उपला = प्रस्तरा यस्य स मेरु = मेरुनामा शैल = पर्वत इव भाति = सुशोभत इति । अत्र पर्वतवृकोदरयोरुपमानोपमेयदर्शनादुपमालङ्कारः । वृत्तञ्च शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १८ ॥

भीमेति । अन्वय—नरपतिः भीमां गदां क्षिपति वल्गमानः (सन्) गर्जति शीघ्रं भुजं हरति तस्य कृतं भिनत्ति अभीक्ष्णं प्रहरति चारीं गतिं प्रचरति शिक्षान्वितः भीमः तु बलवान् ॥ १९ ॥

व्याख्या—नरपतिः = राजा दुर्योधनः भीमाम् = भयमुत्पादिकां गदाख्यमस्त्रं क्षिपति = भीमस्योपरि चालयति वल्गमानः = उच्छलन् सन् गर्जति =

---

जिसका घाव भीगा हुआ है इस अवस्था में भीमसेन गैरिक आदि धातुओं से मिश्रित बहते हुए जलधारा युक्त सुमेरु गिरि के समान सुशोभित हो रहा है ।। १८ ।।

दूसरा—राजा दुर्योधन भयङ्कर गदा भीम पर चलाता है छलाग लगाते हुए गरजता है, भीम के द्वारा किये गये गदा प्रहार को काटता हुआ

---

१. "सविशिक्षितो" इति पाठान्तरम् ।

तृतीय —एष वृकोदर.,

शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्रगात्रो
धरणिधरनिकाश. सयुगेष्वप्रमेय ।
प्रविशति गिरिराजो मेदिनों वज्रदग्ध
शिथिलविसृतधातुर्हेमकूटो यथाद्रि ॥ २० ॥

---

गर्जना करोति शीघ्रम्=झटिति भुजम्=बाहु हरति=आकर्षति, भीमस्य गदाप्रहारादात्मान रक्षितु स्वबाहुमाकर्षति। तस्य=प्रतियोद्धारस्य भीमसेनस्य कृतम्=प्रयास भिनत्ति=निष्फल करोति अभीक्ष्णम्=मुहुर्मुहु प्रहरति=प्रहार करोति एव गदायुद्धे कुशलोऽस्ति तथापि भीम =मध्यमपाण्डव तु बलवान्=दुर्योधनाद् बलिष्ठोऽस्ति इति ॥ १९ ॥

अन्वय —शिरसि गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्र गात्र धरणिधरनिकाश सयुगेषु अप्रमेय शिथिलविसृतधातु वज्रदग्ध हेमकूट अद्रि यथा मेदिनी प्रविशति ॥ २० ॥

व्याख्या—शिरसि=मस्तके गुरुनिखातस्रस्तरक्तार्द्र गात्र'-गुरुनिखात =अत्यधिकाघात स्रस्तेन=निर्गलितेन रक्तेन=शोणितेन, आर्द्राणि=क्लिन्नानि गात्राणि=शरीराणि, यस्य स , धरणिधरनिकाश -धरणिधर =पर्वत तन्निकाश =तुल्य , सयुगेषु=सङ्ग्रामेषु अप्रमेय =अनुपमपराक्रमयुक्त भीम इति गद्यांशेन सम्बद्ध्यते । शिथिलविसृतधातु —शिथिला =छिन्नसन्धय यद्वशाद् विसृता =प्रकीर्णा धातव =गैरिकादय तथाविध , वज्रदग्ध.—

---

उससे बचने के लिए अपनी भुजा को खींच लेता है । चारों गति से चलता हुआ बार-बार प्रहार कर रहा है, इस प्रकार महाराज दुर्योधन गदायुद्ध में निपुण तो है, किन्तु भीम अधिक बल वाला है ॥ १९ ॥

तीसरा—यह भीमसेन—

सिर मे गम्भीर चोट लगने के कारण बहते हुए रक्त से जिसका शरीर आर्द्र हो गया है, अतुल बल वाला जो पर्वत की भाँति दीख रहा है गैरिकादि धातुशिला से युक्त फटे हुए सुमेरुपर्वत के समान (असह्य आघात) से पृथ्वी पर गिर रहा है ॥ २० ॥

प्रथम —एष गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्ग निपतन्त भीमसेन दृष्ट्वा,
एकाग्राङगुलिधारितोन्नतमुखो व्यास स्थितो विस्मित
द्वितीय —
दैन्य याति युधिष्ठिरोऽत्र विदुरो बाष्पाकुलाक्ष स्थित ।
तृतीय —
स्पृष्ट गाण्डिवमर्जुनेन गगन कृष्ण समुद्वीक्षते

---

वज्रेण = अशनिना दग्ध = प्रज्वलित हेमकूट. = सुमेरु अद्रि = पर्वत इव मेदिनीम् = मही प्रविशति = निपतति गदाघातेन व्यथातिरेकात् पृथिव्या पतति भीमसेन इति सभाव्यत इति भाव ॥ २० ॥

प्रथम इति । 'एष' इत्यस्य अग्रिमेन "व्यास" इति कर्त्रा सम्बन्ध । गाढप्रहारशिथिलीकृताङ्गम्—गाढप्रहारेण = गुरुणाघातेन शिथिलानि कृतानि अङ्गानि यस्य त निपतन्त = भूमौ पतन्त भीमसेन दृष्ट्वा = वीक्ष्य—

अन्वय —एकाग्राङगुलिधारितोन्नतमुख व्यास विस्मित स्थित ।

व्याख्या —एकाग्राङ्गुलिधारितोन्नतमुख —एका अग्राङ्गुलि धारिता = न्यस्ता यत्र तदेकाग्राङ्गुलिधारित तच्च तादृश मुखम् = आस्य यस्य स व्यास = द्वैपायन विस्मित = आश्चर्यान्वित सन् स्थित = स्तब्ध ।

अन्वय —अत्र युधिष्ठिर दैन्य याति बाष्पाकुलाक्ष विदुर स्थित ।

अत्र = समराङ्गणे निपतन्त भीमसेन दृष्ट्वेति गद्यांशेन सम्बन्ध, युधिष्ठिर = धर्मपुत्र दैन्यम् = दीनता याति = अधिगच्छति, बाष्पाकुलाक्ष = अश्रुपूरितनेत्र विदुर स्थित ॥

अन्वय.—अर्जुनेन गाण्डिव स्पृष्टम्, कृष्ण गगन समुद्वीक्ष्यते ।

---

पहला—भीषण प्रहार की चोट से शिथिल शरीर वाले भीम को गिरते हुए देखकर मुख पर अंगुली रखे हुए भगवान् व्यास अपने सिर को ऊपर उठाये आश्चर्यचकित होकर खडे हो गये ।

दूसरा—युधिष्ठिर दीन हो रहे हैं तथा अश्रुपूरित नेत्रो वाले विदुर खडे हैं ।

तीसरा—अर्जुन अपने हाथो से गाण्डीव थाम लिए हैं और श्रीकृष्ण

सर्वे—

शिष्यप्रीतितया हल भ्रमयते रामो रणप्रेक्षक ॥ २१ ॥

प्रथम.—एप महाराज,

वीर्यालयो विविधरत्नविचित्रमौलि-
युंक्तोऽभिमानविनयद्युतिसाहसैश्च ।
वाक्य वदत्युपहसन्न तु भीम ! दीन
वीरो निहन्ति समरेपु भय त्यजेति ॥ २२ ॥

---

व्याख्या—अर्जुनेन = गाण्डिविना गाण्डिवम् = स्वीय धनु, स्पृष्टम् = किञ्चिदुन्नमितम्, कृष्ण = माधव गगनम् = आकाश समुद्वीक्षते = पश्यति ।

अन्वय--रणप्रेक्षक राम शिष्यप्रीतितया हल भ्रमयते ।

व्याख्या—रणप्रेक्षक = दुर्योधनवृकोदरयो गदायुद्धस्य द्रष्टा राम = बलराम शिष्यप्रीतितया—शिष्यम् = दुर्योधन प्रति प्रीतितया = स्नेहतया हलम् = स्वकीयमस्त्र भ्रमयते = घूर्णयत इति ॥ २१ ॥

अन्वय —वीर्यालय विविधरत्नविचित्रमौलि अभिमानविनयद्युतिसाहसै. च युक्त (एप महाराज) उपहसन् वाक्य वदति, भीम ! वीर समरेपु दीन न तु निहन्ति (अत) भय त्यज ॥ २२ ॥

व्याख्या—वीर्यालय = महान् पराक्रमी विविधरत्नविचित्रमौलि — विविधरत्नै = नानाप्रकारैर्मणिभि विचित्र = अलङ्कृत मौलि = मुकुटो यस्य तादृश अभिमानविनयद्युतिसाहसै –अभिमान = गर्व विनय = विनम्रता

---

आकाश की ओर देख रहे हैं ॥ २१ ॥

सभी—सङ्ग्रामदर्शक बलराम अपने शिष्य (दुर्योधन) मे अत्यधिक स्नेह होने के कारण हल को घुमा रहे है ।

पहला—यह महाराज (दुर्योधन)—

महान् बलशाली विविध मणियो से मण्डित मुकुट वाला, स्वाभिमान, विनय, तेज और बल से परिपूर्ण हँसता हुआ भीम से कह रहा है—वीर, समरभूमि मे दैन्यभाव प्राप्त योद्धा को नही मारते हैं अत भय छोडो और (पुन लडने के लिए तैयार हो जाओ) ॥ २२ ॥

द्वितीय —एष इदानीमुपहास्यमान भीमसेन दृष्ट्वा स्वमूरुम-भिहत्य कामपि सज्ञा प्रयच्छति जनार्दन ।

तृतीय —एष सज्ञया समाश्वासितो मारुति,
सहृत्य भ्रुकुटीं ललाटविवरे स्वेद करेणाक्षिपन्
बाहुभ्या परिगृह्य भीमवदनश्चित्राङ्गदा स्वा गदाम् ।

---

द्युति =ओज साहसम्=दृढत्वम् एतेषा समाहार अत एतैरभिमानादिभि युक्त =भूषित (एष महाराज =दुर्योधन ) उपहसन्=उपहास कुर्वन् वाक्य वदति=वक्तव्य कथयति—हे भीम ! वीर =शूर समरेषु=रणस्थलेषु दीनम्=आपद्ग्रस्त प्रतियोद्धार न तु=नैव निहन्ति=मारयति (अत ) भयम्=मत्प्रयुक्त नाशत्रभीति त्यज=जहीहि । सर्वथा नि शङ्क सन् पुन सङ्ग्रामाय स नद्धो भव इति भाव । वसन्ततिलका ॥ २२ ॥

द्वितीय इति । इदानीम्=साम्प्रतम् उपहास्यमानम्=दुर्योधनेनोपहसित भीमसेनम्=मध्यमपाण्डव दृष्ट्वा=अवलोक्य स्वमूरुम्=स्वकीया जङ्घाम्, अभिहत्य=सताडय कामपि सज्ञाम्=किञ्चिद्गुह्य प्रयच्छति=सङ्केतयति जनार्दन =श्रीकृष्ण ।

तृतीय इति । एष मारुति =अय मरुत्सुतो भीम सज्ञया=श्रीकृष्णस्य गुह्यसङ्केतेन समाश्वासित =धैर्यमुत्पादित ।

अन्वय —भ्रुकुटी सहृत्य ललाटविवरे करेण स्वेदम् आक्षिपन् चित्रा-ङ्गदा स्वा गदा बाहुभ्या परिगृह्य दीन पुत्रम् उदीक्ष्य सर्वगतिना दत्त बल लब्ध्वा इव गर्जन् सिंहवृपेक्षण भीमवदन एष मारुति भूय क्षितितलात्

---

दूसरा—गदा के आघात से उपहास योग्य हुए भीमसेन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी जाङ्घ को थपथपाते हुए (दुर्योधन को मारने के लिए) सङ्केत कर रहे हैं।

तीसरा—इस सङ्केत से भीम आश्वस्त हो गया है। अपनी भृकुटियों को समेट कर ललाट पर स्थित पसीनों को पोछ कर, अपनी चित्राङ्गदा नामक गदा को बाहुओं मे सभाले दीन पुत्र को देखने वाले मानो पवन

भ्रान्तं करपञ्जरान्तरगतो द्वैपायनज्ञापितो
भीमः कृष्णभुजावलम्बितगतिर्निर्वाह्यते पाण्डवैः ॥ २५ ॥
प्रथमः—अये अयमप्यमर्षोन्मीलितरभसलोचनो भीमसेनापक्रमण-
मुद्वीक्षमाण इत एवाभिवर्तते भगवान् हलायुधः । य एष,
चल¹विलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षो
भ्रमरमुखविदष्टां किंचिदुत्कृष्य मालाम् ।

गतः कृष्णकरावलम्बितगतिः भीमः निर्वाह्यते ॥ २५ ॥

व्याख्या—मालासहृतलोचनेन—मालया हेला' इति पाठे तु छलेन दुर्योधनस्य हननभूता या हेला=अवज्ञा तया सवृते=आवृते लोचने=नयने यस्य तेन हलिना=हलधरेण बलरामेण नेत्रोपरोधः कृतः=नेत्रसवरण विहितम् । दुर्योधनापेक्षया—दुर्योधनस्य=कुरुराजस्य पक्षपातानुरोधेन क्रोध निमिलितम्-क्रोधेन=कोपेन निमिञ्चितम्=सङ्कुचितदेह हलधरम्=बलभद्र दृष्ट्वा=वीक्ष्य, सम्भ्रान्तं=सम्भ्रमप्राप्तै पाण्डवैः=पाण्डुपुत्रैः द्वैपायन ज्ञापितः—द्वैपायनेन=भगवता व्यासेन, ज्ञापितः=सङ्केतितः करपञ्जर गतः=हस्तमध्यगतः कृष्णकरावलम्बितगतिः=कृष्णस्य कराभ्याम् अव-लम्बिता भासाभ्या गतिः=दशा यस्य स भीमः निर्वाह्यते=सरक्ष्यते अर्थात् रक्षितुम् इतस्ततो नीयते ॥ २५ ॥

प्रथमः—अयमपीति । अमर्षेण=क्रोधेन उन्मीलिते=ऊर्ध्वं मीलिते रभसलोचने=उद्विग्ननयने यस्य सः भगवान् हलायुधः=बलदेवः भीमसेना पक्रमणम्-भीमसेनस्य अपक्रमणम्=निगमनम् उद्वीक्षमाणः=प्रतीक्षमाण सन् इत एव अभिवर्तते=प्रत्यावर्तते ।

अन्वयः—चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षः भ्रमरमुखविदष्टां

आश्रित स्थिति वाले भीम को अपनी भुजाओं मे सुरक्षित रख लिया है ॥२५॥

पहला—अरे ! अत्यधिक क्रोध के कारण सङ्कुचित नेत्रो वाले भगवान् हलायुध भीम के निकलने की प्रतीक्षा में इधर उधर देखते हुए इधर ही आ रहे हैं । जो —

१ 'प्रचललुलितमौलिरि' त्यपि पाठः ।

अचिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः ॥ २६ ॥

द्वितीयः—तदागम्यतां वयमपि तावन्महाराजस्य प्रत्यनन्तरीभवामः।

उभौ—बाढम्। प्रथमः कल्पः।

---

मालां किञ्चित् उत्कृष्य असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी पारिवेषी क्षिति-तलम् अवतीर्णः चन्द्र इव ॥ २६ ॥

व्याख्या—चलितचतुरमौलिः—चलः=चञ्चलः चितुरितः=कम्पाय-मानः मौलिः=मुकुटः प्रचलचलितमौलिरिति पाठे सति चञ्चलोऽयं च ललितः=सुन्दरो मौलिः=मुकुटो यस्य सः कोधताम्रायताक्षः—क्रोधेन=कोपेन ताम्रे=रक्तवर्णे अथ च आयते=विस्फारिते अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः, भ्रमरमुखरविरुताम्—भ्रमराणाम्=मधुकराणां मुखैः=अस्यैः विरुताम्=ध्वनैः सम्मिलिताम् मालाम्=स्रजाम् उत्कृष्य=स्तोकमाकृष्य, असिततनुवि-लम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी—असितम्=नीलमय च तनुविलम्बि=शरीरे लम्बमानं स्रस्तम्=स्वस्थानात् स्खलितं यद् वस्त्रम्=वासः तस्यानुकर्षी=आकृ-ष्यकः परिवेष=वृत्तपरिधि स चास्यास्तीति पारिवेषी=मण्डलसहितः, क्षितितलम्=भूभागम् अवतीर्णः=प्राप्तः चन्द्र इवावलोक्यत इति शेषः। उत्प्रेक्षालङ्कारः मालिनी च वृत्तम् ॥ २६ ॥

द्वितीयः—महाराजस्य=दुर्योधनस्य प्रत्यनन्तरीभवाम=समीपं गच्छाम इति।

---

चञ्चल एवं सुन्दर मुकुट वाले, क्रोध से रक्तरञ्जित नेत्रों वाले भ्रमरों से आच्छादित माला को पहने हुए, नीले वर्ण एवं शिथिल वस्त्रों को संभालते हुए मानों पृथिवी पर उतरे मण्डलाकार चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहा है ॥ २६ ॥

दूसरा—तब आओ, हमलोग भी महाराज (दुर्योधन) के पास चलें।

दोनों—अच्छा! यह तो उचित ही है।

( नेपथ्ये )

प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुध ।

बलदेव —अये एवगतोऽप्यनुगच्छति मा तपस्वी दुर्योधन । य एप,

श्रीमान् सयुगचन्दनेन रुधिरेणार्द्रानुलिप्तच्छवि-
भू ससर्पणरेणुपाटलभुजो बालव्रत ग्राहित ।

---

च्छिष्टम्=अवशिष्ट स्पृष्ट वा मुख येन तम्, महासुरपुरप्राकारकूटाङकुशम्—महासुर =शाल्व तस्य पुरस्य =नगरस्य यत् प्राकारकूटम्=वप्रशृङ्खला तस्य अङ्कुशम्, कालिन्दीजलदेशिकम्—कालिन्द्या =यमुनाया जलस्य=जलप्रवाहस्य देशिकम्=पथप्रदर्शकम्, रिपुबलप्राणोपहारार्चितम्—रिपूणाम् =अरीणा बलम्=सैन्यशक्तिस्तस्य प्राणा =असव एवोपहार =उपायनम् यस्य तेन अर्चितम्=समादृत हस्तोत्क्षिप्तहलम्—हस्तेन=करेण उत्क्षिप्तम =उद्धृतम् हलम्=सीर, भीमस्य=मध्यमपाण्डवस्य विपुले=विशाले उरसि=वक्ष स्थले, अद्य यावत्=साम्प्रत रुधिरस्वेदार्द्रपङ्कोत्तरम्—रुधिरम् =रक्तम्, स्वेदश्च=स्वेदकण ताभ्यामार्द्र =तरलै अतएव पङ्क =पङ्किल तेनोत्तर तादृश हल पाकोत्तरे इति पाठे रुधिरमेव स्वेद स एवार्द्रपङ्क सद्यस्क कर्दम तेन उत्तरे तद्युक्ते केदारमार्गाकुलम्—केदारमार्ग=क्षेत्र वर्त्मनि आकुलम्=व्याप्त करोमि=विदधे इति ।। २८ ।।

बलदेव—'अये' इति विस्मयास्पद सम्बोधनम् । एवङ्गतोऽपि=ऊरुभग्ने सत्यपि सभाजयितु माम् अनुगच्छति=अनुसरतीत्यर्थ ।

अन्वय —सयुगचन्दनेन रुधिरेण आर्द्रानुलिप्तच्छवि श्रीमान् भूससर्पणरेणु-पाटलभुज बालव्रत ग्राहित अमृतमन्थने निर्वृत्ते सासुरै क्षितिधरात् मुक्त

---

(नेपथ्य मे) भगवान् बलदेव प्रसन्न होवें, प्रसन्न हो ।

वलदेव—इस दशा मे भी तपस्वी दुर्योधन मेरा अनुसरण करता है । जो यह—

युद्ध मे रक्त चन्दन रूप रुधिर से अनुलिप्त आर्द्र अङ्गो वाला, समरभूमि

निर्वृत्तेऽमृतमन्थने क्षितिधरान्मुक्तः सुरैः सासुरै-
राकर्षन्निव भोगमर्णवजले श्रान्तोज्झितो वासुकि ॥ २९ ॥

( ततः प्रविशति भग्नोरुयुगलो दुर्योधनः । )

दुर्योधन—एष भोः !

---

श्रान्तोज्झितः अर्णवजले भोगम् आकर्षन् वासुकिः इव ॥ २९ ॥

व्याख्या—सघृणचन्दनेन—सघृणे=समरे, चन्दनेन=मलयजरसेन तद्रू-पिणा रक्तेन=शोणितेन, आर्द्रानुलिप्तच्छविः=सद्यः प्रसृतेन शोणितेन सरलेनानुलिप्ता=व्याप्ता छविः=शोभा यस्य सः श्रीमान्=शोभा-सम्पन्नो दुर्योधनः साञ्जनम्, भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजः—भुवि=पृथिव्या ससर्पणेन=रिङ्खणेन यो रेणुः=रजः तेन पाटलौ=धूसरितौ भुजौ=बाहू यस्य सः भूसंसर्पणरेणुपाटलभुजः सन् बालगमनम्—बालानां=शिशूनां गमनम्=चेष्टा आहितः=सम्प्राप्तः, अतएव अमृतमन्थने=सुधाविलोडने निर्वृत्ते=परिपूर्णे सासुरैः=दैत्यैः सह सुरैः=देवैः क्षितिधरात्=मन्दरगिरेः मुक्तः=विमुक्तः श्रान्तोज्झितः—श्रान्तः=क्लान्तः, अथ च उज्झितः=परित्यक्तः अर्णवजले=समुद्रजले भोगम्=स्वशरीरम् आकर्षन्=आलिखन् वासुकिः=नागराज इव=सदृशः सुशोभत इति भावः ॥ २९ ॥

तत इति—प्रविशति=रङ्गभूमिमागच्छति, भग्नोरुयुगलः—भग्नः=गदाघातेन त्रुटितम् उरुयुगलम्=जङ्घाद्वयं यस्य स दुर्योधन =कौरवेश्वरः ।

दुर्योधन.—'एष भोः' इति । एष=दुर्योधनोऽहमित्यस्याग्रिमश्लोकेन "भीमेन भित्त्वे"त्यादिनान्वयः ।

---

में गिरकर भी चलने के कारण धूलधूसरित भुजाओं वाला पृथ्वी पर रेंगने वाले शिशुओं की भाँति प्रतीत हो रहा है । तथा समुद्र मन्थन के अनन्तर असुरों तथा देवताओं द्वारा मुक्त मन्दराचल से खींचकर जल में अपने परिश्रान्त शरीर को सरकाते हुए सर्पराज वासुकि की तरह सुशोभित हो रहा है ॥ २९ ॥

( इसके बाद भग्न जङ्घों वाला दुर्योधन प्रवेश करता है )

दुर्योधन—अरे ! यह मैं—

भीमेन भित्त्वा समयव्यवस्थां गदाभिघात[1]क्षतजर्जरोरुः ।
भूमौ भुजाभ्यां परिकृष्यमाणः स्वं देहमर्धोपरतं वहामि ॥ ३० ॥
प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् हलायुधः ।
त्वत्पादयोर्निपतितं पतितस्य भूमा—
वेतच्छिरः प्रथममद्य विमुञ्च रोषम् ।
जीवन्तु ते कुरुकुलस्य निवापमेघा
वैरं च विग्रहकथाश्च वयं च नष्टाः ॥ ३१ ॥

---

अन्वय.—भीमेन समयव्यवस्था भित्त्वा गदाभिघातक्षतजर्जरोरुः भूमौ भुजाभ्या परिकृष्यमाण स्वम् अर्धोपरतं देह वहामि ॥ ३० ॥

व्याख्या—भीमेन=वृकोदरेण समयव्यवस्थाम्=साम्प्रतिकव्यवस्था—रणनीतिमित्यर्थः भित्त्वा=समुपेक्ष्य गदाभिघातक्षतजर्जरोरु.—गदायाः अभिघातेन=प्रहारेण निपातेनेति पाठे निपातेन=प्रक्षेपेणेति समान्येवार्थः जर्जरोरुः जर्जरित.=विनष्टः ऊरु यस्य सोऽहं दुर्योधन. भूमौ=क्षितौ भुजाभ्याम्=बाहुभ्यां परिकृष्यमाणम्=समाकृष्यमाण स्वम्=आत्मानम्, अर्धोपरत=अर्धमृतम् देहम्—शरीर वहामि=धारयामि अन्यत्र वा सञ्चालयामीति ॥ उपजातिवृत्तम् ॥ ३० ॥

अन्वय.—भूमौ पतितस्य त्वत्पादयोः निपतितम् एतत् शिरः अद्य प्रथमं रोष विमुञ्च ते कुरुकुलस्य निवापमेघा जीवन्तु वैरं च विग्रहकथाः च वयं च नष्टा. ॥ ३१ ॥

---

युद्ध सम्बन्धी नियमो की उपेक्षा कर भीमसेन के द्वारा किये गये गदा-प्रहार से भग्न ऊरु वाला अपनी भुजाओ से भूमि पर घसीटता हुआ अपने अधमरे शरीर को ढो रहा हूँ ॥ ३० ॥

प्रसन्न होवें भगवान् हलायुध ।

समर भूमि मे गिरा हुआ मेरा शिर तथा मेरी दोनो भुजायें आपके चरणो पर पडे हैं, प्रथमत. आप क्रोध का त्याग करें, जिससे कौरवकुल को जलाञ्जलि देने वाले मेघ की भाँति पाण्डव अब जीवित रह सकें आज हम-

---

१ 'निपात' इत्यपि पाठो लभ्यते ।

बलदेव —भो दुर्योधन ! मुहूर्तं तावदात्मा धार्यताम् ।
दुर्योधन —किं भवान्करिष्यति ।
बलदेव —भो श्रूयताम्

आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखिते शरीरे-
निर्दारितासहृदयान्मुसलप्रहारैः ।
दास्यामि सयुगहतान्सरथाश्वनागान्
स्वर्गानुयात्रपुरुषास्तव पाण्डुपुत्रान् ॥ ३२ ॥

---

व्याख्या—भूमौ = पृथिव्यां पतितस्य = गदाप्रहारेण निपतितस्य मम दुर्योधनस्य त्वत्पादयो = पुरः स्थितस्य त्वदीयाङ्घ्रयोः निपतितम् = नमस्कर्तुं पतितम् एतत् शिर —इदं मस्तकं (अतएव) अद्य = इदानीं प्रथमम् = आदौ रोषम् = क्रोधं विमुञ्च = त्यज त्वमिति शेषः । ते = पाण्डवाः कुरुकुलस्य = कुरुवंशस्य निवापमधा = तर्पणाय प्रदानाय मघभूता जीवन्तु = प्राणान् धारयन्तु वस्तुतस्तु साम्प्रतं कुरुपाण्डवयो वैरं = शत्रुता च विग्रहकथा = युद्धवार्ता च किं वा वयम् = शतभ्रातारोऽस्य रणयोद्धार, च नष्टा = समाप्ता इति ॥ ३१ ॥

अन्वय —*आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखिते शरीरे मुसलप्रहारैः निदारितासहृदयान् सरथाश्वनागान् सयुगहतान् पाण्डुपुत्रान् स्वर्गानुयात्रपुरुषान् तव दास्यामि* ॥ ३२ ॥

व्याख्या—आक्षिप्तलाङ्गलमुखोल्लिखिते —आक्षिप्तस्य = प्रहर्तुं प्रक्षिप्तस्य

---

दोनों ( कौरव पाण्डवों ) की शत्रुता तथा युद्धकथा शान्त हो गयी, और हमलोगों (कौरवों) का नाश हो गया ॥ ३१ ॥

बलदेव—अरे दुर्योधन ! थोड़ी देर और प्राण धारण करो ।

दुर्योधन—तब आप क्या करेंगे ।

बलदेव—सुनो—

चलाये गये हल के अग्रभाग से क्षत विक्षत शरीर वाले, मुसलप्रहार से चूर्णित स्कन्ध तथा वक्ष स्थल पाण्डवों को रथ, घोड़े हाथियों सहित मारकर स्वर्ग में जाते हुए तुम्हारा अनुगामी बना दूँगा ॥ ३२ ॥

दुर्योधन —मा मा भवानेवम् ।

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम् ।
मयि चैव गते राम ! विग्रह किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

वलदेव —मत्प्रत्यक्ष[1] वञ्चितो भवानित्युत्पन्नो मे रोप ।

---

सञ्चालितस्य वा लाङ्गलस्य=हलस्य मुखेन=अग्रभागेन उल्लिखिते=विदारिते शरीरे=देहे अथ च मुशलप्रहारै=मुसलाघातै निर्दारितास-हृदयान्-निर्दारितम्=विदीर्णम् असम्=स्कन्धश्च हृदयञ्च येषा तान् सरथाश्वनागान्=रथाश्वहस्तिभि सहितान् सयुगहतान्-सयुगे=सग्रामे हतान्=उपरतान् पाण्डुपुत्रान्=पाण्डोस्सुतान् युधिष्ठिरार्जुनादीन् स्वर्गानुयात्र-पुरुषान् —स्वर्गम्=द्युलोकम् अनुयाता=प्रस्थिता पुरुषा=सैनिका येषा तान् तव=तुभ्य दास्यामि=अर्पयिष्यामि वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अन्वय —राम ! भीमे प्रतिज्ञावासिते भ्रातृशते दिव गते मयि च एव गते विग्रह किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

व्याख्या—हे राम ! भीमे=भीमसेने प्रतिज्ञावसिते=दुर्योधनोरु गदया सचूर्णयामीति प्रतिज्ञा प्रपूरिते अथ च मम भ्रातृशते दिवम्=स्वर्लोक गते=प्रस्थिते किं वा मयि च=दुर्योधने च एवङ्गते=भग्नोरौ सति इदानीं विग्रह=युद्ध किं करिष्यति=परिणमिष्यति ? युद्धेन नोचित कश्चिद् परिणामो भविष्यतीति भाव ॥ ३३ ॥

वलदेव —मत्प्रत्यक्षम्—मम (वलदेवस्य) समक्ष प्रत्यक्षमिति पाठे तु व्यासकृष्णादीना सर्वेषा समक्ष वञ्चित=छलित एतस्मोद्धतो मे=मम

---

दुर्योधन—नही नही आप ऐसा न करें।

मध्यम पाण्डव भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी मेरे सौ भाई स्वर्ग सिधार गये तथा मैं इस दशा को प्राप्त कर लिया हूँ। राम ! अब आप क्यो युद्ध करेंगे ॥ ३३ ॥

वलदेव—मेरे सामने ही तुमको धोखा दिया गया है, अत मेरा क्रोध उभड रहा है।

---

१ 'प्रत्यक्षमि'ति पाठान्तरम् ।

दुर्योधनः—वञ्चित इति मां भवान् मन्यते ।
वलदेव —क संशयः ?
दुर्योधन —हन्त भो. ! दत्तमूल्या इव मे प्राणा । कुत —
आदीप्तानलदारुणाज्जतुगृहाद् बुद्धयात्मनिर्वाहिणा
युद्धे वैश्रवणालयेऽचलशिलावेगप्रतिस्फालिना[1] ।
भीमेनाद्य हिडिम्ब[2]राक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा
यद्येव ममर्वेपि मा छलजितं भो राम ! नाह जित. ॥ ३४ ॥

रोष'=क्रोधः उत्पन्न =समुद्भूतः ।

दुर्योधन –'हन्त' इति हर्षसूचकमव्ययपदम्=छलेनाह भीमेन जित इति भवता=वलदेवेन स्वीकृते सति मे=मम प्राणा =जीवाः दत्तमूल्याः=सफला इति ।

अन्वय —आदीप्तानलदारुणात् जतुगृहात् बुद्धयात्मनिर्वाहिणा वैश्रवणालये अचलशिलावेगप्रतिस्फालिना हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा भीमेन अद्य युद्धे यदि एव मा छलजित समर्वेपि (तदा) भो राम ! अह न जित. (इति मन्ये) ॥ ३४ ॥

व्याख्या—आदीप्तानलदारुणात्—आदीप्तेन=प्रज्वलितेन अनलेन=

दुर्योधन—मुझे धोखा दिया गया है, इसे आप स्वीकार करते हैं ?

वलदेव—इसमें क्या सन्देह है ।

दुर्योधन=अहो ! अच्छा तो, मानो प्राणधारण का मूल्य मुझे मिल गया । क्योंकि—

सभी ओर से धधकती अग्नि से युक्त लाक्षागृह से बुद्धिमत्ता से निकलने वाले, कुवेर के रहते हुए युद्ध में शिलाखण्डो की वर्षा करने वाले, तथा महाबली दैत्यराज हिडिम्ब का प्राणहरण करने वाले भीम ने यदि छल से मुझको जीत लिया है ( आप स्वीकार करते हैं ) तो वस्तुत मैं पराजित नहीं हुआ हूँ ॥ ३४ ॥

१. "(प्रतीसालिना)" प्रतीसारिणा इति पाठभेद ।
२. "हिडम्ब" इति पाठान्तरम् ।

बलदेव —भीमसेन इदानीं तव युद्धवञ्चनामुत्पाद्य स्थास्यति ।
दुर्योधन —किं चाहं भीमसेनेन वञ्चित ।
बलदेव —अथ केन भवानेवंविध कृत ।
दुर्योधन —श्रूयताम्,
येनेन्द्रस्य स पारिजातकतरुर्मानेन तुल्य हृतो
दिव्य वर्षसहस्रमर्णवजले सुप्तश्च यो लीलया ।

---

व्यङ्गिना दारुणात् = भयङ्करात् जतुगृहात् = लाक्षागृहात् वुद्धया = धिया आत्मनिर्वाहिणा = स्वसरक्षकेण वैश्रवणालये = कुबेरालये अचलशिलावेग-प्रतिस्फालिना—अचलानाम् = पर्वतानां या शिला तासां वेगेन = जवेन प्रति-स्फालिना = प्रतीसारिणा हिडिम्बराक्षसपतिप्राणप्रतिग्राहिणा—हिडिम्ब राक्षसपते = हिडिम्बाभिधस्य राक्षसाधिपस्य प्राणप्रतिग्रहिणा = प्रणापहारिणा भीमेन अद्य = इदानीं सैन्यबन्धूना च विनाशेपि युद्धे = सङ्ग्रामे यदि एव माम् = स्वबन्धुविनाशेन दु खित दुर्योधन छलजितम् = कपटेन जित समवैपि = जानामि (तदा) भो राम अह न जित नैव सग्रामे पराजित ॥ ३४ ॥

बलदेव —इदानीम् = साम्प्रत युद्धे छलप्रयोगेन त्वा जित्वा जीविष्यति भीमसेन इत्याशय ।

दुर्योधन —भगवत कृष्णस्य महात्म्य वर्णयन् कथयति—

अन्वय —येन इन्द्रस्य स पारिजातकतरु मानेन तुल्य हृत य च दिव्य वर्षसहस्रम् अर्णवजले लीलया सुप्त तेन जगत प्रियेण हरिणा तीव्रा भीमगदा

---

बलदेव—युद्धस्थल मे तुम्हारे, साथ छल करने वाला भीम अब (जीवित) रह सकेगा ? ।

दुर्योधन—क्या भीम के द्वारा मेरी वञ्चना की गयी है ?

बलदेव—और क्या । किसके द्वारा आपकी दशा की गयी है ?

दुर्योधन—सुनिये जिन्होंने सम्मान के साथ ही इन्द्र का पारिजात नामक कल्पवृक्ष का हरण कर लिया था, अपनी लीला से जिन्होंने दिव्य हजारों वर्ष पर्यन्त क्षीरसागर म शयन किया था वही जगत् के अभीष्ट देव छलरहित

तीव्रा भीमगदा प्रविश्य सहसा निर्व्याजयुद्धप्रिय-
स्तेनाहं जगतः प्रियेण हरिणा मृत्योः प्रतिग्राहितः ॥ ३५ ॥
( नेपथ्ये )

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । उत्सरतोत्सरतार्या ! उत्सरत । ]

बलदेव —( विलोक्य ) अये अयमत्रभवान् धृतराष्ट्रः गान्धारी च दुर्जयेनादेशितमार्गोऽन्तःपुरानुबन्धः शोकाभिभूतहृदयश्चकितगतिरित एवाभिवर्तते । य एष ,

सहसा प्रविश्य निर्व्याजयुद्धप्रिय अहं मृत्यो प्रतिग्राहितः ॥ ३५ ॥

व्याख्या–येन=भगवता इन्द्रस्य=सुराधीपते ः=प्रसिद्ध पारिजातक-तरु=कल्पवृक्ष मानेन=अभिमानेन तुल्यम्=साकं हृत=बलाद्गृहीत. दिव्य वर्षसहस्रम्=देवाना वर्षसहस्र यावद् अर्णवजले=समुद्रजले लीलया=मायया सुप्त=योगनिद्रां गृहीत तेन=लोकवेदस्यातेन जगतः प्रियेण=मङ्गलकारिणा हरिणा=श्रीकृष्णेन तीव्रा=तीक्ष्णा भीमगदाम्=भयङ्करगदां भीमसेनस्य गदा वा सहसा=अकस्मात् प्रविश्य=निविश्य निर्व्याजयुद्ध-प्रिय=निष्कपटयुद्धप्रेमी धर्मयोद्धा अहं=दुर्योधन मृत्यो=कालस्य यमस्य वा प्रतिग्राहित=हस्ते समर्पित इति ॥ ३५ ॥

बलदेव—अये इत्याश्चर्यसूचकम् । धृतराष्ट्र=दुर्योधनस्य पिता गान्धार्या=दुर्योधनस्य जनन्या दुर्जयेन=दुर्योधनपुत्रेण आदेशित=प्रदर्शित' मार्ग=पथ अन्त पुरानुबन्ध=अन्त पुरीयस्वजनसहित शोकाभिभूतहृदयः=

युद्धप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा मे प्रविष्ट होकर मुझे मृत्यु के हाथो समर्पित कर दिया है ।

(नेपथ्य मे) हटें हटें आर्यो हटें ।

बलदेव– (देखकर) अरे यह शोक सतप्त होने से स्खलित गति वाले आदरणीय महाराज धृतराष्ट्र तथा गान्धारी, दुर्जय (दुर्योधन पुत्र) द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर अन्त पुर के परिजनो के साथ इधर ही आ रहे हैं । जो यह—

वीर्याकरः सुतशतप्रविभक्तचक्षु-
र्दर्पोद्धतः कनकयूपविलम्बबाहुः।
सृष्टो ध्रुवं त्रिदिवरक्षणजातशङ्कै-
र्देवैररातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः ॥ ३६ ॥
( ततः प्रविशति धृतराष्ट्रो गान्धारी देव्यौ दुर्जयश्च । )

---

पुत्रविनाशेनाभिसंतप्तहृदयः इतः एव=दुर्योधनाभिमुखमेव अभिवर्तते=आगच्छति ।

अन्वय :—वीर्याकरः सुतशतप्रविभक्तचक्षुः दर्पोद्धतः कनकयूपविलम्बबाहुः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः देवैः अरातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः ध्रुवं सृष्टः ॥ ३६ ॥

व्याख्या-वीर्याकरः=बलस्य आलयः सुतशतप्रविभक्तचक्षुः-सुतानाम्=पुत्राणां शतम्=शतसंख्याकं सुतशतं प्रति प्रविभक्तम्=संलग्नं चक्षुः=नेत्रम्=यस्य सः अर्थात् दुःशासनादीनां शतपुत्राणां विनाशेन शोकाभिभूत इति भावः, दर्पोद्धतः—दर्पः=अभिमानेः उद्धतः अहङ्कारयुक्तः कनकयूपविलम्बबाहुः-कनकयूपवत्=स्वर्णमययज्ञस्तम्भवद् विलम्बौ=लम्बायमानौ बाहू=भुजौ यस्य सः त्रिदिवरक्षणजातशङ्कैः-त्रिदिवस्य=स्वर्गलोकस्य रक्षणं=संरक्षणे जाता=समुद्भूता शङ्का=सन्देहो यस्य तैः देवैः=सुरैः अरातितिमिराञ्जलिताडिताक्षः—अरातयः=शत्रवः एव तिमिराञ्जलिः=घोरान्धकारः तेन ताडिते=हते अक्षिणी=नयने यस्य सः तद्रूपः ध्रुवं=निश्चयेन सृष्टः=सरचितः इति मन्ये । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ३६ ॥

---

अत्यन्त पराक्रमी हैं जिनकी दृष्टि (ज्ञानशक्ति) सौ पुत्रों में बटी हुई है अर्थात् मरे हुए पुत्रों के शोक से अस्थिर चित्त है । दर्प से भरी हुई जिनकी लम्बी भुजायें स्वर्ण निर्मित यज्ञ-स्तम्भ की भाँति प्रतीत होते हैं । निश्चित ही स्वर्ग की रक्षा के लिए उत्पन्न शङ्का वाले देवताओं ने शत्रुता रूपी अन्धकार से जिन्हें मानो नेत्रहीन कर दिया गया हो ॥ ३६ ॥

( इसके बाद धृतराष्ट्र, गान्धारी, दो रानियाँ तथा दुर्जय प्रवेश करते हैं )

धृतराष्ट्रः--पुत्र ! क्वासि ?

गान्धारी—पुत्तअ ! कहिं सि ? [ पुत्रक ! क्वासि ? ]

देव्यौ—महाराअ ! कहिं सि ? [ महाराज ! क्वासि ? ]

धृतराष्ट्रः—भो ! कष्टम् ।

वञ्चनानिहतं श्रुत्वा सुतमद्याहवे मम ।

मुखमन्तर्गतास्राक्षमन्धमन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

गान्धारि ! किं धरसे ?

गान्धारी—जीवाविदह्मि मन्दभाआ । [ जीवितास्मि मन्दभागा । ]

देव्यौ—महाराअ ! महाराअ ! [ महाराज ! महाराज ! ]

---

अन्वय—अद्य आहवे वञ्चनानिहतं सुतं श्रुत्वा मम अन्धं मुखम् अन्तर्गतास्राक्षम् अन्धतरं कृतम् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अद्य आहवे=रणक्षेत्रे वञ्चनानिहतम्—वञ्चनया=छलेन कपटेन वा निहतम्=मारितं सुतम्=आत्मजं पुत्रं श्रुत्वा=संश्रुत्य अन्धम्=नेत्रहीनमपि मम=धृतराष्ट्रस्य मुखम्=आस्यम् अन्तर्गतास्राक्षम्—अन्तर्गतानि=अन्तर्विलीनानि अस्राणि=अश्रूणि अक्षिणी=चक्षुषी यस्य तद् अन्धतरम्=अधिकतरमन्धं कृतम्=विहितम् ॥ ३७ ॥

---

धृतराष्ट्र—पुत्र ! कहाँ हो ?

गान्धारी—पुत्र ! कहाँ हो ?

रानियाँ—महाराज ! कहाँ हैं ?

धृतराष्ट्र—ओह ! बहुत कष्ट है ।

गदायुद्ध में शत्रुओं द्वारा छल पूर्वक मारे गये पुत्र को सुनकर पहले से ही अँधा मैं शोकातिरेक के कारण अश्रुपूरित नेत्रों से अधिक अन्धा बना दिया गया हूँ ॥ ३७ ॥

गान्धारी ! क्या तुम हो ?

गान्धारी—हाँ मन्दभागिनी मैं अभी तक जीवित हूँ ।

दोनों रानियाँ—महाराज ! महाराज !

राजा—भो ! कष्टम् । यन्ममापि स्त्रियो रुदन्ति ।

पूर्वं न जानामि गदाभिघातरुजामिदानीं तु समर्थयामि ।
यन्मे प्रकाशीकृतमूर्धजानि रणं प्रविष्टान्यवरोधनानि ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र—गान्धारि ! किं दृश्यते दुर्योधननामधेयः कुलमानी ।

गान्धारी—महाराज ! ण दिस्सदि । [ महाराज ! न दृश्यते । ]

धृतराष्ट्र—कथं न दृश्यते । हन्त भो ! अद्यास्म्यहमन्धो योऽहं अन्वेष्टव्ये काले पुत्रं न पश्यामि । भो कृतान्तहतक !

---

अन्वय—पूर्वं गदाभिघातरुजां न जानामि तु इदानीं समर्थयामि यत् प्रकाशीकृतमूर्धजानि मे अवरोधनानि रणप्रविष्टानि ॥ ३८ ॥

व्याख्या-प्रथमम्=प्राक गदाभिघातरुजाम्=गदाप्रहारोद्भवा रुजाम्=पीडा न जानामि=नानुभूतवान् तु=परम् इदानीम्=साम्प्रतम् समर्थयामि=गदाघातजनिता पीडाम् अनुभवामि यत्=यत प्रकाशीकृतमूर्धजानि—प्रकाशीकृतानि=वेणीरहितानि कृतानि मूर्धजानि=स्वात्मनः केशा यैस्तानि मे=मम अवरोधनानि=अन्तःपुराणि अन्तःपुरीया स्त्रियः रणम्=सङ्ग्रामभूमि प्रविष्टानि=समागतानि ॥ ३८ ॥

---

राजा—ओह ! अत्यधिक खेद है कि आज मेरी भी पत्नियाँ रो रही है ।

पहले मै गदा के प्रहार से हुए पीडा का अनुभव नही किया था, किन्तु अपने अन्तःपुर की मुक्तवेणी रानियो को रणस्थल पर देखकर अब मुझे पीडा की अनुभूति हो रही है ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र—कौरवकुल का मानी दुर्योधन दीख रहा है ।

गान्धारी—महाराज ! वह नही दिखाई पड रहा है ।

धृतराष्ट्र—क्या नहीं दीख रहा है ? ओह ! वस्तुतः आज मैं अन्धा हूँ, जो कि इस खोजने के समय मे पुत्र को नही देख रहा है । अये ! पापी यमराज ! —

रिपुसमरविमर्दं मानवीर्यप्रदीप्तं
सुतशतमतिधीरं वीरमुत्पाद्य मानम् ।
धरणितलविकीर्णं किं स योग्यो न भोक्तुं
सकृदपि धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तं निवापम् ॥ ३९ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधण ! देहि मे पडिवअणं । पुत्तसदविणास दुक्खिदं समस्सासेहि महाराजं । [ जात सुयोधन ! देहि मे प्रतिवचनम् । पुत्रशतविनाशदुःखितं समाश्वासय महाराजम् । ]

बलदेव—अये ! इयमत्रभवती गान्धारी ।

या पुत्रपौत्रवदनेष्वकुतूहलाक्षी
दुर्योधनास्तमितशोकनिपीतधैर्या ।

---

अन्वय—रिपुसमरविमर्दम् अतिधीरं मानवीर्यप्रदीप्तं धरणितलविकीर्णं मानं वीरं सुतशतम् उत्पाद्य धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तं निवापं सकृत् अपि किं भोक्तुं न योग्यः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—रिपुसमरविमर्दम्–रिपूणाम्=अरीणां समरे=रणे विमर्दम्=विध्वंसं अतिधीरम्=धैर्यवन्तम् मानवीर्यप्रदीप्तम्—मानेन=प्रतिष्ठया अपि च वीर्येण=शौर्येण प्रदीप्तम्=प्रसिद्धिमवाप्तम् धरणितलविकीर्णम्–धरणितले=भूमण्डले विकीर्णम्=परित्यक्तं मानं=मानयुक्तं सुतशतम्=शतसंख्याकान् पुत्रान् उत्पाद्य=जनित्वा, धृतराष्ट्रः पुत्रदत्तम्=पुत्रैः पुत्रेण वा समर्पितं निवापम्=तर्पणार्थं तिलोदकम् सकृत्=एकवारम् अपि किं भोक्तुम्=ग्रहीतुं न योग्य=न शक्तः ? ॥ ३९ ॥

अन्वय—या पुत्रपौत्रवदनेषु अकुतूहलाक्षी दुर्योधनास्तमितशोकनिपीत

---

युद्ध में शत्रुओं का मर्दन करने वाला सम्मान और पराक्रम से देदीप्यमान अत्यन्त वीर अभिमानी सौ पुत्रों को उत्पन्न करने वाला धृतराष्ट्र अपने एक भी पुत्र द्वारा इस पृथ्वी पर दिये गये तर्पण जल का एक बूँद भी ग्रहण करने के योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

गान्धारी—पुत्र सुयोधन ! मुझे उत्तर दो । सौ पुत्रों की मृत्यु से दुःखी इस अभागे महाराज को धैर्यावलम्बन दो ।

बलदेव—अरे ! यह आदरणीया गान्धारी हैं ।

दुर्जय —अङ्कं उपवेसं किण्णिमित्तं तुवं वारेसि । [ अङ्क उपवेशं किन्निमित्तं त्वं वारयसि । ]

राजा—

त्यक्त्वा परिचितं पुत्र ! यत्र तत्र त्वयास्यताम् ।
अद्य प्रभृति नास्तीदं पूर्वभुक्तं तवासनम् ॥ ४४ ॥

दुर्जयः—कहिं णु हु महाराओ गमिस्सदि । [ कुत्र नुखलु महाराजो गमिष्यति । ]

राजा—भ्रातृशतमनुगच्छामि ।

दुर्जय.—म पि तहिं णेहि । [ मामपि तत्र नय । ]

राजा—गच्छ पुत्र ! एवं वृकोदरं ब्रूहि ।

दुर्जयः—एहि महाराअ ! अण्णेसीअसि । [ एहि महाराज ! अन्विष्यसे । ]

---

अन्वयः—पुत्र ! परिचितं त्यक्त्वा त्वया यत्र तत्र आस्यताम् अद्य प्रभृति पूर्वभुक्तम् इदम् तव आसन नास्ति ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पुत्र ! परिचितम्=प्रागनुभूतम् ( मदङ्कम् ) त्यक्त्वा=परित्यज्य त्वया यत्र तत्र=यस्मिन् कस्मिंश्चिदपि स्थाने आस्यताम्=समुपविश्यताम् अद्य प्रभृति=अद्य यावत् पूर्वभुक्तम्=पूर्वानुभूतम् इदम्=मत्क्रोडम् तव=भवतः आसनम्=स्थातुं योग्य नास्ति=न विद्यते ॥ ४४ ॥

---

दुर्जय—आप गोद मे बैठने से मुझे क्यो रोक रहे हैं ।

राजा—बेटा ! तुमने पहले जिस ( मेरे गोद रूपी ) आसन का उपयोग किया, उस पूर्वपरिचित आसन को छोड कर अब जहाँ चाहो बैठो, आज से यह तुम्हारे योग्य नही है ।

दुर्जय—तो अब महाराज कहाँ जायेंगे ?

राजा—अपने सौ भाइयो का अनुगमन करता हूँ ।

दुर्जय—मुझे भी वहाँ ले चलिए ।

राजा—बेटा ! जाओ भीम से कहो ।

दुर्जय—आइये, महाराज ! आप खोजे जा रहे हैं ।

राजा—पुत्र केन।

दुर्जयः—अय्याए, अय्येण, सव्वेण अतन्उरेण अ। [ आर्ययार्येण सर्वेणान्तःपुरेण च। ]

राजा—गच्छ पुत्र ! नाहमागन्तुं समर्थः।

दुर्जयः—अहं तुम णइस्सं। [ अहं त्वा नेष्यामि ]

राजा—बालस्तावदसि पुत्र !

दुर्जय —(परिक्रम्य) अय्या ! अयं महाराओ। [ आर्या. ! अयं महाराजः। ]

देव्यौ—हा हा ! महाराओ ! [ हा हा ! महाराज.। ]

धृतराष्ट्र —क्वासौ महाराजः।

गान्धारी—कहिं मे पुत्तओ। ( कुत्र मे पुत्रक । )

दुर्जय.—अअं महाराओ भूमीऐ उवविट्ठो। ( अयं महाराजो भूम्यामुपविष्टः। )

धृतराष्ट्र —हन्त भो.! किमयं महाराज.।

---

राजा—किसके द्वारा ?

दुर्जय—पूज्य पितामही पूज्य पितामह, तथा अन्त पुर के सभी लोगों द्वारा।

राजा—पुत्र ! जाओ, मैं आने में असमर्थ हूँ।

दुर्जय—मैं आपको ले चलूँगा।

राजा—बेटा ! तू अभी बालक हो।

दुर्जय —माताओ ! यह महाराज हैं।

देवियाँ—हाय ! हाय ! महाराज।

धृतराष्ट्र—महाराज कहाँ हैं।

गान्धारी—मेरा पुत्र कहाँ है।

दुर्जय—यह महाराज भूमि पर बैठे हुए हैं।

धृतराष्ट्र—ओह ! यह महाराज हैं।

यः काञ्चनस्तम्भसमप्रमाणो लोके किलैको वसुधाधिपेन्द्रः ।
कृतः स मे भूमिगतस्तपस्वी द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाण. ॥ ४५ ॥

गान्धारी—जाद सुयोधण ! परिस्सतोसि । [ जात सुयोधन ! परिश्रान्तोऽसि । ]

राजा—भवत्याः खल्वहं पुत्र. ।

धृतराष्ट्रः—केय भो. !

गान्धारी—महाराअ ! अहमभीदपुत्तप्पसविणी । [ महाराज ! अहमभीतपुत्रप्रसविनी ।]

---

अन्वयः—य. लोके काञ्चनस्तम्भसमप्रमाण. एक: वसुधाधिपेन्द्रः स मे तपस्वी भूमिगतः द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाणः कृत ॥ ४५ ॥

व्याख्या—य =दुर्योधन. लोके=पृथिव्याम् काञ्चनस्तम्भसमप्रमाण.—काञ्चनम्=स्वर्णम् तस्य स्तम्भसमम्=स्थूणसदृशम् प्रमाणम् यस्य सः किल=वस्तुत: एक:=अद्वितीय. वसुधाधिपेन्द्र —वसुधायाम्=पृथिव्याम् ये खलु अधिपाः=राजान तेषा तेषु वा इन्द्र =श्रेष्ठ: चक्रवर्ती (आसीत्) स-मे=मम धृतराष्ट्रस्य पुत्र', तपस्वी=वराकः भूमिगत.=गदाघातेन भूमौ पतित. द्वारेन्द्रकीलार्धसमप्रमाण.—द्वारेन्द्र:=गृहस्य प्रमुख द्वार तस्य य. कील=अर्गला तस्य अर्धम्=अर्धभाग. तेन तुल्यम् प्रमाणम्=परिमाणं यस्य स. तथा कृत.=जात. ॥ ४५ ॥

---

जो सोने के खम्भे की भाँति सुदृढ शरीर वाला इस पृथ्वी पर सभी राजाओ मे श्रेष्ठ था उस मेरे तपस्वी पुत्र को भूमि पर पडे हुए दरवाजे के टूकडे की भाँति बना दिया गया है ॥ ४५ ॥

गान्धारी—बेटा सुयोधन ! क्या तुम थके हो ।

राजा—मै, आपका पुत्र हूँ । ( अर्थात् वीर प्रसविनी जननी का पुत्र कैसे थक सकता हूँ ? )

धृतराष्ट्र—यह कौन है ?

गान्धारी—मैं निर्भय पुत्र की जननी (गान्धारी) हूँ ।

राजा—अद्योत्पन्नमिवात्मानमवगच्छामि। भोस्तात किमिदानीं वैक्लव्येन।

धृतराष्ट्र—पुत्र कथमविक्लवो भविष्यामि।

यस्य वीर्यबलोत्सिक्तं संयुगाध्वरदीक्षितम्।
पूर्वं भ्रातृशतं नष्टं त्वय्येकस्मिन्हते हतम्॥ ४६॥

[ पतति ]

राजा—हा धिक्! पतितोऽत्रभवान्। तात! समाश्वासयात्रभवतीम्।

धृतराष्ट्र—पुत्र! किमिति समाश्वासयामि।

राजा—अपराङ्मुखो युधि हत इति। भोस्तात शोकनिग्रहेण

---

अन्वय—यस्य वीर्यबलोत्सिक्तम् संयुगाध्वरदीक्षितम् भ्रातृशतम् पूर्वम् नष्टम् त्वयि एकस्मिन् हते हतम्॥

व्याख्या—यस्य=तव दुर्योधनस्य, वीर्यबलोत्सिक्तम्=उद्धतम् संयुगाध्वरदीक्षितम्—संयुग=समर एवाध्वर=यज्ञ तस्मिन् दीक्षितम्=निपुणम् भ्रातृशतम् पूर्वम्=प्रागेव युद्धे नष्टम्=दिवङ्गतम् (इदानीम्) त्वयि एकस्मिन्=एकमात्रावशिष्टे मत्पुत्रे हते=मृते हतम्=सर्वं समाप्तमिति॥ ४६॥

---

राजा—मैं अपने को आज ही उत्पन्न हुआ समझ रहा हूँ। पिताजी! अब पश्चात्ताप करने से क्या होगा।

धृतराष्ट्र—पुत्र! कैसे शोकरहित हो सकूँ।

युद्ध रूपी यज्ञ में दीक्षित बल तथा पराक्रम से परिपूर्ण जिसके सौ भाई मृत्यु के मुख में चले गये हैं इस प्रकार तुम्हारे एक की ही मृत्यु से मैं भी मारा गया॥ ४६॥ (गिर जाता है)

राजा—हाय! बहुत कष्ट है। आप गिर गये। पिताजी! माता जी को सान्त्वना दिलायें।

धृतराष्ट्र—बेटा! कैसे सान्त्वना दिलाऊँ।

राजा—मैं युद्ध में शत्रु का सामना करते हुए मारा गया हूँ। हे

क्रियता ममानुग्रह ।

त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलिर्ज्वलन्तमप्यग्निमचिन्तयित्वा ।
येनैव मानेन सम प्रसूतस्तेनैव मानेन दिव प्रयामि ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र —

वृद्धस्य मे जीवितनि स्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य ।
धृतिं निगृह्यात्मनि सम्प्रवृत्तस्तीव्रस्समाक्रामति पुत्रशोक ॥ ४८ ॥

---

अन्वय —त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलि येन एव मानेन समम् प्रसूत तेन एव मानेन ज्वलन्तम् अग्निम् अपि अचिन्तयित्वा दिवम् प्रयामि ॥ ४७ ॥

व्याख्या — त्वत्पादमात्रप्रणताग्रमौलि —त्वत्पादमात्र = भवच्चरणमात्रे प्रणत = नत अग्रमौलि = शिर यस्य स (अहम्) येनैव मानेन = प्रतिष्ठया समम् = सह प्रसूत = अजाये तेनैव मानेन = सम्मानेन ( सह ) ज्वलन्तम् = प्रज्वलितम् अग्निम् = वह्निम् अपि अचिन्तयित्वा = अविचार्य दिवम् = स्वर्गम् प्रयामि = गच्छामि ॥ ४७ ॥

अन्वय —जीवितनि स्पृहस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य वृद्धस्य मे धृतिम् निगृह्य आत्मनि सम्प्रवृत्त तीव्र पुत्रशोक समाक्रामति ॥ ४८ ॥

व्याख्या—जीवितनि स्पृहस्य—जीविते = प्राणधारणे नि स्पृहस्य = अभिलापरहितस्य निसर्गसम्मीलितलोचनस्य निसर्गेण = ज मनैव सम्मीलिते = सङ्कुचिते लोचने = अक्षिणी यस्य वृद्धस्य = जरातुरस्य मे = मम धृतराष्ट्रस्य धृतिम् = धैर्यम् निगृह्य = अपवृत्य आत्मनि = हृदि सम्प्रवृत्त = समुत्पन्न

---

पिताजी ! इसे जान कर नि शोक होकर मेरे ऊपर कृपा करें ।

आपके चरणो मे नतमस्तक रहने वाला मैं जिस अभिमान के साथ उत्पन्न हुआ उसी सम्मान के सहित जलती हुई अग्नि की चिन्ता न करता हुआ स्वर्लोक जा रहा हू ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र—अपने जीवन के प्रति निराश मुझ ज मान्ध का पुत्रविनाश जनित शोक, धैर्य को रोक कर अति तीव्र गति से मुझे आक्रान्त कर रहा है ॥ ४८ ॥

बलदेव—भो ! कष्टम् ।

दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुषः ।
न शक्नोम्यत्रभवतः कर्तुमात्मनिवेदनम् ॥ ४९ ॥

राजा—विज्ञापयाम्यत्रभवतीम् ।

गान्धारी—भणाहि जाद ! [भण जात !]

राजा—नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम् ।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ॥ ५० ॥

---

तीव्रः=असह्यः पुत्रशोकः=पुत्रविनाशजनितशोकः समाक्रामति—समन्ततः आत्मनि=आक्रमणं करोतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अन्वय—दुर्योधननिराशस्य नित्यास्तमितचक्षुषः अत्रभवतः आत्मनिवेदनं कर्तुं न शक्नोमि ॥ ४९ ॥

व्याख्या—दुर्योधननिराशस्य=दुर्योधनस्य जीवनं प्रति नैराश्यमवाप्तस्य नित्यास्तमितचक्षुषः-नित्यम्=सर्वदैव अस्तमिते=सद्दृष्टिहीने चक्षुषी=अक्षिणी यस्य सः तस्य अत्रभवतः=मान्यस्य ( शोकाकुलस्य ) समक्षम् आत्मनिवेदनम्=धैर्यावलम्बनाय किञ्चिद्वक्तुं न शक्नोमि=समर्थोऽस्मि ॥ ४९ ॥

अन्वय.—( हे मातः ! ) त्वां नमस्कृत्य ( अहम् ) वदामि यदि मया पुण्यं कृतम् ( तदा ) मे अन्यस्याम् अपि जात्यां त्वम् एव जननी भव ॥ ५० ॥

व्याख्या—मातरं गान्धारीं प्रति दुर्योधनः कथयति त्वाम्=भवतीम्

---

बलदेव—ओह ! खेद है ।

दुर्योधन के जीवन के प्रति हताश नित्य निमीलित नेत्रों वाले आप (धृतराष्ट्र) के समक्ष मैं अपनी कुछ भी बातें कहने में असमर्थ हूँ ॥ ४९ ॥

राजा—माँ ! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ ।

गान्धारी—कहो बेटा ।

राजा—मैं अभिवादन करके आपसे कहता हूँ कि यदि मैंने कुछ पुण्य किया है तो दूसरे जन्म में भी आप ही मेरी माता होवें ॥ ५० ॥

भीष्मो रामशरावलीढकवचस्तातश्च योद्धा रणे
व्यक्तं निर्जित एव सोऽप्यतिरथः कालेन दुर्योधनः ॥ ५८ ॥

तत् क्व नु खलु गतो गान्धारीपुत्रः । ( परिक्रम्यावलोक्य ) अये अयमभिहतगजतुरगनररथप्राकारमध्यगतः समरपयोधिपारगः कुरुराजः । य एषः,

---

भीष्मः तातश्च रणे सः योद्धा अपि अतिरथः दुर्योधनः कालेन व्यक्तम् एव निर्जितः ॥ ५८ ॥

व्याख्या—रथद्विपगताः = रथारूढाश्च चापद्वितीयैः—चापः = धनुरेव द्वितीयः = सहायो येषां तादृशैः करैः = हस्तैः उद्यतप्राञ्जलयः—उद्यताः = उत्थापिताः प्राञ्जलयः = पाणिपुटाः यैः तादृशाः एकादशवाहिनीनृपतयः—एकादशसंख्यकानां वाहिनीनाम् = सेनानां नृपतयः = अधीश्वराः यस्य = दुर्योधनस्य वाक्योन्मुखाः = आज्ञापालकाः तिष्ठन्ति स्म' इति शेषः । किञ्च रामशरावलीढकवचः—रामस्य = परशुरामस्य शरैः = सायकैः अवलीढं = विद्धो कवचं यस्य सः भीष्मः = शान्तनुतनुः तातः = पिता च रणे = सङ्ग्रामे योद्धा = 'सेनापतिः' यस्य सोऽपि अतिरथः = रथिनमतिक्रम्य वर्तते इति महारथी दुर्योधनः कालेन = कालवैपरीत्येन व्यक्तमेव = निश्चितमेव निर्जितः पराजितः इति ॥ ५८ ॥

तदिति । गान्धारीपुत्रः = दुर्योधनः, अये इत्याश्चर्यम् अयमभिहतगजतुरगनररथप्राकारमध्यगतः—अयम् = कौरवाधिपः, अभिहताः = मृताः ये गजाः =

---

रथ और हाथियों पर सवार, विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित जिनकी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए ग्यारह अक्षौहिणी सेना वाले राजा भी हाथ जोड़े खड़े रहते थे, परशुराम के बाणों से आच्छादित कवच वाले भीष्म और मेरे पिता जी (द्रोणाचार्य) जैसे पराक्रमी जिस दुर्योधन के योद्धा थे वह वीर (दुर्योधन) भी काल की प्रतिकूलता से पराजित हो गया ॥ ५८॥

तो गान्धारी का पुत्र (दुर्योधन) कहाँ चला गया । (घूम कर और देख कर) अरे ! मरे हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथरूपी प्राचीर के मध्य समरयुद्ध को पार करने वाला दुर्योधन पड़ा हुआ है । जो यह–

मौलीनिपातचलकेशमयूखजालै-
गात्रैर्गदानिपतनक्षतशोणितार्द्रैः ।
[1]भात्यस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्टः
सन्ध्यावगाढ इव पश्चिमकालसूर्यः ॥ ५९ ॥

( उपसृत्य ) भो कुरुराज ! किमिदम् ।

---

हस्तिनः तुरगाः =अश्वाः नराः =मनुष्याः इत्यादयः तथा यत्प्राकारः तं मध्यगतः =तद्गतः प्रविष्टः, समरपयोधिपारगः –समरः =युद्धस्थलमेव पयोधिः = समुद्रः तस्य पारगः =पारं गच्छतीत्यर्थः ।

अन्वय —मौलीनिपातचलकेशमयूखजालैः गदानिपतनक्षतशोणितार्द्रैः गात्रैः अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्टः सन्ध्यावगाढः पश्चिमकालसूर्यः इव भाति ॥ ५९ ॥

व्याख्या-मौलिनिपातचलकेशमयूखजालैः –मौल्याः =मुकुटस्य निपातेन = प्रपतनेन चलाः =चञ्चलाः केशाः =शिरोबालाः एव मयूखजालानि =किरण-समूहाः तैः तथा गदानिपतनक्षतशोणितार्द्रैः —गदायाः निपतनेन =प्रहारेण यानि क्षतानि =व्रणस्थानानि तेभ्यः निस्सृतेन शोणितेन =रक्तेन आर्द्रैः = क्लिन्नैः गात्रैः =शरीरावयवैः अस्तमस्तकशिलातलसन्निविष्टः –अस्तमस्तकस्य=अस्ताचलशिखरस्य शिलातलेषु =प्रस्तरखण्डेषु सन्निविष्टः = संलग्नः सन्ध्यावगाढः —सन्ध्याकालीनरागेण अवगाढः =अवलिप्तः पश्चिम-कालसूर्यः =दिवावसानकालीनभास्करः इव =सदृशः भाति =सुशोभते इति ॥ ५९ ॥

---

मुकुट गिर जाने के कारण केश जिसके सूर्य की किरणों की भाँति हैं, गदा के प्रहार से हुए व्रण से निकलने के कारण जिसका रक्तरञ्जित शरीर आर्द्र होने से अस्ताचल के शिखर में डूबते हुए सूर्य की तरह अस्त होता जान पड़ता है ॥ ५९ ॥

( समीप जाकर ) अहो कुरुराज ! यह क्या हुआ ?

---

१ "यात्यस्ते"इत्यादि पाठान्तरम् ।

राजा—गुरुपुत्र ! फलमपरितोषस्य !
अश्वत्थामा—भो कुरुराज ! सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि ।
राजा—किं भवान् करिष्यति ।
अश्वत्थामा—श्रूयताम् ।

युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेह—
मष्टार्द्धभीमभुजमुद्यतशाङ्‌र्गचक्रम् ।
कृष्णं सपाण्डुतनयं युधि शस्त्रजालैः
सङ्कीर्णलेख्यमिव चित्रपटं क्षिपामि ॥ ६० ॥

---

राजा—फलमपरितोषस्य—फलम्=परिणामः, अपरितोषस्य=सन्तोष रहितस्य ।

अश्वत्थामा—सत्कारमूलमावर्जयिष्यामि—सत्कारपूर्वकं यथा स्यात्तथा आवर्जयिष्यामि=तवाऽनुरूपं करिष्यामि ।

अन्वय—युद्धोद्यतं गरुडपृष्ठनिविष्टदेहम् अष्टार्द्धभीमभुजम् उद्यतशाङ्‌र्गचक्रं सपाण्डुतनयं कृष्णं युधि शस्त्रजालैः सङ्कीर्णलेख्यं चित्रपटम् इव क्षिपामि ॥ ६० ॥

व्याख्या—किं भवान् करिष्यतीति दुर्योधनेन पृष्टे सत्यश्वत्थामा कथयति—युद्धोद्यतम्—युद्धाय=संग्रामाय उद्यतम्=उत्साहान्वितं तथा गरुडपृष्ठनिविष्टदेहम् गरुडस्य=वैनतेयस्य पृष्ठे=पृष्ठभागे निविष्टः=सन्निविष्टो देहः=शरीरं यस्य तम्, अष्टार्द्धभीमभुजम्—अष्टार्द्धं=चत्वारः

---

राजा—गुरुपुत्र, मेरे अत्यधिक लोभ का फल है ।

अश्वत्थामा—हे कुरुराज ! आपका ( अभीष्ट सिद्ध कर ) सत्कार करना चाहता हूँ ।

राजा—आप क्या करेंगे ।

अश्वत्थामा—युद्ध के लिए उत्साहित गरुड की पीठ पर बैठे हुए भयंकर चार भुजाओं वाले शाङ्‌र्ग नामक धनुष और चक्र धारण किए हुए कृष्ण को पाण्डवों के सहित, युद्ध में शस्त्रसमूह के द्वारा चित्रित चित्रपट की भाँति नष्ट कर फेंक दूँगा ।

राजा—मा मा भवानेवम् ।

गत धात्र्युत्सगे सकलमभिषिक्त नृपकुल
गत कर्णं स्वर्गं निपतिततनु शान्तनुसुत ।
[1]गत भ्रातृणा मे शतमभिमुख सयुगमुखे
वय चैवभूता गुरुसुत ! धनुर्मुञ्चतु भवान् ॥ ६१ ॥

भीमा = भयोत्पादका भुजा = बाहवो यस्य तम् उद्यतशार्ङ्गचक्रम्—उद्यते = सुसज्जिते शार्ङ्गम् च = धनुश्च चक्रम् च = सुदर्शनश्च इति उद्यतशार्ङ्ग चक्रे यस्य त, सपाण्डुतनय = पञ्चपाण्डवसहित कृष्णम् = वासुदेव युधि = समर शस्त्रजाले = शस्त्रसमूहे सङ्कीर्णलेख्यम् सङ्कीर्णा = परस्पर साङ्कर्यं प्राप्ता लेख्या = मूर्तय यत्र तादृश यच्चित्रपटम् तमिव निपामि = उत्सृज्यामि हनिष्यामीति भाव ॥ ६० ॥

अन्वय—अभिषिक्त सकल नृपकुल धात्र्युत्सङ्गे गतम्, कर्ण स्वर्गं गत, शान्तनुसुत निपतिततनु मे भ्रातृणा शतमभिमुख सयुगमुख गतम्, वय च एवभूता (अत ) हे गुरुसुत भवान् धनु मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अभिषिक्तम् = युवराजपदाधिष्ठित सकलम् = समग्र नृपकुलम् = राजवश , धात्र्युत्सङ्गे—धात्र्या = पृथिव्या उत्सङ्गे = क्रोडे गतम् = प्रविष्टम् कर्ण = राधेय, स्वर्गम् = नाकलोक गत शान्तनुसुत = भीष्म निपतिततनु = पतितदेहोऽभवदिति शेष । मे = मम भ्रातृणाम् = सोदराणा शतम् = शतसख्याकम् अभिमुखम् = समक्षमेव सयुगमुखे = युद्धमध्ये गतम् = विनष्टम् वयञ्च एवभूता = एवविधा जाता (अत ) हे गुरुसुत = गुरुपुत्र भवान् धनु = शस्त्र मुञ्चतु । शिखरिणी वृत्तम् ॥ ६१ ॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहिए ।

समस्त अभिषिक्त राजवश पृथिवी की गोद मे सो गया कर्ण स्वर्ग चला गया, शान्तनु-पुत्र ( भीष्म पितामह ) भी मारे गये मेरे सौ भाई भी रणक्षेत्र में स्वर्ग सिधार गये और मैं उनलोगो का अनुगमन कर रहा हूँ, इस लिए हे आचार्य पुत्र ! आप धनुष को त्याग दें ।

1 "शत भ्रातृणा मे हतमभिमुख सयुगमुखे" इत्येवमपि पाठो लभ्यते ।

अश्वत्थामा—भो. कुरुराज !

संयुगे पाण्डुपुत्रेण गदापातकचग्रहे ।
सममूरुद्वयेनाद्य दर्पोऽपि भवतो हृत. ॥ ६२ ॥

राजा—मा मैवम् । मानशरीरा राजानः । मानार्थमेव मया निग्रहो गृहीतः । पश्य गुरुपुत्र !

यत्कृष्टा करनिग्रहाञ्चितकचा द्यूते तदा द्रौपदी
यद्बालोऽपि हतस्तदा रणमुखे पुत्रोऽभिमन्युः पुनः ।
अक्षव्याजजिता वन वनमृगैर्यत्पाण्डवाः संश्रिता
नन्वल्प मयि तैः कृतं विमृश भो दर्पाहृतं दीक्षितै. ॥६३॥

---

अन्वयः—गदापातकचग्रहे संयुगे अद्य पाण्डुपुत्रेण ऊरुद्वयेन समम् एव भवतः दर्प. अपि हृत. ॥ ६२ ॥

व्याख्या—गदापातकचग्रहे—गदायाः पात.=आघात' कचानाम्=शिरोरुहाणां ग्रहः=आकर्षणं यत्र तादृशे संयुगे=संग्रामे अद्य पाण्डुपुत्रेण=भीमेन ऊरुद्वयेन=जङ्घायुगलेन समम्=सहैव भवतः=तव दर्प.=स्वाभिमानः अपि हृतः=नष्टः ॥ ६२ ॥

राजा—मानशरीराः—मानम्=प्रतिष्ठा एव शरीरा.=देहाः यस्य त एव राजानः । निग्रहः=युद्धम् गृहीतः=सरचित' ।

अन्वय'—यत् करनिग्रहाञ्चितकचाः द्रौपदी द्यूते कृष्टा पुनः पुत्रः अभिमन्युः तदा रणमुखे बालः अपि यत् हत. अक्षव्याजजिता पाण्डवाः वनमृगैः यत् वन संश्रिताः भोः दीक्षितै. तैः मयि दर्पाहृतं कृतं ननु अल्पम् ( इति ) विमृश ॥ ६३ ॥

---

अश्वत्थामा—हे कुरुराज ! पाण्डुपुत्र भीम के द्वारा युद्ध मे केश पकड कर गदा प्रहार किये जाने के कारण तुम्हारी दोनो जङ्घाओ के साथ ही तुम्हारा अभिमान भी नष्ट कर दिया गया है ॥ ६२ ॥

राजा—नही, नही अभिमान ही राजाओ का शरीर है। मान के लिए ही मैंने युद्ध किया है। आचार्यपुत्र देखे—

मैंने द्युतसभा मे हाथो से जो द्रौपदी का केश खीचा, सङ्ग्रामाङ्गण मे



चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला

३३

भासनाटकचक्रे

# पञ्चरात्रम्

सपरिशिष्ट 'विमला' संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार—

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्रः

साहित्याचार्य, व्या० शा०, बी० ए० (आनर्स), एम० ए० (त्रितय),

पी० एच-डी०, डिप्-इन-एड।




चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

वाराणसी

१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६
मूल्य : ५-००


के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
( भारत )

अपर च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
33

# PAÑCARĀTRAM

OF

MAHAKAVI BHASA

Edited with
*The 'Vimala' Sanskrit, Hindi Commentaries and Notes.*

By
Dr. J C MISHRA
B A (Hons), M A (Double), Ph-D. Dip-in-Ed.
Sahityacharya and Vyakaran Shastri.



Chaukhamba Amarabharati Prakashan
VARANASI–221001
1979

# विषय-प्रवेशः



—:०:—

# विमला विमर्श

'विमला' पञ्चरात्र की व्याख्या है। अनुवाद एवं विचारविमर्श की दृष्टि से यह व्याख्या कहाँ तक उपयुक्त है। यह मैं अपने कृपालु सुधी समीक्षकों पर छोड़ता हूँ। किन्तु, इस कृति-संरचना में जिन से मेरा सम्पर्क हुआ है, उनके सम्बन्ध में कुछ अवश्य कहना चाहूँगा।

प्रत्येक देश और काल में देशान्तर या कालान्तर की भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम में अन्तर रहा है। यह अन्तर तत्संबन्धी परिवेश एवं परिवर्तन के अन्तर के कारण ही रहा है। युगविशेष अथवा देश-विशेष का कोई भी कवि या विचारक जो कुछ सोचता विचारता है, उसे अपनी भाषा में लिपिबद्ध कर देता है। अपने ही देश में कालान्तर में जब उस भाषा को जानने वालों की कमी हो जाती है तब वह विचारराशि जन सामान्य के लिए दुर्लभ एवं अग्राह्य प्रतीत होने लगता है। उन्हें तथाकथित उक्त भाषा के माध्यम से उन विचारों का बोध ही नहीं हो पाता है। यह अबोधता की दीवार भाषा के कारण उत्पन्न होती है। भाषाजन्य इस व्यवधान को दूर करना ही विमला का मुख्य उद्देश्य है।

एक ही देश की दूर दूर सीमाओं में विभक्त मानवजाति, एक दूसरे के भावों और विचारों को निकट लाने के लिए एक दूसरे की भाषा के भावों और विचारों को अपनी भाषा के भावों या विचारों में लाना चाहती है। एक ही देश में युगों से बसी मानवजाति भी अपने पूर्वजों के भावों और विचारों को समझने या जानने के लिए स्पष्टतया इसे अपनी वर्तमान भाषा में लाने की इच्छुक रहती है। यह प्रक्रिया सफल होती है केवल एक ही माध्यम से जिसे हम अनुवाद या भाषान्तर की व्याख्या कहते हैं। वस्तुतः अनुवाद भावाभि-व्यक्ति को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरित करने की एक विशिष्ट कला है। पञ्चरात्र की परिनिष्ठित संस्कृत भाषा को सरल संस्कृत, हिन्दी में रूपान्तरित करने की विमला की क्षमता किस हद तक सफल हुई है, विचारणीय है।

'विमला' का कार्य भारत के पुरातन और वर्तमान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की एक कड़ी की तरह है। 'पञ्चरात्र' में निहित भास के महाभारतीय भावों या विचारों के अतिरिक्त इसके अभिशिष्ट भारतीय संस्कृति के प्रसार तथा समृद्धि के लिए भी विमला की उपयोगिता स्पष्ट है।

किसी भी देश का रचनात्मक कृतित्व उस देश की सास्कृतिक प्रक्रिया के सर्वाधिक सवेदनशील और सर्जनात्मक रूप को उजागर करता है। अत यह स्वाभाविक है कि छात्रों के अतिरिक्त अन्य बौद्धिक वर्ग के लोग भी इस स्थिति को जानने के लिए उत्सुक हो। भारत जैसे देश के लिए जो अनेक प्रान्तो मे बटा हुआ है और जहाँ प्रान्तविशेष की अपनी अपनी स्थानीय भाषाएँ हैं, वहाँ पञ्चरात्र की सस्कृत हिन्दी व्याख्या के साथ ही अग्रेजी अनुवाद की भी बडी आवश्यकता है।

'विमला' व्याख्या की कुछ निजी समस्याएँ भी हैं। किन्ही दो भाषाओ के वातावरण समान नही होते। एक भाषा से दूसरी भाषा मे अनुवाद करते समय अविकल पर्यायो का अभाव उन शब्दो को लेकर बहुत खटकता है जो सस्कृत, वेशभूषा, खानपान, धर्म दर्शन, फलफूल आदि के वाचक होते हैं। जैसे 'पञ्चरात्र' मे प्रयुक्त यज्ञ, होम, प्राग्वश, तपस्या, पूजा-पाठ, दान-धर्म, श्रद्धा-भक्ति, दर्भ, कृष्णाजिन, राजर्षि, आचार्य, तपोनिष्ठ, पाटल, घी, स्रुवा, भाण्ड, भर्त्ता, सुभ्रुवा, वनराजि प्रभृतिशब्द जिन अर्थो के वाचक होते हैं, उनके बोधक शब्द अग्रेजी मे तो नही ही हिन्दी मे भी प्रयत्नसाध्य होते है। इसकी व्याख्या लिखते समय हिन्दी की प्रगति को ध्यान मे रखकर विमला को कठिनाइयो का सामना करना पडा है।

इस नाटक की व्याख्या लिखते समय वाक्य-रचना को लेकर भी कई समस्यायें सामने आई है। कई स्थानो पर मूल भाषा मे परस्पर किसी भाव के लिए प्रयुक्त प्रतीकात्मक शब्द के लिए हिन्दी, सस्कृत या अग्रेजी भाषा मे समानार्थी शब्दो की अनुपलब्धि के सम्बन्ध मे जब कभी समस्या उठी है तब वहाँ विमला ने स्वेच्छाचारिता बरती है। प्राय यह समस्या अधिकाशत व्यावहारिक शब्दो के प्रयोग मे ही आई है। इस समस्या या इस तरह की समस्याओ को दूर करने के लिए या तो मूल भाषा के अपरिचित शब्द सव्याख्या भाषान्तर मे ग्रहण कर लिए गये है, या फिर उसे ज्यो के त्यो ही ग्रहण कर लिया गया है।

'पञ्चरात्र' मे प्रयुक्त सस्कृत मुहाविरे या सुभाषितो को लेकर भी यह

# भूमिका

## पञ्चरात्र : एक परिचय

नाटक का नामकरण उन पाँच रातों की घटना से संबद्ध है, जिनमें द्रोण को दुर्योधन की शर्त के अनुसार गुप्तवासी पाण्डवों का पता पाँच रातों के भीतर ही लगा लेना है। तभी पाण्डव शर्त के अनुसार राज्यार्ध के अधिकारी हो सकते हैं। 'पञ्चरात्र' की कथावस्तु महाभारत के चतुर्थ खण्ड अर्थात् 'विराट् पर्व' पर आधारित है। इस कथावस्तु का सारांश पर्वसंग्रह पर्व के निम्नलिखित श्लोकों में मिलता है—

अत परं निबोधेद वैराट पर्वविस्तरम्।
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम् ॥ २०६ ॥
दृष्ट्वा संनिदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसन्त ते ॥ २०७ ॥
पाञ्चालीं प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः।
दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात् ॥ २०८ ॥
पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च।
चाराः प्रस्थापिताश्चात्र निपुणाः सर्वतो दिशम् ॥ २०९ ॥
न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवानां महात्मनाम्।
गोग्रहश्च विराटस्य त्रिगर्तैः प्रथमं कृतः ॥ २१० ॥
यत्रास्य युद्धं सुमहत्तैरासील्लोमहर्षणम्।
ह्रियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः ॥ २११ ॥
गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः।
अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोग्रहणं कृतम् ॥ २१२ ॥
समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि।
प्रत्याहृतं गोधनं च विक्रमेण किरीटिना ॥ २१३ ॥

विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिन ।
अभिमन्यु समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम् ॥ २१४ ॥
चतुर्थमेतद्विपुल वैराट पर्व वर्णितम् ।

बारह साल के वनवास की अवधि समाप्त कर पाण्डवो ने एक साल के गुप्तवास की अवधि म प्रवेश किया। उन्होने अपने सारे अस्त्रो को एक विशाल शमीवृक्ष के कोटर म छिपा दिया तथा भेष बदलकर मत्स्यो के सम्राट विराट की राजधानी म प्रवेश किया। युधिष्ठिर ने पासा फेंकने म निपुण ब्राह्मण कङ्क का रूप ग्रहण किया। भीम न सुप्रवेशराज बल्लभ के रूप म रसोई घर का कार्यभार ग्रहण किया। अर्जुन ने नृत्य सगीत विशारद किन्तु नपुसक बृहन्नला का रूप ग्रहण किया। नकुल विराट के घोडो के सरक्षक के रूप म नियुक्त हुए और सहदेव को राजा की हजारो गायो के रक्षक का प्रभार सौंपा गया। बिचारी द्रौपदी ने सैरन्ध्री का रूप ग्रहण किया। उस पटरानी के बाल सजाने वाली महिला का काम सौंपा गया।

विराट की सेना का शक्तिशाली प्रधान सेनापति महारानी का भाई कीचक था। उसने द्रौपदी के रूप सौंदर्य को देखा। पहली ही दृष्टि म वह द्रौपदी के प्रति आसक्त एव अभिभूत हो उठा। उसने गम्यागम्य का विचार छोड द्रौपदी का पीछा करना शुरू कर दिया। द्रौपदी ने उसे बहुत समझाया उन्होने कहा—मेरा पति एक गधर्व है जो अदृश्य रहकर भी मेरी रक्षा म सतत सलग्न रहता है। यदि उसे तुम्हारे इस अवैध प्रेम व्यवहार का थोडा भी पता चल गया तो किसी भी स्थिति म वह तुम्हे जिन्दा न छोडेगा। किन्तु, कीचक कुछ भी सुनने को तैयार न था। अन्तत हारकर द्रौपदी न उसे नृत्यशाला म आने को कहा। अवसर आते ही कीचक वहाँ आ धमका। द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। मौका देखकर उन्होंने तत्क्षण कीचक की हत्या कर डाली। उसके मृत शरीर का क्षतविक्षत कर डाला। उसका शव इस तरह विकृत था कि उसे पहचान पाना कठिन हो रहा था। काम समाप्त कर भीम वहाँ से चलते बने। द्रौपदी न नृत्यशाला के रक्षको को बुलाया तथा उन्हे किसी पराई स्त्री के प्रति मोह रखने के कारण

कुरु सेना शीघ्र ही पीछे की ओर भाग खडी हुई। अर्जुन ने युद्ध विजय के बाद अपने सारे हथियार उसी शमी वृक्ष के कोटर मे छुपा दिये और उत्तर को इस युद्ध का पूरा श्रेय दिया। यहाँ उन्होने अपने आप को पूर्णत गौण रखा। उत्तर को भी अपना रहस्य छिपाने के लिए अनुकूल बना लिया। विजय की खबर जब सम्राट् विराट को मिली तब उन्होने कुमार उत्तर के स्वागत की भव्य तैयारी की। वे स्वय कक के साथ पासा खेलने बैठ गये। कक ने इस युद्ध का श्रेय बृहन्नला को दिया। यह सुनते ही विराट भडक उठे। आवेश मे उन्होंने पासा फेंक कर कक पर प्रहार किया। पासा की चोट से कक के नाक से खून की धारा बहने लगी। बगल मे खडी सैरन्ध्री ने जब यह दृश्य देखा तो झट से एक बरतन मे उस खून को समेट लिया उसी समय बृहन्नला के साथ उत्तर दरबार में उपस्थित हुआ। लेकिन, युधिष्ठिर ने चुपचाप दरबान से कहा केवल उत्तर को ही दरबार मे उपस्थित करो। क्योकि, उन्हे भय था कि कही बृहन्नला के रूप मे छिपा अर्जुन अगर उनके नाक से बहते खून को देख लिया तो अनर्थ हो जायेगा। कुमार उत्तर ने बृहन्नला को छोड़कर ही दरबार मे प्रवेश किया। युद्ध की सारी घटनाओ का उसने सही-सही चित्रण उपस्थित किया। अर्जुन के परिचय को छिपाकर इनकी जगह किसी देवपुत्र की सहायता का उल्लेख किया।

इस युद्ध-विजय के बाद तीसरे दिन पाण्डवो ने अपनी राजसी पोशाक मे विराट की सभा मे प्रवेश किया। सभा मे उन्होने अपना-अपना स्थान उन गद्दियो पर ग्रहण किया जो मात्र राजाओ के लिए आरक्षित थे। विराट ने जब यह दृश्य देखा तो क्रोध से कांपने लगे। किन्तु उसी क्षण अर्जुन ने उठकर युधिष्ठिर एव अपने अन्य भाईयो का परिचय विराट के सामने दिया। कुमार उत्तर ने इसका समर्थन किया तथा अर्जुन की शक्ति की उसने भूरि-भूरि प्रशसा की। मत्स्य सम्राट विराट ने अपने को दोषी घोषित किया तथा इस अपराध के लिए अपनी सुपुत्री कुमारी उत्तरा को भेंट स्वरूप उनके सामने अर्पित किया। अर्जुन ने अपनी पुत्रवधू के रूप मे कुमारी उत्तरा को ग्रहण किया। पुन उसी नगर मे पाण्डवो ने अपने आवास स्थान पर धूम-धाम के साथ उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ सम्पन्न किया।

# पञ्चरात्र की कथावस्तु

## प्रथम अङ्क

कुरु सम्राट् महाराज दुर्योधन ने एक विशाल यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में कुछ लड़कों ने उपद्रव खड़ा किया। उन्होंने यज्ञ मण्डप में आग लगा दी। ऋत्विजों ने किसी तरह आग पर नियंत्रण प्राप्त किया। यज्ञ सम्पादन के बाद देश-देशान्तर के आये हुए ब्राह्मणों, सभासदों एवं सामन्तों ने दुर्योधन का साधुवाद किया। अन्त में दुर्योधन ने अपने आचार्य द्रोण से यज्ञान्त की दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की। पहले तो द्रोण ने कहा—मेरी दक्षिणा सुरक्षित रखो, समय पर माँग लूंगा। किन्तु, प्रतिज्ञात दुर्योधन के अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने कहा—पाण्डवों को उनका आधा राज्य दे दो, यही हमारी यज्ञ-दक्षिणा होगी। शकुनि ने इसे आचार्य की धर्म-वञ्चना कहा। उसके इस कथन से द्रोण क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा—पाण्डवों का राज्यार्थ उन्हें लौटा दो, अन्यथा वे बल पूर्वक अपना हिस्सा तुमसे ले ही लेंगे। अब तुम्हीं सोच लो कि मेरी प्रार्थना अच्छी है अथवा उनका बल प्रयोग। क्रुद्ध आचार्य को पितामह भीष्म और कर्ण ने समझा बुझा कर शान्त किया।

दुर्योधन ने इस संबंध में अपने मामा शकुनि से परामर्श लिया और अन्त में उसने घोषणा की—यदि पाँच रात के अन्दर पाण्डवों का पता लगा दिया जाय तो पाण्डवों को राज्य का आधा हिस्सा दिया जा सकता है। भीष्म के अनुरोध पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की यह शर्त मान ली।

इसी बीच दुर्योधन के दरबार में यह खबर मिली कि विराट के साले सौ कीचकों का वध किसी ने बिना अस्त्र प्रयोग के ही कर दिया है। भीष्म ने निश्चय किया कि यह कर्म भीम के सिवा और कोई कर ही नहीं सकता है। अतः उन्होंने द्रोणाचार्य को बता दिया कि पाण्डव विराट के नगर में ही हैं। भीष्म ने दुर्योधन को बतलाया कि विराट के साथ हमारी पुरानी शत्रुता है।

इस यज्ञ मे भी विराट नही आया। अतः उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिए। उसका गोधन अपहृत कर लेना चाहिए। पितामह की यह चाल समयानुकूल थी। यह आक्रमण पाण्डवो का पता लगाने का एक साधन था। उनका यह विश्वास था कि विराट पर जब यह आक्रमण होगा तब पाण्डव चुपचाप नही बैठेंगे क्योंकि उनमे कृतज्ञता के भाव हैं। अतः ऐसी स्थिति मे उनका पता आसानी से चल जायेगा।

## द्वितीय अङ्क

उस दिन विराट का जन्मदिन था। इस जन्मदिन के उपलक्ष्य मे राजधानी सजाई गई थी। कण-कण मे उल्लास फैला था। गोधन भी सजाये गये थे। सभी गोपाल उत्सव मना रहे थे। इसी बीच दुर्योधन ने अपनी सेना के साथ उनपर आक्रमण किया। गायें हरी जाने लगी। गोपाल घबडाकर भाग खडे हुए। इस अप्रत्याशित आक्रमण की खबर गोपालो ने राजा को दी। उन्होने कहा—कौरवो ने गोधन पर आक्रमण किया है। उनकी सेना मे पितामह भीष्म और आचार्य गुरु द्रोण भी हैं। उनका सामना करने के लिए कुमार उत्तर बृहन्नला को सारथी बनाकर जा चुके हैं। विराट सूचना पाते ही अपने पुत्र की मदद के लिए तत्पर हो उठे किन्तु इसी बीच उन्हे दूसरी सूचना मिलि—युद्ध क्षेत्र से भीष्म एव दुर्योधनादि राजगण हार कर भाग चुके हैं। युद्ध मे केवल अभिमन्यु लड रहा है। कुछ ही देर बाद दूत ने फिर खबर दी कि युद्ध समाप्त हो चुका है। कुमार विजयी रहा। राजा ने अपने पुत्र को देखने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। किन्तु, कुमार उत्तर युद्ध मे बहादुरी दिखलाने वाले वीरो का नाम उस समय अङ्कित कर रहा था। विराट ने बृहन्नला को ही बुलाकर युद्ध का विवरण जानना चाहा। इसी बीच एक दूत ने आकर प्रसन्नता पूर्वक खबर दी कि युद्ध मे अभिमन्यु पकडा गया। अभिमन्यु को पकडने वाला वही वीर है। जिसे पाकशाला मे नियुक्त किया गया था राजा का दिल प्रसन्नता से नाँच उठा। उन्होने ससम्मान अभिमन्यु को उपस्थित करने का आदेश दिया।

अभिमन्यु तथा भीम से भेंट होने पर बृहन्नला अभिमन्यु के माता पिता की कुशलता का समाचार पूछती है। भीम और बृहन्नला दोनो मिलकर उसे

चिढ़ाते और उत्तेजित कर देते हैं। इसके पश्चात् बृहन्नला अभिमन्यु को विराट् के पास ले जाती है। वहाँ भी वह किए गये प्रश्नों का उत्तर अत्यत उत्तेजना के साथ देता है। इसी बीच कुमार उत्तर वहाँ आकर बृहन्नला की ओर सकेत करते हुए घोषणा करता है कि ये अर्जुन हैं। इन्होंने ही श्मशान स्थित शमी वृक्ष पर टँगे अपने धनुष बाण को लाकर आज के युद्ध मे कौरवों को पराजित किया अत: आज के युद्ध के विजयी वीर यही हैं। मैं नहीं हूँ। इतने ही मे भगवान् युधिष्ठिर पाण्डवो के अज्ञात वास की अवधि समाप्त होने की घोषणा करते हैं। इन सारी घटनाओं को देख सुनकर अभिमन्यु पुलकित हो जाता है। वह अपने पितृजनों से मिलकर अत्यत परितृप्ति का अनुभव करता है। राजा विराट् भी पाण्डवों का परिचय पाकर प्रसन्न हो जाते और अपने को गौरवान्वित समझने लगते है। वे इस विजय के उपलक्ष्य मे अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन के लिए समर्पण करने की घोषणा करते हैं। जिसे अर्जुन अपनी पुत्र-वधू के रूप मे ग्रहण करने की स्वीकृति देते हैं।

## तृतीय अङ्क

कौरव पक्ष मे अभिमन्यु के अपहरण का समाचार फैलते ही सभी लोग चकित हो उठते हैं। एक पदाति ने अकेले ही शस्त्रों से सुसज्जित और सेना से रक्षित अभिमन्यु को कैसे अपहृत किया। भीष्म ने लोगों का समाधान करते हुए कहा कि अभिमन्यु का अपहर्त्ता भीम के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। शकुनि को यह कथन बहुत ही अप्रिय प्रतीत हुआ और उसने कहा कि तब तो आप हम लोगों को पराजित करने वाले कुमार उत्तर को भी अर्जुन ही समझ रहे होंगे।

द्रोणाचार्य और भीष्म दोनो ने शकुनि की कही हुई बात को सत्य प्रति-पादित करते हुए कहा कि युद्ध की बाणवृष्टि तो यही सकेत कर रही है कि वह अर्जुन की ही युद्धकला थी। बाण-वर्षण मे इतनी त्वरा और लघुहस्तता है ही किसमें, जो क्षण भर मे ही आकाश को बाणों से आच्छन्न करके सूर्यास्त का दृश्य उपस्थित कर दे। भीष्म के रथ की ध्वजा मे लगा हुआ एक बाण लाया गया। शकुनि ने उसमे अकित अर्जुन के नाम को पढकर लज्जित होकर उसे फेंक

राजभवन मे इस गोग्रहण का समाचार मिला। यह भी महाभारत-कथा के विपरीत चित्रण है। लगता है, मुख्य कथा के वर्बर भागों को चिकना बनाने के लिए ही भास ने ऐसा किया है। यथा—कीचक का द्रौपदी के प्रति पाशविक आसक्ति, भीम का भयानक बदला, कीचक के साथ उनके अन्य अनुयायियो की हत्या का बिल्कुल उल्लेख नही किया गया है। केवल हत्या के संबंध मे संकेत भर है। ठीक इसी प्रकार युधिष्ठिर के नाक से रक्तस्राव की घटना को भी दबा दिया गया है। दुर्योधन के चरित्र को कुछ अधिक ही पक्षपात पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेकिन, उसका उदार स्वरूप पाण्डवों के प्रति अपनी सारी शोभा तब खो देता है जब शकुनि से सुनने के बाद वह सोचता है कि उसने उतावली मे काम किया है। और सिर्फ वाक्छल से अपने समझौता से छुटकारा पाकर प्रसन्न हो जाता है। महाभारत की मूलकथा के अनुसार यहां भी शकुनि दुर्योधन की दुष्ट प्रतिभा का प्रतीक है। जब कि कर्ण जो महाभारत मे घमण्डी, धृष्ट और विपक्षी है, यहाँ वह मित्र और शान्ति के प्रति झुका हुआ चित्रित किया गया है।

महाभारत मे युद्ध विजय के बाद पाण्डवो ने तीन-चार दिनो के बाद अपना छद्मवेश परित्याग किया है। जबकि यहाँ उसी दिन पाण्डव अपने रूप मे आ जाते हैं। डॉ० विण्टरनिज् की दृष्टि मे विराट् का पुत्र उत्तर एक योद्धा की अपेक्षा हँसोड अधिक है। जो युद्धभूमि से भागकर जब विराट को युद्धभूमि का सुना हुआ इतिवृत्त सुनाता है तो विराट समझता है कि उसका पुत्र किसी प्रशंसनीय कार्य मे व्यस्त था। संभवतः इस हँसोड भाव का उपयोग इसलिए किया गया है कि उत्तर को इस मजमा से अलग रखा जा सके। अन्यथा, सारी सचाई को वह मजाक बना देता। उस- समय भी उसे अलग रखा गया जब अभिमन्यु स्वयं अपने पिता को पहचानने मे असमर्थ हो रहा था।

इस नाटक मे विराट अपने रनिवास मे पूरे एक साल तक बृहन्नला (छद्मवेशी अर्जुन) के रहने पर विशेष चिंतित प्रतीत होता है चिन्ता का कारण संभावित अफवाह है जो इसकी आसन्न यौवना पुत्री उत्तरा और अर्जुन के एकान्तवास का कारण बन सकती है। इसलिए विराट स्वेच्छा से उत्तरा को अर्जुन के

हाथों में सौंप देता है। इस नाटक में अर्जुन स्वयं अपने चरित्र के प्रति सतर्क है और विराट से प्राप्त उपहार स्वरूप उत्तरा को प्राप्त कर उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर अपने चरित्र की उज्ज्वलता को प्रमाणित कर देता है।

पशु आक्रमण की चर्चा महाभारत में भी है। किन्तु, भास ने द्रोण को समय से पूर्व ही पाण्डवों का पता लग जाने के लिए प्रेरित किया है। भीष्म ने विराट के साथ अपने मित्री बैर को स्वीकार किया है। और उन्होंने कौरवों को समझाया कि यह में विराट की अनुपस्थिति में गोग्रहण का बहाना बनाया जाय। महाभारत में ये त्रिगर्तों के राजा के एक विवाह संधि की सलाह पर विदित है जो कीचक की मृत्यु के बाद विराट के सेनापति द्वारा किये गये सारे अपमानों के बदले उसके दर्प को चूर कर डालना चाहता है।

इस प्रकार महाभारत की प्रसिद्ध एवं विस्तृत कथा को विशेष रूप से गोग्रहण एवं अभिमन्यु के पाणिग्रहण की पृष्ठभूमि में कवि ने काफी स्वेच्छाचारिता दिखायी है। इसका एक मात्र कारण है, इस नाटक को वीररस प्रधान सुखान्त नाटक बनाने की दिशा देना। इस नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं है। बृहन्नला के रूप में अर्जुन ही एक नारी पात्र है। द्वितीय अंक के मध्य में रङ्गमञ्च पर गाय के चरवाहों की भीड़ अनावश्यक लगती है।

म० म० गणपति शास्त्री और प्रो० कीथ इस नाटक को समवकार मानते हैं। किन्तु 'दशरूपक' में दी गई समवकार की परिभाषा ( ३।, ६२-६७ ) के अनुसार यह ठीक ढंग से बैठ नहीं पाता है। क्योंकि, यह रूपक न तो ईश्वर से सम्बन्ध रखता है और न दानवों से ही सम्बन्धित है। शृङ्गार रस की तो इसमें लेशमात्र भी चर्चा नहीं है। ऐसा कहा गया है कि समवकार के नायक ( वीर ) संख्या में बारह होने चाहिए। तत्तुल्सारतः नाटक के मांगलिक श्लोक में कवि ने बारह चरित्रों की सूची अवश्य प्रस्तुत कर दी है। पर, कवि की मेधा युद्ध का परोक्ष चित्रण करने की युक्ति में स्थिर है। यह नाटक भयानक स्थिति में जो पाठकों या दर्शकों के आनन्द का मुख्य स्रोत है, छपवेश से देखा जा सकता है।

सम्पूर्ण नाटक में धर्म-परायणता एवं विनीत भाव का ही वातावरण है किन्तु, सारे चरित्र कठोर ब्राह्मण धर्म से जकड़े प्रतीत होते हैं। डॉ० विण्टर-

# पात्र-परिचय

| | | |
|---|---|---|
| १. दुर्योधन | ... | कुरुदेश का राजा |
| २. भीष्म | ... | कौरवों तथा पाण्डवों के पितामह |
| ३. द्रोण | ... | अस्त्रविद्याचार्य |
| ४. कर्ण | ... | अङ्गदेशाधीश तथा दुर्योधन के मित्र |
| ५. शकुनि | ... | दुर्योधन के मामा तथा गान्धारराज |
| ६. वृद्धगोपालक | ... | विराट के घोषपाल |
| ७. गोमित्रक | ... | चरवाहा |
| ८. भगवान | ... | अज्ञातवासी युधिष्ठिर |
| ९. भीमसेन | ... | विराट के पाकाध्यक्ष |
| १०. बृहन्नला | ... | नपुंसकरूप में अर्जुन |
| ११. राजा | ... | विराट, मत्स्यदेशाधीश |
| १२. उत्तर | ... | विराट के पुत्र |
| १३. अभिमन्यु | ... | अर्जुन के पुत्र |
| १४. सूत | ... | सारथि |
| १५. काञ्चुकीय | ... | विराट के कञ्चुकी |
| १६. भट | ... | राजभृत्य |

॥ श्री ॥

# पञ्चरात्रम्

## 'विमला' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

### प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

सूत्रधार —

द्रोणः पृथिव्यर्जुनभीमदूतो यः कर्णधारः शकुनीश्वरस्य ।

---

कर्णतालपवनैरलीन् यथा वारयन्निखिलविघ्नडम्बरम् ।
तन्निराकृतिगजास्यविग्रह चिन्तये किमपि मङ्गलमह ॥
यत्कृपातरणिमाश्रयात् गोष्पदी भवति वाङ्मयाम्बुधि ।
सा समस्तसुरवृन्दवन्दिता भारती भवतु भूरिभूतये ॥
पञ्चरात्ररचना समुज्ज्वला भासवर्णितगुणा यथामति ।
व्याख्यया विमलया मयाञ्चिता मोददास्तु सतत शुभात्मनाम् ॥

अथ गुम्फितयशास्तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासः पञ्चरात्राभिधानं समवकारसंज्ञकं रूपकविशेषं चिकीर्षुः तदारम्भे प्रयोगसम्यङ्निष्पत्तिपरिपन्थिदुरितप्रशमोपायमिमं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गमङ्गलश्लोकपाठम् उपक्रम्यमाणप्रयोगस्य कथावस्त्वंशस्य निवेदनं च प्रयोगनिर्वाहधुरन्धरेण सूत्रधारेण रङ्गे

---

( नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश )

सूत्रधार— जो सघन सतेज भीषण गर्जनयुत श्यामवर्ण मेघ के सदृश हैं, जिन्होंने राज्य प्राप्त कराने के निमित्त भीम तथा अर्जुन का दूतत्व स्वीकार किया

दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिरः स पायाद् विराडुत्तरगोऽभिमन्युः ॥१॥

( परिक्रम्य ) एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि

---

प्रथममसमाचरणीयम् । पद्यस्तस्य प्रवेश तावदाह—नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार ' इति । नान्दी आनक । सा च उपलक्षण वाद्यान्तराणामपि तस्याऽन्ते प्रयोगपूर्वाङ्गभूते आनकादि वाद्यवादनेऽवसित इत्यर्थं । अथवा—नन्दिरानन्द इय नान्दी गीतवाद्यवादनक्रिया तस्या अन्ते सा हि प्रयोगारम्भे देवतापरिषदा नन्दार्थानुष्ठानुष्ठीयते । तत तदनन्तर नान्दीपरिसमाप्ति अव्यवहितोत्तरकाल इत्यर्थ । 'नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधार ' इत्युक्तौ नान्द्यवसानसूत्रधारप्रवेश क्रिययो पौर्वापर्यमात्र प्रतीयते, न तु क्रियान्तराव्यवधानमपि, तयो क्रियान्तर व्यवधानेऽपि पौर्वापर्यव्यवहारा हानात् । तेन नान्द्यवसानक्रियान तरमेव प्रविष्ट सूत्रधारो मङ्गलमाचरति—**द्रोण** इति ।

द्रोण मेघस्तत्सदृशकृष्णवर्णं, पृथिव्यजुनभीमदूत पृथिव्यै स्वाश्रभूतायै भुवे अजुनभीमयो पाण्डुनन्दनदूत प्रेष्यभाव गत शकुनीश्वरस्य विहगराजस्य विनतासुतस्य च कर्णधार नियन्त्रक, दुर्योधन दु खेन योध्यत इति दु ख दु खकर येन तादृशो वाऽतिबलतया पराजेतुमशक्य इत्यर्थ । भीष्मयुधिष्ठिर भीष्मो अरिभयानक युद्धे रणे स्थिरश्च उत्तरग प्रशस्तपथगामी अनिन्द्याचार अभिमन्यु मन्युम् यज्ञम् अभिगत आराधनीय इति यावत् एतादृश विराट् आदिपुरुषो भगवान् श्रीकृष्ण पायात् प्रेक्षकान् प्रयोक्तृश्च मङ्गलेन योजयित्वर्थं । अथ चात्र द्रोण अर्जुन-भीम-कर्ण-शकुनी-दुर्योधन-भीष्म युधिष्ठिर-विराट् उत्तरा अभिमन्व्याख्यातानि नाटकीयानि पात्राणि मुद्रालङ्कारभङ्ग्या सूचितानि । नान्दी मङ्गलमाधारण द्वादशपदत्वमप्यत्र बोधव्यम् ॥ १ ॥

( परिक्रम्य भ्रमण कृत्वा ) एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण, आर्यमिश्रान् समादरणीयान् विज्ञापयामि निवेदयामि, अये, इति अव्ययम्, खलु निश्चयेन मयि

---

जिनका पक्षिराज गरुड पर नियन्त्र है तथा जो युद्धभूमि मे कठोर योद्धा है, जो निश्चय के धनी और भयङ्कर हैं, हमेशा जिनका कृत्य उत्कृष्ट है तथा त्याग के लिए जो सदैव प्रस्तुत हैं ऐसे आदि पुरुष श्रीकृष्ण हम सबो की रक्षा करें॥१॥

( घूमकर ) इस तरह मान्य आर्यों से निवेदन करता हूँ । अरे निवेदित

विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

( नेपथ्ये )

अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः ।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

सर्वैरन्तःपुरैः सार्धं प्रीत्या प्राप्तेषु राजसु ।
यशो दुर्योधनस्यैव कुरुराजस्य वर्तते ॥ २ ॥

---

सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे = स्वाभिमतबोधनाय प्रयुञ्जाने शब्दः ध्वनिः, इव यथा श्रूयते कर्णगोचरीभवति । अङ्ग = इति सम्बोधकमव्ययम्, पश्यामि अवलोकयामि ।

( नेपथ्ये रङ्गस्य पृष्ठ देशे )

अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य धृतराष्ट्रसुतस्य, यज्ञसमृद्धिः यागसम्पन्नता,

सूत्रधारः—भवतु = यातु, विज्ञातम् = अवधारितम् ।

**सर्वैरिति**—एष दृश्यमानविभवः, कुरुराजस्य दुर्योधनस्य धृतराष्ट्रसुतस्य यशः मख वर्तते जायते, यत्र यज्ञप्रेम्णा दुर्योधनप्रेम्णा वा, सर्वैः सकलैः अन्तःपुरैः नृपवधूजनैः, सार्धम् सह राजसु भवत्सु भूपतिषु, प्रीत्या आनन्देन, प्राप्तेषु आगतेषु सत्सु । अयं हि कुरुराजस्य दुर्योधनस्य यशो वर्तते इति मया शब्द कारण ज्ञातमिति भावः । अस्मिन् श्लोके अनुष्टुप् छन्दः ॥ २ ॥

---

करने के लिए मेरे प्रस्तुत होते ही, यह शब्द कैसे सुनाई पड रहे हैं ? अच्छा, देखता हूँ ।

( नेपथ्य में )

आश्चर्य, महाराज दुर्योधन का यज्ञ वैभव भी विलक्षण है ।

**सूत्रधार**—अच्छा, मैं समझ गया ।

यह महाराज दुर्योधन का यज्ञ जो हो रहा है, इसमें स्नेहवश अनेक राजन्य महाराज के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने हेतु अपने रनिवास के साथ एकत्र हुए हैं ॥ २ ॥

( निष्क्रान्तः )

स्थापना ।

( ततः प्रविशन्ति ब्राह्मणास्त्रयः )

सर्वे—अहो कुरुराजस्य यज्ञसमृद्धिः !

---

( निष्क्रान्तः = बहिर्गतः )

**स्थापना**—प्रस्तावना स्थाप्यते उपस्थाप्यते कथावस्तु अनयेति व्युत्पत्तिः । भासकृतनाटकेषु स्थापनाशब्दप्रयोग एव सर्वत्रैतदर्थकृतः । कालिदासादिरचित-नाटकेषु इयमेव प्रस्तावना आमुखमित्यादिनाम्ना व्यवह्रियते । स्थापनाशब्दप्रयोगो हि भासस्य प्राक्तनतां सूचयति । तल्लक्षणं हि 'सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।' प्रस्तावना इति च प्रस्तावनाभेदेषु चेह प्रयोगातिशयो नामभेदः । 'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते, तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।' इति वचनात् । अत्र सूत्रधार-मुखेन पात्रप्रवेशात् प्रयोगातिशयः । यद्यपि नाटकनियमानुसारं स्थापनायां कवि-नाटकयोः नामकीर्तनमावश्यकम्—'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत् । प्रस्तावनां ततः कुर्याद् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ।' ( ना० शा० ६ ) इत्यभियुक्तोक्तेः, तथापि महाकविना नियम एव उपेक्षितः । अत्रोच्यते—प्रस्तावनायां कविकाव्य-कीर्तनसमुदाचारस्तद्विदस्य पुराणमहाकवेः कालेनावर्तत । पश्चात् कालेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्तनसमुदाचारप्रणयं लक्ष्येषु भूयिष्ठमुपलभ्य तदनु-सारिलक्षणं लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोष इति ।

( ततः = तत्पश्चात्, प्रविशन्ति रङ्गभूमिमागच्छन्ति, ब्राह्मणास्त्रयः त्रिसंख्यकाः विप्राः )

**सर्वे**—अहो आश्चर्यम्, कुरुराजस्य दुर्योधनस्य, यज्ञसमृद्धिः मखवैभवम् ।

---

( प्रस्थान )

( उसके बाद तीन ब्राह्मणों का प्रवेश )

**सभी**—अहा ! कितना सुन्दर है महाराज का यागवैभव ।

प्रथम —इह हि,

> द्विजोच्छिष्टैरन्नैः प्रकुसुमितकाशा इव दिशो
> हविर्धूमैः सर्वे हृतकुसुमगन्धास्तरुगणाः ।
> मृगैस्तुल्या व्याघ्रा वधनिभृतसिंहाश्च गिरयो
> नृपे दीक्षां प्राप्ते जगदपि समं दीक्षितमिव ॥ ३ ॥

द्वितीय —सम्यग् भवानाह ।

---

प्रथम —इह अस्मिन् स्थाने, हि यत —

द्विजोच्छिष्टैरिति— द्विजोच्छिष्टैः द्वाभ्याम् जन्म-संस्काराभ्याम् जायन्ते इति द्विजास्तेषामुच्छिष्टैः भुक्तावशिष्टैः, अन्नैः = तण्डुलादिभिः, दिशः दिशति ददात्यवकाशमिति दिश् + क्विप्, आशाः प्रकुसुमितकाशाः विकसितकाशकुसुमाः, इव यथा, हविर्धूमैः हूयमानजनितधूमैः, सर्वे सकलाः, तरुगणाः पादपाः, हृतकुसुमगन्धाः अपहृतसुमनोगन्धाः इव जाताः इति शेषः । व्याघ्राः शार्दूलाः, मृगैस्तुल्याः हरिणवत् अहिंसकस्वभावाः जाताः इत्यर्थः, गिरयः पर्वताश्च, वधनिभृतसिंहाः अहिंसककेसरिणः जाताः इति शेषः । नृपे भूपे, दीक्षां प्राप्ते यज्ञावसरे तेन समम् सहैव जगदपि निखिलविश्वोऽपि, दीक्षितम् यज्ञार्थकृतसङ्कल्पमिव जातम् । अस्मिन् श्लोके हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कारः, शिखरिणीवृत्तञ्च, तल्लक्षणं यथा— "रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी इति ॥ ३ ॥

द्वितीय.— सम्यक् युक्तम्, आह कथयति, भवान् त्वम् इति ।

---

पहला— इसमें, ब्राह्मणों द्वारा खाकर छोड़े गये बिखरे अवशेषों के कारण ऐसा लगता है मानो सभी ओर काश के फूल खिल उठे हों, अनेक पेड़ यज्ञ के धुँआ से धूमिल होकर अपने फूलों की सुगन्ध खो बैठे हैं, बाघ हरिण की तरह (पालतू) हो गये हैं, पर्वत की कन्दराओं में रहने वाले सिंहों ने हत्या करना बन्द कर दिया है, ऐसा लगता है कि महाराज के साथ सारा संसार ही यज्ञदीक्षित हो रहा है ॥ ३ ॥

दूसरा— आपने ठीक ही कहा ।

तृप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखं तृप्ता द्विजेन्द्रा घनै-
स्तृप्ताः पक्षिगणाश्च गोगणयुतास्ते ते नराः सर्वशः ।
हृष्टं सम्प्रति सर्वतो जगदिदं गर्जन्नृपे सद्गुणै-
रेवं लोकमुदारुरोह सकलं देवालयं तद् गुणैः ॥ ४ ॥

तृतीयः—इमेऽत्रभवन्तो द्विजातयः,
राज्ञां वेष्टनपट्टघृष्टचरणाः श्लाघ्यप्रभूतश्रवा
वार्द्धक्येऽप्यभिवर्धमाननियमाः स्वाध्यायशूरैर्मुखैः ।

---

**तृप्तोग्निरिति**—अमराणाम् सुराणाम् उत्तमाः श्रेष्ठाः अमरोत्तमास्तेषाम् मुखम् आननम् अग्नि पावकः, हविषा हव्यद्रव्यगणेन तृप्त संतुष्ट, द्विजेन्द्रा. विप्राः, घनैः मघैः, तृप्ता. सन्तुष्टा', गोगणयुता गोभि' सहिता ते ते पक्षिगणा खगा', यथाभिलषिताहारलाभेन सर्वश सर्वात्मना तृप्ता. सन्तुष्टा', ते ते सर्वे सकला नरा लोका अपि कल्याणकामनया तृप्ता, सद्गुणैः प्रशस्तगुणसमूहै. नृपे राजनि, गर्जत् तारस्वरेण प्रतिपादयत्, इदम् एव, जगत् भुवनम् सम्प्रति अधुना, सर्वतः सर्वतोभावेन हृष्टम् प्रसन्नम्, तत् देवालयम् स्वर्गम्, लोकम् मर्त्यलोकम्, सकलम् सम्पूर्णम्. एवम् अनेन प्रकारेण, उदारुरोह अतिक्रान्तवद् । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् तल्लक्षणम् यथा—'सूर्याश्वैर्मसजान्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥ इति ॥ ४ ॥

**तृतीयः**—इमे सम्मुखे उपस्थिता., अत्रभवन्त श्लाघनीया', द्विजातय. विप्रा —

**राज्ञामिति**—राज्ञाम् भूभृताम्, वेष्टनपट्टेन शिरस्केण घृष्टचरणा प्रणामपरिपाटीभि. स्पृष्टपादा, श्लाघ्य. पूज्यः प्रभूत. पर्याप्त श्रव. शास्त्रश्रवणम् येषा

---

हवि से देवताओं के मुख अग्निदेव संतुष्ट हो गये हैं, उत्कृष्ट ब्राह्मण सम्पत्ति से संतुष्ट हैं। पशुसमूह के साथ पक्षिगण भी प्रसन्न हो रहे है, सभी मानव भी प्रसन्न हैं इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रसन्न दीख रहा है, महाराज के सद्गुणो से यह मर्त्यलोक स्वर्ग का भी अतिक्रमण कर रहा है।

**तीसरा** ये हैं वे पूजनीय ब्राह्मण।

जिनके चरण नृपतियों की पगडी के अनवरत स्पर्श से घिस गये है, जिनके

त्रिप्रा यान्ति वय प्रकर्षशिथिला यष्टित्रिपादक्रमा
 शिष्यस्कन्धनिवेशिताञ्चितकरा जीर्णा गजेन्द्रा इव ॥ ५ ॥

सर्वे—भो भो माणवका ! भो भो माणवका !! अनवसितउवभृथस्नान न खलु तावदग्निरुत्सृष्टव्यो भवद्भि ।

प्रथम —हा धिग्, दर्शितमेव तावद् वटुचापल्यम् ।

---

तै तयोक्ता, यार्धक्येऽपि वृद्धावस्थायामपि, अभिवर्धमाननियमा रात्रिं दिवमुपचीयमानव्रतादिविषया, स्वाध्यायपूर्तै शास्त्राध्ययनतत्परै मुखं आनन, वय-प्रकर्षशिथिला वृद्धत्वात् श्लथशरीरा, यष्टित्रिपादक्रमा दण्डावलम्बनन पादत्रयशालिन, शिष्यस्य अन्तवासिन स्कन्धे अंसदेशे, निवेशित आरोपित अञ्चित समादृत निजकर हस्त, यै तादृशा, जीर्णा अतिवृद्धा, गजेन्द्रा करिण, इव यथा, विप्रा ब्राह्मणा, यान्ति गच्छन्ति। अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कार, शार्दूलविक्रीडित छन्द ॥ ५ ॥

**सर्वे**—भो भो माणवका हे ह वटव, अनवसित असमाप्ते, अवभृथस्नाने यज्ञान्तवाधवे मास्कारिकमार्जने, न नहि, खलु निश्चयेन, तावदित्यवधारणे, अग्नि होमकुण्डस्य वह्नि, उत्सृष्टव्य इतस्तत क्षेप्तव्य, भवद्भि श्रीमद्भिरिति भाव ।

**प्रथम**—हा धिगिति कुत्सायाम्, दर्शितम् प्रकटीकृतम्, वटुचापल्यम् शिशुसुलभचाञ्चल्यम् ।

---

ज्ञान विस्तृत और प्रशसनीय है बुढापे मे भी जिनके व्रतादिनियम कम होने का अपेक्षा बढ ही रहे है, जिनके होठो पर सदैव वैदिक मन्त्रो का ही उच्चारण होता रहता है जिनके शरीर वृद्धावस्था के कारण शिथिल है और जो दण्ड के सहारे अपने शिष्यों के कधो पर हाथ रखकर वृद्ध गजेन्द्र की तरह धीरे धीरे जा रहे हैं॥ ५ ॥

**सभी ब्राह्मण**—हे ब्रह्मचारि बालकगण, यज्ञान्तस्नान के समाप्त न होने तक आप लोग यज्ञशाला से अग्नि को बाहर न निकालें।

पहला—छि छि इन लोगो ने अन्तत लडकपन कर ही डाला।

एषा भो ! दीप्तयूपा कनकमयभुजेवाभाति वसुधा
चैत्याग्निर्लौकिकाग्निं द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते।
नात्यर्थं प्लुष्टपृष्ठा हरितकुशतया वेदी परिवृता
प्राग्वंशं चैष धूमो गज इव नलिनीं फुल्लां प्रविशति ॥ ६ ॥

द्वितीयः—एवमेतद्,
अग्निरग्निभयादेष भीतैर्निर्वास्यते द्विजैः।

---

व्याख्या—दीप्तयूपा दीप्तः प्रज्वलितः यूपः यज्ञदारु यस्याः सा तादृशी वसुधा धरणी, कनकमयभुजा काञ्चननिर्मितभुजशालिनी, इव यथा, आभाति शोभते, यूपानां अग्निसम्पर्कवशात् प्रज्ज्वलतां बाहुवत् कनकवर्णतया चेयमुत्प्रेक्षा। चैत्याग्निः यज्ञवेदीगतो वह्निः, लौकिकाग्निम् सामान्यजनैः प्रज्ज्वालितं संस्काराभावात् लौकिकाग्निम्, द्विजः विप्रः, वृषलम् शूद्रम्, इव यथा, पार्श्वे निकटे, न नहि, सहते मृष्यति, हरितकुशतया अथ. उत्पादितदर्भसमूहेन, परिवृता आच्छादिता, वेदी यज्ञभूमिः, नात्यर्थम् नाधिकम्, प्लुष्टपृष्ठा दग्धतलभूमिः, यथा च फुल्लां प्रस्फुटिताम्, नलिनीम् कमलिनीम्, गजः हस्ती विशति तथैव एष पुरोवर्तमानः, धूमः, प्राग्वंशम् बहिर्वेदीम्, प्रविशति प्रवेशं करोतीत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः सुवदनाछन्दश्च तद्यथा—सुवदना भ्रौम्नौ य्मौ लगावृषिस्वरर्तवः।

द्वितीयः—एवम् भवदुक्तम्, एवम् सत्यमप्येति,

व्याख्या—एषः पुरोवर्तिनोऽयम्, अग्निः होमवह्निः, अग्निभयात्, सामान्यवह्निप्रकोपभयात्, भीतैः सन्त्रस्तैः, द्विजैः विप्रैः, निर्वास्यते दूरमपसार्यते,

---

यज्ञ मण्डप के खम्भों के जल उठने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो धरती की सुनहली बाँहें बाहर निकल आई हैं, यज्ञ कुण्ड की आग सामान्य आग को अपने पास उसी तरह फटकने नहीं दे रही है जैसे ब्राह्मण शूद्र को पास नहीं आने देते। हरे कुशों से आच्छादित होने के कारण यद्यपि यज्ञ की वेदी अधिक नहीं जल सकी है, फिर भी ये धूँए यज्ञशाला में उसी प्रकार प्रवेश कर रहे हैं जैसे कोई हाथी विकसित कमलवाले सरोवर में प्रवेश कर रहा हो ॥६॥

दूसरा—ऐसा ही है।

डरे हुए ब्राह्मण सामान्य आग के डर से यज्ञाग्नि को उसी प्रकार यज्ञ-

कुले व्युत्क्रान्तचारित्रे ज्ञातिर्ज्ञातिभयादिव ॥ ७ ॥

तृतीय —इदमपरं पश्यता भवन्तौ,

शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानापि वारिणा।
नारीवोपरतापत्या वात्स्नेहेन दह्यते ॥ ८ ॥

प्रथम —सम्यग् भवानाह,

---

तत्र दृष्टान्तमाह व्युत्क्रान्तचारित्रे उल्लङ्घितसदाचारे, कुले वंशे, ज्ञातिभयात् दुष्टदायादभयात्, ज्ञाति बान्धव. इव यथेति। यथा स्वजनेषु दुष्टभाव गतेषु तत्सम्पर्कपरिहारेच्छया ज्ञातिविशेषोऽन्यत्र निर्वास्यते तथैवाय ह्याग्निलौकिकाग्निदौर्जन्यसम्पर्कापनिनीषया बहिर्नीयत इत्यर्थः। अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कार, अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ ७ ॥

तृतीयः—इयम् एषा, अपरम् अन्यत्, पश्यताम् दृश्यताम्, भवन्तौ श्रीमन्तौविति।

व्याख्या—घृतापूर्णा आज्येन भृता, शकटी शकटिका यानम् वा, उपरतापत्या मृतवत्सा, नारी स्त्री, इव यथा वारिणा सलिलेन, सिच्यमानाऽपि सेचनक्रियासम्पन्नापि, वात्स्नेहेन उपरतापत्यप्रेम्णा, दह्यते ज्वलति ॥ ८ ॥

प्रथमः—सम्यक् सत्यम्, भवान् त्वम्, आह।

---

शाला से हटा रहे हैं जैसे एक चरित्रहीन या दुराचारी के भय से कोई अपने आत्मीय को अलग हटा लेते हैं ॥ ७ ॥

तीसरा—और आप लोग यह दूसरा भी तो देखिए—

पानी का छिड़काव होने के बावजूद यज्ञार्थ घी ढोने वाली यह गाड़ी कुछ अवशिष्ट घी के कारण अभी भी उसी प्रकार जल रही है जैसे कोई मृतवत्सा नारी आँसू से तर आँखों के रहने पर भी भीतर ही भीतर मृतबालक के स्नेह से जलती रहती है ॥ ८ ॥

पहला—आपने ठीक ही कहा—

एता चक्रधरस्य धर्मशकटी दग्धु समभ्युद्यतो
दर्भे शुष्यति नीलशाद्वलतया वह्नि शनैर्वामन ।
वातेनाकुलित शिखापरिगतश्चक्र क्रमेणागतो
नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपु सूर्यायते पावक ॥ ९ ॥

द्वितीय — इदमपर पश्यता भवन्तौ,
वल्मीकमूलाद् दहनेन भीतास्तत्कोटरै पञ्च सम भुजङ्गा ।

---

**व्याख्या**—वह्नि अग्नि, नील श्यामवर्ण, शाद्वल शादा सन्त्यत्र, वलच्, तृणयुक्त तद्भावस्तया, वामन खर्व, दर्भे कुशे, शनै मन्द मन्द शुष्यति शुष्को भवति, चक्रधरस्य नृपदुर्योधनस्य, एताम्, पुरोदृश्यमानाम्, धर्मशकटीम् हव्यवाहकम् यानम्, दग्धुम् होतुम्, समभ्युद्यत उद्यत सन्, वातेन तात्कालिक वायुना, आकुलित आन्दोलित, शिखापरिगत सर्वतोभावेन ज्वालाजालव्याप्त, क्रमेण क्रमश, चक्रम् यानाङ्गम् चक्रभूतमरसञ्चकम्, आगत प्राप्त सन्, पावक ज्वलन, नेमीमण्डलमण्डलीकृतवपु नेमीमण्डले मण्डलीकृतशरीर चक्राकारण व्याप्नुवन् पावक अग्नि, सूर्यायते सूर्य दिवाकर तद्वत् आचरति अथात् गोल वपुर्भवतीति शेष । अस्मिन्श्लोके उपमालङ्कार शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥९॥

**द्वितीय** —एवम् एतत्, अपरम् अन्यत्, पश्यताम्, भवन्तौ श्रीमन्तौ—

**व्याख्या**—पञ्च=बाणसङ्ख्यका, भुजङ्गा सर्पा, दहनेन अग्निप्रकोपोत्पन्न दाहेन हेतुना, भीता = सन्त्रस्ता सन्त, वल्मीकमूलात् = वल्मीकाधोभागात्, तत्कोटरै, तस्य वृक्षस्य कोटरै, समम् निर्गता बहिरागता, यथा विपन्नस्य मृतस्य

---

यह आग पहले हरित दूबो से आच्छादित भूमि पर वामन रूप मे थी, किन्तु जैसे-जैसे घास सूखती जाती है यह आग भी फैलती जा रही है। बढते-बढते अब यह महाराज की हव्यवाही गाडी तक पहुँच चुकी है। तीव्र वायु की प्रेरणा से अब यह पहिये को छू रही है। रथचक्र के किनारे किनारे आग पकड लेने के कारण इनकी आकृति अब सूर्य की तरह गोल हो रही है॥ ९ ॥

**दूसरा**—आप इधर भी तो देखें—

सामने पेड के तने के खोखले भाग के नीचे बाबी से आग मे जलजाने के डर से पाच साँप ठीक उसी तरह एक साथ निकल रहे है जैसे मृतमानव की

सम विपन्नस्य नरस्य देहाद् विनि स्मृताः पञ्च यथेन्द्रियाणि ॥१०॥
तृतीय.—इदमपरं पश्यतां भवन्तो,

दह्यमानस्य वृक्षस्य मानिलेन मखाग्निना ।
कोटरान्तरदेहस्थाः खगा प्राणा इवोद्गता ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवमेतत्,

शुष्केणैकेन वृक्षेण वनं पुष्पितपादपम् ।
कुलं चारित्रहीनेन पुरुषेणेव दह्यते ॥ १२ ॥

---

नरस्य पुरुषस्य, देहात् शरीरात्, विनि सृता. बहिर्निर्गता, पञ्चेन्द्रियाणि प्राणादिपञ्चवायव, यथा इव, प्रतीयन्ते । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कार ॥ १० ॥

तृतीय —इदम् पुरःदृश्यमानम्, अपरम् अन्यत्, भवन्तो युवाम्, पश्यताम्

व्याख्या—मानिलेन पवनयुतेन, मखाग्निना यज्ञवह्निना, दह्यमानस्य, ज्वलितस्य, वृक्षस्य तरो, कोटरान्तरदेहस्था, कोटरान्तरभिन्नदेहस्थाः शरीरस्था, खगा' पक्षिण', प्राणा प्राणवायव, इव यथा उद्गता बहिर्निर्गता ॥ ११ ॥

प्रथमः—एवम् इत्थम्, एतत् अयम्,

व्याख्या—पुष्पितपादपम् विकसितसकलकुसुमतरुवनम् अरण्यम् उद्यानम्वा, एकेन अद्वितीयेन, शुष्केण, रसरहितेन, वृक्षेण पादपेन, चरित्रहीनेन दुश्चरित्रेण, पुरुषेण व्यक्तिविशेषेण, कुलम्, वंश वशम्, इव यथा, दह्यते । उपमालङ्कार ॥ १२ ॥

---

देह से प्राणादिक पञ्चेन्द्रियाँ एक साथ निकल जाती है ॥ १० ॥

तीसरा—आप लोग यह भी देखें—

वायुप्रेरित यज्ञाग्नि से जलते वाले तरुकोटरो से चिड़ियाँ निकलकर उसी प्रकार उड़ रही है, जैसे मृत्यु के समय मनुष्य की देह से प्राण निकल रहे हों ॥ ११ ॥

पहला—ठीक है,

जैसे एक चरित्रहीन व्यक्ति अपने कुकृत्य से सम्पूर्ण कुल को कलंकित कर देता है, उसी प्रकार जगल का एक सूखावृक्ष फल फूल से भरे इस हरे भरे जगल को जला रहा है ।

तृतीय:—हन्त सत्पुरुषरोष इव प्रशान्तो भगवान् हुताशनः ।
एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।
दानशक्तिरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥ १७ ॥

प्रथम:—
स्रुग्भाण्डमरणीं दर्भानुपभुङ्क्ते हुताशनः ।
व्यसनित्वान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः ॥ १८ ॥

---

इव यथा पतति धरण्यामापतति । परशुरिवेत्युपमालङ्कार, शिखरिणी वृत्तञ्चेति ॥ १६ ॥

**तृतीयः**—हन्त, इति हर्षे, सत्पुरुषरोषः सुपुरुषस्यक्रोधः इव यथा, प्रशान्तः क्षीणज्वालोऽभूत्, भगवान्, श्रीमान्, हुताशनः वह्निः इति ।

**व्याख्या**—अग्नेः याज्ञिकहुताशनस्य, एतत् पुरोवर्त्तिनम्, बलम् सामर्थ्यम्, इन्धनानाम्, दहनाय समर्पितकाष्ठखण्डानाम्, परिक्षयात् समाप्तेः, आर्यस्य श्रेष्ठजनस्य, विभवानाम् ऐश्वर्याणाम् परिक्षयात् विनष्टात्, दानशक्तिः दानसामर्थ्यम्, इव यथा, नष्टम् विनष्टमिव । यथा कस्यापि सुपुरुषस्य दानशक्तिः विनष्टेषु विभवेषु समाप्तिं गच्छति, तेनैव प्रकारेणाग्नेः दाहसामर्थ्यरूपविभवपरिक्षयात् अवनतिम् जातमित्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ १७ ॥

**व्याख्या**—व्यसनित्वात् आसवपानाक्षक्रीडादिषु प्रवृत्तत्वात् क्षीणः शक्तिहीनः, नरः जनः, आत्मनः स्वस्य, परिच्छदम् वस्त्राभूषणम् इव यथा, हुताशनः यज्ञाग्निः अल्पज्वालः सन्, स्रुक् दारुनिर्मितहोमसाधनम्, भाण्डम् घृतपात्रम्, अरणीम् मन्थनकाष्ठम् च सकलमपि होमपरिकरं दर्भान् कुशान् च उपभुङ्क्ते भक्षण-

---

शिव के परशु की तरह गिर रहा है ॥ १६ ॥

**तीसरा**—अहा, भद्र पुरुष के क्रोध की तरह अग्निदेव शान्त हो गये ।

सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर जैसे किसी दानी की दानशक्ति नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार यज्ञीय सामग्रियों के जल जाने पर अग्नि देव का भी बल समाप्त हो रहा है ॥ १७ ॥

**पहला**—जैसे कोई जुआरी अपने दुर्व्यसन के कारण निर्धन होकर अपना वस्त्राभूषण भी बेचकर खा जाता है, उसी तरह अग्निदेव को भी जब जलाने के

द्वितीय —

अवनतविटपो नदीपलाशः पवनवशाच्चलितैश्चपर्णहस्तैः ।

दवदहनविपन्नजीवितानामुदकमिवैष करोति पादपानाम् ॥ १६ ॥

तृतीय —तदागम्यताम् । वयमपि तावदुपस्पृशाम ।

उभौ—बाढम् ।

( सर्वे उपस्पृश्य )

प्रथम —अय ! अयमननवता कुरुराजो दुर्योधनो भीष्मद्रोणपुरःसरमवैराज-

ङ्करोतीत्यर्थः । यथादुर्व्यसनी पुरुषः समासविभवमन्तं निजवस्त्राभूषणादिकमपि उन्मुञ्चते तद्वदेवायम् होमवह्नि: स्नुग्भाण्डादिसमादीन् हाममावनाभ्युपमुक्तः ॥ उपमालङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्च ॥ १८ ॥

व्याख्या—अवनतविटपः अधोनतवृक्षः, पवनवशात् वायुवेगात् चलितैः चपर्णहस्तैः चञ्चलीभूतैःपत्रकरैः, एषः असौ, नदीपलाशः सरित्तटगतपलाशः, दवदहनविपन्नजीवितानाम् वनाग्निगतासूनाम् पादपानाम् वृक्षाणाम् उदकम् प्रेतोदकदानम् इव यथा करोति विदधाति ॥ १९ ॥

तृतीय —तदा तर्हि, आगम्यताम् इहागच्छ । वयमपि तावदित्यवधारणे, उपस्पृशाम आचमनं कुर्मः ।

उभौ—बाढम्, स्वीकृतम्, तव वचनमित्याशयः ।

( सर्वे सकला जना उपस्पृश्य आचम्य )

प्रथम.—अये इति हर्षे, अयम् एष, अननवता श्रीमता, कुरुराज कुरुदेशाधिपस्य सम्राट्, दुर्योधन धृतराष्ट्रसुत, भीष्मद्रोणपुरःसरमवैराजमण्डलेन

लिए कुछ शेष नहीं बचा तो सूक्, अरणी और कुशों का ही जला रह हैं।

दूसरा—नदी के किनारे पर खड़े पलाश पेड़ की झुकी डाली वायु वेग में पानी में हिल रही है, इसे देखने से लगता है मानो आग में झुलसकर मरने वाले अपने वृक्ष बन्धुओं को यह पत्ररूपी हाथ से जलाञ्जलि दे रहा हो ॥ १९ ॥

तीसरा—तो फिर आइए हमलोग भी आचमन कर लें।

दोनों—हाँ, ठीक ही तो है।

( सभी आचमन करके )

पहला—वाह, सम्राट् दुर्योधन पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं सम्पूर्ण

मण्डलेनाऽनुगम्यमान इत एवाभिवर्तते । इमे हि,

> यज्ञेन भोजय, मही जय विक्रमेण,
> रोष परित्यज, भव स्वजने दयावान् ।
> इत्येवमागतकथामधुरं ब्रुवन्त
> कुर्वन्ति पाण्डवपरिग्रहमेव पौरा ॥ २० ॥

तदागम्यताम् । वयमपि तावत् कुरुराज सम्भावयाम ।

उभौ—बाढम् ।

---

आचार्यपितामहप्रभृतिराजन्यकेन, अनुगम्यमान अनुसृत, इत एव अस्मिन्नेव स्थाने अभिवर्त्तते समागच्छति । इमे हि एते जना —

**दयाप्रा**—यज्ञेन मखेन, भोजय जनान् तर्पय, विक्रमेण पराक्रमेण, महीम्, सकला पृथिवीम्, जय विजयस्व, रोषम् कोपम्, परित्यज जहिहि स्वजन आत्मीयजने, दयावान्, कृपायुक्तो भव, इत्येवम् इत्थरूपेण, आगतकथामधुरम् स्वागतवचनरूप प्रियकथनम्, ब्रुवन्त कथयन्त, पौरा पुरवासिन जना, पाण्डवपरिग्रहम् युधिष्ठिरादिपाण्डवपक्षपातम्, एवेति निश्चयेन कुर्वन्ति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

तत् तस्मात्, आगम्यताम्, समागच्छ, वयम् दर्शका, अपि, तावदित्यवधारणे, कुरुराजम् दुर्योधनम्, सम्भावयाम समुचितसत्कारेणाप्रियामहे ।

**उभौ**—बाढम् स्वीकृतम् ।

---

राजमण्डल के साथ इधर ही तो आ रहे है । ये लोग—

यज्ञ के माध्यम से भोजन देकर प्राणियो को सन्तुष्ट करो, क्रोध छोडो स्वजनो पर कृपा करो, अपने पराक्रम से सम्पूर्ण धरती को जीतो-इस तरह समयानुकूल श्रुतिसुखद बातें लोग कह रहे है, जिससे पाण्डवो के प्रति उनका सम्मान अर्थात् पक्षपात ही प्रकट हो रहा है ॥ २० ॥

अत आइये, हमलोग भी महाराज दुर्योधन के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें ।

**दोनो**—बहुत अच्छा।

**सर्वे**—जयतु भवान् जयतु ।

( निष्क्रान्ता सर्वे )

विष्कम्भक ।

( तत प्रविशतो भीष्मद्रोणौ )

**द्रोण**—धर्ममालम्ब्यमानेन दुर्योधनेनाऽहमेवानुगृहीतो नाम । कुत,

अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोष ।
बाल ह्यपत्य गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातु ॥२१॥

---

**सर्वे**—जयतु भवान् जयतु सर्वतोभावेन श्रीमान् विजयताम् ।

( निष्क्रान्ता बहिरागता एव सकलाजना )

**विष्कम्भक**—तल्लक्षण दशरूपके—'वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथाशाना निदर्शक । सक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित इति ।'

( तत तत्पश्चात् प्रविशन प्रवेश कुरुत भीष्मद्रोणौ पितामहाचार्यौ )

**द्रोण**—धर्ममालम्ब्यमानेन धर्मस्याचरण क्रियमाणेन, दुर्योधनेन कुरुसम्राजा, अहम् आचार्यद्रोण, अनुगृहीत कृपान्वित, नाम इत्यव्यये । कुत कस्माद्धेतो—

**व्याख्या**—शिष्यदोष उपदेश्यजने उपस्थिते पापाचरणादिरूपोऽपराध बन्धून् स्वजनान्, अतीत्य अतिक्रम्य, मित्राणि सुहृदश्च, अवलङ्घ्य उल्लङ्घनम् कृत्वा, आचार्यम गुरुम आगच्छति निदधाति । शिष्यदोषेण गुरोरेव निन्दा भवति । बालन शिशुम, अपत्यम, सन्ततिम् गुरवे आचार्याय, प्रदातु समर्पयत, पितु जनकस्य मातु जनन्याश्च, अपराध दोष, न नहि, अस्ति भवति । यतोहि

---

**सभी**—महाराज की जय हो ।

( सबका प्रस्थान )

विष्कम्भक

( भीष्म तथा द्रोण का प्रवेश )

**द्रोण**—इस धर्म कार्य का अनुष्ठान करके वस्तुत दुर्योधन ने मेरा ही सम्मान बढाया है । क्योंकि—

शिष्यों के द्वारा किये गये अपराध गुरु के मत्थे ही मढा जाता है । इस दोष का हकदार न कोई बन्धुबान्धव होता है और न मित्र-मण्डली ही । माँ

शकुनि —सम्यगाह गङ्गोपस्पर्शनाद् धौतकल्मषाङ्गोऽङ्गराज ।

कर्ण —

इक्ष्वाकु-शर्याति-ययाति-राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाऽम्बरीषा ।
एते सकोशा पुरुषा सराष्ट्रा नष्टा शरीरै क्रतुभिर्धरन्ते ॥ २५ ॥

---

किञ्चित् सयोज्यम् प्रत्युत् तमर्थं केवलम् चापम् देयम्। यतो हि राजपुत्रा स्वबाहुबलेन धनिनो भविष्यन्ति अस्मिन् श्लोके शालिनीवृत्तम् ॥ २४ ॥

**शकुनि**—सम्यक् युक्तिसगतम्, आह कथयति, गङ्गोपस्पर्शनाद् गगाया कृतस्नानात्, धौतकल्मष प्रक्षालितपाप, अङ्ग शरीरम्, अङ्गराज अङ्गदेशाधिपति कर्ण,

**व्याख्या**—इक्ष्वाकु-शर्याति-ययाति राम-मान्धातृ-नाभाग-नृगाम्बरीषा एते उल्लिखिता इक्ष्वाकुप्रभृतय अष्टसख्यका नृपतय, सकोशा धनागरै सहिता, सराष्ट्रा आत्माधीनेन राज्येन सहिता, पुरुषा जना, शरीरै स्वदेहै, नष्टा विनाशम् गता, क्रतुभि यज्ञै, तु इत्यवधारणे, धरन्ते जीवन्तीति शेष। अयमाशय जीवा स्वकीये जीवने यादृश कर्ममाचरन्ति ते भाविनि काले तादृशमेव जीवनमपि लप्स्यन्ते। सन्ति कर्माण्येव जीवनघटकानि। जीवन सुत्तम सर्वविधतया सम्पुनतन्च कर्तुं सतत शुभान्येव कर्माणि कर्तव्यानि। यज्ञात् ऋते न ग्रह्य शरीरम् तस्माद्यज्ञे यत्नेन करणीय। यज्ञकर्ता जीवो विनश्वरे शरीरे नष्टे सति कीर्तिस्वरूपम् सच्छरीरमश्नुते। इक्ष्वाकुप्रभृतीनाम् कोशम् देशम् शरीरञ्च कालातिपाताद् गतमेव। केवलम् तेषा यश कामेनास्तिमरणभयमिति। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ २५ ॥

---

यह है कि वह सारा धन ब्राह्मणो को दानकर पुत्र के लिए चापमात्र छोड जाय ॥ २४ ॥

**शकुनि**—गङ्गा मे स्नान करने के कारण प्रक्षालित पापवाले अङ्गराज कर्ण ने ठीक ही कहा है।

**कर्ण**—महाराज इक्ष्वाकु, शर्याति, ययाति, भगवान् राम, मान्धाता नाभाग, नृग, तथा अम्बरीष प्रभृति सारे नृपतियो के धनागार एव राज्य इनका देह के साथ ही विनष्ट हो गये, केवल कीर्तिशरीर से वे अब भी जीवित है ॥२५॥

सर्वे—गान्धारीमात ! यज्ञसमाप्त्या दिष्ट्या भवान् वर्धते ।
दुर्योधन'—अनुगृहीतोऽस्मि । भो आचार्य ! अभिवादये ।
द्रोण —एह्येहि पुत्र ! अयमक्रम ।
दुर्योधनः—अथ कः क्रम ?
द्रोणः—किं न पश्यति भवान् ?

देवस्त मानुषीभूतमेष . तावन्नमस्यताम् ।

---

सर्वे—गान्धारीमातः, हे दुर्योधन, यज्ञसमाप्त्या यज्ञानुष्ठानम् प्रशस्यम् तव जातम्, दिष्ट्या सौभाग्येन, भवान् त्वम्, वर्धते सौभाग्यभाजनं भवसि ।

दुर्योधन.—अनुगृहीत कृपान्वितः अस्मि भवामि, भो आचार्य हे गुरुदेव, अभिवादये ।

द्रोणः—एह्येहि समागम्यताम् इत्यक्तिरत्यादरव्यञ्जनाय । अयम् एष', प्रणाम. नास्ति. अक्रमः न क्रमप्राप्तः । यतो हि भवपेक्षया प्रथम भीष्मः . प्रणम्यस्त-तोऽहमित्याशयः ।

दुर्योधनः—अथ इति प्रश्नारम्भे, कः एष प्रणामस्योचित. क्रमः किमिति दुर्योधनस्याशयः ।

द्रोणः—किमिति प्रश्ने, भवान् दुर्योधन., न नहि, पश्यति अवलोकयति ?

व्याख्या—एष. असौ भीष्मपितामहः, मानुषीभूतम् मनुष्यरूपेणा-वतीर्णम्, देवतम् देवमूर्तिम्, तावत् प्रथमम् नमस्यताम् प्रणम्यताम्, भीष्मम्

---

सभी—हे दुर्योधन, सौभाग्य से आप का यज्ञ सम्पन्न हो गया और आप अभ्युदय के भाजन बन रहे हैं।

दुर्योधन—आप की कृपा है गुरुदेव, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

द्रोण—आओ आओ वत्स, प्रणाम करने का यह क्रम तो ठीक नहीं है।

दुर्योधन—तो फिर उचित क्रम क्या होगा ?

द्रोण—क्या तुम देखते नहीं ?

मनुष्य रूप में अवतीर्ण देवगुरु अपने पितामह भीष्म को सर्वप्रथम प्रणाम करो। इन्हें छोड़कर तुमने जो पहले मुझे प्रणाम किया है तुम्हारे द्वारा

अहं नाचरणं मन्ये भीष्ममुत्क्राम्य वन्दितुम् ॥ २६ ॥

**भीष्मः**—मा मा भवानेवम् । बहुभिः कारणैरपकृष्टोऽहं भवतः । कुतः,

अहं हि मात्रा जनितो भवान् स्वयं ममायुधं वृत्तिरपह्नवस्तव ।
द्विजो भवान् क्षत्रियवंशजा वयं गुरुर्भवान् शिष्यमहत्तरा वयम् ॥ २७ ॥

---

श्रेष्ठजनम्, गङ्गापुत्रम् उत्क्रम्य परित्यज्य, वन्दितुम् अभिवादयितुम्, न नहि अहम् द्रोण', आचरणम् उचितव्यवहारम्, मन्ये जानामि युक्तमिति॥२६॥

**भीष्मः**—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्थम्, वक्तुमुचितम् । यतो हि बहुभिः अनेकैः कारणैः हेतुभि , अहम् भीष्म. भवत श्रीमत , अपकृष्ट हीनः अस्मि, कुतः कस्माद्धेतोः -

**व्याख्या**—अहम् भीष्मः, हि यत., मात्रा जनन्या, जनित' उत्पादित, भवान् त्वम् द्रोणाचार्यः, स्वयम् अर्थात् अयोनिजः, भरद्वाजमुनेः कलशादुत्पन्न-तया तस्यायोनिजत्वम् । मम भीष्मस्य, आयुधम् अस्त्रशस्त्रम्, वृत्ति. जीवनचर्या तव भवतस्तु, अपह्नव. सकलजन्तुस्नेह., भवान् त्वम्, द्विज ब्राह्मण , वयम् क्षत्रियवंशजा' राजकुलोत्पन्ना', भवान् द्रोण , गुरु' ब्राह्मणत्वेन जनानाम् गुरु, वयम् तु । शिष्यमहत्तरा' शिष्येषु ब्राह्मणानुशासनीयेषु क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु श्रेष्ठा इत्यर्थः । वंशस्थ वृत्तम् ॥ २७ ॥

अस्मिन् श्लोके भारतीयसंस्कृते. निदर्शनमस्ति । अस्या संस्कृतौ समाजस्य मंगलाय वर्णव्यवस्था कल्पितास्ति । यस्मिन् जनवर्गे सात्विक तत्त्व प्रधानतया दृश्यते स इह संस्कृतौ श्रेष्ठत्वेन 'ब्राह्मण' इति, यत्र-सात्विकतान्वितम् राजस तत्त्वं प्रमुखं स 'क्षत्रिय' इति, यत्र रजोगुणविशिष्टस्य तमोगुणस्य उन्मेषो वीक्ष्यते

---

आचरण को मैं धर्म सम्मत नही मानता ॥ २६ ॥

**भीष्म**—नहीं नहीं, आप ऐसा न कहे, कई कारणो से मैं आपकी तुलना मे अपने को हीन मानता हूँ । क्योंकि—

मुझे माता ने जन्म दिया है, आप अयोनिज होने के कारण स्वयभू है। मैं हथियारो के बल पर जीता हूँ और आप जीवो के प्रति सहानुभूति बाँटकर स्नेह के बल पर जीते हैं। आप जन्मना ब्राह्मण है और मैं जन्मजात क्षत्रिय हूँ, आप वर्णों के गुरु है और मैं शिष्यो मे आप का श्रेष्ठ शिष्य हूँ ॥ २७ ॥

द्रोण —नोत्सहन्ते महात्मानो ह्यात्मानमुपस्तोतुम् । एहि पुत्र ! अभिवादयस्व माम् ।

दुर्योधन —आचार्य ! अभिवादये ।

द्रोण —एह्येहि पुत्र ! एवमेवावभृथस्नानेषु खेदमवाप्नुहि ।

---

स "वैश्य" इति, यत्र च तमो गुण एव विद्यते मुख्यतया स 'शूद्र' इति निगद्यते । यतोहि जीवा द्विविधा—उद्बुद्धा, अनुद्बुद्धाश्च, तत्रोद्बुद्धास्त्रिविधा ज्ञानप्रधाना, क्रियाप्रधाना, इच्छाप्रधानाश्च । ये मस्तिष्केण समाजं सेवन्ते ते सात्त्विका जीवा ज्ञानप्रधानत्वात् 'द्रोणाचार्यवत्' 'ब्राह्मणा' इति कथ्यन्ते । ये बाहुबलेन समाज-माराधयितुमनसस्ते राजसजीवा क्रियाप्रधानत्वात् देव सन्नपि मनुष्यरूपेणा-वतीर्णं भीष्मवत् 'क्षत्रिया' इति भाष्यन्ते, भौतिकदृष्टिमन्तस्तम प्रधाना राज-सजीवा 'वैश्या' इति उच्यन्ते, अनुद्बुद्धा प्राणिन तमोगुणप्रधाना शूद्रा इति कथ्यन्ते । मनुष्येषु ज्ञान, क्रिया, इच्छा इत्येते भावा प्राप्यन्ते । इमान् एव भावान् आधृत्य—मनःशुद्धि-धनशुद्धि जातिशुद्धिभिर्भवान् मदपेक्षया श्रेष्ठ इति भवता मद्विषये प्राक् प्रणम्यत्वाभिधानम् न युक्तमिति भीष्मकथनस्याशय इति ।

**द्रोण** —महात्मान उत्तमजना, हि इति निश्चये, आत्मानम्, स्वम्, उपस्तोतुम् प्रशंसितुम्, न नहि उत्सहन्ते अभिलषन्ति । अतः पुत्र हे वत्स, एहि समागम्यताम्, अभिवादयस्व भीष्मानुरोधादेव प्रथमम् द्रोणम् प्रणम्यताम् ।

**दुर्योधन**.—आचार्य हे गुरुदेव, सर्वप्रथम त्वामेव अभिवादय प्रणमामि ।

**द्रोणः**—पुत्र हे वत्स, एह्येहि समागम्यताम्, एवमेव सततम् इत्यमेव अवभृथस्नानेषु यज्ञान्तस्नानविधिषु, खेदम् परिश्रमम्, आप्नुहि प्राप्य अर्थात् सर्वदा एवमेव यज्ञ कुरु ।

---

**द्रोण**—उच्चकोटि के लोग अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते हैं । आओ बेटा, पहले मुझे ही प्रणाम करो ।

**दुर्योधन**—गुरुदेव, मैं आप को प्रणाम करता हूँ ।

**द्रोण** —आओ बेटा, इसी प्रकार सदा यज्ञ करते रहो और यज्ञान्तस्नान से सदा स्वस्थ बन रहो ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । पितामह ! अभिवादये ।

भीष्मः—एह्येहि पौत्र ! एवमेव ते बुद्धिप्रशमनं भवतु ।

दुर्योधनः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल ! अभिवादये ।

शकुनिः—वत्स !

एवमेव क्रतून् सर्वान् समानीयाप्तदक्षिणान् ।
राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय ॥ २८ ॥

---

**दुर्योधन**—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम्, पितामह हे पितामह भीष्म, त्वाम् अभिवादये तव चरणे दुर्योधनोऽहम् प्रणमामि ।

**भीष्मः**—एह्येहि समागम्यताम्, पौत्र पुत्रस्यापत्यम्, पुत्रशब्दोऽत्र सन्तति-परक उपलक्षणम्, एवमेव इत्थमेव, ते तव, बुद्धिप्रशमनम् सवोधशमनम्, भवतु यातु, मनसो रागादिप्रवृत्तेः निवृत्तिर्जायताम् इत्याशीर्वचनम् ।

**दुर्योधनः**—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितोऽहम् । मातुल हे माम, अभिवादये प्रणमामि ।

**शकुनिः**—वत्स हे पुत्र,

**व्याख्या**—एवमेव, इत्थमेव आप्तः, उपलब्ध दक्षिणान् यज्ञमुपलक्ष्य ब्राह्मणान् प्रदत्तोपहारान्, सर्वान् सकलान्, क्रतून् यज्ञान्, समानीय सम्पाद्य, राजसूये राजसूयनामके मखविशेषे, जरासन्ध इव यथा नृपान् भूभृत, जित्वा विजित्य, आनय समानीयताम् । यथा मगधाधिपतिः जरासन्धः स्वकृते राजसूये यज्ञे सर्वान् नृपान् समाहूय कारागारे निक्षिप्तवान् तथैव त्वमपि कुरु इति ।

---

**दुर्योधन**—मैं अनुगृहीत हुआ । पितामह, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

**भीष्म**—आओ पौत्र, इसी तरह तुम्हारी बुद्धि विलक्षण बनी रहे ।

**दुर्योधन**—धन्य हुआ । मामा, आपको प्रणाम करता हूँ ।

**शकुनि**—वत्स, इसी तरह यज्ञ करते रहो, यज्ञान्त में लम्बी-लम्बी दक्षिणा भी देते रहो और अन्त में महाराज जरासन्ध की तरह सभी राजाओं को राजसूय यज्ञ में बुलाकर बन्दी बना डालो ॥ २८ ॥

द्रोण — अहो ! आशीर्वचनेऽपि शकुनिरुद्योगं जनयति । अहो ! प्रियविरोधः खल्वय क्षत्रियकुमारः ।

दुर्योधन — वयस्य ! कर्ण ! गुरुजनप्रणामावसाने प्राप्तक्रममुपभुज्यतां वयस्यविस्रम्भः ।

कर्ण — गान्धारीमातः !

अनुव्रतैस्ते तनु गात्रमेतत् सोढुं बलं शक्ष्यसि पीडयामि ।
अन्तस्त्वनामन्त्र्य न धर्षयामि राजर्षिघोराद् वचनात् भयं मे ॥२६॥

---

द्रोणः — अहो आश्चर्यम्, आशीर्वचनेऽपि शुभाशंसितवाक्येऽपि, शकुनिः दुर्योधनमातुल उद्योगम् = युद्धार्थंप्रयत्नम्, जनयति प्रेरयतीति भावः । अहो आश्चर्यम्, प्रियविरोधः वैररसिकः खलु निश्चयेन, अयम् एष, क्षत्रियकुमारः शकुनिनामकोदुर्योधनमातुल इति ।

दुर्योधनः — वयस्य मित्र, कर्ण अङ्गराज, गुरुजनप्रणामावसाने श्रेष्ठजनप्रणामान्ते, प्राप्तक्रमम् उचितावसरम्, उपभुज्यताम् उपभोगः क्रियताम्, वयस्यविस्रम्भः मित्रप्रेमालिङ्गनम् ।

कर्ण — गान्धारीमातः हे दुर्योधन —

व्याख्या — एतत् इदम्, ते तव, गात्रम् शरीरम्, अनुव्रतैः मखे कृतोपवासादिनियमैः, तनु क्षीणम्, बलम् शक्तिम्, सोढुम् सह्यं कर्तुम् शक्ष्यसि समर्थोऽसि तर्हि पीडयामि बलवदालिङ्गामि तव शरीरमिति, अन्तः चित्तम्, तु किन्तु, अनामन्त्र्य अनाभाष्य न नहि, धर्षयामि आलिङ्गनम् नाचरामि, राजर्षि-

---

द्रोण — आश्चर्य है, आशीर्वाद मे भी इसने युद्ध की प्रेरणा दी है । यह क्षत्रिय कुमार कितना विरोध प्रेमी है ।

दुर्योधन — मित्र कर्ण, गुरुजनो को प्रणाम करने के बाद अब मित्रो से मिलने की बारी आई है, आओ, हम एक दूसरे के गले लगे ।

हे दुर्योधन, यज्ञ मे व्रतादि के कारण तुम्हारी देह अति कृश हो गई है, यदि तु मेरे आलिङ्गन को सह सको तो मैं अवश्य तुम्हारा आलिङ्गन करूँ अन्यथा नही । मैं प्रेमभाषण के अतिरिक्त तुम्हे कोई अन्य कष्ट नही देना

शकुनि—प्रेषितोऽस्य मया दूतः । शङ्के पथि वर्तते इति ।
दुर्योधनः—भो आचार्य ! धर्मे धनुषि चाचार्य ! प्रतिगृह्यतां दक्षिणा ।
द्रोणः—दक्षिणेति । भवतु भवतु । व्यपश्रयिष्ये तावद् भवन्तम् ।
दुर्योधन—कथमाचार्योऽपि व्यपश्रयिष्यते ।
भीष्म—भो ! किन्नु खलु प्रयोजनं, यदा—

पीतः सोमो बाल्यदत्तो नियोगा-

---

**शकुनि**—अस्य विराटस्य, मया शकुनिना, दूतः सवादवाहकः प्रेषित निदेशित, शङ्के सम्भावयामि पथि मार्गे, वर्तते अस्तीति शेषः ।

**दुर्योधन**—भो आचार्य हे गुरुदेव, धर्मे धार्मिककृत्ये, च पुनः धनुषि धनुर्विद्यायाम्, त्वम् आचार्यः उपदेशकः असि, अतः प्रतिगृह्यताम् स्वीक्रियताम्, दक्षिणा यशो कृतस्याचार्यत्वस्य यथोचितमुपहारम् ।

**द्रोण**—दक्षिणेति, भवतु भवतु, दक्षिणा, इति शब्द श्रुत्वा द्रोणः कथयति तिष्ठतु तावत्तव दक्षिणा, व्यपश्रयिष्ये समये समागते सति याचिष्ये, तावदित्यवधारणे भवन्तंत्वामितिशेषः । अन्वयः—मदीया दक्षिणा त्वत्पार्श्वे तिष्ठतु समागते अवसरे याचिष्ये ।

**दुर्योधनः**—कथम् केन प्रकारेण, आचार्योऽपि राजगुरुरपि, व्यपश्रयिष्ये याचिष्ये ।

**भीष्म**—भोः, किन्तु किम्वा, खलु निश्चयेन, प्रयोजनम् दक्षिणायाः आवश्यकता अस्ति, यदा—

**व्याख्या**—बाल्यदत्तः शैशवावस्थयादत्तः, सोमः सोमनामकलतायाः रसः,

---

**शकुनि**—मैंने उनके पास दूत भेजा था, संभव है वे रास्ते में हों ।

**दुर्योधन**—हे गुरुदेव, आप मेरे धर्म तथा धनुष के उपदेष्टा हैं, कृपया अपनी दक्षिणा स्वीकार करें ।

**द्रोण**—दक्षिणा, रहने दो इसे, जरूरत पड़ने पर मैं स्वयं माँग लूँगा ।

**दुर्योधन**—राजगुरु होकर भला आप माँगने क्यों जाँय ?

**भीष्म**—दक्षिणा की जरूरत ही क्या है इन्हें—

इन्होंने किशोरावस्था में ही विधिवत सोमरस का पान किया है, तुम्हारे

छत्रच्छाया सेव्यते ख्यातिरस्ति ।
किं तद् द्रव्यं किं फलं को विशेषः
क्षत्राचार्यो यत्र विप्रो दरिद्रः ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु भवान्, किमिच्छति । किमनुतिष्ठामि ।
द्रोणः—पुत्र ! दुर्योधन ! कथयामि ।
दुर्योधनः—किमिदानीं भवता विचार्यते ।

---

नियोगात् विधिवत् शास्त्रोक्तरीतिमनुसृत्य, पीतः पानकृत, छत्रच्छाया नृपाश्रय, सेव्यते उपभुज्यते, ख्यातिः प्रसिद्धिः अस्ति, क्षत्राचार्यः राजगुरुरयं द्रोणाचार्यः, यत्र यस्मिन्विषये, दरिद्रः धनहीनः स्यात्, तादृशम् किं द्रव्यम्, किं वा फलम्, को वा विशेषः अस्ति ? न कोऽपीत्यर्थः ॥ अनेन द्रोणेनाल्पात्सस्यापामिव सोमरसं पीतं, भवादृशस्यनृपस्याश्रयः प्राप्तः, कीर्त्तिरर्जिता, तदयं कस्मिन्नपि विषयेनास्ति हीनो यदयं दक्षिणाग्रहणानुरोधं उपयुज्येतेत्यर्थः ॥ भारतीयनाटककाराणाम् स प्रयत्नः सदाभवति येन नायकस्य चरित्रं पवित्रं सन्तिष्ठेत न काठिन्यस्य लेशोऽपि तन्मनागपि मस्पृशेत् । नायकचरित्रस्य रक्षार्थमिह तदयं प्रयत्नः कृतोऽभूत् । एवंविधस्यप्रयत्नस्य दिग्दर्शनकेतं साधुतयाऽस्मिन् श्लोके भवति । शालिनीवृत्तम् ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—आज्ञापयतु आदिशतु, भवान् त्वम्, किमिच्छति किमाकाङ्क्षा किमस्ति किमनुतिष्ठामि किमाचरामि भवदर्थं ।

द्रोणः—पुत्र हे वत्स, दुर्योधन, गान्धारीसुत, कथयामि ब्रवीमि ।

दुर्योधनः—इदानीम् अधुना मयि दक्षिणादातुं प्रवृत्तेसति, भवता त्वया किं विचार्यते विचारो व्यर्थ इति ।

---

जैसे शक्तिशाली राजा की छत्रच्छाया में निवास करते हैं, इतना ही नहीं इन्होंने पर्याप्त यश भी अर्जित कर लिया है, फिर वह कौन सी वस्तु, फल या अनन्य-लाभ है, जिसे तुम्हारे आचार्य ने प्राप्त नहीं किया है ॥ ३० ॥

दुर्योधन—आचार्य, आदेश दीजिए, आपकी क्या इच्छा है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

द्रोण—बेटा दुर्योधन, कहता हूँ ।

दुर्योधन—आप सोच क्या रहे हैं गुरुदेव ?

प्राणाधिकोऽस्मि भवता च कृतोपदेशः
शूरेषु यामि गणनां कृतसाहसोऽस्मि ।
स्वच्छन्दतो वद किमिच्छसि किं ददानि
हस्ते स्थिता मम गदा भवतश्च सर्वम् ॥ ३१ ॥

द्रोणः—पुत्र ! ब्रवीमि खलु तावत् । बाष्पवेगस्तु मां बाधते ।

सर्वे—कथमाचार्योऽपि बाष्पमुत्सृजति ।

भीष्मः—पौत्र ! दुर्योधन ! अफलस्ते परिश्रमः ।

---

**व्याख्या**—प्राणाधिक प्राणेभ्योऽप्यधिकः तव प्रियः अस्मीति भावः, भवता त्वया च, कृतोपदेशः, अनुशासितः, शूरेषु वीरेषु, गणना यामि भवामि, कृतसाहसः कृतः विहितः साहसो येनासौ मयि दक्षिणादातुं समुद्यते सति स्वच्छन्दतः स्वेच्छया, वद कथय, किम् इच्छसि अभिलषसि, किंददामि कथय दक्षिणारूपेण त्वाम् किं अर्पयामि, हस्ते करे, स्थिता मम दुर्योधनस्य, गदा मुद्गर एव पर्याप्ता, च पुनः सर्वम् सकलम् विभवम् भवतः त्वदधीनाम् एवेति ॥

**द्रोण**—पुत्र वत्स, ब्रवीमि कथयामि, खलु निश्चयेन, तावदित्यवधारणे, बाष्पवेगः आनन्दाश्रुगतिः तु किन्तु, माम् गुरुद्रोणम्, बाधते वक्तुं प्रतिषेधति ।

**सर्वे**—कथम् केन प्रकारेण, आचार्योपि गुरुरपि, बाष्पम् अश्रुम्, उत्सृजति जहाति ।

**भीष्मः**—पौत्र दुर्योधन, ते तव, परिश्रमः आयामः, अफलः, निष्फलो यातः ।

---

मैं आपका प्राणाधिक प्रिय शिष्य हूँ, आपने ही मुझे शिक्षा दी है, मैं वीरों में अग्रगण्य हूँ, युद्ध में मैंने साहस किया है, आप अपना अभिलषित तो बतलाएँ, मुझे केवल हाथ में गदा चाहिए, शेष सारा वैभव तो आपका ही है ॥ ३१ ॥

**द्रोण**—बेटा, अभी बतलाता हूँ किन्तु देखो न ये आँखों के पानी बलात् रोक रहे हैं मुझे कुछ कहने से—

**सभी**—क्यों आचार्य भी रो रहे हैं ?

**भीष्म**—पौत्र दुर्योधन, तुम्हारा सारा श्रम बेकार है ।

दुर्योधनः—कोऽत्र ।

( प्रविश्य )

भटः—जयतु महाराज ।

दुर्योधनः—आपस्तावत् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । ( निष्क्रम्य प्रविश्य ) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

दुर्योधनः—आनय । (कलशं गृहीत्वा) भो आचार्य ! अश्रुपातोच्छिष्टस्य मुखस्य क्रियतां शौचम् ।

---

दुर्योधनः—कोऽत्र कः पुरुषविशेषः, ननु अस्मिन् स्थाने अस्ति, इति जिज्ञास्यते,

( प्रविश्य प्रवशकृत्वा )

भटः—जयतु महाराजः सर्वतोभावेन विजयताम् श्रीमान् ।

दुर्योधनः—आपः जलम्, तावदित्यवधारणे ।

भटः—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराजः नृपदुर्योधनः ( निष्क्रम्य बहिर्गत्वा, प्रविश्य) जयतु महाराजः विजयताम् श्रीमान्, इमा आपः जलानीति शेषः ।

दुर्योधनः—आनय देहि, ( कलशम् घटम्, गृहीत्वानीत्वा ) भो आचार्य हे गुरुदेव, अश्रुपातोच्छिष्टस्य बाष्पपातनोपहतस्य, मुखस्य आननस्य, क्रियताम् विधीयताम्, शौचम् ।

---

दुर्योधन—कोई यहाँ है ?

( प्रवेश करके )

भट—महाराज की जय हो ।

दुर्योधन—भट थोड़ा पानी तो लाओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर लौटकर ) जय हो महाराज की ये रहा पानी ।

दुर्योधन—लाओ ( कलश लेकर ) आचार्य, आँसुओं से पवित्र मुख का प्रक्षालन तो कर लें ।

द्रोण —भवतु भवतु । मम कार्यक्रियैव मुखोदकमस्तु ।

दुर्योधन —हा धिक्,

यदि विमृशसि पूर्वजिह्मता मे यदि च समर्थयसे न दास्यतीति ।
शरशतकठिन प्रयच्छ हस्त सलिलमिद करण प्रतिग्रहाणाम् ॥ ३२ ॥

द्रोण —हन्त ! लब्धो मे हृदयविश्वास । पुन ! श्रूयता ।

येषा गति क्वापि निराश्रयाणा सवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ।

---

द्रोण —भवतु भवतु तिष्ठतु तावत्, मम द्रोणस्य, कार्याक्रयैव कर्मसिद्धिरेव, मुखोदकम् आननजलमस्तु ।

दुर्योधन.—हा धिक् इति खेदे ।

व्याख्या—यदि चेत्, मे मम पूर्वजिह्मताम् पुराकृतकुटिलकर्मत्वम्, विमृशसि विचारयसि, यदि चेत्, न नहि, दास्यति यच्छति, इति इत्थम्, समर्थयसे समर्थन करोषि तदा शरशतकठिनम् सततबाणाभ्यासेन कठोरम्, हस्तम् करम् प्रयच्छ देहि, प्रतिग्रहाणाम् उपहारस्वीकरणानाम, करणम् साधनम्, इदम् एतद्, सलिलम्, जल, उन्मृज्यते । अस्मिन् श्लोके, पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३२ ॥

द्रोण.—हन्त इति हर्षे, लब्ध प्राप्त, मे मम, हृदयविश्वास चित्तप्रत्यय, यतो हि अय दुर्योधन सर्वेषा भूपतीनाम समक्ष दक्षिणादानस्य कृत्वा प्रतिज्ञाम यथा न करिष्यतीति भाव । पुन वत्स श्रूयताम् अवधायताम् —

व्याख्या—येषाम् जनानाम्, निराश्रयाणाम् आश्रयरहितानाम, यत्र तत्र भ्रमताम् पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, द्वादशभि द्वादशसख्याभि, सवत्सरै हायनै, कुत्रापि गति गमनम्, न नहि, दृष्टा अवलोकिता अर्थात् युधिष्ठिरादि

---

द्रोण—छोडो, मेरा सफलता ही मेरा मुखोदक बनेगी ।

दुर्योधन—आह, मुझे धिक्कार है ।

मेरी पूर्वकृत कुटिलता पर यदि आप ध्यान देते है, और यदि आपको यह भय है कि मैं आपकी इच्छा पूरी नही करूँगा तो लाइए बाणप्रक्षेपणाभ्यास स बना कठोर अपना हाथ, रख दूँ उस पर अभी ही सकल्प जल ॥ ३२ ॥

द्रोण—प्रसन्न हूँ बेटा, अब मैं पूर्ण आश्वस्त हूँ। सुनो—

बारह साल से जिनका कोई पता नहीं है, जो आश्रयविहीन होकर दर-दर

त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च ॥ ३३ ॥

शकुनि —( सोद्वेगम् ) मा तावद् भोः !

उपन्यस्तस्य शिष्यस्य विश्वस्तस्य च गौरवे ।
यत्प्रस्तुतमुत्पाद्य युक्तेयं धर्मवञ्चना ? ॥ ३४ ॥

द्रोण—कथं धर्मवञ्चनेति । तावद् भो गान्धारविषयविस्मित ! शकुने ! त्वदनार्यभावात् सर्वलोकमनार्यमिति मन्यसे । हन्त भोः !

---

पञ्चपाण्डवानां द्वादशभिर्वर्षैः कुत्रापि स्थितिः, नोपलब्धा, त्वम् भवान्, तेषाम् पाण्डवानाम्, संविभागम् सम्यक्प्रकारेणविभाजनम्, कुरु विधीयताम् अर्थात् राज्यार्धम् प्रदीयताम्, एषा पाण्डवानां कृते अर्धदानस्य घोषणा एव मम आचार्य-द्रोणस्य भिक्षायाचना च पुनः दक्षिणा यद्वेद्वृत्तस्याचार्यत्वस्य यथोचितम् वेतनम् भविष्यतीति । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ३३ ॥

शकुनि—(सोद्वेगं आवेगसहितम्) मा तावत् द्रोणवाक्यविश्वासं मा कुरु ।

व्याख्या—उपन्यस्तस्य दक्षिणादातुम् प्रस्तुतजनस्य, गौरवे भवता महत्त्वे, विश्वस्तस्य विश्वस्तस्य, शिष्यस्य अन्तेवासिनः, यत्प्रस्तुतम् सत्कारप्रस्तावम्, उत्पाद्य उत्पन्नं कृत्वा इयम् एषा, धर्मवञ्चना धर्माचरणव्याजेन छलम्, युक्ता उचिता ? सत्कारेणान्यशिष्यस्य त्वया वञ्चनम् इति न युक्तम् ॥

द्रोण—कथम्, केन प्रकारेण, धर्मवञ्चना धर्माचरणव्यपदेशेनकपटमिति, गान्धारविषयविस्मित गान्धारदेशविशेषम् राज्यत्वेन प्राप्य गर्वोद्धतशकुने, त्वत् भवत, अनार्यभावात् कुटिलविचारात्, सर्वलोकम् समस्तजनम् अनार्यम् दुष्टम्, मन्यसे, हन्त भोः कष्टम् भो —

---

की ठोकरें खा रहे हैं उन पाण्डवों को उनका आधा राज्य लौटा दो, यही मेरी भीख है, यही मेरी दक्षिणा भी ॥ ३३ ॥

शकुनि—( घबड़ाकर ) नहीं नहीं,

जिसने तुम्हारे गुरुत्व पर विश्वास किया, जिसने तुम्हारी इच्छानुकूल दक्षिणा देने का संकल्प लिया उस शिष्य के लिए यह धार्मिक वञ्चना क्या उचित है ?

द्रोण—धर्मवञ्चना कैसी ? ओ गर्वीले गान्धार नरेश, तुम स्वयं अनार्य हो इसलिए सारा संसार तुम्हें अनार्य प्रतीत होता है ।

भ्रातृणा पैतृक राज्य दीयतामिति वञ्चना ।
किं पर याचितैर्दत्त वलात्कारेण तैर्हृतम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथ वलात्कारेण नाम ।

भीष्म —पौत्र ! दुर्योधन ! अवभृयस्नानमात्रमेव खलु तावत् । मित्रमुखम्य शत्रो शकुनेर्वचन न श्रोतव्यम् । पश्य पौत्र ।

यत् पाण्डवा द्रुपदराजसुतासहाया

---

व्याख्या—भ्रातृणाम् बान्धवानाम्, पैतृकम् वशकमागतम्, राज्यम ऐश्वर्यम्, दीयताम् समर्प्यताम्, इति इत्थम्, वञ्चना छलम् ? नेद कपटव्यवहारम् औचित्यमेवार्धराज्यदानमिति, याचितैः प्रार्थितैर्मया नवद्भिर्दत्तम प्रदानम् कृतम्, बलात्कारेण बलप्रयोगेण वा तैः युधिष्ठिरादिभि, हृतम् अधिकृतम, किम् कतमम, परम्, उत्कृष्टम्, मत्प्रार्थनया दीयते, युध्यमानैर्वा पाण्डवैरा ह्रियते, किमनयो श्रेष्ठ स्यादिति विचारणीयम् ॥ ३५ ॥

सर्वे—कथम् केन प्रकारेण पाण्डवा राज्यार्धं हरिष्यन्ति, वलात्कारेण बलपूर्वकेन नाम इति प्रश्नाशय:

भीष्मः—पौत्र दुर्योधन, अवभृथस्नानमात्रमेव इदम् केवलम् मखसमाप्तिमुपलक्ष्यविहितम् स्नानम् न द्यूतम् अत अस्मिन्कार्ये गुरुद्रोणस्यैव वचन ग्राह्यम न शकुनेर्वचनम ग्राह्यम् मित्रमुखस्य शत्रो कपटाचारी सुहृद शकुने वचनम कथनम न नहि श्रोतव्यम् आचरितव्यम अर्थात् मातुलस्य वचनम परित्यज्याचार्यकथनमादरणीयमिति । पश्य पौत्र अवलोकय—

व्याख्या—यत् सवनामबोधकसर्वनाम, द्रुपदराजसुतासहाय द्रौपद्या सह,

---

'अपने चचेरे भाईयो को उनका पैतृक राज्य लौटा दो, यह कथन कपटपूर्ण कैसे है ? मेरे मागने से उनका राज्य लौटा दो यह अच्छा होगा अथवा वे वल पूर्वक तुमसे अपना हक छीन लेगें यह अच्छा होगा ( सोच लो ) ॥ ३५ ॥

सव—वल पूर्वक क्यो ?

भीष्म—बेटा दुर्योधन, तुमने अभी ही यज्ञान्त स्नान किया है कपटी मित्र शकुनि का तुम विश्वास मत करो । देखो पौत्र,—जङ्गल मे धूलिधूसरितगात

कान्ताररेणुपरुषाः पृथिवीं भ्रमन्ति ।
यस्त्वं च तेषु विमुखस्त्वयि ते च वामा-
स्तत् सर्वमेव शकुनेः परुषावलेपः ॥ ३६ ॥

दुर्योधन — भवतु, एवं तावदाचार्यं पृच्छामि ।

द्रोणः—पुत्र ! कथय ।

दुर्योधन —

यत् पुरा ते सभामध्ये राज्ये माने च धर्षिता ।

---

पाण्डवाः पाण्डुपुत्राः, कान्ताररेणुपरुषाः वनधूलिधूसराः, पृथिवीम् धरित्रीम्, भ्रमन्ति पर्यटनं कुर्वन्ति, यत् च पुनः, त्वम्, भवान्, तेषु पाण्डवादिषु, विमुखः प्रतिकूलः, च पुनः, ते पाण्डवाः, त्वयि दुर्योधने, वामाः विपरीताः, तत्, सर्वम्, सकलम्, एव शकुनेः तव मातुलस्य, परुषः कठोरः, अवलेपः गर्वः । जगति एवंविधः कः प्राणी यः सुखानि उपभोक्तुं नाभिलषते । पाण्डवानामप्यन्तःकरणे एवंविधोत्कटा भूयः जरीजृम्भते यत् तेषां सविधे जगतः सकलसुखसाधनानि स्युः । समग्रस्यापि भूमण्डलस्य प्रभुत्वम् स्वायत्तं विधाय सानन्दं विहरेयुः । किन्तु शकुनेर्गर्ववशादेव तव पारस्य पाण्डवानां चेयम् हीना दशा जाता, अतः शकुनेः कथनम् विहाय पाण्डवेषु पवित्रहृदयो भवेति भावः ॥ ३६ ॥

**दुर्योधनः**—भवतु यातु, एवम् इत्थम्, तावदित्यवधारणे, आचार्य हे गुरुदेव, पृच्छामि भवतः एव ज्ञातुमिच्छामि ।

**द्रोणः**—पुत्र तनय, कथय वद—

**व्याख्या**—यत्पुरा द्यूतक्रीडासमये, ते पाण्डवाः, सभामध्ये अक्षक्रीडा-

---

पत्नी के साथ पाण्डवगण दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे हैं। वे आज तुमसे विमुख हैं या तुम उनके विपरीत हो, इन सारे उपद्रवों की जड़ शकुनि का अभिमान है ॥ ३६ ॥

**दुर्योधन**—अच्छा गुरुदेव, मैं आप से ही पूछता हूँ ।

**द्रोण**—पूछो बेटा,

**दुर्योधन**—यदि पाण्डव इतने बली हैं तो जिस समय सभा में उनके राज्य

बलात्कारसमर्थैस्तैः किं रोषो न धारितस्तदा ॥ ३७ ॥

द्रोण.—अत्रेदानीं धर्मच्छलेन वञ्चितो द्यूताश्रयवृत्तिर्युधिष्ठिरः प्रष्टव्यः,

येन भीमः सभास्तम्भं तोलयन्नेव वारितः।

यद्येकस्मिन् विमुक्तः स्यान्नास्मान्छकुनिराक्षिपेत् ॥ ३८ ॥

भीष्मः—अन्यत् प्रस्तुतमन्यदापतितम् । भो आचार्य ! कार्यमत्र गुरुतर, न कलहः।

---

सभायामेव, राज्ये राज्यापहारे, माने पितामहादिश्रेष्ठजनसमक्षद्रौपद्याः केशवस्त्राकर्षणादिना प्रतिष्ठायाः च घर्षिता अपमानिता, तदा तस्मिन्नेवकाले, बलात्कारसमर्थैः बलप्रयोगसमर्थै, तैः पाण्डवैः, रोषः क्रोधः किं किमर्थं धारितः ॥

**द्रोणः**—अत्र अस्मिन् विषये, इदानीम् अधुना, धर्मव्याजेन, वञ्चितः प्रचारितः, द्यूताश्रयवृत्तिः अक्षक्रीडाप्रेमी, युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रज, प्रष्टव्यः जिज्ञासितव्यः।

**व्याख्या**—येन युधिष्ठिरेण, भीमः पाण्डवद्वितीयः, सभास्तम्भम् सभाकक्षस्तम्भम्, तोलयन् परीक्षमाण, एव यथास्यात्तथा, वारितः अवरोधित यदि स्यात्, एकस्मिन् द्यूतसभारम्भे, युधिष्ठिरेण विमुक्तः स्वेच्छया व्यवहर्तुमाज्ञप्त स्यात् तदा शकुनि- अधुना अस्मान् द्रोणादीन्, न नहि, आक्षिपेत् अधिक्षिपेद् ॥३८॥

**भीष्मः**—अन्यत् अपरम्, प्रस्तुतम्, अन्यत् अपरम्, आपतितम् जातम्, भो आचार्य हे उपाध्याय, कार्यम् करणीयम्, अत्र अस्मिन् विषये गुरुतर- श्रेष्ठतरः न नहि, कलहः शिष्यविरोधः उचितमिति भाव.।

---

तथा मान का अपहरण कर उन्हें अपमानित किया गया था, उस समय उन्होंने अपना रोष क्यों छिपा लिया था ? क्यों नहीं अपना बल प्रदर्शित किया था ? ॥३७॥

**द्रोण**—इस सम्बन्ध में धर्म के नाम पर ठगे गये द्यूतव्यसनी युधिष्ठिर से ही पूछ लो—

सभा भवन के स्तम्भों को उखाड़कर जब भीम इस अन्याय के विरुद्ध तुम सभी पर प्रहार करना चाह ही रहा था कि इसी युधिष्ठिर ने इशारे से उसे रोक दिया। केवल यदि उसी काम के लिए भीम को वह नहीं रोकता तो शायद आज इस तरह हम पर आक्षेप करने के लिए शकुनी बचे नहीं रहते ॥ ३८ ॥

**भीष्म**—कहाँ की बात कहाँ आ पड़ी ? आचार्य, काम की बात करें, झगड़ना तो बाद में भी होगा।

द्रोणः—माऽत्र कर्दनं कार्यं, कलह एव भवतु ।
भीष्मः—प्रसीदत्वाचार्यः । पश्य पौत्र ।

ये दुर्बलाश्च कृपणाश्च निराश्रयाश्च
त्वत्तश्च साम मृगयन्ति न गर्वयन्ति ।
ज्येष्ठो भवान् प्रणयिनस्त्वयि ते कुटुम्बे
तान् धारयिष्यसि मृगैः सह वर्तयन्तु ॥ ३९ ॥

---

द्रोणः—मा इति निषेधे, अत्र अस्मिन् विषये, कर्दनम् दैन्यपूर्वकम् राज्ययाच्ञा, कार्यम् करणीयम्, कलह एव भवतु क्रोधसूचिका द्रोणस्येयमुक्तिः अर्थात् न्याययुद्धमेव जायतामिति ।

भीष्म.—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु आचार्यो गुरुद्रोण, पश्य अवलोकय च पौत्र दुर्योधन ।

व्याख्या—ये पाण्डवा, दुर्बला. शक्तिहीना, च पुन कृपणा दैन्या, निराश्रया: असहाया, च पुन., त्वत्त. त्वत्समीपात्, साम सान्त्वना मृगयन्ति अभिलषन्ति याचयन्ति वा, न च नहि गर्वयन्ति गर्वम् कुर्वन्ति, भवान् त्वम् तेभ्य: ज्येष्ठ' वयसाऽधिक', च पुन' ते पाण्डवा, त्वयि दुर्योधने, प्रणयिन: अनुरक्ता:, अतस्त्वम तान् पाण्डवान्, कुटुम्बे स्वकीयपरिवारे धारयिष्यसि स्थानं दास्यसि, अथवा वा, ते पाण्डवा', मृगैः हरिणै:, सह सार्धम्, वर्तयन्तु तिष्ठन्तु । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥

विचार्यताम् इदं जगत्, इमे सम्बन्धिन', इमे पुत्रकलत्रादय', इमा सम्पदः, इदम् भवनम्, इयम् धरा, इद सकलं साम्राज्य, एवा चं प्रभुता सर्वम् विहाय एकस्मिन्नहनि गन्तव्यमापतति । अतो विचार्यताम् ये युधिष्ठिरादयः शक्तिहीना. सन् त्वया सान्त्वनम् याचयन्ति तेभ्यः जीविकासाधनस्वरूपम् राज्यार्द्धम् प्रदानमुचितमथवा तदुपेक्षणम् युक्तिमिति भाव: ॥

---

द्रोण—यहाँ कायरता दिखलाना ठीक नही, कलह करना ही ठीक है ।

भीष्म—माफ करो आचार्य, पौत्र देखो—

अभी पाण्डव शक्तिहीन हैं, दु.खी हैं, आश्रयरहित हैं, तुम्हारे प्रति प्रेम रखते हैं, तुमसे शान्ति की याचना करते हैं, छोटे हैं तुम्हारे सामने कभी गर्व नही करते, ऐसी स्थिति मे तुम्ही बतलाओ उन्हे अपने परिवार मे धारण दोगे या यो ही जङ्गली हिरणों के साथ घूमने के लिए छोड दोगे ॥ ३९ ॥

शकुनि'—वर्तयन्तु वर्तयन्तु ।

कर्ण.—भो आचार्य ! अलममर्षेण । दुर्योधनो हि नाम,

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणो
परपुरुषविशेषं नेच्छति स्तूयमानम् ।
गतमिदमवसानं रक्ष्यतां शिष्यकार्यं
गज इव बहुदोषो मार्दवेनैव वाह्य ॥ ४० ॥

---

**शकुनि**—वर्तयन्तु वनेतिष्ठन्तु, वर्तयन्तु वन्यजन्तुभि सह सदा वने एव तिष्ठन्तु ।

**कर्ण**—भो आचार्य, हे गुरुदेव, अलम् व्यर्थम्, अमर्षेण क्रोधेन, दुर्योधनो हि नाम—

**व्याख्या**—परुषार्थम् अवभाषितम्, श्राव्यमाण उच्यमान सन् हितमपि परिणामसुखकरमपि, रुष्यति कोप करोति, परपुरुषविशेषम् गुणातिशयशालिन श्रेष्ठजनम्, स्तूयमानम् प्रशस्यमानम् न नहि, इच्छति अभिलषति, इदम् एत द्विषयम्, अवसानम् समाप्तप्रायम्, गतम् जातम्, शिष्यकार्यम् दुर्योधनकृते यागसम्पादनरूपम् कृत्यम्, रक्ष्यताम् विधीयताम्, अय हि दुर्योधन बहुदोष बहुदोषयुक्त , गज , द्विप , इव यथा, मार्दवेनैव मृदुतायुक्तेनैव, ग्राह्य ग्रहणीय पाठान्तरे वाह्य. वहनीयेति भाव । स्वभावेन दुर्योधन असहिष्णुरस्ति अत-एव-मेव शान्तिमवलम्ब्य यज्ञान्ते दीयमानदक्षिणाग्रहणञ्च करोतु । अस्मिन् श्लोके उपमालकार., मालिनी वृत्तञ्च ॥ ४० ॥

---

**शकुनि**—जङ्गल मे हिरणो के साथ ही ये रहे ।

**कर्ण**—हे गुरुदेव, आप क्रोध न करें । दुर्योधन—

दुर्योधन कठोर शब्दो मे कही गई हित की बातो को सुनकर भी क्रुद्ध हो जाता है। यह अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति है। दूसरो की प्रशसा सुनकर भडक उठता है अब यह बात समाप्त हो चुकी है. अपने शिष्य का हित साधन करें, मतवाले हाथी को फुसला कर ही वश मे किया जा सकता है, दुर्योधन को भी मृदुता से ही मनाइए, झगडने से भला क्या लाभ आचार्य ! ॥ ४० ॥

द्रोणः—वत्स ! कर्ण ! तेजस्वि ब्राह्मण्यम् । काले सम्बोधितोऽस्मि । एषोऽहं भवच्छन्दमनुवर्ते । पुत्र ! दुर्योधन ! अहं तव प्रभावी ननु ।

भीष्मः—एष इदानीं मार्गेणारब्धः । सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् ।

दुर्योधनः—न ममैव, कुलस्यापि मे भवान् प्रभुः ।

द्रोणः—एतत् तवैव युक्तम् । नतु पुत्र !

त्वं वञ्च्यसे यदि मया न तवात्र दोष-

---

*द्रोण*—वत्स पुत्र, कर्ण अङ्गाधिपते, तेजस्वि उग्रस्वभावम्, ब्राह्मण्यम् द्विजत्वम्, तेन मया तथोक्तमिति । काले यथोचिते समये, सम्बोधित प्रबोधित, अस्मि भवामि । एष एतत्, भवच्छन्दम् भवदीयाशयम्, अनुवर्ते अनुसरामि पुत्र हे पुत्र, दुर्योधन गान्धारीतनय, अहम् द्रोण, तव भवतः, प्रभावी ननु तव कथनं युक्तितरम् मन्ये इति भाव ।

**भीष्म**—एष इदानीम् अधुना, मार्गेण उचितरीत्या, आरब्ध. सम्यक् रूपेण समारम्भित, सान्त्वम् मार्दवम् हि यत, ननु निश्चयार्थकमव्ययम् । दुर्विनीतानाम् दुष्टानाम् औषधम् शमनमिति ।

**दुर्योधन**—न नहि, ममैव दुर्योधनस्यैव, कुलस्यापि सम्पूर्णवंशस्यापि, भवान् त्वम्, मे मम, प्रभुः शास्तेति—

**द्रोण**—एतत् इदम् वचनम्, तव भवतः एव युक्तम् उचितम्, तत् तस्मात्, पुत्र वत्स ।

व्याख्या—यदि चेत्, त्वम् दुर्योधन, मया द्रोणेन वञ्च्यसे प्रतार्यसे तर्हि, अत्र अस्मिन्विषये, तव भवत, दोषः अपराध, न नहि, यदि चेत्-वाऽथवा त्वाम् दुर्योधन

---

द्रोण—बेटा कर्ण, ब्राह्मण प्रकृत्या तेजस्वी होते है, तुमने समय पर ही याद दिलाई है, मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही करूँगा । बेटा दुर्योधन, क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है या नहीं ।

भीष्म—अब ये रास्ते पर चल रहे हैं । दुष्टों की दवा कोमलता ही है ।

दुर्योधन—अकेले मुझ पर ही नहीं, हमारे सम्पूर्ण वंश पर आपका अधिकार है आचार्य ।

द्रोण—ये बातें तुम्हारे ही अनुकूल है बेटा—

ऐसी स्थिति में यदि मैं तुम्हें ठगता हूँ तो लोग मुझे ही दोष देंगे अथवा

स्त्वां पीडयामि यदि वास्तु तवैप लाभ. ।
भेदाः परस्परगता हि महाकुलाना – –
धर्माधिकारवचनेपु नमीभवन्ति ॥ ४१ ॥

दुर्योधन —तेन हि समर्थयितुमिच्छामि ।

द्रोण —पुत्र ! केन समर्थयितुमिच्छसि ?

भीष्मेन कर्णेन कृपेण केन किं सिन्धुराजेन जयद्रथेन ।
किं द्रौणिनाऽऽहो विदुरेण सार्धं पित्रा स्वमाता वद पुत्र ! केन ॥४२॥

---

पीडयामि दक्षिणारूपेण राज्यार्द्धं पाण्डवेभ्यो दापयामि तदा एप एतद्, लाभ उपलब्धि, तव भवत एव, अस्तु भवतु, महाकुलानाम् उच्चकुलोत्पन्नानाम् भवादृशानाम् जनानाम् परस्परगताः अन्योन्यप्राप्ता. हि यत., भेदा वैमनस्या, धर्माधिकारवचनेपु आप्तकथनेपु, शमीभवन्ति प्रशमनम् यान्ति । त्वादृशानाम् महाकुलसम्भूतानाम् जनानाम् मङ्गलाय सुखशान्तिपूर्वकम् तेषाम् जीवनम् जगति व्यतीयात्, बन्धुविग्रहोऽपि प्रशमन यातु इत्येतत् प्रयोजनेन गुरुजनोपदेशो भवति । तेनैवोपदेशेन पारस्परिकविरोधा. प्रशमनम् यान्तीति भावः । अस्मिन् श्लोके वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४१ ॥

**दुर्योधनः**—तेन कारणेन, हि इति निश्चयेन, समर्थयितुम् अनुमोदन प्राप्तुम् वाञ्छामि ।

**द्रोणः**—पुत्र हेवत्स, केन पुरुषविशेषेण, समर्थयितुम् सम्मति प्राप्तुम्, इच्छसि अभिलपसि—

**व्याख्या**—भीष्मेण गङ्गापुत्रेण, कर्णेन अङ्गाधिराजेन कृपेण कृपाचार्येण, सिन्धुराजेन सिन्धुदेशाधिपतिना जयद्रथेन, किम् किम्वा, द्रौणिना अश्वत्थाम्ना, आहो इति

---

यदि तुम्हे पीडा पहुँचाता हूँ तो उससे भी तुम्हे ही लाभ होगा । क्योंकि उच्चकुलोत्पन्न महापुरुषों का पारस्परिक कलह गुरुजनो के आप्त वचनो से ही शान्त होता है ॥ ४१ ॥

**दुर्योधन**—मैं इसका समर्थन चाहता हूँ ।

**द्रोण**—बेटा, किसकी सम्मति लेना चाहते हो ?

पितामह भीष्म का, कर्ण, कृपाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, अश्वस्थामा, विदुर

द्रोणः—वत्स !

क्रोधप्रायं वयो जीर्णं क्षन्तव्यं वटुचापलम् ।
अस्य रूक्षस्य वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया ॥ ४३ ॥

भीष्मः—( आत्मगतम् )

एष शिष्यस्य वात्सल्याच्छकुनिं याचते गुरुः ।
एवं सान्त्वीकृतोऽप्येष नैव मुञ्चति जिह्मताम् ॥ ४४ ॥

शकुनिः—( आत्मगतम् ) अहो शठः खल्वाचार्यः, स्वकार्यलोभान्मां सान्त्वयति ।

---

द्रोणः—वत्स पुत्र ।

**व्याख्या**—जीर्णम् जराग्रस्तम् विशीर्णम्, वयः आयुः, क्रोधप्रायम् कोपाविष्टम्, तत् वटुचापलम् शिशुजनोचितम् चाञ्चल्यम् कटुवचनप्रयुक्तात्मकम् क्षन्तव्यम् मर्षितव्यम् अस्य पूर्वकथितस्य द्रोणस्य रूक्षस्याप्रियस्य कठोरस्य वचसः कथनस्य परिष्वङ्गः आश्लेषः, एव शमीक्रिया शान्तिसाधनम् भवतीतिशेषः ॥ ४३ ॥

भीष्मः—( आत्मगतम् स्वगतम् )

**व्याख्या**—एषः, असौ, गुरुः, आचार्यः, शिष्यस्य, अन्तेवासिनः, वात्सल्यात्, वत्सलभावात् हेतोः शकुनिम्, दुर्योधनमातुलम्, याचते प्रार्थयते, किन्तु, एवम् इत्थम्, सान्त्वीकृतः कृपापूर्वं केनानुनीतोऽपि एषः शकुनिः, जिह्मताम् निजकुटिलताम्, नैव मुञ्चति जहातीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

शकुनिः—( आत्मगतम् स्वगतम् ) अहो इत्याश्चर्यम्, शठः धूर्तः, खलु

---

द्रोण—बेटा,

बुढौती में लोगों को क्रोध जल्दी ही आजाता है। इसलिए क्रोधावेश में मैंने तुमसे जो कुछ भी कटुवचन कहा है उसे भूल जाओ। आओ, उस गलती के लिए तुम्हें गले लगाता हूँ ॥ ४३ ॥

भीष्म—( स्वगत )

हाय, शिष्य के प्रति स्नेह होने के कारण ही आचार्य शकुनि को इस तरह मना रहे हैं किन्तु, यह दुष्ट इस तरह मनाये जाने पर भी अपनी कुटिलता नहीं छोड़ता है ॥ ४४ ॥

शकुनि ( अपने आप ) अरे, आचार्य तो प्रपंची है, अपने काम की सिद्धि के

( सर्वे परिक्रम्योपविशन्ति )

दुर्योधन:—मातुल ! पाण्डवानां राज्यार्धं प्रति को निश्चयः ?

शकुनि:—न दातव्यमिति मे निश्चयः ।

दुर्योधन:—दातव्यमिति वक्तुमर्हति मातुलः ।

शकुनि:—यदि दातव्यं राज्यं किमस्माभिः सह मन्त्रयसे । ननु सर्वमेव प्रदीयताम् ।

दुर्योधन:—वयस्य ! अङ्गराज ! भवानिदानीं न किञ्चिदाह ।

---

निश्चयेन, आचार्यः द्रोण, स्वकार्यलोभात् निजकार्यसाधनतत्परत्वात्, माम् शकुनिम्, सान्त्वयति मृदुवचनैः सम्बोधयति ।

सर्वे सकलजनाः, परिक्रम्य भ्रमणं कृत्वा, उपविशन्ति तिष्ठन्ति

दुर्योधन —मातुल मम, पाण्डवानां पाण्डुपुत्राणाम्, राज्यार्धम् राज्यस्यार्धभागम्, प्रतिदानम्प्रति, को निश्चयः मतः कः निर्णयः ?

शकुनिः—न नहि, दातव्यम् देयम्, इति इत्थम्, मे शकुनेः, निश्चयः निर्णयः ।

दुर्योधनः—दातव्यम् दातुम् योग्यम्, इति इत्थम्, वक्तुम् कथयितुम्, अर्हति शक्नोति, मातुल मातुः भ्राता,

शकुनि —यदि चेत्, दातव्यं त्वया दातुम् निश्चितम् राज्यं राज्यार्धभागम्, किम् कथम्, अस्माभिः शकुन्यादिभिः, सह सार्धम्, मन्त्रयसे विचारं करोषि नन्विति प्रश्ने, सर्वमेव सकलराज्यमेव, प्रदीयताम् तेभ्यः दीयताम् ।

दुर्योधन —वयस्य मित्र, अङ्गराजकर्ण, भवान् त्वम्, इदानीम् अधुना, न नहि, किञ्चित् किमपि, आह कथयति वदसि ?

---

लिए मुझे इस तरह मना रहे हैं ।

( सभी घूमकर बैठ जाते हैं )

दुर्योधन—मामाजी, पाण्डवों को राज्यार्द्ध देने के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

शकुनि—मेरा अन्तिम निर्णय है कि उन्हें कुछ नहीं देना चाहिए ।

दुर्योधन—मामाजी, आपको तो कहना चाहिए कि उन्हें देना उचित है ।

शकुनि—यदि देना ही है तो फिर हमसे विचार क्यों पूछते हो ? सारा राज्य ही दे डालो ।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, तुम अपना अभिमत क्यों नहीं व्यक्त करते ?

कर्ण —इदानीं किमभिधास्यामि,

रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि ।
क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं सङ्ग्रामकालेषु वयं सहायाः ॥ ४५॥

दुर्योधन —मातुल ! बलवत्प्रत्यमित्रोऽनुपजीव्यश्च कश्चित् कुदेशश्चिन्त्यताम् । तत्र वसन्तु पाण्डवाः ।

शकुनि —हन्त भो !

---

कर्ण —इदानीम् अधुना, किम् अभिधास्यामि वक्ष्यामि ।

व्याख्या—रामेण दाशरथिना, भुक्ताम् अनुभूताम्, सुभ्रातृताम् सुष्ठुरूपेण भ्रातृभावम्, परिपालिताम् सर्वतोभावेन रक्षिताम्, न नहि, प्रतिषेधयामि निषेधयामि, क्षमाक्षमत्वे 'राज्यस्यार्धभाग देयमदेयम् वेति निर्णये, भवान् त्वम् स्वयमेव प्रमाणम् निर्णायक', वयम् तु कर्णादिकास्तु, सङ्ग्रामकालेषु यदा समरो भविष्यति तदातस्मिन् काले, सहायाः सहायकरूपेण उपस्थिता भवाम ॥ ४५ ॥

दुर्योधन —मातुल हे माम, बलवत्प्रत्यमित्र सशक्तशत्रुभिर्युक्त अनुपजीव्य जीविकाप्रदानेऽक्षम कश्चित् कोऽपि, कुदेश कुत्सितप्रदेश, चिन्त्यताम् विचार्यताम्, तत्र तस्मिन्नेव स्थाने वसेयु निवास कुर्यु, पाण्डव पाण्डो पञ्चपुत्रा ।

शकुनि —हन्त भो इति खेदे,

---

कर्ण—भला इस पर मैं तुम्हें क्या कहूँ ?

भगवान् राम की तरह अगर तुम भ्रातृत्व के सुख का उपभोग करना चाहो तो मैं भला उसका निषेध क्यों करूँ ? जहाँ तक राज्य देने या न देने का प्रश्न है इनमें तुम पूर्ण स्वतन्त्र हो, हाँ, युद्ध छिड जाने पर मैं तुम्हारा साथ दूँगा, यह निश्चित है ॥ ४५ ॥

दुर्योधन—शक्तिशाली शत्रुओं से घिरा कोई कुदेश जो जीविका देने में असमर्थ हो वहाँ पाण्डव निवास करें ।

शकुनि—खेद है—

शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद् बलवत्तरः ?
ऊषरेष्वपि सस्य स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

दुर्योधन —अथेदानी,

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाण पृथिव्याम् ।
तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप । जल तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम् ॥ ४७ ॥

---

व्याख्या—शून्यम् नकारात्मकम् उत्तरम्, अभिधास्यामि दास्यामि यत पार्थात् अर्जुनात्, कः पुरुषविशेषः, बलवत्तर समधिकबल ? ऊषरेष्वपि अनूर्वरेष्वपि सस्यसमृद्धिम्, स्यात् भवेत्, यत्र यस्मिन् देशे, राजा नृपतिः, युधिष्ठिर धर्मराज, अस्तीति । त्वया कुदेश, चिन्त्यताम् इति कृतस्यानुरोधस्योत्तरे शून्यमित्यभिधास्यामि । जीवा स्वकीये जीवने यादृश कर्म आचरन्ति तादृशमेव फलमपि लप्स्यन्ते, सन्ति कर्माण्येव जीवनघटकानि । पाण्डवा सतत जीवन सुत्तम सर्वविध तथा समुन्नत च कर्तुं शुभान्येव कर्माणि कुर्वन्ति । अत धर्ममूर्त्तेर्युधिष्ठिरस्य स्वामित्वमात्रेण कुदेशस्यापि उर्वरत्व भवति । अर्जुनापेक्षया न कोऽपि बलवत्तर अत कस्मिश्चिदपि देशे दीयमाने तेषा प्रभावातिशयात्स्यादेवोन्नति ॥ ४६ ॥

दुर्योधनः—अथ अनन्तरम्, इदानीम् अधुना—

व्याख्या—गुरुकरतलमध्ये आचार्यद्रोणस्य हस्ते, तोयम् सलिलम्, आवर्जितम्, इह अस्मिन्विषये, मे मम, कुलवृद्धै भीष्मप्रभृतिपुराणपुरुषै, श्रुतम् अवगतम् यत् जलदानम् पृथिव्याम् भुवि, प्रमाणम् प्रसिद्धम्, तत् तस्मात्, इदम् एतत्, अपनय दुर्नीति, वा अथवा वञ्चना प्रतारणा, यथा येन प्रकारेण वा भवतु जातु, नृप हे राजन्, तत् तस्मात्, जलम् सलिलम्, सत्यम् प्रमाणितम्

---

ऐसा कोई देश नही जहाँ अर्जुन से अधिक बलशाली उसका शत्रु हो या जहाँ युधिष्ठिर का साम्राज्य हो वहाँ की भूमि उपजाऊ बन जाय ॥ ४६ ॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब

हे राजन् मैंने गुरुदेव के हाथो मे दान का जल छोड दिया है। इसे आप अनीति कहें या ठगी । मैंने कुल वृद्धो से सुना है, शास्त्रों से जाना है कि यह जल

दूतः—विषादेनावृतो नोपगच्छति ।

सर्वे—कस्तस्य विषादः ?

दूतः—श्रोतुमर्हति महाराजः । यत् तत्सम्बन्धि सन्निकृष्टं कीचकानां भ्रातृशतं,

> रात्रौ छन्नेन केनापि बाहुभ्यामेव हिंसितम् ।
> दृश्यते हि शरीराणामशस्त्रजनितो वधः ॥ ५१ ॥

सर्वे—कथमशस्त्रजनितो वध इति ।

---

**दूतः**—विषादेन कष्टेन पीडया वा आवृतः पीडित, न नहि, उपगच्छति आयातीति भावः ।

**सर्वे**—कः कुतः, तस्य विराट्नृपते, विषादः कष्टम् ?

**दूतः**—श्रोतुम् आकर्णितुम्, अर्हति शक्नोति, महाराजः नृपतिः । यत् तत्सम्बन्धि विराट् नृपते. आत्मीयजन., सन्निकृष्टम् अत्यासन्नम्, कीचकानाम् भ्रातृशतम् शतसंख्यका. कीचकाः ।

**व्याख्या**—रात्रौ निशीथे, छन्नेन गुप्तरूपेण, बाहुभ्यामेव करमुष्ट्यादिभ्यामेव केनापि अपरिचितेन जनेनापि, हिंसितम् मारितम्। केवलमुष्ट्याघातेनैव शतसंख्यकाः विराट्श्याला' कीचकबन्धवः केनापि हताः। मुष्ट्याघातहनने प्रमाणमाह—दृश्यत इति । शरीराणाम्मृतकीचकदेहाना अशस्त्रजनितः शस्त्राघातरहित, वध. मारणम्, दृश्यते अवलोक्यते । तेषा मृतशरीरे शस्त्राघातजनितचिह्नानामनुपलब्धि. । तेन बाहुभ्यामेव हिंसित इति भावः ॥ ५१ ॥

**सर्वे**—कथम् केन प्रकारेण, अशस्त्रजनित' शस्त्राघातरहित, वध. हिंसा इति ।

---

**दूत**—नही श्रीमान् वे अभी कुछ कष्ट मे पड़े हैं ।

**सभी**—उन्हे क्या तकलीफ है दूत !

**दूत**—तो सुने महाराज, उनके निकट सम्बन्धी सौ भाई कीचको का—

किसी ने रात मे ही हाथो से वध कर डाला है । क्योकि मृतकों के शरीर पर किसी तरह के शस्त्राघात के कोई चिह्न नहीं हैं ॥ ५१ ॥

**सभी**—क्या कहा, विना हथियार के ही उन सबो की हत्या कर दी गई ?

भीष्म —कथमशस्त्रेणेति । ( अपवार्य ) भो आचार्य ! अभ्युपगम्यतां पञ्चरात्रम् ।
द्रोण —( अपवार्य ) किमर्थम् ?
भीष्म —

भीमसेनस्य लीलैषा सुव्यक्तं बाहुशालिनः ।
योऽस्मिन् भ्रातृशते रोषः स तस्मिन् कीचके गतः ॥ ५२ ॥

द्रोण —कथं भवान् जानाति ?
भीष्म —

कथं पण्डित ! कूलेषु भ्रान्तानां बाल्यचापलम् ।

---

भीष्म —कथम् इति प्रश्ने, अशस्त्रेणेति शस्त्रप्रयोगं विनैव मारिताः कीचका इति आश्चर्यस्य विषयः । ( अपवार्य ) भो आचार्य हे द्रोण, अभ्युपगम्यताम् स्वीक्रियताम्, पञ्चरात्रम् पञ्चरात्रेणैवान्विष्योपलब्धव्याः पाण्डवा इति ।

द्रोण —अपवार्य—अन्ये न शृणुयुरिति बुद्ध्याभिपताककरेणावृत्य मुखमिति बोध्यम् । किमर्थम् एतस्य कथनस्य किमाशय ।

व्याख्या—एषा श्रूयमाणा, लीला क्रीडा, बाहुशालिनः अतिशक्तिशालिनः, भीमसेनस्य पाण्डवद्वितीयस्य, सुव्यक्तम् स्पष्टं प्रतिभाति, अस्मिन् कौरवे, भ्रातृशते शतसंख्यकेषु भ्रातृषु यः रोषः क्रोधविशेषः, स असौ तस्मिन् शते कीचकादौ सूतार्यगाम् गतः । भीमादतिरिक्तः न कोऽप्यन्य एवं कर्तुम् समर्थं इति ॥५२॥

द्रोण —कथम् केन प्रकारेण, भवान् श्रीमान्, जानाति अवगतोऽसि ?

व्याख्या—पण्डित हे बुद्धिमन् द्रोण, कूलेषु, तटेषु, भ्रान्तानाम् भ्रमताम्, वत्सानाम्, वाल्यवृषभानाम्, बाल्यचापल्यम् शैशवजन्यचाञ्चल्यम्, शृङ्गस्था-

---

भीष्म—क्यों बिना हथियार के ही ( एक ओर मुँह करके ) आचार्य, अब आप पाँच रात के भीतर पाण्डवों का पता लगाने वाली शर्त स्वीकार कर लें ।

द्रोण—( एक ओर मुँह करके ) क्यों ?

भीष्म—निश्चय ही अनन्य पराक्रमी भीम के हाथों का यह खेल है । सौ भाई कौरवों पर जो उसका क्रोध था उसे उसने उन सौ भाई कीचकों पर ही उतारा ॥ ५२ ॥

द्रोण—यह आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—जानता हूँ आचार्य, किनारे पर दौड़ लगाने वाले बछड़ों

नाभिजानन्ति वत्सानां शृङ्गस्थानानि गोवृपाः ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति । हन्त ! सिद्धं कार्यम् । (प्रकाशम्) पुत्र ! दुर्योधन !
अस्तु पञ्चरात्रम् ।

दुर्योधनः—अथ किम् । अस्तु पञ्चरात्रम् ।

द्रोणः—भो भो यज्ञमनुभवितुमागता राजानः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः !
इहात्रभवान् कुरुराजो दुर्योधनः, न, न, न, मातुलसहितः, यदि पाण्डवानां

नानि शृङ्गेण खननस्थानानि, गोवृपाः बलीवर्दाः, कथम् केन कारणेन, न नहि,
अभिजानन्ति अवगच्छन्ति ॥ अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कार ॥ ५३ ॥

द्रोणः—गोवृषा इति वृषराज इति, हन्त इति प्रसन्नतायाम्, सिद्धम्
सफलम्, कार्यम् मनोरथम् (प्रकाशम् यथा स्यात् प्रकटम्) पुत्र हे सुत, दुर्योधन
गान्धारीसुत, अस्तु स्वीकृतम् तव पञ्चरात्रम् मया पञ्चरात्रेणैव पाण्डवा
अन्विष्योपलब्धव्या. ।

दुर्योधन—अथ किम् किमन्यत्, अस्तु भवतु पञ्चरात्रम् स्वीकार्यताम्
मदीयकथनम् ।

द्रोणः—भो भो इति सम्बोधने, यज्ञम् मखम्, अनुभवितुम् द्रष्टुम्, आगता
सम्प्राप्ता सम्मिलिता वा राजानः नृपतयः, शृण्वन्तु शृण्वन्तु सर्वे राजान
आकर्णयन्तु, भवन्तः श्रीमन्तः, इह अस्मिन्विषये, अत्रभवान् श्रीमान्, कुरुराज
कुरुदेशस्य नृपति, दुर्योधनः कौरवानामग्रजः, न न न नहि नहि, मातुलसहित
मातुः भ्रात्रा सहित, यदि चेत्, पाण्डवानाम् पाण्डुपुत्राणाम् प्रवृत्तिरन्वेतव्या

---

चञ्चलता और उसकी सींगो के उत्खनन स्थान को भला वृषराज कैसे नहीं
जानेगा ? ॥ ५३ ॥

द्रोण—वृषराज, तब तो काम बन गया (प्रकट) दुर्योधन, तुम्हारी पाँच
रातवाली बातें मुझे मंजूर है ।

दुर्योधन—अच्छी बात है तो रही पाँच रात की बात ।

द्रोण—इस यज्ञ मे भाग लेने वाले नृपतिगण आप लोग, कान खोलकर
सुनें, समादरणीय कुरुराज, नहीं-नहीं अपने मामा के साथ, महाराज दुर्योधन

प्रवृत्तिरुपनेतव्या, राज्यस्यार्धं प्रदास्यति किल, ननु पुत्र !

दुर्योधन —अथ किम् ।

द्रोणः—एतद् द्विस्त्रिः सम्प्रधार्यताम् ।

शकुनिः—काले ज्ञास्यामि ।

द्रोणः—ननु गाङ्गेय !

भीष्मः—( आत्मगतम् )

आचार्यस्य यदा हर्षो धैर्यमुत्क्रम्य सूचितः ।
शङ्के दुर्योधनेनैष वञ्च्यमानेन वञ्चितः ॥ ५४ ॥

---

समाचार प्राप्यते, राज्यस्यार्धम् अधिकृततराएविशेषस्वार्धभागम्, प्रदास्यति प्रदानं करिष्यति, किल निश्चयेन, नन्विति प्रश्ने, पुत्र हे सुत !

दुर्योधनः—अथ किम् कथमहि ? सत्यमिदम् कथनम् ।

द्रोण—एतत् वार्ता, द्वि द्विवारम्, त्रि निवारम् वा, सम्प्रधार्यताम् सम्यक् प्रकारेण धारणम् क्रियताम् ।

शकुनिः—काले समायाते समये, ज्ञास्यामि विचारम् करिष्यामि ।

द्रोण —नन्विति प्रश्नार्थे, गाङ्गेय हे गङ्गापुत्र भीष्म !

भीष्मः—( आत्मगतम् स्वगतम् )

व्याख्या—यदा यदि, आचार्यस्य गुरुद्रोणस्य, हर्षं प्रसन्नता, धैर्यम् गाम्भीर्यम् उत्क्रम्य अतिक्रमणम् कृत्वा, सूचितः प्रकटीकृतस्तेन शङ्के सम्भावयामि, एषः गुरुद्रोणः, वञ्च्यमानेन राज्यार्धविभाजने बाध्यमानेन दुर्योधनेन,

---

ने स्वीकार किया है यदि पाँच रात के भीतर पाण्डवों का पता लग जाय तो उन्हें राज्य का आधा भाग दे दिया जायेगा । क्यों बेटे ठीक है न ?

दुर्योधन—हाँ तो और क्या ?

द्रोण—इस बात पर दो-तीन बार विचार लो ।

शकुनि—समय आने पर सोच लूंगा ।

द्रोण—क्यों गाङ्गेय,

भीष्म—(स्वगत) आचार्य की प्रसन्नता सीमा पार कर गई है । अतः मुझे

( प्रकाशम् ) पौत्र ! दुर्योधन ! अस्ति मम विराटेनाप्रकाशं वैरम्, अथ च न यज्ञमनुभवितुमनागता इति । तस्मात् क्रियतां तस्य गोग्रहणम् ।

द्रोण —( अपवार्य ) भो गाङ्गेय ! प्रियशिष्य खलु मे तत्रभवान् विराटेश्वर। किमर्थं तस्य गोग्रहणम् ।

भीष्म —( अपवार्य ) ब्राह्मणार्जवबुद्धे !

धर्षिता रथशब्देन रोषमेष्यन्ति पाण्डवा ।

---

कुरुदेशाधिपतिना, वञ्चित प्रतारित । द्रोणस्यास्मिन्विषये प्रदर्शितातिहर्ष कदाचित् खेदे परिणतो भविष्यतीति भीष्मस्याशङ्का ॥ ५४ ॥

( प्रकाशम् स्पष्टम् ) पौत्र दुर्योधन, मम भीष्मस्य विराटेन विराटदेशाधिपतिना सह अप्रकाशम् आन्तरिकम् वैरम् विरोध, अस्ति, अथ अनन्तरम्, भवच्छ्रीमत, यज्ञम् मखम्, अनुभवितुम् द्रष्टुम्, अनागता न सम्मिलिता, तस्मात् कारणेन, तस्य विराटनृपते, गोग्रहणम् गवाम् पहरणम्, क्रियताम् निधीयतामिति।

**द्रोण** —( अपवार्य आच्छाद्य ) भो गाङ्गेय ! हे भीष्म, प्रियशिष्य प्रियोऽन्तेवासी, खलु निश्चयेन, मे मम, तत्रभवान् विराटेश्वर विराटनृपति, किमर्थम् केन कारणेन तस्य विराटनृपते गोग्रहणम् गोधनहरणमिति ।

**भीष्म** —( अपवार्य जनान्तिकम् ) ब्राह्मणार्जवबुद्धे निष्कपटाभिज्ञमतेऽस्मिन्,

**व्याख्या** —रथशब्देन स्यन्दनस्य घोषेण, धर्षिता आकृष्टकर्णा, पाण्डवा पाण्डुपुत्रा, रोषम् क्रोधम्, एष्यन्ति अभिप्यन्ते, तेषाम् युधिष्ठिरादीनाम्,

---

सन्देह है कि ठगे जाने वाले दुर्योधन से कहीं आचार्य स्वयं न ठगे जायें ॥५४॥

( प्रकट ) पौत्र दुर्योधन, विराट नरेश से हमारा आन्तरिक विरोध तो है ही, इस यज्ञ में उसने भाग नहीं लिया है तो क्यों न उसका गोधन अपहृत किया जाय ।

**द्रोण**—( एक ओर मुँह फेर कर ) अजी पितामह भीष्म, विराट नरेश तो मेरे प्रिय शिष्यों में एक है तो फिर उसका गोधन क्यों अपहृत करते हो ?

**भीष्म**—( मुँह फेर कर ) अरे ओ निश्छल ब्राह्मण देवता,

दुर्योधन के रथ की घरघराहट सुनकर ही पाण्डव भड़क उठेंगे, उनमें

अस्ति तेषां कृतज्ञत्वमिष्टं गोग्रहणे स्थितम् ॥ ५५ ॥

भटः—जयतु महाराजः। सज्जा खलु रथा नगरप्रवेशाभिमुखाय।

दुर्योधनः—

एभिरेव रथैः शीघ्रं क्रियतां तस्य गोग्रहः।
गदा यज्ञप्रशान्ता च पुनर्मे करमेष्यति ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मान्मे रथमानयन्तु पुरुषाः,—

---

कृतज्ञत्वम् उपकारज्ञत्वम्, अस्ति, गोग्रहणे गोधनहरणे, इष्टम् अभिलषितम्, उपस्थितमस्ति। अर्थात् विराटेनोपकृताः पाण्डवाः तस्य गवामपहरणे तूष्णीं भूत्वा स्थातुम् न शक्नुवन्ति, तत्प्रत्युपकारार्थं ते समराङ्गणे उपस्थिताः भविष्यन्ति। अतः अनेन गोग्रहणेन नः समीहितसिद्धिः संभविष्यतीति भावः ॥ ५५ ॥

भटः—जयतु विजयताम्, महाराजः नृपः दुर्योधनः, सज्जाः सुनियोजिताः, खलु निश्चयेन, रथाः स्यन्दनाः नगरप्रवेशाभिमुखाय हस्तिनापुरं प्रवेष्टुमानीताः स्यन्दनाः।

व्याख्या—एभिः सम्मुखे स्थितैः रथैः, स्यन्दनैः, एव शीघ्रम् त्वरितम् तस्य विराटनृपतेः, गोग्रहः गोधनापहरणम्, क्रियताम् विधीयताम्, च पुनः, यज्ञप्रशान्ता यज्ञावसरे प्रशान्ता परित्यक्तनिजव्यापारा, इयम् गदा मुद्गरम्, पुनः, मे मम, करम् हस्तम् एष्यति, अर्थात् पुनरप्यहम् हस्ते गदा नीत्वा युद्धाय समुद्यतो भवामि ॥ ५६ ॥

द्रोणः—तस्मात्, मे मम, रथम् स्यन्दनम्, आनयन्तु आहरन्तु, पुरुषाः राजभृत्याः।

---

कृतज्ञता तो है ही, वे सामने आजायेंगे और आपका काम अपने आप बन जायेगा समझे देवता ॥ ५५ ॥

भट—महाराज की विजय हो, नगर मे प्रवेशार्थ रथ तैयार है श्रीमन्।

दुर्योधन—बस, इसी रथ से विराट के गोधन का अपहरण किया जाय। यज्ञ के कारण शान्त बनी मेरी यह गदा फिर से मेरे हाथ मे चमके ॥ ५६ ॥

द्रोण—मेरा रथ लाओ।

शकुनि:— —हस्ती ममानीयतां,
कर्णः— भारार्थं भृशमुद्यतैरिह हयैर्युक्तो रथः स्थाप्यताम् ।
भीष्म:— बुद्धिर्मे त्वरते विराटनगरं गन्तुं धनुस्त्वर्यतां
सर्वे—
मुक्त्वा चापमिहैव तिष्ठतु भवानाज्ञाविधेया वयम् ॥ ५७ ॥
द्रोण —पुत्र ! दुर्योधन ! आवां तव युद्धे पराक्रमं द्रष्टुमिच्छाव. ।

---

शकुनिः—मम गान्धारनृपतेः, हस्तीगजः, समानीयताम् आनय ।

कर्णः—भारार्थम् भारम् वोढुम्, भृशम् अत्यर्थम्, उद्यतैः तत्परैः, इह अस्मिन् स्थाने, हयैर्युक्तः अश्वैः संयोजितः, रथः स्यन्दनः, स्थाप्यताम् आनीयताम्।

भीष्मः—मे मम भीष्मस्य, बुद्धिः प्रज्ञा, विराटनगरम् विराटनृपतेः राजधानीम्, गन्तुम् चलितुम् त्वरते शीघ्रताम् करोति, मम धनुः चापम् त्वर्यताम् शीघ्रमेव समानीयताम् ।

सर्वे—भवान् श्रीमान् चापम् धनुः, मुक्त्वा परित्यज्य, इहैव अत्रैव, तिष्ठतु स्थीयताम् वयम् सर्वे जनाः, आज्ञाविधेया श्रीमदाज्ञानुवर्त्तिनः । अस्मिन् कार्ये वयमेव पर्याप्ताः अस्मासु सत्सु श्रीमतः तत्र गमनमनुपयुक्तम् तस्मादत्रैव तिष्ठन्तु भवन्त इत्याशयः । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ५७ ॥

द्रोणः—पुत्र हे सुत, दुर्योधन गान्धारीसुत, आवाम् अहम् भीष्मश्च, तव भवतः, युद्धे रणे, पराक्रम विक्रमम् पुरुषार्थम् वा, द्रष्टुम् अवलोकितुम्, इच्छावः अभिलषाव ।

---

शकुनि—मेरा हाथी सजाया जाय ।

कर्ण—भार ढोने मे समर्थ मजबूत घोडो वाला रथ मेरे लिए लाया जाय।

भीष्म—विराट नगर जाने के लिए मेरा मन चचल हो उठा है, शीघ्र मेरा धनुष लाओ ।

सभी—आप अपना धनुष रख दें, वहाँ जाने के लिए आप के वशवर्त्ती हम लोग ही पर्याप्त हैं ॥ ५७ ॥

द्रोण—बेटा दुर्योधन, हम लोग, रणाङ्गण में तुम्हारा पुरुषार्थ देखना चाहते हैं ।

दुर्योधन'—यदभिरुचितं भवते ।

द्रोण'—वत्स ! गान्धारराज ! अस्मिन् गोग्रहणे तव खलु प्रथमरथ' ।

शकुनि —बाटम् । प्रथम कल्प' ।

( निष्क्रान्ता सर्वे )

इति प्रथमोऽङ्कः ।

---

दुर्योधनः—यत् यथा, अभिलषितम्, भवते गुरवे ।

द्रोण'—वत्स सुत, गान्धारराज शकुनि, अस्मिन् एतस्मिन्, गोग्रहणे गोधन-हरणे, तव भवत', खलु निश्चयेन, प्रथमरथ' सर्वतोऽग्रे श्रीमत रथ एव गच्छतु ।

शकुनिः—बाटम् स्वीकृतम्, प्रथमः कल्प मुख्यो विषय ममैवेति प्रथमम् तावदिदम् कर्तव्यमिति । इति निष्क्रान्ता' सर्वे इति अङ्कसमाप्तिम् सूचयति । तदुक्त साहित्यदर्पणेऽङ्कलक्षणनिरूपणे—

प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वल' ।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसयुत' ॥
विच्छिन्नावन्तरै ......... .......... ।
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तोभावरसोद्भवै. ।
अन्तनिष्क्रान्तनिखिल. पात्रोऽङ्क इति कीर्तित , इति ॥

इति विमलाव्याख्याया प्रथमोऽङ्क' ।

---

दुर्योधन—आप का जो आदेश ।

द्रोण—वत्स गान्धार नरेश, गोग्रहण में तुम्हारा रथ पहला होगा ।

शकुनि—अच्छी बात है, ठीक है ।

( सभी जाते हैं )

प्रथम अङ्क समाप्त

# अथ द्वितीयोऽङ्क.

( तत प्रविशति वृद्धगोपालक )

वृद्धगोपालक —गावो मेऽहीनवत्सा भवन्तु। अविधवाश्च गोपयुवतयो
( गावो मे अहीणवच्छा होन्तु। अविहवा अ गोवजुवदीओ)
भवन्तु। अस्माक राजा विराट एकच्छत्रपृथिवीपतिर्भवतु। महा
( होन्तु। णो लाआ विलाडो एक्कच्छत्तपुहुवीपदो होदु। मह )
राजस्य विराटस्य वर्षवर्धनगोप्रदाननिमित्तमस्या नगरोपवीथ्या
( लाअस्स विलाडस्स वष्पवड्ढणगोप्पदाणणिमित्त इमस्सि णअलोववणवीहीए)
मागन्तु गोधन सर्वे च कृतमङ्गलामोदा गोपदारका दारिकाश्च

---

अथ प्रथमाङ्कसूचिता विराटस्य गोधनग्रहणे गदा वृत्वा युद्धोद्यतस्य दुर्योध
स्यातिविकला दशा विवर्णयिषन् तत्प्रवेशाय वृद्धगोपालकस्य प्रवेश तदवदा—
तत प्रविशति वृद्धगोपालक ।

**वृद्धगोपाल** —गाव धेनव, मे मम, अहीनवत्सा जीवद्वत्सा, भव तु म त,
अविधवा वैधव्यरहिता गोपयुवतय ग्वालवध्व, भवन्तु यातु, अस्माकम
प्रजानाम्, राजा नृपति, विराट एकच्छत्रपृथिवीपति सकलाया भुवो भर्ता
भवतु अस्तु महाराजस्य विराटनृपते, वर्षवर्धे गोप्रदाननिमित्तम वर्षारम्भ
गोदानाय अर्थात् स्वजन्मदिनमभिलक्ष्य प्रतिवर्षे स्वमङ्गलायायुप च लोक
गोदानादिकम कर्तुम चेष्टते, अत एव विराटोऽपि स्वज मदिनमभिलक्ष्य तस्मिं दिने
गोदानादिकम् कर्तुम यतते। अस्या पुरोवर्तिन्याम्, नगरोपवीथ्याम्, नगरोद्या
नस्यैकदेशे, आग तुम् एतम गोधनम गोरूपसम्पदम, सर्वे सकला, च पुन, कृत

---

**वृद्ध गोपाल**—मेरी गायें सदा सवत्सा रहे। यादव तरुणियाँ सदा सधवा
रहे। धरती की सार्वभौम सत्ता हमारे महाराज विराट के हाथो मे हो। आज
महाराज विराट का जन्म दिन है। इस शुभावसर पर दान करने के निमित्त
नगर के उपवन की राह पर गायें सजाई गई है। गोपबाल और बालाएँ
सजधजकर इस मङ्गलोत्सव म भाग लेने के लिए तत्पर है। इनमे सबसे बडा

(आजन्तु गोपगं पश्ये [illegible] गोपबालका बालिका च)
तावत्। एषु ज्येष्ठं [illegible]। (विलोक्य) किं नु [illegible] यावत्
(दाव। एषु ज्येष्ठ [illegible]। (विलोक्य) किं नु [illegible])
गुल्मवृक्षनारह [illegible] किम्बर
(गुल्मवृक्षं [illegible] किम्बर)
(पुरुषस्तु [illegible] च। यावद्-
विलोकि। [illegible] जा। आव)
(विलोकि। पश्यो होउ पश्यो होउ [illegible])
देखु ज्येष्ठं [illegible]। (परिक्रम्य)
(एषु ज्येष्ठ [illegible]। (परिक्रम्य)
अरे गोविन्द! गोविन्द!
(अरे गोविन्दक! गोविन्दक!)

मद्य [illegible] विहारा [illegible], [illegible], बालका गोप-
बालिकाः, [illegible], एषु [illegible], ज्येष्ठम् [illegible] ज्येष्ठेन [illegible]
[illegible], (विलोक्य दृष्ट्वा) नि-
[illegible], [illegible] इति [illegible], एव [illegible]
[illegible] दृष्ट्वा, [illegible]
[illegible], [illegible] दृष्ट्वा, विस्तरम्
[illegible]। [illegible] च पुनः।
[illegible]। [illegible]
[illegible], [illegible]
[illegible]
[illegible], आह्वानम् करोमि (परिक्रम्य [illegible]) रे गोविन्द—

[illegible] का [illegible] में प्राप्त करूँगा। (देखकर) यह [illegible] है—यह बाल
[illegible] है। इतना ही
[illegible] पर बैठकर [illegible]
नहीं सूरज की ओर मुँह करके [illegible] के [illegible] कर [illegible]
को [illegible] रहा है। ईश्वर हम सदा की रक्षा कर हमारी गायों की रक्षा
करे। अब मैं इनके बीच एक [illegible] गोप बालक और बालिकाओं को
बुलाऊँगा। (घूमकर) अरे गोविन्दक, अरे ओ गोविन्दक!

( नेपथ्ये )

किं धार्तराष्ट्रैरिति ?

भटः—आर्य ! अथ किम् ।

( प्रविश्य )

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् भ्रातृजनेष्वपि द्रोहिणाम् । एते हि,

कुलिताम् कृतेन विहितेनार्त्तनादेन भीतस्वरेणाकुलितम् पीडितम्, व., धेनूना कुलम् समूहः, समन्तत सर्वत', क्षोभ्यम् चिन्तनीयम् जायते ॥ १ ॥

चौरकृतेनोपद्रवेण संत्रस्ता वत्सा. पलायन्ते, धेनुसमूहाः, पीडामनुभवन्ति, दस्यूनाम् दर्शनमात्रेण गोवृषाः त्रस्तानना जायन्ते, धेनूनामार्त्तनादः सर्वत्र विजृम्भते, सम्पूर्णगोकुल चिन्त्यदशाम् प्राप्तम् ॥ वंशस्थं वृत्तम् ॥ १ ॥

नेपथ्ये रङ्गस्थलातिरिक्तम् यवनिकान्तरितम् नटाना वेषरचनादिस्थलम् नेपथ्यं तु प्रसाधने । रङ्गभूमौ वेषभेदे, इति । कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते इति च । वेषरचनागृहे ।

किम् कथम्, धार्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रपुत्रै. दुर्योधनादिभिः कृतमुपद्रवमिति ।

नटः—आर्य देव, अथ किम् अस्त्वेवमिति भावः ( प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा )

**काञ्चुकीयः**—एतत् इदम्, सदृशम् युक्तम्, भ्रातृजनेषु पाण्डवेषु द्रोहिणाम् द्रोहम् कुर्वताम् ये धृतराष्ट्रसुताः स्वपितृव्या. पुत्रेषु द्रोहं कुर्वन्ति ते भिन्नविराटस्य गोधनं हरेयुरिति युक्तितरमिति । एते हि—

---

के मुंह सूख रहे है, चारो ओर हाहाकार मचा है, गोवश की दशा अति चिन्तनीय हो रही है ॥ १ ॥

( नेपथ्य मे )

क्या कहा ? कौरवो ने उपद्रव मचा रखा है ?

भट, हाँ आर्य, और क्या ?

( मंच पर उपस्थित होकर )

**काञ्चुकीय**—अपने भाईयो के प्रति जलन एव ईर्ष्या रखने वाले कौरवो के लिए यह उचित ही है। ये कौरव—

मञ्जैश्चापैर्वद्धगोधाङ्गुलित्रा वर्मच्छन्ना कल्पितस्यन्दनस्था ।
वीर्योत्सिक्ता युद्धसज्जा कृतास्त्रा राज्ञो वैरं गोषु निर्यातयन्ति ॥ २ ॥

जयसेन ! जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य महाराजस्य तावदकालनिवेदा मन्युमुत्पादयति । तस्मात् पुण्याहावसाने निवेदयिष्ये ।

भट —आर्य अतिपाति कार्यमिदं, शीघ्रं निवेद्यताम् ।

व्याख्या—मञ्जैः युद्धाय तत्परैः चापैः धनुर्भिः, बद्धेऽधृते, गोधा ज्याघातवारणम् अङ्गुलित्रम् अङ्गुलित्राणम् च यैस्ते तथोक्ताः धृतगोधाङ्गुलित्राः वर्मच्छन्ना धृतकवचाः कवचेनावृतशरीराः कल्पितस्यन्दनस्थाः सुसज्जितरथे उपस्थिताः, वीर्योत्सिक्ताः, पराक्रमगर्वोद्धताः, युद्धसज्जाः संग्रामार्थं समुत्सुकाः अत एव च कृतास्त्राः गृहीतप्रहरणाः एते अकृतज्ञाः राज्ञो विराटस्य वैरम् शत्रुताम्, गोषु धेनुषु निर्यातयन्ति, प्रतिशोधयन्तीति भावः शालिनी वृत्तम् ॥ २ ॥

जन्मनक्षत्रक्रियाव्यापृतस्य जन्मदिनकृत्ये लग्नस्य, महाराजस्य नृपतेः, तावद्, अकालनिवेदनम् असमये सूचनाप्राप्तम् । मन्युमुत्पादयति अनवसरे प्राप्तसूचना कोपं जनयति । तस्मात् कारणात्, पुण्याहावसाने धार्मिके कृत्यसमाप्तौ निवेदयिष्ये कथयिष्ये ।

भट —आर्यं देव, अतिपाति शीघ्रं कथनीयम्, इदम् एतद्, कार्यम् कर्म, शीघ्रम् त्वरितम्, निवेद्यताम् कथ्यताम् ।

सभी सजाये रथों पर सवार हैं। शरीर पर कवच लगाये हैं, अंगुलियों में अंगुलित्राण लगाये धनुष ताने हैं। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ये गर्वान्वित कौरव युद्ध के लिए उद्यत हैं। महाराज के साथ दुश्मनी का बदला गायों से चुका रहे हैं ॥ २ ॥

जयसेन ! महाराज तो इस समय जन्मदिन मनाने में लगे हैं। असमय सूचना से तो कुपित होंगे। अतः इस धार्मिक कृत्य की समाप्ति पर ही उन्हें सूचित किया जायेगा।

भट—आर्य, यह काम तो जल्दी का है। उन्हें शीघ्र स्थिति से अवगत कराया जाय।

काञ्चुकीयः—इदं निवेद्यते ।

( ततः प्रविशति राजा )

राजा—

मा तावद् व्यथितविकीर्णबालवत्सा गावो मे रथरवशङ्कया ह्रियन्ते।
पीनांसश्चलवलयः सचन्दनार्द्रो निर्लज्जो मम च कर कराणि भुङ्क्ते ॥३॥

जयसेन ! जयसेन !

( प्रविश्य )

भट'—जयतु जयतु महाराज' ।

---

**काञ्चुकीयः**—इदम् एष, निवेद्यते कथ्यते । (तत तदनन्तरम्, प्रविशति प्रवेशं करोति राजा नृप. ।

**व्याख्या**—रथरवशंकया स्यन्दनशब्दसन्देहेन, व्यथितविकीर्णबालवत्सा, व्यथिता' दु खिता' अत एव च विकीर्णा यत्र तत्र प्रचलिता', बालवत्सा' नव जातवत्सा' यासां तास्तथोक्ता मे मम, गाव', धेनव', ह्रियन्ते बलान्नीयन्ते. मातावदिति कुत्सायाम्, पीनांस , स्थूलस्कन्ध , चलवलय चपलकट , सचन्दनार्द्र चन्दनेन लिप्त', मे मम कर हस्त , च पुन. कराणि भोज्यद्रव्याणि, निर्लज्ज लज्जारहित. सन् भुङ्क्ते भोजनग्रहणम् करोति प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ३ ॥

जयतु विजयतामिति, जयतु इति द्विरुक्ताभ्याम् शब्दाभ्यां आदरातिशयो द्योतते । महाराज नृप. ।

---

**काञ्चुकीय**—अभी सूचित करता हूँ ।

( राजा का प्रवेश )

**राजा**—मुझे धिक्कार है, बछड़े डर कर इधर-उधर भाग रहे हैं । गायें लुट रही हैं और मेरा यह मोटा कंधा चन्दन चर्चित हो रहा है और मेरे निर्लज्ज हाथ भोजन चख रहे हैं ॥ ३ ॥

ओ जयसेन, जयसेन—

( प्रवेशकर )

**भट**—महाराज की विजय हो, जय हो श्रीमान् की ।

राजा—अलं महाराजशब्देन । अवधूतं मे क्षत्रियत्वम् । उच्यतां रणविस्तरः ।
भटः—महाराज ! न विस्तरार्हाणि विप्रियाणि । एष समासः,

एकवर्णेषु गात्रेषु गवां स्यन्दनरेणुना ।
कशापातेषु दृश्यन्ते नानावर्णविभक्तयः ॥ ४ ॥

राजा—तेन हि,

धनुरुपनय शीघ्रं कल्प्यतां स्यन्दनो मे

---

**राजा**—अलम् व्यर्थम्, महाराजशब्देन, मदर्थं महाराजशब्दस्य प्रयोग इति । अवधूतम् विनष्टम्, मे मम विराटस्य, क्षत्रियत्वम् क्षात्रधर्मम्, अपगतम् मम क्षत्रियत्वम् यन्मयि जीवित्ते मम धेनवः धार्तराष्ट्रैरपह्रियन्ते । उच्यताम् अभिधीयताम्, रणविस्तरः विस्तरेण युद्धविवरणम् ।

**भटः**—महाराज हे नृप, न नहि, विस्तरार्हाणि विशेषरूपेण निवेदयितुमुचितम्, विप्रियाणि विगतानि प्रियकथनानि, एषः एतत् समासः संक्षिप्तरूपेण श्रूयताम्—

**व्याख्या**—स्यन्दनरेणुना रथधूलिभिः, गवाम् धेनूनाम्, गात्रेषु शरीरेषु, एकवर्णेषु समानरूपेषु गतेषु, कशाघातेषु चौरकृतकशाताडनेषु क्रियमाणेषु, नानावर्णविभक्तयः अनेकरूपप्रविभागाः, दृश्यन्ते स्फुटीभवन्तीति । तद्गुणालङ्कारः ॥ ४ ॥

**राजा**—तेन कारणेन, हि—

**व्याख्या**—मे मम, धनुः चापम्, शीघ्रम् त्वरितम्, उपनय आहर, स्यन्दनः रथः, कल्प्यताम् सज्जीक्रियताम्, यस्य पुरुषविशेषस्य यदि भक्तिः प्रीतिरस्ति

---

**राजा**—मेरे लिए महाराज शब्द का प्रयोग बेकार है भट, मेरा क्षत्रियत्व खण्डित हो चुका है, युद्धक्षेत्र का समाचार विस्तार से कहो।

**भट**—महाराज, अप्रियप्रसंग का सविस्तार वर्णन उचित नहीं प्रतीत होता। अतः श्रीमान् संक्षेप में ही सुनें—

रथ के चक्के के घर्षण से उठी हुई धूलियों के पड़ने से सभी गायों का रंग एक जैसा हो गया फिर, उन पर जो कोड़े बरसाये गये उनसे उनकी देहों पर अनेक आकृतियाँ बन गई हैं ॥ ४ ॥

**राजा**—तब तो शीघ्र ही मेरा धनुष लाओ, रथ तैयार करो, जिनके

मम गतिमनुयातुच्छन्दतो यस्य भक्तिः ।
रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ॥५॥

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । ( निष्क्रान्तः )

राजा—भोः ! किन्नु खलु दुर्योधनस्य मामन्तरेण वैरम्। इ
यज्ञमनुभवितुमनागत इति । कथमनुभवामि । कीचकाना ... वयमुपनीतसन्तापा नवृत्ताः । अथवा पराक्रमपि पाण्डवाना ...

स जन छन्दतः स्वच्छया, मम विराटस्य, गतिन् युद्धाय गमनम् अनु अनुकरणम् करोतु, गवार्थे गाहृते, रणशिरसि समराङ्गणे, प्रयत्न ... मोघ व्यर्थ नास्ति न भवति निधन रणे मरणम्, अपि ... मोक्षयित्वा यदि दस्युहस्तात् गा मोचयित्वा तु धर्म स्यात् मालिनी वृत्तम्।

भट—यत् यथा, आज्ञापयति आदिशति महाराज नृपविराट ... ( निष्क्रान्त बहिर्गत )

राजा—भो इति सबुद्धौ, किमिति प्रश्ने, नु शब्द खलु शब्दश्च वि... यद्वा खल्विति वाक्यालङ्कारे दुर्योधनस्य धार्तराष्ट्रस्य, मामन्तरेण मा ... वैरम् शत्रुताम्, आ इति स्मरणम्, यज्ञम् मखम् अनुभवितुम् द्रष्टुम्, ... न समागत इति । कथन् केन प्रकारेण अनुभवामि अनुभवितुम् समर्थो ... कीचकानाम् मम श्यालकानाम्, विनाशेन मरणेन वयम् विराटादय ... सन्तापा समानीतपरितापा, सवृत्ता सजाता । अथवा किम्वा, परोक्षमपि प्रच्छन्नभावनापि, पाण्डवानाम् युधिष्ठिरादीनाम्, स्निग्ध इति प्रोतात्मा

---

हृदय मे गायो के प्रति भक्ति है व अपनी इच्छा से मेरे साथ चले, गायों के लिए युद्ध क्षेत्र म किया गया प्रयास व्यर्थ नही होगा, यदि लड़ाई म मारे गये तो यश मिलेगा यदि गायो को छुड़ा लाये तो धर्म होगा ॥ ५ ॥

भट—महाराज की जैसी आज्ञा ।

( जाता है )

राजा—अरे दुर्योधन की दुश्मनी मेरे साथ क्यों होगी ? हाँ, जब समर्थ, उसके यज्ञ म हमने भाग नही लिया, लेता भी कैसे ? कीचकों के वध से तो हम स्वय दुःखी थे। अथवा पाण्डवो के प्रति मेरा स्नेह भी अपरोक्ष कारण हो

इति । सर्वथा योद्धव्यम् । हस्तिनपुरनिवासाच्छील्ज्ञो भगवान् दुर्योधनस्य । अथवा,

काम दुर्योधनस्यैव न दोषमभिधास्यति ।
अर्थित्वादपरिश्रान्त- पृच्छत्येव हि कार्यवान् ॥ ६ ॥

कोऽत्र ?

( प्रविश्य )

भट.— जयतु महाराज ।

---

अस्मीत्यभिधाय दूतताम् गतः । सर्वथा आक्रमणकारणम् यद्भवतु तद्भवतु प्रतिकारबुद्धया तेन सह अवश्यम् योद्धव्यम् । युद्ध कर्त्तव्यम्, हस्तिनापुरनिवासात् पूर्वं हस्तिनापुरे कृतनिवासत्वात्, शीलज्ञः स्वभावेन परिचितः, भगवान् युधिष्ठिरः अत्र सर्वत्र भगवान् शब्देन युधिष्ठिर एव बोध्यः । विराटसदनेऽनेनैव नाम्ना स प्रसिद्ध इति दुर्योधनस्य धार्त्तराष्ट्रस्येति । अथवा—

**व्याख्या**—एष भगवान्, कामम् निश्चयेन, दुर्योधनस्य धार्त्तराष्ट्रस्य दोषम् तस्य पराजयस्य साधनभूतम् किमपि छिद्रम्, न नहि, अभिधास्य वक्ष्यति, हि यतः, कार्यवान् प्रयोजनापेक्षी जनः, अर्थित्वात् कार्यवत्तीयत्वात्, अपरिश्रान्तः अखिन्न. सन्, पृच्छत्येव प्रश्नम् करोत्येव, यतस्त्वनिश्चयेऽपि कार्यार्थी जनः पृच्छत्येवेति भावः ॥ ६ ॥

कोऽत्र अस्मिन् स्थाने क. अस्तीति विराटस्य जिज्ञासा ।

भट —जयतु महाराज सर्वतोभावेन विजयताम् श्रीमान् विराटेश्वर इति ।

---

सकता है । जो हो, युद्ध तो करना ही होगा । हस्तिनापुर में रहने के कारण भगवान् तो दुर्योधन के स्वभाव से परिचित होंगे ही, अथवा-भले ही भगवान् दुर्योधन का दोष कहना न चाहे पर, मैं तो उनसे पूछूँगा ही क्योंकि कार्यार्थी प्रार्थना करने में तो थकेगा नहीं, पूछेगा ही ॥ ६ ॥

कौन यहाँ है ?

( भीतर आकर )

भट—महाराज की विजय हो ।

उद्योगः प्रस्तुतः कस्माच्छ्रीर्न सन्तोषमिच्छति ।
पीडयिष्यति सोत्सेकान् पीडितान् मोक्षयिष्यति ॥ ८ ॥

राजा—भगवन् ! गोग्रहणादवमानितोऽस्मि ।

भगवान् – केन ?

राजा—धार्तराष्ट्रैः ।

भगवान्—धार्तराष्ट्रैरिति । ( आत्मगतम् ) भो ! कष्टम्,

---

**व्याख्या**—कस्मात् केन हेतुना, उद्योगः युद्धाय कृतपरिश्रम, प्रस्तुत सज्जीकृत', किमितिप्रश्ने—श्री' सम्पत्तिः, सन्तोषम् तृप्तिम्, न नहि, इच्छति वाञ्छति, प्राप्तादधिकम् धनमीहमान. परानाक्रमितुमभिलषतीति भाव । रणोद्योगे द्वयीविधा क्वचित् गर्वोद्धतपुरुषस्य गर्वहरणमुद्देश्यम् क्वचिच्च पीडितानाम् पीडाहरणमुद्देश्यम्भवतीति भाव । उभययुद्धे भवान् किमुद्देश्यम् पृच्छति—सोत्सेकान् गर्वोद्धतपुरुषान्, पीडयिष्यति गर्वम् हरिष्यति अथवा पीडितान् दुःखितान् मोक्षयिष्यति आपदस्त्राण कारयिष्यति भवान् इति भाव ॥ ८ ॥

**राजा**—भगवन् इति सम्बुद्धौ, गोग्रहणात् गोधनापहरणात्, अवमानितोऽस्मि अपमानितोऽहम् ।

**भगवान्**—केन केन पुरुषविशेषेणापमानितोऽसि भवान् इत्याशय ।

**राजा**—धार्तराष्ट्रैः धृतराष्ट्रसुतैः अपमानितोऽस्मि ( आत्मगतम् स्वगतम् ) भो' इति सम्बोधने कष्टम्—खेदम् ।

---

यह युद्ध की तैयारी कैसी है ? क्या इतना बड़ा साम्राज्य पाकर भी आपको सम्पत्ति से संतोष नहीं है ? अथवा किसी गर्वीले का गर्व भङ्ग कीजियेगा या किसी पीडित को पीडा से त्राण दिलाइयेगा ॥ ८ ॥

**राजा**—*भगवन्, मेरी गायों का अपहरणकर मुझे अपमानित किया है ।*

**भगवान्**—किसने ?

**राजा**—कौरवों ने ।

**भगवान्**—धृतराष्ट्र के बेटों ने ? (अपने आप ) हाँ गजब हो गया ।

एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ।
वैरप्रियैर्न्तर्हि कुरुभिरपराद्धे यत्नत्वमस्माभिरिवापराद्धम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् ! किमिदानीं विचारयत ।

भगवान्—न खलु किञ्चित् । तेनाकुलम् ।

---

व्याख्या—लोके अस्मिन् संसारे, एकोदकत्वम् एकस्मिन्नेव कुले जन्मग्रहणत्वम्, खलु नाम अत्र सम्भाव्ये नामनच्छक्ष निश्चयार्थम्, मनस्विनाम् बुद्धिमताम्, मनांसि चेतांसि, कम्पयते भेदयति, हि यत, तैः धृतराष्ट्रपुत्रैः, वैरप्रियैः कलहप्रियैः, कुरुभिः निहिते अपराधे घेतूनामपहरणरूपेऽकार्ये अनुष्ठिते, सत् यथा, मत्पद् यथार्थेन, अस्माभिः पाण्डवादिभिः इव यथा, अपराद्धम् एव...नराधमैव भावयाम । युधिष्ठिरस्य चिन्ता—अनार्जितविनाशिता पुरुषार्थलक्षिता वर्णिवस्था, सामञ्जस्य...रिणी च सुयोधनीयमनीषामवति, दुर्योधनादिनिर्मलुः वैरत्निर्देशः यत् गाण्डीवोपयमपराध कृतः तेन एकस्मिन्कुले उत्पन्नत्वेन मम मानसगतिम् विविधपरिस्थितिवशीभावित्वात् मासुद्वेल्यति, यता हि स्वकृतम् इवापराधं भावयाम, अन्यायस्य केवलम् समानोदकत्वमेव, सगोत्रजत्वेन सत्यपि विरोधे सम्बन्धो न निवर्तते तत हि समानोदकत्वसम्बन्धो मनस्विना दुःखदायक इति भावः । उपजाति वृत्तम् ॥ ९ ॥

राजा—भगवन् हे युधिष्ठिर, किम् क विषयमवलम्ब्य, इदानीम् अधुना, विचार्यते, विचारम् करोषि ।

भगवान्—न नहि, खलु निश्चयेन, किञ्चित् विमर्शः, केवलं दुर्योधनादीनाम् कृते अत्यन्तं चिन्तितः ।

---

एकवंशज विचार विवेकी हृदय को कंपा देता है यद्यपि विरोधप्रेमी कौरवों ने अपराध किया है फिर भी एकवंशीय होने के कारण मुझे लगता है जैसे क्रूर हमने ही किया है ॥ ९ ॥

**राजा**—भगवन् आप मन्द क्या सोच रहे हैं ?

**भगवान्**—कुछ नहीं, मैं उन कौरवों के लिए ही तो दुखी हूँ ।

राजा—( उत्थाय कृताञ्जलिः ) कथं तत्रभवान् गाङ्गेयोऽपि प्राप्तः ।
भगवान्—( आत्मगतम् ) साधु धर्षितेनापि नातिक्रान्तः समुदाचारः । भोः !

किमर्थं खलु सम्प्राप्तः कुरूणां गुरुरुत्तमः ।
शङ्के तीर्णा प्रतिज्ञेति स्मारणं क्रियते मम ॥ १२ ॥

राजा—कोऽत्र ।

---

सर्वेषाम् महापुरुषाणाम् रथोत्कम्पचलत्पताकैः स्यन्दनसंचारेण कम्पमानध्वजदण्डैरेव वयम् विराटपरिजनाः पराजिताः न तु बाणैः शरैरिति इन्द्रवज्रावृत्तम्।

**राजा**—( उत्थाय कृताञ्जलिरिति भीष्मं प्रत्यादरप्रकाशाय श्रद्धाञ्जलिर्भूत्वा ) कथम् इत्याश्चर्ये, तत्रभवान् गङ्गापुत्रत्वेन माननीयः गाङ्गेयोऽपि पितामहभीष्मोऽपि, प्राप्तः अस्मिन् युद्धे समागतः ।

**भगवान्**—( आत्मगतम् स्वगतम् ) साधु सुष्ठु, धर्षितेनापि अपमानितेनापि, अतिक्रान्तः नोल्लङ्घितः, समुदाचारः सम्यक् आचरणम्, भोः इति सम्बुद्धौ ।

**व्याख्या**—कुरूणाम् कुरुवंशोद्भवानाम्, उत्तमः श्रेष्ठः, गुरुः पितामहभीष्मः किमर्थम् केन हेतुना, सम्प्राप्तः अस्मिन् युद्धे समागतः, शङ्के तर्कयामि, प्रतिज्ञा अज्ञातवासरूपा प्रतिज्ञा तीर्णा समुत्तीर्णा अर्थात् सुष्ठुरूपेण समापिता, इति उक्तम्, मम पाण्डवानाम्, स्मारणम् स्मरणस्य भावः स्मारणम् क्रियते बोध्यते युष्माभिः सम्यक् प्रकारेणाज्ञातवासः निगूढः इति अस्माकम् स्मारयितुमेव पितामहोऽत्र समागतोभवेदिति मदीया शङ्केति ॥ १२ ॥

**राजा**—कोऽत्र अस्मिन् स्थाने कः परिजनः वर्तते इति भावः ।

---

चालन से कम्पित ध्वजदण्डों को देखकर ही हम पराजित हो गये हैं ॥ ११ ॥

**राजा**—( उठकर और हाथ जोड़कर ) क्या कहा समादरणीय पितामह भीष्म भी आये हैं ? भगवान् ( अपने आप ) ठीक है, अपमानित होकर भी महाराज विराट ने अपने औचित्य का परित्याग नहीं किया है ।

भला कौरवों के पितामह भीष्म यहाँ क्यों आये हैं ? लगता है अज्ञातवास की मेरी अवधि समाप्त हो गई है, इसी की याद दिलाने वे आये हैं ॥ १२ ॥

**राजा**—कोई यहाँ है ?

( प्रविश्य )

भट'—जयतु महाराज ।
राजा—सूतस्तावदाहूयताम् ।
भट—यदाज्ञापयति महाराज ।

( निष्क्रान्त )

( प्रविश्य )

सूत —जयत्वायुष्मान् ।
राजा—

रथमानय शीघ्रं मे श्लाघ्य प्राप्तो रणातिथि ।
तोषयिष्ये शरैर्भीष्मं जेष्यामीत्यमनोरथ ॥ १३ ॥

---

( प्रविश्य मञ्चे उपस्थितो भूत्वा )

भटः—जयतु महाराज जयत्वित्यादि आचारः स्वोपस्थितिम् सूचयति ।
राजा—सूत स्यन्दनमचालक , तावदित्यवधारणे, आहूयताम् आकार्यताम् ।
भट—यदाज्ञापयति यथादिशति महाराज विराटेश्वर इति । (निष्क्रान्तः प्रस्थातुमारब्ध )

( प्रविश्य ततः सूतस्य प्रवेशमाह )

सूतः—जयत्वायुष्मान् सर्वोत्कर्षेण विजयताम् श्रीमान् ।
व्याख्या—शीघ्रम् त्वरितम्, मे मम विराटस्य, रथम् स्यन्दनम् आनय नीयताम् श्लाघ्य परमपूज्य., रणातिथिः समराङ्गणेऽतिथि प्राप्त समायातः शरै बाणै भीष्मम् तमतिथिम् तोषयिष्ये युद्धेन प्रसादयिष्यामि, रणेभीष्मम्

---

( प्रवश करके )

भट—जय हो महाराज की ।
राजा —सारथी को बुलाओ ।
भट—महाराज की जैसी आज्ञा ( जाता है )

( प्रवेश करके )

सारथी—जय हो महाराज की ।
मेरा रथ जल्दी लाओ, भीष्म पितामह रण के मुख्य अतिथि हैं, उन्हें जीत

अनुज्ञातोऽसि किं तेन न राज्ञा सारथिर्भवान् ॥ १६ ॥

सूत:—प्रसीदत्वायुष्मान्। रथं सङ्कल्पयित्वा तु सूतसमुदाचारेणोपस्थित खल्वहम्। कुमारेण,

किन्नु तत् परिहासार्थं किन्नु तत्रास्ति कौशलम्।
मामतिक्रम्य सारथ्ये विनियुक्ता बृहन्नला ॥ १७ ॥

राजा कथं बृहन्नलेति।

भगवान्—राजन्! अलमलं सम्भ्रमेण।

---

रथम् स्यन्दनम्, किम् कुत, न नहि, वाहितवान्, भवान् त्वम्, राज्ञाम् नृपतीनाम्, सारथिः रथवाहक', असि, भवसि तेन राजकुमारेण, किम् कथम् त्वाम् न नहि अनुज्ञातः आज्ञापितः युद्धं गन्तुम् ॥ १६ ॥

सूतः—प्रसीदतु प्रसन्नो भवतु, आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, रथम् स्यन्दनम्, सङ्कल्पयित्वा सज्जीकृत्य तु, सूतसमुदाचारेण सारथिपदेनाहम् तत्र उपस्थितो बभूव तु किन्तु, कुमारेणोत्तरेण—

**व्याख्या**—माम् सारथिम्, अतिक्रम्य परित्यज्य बृहन्नलानाम विराट्कन्याचास्तौर्यत्रिकाचार्या, सारथ्ये रथवाहकपदे, विनियुक्ता अध्यारोपिता, तन्न जाने तत् परिहासार्थम् बृहन्नलाया' उपहासाय तत्पद प्रदत्तमथवा बृहन्नलायाः सत्यमेव तत्र तस्मिन् किमपि कौशलम् चातुर्यमस्ति ॥ १७ ॥

**राजा**—कथं बृहन्नलेति वदतो विराटस्याश्चर्यं व्यक्तं भवति बृहन्नलायाः क्लीवत्वेन सूतकर्मणि अनुपयुक्तत्वात्।

**भगवान्**—राजन् हे नृप, अलमलम् निरर्थकम्, ससम्भ्रमेणावेगेनेति।

---

तो अनुभवी राजाओं के सारथी हो। फिर तुम्हे राजकुमार ने रथ-संचालन की अनुमति क्यों नहीं दी? ॥ १६ ॥

**सारथी**—क्षमा करें श्रीमान् रथ सजाकर मैं सारथी के रूप मे उनके सामने उपस्थित हुआ किन्तु पता नहीं कुमार ने मेरे परिहास के लिए अथवा बृहन्नला की किसी खास विशेषता के कारण मुझे छोड़कर उसे सारथी पद पर नियुक्त किया ॥ १७ ॥

**राजा**—क्यों बृहन्नला को सारथी बनाया गया?

**भगवान्**—महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है।

यदि स्वचक्रोद्धतरेणुदुर्दिनं रथं समास्थाय गता बृहन्नला।
परान् क्षणेनैमिरथैर्निवारयन् विनापि बाणान् रथ एव जेष्यति ॥ १८ ॥

राजा—तेन हि शीघ्रमन्यो रथः कल्प्यताम्।

सूत —यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। ( निष्क्रान्तः )।

( प्रविश्य )

भट —भग्नः खलु कुमारस्य रथः।

---

व्याख्या—यदि चेत्, स्वचक्रोद्धतरेणुदुर्दिनम् निजरथचक्रोत्थापितधूलिवर्षाकरम्, रथम् स्यन्दनम् समास्थाय समुचितरूपेणारुह्य, बृहन्नला नपुंसकभावापन्नोऽज्ञातवासस्थोऽर्जुन, गता प्रस्थिता तदा तर्हि क्षणे क्षणमात्रेणैव, नेमिरथैः चक्रपरिधिशब्दैः परान् अरीन्, निवारयन् निषेधयन्, रथ एव स्यन्दन एव बाणान् शरपातान् विनापि जेष्यति विजयमाप्स्यति। वंशस्थ वृत्तम् ॥१८॥

राजा—तेन कारणविशेषेण, हि यत, शीघ्रम् अन्य अपर, रथ स्यन्दन कल्प्यताम् सज्जीक्रियताम्।

सूत —यदाज्ञापयत्यायुष्मान् यथा भवतादिष्टं तथा करोमीत्यर्थ (निष्क्रान्त रङ्गशालात निर्गत सूत )

( प्रविश्य रङ्गशालायामुपस्थितो भूत्वा )

भट —भग्न कुमारस्य उत्तरस्य, स्यन्दन खलु निश्चयेनेति।

---

यदि नपुंसक बृहन्नला ही सारथी बन कर गई है तो निश्चय ही उसके रथ के पहिये में उठी हुई धूलि आकाश में मेघमाला की सरचना करेगी। इतना ही नही उसका रथ, पवके की आवाज से ही दुश्मनो को जीतकर क्षण भर म ही लौट आयेगा। कुमार को बाण चलाने की भी आवश्यकता नही होगी ॥ १८ ॥

राजा—तो फिर शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो न।

सूत—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा। ( जाता है )

( प्रवेश कर )

भट—कुमार का रथ पराजित हो गया।

राजा—कथं भग्नो नाम।

भगवान्—कथमिदानीं भग्नो नाम।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराजः।

बहुभिः समराभिज्ञैराच्छन्नाश्वपथः परैः।
भग्नो गहनलोभेन श्मशानाभिमुखो रथः॥ १९॥

भगवान्—(आत्मगतम्) आ अत्र खलु गाण्डीवम्। (प्रकाशम्) भो राजन्!

निमित्तं किञ्चिदुत्पन्नं श्मशानाभिमुखे रथे।

**राजा**—कथमित्याश्चर्यं, भग्नः पराजितः नाम।

**भगवान्**—कथम् कुमारस्य पराजयत्वमसंभाव्य भवतः जिज्ञासेति, इदानीं अधुना भग्नो नामेति प्रश्नः।

**भटः**—श्रोतुम् आकर्णितुम् अर्हति शक्नोति महाराजः नृपविराटः।

**व्याख्या**—बहुभिः अनेकैः, समराभिज्ञैः रणकुशलैः, परैः अरिभिः, आच्छन्नाश्वपथः आच्छन्नः आवृतः अश्वपथः रथगमनमार्गः, निरुद्धमार्गमवलोक्य कुमारस्य रथः स्यन्दनः, गहनलोभेन आत्मसंरक्षणहेतुना, श्मशानाभिमुखं श्मशानमभिलक्ष्य तस्यामेव दिशायाम् भग्नः प्रतिनिवृत्तो यातः॥ १९॥

**भगवान्**—(आत्मगतम् स्वगतम्) आः स्मृतम्, अत्र अस्मिन् स्थाने, खलु निश्चयेन, गाण्डीवः गाण्डीवनामकं धनु, अस्ति, (प्रकाशम् सर्वश्राव्यम्) भो राजन् हे नृप—

**व्याख्या**—रथे स्यन्दने, श्मशानाभिमुखे श्मशानमभिलक्ष्य चलिते सति किञ्चित् किमपि, निमित्तम् शुभकारणम्, उत्पन्नम् जातम्, तत्तु यत्र यस्मिन्

---

**राजा**—क्या कहा? कुमार का रथ पराजित हो गया?

**भगवान्**—वाह, इस समय कैसे पराजित हो गया?

**भट**—सुनिए श्रीमान्,

युद्ध कला में प्रवीण योद्धाओं ने सहसा रथ का मार्ग रोक लिया, फिर आत्मरक्षार्थ सारथी ने रथ लेकर श्मशान की ओर प्रस्थान किया॥ १९॥

**भगवान्**—(अपने आप) हाँ, अब बात समझ में आई। श्मशान में ही तो अर्जुन का गाण्डीव रक्खा है। (सुनाकर) महाराज, मुझे तो लगता है

धार्तराष्ट्राः स्थिता यत्र श्मशानं तद् भविष्यति ॥ २० ॥

राजा—भगवन् ! अकाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति ।

भगवान्—अलं मन्युना । कदाचिदनृतं नोक्तपूर्वम् ।

राजा—आः अस्त्येतत् । गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । ( निष्क्रान्तः )

राजा— को नु खल्वेष सहसा कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

---

स्थाने स्थिताः उपस्थिताः, धार्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रसुताः तत् स्थानम् निश्चयेन श्मशानम् अन्तिमसंस्कारभूमिः भविष्यति यास्यति ॥ २० ॥

**राजा**—भगवन् हे युधिष्ठिर, अकाले असमये, स्वस्थवाक्यम् सुवचनम्, मन्युम् क्रोधम्, उत्पादयति उत्पन्नं करोतीति ।

**भगवान्**—अलम् व्यर्थम्, मन्युना कोपेन, कदाचित् कदापि, अनृतम् असत्यम्, न नहि, उक्तम् कथितम्, पूर्वम् अतीते ।

**राजा**—आः इत्याश्चर्ये, अस्ति भवति, एतत् तव कथनम् सत्यम्, गच्छ याहि, भूयः पुनरपि, ज्ञायताम् बुध्यताम्, वृत्तान्तः रणसमाचारः ।

**भटः**—यदाज्ञापयति यथादिशति, महाराजः सम्राट् ( निष्क्रान्तः रङ्गशालातः निर्गतः )

**व्याख्या**—को नु खलु एषः शब्दः सहसा हठात्, मेदिनीम् धरित्रीम्, कम्पयन् चालयन् इव यथा आविद्धः वक्रीभूतः, नदीस्रोतः सरित्प्रवाह

---

कि जब रथ श्मशान की ओर गया है तो रणभूमि श्मशान ही बनकर रहेगी ॥ २० ॥

**राजा**—भगवन्, असमय में कहे गये शुभ सूचक स्वस्थवाक्य भी क्रोध उत्पन्न करता है ।

**भगवान्**—क्रोध की आवश्यकता नहीं है, इससे पहले तक मेरी कोई बात झूठ नहीं हुई है महाराज ।

**राजा**—हाँ यह तो है । फिर भी भट, तुम जाकर वहाँ का पता करो ।

**भट**—जैसी आज्ञा ( जाता है ) ।

**राजा**—सहसा धरती को कँपा देने वाली यह आवाज कहाँ से आ रही है ?

नदीस्रोत इवाविद्ध क्षणात् सवर्तते ध्वनि ॥ २१ ॥

ज्ञायता शब्द ।

( प्रविश्य )

भट—जयतु महाराज । श्मशानान्मुहूर्तविश्रान्ततुरगेण कुमारेण तु,

भगवान्—एष मामनृतवादिन न कुर्यात् ।

राजा—किं कृत कुमारेण ?

भट—

कृता नीला नागा शरशतनिपातेन कपिला

---

इव यथा, ध्वनि रव, क्षणात् निमिषात् सवर्तते प्रादुर्भवतीतिभाव ॥ २१ ॥

ज्ञायताम् परिचीयताम् शब्द इत ।

( प्रविश्य समरवृत्तान्त ज्ञात्वा दुर्योधनस्य दुरवस्था च विलोक्य भट प्रविश्याह )

भट.—जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयताम् महाराज ; विराटराज । श्मशानाद् शवदाहस्थानाद् मुहूर्तम् क्षणम्, विश्रान्ततुरगेण स्वरथेभ्यो विश्रामावसर प्रदाय, कुमारेण तु ।

भगवान्—एष पुरोवर्त्ती सवाददाता, माम् युधिष्ठिरम्, अमृतवादिनम् मिथ्यावादिनम् न कुर्यात् साधयेदिति ।

राजा—किं कृतम् युद्धे, किं विधत्तम्, कुमारेणेति ?

व्याख्या—शरशतनिपातेन अगणितबाणवर्षणेन, नीला कृष्णवर्णा, नागा

---

लगता है नदी की धारा उलट गई हो ॥ २१ ॥

देखो, यह आवाज कैसी है ?

( प्रवेश करके )

भट—महाराज की जय हो । श्मशान में कुछ पल अपने घोड़ों को विश्राम देकर कुमारने,

भगवान्—शायद यह मुझे मिथ्यावादी न सिद्ध कर दे ।

राजा—कुमार ने क्या किया ?

भट—सैकड़ों बाणों के प्रहार से उनके मदमत्त काले हाथियों को लाल

हयो वा योधो वा न वहति न कश्चिच्छरक्षतम् ।
शरैः स्तम्भीभूता शरपरिकराः स्यन्दनवराः
शरैश्छन्ना मार्गाः स्रवति धनुरुग्रा शरनदीम् ॥ २२ ॥

भगवान्—( आत्मगतम् )

एतदक्षयतूणित्वं येन शक्रस्य खाण्डवे ।
यावत्यः पतिता धारास्तावन्तः प्रेषिता शराः ॥ २३ ॥

राजा—अथ परेष्विदानीं को वृत्तान्तः ।

---

राजा, कपिला रक्तवर्णा कृता निर्मिता, हयः अश्वः वा योधः शूरवीरः, वा न कश्चित् न कोऽपि, शरक्षतम् गमनस्यके बाणैः क्षतानि, न वहति न धारयत्येवेति, शरपरिकराः बाणेनावृत्ताः स्यन्दनवराः रथश्रेष्ठाः शरैः कुमारविसृष्टवाणैः, स्तम्भीभूताः स्थिरत्वम् याताः निश्चलीकृता इत्यर्थः, मार्गाः रणभूमिपथाः, शरैः छन्नाः बाणैः व्याप्ताः, धनुः कुमारस्य चापः, उग्राम् अतिभीषणाम्, शरनदीम् बाणानाम् नदीम् स्रवति प्रवाहयति । शिखरिणी वृत्तम् ॥ २२ ॥

भगवान्—( आत्मगतम् स्वगतम् )

व्याख्या—एतत् अविरलशरवर्षित्वम् धनुषः, अक्षयतूणीरत्वम् शरक्षयरहिततूणीरभावः, येन गाण्डीवेन, खाण्डवे खाण्डवनामकारण्ये, यावत्यः यत्संख्याकाः, शक्रस्य देवराजेन्द्रस्य, धाराः जलवृष्टयः पतिताः स्रविताः तावत्कालपर्यन्तम् शराः बाणाः, प्रेषिताः ॥ २३ ॥

**राजा**—अथ अनन्तरम्, परेषु अरिषु, इदानीम् सम्प्रति, कः किम्, वृत्तान्तः अर्थात् कीदृशः समाचार इति जिज्ञासा ।

---

बना डाला है । ऐसा एक भी घोड़ा या योद्धा नहीं बचा जिसे बाण से बिंध न दिया गया हो । शरों के बीच घिर कर सारे रथ गतिहीन होकर खड़े हैं । लगता है धनुष से शररूपी नदी की धारा प्रवाहित हो रही है ।

**भगवान्**—( अपने आप ) यह प्रभाव तो उन अक्षय तूणीरों का है जिन्होंने इन्द्र के प्रिय खाण्डव वन को जलाने के समय इन्द्र की जल धारा की तरह बाणों की ही वर्षा की थी ॥ २३ ॥

**राजा**—अब दुश्मनों की स्थिति क्या है ?

भटः—अप्रत्यक्ष हि तत्र मे । प्रवृत्तिपुरुषाः कथयन्ति—

धनुर्घोषं द्रोणस्तदिदमिति बुद्ध्वा प्रतिगतो
ध्वजे बाणं दृष्ट्वा कृतमिति न भीष्मः प्रहरति ।
शरैर्भग्नः कर्णः किमिदमिति चान्ये नृपतयो
भयेऽप्येको बाल्यान्न भयमभिमन्युर्गणयति ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमभिमन्यु प्राप्तः । भो राजन् !

---

भट —अप्रत्यक्षम् प्रत्यक्षरहितम्, हीति निश्चयेन, तत्र रणाङ्गणे, मे मम, प्रवृत्तिपुरुषाः वार्त्ताहराः दूता कथयन्ति—

व्याख्या—धनुर्घोषम् चापटङ्कारम्, तद् इदम् इति तस्यामुकस्य चापस्याय टङ्कार इति बुद्ध्वा ज्ञात्वा, द्रोणः गुरुद्रोणः, प्रतिगत. युद्धात् परावृत्त', ध्वजे स्वकेतौ, बाणम् शरम्, प्रहृतम् दृष्ट्वा अवलोक्य, भीष्म. गाङ्गेयः, कृतमिति व्यर्थमेव युद्धमिति बुद्ध्वा न प्रहरति बाणप्रक्षेपं न करोतीति, कर्णः राधेयः, शरैः बाणप्रहारैः, भग्नः पराजितो जात', अन्ये च ते बहवः नृपतयः किमिदमित्याश्चर्यान्विता अजायन्त । भयेऽपि भयङ्करस्थितावपि, बाल्यात् शिशुचपलतया, एकः केवलम्, अभिमन्युः अर्जुनसुतः, भयम् भीतिम्, न गणयति निर्भीकभावेन युद्ध्यते ॥ २४ ॥

भगवान्—कथमित्याश्चर्यं, अभिमन्युः सौभद्रेय', प्राप्तः समागत, भो राजन् हे नृप,—

---

भट—महाराज, इस सम्बन्ध मे मेरी प्रत्यक्ष तो कोई जानकारी नही है, पर संवाददाताओ का कहना है कि—

द्रोण ने धनुष का आवाज को पहचान कर ही युद्ध बन्द कर दिया है। अपने रथ के ध्वजो मे लगे बाणो को देखकर ही लडना बन्दकर दिया है। कर्ण बाणो से विंध गया है, अन्य राजे लगातार प्रहारो से चकरा गये है। भय के कारण सामने देखकर भी केवल अभिमन्यु लड रहा है ॥ २४ ॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु भी आया है ? हे राजन्,

युध्यते यदि सौभद्रस्तेजोऽग्निर्वंशयोर्द्वयोः ।
सारथिः प्रेष्यतामन्यो विक्लवात्र बृहन्नला ॥ २५ ॥

राजा—मा मा भवानेवम् ।

भीष्मं रामशरैरभिन्नकवचं द्रोणं च मन्त्रायुधं
कृत्वा कर्णजयद्रथौ च विमुखौ शेषांश्च तांस्तान् नृपान् ।
सौभद्रं स्वशरैर्न धर्षयति किं भीतः पितुः प्रत्ययात्
सम्पृष्टोऽपि वयस्यभावसदृशं तुल्यं वयो रक्षति ॥ २६ ॥

व्याख्या—यदि चेत्, द्वयोः वंशयोः मातृपितृकुलयोः, तेजोऽग्निः प्रतापवह्निः, सौभद्रः सुभद्रासुनः अभिमन्युः, युद्ध्यते युद्धम् करोति तदान्यः अपरः, सारथिः सूतः, प्रेष्यताम्, अत्र अस्मिन् महायुद्धे, बृहन्नला विक्लवा भयविह्वला स्यात्॥२५॥

राजा—मा मा नहि नहि, भवान् त्वम् एवम् इत्थम् वदतु—

व्याख्या—रामशरैः परशुरामबाणैः, अभिन्नकवचम् अक्षतवर्माणम्, भीष्मम् गाङ्गेयम्, च पुनः, मन्त्रायुधम् मन्त्र प्रहरणम्, द्रोणम् द्रोणाचार्यम्, कर्णजयद्रथौ अङ्गराजसिन्धुराजौ च विमुखौ कृत्वा युद्धपराङ्मुखौ, तांस्तान् शेषान् नृपान् राज्ञः, विमुखान् कृत्वा कुमारः उत्तरः किं स्वशरैः बाणैः, सौभद्रम् सुभद्रा-पुत्रम्, न धर्षयति पराजेतुं न शक्यते किम्? पितुः प्रत्ययात् अर्जुनस्य ख्यातेः, भीतः शङ्कितः सन्, सम्पृष्टोऽपि कृतमैत्रिकोऽपि, तुल्यम् समानम्, वयः अवस्थाम् वयसोः भावः समानवयसोर्हितयोर्मैत्रीभावः रक्षतीति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २६ ॥

यादव और पाण्डवों का सम्मिलित तेज अभिमन्यु यदि लड़ रहा है तो आप कुमार के रथ पर किसी अन्य सारथी को भेजें क्योंकि वहाँ आपकी बृहन्नला विवश है ॥ २५ ॥

राजा— नहीं-नहीं आप ऐसा मत कहें।

जिनके कवच परशुराम के बाणों से भी नहीं छिदे ऐसे भीष्म को, मन्त्रायुध द्रोण को, कर्ण तथा जयद्रथ को एवं अन्यान्य वीरों को युद्ध में पराजित करने वाला कुमार उत्तर क्या अभिमन्यु को अपने बाणों से पराजित नहीं कर सकेगा? सम्भव है अर्जुन की ख्याति के ख्याल से अभिमन्यु से दोस्ती करले, यह भी आयु एवं वय के विचार से उचित ही होगा ॥ २६ ॥

भटः—एष खलु कुमारस्य रथः,

> आलम्बितो भ्रमति धावति तेन मुक्तो
> न प्राप्य धर्षयति नेच्छति विप्रकर्तुम्।
> आसन्नभूमिचपलः परिवर्तमानो
> योग्योपदेशमिव तस्य रथः करोति॥ २७॥

राजा—गच्छ। भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ( निष्क्रम्य प्रविश्य ) जयतु महाराजः। जयतु विराटेश्वरः। प्रियं निवेदये महाराजाय। अवजितं गोग्रहणम्, अपय

---

भटः—एषः एतत् खलु निश्चयेन, कुमारस्य, रथः स्यन्दनः।

**व्याख्या**—तेन सारथिना, आलम्बितः अवरोधितः सन्, भ्रमति घूर्णते, मुक्तः त्यक्तप्रग्रहः सन्, धावति पलायति, प्राप्य अवसरम् लब्ध्वापि, न धर्षयति आक्रमणं न करोति, विप्रकर्तुम् पराजेतुम्, नेच्छति नाभिलषति, आसन्नभूमिचपलः प्रतिरथसमीपभूमौ अस्थिरः, परिवर्तमानः समन्ततः चरन्, रथः कुमारस्य स्यन्दनः, तस्य कुमारस्य, योग्योपदेशम् रथसञ्चालनस्योचिताभ्यासं करोति॥२७॥

**राजा**—गच्छ याहि, भूयः अतिशयम्, वृत्तान्तः संवादः, ज्ञायताम् विदि।

**भटः**—यदाज्ञापयति महाराजः यथा भवतादिष्टं तथा करोति, ( निष्क्रम्य बहिर्गत्वा, प्रविश्य पुनरागत्य ) जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षेण विजयताम् नृपति महाराजाय राज्ञे, प्रियं सुखकरम् निवेदये निवेदनं करिष्ये, अवजितम् परा

---

**भट**—ओर, यह कुमार का रथ ...

सारथी जब उसे रोक लेता है तो वह चारों ओर घूमने लगता है। और जब घोड़े की लगाम छोड़ देता है तो वे तेजी से आगे की ओर दौड़ने लगता है, दुश्मनों के रथ के पास पहुँच कर भी उस पर आक्रमण करने की अपेक्षा उसके चारों ओर चक्कर काटने लगता है, देखने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी को रणाङ्गण में रथ-सञ्चालन का अभ्यास करा रहा हो॥२७॥

**राजा**—जाओ, और अधिक सवाद लाओ।

**भट**—श्रीमान् की जैसी आज्ञा, ( बाहर निकलकर पुनः प्रवेश करके ) महाराज की जय हो, जय हो विराटेश्वर की। श्रीमान् को खुशखबरी सुनाता हूँ,

धार्तराष्ट्राः ।

भगवान्—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

राजा—न न । भगवतो वृद्धिरेषा । अथ कुमार इदानीं क ?

भटः—दृष्टपरिस्पन्दानां योधपुरुषाणां कर्माणि पुस्तकमारोपयति कुमारः ।

राजा—अहो श्लाघनीयव्यापारः खल्वयं कुमारः ।

ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा ।
अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ २८ ॥

---

जित गोग्रहणम् गवामपहरणम्, अपयाता पलायिता, धार्तराष्ट्राः कौरवा ।

भगवान्—दिष्ट्या प्रसन्नतासूचकमव्ययम्, भवान् त्वम्, वर्धते अभ्युदयं याति ।

राजा—न न नहि नहि, भगवत. श्रीमत, वृद्धि समुन्नति, एषा । अथ अनन्तरम्, इदानीम् सम्प्रति, कुमार. उत्तर, क कुत्रास्ति ?

भट—दृष्टपरिस्पन्दानाम् कृतपरिश्रमाणाम्, योधपुरुषाणाम् वीरेषु अग्रसराणाम्, कर्माणि युद्धस्थलस्य कृत्यानि, पुस्तकम् आरोपयति पुस्तके लिखति, कुमार कुमार उत्तर. ।

राजा—अहो इत्याश्चर्ये, श्लाघनीयव्यापार. प्रशंसनीयकार्यकर. खलु निश्चयेन, अयम् एष., कुमार. उत्तर. ।

व्याख्या—श्लाघनीयेन प्रशंसनीयेन, कर्मणा कृत्येन, ताडितस्य आहतस्य, योधस्य सैनिकस्य, अकालान्तरिता सद्य. कृता, पूजा सम्मानविशेष., वेदनाम् पीडाम्, नाशयत्येव ताडनव्यथाम् विनश्यत्येवेति भाव. ॥ २८ ॥

---

गोहरण मे कुमार की जीत हुई, दुश्मन जान लेकर भाग गये ।

भगवान्—महाराज, सौभाग्य से आप की विजय हुई ।

राजा—नहीं नहीं, यह तो आप का ही श्रेय है । अच्छा, अभी कुमार कहाँ है ?

भट—कुमार रणाङ्गण मे अपना कौशल दिखलाने वाले वीरो का नाम पुस्तक में अंकित कर रहे हैं ।

राजा—अरे कुमार का यह काम तो प्रशंसनीय है ।

युद्ध मे आहत वीरो के प्रशंसनीय कार्यों के लिए यदि तत्काल उनका सम्मान किया जाय तो निश्चय ही वे लड़ाई के सारे कष्टों को भूल जाते हैं ॥२८॥

जित्वापि गां विजयमप्युपलभ्य राज्ञो
नैवास्ति मे जयगतो मनसि प्रहर्षः ।
दुःशासनं समरमूर्धनि सन्निगृह्य
बद्ध्वा यदद्य न विराटपुरं प्रविष्टः ॥ ३१ ॥

उत्तराप्रीतिदत्तालङ्कारेणालङ्कृतो व्रीडित इवास्मि राजानं द्रष्टुम् । तस्माद् विराटेश्वरं पश्यामि । ( परिक्रम्यावलोक्य ) अये अयमार्यो युधिष्ठिरः,

सयौवनः श्रेष्ठतपोवने रतो नरेश्वरो ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ।

व्याख्या—गाम् गोधनम्, जित्वा अरिहस्तात् विजित्य, अपि, राज्ञः विराटनृपतेः, विजयम् जयम्, उपलभ्य प्राप्य, अपि, मे मम, मनसि चित्ते, जयगतः उत्कर्षसम्भवः, प्रहर्षः प्रसन्नता, नैवास्ति न सम्भूत एव, तत्कारणमाह—दुःशासनम् दुर्योधनानुजं, यत् यस्मात्, समरमूर्धनि समराङ्गणे, सन्निगृह्य गृहीत्वा, बद्ध्वा निगडयित्वा, अद्य अस्मिन्नेव दिने, विराटपुरम् विराटनृपते नगरम् न प्रविष्टः प्रत्यागतः ॥ ३१ ॥

उत्तरा प्रीतिदत्तालङ्कारेण विराटकन्यया प्रीत्या प्रदत्ताभूषणेन, अलङ्कृतः सुशोभितः व्रीडित लज्जित इव अस्मि भवामि, राजानम् नृपम्, द्रष्टुम् अवलोकयितुम्, तस्मात् तेन कारणेन विराटेश्वरम् विराटनृपतिम् पश्यामि अवलोकयामि, ( परिक्रम्य भ्रमित्वा, अवलोक्य दृष्ट्वा ) अये आश्चर्यम्, अयम् एषः, आर्यः मान्यः युधिष्ठिरः पाण्डवाग्रजः—

व्याख्या—सयौवनः युवावस्थायामेव, अपि, श्रेष्ठतपोवने उत्तम आश्रमे, रतः निरतः, नरेश्वरः नृपो भूत्वापि, ब्राह्मणवृत्तिमाश्रितः ब्राह्मणस्य विप्रस्य वृत्तिं

मैंने ही गायों को दुश्मनों के हाथों से छुड़ालिया, युद्ध में विजय श्री प्राप्त की किन्तु मेरे मन में जीत की कोई खुशी नहीं हुई क्योंकि मेरे मन में अभी कसक है कि मैंने दुःशासन को युद्ध भूमि से बाँधकर विराट नगर में नहीं प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

हाय, उत्तराने प्रेमोपहार के रूप में जो आभूषण दिया है, उसे धारण कर राजा के सम्मुख जाने में सकोच होता है । अच्छा तो महाराज विराट के पास जाऊँ ( देखकर ) अरे, यही तो आर्य युधिष्ठिर हैं—

इन्होंने भरी जवानी में कठोर तप किया है, राजा होकर भी ब्राह्मणवृत्ति

विमुक्तराज्योऽप्यभिवर्धितः श्रिया त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः ॥३२॥

– भगवन् ! वन्दे ।

( उपगम्य ) ( भअव ! वन्दामि । )

भगवान्—स्वस्ति ।

बृहन्नला—जयतु भर्ता ।

( जेदु भट्टा । )

राजा—

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते ।

---

आजीविकाम् आश्रितः अवलम्बितः, विमुक्तराज्यः परित्यक्तं निजसाम्राज्यम्, अपि, श्रिया कान्त्या, अभिवर्धितः सम्पन्नः, त्रिदण्डधारी त्रिदण्डधारणे कृते सत्यपि न दण्डधारकः न दण्डाधिकारसम्पन्नः । विरोधाभासालङ्कारः, वंशस्थं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

( उपगम्य समीपम् गत्वा ) भगवन्, श्रीमन् वन्दे अभिवादये ।

**भगवान्**—स्वस्ति कल्याणम् भवतु ।

**बृहन्नला**—जयतु भर्ता सर्वोत्कर्षेण विजयताम् स्वामी ।

**व्याख्या**—रूपम् स्वरूपम् शारीरिकं सौन्दर्यम्, अकारणम् आदरातिशयस्य कारणम् नास्ति, कुलम् वंशमपि अकारणम् सम्मानहेतुर्भवति, महत्सु स्वरूपवंशाधिकेषु नीचेषु निम्नकोटिजनेषु कर्म आचरणम्, शोभते सम्मानजनक

---

अपनाया है, राज्य छोड देने पर भी श्रीसम्पन्न हैं, त्रिदण्डधारी होकर भी दण्डाधिकारी नहीं रह गये हैं ॥ ३२ ॥

( समीप आकर ) भगवन्, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

**भगवान्**—तुम्हारा कल्याण हो ।

**बृहन्नला**—महाराज की जय हो ।

**राजा**—व्यक्ति चाहे ऊँच हो या नीच उसके सम्मान का कारण न तो उसका रूप होता है और न वंश गौरव ही, अपने कर्म से, ही कोई व्यक्ति

इद हि रूप परिभूतपूर्वकं तदेव भूयो बहुमानमागतम् ॥ ३३ ॥

बृहन्नले ! परिश्रान्तामपि भवतीं भूयः परिश्रमयिष्ये । कथ्यतां रणविस्तरः ।

बृहन्नला—शृणोतु भर्ता ।

( सुणादु भट्टा । )

राजा—ऊर्जितं कर्म । संस्कृतमभिधीयताम् ।

बृहन्नला—श्रोतुमर्हति महाराजः ।

( प्रविश्य )

भवति, इदम् एतत्, हि यत , रूपम् स्त्रैणम्, परिभूतपूर्वकम् अनादरस्य पात्रभूतम्, तदेव तदेव रूपम् कर्मप्रकर्षात् भूयः अतिशय, बहुमानमागतम् आदरभाजनम् अजनि ॥ अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, वंशस्थवृत्तम् ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, परिश्रान्तामपि कृतश्रमामपि, भवतीम् त्वाम्, भूयः पुनः परिश्रमयिष्ये श्रमं कारयिष्यामि । उच्यताम् कथ्यताम्, रणविस्तरः विस्तरेण रणवार्ता ।

**बृहन्नला**—शृणोतु आकर्ण्यताम्, भर्ता स्वामी ।

**राजा**—ऊर्जितम् आजस्वि, कर्म कृत्यम्, संस्कृतमभिधीयताम् देववाण्यामेव कथ्यताम् ।

**बृहन्नला**—श्रोतुम् आकर्णयितुम्, अर्हति शक्नोति महाराजः नृपतिः ।

( प्रविश्य प्रवेशम् कृत्वा )

---

प्रशंसनीय होता है। इन बृहन्नला का यह वही रूप है जिसे कल तक लोग अपमानित करते थे—आज वही आदर सम्मान का पात्र बना है ॥ ३३ ॥

बृहन्नले, मैं समझता हूँ तुम पूरी थकी हो फिर भी मैं तुम्हें कुछ कष्ट देना चाहूँगा। लड़ाई के मैदान का विस्तृत समाचार सुनाओ।

**बृहन्नला**—सुनिये महाराज।

**राजा**—संस्कृत भाषा में ही वहाँ की घटनाओं का वर्णन करो। क्योंकि, ये सारी घटनायें तेजस्वी हैं।

**बृहन्नला**—सुनिए महाराज

( प्रवेश करके )

भटः—जयतु महाराज ।

राजा—

अपूर्व इव ते हर्षो ब्रूहि केनासि विस्मित ।

भटः—

अश्रद्धेयं प्रिय प्राप्त सौभद्रो ग्रहण गत ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथं गृहीत । ( आत्मगतम् )

तुलितबलमिदं मयाद्य सैन्य परिगणितं च रणेऽद्य मे स दृष्ट ।
सदृश इह तु तेन नास्ति कश्चित् क इह भवेन्निहतेषु कीचकेषु ॥ ३५ ॥

---

भट.—जयतु महाराजः सर्वोत्कर्षण विजयताम् महाराज ।

राजा—ते तव, हर्ष प्रसन्नता, अपूर्व इव विलक्षण इव, केन कारणेन, विस्मित. आश्चर्यचकित असि ब्रूहि कथय ।

भटः—सौभद्रो अर्जुनसुत ग्रहण गत, बन्दीभूत इति, अश्रद्धेयमपि अविश्वसनीयमपि प्रियं सुखकरम् प्राप्तम् जातमिति ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—कथम् इत्याश्चर्ये, गृहीत. बन्दीकृत ( आत्मगतम् स्वगतम् )

व्याख्या—अद्य अस्मिन्नेव दिन, मया अर्जुनेन, इदम् एतत् सैन्यम् विराटस्य सैनिकम्, तुलितबलम् पूर्णरूपेण परीक्षितशक्तिकम्, परिगणितम् गणनाविषयीकृतञ्च, स: असौ अभिमन्यु. मया दृष्ट रणे साक्षात्कृत, इह अस्मिन् युद्धे, कीचकेषु शतसंख्यकविराटश्यालेषु, निहतेषु मृतेषु क जन , तेन अभिमन्युना सदृश. तुल्यः कश्चित् कोपि नास्तीति ॥ ३५ ॥

---

भट—महाराज की जय हो।

राजा—तुम्हारी खुशी की तो आज सीमा ही नही दीखती । इसका क्या कारण है ?

भट—महाराज, अविश्वसनीय प्रिय प्राप्त हुआ है । अभिमन्यु युद्ध मे बन्दी बना लिया गया है ॥ ३४ ॥

बृहन्नला—क्या कहा पकड लिया गया ? ( अपने आप )

विराट की सेना की ताकत तो आज मैंने तोल ही ली थी । उसकी गणना भी की थी । रणकुशल अभिमन्यु को पराजित करने वाला तो उसमे एक भी नही था । कीचकों की मृत्यु के बाद भला उससे लड ही कौन सकता है ॥ ३५ ॥

भगवान्—बृहन्नले ! किमेतत् ।

बृहन्नला—भगवन् !

> न जाने तस्य जेतारं बलवाञ्छिक्षितस्तु स ।
> पितृणा भाग्यदोषेण प्राप्नुयादपि धर्षणम् ॥ ३६ ॥

राजा—कथमिदानीं गृहीत ।

भट. —

> रथमासाद्य निःशङ्कं बाहुभ्यामवतारित ।

राजा—केन ?

---

भगवान्—बृहन्नले, एतत् किम् ?

बृहन्नला—भगवन्—

व्याख्या—तस्य अभिमन्योः जेतारम् विजेतारम् न जाने अहम् नाव गच्छामि, सः असौ, बलवान् शक्तिशाली, शिक्षितः रणकुशलः अस्ति, पितृणाम् पाण्डवानाम्, भाग्यदोषेण विपरीतभाग्येन कदाचित् धर्षणम् पराजयम् प्राप्नुयात् लभेत ॥ ३६ ॥

राजा—इदानीम् अधुना, कथम् केन प्रकारेण, गृहीत अभिमन्युर्बन्दीकृत ।

भटः—रथम् स्यन्दनम्, आसाद्य प्राप्य, निःशङ्कम् असंदिग्धभावेन, बाहुभ्याम् कराभ्यामेव, अवतारित स्यन्दनादधोनीत ।

राजा—केन पुरुषविशेषेणावतारित इति जिज्ञासा नृपस्य ।

---

भगवान्—बृहन्नले, क्या बात है ?

बृहन्नला—भगवन्, मुझे पता नहीं कि अभिमन्यु को किसने पराजित किया है ? अभिमन्यु बलवान और रणकुशल है । संम्भवतः वह अपने पिता के भाग्य दोष से ही पराजित हुआ है ॥ ३६ ॥

राजा—अब वह कैसे पकड लिया गया है ?

भट—बिल्कुल आसानी से रथपर चढकर हाथों से उतार लिया गया ।

राजा—किसने उतार लिया ?

भट —

य किलैष नरेन्द्रेण विनियुक्तो महानसे ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—( अपवार्य ) एवम् आर्यभीमेन परिष्वक्त , न गृहीत ।

दूरस्था दर्शनादेव वय सन्तोषमागता ।
पुत्रस्नेहस्तु निर्दिष्टस्तेन मृव्यक्तकारिणा ॥ ३८ ॥

राजा—तेन हि सत्कृत्य प्रवेश्यतामभिमन्यु. ।

---

भट —य: पुरुष: किल एष: नरेन्द्रेण विराटेन महानसे पाकशालायाम् विनियुक्त पाककर्मणि विनियोजित तेनैव ॥ ३७ ॥

बृहन्नला - ( अपवार्य परावर्तनेन सर्वमश्रावयित्वा ) तदुक्तम् सामन्त-महापात्रेण—

" .. तद्भेदपवारितम् । रहस्यन्तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते । इति । एवम् इत्थम्, आर्यभीमेनमध्यमभ्राताभीमेनाभिमन्यु परिष्वक्त आलिङ्गित न तु गृहीत- बन्दीकृत ।

व्याख्या— वयम् सर्वे पाण्डवा, दूरस्था दूरे स्थिता एव, दर्शनात् अवलोकनात् सन्तोषम् तृप्तिम्, आगता प्राप्ता तु किन्तु तेन भीमेन, सुव्यक्तकारिणा सर्वजनसम्मुखे एव पुत्रमभिमन्युम् स्यन्दनादवतार्य, पुत्रस्नेह पुत्रजन्यप्रीति, निर्दिष्ट स्थित अर्थात् अपत्यालिङ्गनजन्यसुखं लब्धमिति ॥ ३८ ॥

राजा—तेन कारणेन, हि यत , सत्कृत्य ससम्मान्य, अभिमन्युम् अर्जुनसुतम्, प्रवेश्यताम् मदीयसमुखे समानीयताम् ।

---

भट-वही जिसे महाराज द्वारा रसोई घर की सेवा मे नियुक्त किया गया है ॥ ३७ ॥

बृहन्नला—( एक ओर को ) अब बात समझ मे आई, इस प्रकार आर्य भीम ने उसका आलिङ्गन किया है, पकडा नही ।

हमलोगो ने दूर से ही बेटा अभिमन्यु को देखकर सतोष प्राप्त कर लिया किन्तु, आर्य भीम ने सबो के सामने ही अपने पुत्र प्रेम को सार्थक कर दिखलाया ॥ ३८ ॥

राजा—ठीक है, ससम्मान अभिमन्यु को यहाँ बुला लाओ ।

भगवान्—भो राजन्! वृष्णिपाण्डवनाथस्याभिमन्योः पूजा भयादिति [illegible] शास्यति। तदवधीरणमस्य न्याय्यम्।

राजा—नावधीरणमर्हति यादवीपुत्रः।

कुतः—

पुत्रो ह्येष युधिष्ठिरस्य तु वयस्तुल्यं हि नः सूनुना
सम्बन्धो द्रुपदेन नः कुलगतो नप्ता हि तस्माद् भवेत्।
जामातृत्वमदूरतोऽपि च भवेत् कन्यापितृत्वं हि नः

**भगवान्**—भो राजन्, हे नृप, वृष्णिपाण्डवनाथस्य वृष्णय [illegible] पाण्डवाश्च नाथा यस्य तादृशस्य अभिमन्योः अर्जुनसुतस्य, भयाद् [illegible] नृपविराटेन सम्मानः प्रदर्शित इति लोकः जनः, शास्यति। तद् तस्माद्, अभिमन्योः, अवधीरणम् अनादरमेव, न्याय्यम् उचितम्।

**राजा**—यादवीपुत्र सुभद्रासुतः, अवधीरणम्, अनादरम्, न [illegible] अर्हसि युज्यते।

कुतः कस्मात्—

**व्याख्या**—एष अभिमन्युः, युधिष्ठिरस्य पुत्र धर्मराजसुतः, तु [illegible] वयसः अवस्याक्रमेण, नः अस्माकम् सूनुना पुत्रेण, तुल्यम् समम्, नः अस्माकम् द्रुपदेन नृपेण, कुलगत परम्परयावशानुगतः, सम्बन्धः सख्यभावः [illegible] कारणात् हि यतः नप्ता दौहित्रः अपि चेद् भवेत् स्यात्। कन्यापितृत्वम् [illegible] जनकत्वम् हि यतः नः अस्माकं अदूरतोऽपि शीघ्रमेव जामातृत्व पुनः[illegible] चापि भवेद् जायेत्, अतिथिः आगन्तुकश्च, पूजार्हः श्लाघ्यो भवेद्, [illegible]

---

**भगवान्**—राजन्, यदि आप यादव एवं पाण्डवों से सुरक्षित अभिमन्यु का इस तरह सम्मान करेंगे तो लोग कहेंगे कि विराट ने डरकर उसका सम्मान किया है। इसलिए उसकी अवहेलना ही उचित है।

**राजा**—नहीं, सुभद्रा का बेटा अनादरणीय नहीं है। क्योंकि,

क्या वह युधिष्ठिर का बेटा नहीं है? मेरे कुमार का समवयस्क नहीं है? द्रुपद के साथ दूर का वाशिक सम्बन्ध होने के कारण वह मेरा नाती [illegible] है। मैं बेटी का बाप हूँ, हो सकता है निकट भविष्य में वह हमारा जामाता है

पूजार्होऽप्यतिथिर्भवेत् स्वविभवैरिष्टा हि नः पाण्डवाः ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेतत् । वक्तव्यं परिहर्तव्यं च ।

राजा—अथ केनायं प्रवेशयितव्यः ?

भगवान्—बृहन्नलया प्रवेशयितव्यः ।

---

राजन्या युधिष्ठिरादयः, स्वविभवैः आत्मसम्पद्भिः, इष्टा अभिमताः । अस्मदीया विद्रोहिणो भावाः प्रचण्डभ्रमोत्पादनकारिणो भवन्ति, भासेनास्मिन् नाटके-ऽनुपमतामतसुधाधाराभिर्विद्रोहिभावभीषणानलज्वालां निर्वापयितुम् कृतोऽस्ति प्रयासः । परं न स तदभावे सततं प्रभुरभिमन्यते । तस्य वैपुल्यभावधारिणो लीला आगामि सन्दर्भं स निरोधातुम् तम्, स्वयं पटवेषमपि निदधाति । अभिमन्योः सम्मानप्रदानेऽपि कारणानि सन्ति तत्र प्रथममसौ यादवपाण्डवयोः प्रतापाग्निरूपोऽभिमन्युरस्ति, ततो मम सुतेन यवया । तुल्यः सखाऽस्ति, ममानुवासितमुत्तरबन्धेन दौहित्र, भावी जामाता, मान्योऽतिथिश्च पाण्डवानां पुत्रश्चेति सकलैरेभिः कारणैः स्वस्तेऽप्यभिमन्युरादरमर्हति अस्मात्कारणात् ससम्मानम् तम् प्रवेशयताम् । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

भगवान्—एवमेव उचितमेव तव कथनम् । वक्तव्यम् मम कथनम्, परिहर्तव्यम् ममान्यमभिमन्तुमर्हति ।

राजा—अथ अनन्तरम्, केन पुरुषेण, अयम् एष अभिमन्युः, प्रवेशयितव्यः आनेतव्यो भवेत् ।

भगवान्—बृहन्नला नपुंसकभावापन्नोऽज्ञातवासस्थोऽर्जुनः, प्रवेशयितव्यः आनेतव्य इति ।

---

अतिथि का सत्कार तो होना ही चाहिए उस पर भी अपनी समृद्धि के कारण पाण्डव तो हमारे मित्र भी है ॥ ३९ ॥

भगवान्—आप का कथन ठीक है, इस सम्बन्ध में हमारा कहना नहीं भी माना जा सकता है ।

राजा—अच्छा तो अभिमन्यु को बुलायेगा कौन ?

भगवान्—बृहन्नला को ही भेजा जाय ।

राजा—बृहन्नले ! प्रवेश्यतामभिमन्यु ।

बृहन्नला—यदाज्ञापयति महाराजः । ( आत्मगतम् ) चिरस्य खल्वाकाङ्क्षि नियोगो लब्धः । ( निष्क्रान्ता ) ।

भगवान्—( आत्मगतम् )

अद्येदानीं यातु सन्दर्शनं वा शून्ये दृष्ट्वा गाढमालिङ्गनं वा।
स्वैरं तावद् यातु मुद्बाष्पतां वा मत्प्रत्यक्षं लज्जते ह्येष पुत्रम्॥

राजा—पश्यतु भवान् कुमारस्य कर्म ।

**राजा**—बृहन्नले, प्रवेश्यताम् आनीयताम्, अभिमन्युः सुभद्रासुत इति।

**बृहन्नला**—यत यथा, आज्ञापयति आदिशति, महाराजः विराटः ( आत्मगतम् स्वगतम् ) चिरस्य बहुकालस्य खलु निश्चयेन, आकाङ्क्षित अभिलषित, अयम् एष., नियोगः आदेशः, लब्धः प्राप्तः ( निष्क्रान्ता बहिर्गता )

**भगवान्**—( आत्मगतम् स्वगतम् )

**व्याख्या**—अद्य अस्मिन्नेवदिने, इदानीम् अधुना, सन्दर्शनम् पुत्रावलोकनम् यातु भवतु, शून्ये जनशून्ये दृष्ट्वा अभिमन्युमवलोक्य, गाढमालिङ्गनम् गम्भीराश्लेषम् वा यातु। वा अथवा—तावत् तावत्कालपर्यन्तम्, स्वैरम् यथेच्छम्, मुद्बाष्पताम् प्रमदवाजन्यनयनवारि वा यातु, एष हि अर्जुनः मत्प्रत्यक्षम् मम युधिष्ठिरस्य सम्मुखे पुत्रम् सुतमभिमन्युम् आलिङ्गयितुम् लज्जते सकुच ॥४०॥

**राजा**—पश्यतु अवलोकयतु, भवान् श्रीमान् कुमारस्य उत्तरस्य, कर्म रणकौशलम् ।

---

**राजा**—बृहन्नले, अभिमन्यु को बुलाओ।

**बृहन्नला**—श्रीमान् की जैसी आज्ञा ( अपने आप ) बहुत दिनों के बाद इच्छित आदेश मिला है ( जाती है )

**भगवान्**—( अपने आप ) अब अर्जुन को अकेले में बेटे से मिलने का मौका मिला है, अथवा एकान्त में उसे गले लगाने का अवसर मिला है, सम्भव है अकेले में बेटे को पाकर हर्षातिरेक में वह पर्याप्त आँसू बहाये क्योंकि मेरे सामने वह पुत्र को गले लगाने में संकोच का अनुभव करता है ॥ ४० ॥

**राजा**—आप जब कुमार का काम देख—

नृपा भीष्मादयो भग्नाः सौभद्रो ग्रहणं गतः ।
स्ता उत्तरेणाद्य संक्षेपादर्थतः पृथिवी जिता ॥ ४१ ॥

( ततः प्रविशति भीमसेनः )

भीमसेनः —

जतुगृहादीपिते स्वभुजावसक्ता मद्भ्रातरश्च जननी च मयोपनीता ।
सौभद्रमेकमवतार्य रथात् वालं त च श्रम प्रयमनद्य मम हि मन्ये ॥४२॥

इत इत कुमार ।

---

व्याख्या—भीष्मादय भीष्मद्रोणादय, नृपा राजान, भग्ना पराजिता, सौभद्र अभिमन्यु ग्रहणम् गत बन्दीकृत, अद्य अस्मिन्नेव दिने उत्तरेण कुमारेण, संक्षेपात् समासात् अर्थत वस्तुत, पृथिवीम् धरित्रीम्, जिता अधिकृतेति ॥ ४१ ॥

( तत तत्पश्चात्, प्रविशति प्रवेशम् करोति भीमसेन )

व्याख्या—जतुगृहे लाक्षागृहे आदीपिते प्रज्वलिते सति स्वभुजावसक्ता स्वस्य आत्मन, भुजयो बाह्वो अवसक्ता स्थापिता, मत् मम भीमस्य, भ्रातर जननी माता च, मया भीमेन उपनीता स्थानान्तरं प्रापिता, अद्य तु एकम् केवलम्, सौभद्रम् अभिमन्युम्, रथात् स्यन्दनात्, अवतार्य अवरोप्य, तम् च अद्यतनम् प्राक्तनम् च श्रमम् परिश्रमम् हि इति निश्चये अद्य समम् तुल्यम् मन्ये अवैमि । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४२ ॥

इत इत अस्यामेव दिशि समागम्यताम् कुमार ।

---

आज उत्तर धरती व सर्वाधिक शक्तिशाली भीष्मादि राजाओं को पराजित कर अभिमन्यु को बन्दी बना कर लिया मानो सारी पृथ्वी का ही जीत लिया है ॥ ४१ ॥

( भीमसेन का प्रवेश )

भीमसेन—लाक्षागृह में जब आग लगी थी तब हमने अपने हाथों से सभी भाइयों और माँ को उठाकर अलग किया था और आज अकेले अभिमन्यु को रथ से उठाता हूँ । पर मेरी दृष्टि में दोनों ही श्रम समान हैं ॥ ४२ ॥

( ततः प्रविशत्यभिमन्युर्बृहन्नला च )

अभिमन्युः—भोः ! को नु खल्वेषः,

विशालवक्षास्तनिमार्जितोदरः स्थिरोन्नतांसोरुमहान् कटीकृशः ।
इहाहृतो येन भुजैकयन्त्रितो बलाधिकेनापि न चास्मि पीडितः ॥ ४३ ॥

बृहन्नला—इत इतः कुमारः ।

अभिमन्युः—अये अयमपरः कः,

अयुज्यमानैः प्रमदाविभूषणैः करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः ।

---

( ततः तत्पश्चात् प्रविशति प्रवेशम् करोति अभिमन्युः बृहन्नला च )

**अभिमन्युः**— भो को नु खलु पुरुष विशेषः एष असौ,

**व्याख्या**—विशालवक्षाः विपुलोरस्कः, तनिमार्जितोदरः कृशत्वेनातिसुन्दरोदरः स्थिरोन्नतांसः सुदृढोन्नतस्कन्धः, च पुनः उरुमहान् विशालबाहुः कटी कटीप्रदेशः कृश दुर्बलः अर्थात् मध्ये क्षीणः, येन पुरुषविशेषेण, भुजैकयन्त्रितः एकनैव हस्तेन धृत्वा, इह अत्र आहृतः समानीतोऽस्मि बलाधिकेनापि । अत्यधिकशक्तिशालिनाऽपि, पीडितः अतिक्रान्तः नास्मि ॥ ४३ ॥

**बृहन्नला**—इत इतः कुमारः अस्मिन्नेव मार्गेण समागम्यताम् ।

**अभिमन्युः**—अये आश्चर्यम्, अयम् पुरोवर्त्तिनः, अपरः अन्यः, कः पुरुषविशेषः ।

**व्याख्या**—अयुज्यमानैः अयुक्तिकरैः, प्रमदाविभूषणैः वनितालङ्कारैः करेणुशोभाभिः हस्तिनीप्रभाभिः, अर्पितैः सुसज्जितैः, गजः करी, इव यथा अयम्

---

( अभिमन्यु और बृहन्नला का प्रवेश )

**अभिमन्यु**—अरे यह कौन है ?

चौडी छाती, कृश उदर, उन्नत स्कन्ध, तथा लम्बी बाहे हैं, हाथ से ही जिसने मुझे यहाँ तक उठा लाया है, अधिक बलशाली होने पर भी इसने मुझे अतिक्रान्त नही किया ॥ ४३ ॥

**बृहन्नला**—इधर से इधर से कुमार चलें ।

**अभिमन्यु**—अरे, यह दूसरा कौन है ?

यह औरत के वेष मे ऐसा लगता है जैसे हथिनी की शोभा से युक्त कोई

लघुश्च वेषेण महानिवौजसा विभात्युमावेषमिवाश्रितो हरः ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—( अपवार्य ) इममिहानयता किमिदानीमार्येण कृतम् ।

अवजित इति तावद् दूषितः पूर्वयुद्धे
दयितसुतवियुक्ता शोचनीया सुभद्रा ।
जित इति पुनरेनं रुष्यते वासुभद्रो
भवतु बहु किमुक्त्वा दूषितो हस्तसारः ॥ ४५ ॥

---

पुरुष वेषेण वस्त्राभूषणेन, रघु सामान्य च ओजसा तेजसा, महान् अतिश्रेष्ठ, इव यथा, उमावेषम् गौरीरूपम्, आश्रित धृत हर. शिव इव विभाति शोभा धारयति ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—( अपवार्य अभिमन्युमयावयित्वा ) इमम् अभिमन्युकुमारम्, इह विराटसदने, आर्येण पूज्येन इदानीम् अधुना, आनय वा कुमारमानयनम्, किं कृतम् उचित न कृतमासीत् ।

व्याख्या—पूर्वयुद्धे प्रथमे सङ्गरे, अवजित. पराभूत', इति इत्थम्, तावद् इति वाक्यालङ्कारे, दूषितः कलङ्कितोजात, सुभद्रा अभिमन्युजननी, दयितसुत-वियुक्ता दयितेन पत्या सुतेन पुत्रेण च वियुक्ता वञ्चिता, शोचनीया चिन्तनीया, मता, पुनः, एनम् अभिमन्युम्, जित. प्रथमे समरे पराजित इति हेतो. वा सुभद्र-श्रीकृष्ण, रुष्यते कुप्यति, बहुकिमुक्त्वा अत्यधिककथनेन किम् ? भवताऽभि-मन्यु गृहीत्वा, बाहुसारम् निजभुजबलम्, दूषितः कलुषित । भवतु दूरे तिष्ठतु इत्येकार्थम् ॥ ४५ ॥

---

मत्तगजराज हो, वेष से यह जितना सामान्य है पराक्रम से उतना ही महान् प्रतीत होता है। लगता है शङ्कर ने उमा का वेष धारण किया है ॥ ४४ ॥

बृहन्नला—(एक ओर को) अभिमन्यु को यहाँ लाकर आपने क्या किया? पहले ही युद्ध मे इसे पराजित होने का कलक लगाया, पति और पुत्र से विहीन सुभद्रा को शोचनीय दशा मे पहुँचाया। इसकी हार की खबर से कृष्ण अलग क्रुद्ध होंगे। अधिक क्या? आपने अपने बाहुबल को कलंकित किया है ॥ ४५ ॥

भीमसेन.—अर्जुन !

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्, अर्जुनपुत्रोऽयम् ।

भीमसेन—( अपवार्य )

जानाम्येतान् निग्रहादस्य दोषान् को वा पुत्र मर्षयेच्छत्रुहस्ते ।
इष्टापत्त्या किन्तु दु.खे हि मग्ना पश्यत्वेनं द्रौपदीत्याहृतोऽयम् ॥४६॥

बृहन्नला—(अपवार्य) आर्य अभिभाषणकौतूहल मे महत् । वाचालयत्वेनमार्य. ।

भीमसेन.—( अपवार्य ) बाढम् ! अभिमन्यो !

---

भीमसेनः—अर्जुन भो पार्थ ।

बृहन्नला—अथ किम्, अथ किम्—किमन्यत् यदुक्त तत्तदेवेत्यर्थ, अङ्गीकारेऽपि चाथ किम् इति अथ किमेत्येकमव्ययम् । अर्जुनपुत्रोऽयम् अर्जुनस्यैवाय सुत. इत्यनेनाभिमन्योः पराभवं प्रति रोषो व्यञ्जितः ।

भीमसेन —( अपवार्य ) अर्जुनमथाव्य—

व्याख्या—अस्याभिमन्यो , निग्रहात् अवग्रहात् अवरोधात्, एतान् पूर्वोक्तान्, दोषान् पूर्वोक्तदोषत्रयान्, जानामि अवगतोऽस्मि, कः पुरुषविशेष , वा पुत्रम् स्वसुतम्, शत्रुहस्ते अरिकरे, मर्षयेत् क्षिपेत्, इष्टापत्त्या मन्ये सर्वं ज्ञातवेदम् कृतम् तत्कारणमाह—दु.खे कष्टे, मग्ना निमग्ना, द्रौपदी द्रुपदसुता, इमन् अभिमन्युम्, पश्यतु अवलोकयतु, इति हेतो , मया अयम् अभिमन्यु आहृत आनीत..इत्याशय. ॥ ४६ ॥

भीमसेनः—( अपवार्य अथाव्य ) बाढम्-स्वीकृतम्, अभिमन्यो !

---

भीमसेन—अर्जुन ।

बृहन्नला—हाँ हाँ, यह अर्जुन का बेटा है।

भीमसेन—( एक ओर )–अभिमन्यु की हार से उत्पन्न इन दोषों से अवगत हूँ। भला ऐसा कौन होगा जो अपने बेटे को शत्रु के हाथ में जाना पसंद करे। फिर भी ऐसा इसलिए किया कि दुःखी द्रौपदी को इसे देखकर सान्त्वना मिले ॥ ४६ ॥

बृहन्नला—( एक ओर ) आर्य, इससे बात करने की मेरी बडी उत्कण्ठा है, आप इसे बोलने को कहे ।

भीमसेन—( एक ओर ) ठीक है, अभिमन्यु ।

अभिमन्यु —अभिमन्युर्नाम ।

भीमसेन – रुष्यत्येष मया । त्वमेवैनमभिभाषय ।

बृहन्नला—अभिमन्यो ।

अभिमन्यु—कथं कथम् । अभिमन्युर्नामाहम् । भोः—

नीचैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वयाः ।
इहाय समुदाचारो ग्रहणं परिभूयते ॥ ४७ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो । सुखमास्ते ते जननी ।

---

**अभिमन्यु**—अभिमन्युर्नाम—स्वनाम श्रुत्वा साश्चर्यं वदत्यभिमन्युर्नामेति ।

**भीमसेन**—मया भीमेन, एष अभिमन्युः, रुष्यति कुप्यति । त्वमेव बृहन्नलेव, एतम् अभिमन्युम् अभिभाषय भाषणं कुरु ।

**बृहन्नला**—तम् सम्बोधयति—अभिमन्यो ।

**अभिमन्यु**—कथमित्याश्चर्ये, अभिमन्यु इति नाम्ना आह्वयति । भो इति आह्वाने—

**व्याख्या**—नीचैः निम्नकार्येषु गतन्तैः सेवकैः, क्षत्रियान्वयाः क्षत्रियवंशोद्भवाः, नामभिः नामैव, अभिभाष्यन्ते सम्बोध्यन्ते, इह अस्मिन् नगरे, अयम् एतादृशः, समुदाचारः व्यवहारः ? अथवा ग्रहणम् अहम् शत्रुवशगतः तेन परिभूयते अवमन्यते ॥ ४७ ॥

**बृहन्नला**—हे अभिमन्यो, ते तव, जननी माता, सुखमास्ते कुशलिनी विद्यते ।

---

**अभिमन्यु**—अभिमन्यु ।

**भीमसेन**—मुझसे तो यह चिढता है, तुम्हीं इससे बात करो ।

**बृहन्नला**—अभिमन्यु ।

**अभिमन्यु**—क्यों मेरा नाम लेकर पुकारते हो । क्या क्षत्रिय कुमार को यहां के सेवक नाम लेकर ही पुकारते हैं । यहाँ का यही व्यवहार है ? अथवा बन्दी होने के कारण मुझे अपमानित किया जा रहा है ॥ ४७ ॥

**बृहन्नला**—अभिमन्यु, तुम्हारी माँ तो अच्छी है ?

अभिमन्युः—कथं कथम् ! जननी नाम ।

किं भवान् धर्मराजो मे भीमसेनो धनञ्जयः ।
यन्मां पितृवदाक्रम्य स्त्रीगतां पृच्छसे कथाम् ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! अपि कुशली देवकीपुत्रः केशवः ?

अभिमन्युः—कथं तत्रभवन्तमपि नाम्ना । अथ किम्, अथ किम् । कुशली भवतः संसृष्टः ।

( उभौ परस्परमवलोकयतः )

---

अभिमन्युः—कथम् कथम् जननीनाम् मम मातुः कुशलं पृच्छति क्रोधाभिव्यक्तिः ।

व्याख्या—यत् यस्माद्धेतो', मामभिमन्युम्, पितृवत् जनकमदृशः, आक्रम्य अधिकृत्य, स्त्रीगताम् स्त्रीविषयाम्, कथाम् वार्त्ताम्, पृच्छसे जिज्ञाससि, तद् किम् भवान् त्वम्, मे ममाभिमन्यो', धर्मराज युधिष्ठिरः, भीमसेन वृकोदरः अथवा धनञ्जयः अर्जुन, त एव एतान् प्रश्नान् कर्त्तुम् अधिकुर्वते न च त्वादृशाः नीचसेवका इति ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—अभिमन्यो, देवकीपुत्र देवकीसुत, केशव श्रीकृष्णः, अपि कुशली सकुशलमस्तीति भावः ।

अभिमन्युः—कथम् केन कारणेन, तत्र भवन्तम् श्रीमन्तम् श्रीकृष्णमपि, नाम्ना नामग्रहणेनैव व्याहरति । अथ किम् इदमेकमव्ययमङ्गीकार्यम्, त्वम् मदारव तत्तथैवेत्यर्थः । कुशली सकुशलम्, भवतः त्वदीयः संसृष्टः सम्बन्धे ।

( उभौ द्वौ, परस्परम् अन्योन्यम्, अवलोकयतः )

---

अभिमन्यु—क्या ? क्या ? मेरी माँ के बारे मे पूछता है—

क्यो आप धर्मराज युधिष्ठिर, भीम अथवा अर्जुन हैं जो मुझे अधिकृतकर मुझसे मेरी माँ के बारे मे पूछ रहे हैं ? ॥ ४८ ॥

बृहन्नला—क्यो अभिमन्यु, देवकी पुत्र कृष्ण तो सकुशल हैं ?

अभिमन्यु—क्यो भगवान को भी नाम लेकर ही । और क्या आपके ... सकुशल हैं ।

( दोनो एक दूसरे को देखते हुए )

अभिमन्युः—कथमिदानीं सावज्ञमिव मां हस्यते ।

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् ।

पार्थं पितरमुद्दिश्य मातुलं च जनार्दनम् ।
तरुणस्य कृतास्त्रस्य युक्तो युद्धपराजयः ॥ ४६ ॥

अभिमन्युः—अलं स्वच्छन्दप्रलापेन ।

अलमात्मस्तवं कर्तुं नास्माकमुचितं कुले ।
हतेषु हि शरान् पश्य नाम नान्यद् भविष्यति ॥ ५० ॥

---

अभिमन्यु—कथम् केन कारणेन, इदानीम् अधुना, सावज्ञम् अवहेलनापूर्वकम्, माम् अभिमन्युम् हस्यते उपहसति,

बृहन्नला—न खलु किञ्चित् नास्ति किमपि ।

व्याख्या—पितरम् जनकम्, पार्थम् अर्जुनम्, उद्दिश्य अभिलक्ष्य च पुनः मातुलम् मातुः भ्रातरम्, जनार्दनम् श्रीकृष्णम् अभिलक्ष्य ज्ञात्वा वा, तरुणस्य नवयुवकस्य, कृतास्त्रस्याधीतधनुर्विद्यस्य, युद्धपराजयः समरे पराभवः युक्तम् किमुचितमिति नास्त्येवेति भावः ॥ ४९ ॥

अभिमन्यु—अलम् व्यर्थम्, स्वच्छन्दप्रलापेन यथेच्छया वार्तालापेन,

व्याख्या—आत्मस्तवम् निजप्रशंसाम्, कर्तुम् कृत्वा, अलम् व्यर्थम् अस्माकम् न, कुले वंशे, उचितम् युक्तम्, न नहि, हतेषु मृतेषु, शरान् बाणान्, पश्य अवलोकय, अन्यस्य परस्य, नाम संज्ञा, न नहि भविष्यतीति मयैव युद्धे हैलिरा मारिता ॥ ५० ॥

---

अभिमन्यु—क्यों अब तो ये मेरी ओर अवहेलना पूर्वक देखकर हँस

बृहन्नला—कुछ नहीं,—अपने पिता पार्थ, तथा मामा कृष्ण को यादकर इस नयी जवानी में युद्ध विशारद होकर भी क्या आपको युद्ध में इस तरह चाहिए था ॥ ४९ ॥

अभिमन्यु—बस-बस, यथेच्छ अट सट बकना बन्द करो ।

अपने वंश की मर्यादा के अनुसार मैं अपनी प्रशंसा अपने मुख से नहीं करना चाहता, इस सन्दर्भ में इतना ही कहूँगा—मृतयोद्धाओं की देह को जाकर देखो बाणों पर किसी दूसरे का नाम नहीं मिलेगा ॥ ५० ॥

अभिमन्यु.—ब्राह्मणेनेति । ( उपगम्य ) भगवन् । अभिवादये ।

भगवान्—एह्येहि वत्स !

शौण्डीर्यं धृतिविनय दया स्वपक्षे माधुर्यं धनुषि जय पराक्रम च ।
एकस्मिन् पितरि गुणानवाप्नुहि त्वं शेषाणा यदपि च रोचते चतुर्णाम् ॥५४॥

अभिमन्यु —अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—एह्येहि पुत्र । कथं न मामभिवादयसि । अहो उत्सिक्त खल्वय क्षत्रियकुमारः । अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि । अथ केनाय गृहीतः ।

---

**अभिमन्यु**—ब्राह्मणेन विप्रेण इति ( उपगम्य समीपम् गत्वा ) भगवन् हे देव, अभिवादये प्रणमामि ।

**भगवान्**—एह्येहि समागम्यताम् , वत्स पुत्र ।

**व्याख्या**—शौण्डीर्यम् शूरत्वम् , धृतिविनयम् धैर्यविनम्रतयो समाहार स्वपक्षे स्वजने, दयाम् कृपाम् , माधुर्यम् मधुरवचनम् , च, धनुषि चापे, जयम् विजयम् , पराक्रमम् साहसञ्च, इति एकस्मिन् जनकानाम् च गुणेषु यत्ते रोचते तदप्यधिगच्छ । पितृतुल्यगुणी भव । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५४ ॥

**अभिमन्युः**—अनुगृहीतोऽस्मि—कृपान्वितोऽस्मि ।

**राजा**—एह्येहि समागम्यताम्, पुत्र हे वत्स । कथन्न हि माम् विराटम् अभिवादयसि प्रणमसि, अहो इत्याश्चर्ये, उत्सिक्त गर्वोद्धत., खलु शब्दश्च वितर्के, अयम् एष., क्षत्रियकुमार. अभिमन्यु । अहम् विराट, अस्य अभिमन्यो,

---

**अभिमन्यु**—ब्राह्मण के साथ ( पास जाकर ) भगवन् मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

**भगवान्**—आओ बेटे, तुम्हारे एकपिता धनञ्जय मे जो वीरता, धीरता, विनम्रता, दयालुता, मिष्टभाषिता प्रभृति गुण हैं, उन्हे तथा अन्य पिताओ के वर्त्तमान गुणो मे से जो तुम्हे जँचे उसे ग्रहण करो ॥ ५४ ॥

**अभिमन्यु**—अनुगृहीत हुआ ।

**राजा**—आओ बेटा आओ, तुम मुझे प्रणाम क्यों नही करते ? अहो, यह

भीमसेन—महाराज ! मया ।

अभिमन्युः—अशस्त्रेणेत्यभिधीयताम् ।

भीमसेन —शान्तं शान्तं पापम् ।

सहजौ मे प्रहरणं भुजौ पीनांसकोमलौ ।
ताावाश्रित्य प्रयुध्येय दुर्बलैर्गृह्यते धनुः ॥ ५५ ॥

अभिमन्यु —मा तावद् भो ,

बाहुरक्षौहिणी यस्य निर्व्याजो यस्य विक्रमः ।

---

दर्पप्रशमनम् मिष्टभाषितैः सान्त्वनम्, करोमि विदधामि, अथ इदमेकमव्ययम्, केन पुरुषेण, अयम् एष, गृहीत बन्दीकृत ।

**भीमसेनः**—महाराज हे नृप, मया भीमेन,

**अभिमन्यु**.—अशस्त्रेण शस्त्रविहीनेन इति इत्थम्, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

**भीमसेनः**—शान्तम् शान्तम् पापम् पापप्रशमन भवतु इत्यनेन विरोधम् दर्शयति–अहो, इत्थम् भवितुम् नार्हतीति भाव. ।

**व्याख्या**—पीनांसकोमलौ स्थूलस्कन्धकोमलौ, भुजौ करौ एव मे भीमस्य, सहजौ स्वाभाविकौ प्रहरणम् शस्त्रम्, तौ भुजावेवाश्रित्यावलम्बनम् कृत्वा, प्रयुध्येयम् युद्धम् कुर्याम्, धनु चापस्तु दुर्बलै बलहीनै गृह्यते ग्रहणं कृत्वा युद्ध्यते ॥ ५५ ॥

**अभिमन्यु**– मा तावत् भो एवं मा वद—

**व्याख्या**—यस्य भीमस्य, बाहू एव भुजा एव, अक्षौहिणी अपरिमितसेना,

---

क्षत्रिय कुमार तो बडा घमण्डी है, पहले इसके घमण्ड को दूर करता हूँ । अच्छा तो इसे किसने पकड़ा ?

**भीमसेन**—महाराज मैंने ।

**अभिमन्यु**—'निहत्थे होकर पकडा' ऐसा कहिए ।

**भीमसेन**—नहीं ऐसा नहीं हो सकता—ये मोटी मांसल बाँहें ही मेरे हथियार हैं । धनुष तो दुर्बलों के अस्त्र हैं ॥ ५५ ॥

**अभिमन्यु**—नहीं, जिनकी भुजा ही अक्षौहिणी सेना के बराबर हैं, जिनका

किं भवान् मध्यमस्तातस्तस्यैतत् सदृशं वचः ॥ ५६ ॥

भगवान्—पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ।

अभिमन्युः—श्रूयताम् । अथवा, नन्वनुत्तरा वयं ब्राह्मणेषु, सान्यो ब्रूयात् ।

राजा—भवतु भवतु । मद्वचनात् पुत्र ! कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् । येन,

योक्त्रयित्वा जरासन्धं कण्ठश्लिष्टेन बाहुना ।—

---

विक्रमः पराक्रमस्तु, निर्व्याजः कपटशून्यः, एतादृशः किं भवान् मध्यमस्तातः भीमसेनः ? एतद्वचः पूर्वोक्तम् वचनम् तस्यैव सदृशम् युक्तम् न तु भवतः ॥५६॥

भगवान्—पुत्र हे सुत, कोऽयम् कः असौ मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् आकर्ण्यताम् अथवा, नन्विति वितर्के, अनुत्तरा अप्रतिवचनाः, वयम् ब्राह्मणेषु विप्रेषु साधु सुष्ठु भवति, यदि अन्यः अपर ब्रूयात् कथयेत् ।

राजा—भवतु भवतु यद्भवतु तद्भवतु पुत्र मद्वचनात् मदीयप्रश्नात् ब्रूहि कोऽयं मध्यमो नाम ?

अभिमन्युः—श्रूयताम् आकर्ण्यताम्, येन पुरुषविशेषेण—

व्याख्या—कण्ठाश्लिष्टेन तत्कण्ठासक्तेन, बाहुना स्वभुजेन जरासन्धम् मगधाधिपतिं बृहद्रथपुत्रम् योक्त्रयित्वा बद्धम् विधाय, असह्यम् असाध्यम् तत् पूर्वोक्तम्, कर्म कृत्यम्, कृत्वा विधाय कृष्णः वासुदेवः अतदर्हताम् तादृ-

---

पराक्रम निष्कपट है, ऐसे हमारे मध्यम तात को ही ऐसे कथन शोभते हैं ॥५६॥

भगवान—बेटा, तुम्हारे ये मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिए, अथवा—हमलोग ब्राह्मणों के साथ सवाल-जवाब नहीं करते हैं। अच्छा होता कोई दूसरा ही पूछता।

राजा—अच्छी बात है, बेटा, मेरे ही प्रश्न का उत्तर दो। तुम्हारे मध्यम तात कौन हैं ?

अभिमन्यु—सुनिये-जिसने अपने हाथों से जरासन्ध के कण्ठ को बाँधकर

असह्यं कर्म तत् कृत्वा नीतः कृष्णोऽतदर्हताम् ॥ ५७ ॥

राजा—

न ते क्षेपेण रुष्यामि रुष्यता भवता रमे ।
किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठति यात्विति ॥ ५८ ॥

अभिमन्युः—यद्यहमनुग्राह्य,

पादयोः समुदाचारः क्रियतां निग्रहोचितः ।
बाहुभ्यामाहृतं भीमो बाहुभ्यामेव नेष्यति ॥ ५९ ॥

---

न्तर्हितामनताम् नीतः प्रापितः । यः कृष्णोऽपि न इत्यन्तमप्यसहीदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

व्याख्या—ते तव, क्षेपेण निन्दावचनेन, न नहि, रुष्यामि क्रुद्धो भवामि, रुष्यता कुप्यता त्वया भवता, रमे प्रसन्नो भवामि, किमुक्त्वा किं कथयित्वा, त्वम्वा तिष्ठति यातु गच्छतु वा, अहम् विराटः न नहि, अपराद्धः अपराधी नाम ? भवन् तिष्ठति अथवा यथेष्टं गच्छ इत्युक्त्वाऽहमपराधी भवेयमिति भावः ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—यदि चेत्, अहम् अभिमन्युः, अनुग्राह्यः मयि कृपा करणीया तर्हि—

व्याख्या—पादयो मम चरणयोः, निग्रहोचितः बन्दीजनोपयुक्तः समुदाचारः रक्षिताचरणं, क्रियताम् विधीयताम्, इत्यम्भूतो व्यवहारः, बाहुभ्याम् भुजाभ्याम् आहृतम् आनीतम्, बाहुभ्यामेव भुजाभ्यामेव भीमः मम मध्यमतातः, नेष्यति नीत्वा गमिष्यति ॥ ५९ ॥

---

इस असह्य कर्म को पूरा किया जिसे भगवान कृष्ण भी पूरा नहीं कर सके ॥५७॥

राजा—तुम्हारी निन्दा करने से मुझे कष्ट नहीं होता है पर, तुम्हें चिढ़ाने में आनन्द आता है। तुम क्यों खड़े हो अथवा यहाँ से तुम चले जाओ, ऐसा अगर कहूँ तो तुम्हारे प्रति मेरा यह अपराध नहीं होगा क्या ॥ ५८ ॥

अभिमन्यु—यदि मुझ पर कृपा करना चाहते हो तो—

मेरे पैरों में बन्दी जनोचित बेड़ी डाल दीजिए। मुझे कोई हाथों से पकड़ कर लाया, मेरे मध्यम पिता भीम मुझे हाथों से छुड़ाकर ले जायेंगे ॥ ५९ ॥

( ततः प्रविशत्युत्तरः )

उत्तर.—

मिथ्याप्रशंसा खलु नाम कष्टा येषां तु मिथ्यावचनेषु भक्तिः।
अहं हि युद्धाश्रममुच्यमानो वाचानुवर्ती हृदयेन लज्जे॥ ६०॥

( उपसृत्य ) भगवन् ! अभिवादये ।

भगवान्—स्वस्ति ।

उत्तरः—तात ! अभिवादये ।

राजा—एह्येहि पुत्र ! आयुष्मान् भव । पुत्र ! पूजिता ...

( ततः तदनन्तरम् प्रविशति प्रवेशङ्करोति कुमार उत्तरः )

**व्याख्या**—येषाम् वन्दीचारणादिजनानाम्, मिथ्यावचनेषु असत्यकथनषु भक्तिः प्रीतिः तेषाम्, मिथ्याप्रशंसा असत्यस्तुतिः, खलु निश्चयेन, कष्टा कष्टप्रदा नाम, अहम् उत्तरः हि यतः, युद्धाश्रयम्, युद्धविजयम्, उच्यमानः अभिधीयमानः सन्, वाचानुवर्ती मुखशब्देन तान्नभिनन्दन्नपि, हृदयेन चित्तेन, लज्जे जिह्रेमि॥६०॥

( उपसृत्य समीप गत्वा ) भगवन्, अभिवादये प्रणमामि ।

**भगवान्**—स्वस्ति कल्याण भवतु ।

**उत्तरः**—तात हे पितः, अभिवादये प्रणमामि ।

**राजा**—एह्येहि आगच्छ, पुत्र हे सुत ! आयुष्मान् भव चिरञ्जीव, पुत्र

( उत्तर का प्रवेश )

**उत्तर**—झूठी प्रशंसा दुःखदायिनी होती है। चारण और भाटों को तो मिथ्या स्तुति का अभ्यास ही बना रहता है। ये इस युद्ध के सम्बन्ध में मेरी प्रशंसा करते हैं और मैं भी वचन से उनकी प्रशंसा करता हूँ। पर हृदय से लज्जित हो रहा हूँ ॥ ६० ॥

( पास आकर ) भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ।

**भगवान्**—तुम्हारा कल्याण हो।

**उत्तर**—पिताजी, प्रणाम करता हूँ।

**राजा**—आओ बेटे आओ। चिरजीवी बनो, बेटा, युद्ध में काम आने वाले

योधपुरुषा ?

उत्तर—पूजिता । पूज्यतमस्य क्रियतां पूजाम् ।

राजा—पुत्र ! कस्मै ?

उत्तर—इहात्रभवते धनञ्जयाय ।

राजा—कथं धनञ्जयायेति ।

उत्तर—अथ किम् । अत्रभवता,

श्मशानाद्धनुरादाय तूणीं चाक्षयसायके ।
नृपा भीष्मादयो भग्ना वयं च परिरक्षिता ॥ ६१ ॥

---

पूजिता अर्चिता, कृतकर्माण समरे प्रदर्शितपुरुषकारा, योधपुरुषा युद्धवीरा ।

**उत्तर**—पूजिता अर्चिता, पूज्यतमस्य श्लाघनीयस्य, पूजाम् अर्चाम्, क्रियताम् विधीयताम् ।

**राजा**—पुत्र हे सुत ! कस्मै कस्य पूजाम् करिष्यामि ?

**उत्तर**—इह अस्मिन् स्थाने अत्र भवते श्रीमते धनञ्जयाय अर्जुनाय ।

**राजा**—कथम् केन प्रकारेण धनञ्जयाय अर्जुनाय इति ।

**उत्तर**—अथ किम् इदमवमव्ययमङ्गीकारार्थमिदम् त्वं यदात्थ तत्तथैवत्यर्थं । अत्र भवता पूज्यन धनञ्जयेन ।

**व्याख्या**—श्मशानात् श्मशानप्रदेशात्, धनु गाण्डीवम्, आदाय नीत्वा, अक्षयसायके अक्षीणबाणे तूणीम् तूणीरम् च नीत्वा, भीष्मादय भीष्मादिप्रमुखा, नृपा राजान भग्ना पराजिता च पुन वयम्, रक्षिता याता । अत पूजामर्हति धनञ्जय इति भाव ॥ ६१ ॥

---

बहादुरों का सत्कार सम्पन्न हो गया क्या ?

**उत्तर**—सम्पन्न हो गया । अब सर्वाधिक पूज्य की पूजा कीजिए ।

**राजा**—किसकी पूजा करने को कह रहे हो बेटा ।

**उत्तर**—बस, इस पूजनीय धनञ्जय की ।

**राजा**—क्या धनञ्जय की ?

**उत्तर**—और क्या ? इस धनञ्जय ने श्मशान से अपना गाण्डीव एवं अक्षय तूणीर लाकर भीष्मादि प्रमुख राजाओं को युद्ध में परास्त किया और हमारी रक्षा की है ॥ ६१ ॥

राजा—एवमेतत् ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः ।

अयं बाल्यात्तु सम्भ्रान्तो न वेत्ति प्रहरन्नपि ।
कृत्स्नं कर्म स्वयं कृत्वा परस्येत्यवगच्छति ॥ ६२ ॥

उत्तर—व्यपनयतु भवाञ्छङ्काम् । इदमाख्यास्यते,

प्रकोष्ठान्तरसगूढं गाण्डीवज्याहतं किणम् ।

राजा—एवम् इत्थम्, गतदिति धनञ्जयेन यदि वयम् परिरक्षिता अवश्यमेवायम् पूजामर्हतीति भाव ।

बृहन्नला—प्रसीदतु प्रसन्ना भव, प्रसीदतु कृपा कुरु, महाराज हे नृप।

व्याख्या—अयम् उत्तर, बाल्यात् शिशुभावात्, सम्भ्रान्त, भ्रमित सन् प्रहरन्नपि अरिषु प्रहार कुर्वन् अपि, न नहि, वेत्ति जानाति । कृत्स्न सम्पूर्णम् कर्म समरविजयम् कृत्वा विधाय, परस्य अन्यस्य, इत्यवगच्छति जानाति। स्वय समरे शत्रून् विजित्यान्यकृतकर्म इत्यवस्यति तदय कुमारस्य बाल्यभावः सम्भ्रम एव केवल इति ॥ ६२ ॥

व्याख्या—प्रकोष्ठान्तरसगूढम् मणिबन्धमध्ये समुत्पन्नम्, गाण्डीवज्याहतम् गाण्डीवस्य एतन्नामकचापकस्य ज्या मौर्व्याहतम् आघातेन समुत्पन्नम्, किणम् यत् दृश्यते, तद् द्वादशवर्षान्ते द्वयाधिकदशवत्सरापगमेऽपि सवर्णताम् समरूपताम् नैव याति न भवति । अर्जुनस्य प्रकोष्ठान्तर पश्य बहुकालावधि

---

राजा—क्या ऐसी बात है ?

बृहन्नला—क्षमा करें महाराज क्षमा करें ।

अल्प वयस्क होने के कारण कुमार बुरी तरह घबडा गये हैं, शत्रुओं पर स्वयं इन्होंने प्रहार किया, सारी लड़ाईयाँ इन्होंने स्वयं लड़ी पर, इन्हें लगता है, कोई दूसरा लड़ता रहा है ॥ ६२ ॥

उत्तर—आप अपना सन्देह दूर करले । यह आपको बतला रहा है—

कलाई का घाव जो गाण्डीव की प्रत्यञ्चा की रगड से उत्पन्न हुआ है वे ये धनञ्जय है घाव के इस चिह्न ने बारह साल बीत जाने पर भी अपना रङ्ग नहीं

यत्तद् द्वादशवर्षान्ते नैव याति सवर्णताम् ॥ ६३ ॥

बृहन्नला—

एतन्मे परिहार्याणां व्यावर्तनकृतं किणम् ।
सन्निरोधविवर्णत्वाद् गोधास्थानमिहागतम् ॥ ६४ ॥

राजा—पश्यामस्तावत् ।

बृहन्नला—

रुद्रबाणावलीढाङ्गो यद्यहं भारतोऽर्जुनः ।
सुव्यक्तं भीमसेनोऽयमयं राजा युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥

---

तस्य गाण्डीवज्याहतम् चिह्नम् सुरक्षितमस्ति स अयमर्जुन एवासि ॥ ६३ ॥

**व्याख्या**—एतत् एव, मे मम, परिहार्याणाम् वलयानाम्, सन्निरोध-विवर्णत्वात् सुदृढप्रतिबन्धनकृतवर्णभेदात्, गोधास्थानम् गौर्व्याघातनिवारण स्थलम् प्रकोष्ठदेशमागतम्, व्यावर्तनम् अनेकपरिवर्त्तनजन्यचिह्नम्, कृतम् निर्मितम् । नाय गाण्डीवज्याकृतचिह्नम् प्रत्युत वलयविवर्त्तनजन्यचिह्नमस्ति । अतोनाहं धनञ्जयः भ्रमेणाऽऽशङ्काऽस्ति ॥ ६४ ॥

**राजा**—तावदिदमवधारणे, पश्यामः निरूपयामः, अर्थात् सूक्ष्मतया निरीक्ष्य निर्णयङ्करोमि ।

**व्याख्या**—यदिचेत्, अहम् बृहन्नला, रुद्रबाणावलीढाङ्गः शङ्करशरक्षत-गात्रः, भारत भरतवंशीयः, अर्जुनः पार्थः अस्मि तर्हि अयम् एव तव पावकः, भीमसेनः वृकोदरः अस्ति तथा चायम् भगवान् राजा नृपः, युधिष्ठिरः धर्मराजः, सुव्यक्तम् सुस्पष्टमस्ति ॥ ६५ ॥

---

बदला है ॥ ६३ ॥

**बृहन्नला**—यह तो मेरे कंगने की रगड़ से चिह्न बन गये हैं, ये छल्ले बार-बार हिलते हैं जिससे मणिबंध छिल गया है ॥ ६४ ॥

**राजा**—हम देखें तो,

**बृहन्नला**—शंकर के शरों से क्षताङ्ग यदि मैं भरतवंशीय अर्जुन हूँ तो निश्चय आर्य भीम हैं ये महाराज युधिष्ठिर हैं ॥ ६५ ॥

तस्य पुत्रापराधस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥
(इति प्रणमति)

भीमसेन—एह्येहि पुत्र ! पितृसदृशपराक्रमो भव ।
अभिमन्यु:—अनुगृहीतोऽस्मि ।
भीमसेन—पुत्र ! अभिवादयस्व पितरम् ।
अभिमन्यु:—भोस्तात ! अभिवादये ।
अर्जुन—एह्येहि वत्स ! (आलिङ्ग्य)

अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः ।

---

राधस्यात्मनहतागसः, प्रसाद अनुग्रहम्, कर्त्तुम् विधातुम् अर्हसि योग्योसि॥६८॥
(इति प्रणमति अभिवादयति)

**भीमसेनः**—एह्येहि पुत्र आगच्छ सुत, पितृसदृशपराक्रम. निजजनकतुल्य शक्तिशाली भव ।

**अभिमन्यु.**—अनुगृहीतोऽस्मि कृपान्वितो जातः ।

**भीमसेनः**—पुत्र हे सुत, पितरम् जनकम्, अभिवादयस्व प्रणम्यताम् ।

**अभिमन्यु.**—भो तात हे पित', अभिवादये प्रणमामि ।

**अर्जुनः**—एह्येहि समागच्छ वत्स पुत्र (आलिङ्ग्य गाढालिङ्गन कृत्वा)

**व्याख्या**—अयम् एष', सः पूर्वमनुभूत,, हृदयाह्लादी चित्तानन्दकर. पुत्र गात्रसमागम. आत्मजस्पर्श. यः पुत्र, प्रोषितः दूर गतः, त्रयोदशवर्षान्ते त्रयोधिक

---

बेटे के इस अपराध को आप क्षमा करें ॥ ६८ ॥
(प्रणाम करता है)

**भीमसेन**—आओ बेटे आओ । अपने पिता की तरह ही पराक्रमी बनो ।
**अभिमन्यु**—अनुगृहीत हुआ ।
**भीमसेन**—बेटा ! अपने बाप को तो प्रणाम करो ।
**अभिमन्यु**—पिता जी,-प्रणाम करता हूँ ।
**अर्जुन**—आओ बेटे आओ । (गले लगाकर)
हृदय को आनन्दित करने वाले पुत्र के शरीर का यह वही स्पर्श है जो

यस्त्रयोदशवर्षान्ते प्रोषितः पुनरागतः ॥ ६८ ॥

पुत्र ! अभिवाद्यतां विराटेश्वरः ।

अभिमन्युः—अभिवादये ।

राजा—एह्येहि वत्स !

यौधिष्ठिरं धैर्यमवाप्नुहि त्वं भैमं बलं नैपुणमर्जुनस्य ।
माद्रीसुतयोः कान्तिमथाभिरूप्यं कीर्तिं च कृष्णस्य जगत्प्रियस्य ॥७०॥

( आत्मगतम् ) उत्तराभिकर्षस्तु मां बाधते । किमिदानीं करिष्ये । भवतु,

---

दशाब्दानन्तरं पुनरागतः पुनः प्राप्तवानिति भावः ॥ ६९ ॥

पुत्र हे सुत, अभिवाद्यताम् विराटेश्वरः विराटनृपतिः ।

अभिमन्यु—अभिवादये प्रणमामि ।

राजा—एह्येहि समागम्यताम् वत्स हे पुत्र,

व्याख्या—त्वम् भवान्, यौधिष्ठिरम् धर्मराजस्य, धैर्यम् धीरता भैमम् भीमस्य, बलम्, शक्तिम्, अर्जुनस्य धनञ्जयस्य नैपुणम् निपुणताम्, माद्रीजयोः नकुलसहदेवयोः कान्तिम् सौन्दर्यम्, आभिरूप्यम् बुद्धिमत्वञ्च, जगत्प्रियस्य संसाराह्लादजनकस्य कृष्णस्य देवकीनन्दनस्य कीर्तिम् यशश्च, अवाप्नुहि प्राप्नुहि । धर्मराज इव धीरो भीम इव शक्तिशाली, पार्थ इव युद्धकुशलः, नकुल इव प्रियदर्शनः सहदेव इव विद्वान्, कृष्ण इव यशस्वी च जायस्वेति भावः ॥ ७० ॥

( आत्मगतम् स्वगतम् ) उत्तराभिकर्षस्तु उत्तरया सह अर्जुनस्य सम्बन्धः, माम् विराटम् बाधते, इदानीम् अधुना, किं करिष्ये किं कर्तुं न शक्नोमि भवतु

---

तेरह वर्षों तक अलग रहने के बाद आज फिर मिला है ॥ ६९ ॥

बेटा, विराटेश्वर को प्रणाम करो ।

अभिमन्यु—प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ बेटे । तुम युधिष्ठिर का धैर्य, भीम का बल, अर्जुन की रणकुशलता नकुल की सुन्दरता, सहदेव की बुद्धिमत्ता तथा जगत प्रिय भगवान् कृष्ण की कीर्ति प्राप्त करो ॥ ७० ॥

(अपने आप) उत्तरा के साथ अर्जुन का संबंध मुझे खलता है । ऐसी स्थिति

अन्तःपुरनिवासस्य सदृशी कृतवान् क्रियाम् ॥ ७२ ॥

अद्यैव खलु गुणवन्नक्षत्रम् । अद्यैव विवाहोऽस्य प्रवर्तताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु । पितामहसकाशमुत्तरं प्रेषयामः ।

राजा—यदभिरुचितं भवद्भ्यः । धर्मराज-वृकोदर-धनञ्जयाः । इत इतो भवन्तः ।

अनेनैव प्रहर्षेणाभ्यन्तरं प्रविशामः ।

---

आचरणेषु व्यवस्थितः स्थिरः, अन्तःपुरनिवासस्यावरोधस्थितेः, सदृशीम् अनुरूपाम्, क्रियाम् व्यवहारम् कृतवान् सम्पादितमिति ॥ ७२ ॥

अद्यैव अस्मिन्नेव दिने, खलु निश्चयेन, गुणवन्नक्षत्रम् प्रशस्तगुणयुक्तम् नक्षत्रम् अतः अद्यैव अस्य अभिमन्योः विवाहः पाणिग्रहणसंस्कारः प्रवर्तताम् विधीयताम् ।

युधिष्ठिरः—भवतु भवतु स्वीकृतम् मया । पितामहसकाशम् भीष्मस्य समीपम्, उत्तरम् कुमारम् प्रेषयामः कुलश्रेष्ठं गाङ्गेयम् निमन्त्रयितुम् विराट-पुरं प्रेषयाम इत्यर्थः ।

राजा—यत् यथा, अभिरुचितम् अभिलषितम्, भवद्भ्यः श्रीमद्भ्यः । धर्मराज हे युधिष्ठिर वृकोदर हे भीम, धनञ्जय हे अर्जुन, इत इतो भवन्तः अस्यामेव दिशि समागम्यन्ताम् भवन्तः अनेनैव प्रहर्षेण आनन्देन प्रविशामः अन्तःपुरं गच्छामः ।

---

अन्तःपुर निवास के योग्य काम किया है ॥ ७२ ॥

आज सर्वगुण सम्पन्न नक्षत्र है, आज ही इनका विवाह सम्पन्न करें ।

युधिष्ठिर—अच्छी बात है, भीष्मपितामह के पास कुमार उत्तर को निमन्त्रण लेकर भेजते हैं ।

राजा—जैसी आप की इच्छा । हे धर्मराज, वृकोदर और धनञ्जय आपलोग

## अथ तृतीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति सूतः )

सूतः—भो भोः ! निवेद्यतां निवेद्यतां सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणां क्षत्रियाणाम् ।
एष हि,

अपास्य नारायणचक्रजं भयं चिरप्रनष्टान् परिभूय पाण्डवान् ।
धनुस्सहायैः कुरुभिर्न रक्षितो हृतोऽभिमन्युः क्रियतां व्यपत्रपा ॥१॥

इति ।

( ततः प्रविशतो भीष्मद्रोणौ )

---

(ततः—अथ पूर्वोत्तरवस्तुवृत्तसंघटनामविष्कम्भकरचनाकुलेन यथानारब्धे तत इति ) पूर्ववृत्तान्तमित्यर्थः ।

सूतः—भोः भोः इत्यनिर्दिष्टजनस्य सम्बोधने, निवेद्यताम् कथ्यताम्, सर्वक्षत्राचार्यपुरोगाणाम् - सर्वेषाम् सकलानाम् क्षत्राणाम् क्षत्रियाणाम्, आचार्यः गुरुः पुरोगः अग्रगण्यः येषां तेषाम् द्रोणप्रमुखानामिति, एषः अतो अभिमन्युः ।

व्याख्या—नारायणचक्रजम् नारायणस्य श्रीकृष्णस्य चक्रात् चक्रनामकास्त्रात्, समुत्पन्नम्, भयम् त्रासम्, अपास्य विहाय, चिरप्रनष्टान् चिरकालात् अज्ञातवृत्तात्, पाण्डवान् पाण्डुपुत्रान्, परिभूय अनादरम् कृत्वा, अभिमन्युः सुभद्रासुतः, हृतः अपहृतः, धनुःसहायैः धनुर्धारिभिः, कुरुभिः कौरवैः, न नहि, रक्षितः संरक्षितुं न समर्थाः, व्यपत्रपा लज्जा क्रियताम् ॥ १ ॥

( ततः तत्पश्चात् प्रविशतः भीष्मद्रोणौ पितामहाचार्यौ )

---

( सूत का प्रवेश )

सूत—अरे खबर कर दो, सकलक्षत्राचार्यप्रधानक्षत्रियों को, यह नारायण के चक्र का भय छोड़कर, बहुत दिनों से खोये पाण्डवों का तिरस्कार कर, शत्रुओं ने अभिमन्यु का अपहरण कर लिया है, कौरव उसे बचा नहीं सके, लज्जा करनी चाहिए ॥ २ ॥

( भीष्म और द्रोण का प्रवेश )

द्रोण—सूत ! कथय कथय ।

> रणपटुरपनीत: केन मे शिष्यपुत्रः
> क इह मम शरैस्तैर्दैवतैर्योद्धुकामः ।
> कथय पुरुषसारं यावदस्त्रं बलं वा
> बलवत इषुदूतांस्तत्र सम्प्रेषयामि ॥ २ ॥

भीष्म—सूत ! कथय कथय ।

भग्नास्वयानेष्वनभिज्ञदोषस्तारुण्यभावेन विलम्बमान ।

---

द्रोणः—सूत सारथे, कथय वद, कथय किं वृत्तान्तम् ?

व्याख्या—रणपटु युद्धकुशल , मे मम, शिष्यपुत्र. अभिमन्यु , केन शत्रुणा, अपनीत अपहृत , तैः अनै , मम द्रोणस्य, दैवतैः दिव्यै., शरै. बाणै , इह अस्मिन् संसारे, क पुरुषविशेष योद्धुकाम युद्धाभिलाषी वर्त्तते, यावद् यावत्कालपर्यन्तम् अस्त्रम् प्रहरणम्, बलम् शारीरिकं सामर्थ्यम्, वा अथवा, पुरुषसारम् पौरुषम् सारम् यस्यासौ पुरुषसारस्त कथय आख्याहि, तस्मिन् अभिमन्युहर्त्तरि रिपौ बलवत अतिशयबलशालिन , इषुदूतान् बाणरूपीदूतान् प्रेषयामि प्रेरयामि ॥ २ ॥

भीष्मः—सूत सारथे, कथय कथय वद मे—

व्याख्या—भग्नानाम् पराजितानाम्, अपयानेषु पलायनप्रवृत्तेषु, अनभिज्ञदोष पलायनानभिज्ञत्वरूपदूषणवान्, तारुण्यभावेन यौवनदर्पेण, विलम्बमान ,

---

द्रोण—सारथी, कहो, कहो,

मेरे शिष्य अर्जुन का पुत्र रणप्रवीण अभिमन्यु का किसने अपहरण किया है ? मेरे दिव्यवाणों से कौन लड़ना चाह रहा है, ललकार दो उसके पौरुष को, कह दो उसके हथियारों का, मैं अभी अपने बलवान वाण रूपी दूतों को उनके पास भेजता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म—सूत कहो, कहो,

हारकर भी युद्ध से जो भागना नहीं जानता, यही जिसमें दोष है, इससे पर भी जवानी के जोश में जो रणाङ्गण में अड़ा रहा, उन अभिमन्युरूपगज

केनैष हस्तिग्रहणोद्यतेन यूथेऽपयाते कलभो गृहीतः ॥ ३ ॥

( ततः प्रविशति दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्च )

दुर्योधनः—सूत ! कथय कथय । केनापनीतोऽभिमन्युः । अहमेवैनं मोक्षयामि ! कुतः,

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीय ।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्

---

रणाङ्गणे स्थिरीभूतः, एषः असौ, कलभः गजशावकोऽभिमन्युः, हस्तिग्रहणोद्यतेन गजग्रहणप्रयत्नशीलेन, यूथे गजसमूहे, अपयाते निर्गते सति, कलभः गजशिशुः गृहीतः । इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥ ३ ॥

( अथ पूर्वोत्तरवार्ता संघटयितुम् पूर्ववर्णितयोः कर्ण-दुर्योधनयोः शकुनिना सह प्रवेशमाह—तत इति )

**दुर्योधन**—सूत हे सारथे, कथय वद, केन पुरुषेण, अपनीतः अपहृतः, अभिमन्युः सुभद्राकुमारः अहमेव दुर्योधन एव, एनम् अभिमन्युम्, मोक्षयामि ग्रहणान्मोचयामीति—

**व्याख्या**—अस्य अभिमन्योः, पितृभिः धर्मराजादिपाण्डवैः सह, मम दुर्योधनस्य, ज्ञातिभेदः दायादभावकृतं वैरम्, प्रस्तुतः उपस्थितः अस्ति, तत् तस्मात्कारणात्, इह अस्मिन् प्रसंगे वक्तृभिः लोकैः, मयि दुर्योधने, दोषः कलङ्कः, पातनीयः अर्पणीयः, अथ च अन्यच्च, सः अभिमन्युः, मम दुर्योधनस्य पुत्रः स्नेहशीलतया सजन्यसुत इव, तु पाण्डवानाम्, पाण्डुपुत्राणाम् पश्चात् अर्थात् अभिमन्युः पाण्डवापेक्षया मयि अधिकस्नेहशील इत्यर्थः, च पुनः, कुलविरोधे

---

बालक को यूथपतियों के भाग जाने पर किसने पकड़ लिया है ॥ ३ ॥

( कर्ण, दुर्योधन एवं शकुनि का प्रवेश )

**दुर्योधन**—सारथे, कहो, कहो, किसने अभिमन्यु का अपहरण किया है, मैं ही उसे छुड़ाऊँगा, क्योंकि—

मेरा उसके पिताओं से विरोध चल रहा है, इस आनुवंशिक विरोध के कारण उसे पकड़े जाने पर लोग मुझे ही दोषी ठहरायेंगे। इसके अतिरिक्त

मति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बाला. ॥ ४ ॥

कर्णः—अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं भवता । गान्धारीमातः !

मा तावत् स्वजनभयान् तु बालभावात्
व्यापन्नः समरमुखे तव प्रियार्थम् ।
अस्माभिर्न च परिरक्षितोऽभिमन्यु-
र्गृह्यन्तां धनुरपनीय वल्कलानि ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाथः खलु सौभद्रः । मुक्त एवेति सम्प्रधार्यताम् । कुतः,

---

सति मय्यपि दायादभावकृतविरोधे, बालाः शिशवः न तर्हि, अपराध्यन्ति स्नेहाच्च्यवन्ते । मालिनी वृत्तम् ॥ ४ ॥

कर्णः—अतिस्निग्धम् परमप्रीतिकरम्, अनुरूपम् स्वगदृशम्, अभिहितम् कथितम्, भवता त्वया दुर्योधनेन, गान्धारीमातः हे दुर्योधन,

व्याख्या—बालभावात् अनारुण्यभावात्, वा स्वजनभयात् आत्मीयजनकृतनिन्दावचनभीतेः तावन्न नाभिमन्युर्मोच्यताम् तु अपितु तव प्रियार्थम् तव दुर्योधनस्य प्रियार्थम् हितसाधनाय व्यापन्नः गृहणमागतः, च पुनः, अभिमन्युः सुभद्रासुतः, अस्माभिः कर्णशकुनिदुर्योधनादिभिः, न नहि परिरक्षितः सरक्षितः, समरमुखे समराङ्गणे, तेन च धनुः चापः, अपनीय, परित्यज्य, वल्कलानि वृक्षत्वचः गृह्यन्ताम् धार्यन्ताम् । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

शकुनिः—बहुनाथः अनेकरक्षकैः सरक्षितः, खलु निश्चयेन, सौभद्रः अभिमन्युः, मुक्तः बन्धनरहितः एव सम्प्रधार्यताम् निश्चीयताम् । कुतः इति—

---

पहले वह मेरा लड़का है बाद में पाण्डवों का, वाशिक विरोध रहने पर भी भला उस बच्चे का कसूर क्या है ? ॥ ४ ॥

कर्ण—हे दुर्योधन, तुमने अति प्रेम पूर्ण एवं अपने अनुरूप बातें कही है—

डर अथवा लोकनिन्दा के भय से नहीं, अपने प्यार के कारण भी नहीं, उसे छुडाना तो इसलिए है कि वह रणाङ्गण में आपका हितसाधन करते हुए ही पकडा गया है। और हम धनुर्धारियों से उसकी रक्षा नहीं हो सकी। ऐसी स्थिति में हमें धनुष छोड़कर वल्कल धारण कर लेना चाहिए ॥ ५ ॥

शकुनि—अभिमन्यु को छुडाने वाले बहुत लोग है, उसे छूटा ही समझें। क्योंकि—

मुञ्चेदर्जुनपुत्र इत्यवगतो राजा विराटः स्वयं
स्मृत्वा चाद्य रणाजिरादवजितं मुञ्चेत् स दामोदरम्।
क्रोधोद्धूतहलात् प्रलम्बमथनाद् भीतेन मुच्येत वा
भीमस्त्वेनमिहानयेद् बलमहान् हत्वा रिपूर्नाजितान्॥ ६॥

द्रोण.—सूत! कथय कथय। कथमिदानीं गृहीत।
पर्यस्तोऽस्य रथो हया नु चपलाश्चक्राक्षमा मेदिनी

---

व्याख्या—अर्जुनपुत्र. अयमभिमन्यु. पार्थस्य सुत. इति इत्थम्, अवगत. प्रतीतः सन्, राजा नृप, विराट. स्वयम् आत्मन एव, अभिमन्युम् मुञ्चेत् बन्धनात् मुक्त. कुर्यात्, अद्य अस्मिन्नेवादिने रणाजिरात् समराङ्गणात्, अवजितम् पराजित्य गृहीतमभिमन्युम् सः विराटेश्वरः, दामोदरम् श्रीकृष्णम्, स्मृत्वा स्मरणं कृत्वा, मुञ्चेत् बन्धनात् मुक्तः कुर्यात् वा अथवा, क्रोधोद्धूतहलात् क्रोधेन कोपेन उद्धूत. कम्पित. हलात् हलरूपप्रहरणात्, प्रलम्बमथनात् श्रीकृष्णाग्रजात् बलदेवात्, भीतेन भयेन, मुच्येत् त्यजेत्, वा अथवा, बलमहान् अतिशक्तिशाली, भीम. द्वितीय. पाण्डव., ऊर्जितान् दर्पितान्, रिपून् शत्रून्, हत्वा मारित्वा, एनम् अभिमन्युम्, इह अस्मिन् स्थान आनयेत् नीत्वा आगच्छेत्। शार्दूलविक्रीडितम्॥ ६॥

द्रोणः—सूत हे सारथे कथय कथय, कथम् केन प्रकारेण, इदानीम् अधुना, गृहीत. बन्धनगतोऽभिमन्यु. ?

व्याख्या—अस्य अभिमन्योः, रथ स्यन्दन, पर्यस्त पतित, हया अश्वा, चञ्चला. जाता., नु वितर्के, मेदिनी धरित्री, चक्राक्षमा निम्नोन्नता तेन हि रथ-

---

विराट को जब यह पता चलेगा कि यह अर्जुन का बेटा है तो वह स्वयं उसे छोड़ देगा, श्रीकृष्ण का यह भानजा है यह याद आते ही युद्ध में हराकर लाने पर भी वह उसे उसीक्षण मुक्त कर देगा अथवा क्रोध से हलहिलाने वाले बलराम के डर से ही, विराट उसे छोड देगा या महाबली भीम दुश्मनों का गर्व दर्पित कर उसे स्वयं छुडाकर यहाँ ले आयेगा॥ ६॥

द्रोण—सूत कहो कहो, वह कैसे पकडा गया ?
क्या रथ उलट गया ? घोड़े भडक गये ? रणभूमि रथसचार के योग्य

तूणी क्षीणशरे त्वमस्य विगुणो ज्याच्छेदवन्ध्य धनु. ।
एता दैवकृता भवन्ति रथिनां युद्धाश्रया व्यापदो
वाणैरप्यवकृष्यते खलु परै. स्वाधीनशिक्षस्तु स ॥ ७ ॥

सूत —आयुष्मन् ! पुरुषमयो धनुर्वेद. । किमायुष्मता न ज्ञायते ।
न चापि दोषा भवताभिभाषिता. स चापि बाणौघमयो महारथ ।
अलातचक्रप्रतिमस्तु मे रथो गृहीत एवापतता पदातिना ॥ ८ ॥

---

चक्रभ्रमणानर्हा नु किम् ? तूणी तूणीरे, क्षीणशरे बाणक्षये, नु जाते किम् ? अस्य अभिमन्यो, त्वम् सूत, विगुण गुणरहित' अयोग्यो जात' किम् ? धनु चाप., ज्याच्छेदवन्ध्यम् मौर्वीत्रुटनात् विफलो जातः ? एताः पूर्वोक्ता, युद्धाश्रयाः रणाङ्गणे उपस्थिता रथिनाम् योधानाम्, दैवकृता भाग्यदोषेण प्राप्ता. व्यापद. विपत्तय, भवन्ति जायन्ते, स्वाधीनशिक्ष यथेच्छाचरणक्षमयुद्धाभ्यासशाली सः असौ, खलु निश्चयेन, परै. अरिभि', बाणं शरं, अपि, अपकृष्यते गृह्यते ॥ ७ ॥

सूत'—आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, पुरुषमयो धनुर्वेद' पुरुषरूपेण साक्षात् धनुर्वेदस्वरूपो, आयुष्मता अभिमन्युना किं न ज्ञायते किं न जानासि ।

व्याख्या—भवता आचार्यद्रोणेन अभिभाषिता. कथिता., दोषा दुर्गुणाः न नहि, स. अभिमन्यु. अपि महारथ युद्धवीरः, बाणौघमय शरसमूहवर्षी आसीदिति, मे मम, रथः स्यन्दनः, अलातचक्रप्रतिम. भ्रमदुल्मुकतुल्यः सर्वतोभावेन सर्वत्र नृत्यन् एव, आपतता तस्मिन्नेव काले सम्मुखे समागता केनाप्यपरिचितेन

---

नहीं थी ? तरकस के बाण चूक गये, या तुमने प्रतिकूलता दिखलाई ? अथवा धनुष की प्रत्यन्चा टूट गई, लड़ाई के मैदान मे वीरो की हार के यह दैवी *कारण हैं, हाँ कभी कभी शत्रु बाणो से भी प्रतिद्वन्द्वी को खींच लेते हैं किन्तु,* अभिमन्यु तो रण कुशल था ॥ ७ ॥

सूत—आयुष्मान, आपका पता नही है कि कुमार अभिमन्यु धनुर्वेद के पुरुषावतार ही है ।

ऊपर आपने जिन खामियो की चर्चा की है, उनमे एक भी नही थी, रथ पर सवार होकर कुमार अभिमन्यु शत्रुदल पर बाण बरसा रहे थे, मेरा रथ भी अलातचक्र की तरह नाच ही रहा था कि इसी बीच किसी अपरिचित

सर्वे—कथं पदातिनेति ?

द्रोणः—अथ कीदृशः पदातिः ?

सूतः—किमभिधास्यामि रूपं वा पराक्रमं वा ?

भीष्मः—रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते । पराक्रमेण तु पुरुषाः । तत् पराक्रमोऽस्याभिधीयताम् ।

सूतः—आयुष्मन् !

दुर्योधन— किमर्थं स्तूयसे कोऽपि भवता गर्विताक्षरैः ।

---

पदातिना पदचारिणा गृहीत एवः अभिमन्यु ग्रहणमागत एवेति । वशस्थं वृत्तम् ॥ ८॥

**सर्वे**—कथं पदातिना पदचारिणा एव केन प्रकारेण गृहीतोऽभिमन्युरिति आश्चर्यम् प्रकाशते ।

**द्रोण**—अथेति प्रश्ने कीदृशः पदातिः पदचारीति प्रश्नः ?

**सूतः**—किमभिधास्यामि किं कथयामि तस्य पदातेः रूपम् आकृतिः वा पराक्रमः शौर्यम् इति प्रष्टुराशयः ?

**भीष्मः**—रूपेण आकृत्या, स्त्रियः नार्यः, कथ्यन्ते, पराक्रमेण शौर्येणतु पुरुषाः नराः कथ्यन्ते । तत् तस्मात् पराक्रमः साहसम् तस्य पुरुषविशेषस्य, अभिधीयताम् कथ्यताम् ।

सूतः आयुष्मन्-चिरञ्जीविन्,

**व्याख्या**—भवता सूतेन, गर्विताक्षरैः साभिमानशब्दैः, किमर्थम् केन हेतुना, कोऽपि पुरुषविशेषः, स्तूयते प्रशस्यते, मे मम, त्रासः भयम्, नास्ति न

---

वीरने पैदल ही आगे बढकर रथ को थाम लिया ॥ ८ ॥

**सभी**—क्या कहा किसी पदाति ने ?

**द्रोण**—अच्छा तो वह पदाति कैसा था ?

**सूत**—मैं उसका रूप बताऊँ या पराक्रम ?

**भीष्म**—औरतों का रूपवर्णन किया जाता है मर्दों का तो पराक्रम ही कहा जाता है, पराक्रम ही बतलाओ सूत,

**सूत**—आयुष्मन्,

**दुर्योधन**—क्योंकि किसी स्तुति साभिमान शब्दों में आप कर रहे हैं,

कथ्यतां नास्ति मे त्रासो यद्यपि पवनो जवे ॥ ९ ॥

सूत—श्रोतुमर्हति महाराजः । तेन खलु,

लङ्घयित्वा जवेनाश्वान् न्यस्तश्चापस्करे करः ।
प्रसारितहयग्रीवो निष्कम्पश्च रथः स्थितः ॥ १० ॥

भीष्म —तेन हि न्यस्यन्तामायुधानि ।
सर्वे—किमर्थम् ?

---

विद्यते, अत्र निःसंकोचभावेन कथ्यताम् उच्यताम्, यदि चेत्, एष भवता वर्ण्यमानः पुरुषः, जवे पवनः वायुरपि स्यात् भवेत् तथापि मम भयं न भवतीति भावः ॥ ९ ॥

**सूत.**—श्रोतुम् आकर्णयितुम्, अर्हति योग्योऽस्ति भवान् इति । तेन हेतुना, लङ्घ—

**व्याख्या**—जवेन वेगेन, अश्वान् हयान्, रथ्यान्, लङ्घयित्वा अतिक्रमणं कृत्वा, अपस्करे रथस्याग्रिमभागे, करः हस्तः, न्यस्तः स्थापितः, प्रसारितहयग्रीवः रश्मिग्रहीतभारेण हयानां ग्रीवाभागान् प्रसारयन् च रथः स्यन्दनः, निष्कम्पः अचलभावेन स्थितः स्थिरीभूतः ॥ १० ॥

**भीष्मः**—तेन कारणेन, हि इति निश्चयार्थे, न्यस्यन्ताम् मुच्यन्ताम्, आयुधानि अस्त्राणि ।

**सर्वे**—किमर्थम् केन हेतुना त्यक्तव्यानि अस्त्राणि ।

---

आप साफ शब्दों में बतलायें वह पवन की तरह वेगवान् क्यों न हो—मैं किसी से नहीं डरता हूँ ॥ ९ ॥

**सूत**—सुनिए महाराज । उस पदाति ने—

रथाश्वों के वेग को अतिक्रमितकर एक ही हाथ से रथ के अगले भाग को थाम लिया, घोड़ोंने पूराजोर लगाया उनकी गर्दनें लम्बी हो गईं, फिर भी रथ टस से मस नहीं हुआ ॥ १० ॥

**भीष्म**—तो फिर हथियार डाल दिए जाँय ।

**सभी**—क्यों ?

भीष्मः—

हृतप्रवेगो यदि बाहुना रथो वृकोदरस्याङ्कगतः स चिन्त्यताम् ।
पुरा हि तेन द्रुपदात्मजा हरन् पदातिनैवावजितो जयद्रथः ॥ ११ ॥

द्रोण.—सम्यगाह गाङ्गेयः । बाल्योपदेशात् प्रभृत्यहं तस्य जवमवगच्छामि ।

इष्वस्त्रशालायां हि,

कर्णायते तेन शरे विमुक्ते विकम्पितं तस्य शिरो मयोक्तम् ।
गत्वा तदा तेन च बाणतुल्यमप्राप्तलक्षः स शरो गृहीतः ॥ १२ ॥

---

**व्याख्या**—यदिचेत्, बाहुना एकेनैव, हस्तेन, रथः स्यन्दन, हृतप्रवेगः निरुद्धवेगः कृतः तर्हि सः अभिमन्यु., वृकोदरस्य भीमस्य, अङ्के क्रोडे, गतः स्थितः इति चिन्त्यताम् विभाव्यताम्, पुरा पूर्वस्मिन काले, द्रुपदात्मजाम् द्रौपदीम्, हरन् स्वस्यन्दनेऽवस्थाप्य गच्छन्, तेन भीमेन, पदातिनैव पदचारणेनैव जयद्रथः एतदाख्यनृप, अवजितः पराजित. । अर्थात् रथादवतार्य द्रौपदीमानीत इति भाव. ॥ ११ ॥

**द्रोणः**—सम्यगाह गागेयः भीष्मः सुष्ठु भणति । बाल्योपदेशात् प्रभृति शैशवादारभ्य क्रियमाणशिक्षणात्, अहम् द्रोणः तस्य भीमस्य, जवम् वेगम्, अवगच्छामि जानामि । इष्वस्त्रशालायां हि अस्त्रशिक्षणविद्यालये हि—

**व्याख्या**—तेन भीमेन, कर्णायते कर्णपर्यन्ताकृष्टे, शरे बाणे विमुक्ते त्यक्ते सति, मया द्रोणेन तस्य भीमस्य, शिरः उत्तमाङ्गं विकम्पित विधूतम् उक्तम्, कथितम्, तदा तर्हि, तेन भीमेन, बाणतुल्यम् शरसदृशम्, गत्वा धावन् यात्वा,

---

**भीष्म**—यदि एक ही हाथ की पकड से रथ की गति रोक दी गई तो निश्चय ही अभिमन्यु भीम की गोद मे गया है, क्योकि पहले द्रौपदी हरण के समय भीम ने पैदल ही चलकर जयद्रथ को पराजित कर उसके रथ से सैरन्ध्री को इसी तरह उतार लिया था ॥ ११ ॥

**द्रोण**—गागेय का कहना बिल्कुल ठीक है । उसकी इस तीव्रगति से उसके बचपन से ही मैं परिचित हूँ । अस्त्रप्रशिक्षण विद्यालय मे—

एक बार भीमने कान तक खीचकर बाण छोड़ा, मैंने कहा बाण छोडने मे तुम्हारा शिर हिल गया, यह एक दोष है । फिर क्या था जिधर बाण फेंका

शकुनि—अहो हास्यमभिधानम् । भो ! पृच्छामि तावद् भवन्तम् ।

नास्त्यन्यो बलवाँल्लोके सर्वमिष्टेषु कथ्यते ।
जगद्व्याप्तान् भवन्तः किं सर्वे पश्यन्ति पाण्डवान् ॥ १३ ॥

भीष्म—गान्धारराज ! सर्वमनुमानात् कथ्यते ।

वय व्यपाश्रित्य रण प्रयाम शस्त्राणि चापानि रथाधिरूढा ।
द्वावेव दोर्भ्यां समरे प्रयातो हलायुधश्चैव वृकोदरश्च ॥ १४ ॥

---

अप्राप्तलक्ष्यदेशम् अप्राप्त एव, स असौ, शर बाण गृहीत धृत ॥

शकुनि—अहो इत्याश्चर्ये, हास्यम् हसितु योग्यमर्थात् उपहासास्पदम् अभिधानम् कथनम्, भो इति सम्बोधने, पृच्छामि तावद् भवन्तम् त्वम् ।

व्याख्या—लोके ससारे, अन्य अपर कोऽपि पाण्डवेभ्य बलवान् शक्तिशाली नास्ति न विद्यते । इष्टेषु आत्मीयजनेषु, सर्वम् सकलम्, कथ्यते प्रयुज्यते प्रशसावचनम्, किम् कथम् सर्वे भवन्त भीष्मद्रोणप्रभृतय पाण्डवान् पाण्डुपुत्रान्, जगद्व्याप्तान् सर्वत्रोपस्थितान्, पश्यन्ति सभावयन्ति इति ॥ १३ ॥

भीष्म—गान्धारराज, देशकुले, सर्वम् सकलम् अनुमानात् अनुमानप्रमाणात् कथ्यते प्रोच्यते ।

व्याख्या—वयम् भवन्तश्च सर्वे, रथाधिरूढा स्यन्दने आरोहणम् कृत्वा, चापानि धनूषि, शस्त्राणि आयुधानि च व्यपाश्रित्य अवलम्ब्य, रणम् समरभूमिम्, प्रयाम प्रस्थान कुर्म, हलायुध बलभद्र, वृकोदरश्च भीमश्च, द्वावेव उभावेव, दोर्भ्याम् बाहुभ्याम् समरे युद्धे, प्रयात गच्छत । अस्मिन् ससारे-

---

गया था उधर ही दौड़कर बाण को लक्ष्य तक पहुँचने के पहले ही उसे पकड़ लिया ॥ १२ ॥

शकुनि—मूर्ख, कितनी उपहासास्पद बात है ? मैं आप से ही पूछता हूँ—

क्या इस ससार म कोई दूसरा वीर नही है ? अपने आत्मीय जनो के लिए सब कुछ कहा जाता है। क्या आप लोग पाण्डवों को जगद्व्यापी मानते हैं ॥ १३ ॥

भीष्म—हे गान्धारनरेश, सब कुछ अनुमान से ही कहा जाता है ।

हमलोग हथियार के साथ रथ पर सवार होकर ही युद्ध यात्रा करते हैं ।

शकुनिः—

एकेनैव वयं भग्ना: सहसा साहसप्रिया: ।
उत्तरं च तमप्येके कथयिष्यन्ति फल्गुनम् ॥ १५ ॥

द्रोण:—भो गान्धारराज ! अत्रापि तावद् भवत: सन्देह: ।

किमुत्तरेणापि रणे विकृष्यते निमृष्टशुष्काशनिगर्जितं धनु: ।
किमुत्तरस्यापि शरैर्हृतातप: कृतो मुहूर्तास्तमितो दिवाकर: ॥१६॥

---

केवल द्वावेव पुरुषौ स्त: यौ बाहुप्रहरणौ समराङ्गणे गच्छतस्तेन सम्यतेऽनुमानमिदम् यद्भीमेनैवाभिमन्युर्गृहीत इति ॥ १४ ॥

**व्याख्या**—एकेनाद्वितीयेन, एव, साहसप्रिया: बलवन्त: वयम् भीष्मद्रोणादय:, सहसा हठात्, भग्ना पराजिता:, तदुत्तरम् विराटपुत्रम् अपि एके त्वादृशा: केचन, फल्गुनमर्जुनम् कथयिष्यन्ति ॥ १५ ॥

**द्रोण**—भो गान्धारराज हे दुर्योधनमातुल, अत्रापि अस्माकं पराजेतुमर्जुनत्वेऽपि, तावत् भवत: तव, सन्देह: आशङ्का ?

**व्याख्या**—उत्तरेण विराटपुत्रेण, अपि, रणे समरे, निमृष्टशुष्काशनिगर्जितम् कृतशुष्कवज्रध्वनि:, धनु: चापम्, विकृष्यते आकृष्यते किमिति प्रश्ने ? उत्तरस्यापि विराटपुत्रस्यापि, शरै: बाणै:, हृतातप:-वारितातप, मुहूर्तास्तमित: क्षणकालपर्यन्तमस्तंगत इव यथा, दिवाकर रवि:, कृत: इति विश्वास्य किम् ॥१६॥

---

किन्तु ससार मे बलराम और भीम दो ही ऐसे व्यक्ति है जो केवल बाहुबल के सहारे रणाङ्गण मे उतरते है ॥ ॥ १४ ॥

**शकुनि**—हम लोगो जैसे दुर्धर्ष साहसी वीरो को, हठात् अकेले ही जिस उत्तर कुमार ने युद्ध मे पराजित कर दिया, उसे भी कुछ लोग अर्जुन ही तो कहेंगे ॥ १५ ॥

**द्रोण**—बेशक, इसमे भी आपको सदेह है क्या ?

क्या कुमार उत्तर भी सूखे वज्र की तरह गरजने वाला धनुप खीचना जानता है ? क्या उत्तर के भी बाणो से भी सूरज ढँक जाता है या दिन मे ही अस्तगत सूर्य दीखने लगता है हैं ॥ १६ ॥

भीष्म'—गान्धारीमातः ! विस्पष्टं खलु कथ्यते। ननु जानीते भवान् ।
वाणपुङ्खाक्षरैर्ज्याभिर्जिह्वापरिवर्तिभिः ।
विकृष्टं खलु पार्थेन न च श्रोत्रं प्रयच्छसि ॥ १७ ॥
( प्रविश्य )

सूत —जयत्वायुष्मान् । शान्तिकर्मानुष्ठीयताम् ।

भीष्मः—किमर्थम् ?

सूत'—

उचितं ते पुरा यत्तु ध्वजे वाणप्रधर्षिते ।

---

**भीष्मः**--गान्धारीमातः हे दुर्योधन, विस्पष्टम् सुस्पष्टम्, खलु निश्चयेन, कथ्यते । नन्विति वितर्के, जानीते भवान् त्वमिति—

**व्याख्या**--वाणपुङ्खाक्षरैः शरमूलेऽङ्कितनामाक्षरैः, ज्याभिः मौर्वीभिः, जिह्वा परिवर्तिभिः रसनापरिवर्तिभिः, वानर्थं धनुर्ध्वनिभिः, खलु निश्चयेन, विकृष्टम्, आकृष्टम्, पार्थेन अर्जुनेन, न च श्रोत्रं प्रयच्छसि किं तत्र भवान् कर्णं न दत्तवान्, अर्जुनेनैवेदम् धनुराकृष्यत इति स्पष्टमाख्यातम् ॥ १७ ॥

( प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा )

**सूतः**--जयतु सर्वोत्कर्षेण विजयं लभस्व आयुष्मन् चिरञ्जीविन्, शान्तिकर्म शमनकार्यम्, अनुष्ठीयताम् क्रियताम् ।

**भीष्मः**--किमर्थम् कस्मै निमित्ताय ?

**व्याख्या**--ध्वजे स्यन्दनकेतौ, वाणप्रधर्षिते अन्यवाणविद्धे सति, पुरा-

---

॥ **भीष्म**--हे दुर्योधन, मैं स्पष्ट कहूँगा, आप जानते हैं,

वाणपुंख पर लिखे शब्द को ज्याप्रत्यञ्चा से दुहराने वाले धनुष के शब्द ने स्पष्ट कह दिया कि पार्थ ही धनुष खींचते हैं। क्या आपने उधर कान नही दिया ?

( प्रवेश करके )

**सूत**-- जय हो महाराज की, शान्ति कर्म कीजिए ।

**भीष्म**—क्यों ?

**सूत**—आपकी ध्वजा दूसरे के वाण से जिस समय विद्ध हुई, उसके लिए

अयं हि बाणः कस्यापि पुङ्खे नामाभिधीयते ॥ १८ ॥

भीष्मः—आनय ।

( सूत उपनयति )

भीष्मः—( गृहीत्वा निरीक्ष्य ) वत्स ! गान्धारराज ! । जराशिथिलं मे चक्षुः । वाच्यतामयं शरः ।

शकुनिः—( गृहीत्वानुवाच्य च ) अर्जुनस्य । ( इति क्षिपति । द्रोणस्य पादयो पतति । )

द्रोण —( शरं गृहीत्वा ) एह्येहि वत्स ।

---

पूर्वमेव ते तव भीष्मस्य, कर्तुमुचितम् शान्तिकर्म विधातुमुचितम्, अयं हि असौ बाणः शरः, येन बाणेन ध्वजः केतुः, प्रर्धर्षितः विद्धः, अस्य शरस्य पुङ्खे मूले, कस्यापि पुरुषविशेषस्य नाम सज्ञा, अभिधीयते उच्यते ॥ १८ ॥

**भीष्म**—आनय समानीयताम् ।

( सूतः सारथिः उपनयति आनयति )

**भीष्म**—( गृहीत्वा नीत्वा, निरीक्ष्य दृष्ट्वा ) वत्स हे पुत्र, गान्धारराज, जराशिथिलम् वृद्धत्वेन शिथिलम् मे मम, चक्षु नेत्रम्, वाच्यताम् पश्यताम् अयम् एषः, शरः बाणः ।

**शकुनिः**—( गृहीत्वा नीत्वा अनुवाच्य पठित्वा च ) अर्जुनस्य धनञ्जयस्य ( इति क्षिपति प्रक्षिप्तवान् द्रोणस्याचार्यस्य पदयोः चरणयोः पतति )

**द्रोण**—(शरम् बाणम्, गृहीत्वा नीत्वा) एह्येहि समागम्यताम् वत्स हे सुत ।

---

शान्ति कर्म और भी पहले करना चाहिए था । जिस बाण ने आपकी ध्वजा को बेधा है उस बाण पर नाम किसका लिखा है ? ॥ १८ ॥

**भीष्म**– लाओ बाण । ( सारथी लाता है । )

**भीष्म**— लेकर और देखकर ) बेटा गान्धारराज, वृद्धावस्था के कारण मेरी आँख काम नही कर रही है । जरा पढो तो इस पर किसका नाम लिखा है ?

**शकुनि**– ( लेकर और पढकर ) अर्जुन का यह बाण है । ( फेकता है, बाण द्रोण के पैरो पर गिरता है ) ।

**द्रोण**– ( बाण लेकर ) बेटा, अर्जुन ने इस बाण को भीष्म को प्रणाम

एष शिष्येण मे क्षिप्तो गाङ्गेय वन्दितुं शरः ।
पादयोः पतितो भूमौ मा क्रमेणाभिवन्दितुम् ॥ १९ ॥

शकुनि—मा तावद् भो ! शरप्रत्यय इदानी श्रद्धातव्यम् ।

योध स्यादर्जुनो नाम तेनाय चोज्झितः शरः ।
लिखित चोत्तरेणापि प्रकाशमुपनीयताम् ॥ २० ॥

दुर्योधनः—

तेषा राज्यप्रदानार्थमनृतं कथ्यते यदि ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि यावद् दृष्टे युधिष्ठिरे ॥ २१ ॥

---

**व्याख्या**-एष असौ, मे मम, शिष्येण पार्थेन, गाङ्गेयम् भीष्मम् वन्दितुम् प्रणमितुम्, क्षिप्त प्रेषित, शर. बाण, क्रमेण क्रमश, माम् गुरुद्रोणम्, अभिवन्दितुम् प्रणामम् कर्त्तुम् पादयो चरणयो पतित भूमौ पृथिव्यामिति भाव ॥

**शकुनि**—मा तावद् भो एवम् मा वद, शरप्रत्यये बाणानुमानविश्वासे, इदानीम् अधुना, श्रद्धातव्यम् विश्वास कार्यं ।

**व्याख्या**—योध कश्चिदन्य पुरुषविशेषवीर अर्जुन धनञ्जय. स्यात् भवेत् तेन कारणेन अयम् पुरो दृश्यमान. शर बाण उज्झित विसृष्ट स्यात् भवेत् उत्तरेण विराटपुत्रेण, लिखितम् अङ्कितम्, प्रकाशमुपनीयताम् स्पष्टतः प्रकाश्यताम् ॥ २० ॥

**व्याख्या**—तेषाम् पाण्डवानाम्, राज्यप्रदानार्थं राज्य प्रदापयितुम् यदि चेत्, अनृतम् मिथ्या, कथ्यते रच्यते तदा, राज्यस्यार्धम् साम्राज्यस्यार्द्ध भागम्

---

करने के लिए ही भेजा था। और, अब यह बाण क्रमश मुझे प्रणाम करने के लिए मेरे पैरो पर गिरा है ॥ १९ ॥

**शकुनि**—नही जी नही। बाणो पर लिखे नाम पर भरोसा नही करना चाहिए।

अर्जुन नाम का कोई दूसरा योद्धा भी तो हो सकता है। वह भी तो बाण चला सकता है। यह अर्जुन पाण्डव है, इसके लिए कुमार उत्तर द्वारा लिखित प्रमाण प्रस्तुत करना होगा ॥ २० ॥

**दुर्योधन**—और यदि उत्तर ने भी पाण्डवों को आधा राज्य दिलाने के लिए झूठ का सहारा लिया तो अपनी आंख से युधिष्ठिर को देखकर ही आधा

द्रोण:—किमाह धर्मराजः ?

उत्तर.—श्रूयताम्,

> उत्तरा मे स्नुषा लब्धा प्रतीक्षे राजमण्डलम्।
> तत्रैव किमिहेवास्तु विवाहः क्व प्रवर्तताम्॥ २३॥

शकुनि —तत्रैव तत्रैव।

द्रोण.—

> इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोऽपि वर्तते।

---

**द्रोणः**—किमाह किं कथितं, धर्मराज' युधिष्ठिरः ?

**उत्तरः**—श्रूयताम् अवधार्यताम्।

**व्याख्या**—मे मम युधिष्ठिरस्य, स्नुषा पुत्रवधूः, उत्तरा एतन्नामिका विराट सुता लब्धा प्राप्ता, राजमण्डलम् राजन्यवर्गम्, प्रतीक्षे तद्विवाहोत्सवार्थम् प्रतीक्षा करोमि, तत्रैव हस्तिनापुरे एव अथवा इहैव विराटनगरे एव, विवाहः पाणिग्रहणोत्सवः क्व कुत्र, प्रवर्तताम् जायताम् इति निश्चीयताम्।

**शकुनि**—तत्रैव तत्रैव विराटनगरे एव भवतु।

**व्याख्या**—इति इत्थम्, वयम् भीष्मद्रोणादयः, सर्वेऽपि, अर्थम् पाण्डवोपलब्धिरूपम्, आनीता सम्यक् प्रकारेण समानीता, पञ्चरात्रोऽपि पञ्चरात्र्यात्मकः

---

**द्रोण**—क्या कहा है धर्मराज ने ?

**उत्तर**—सुनिये—

विराट पुत्री कुमारी उत्तरा मुझे पुत्रवधू के रूप में मिली है। मैं आप सबों के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। विवाहोत्सव हस्तिनापुर में हो या विराट नगर में, इसका निर्णय आपलोग करें॥ २३॥

**शकुनि**—वहाँ ही हो, वहीं।

**द्रोण**—हमने पाँच दिनों के भीतर पाण्डवों का पता कर लिया है। अभी पाँच रात नहीं बीती है। इसलिए धर्मपूर्वक आधा राज्य देने को स्वीकार की

धर्मेणार्वाजिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

दुर्योधन —

बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ।
मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥ २५ ॥

द्रोण —

हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धकुलसंग्रहा ।

---

अवधित्वेन नियतः कालोऽपि वर्तते, धर्मेण स्वकृतप्रतिज्ञा पालनपूर्वकेण, आर्वाजिता स्वीकृता, भिक्षा मया याचिता गुरुदक्षिणा, धर्मेणैव प्रतिज्ञापूर्वकेनैव, प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

व्याख्या—बाढम् स्वीकृतम्, मया दुर्योधनेन, यथापुरम् पूर्वमिव, राज्यम्, पाण्डवेभ्यः युधिष्ठिरादिभ्यः, दत्तम् प्रदत्तम्, नराः जनाः, मृतेऽपि मरणान्तरेऽपि, सत्ये ऋते, तिष्ठति, अमते सति तिष्ठन्ति यशःकायेन तिष्ठन्तीति भावः ॥ २५ ॥

द्रोणः—हन्त इति हर्षे, प्रवृद्धकुलसंग्रहा विशालवंशद्वयस्य सगमाः अर्थात् पारस्परिकविरोधप्रशमनेन राज्यार्द्धविभागेन च कौरव-पाण्डवयोः कुलयोः

---

गई गुरुदक्षिणा धर्मपूर्वक ही मिल जानी चाहिए ॥ २४ ॥

दुर्योधन—मुझे स्वीकार है । मैंने पाण्डवों को अपना आधा राज्य पहले की ही तरह दिया । यदि सत्य निर्पाय रहता है तो लोग मरने के बाद भी यश रूपी शरीर मे जिन्दा रहते हैं ॥ २५ ॥

द्रोण—आज ये दोनों ही विशाल वंश पारस्परिक द्वेष के प्रशमन हो जाने से उन्नत हो रहे हैं, इससे हम सभी प्रसन्न है, सम्पूर्ण धरती का प्रशासन सूत्र

इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २६ ॥

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

इति तृतीयोऽङ्कः

---

सङ्ग्रमे सति, वयम् सर्वे जनाः प्रसन्नाः स्म मोदामहे, इमाम् पुरोवर्तिनीम्, कृत्स्नाम् अखण्डाम्, महीम् पृथिवीम् च नः अस्माकम् राजसिंहो नामा नृपतिः प्रशास्तु प्रशासनम् करोतु ॥ २६ ॥

( सर्वे सकलजनाः, निष्क्रान्ताः रङ्गभूमितः प्रस्थिताः )

**इति 'विमला' संस्कृतव्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः ।**

---

हमारे राजसिंह सम्भालें ॥ २६ ॥

( सबों का प्रस्थान )

**तृतीय अङ्क समाप्त**

इति 'बेगूसराय' मण्डलान्तर्गतगङ्गादक्षिणतटोपवर्त्ति 'अकबरपुर' ग्रामाभिजनेन यशोवशेषश्रीमद्देवज्ञरत्न 'कीर्तिनाथशर्म' तनुजुषा 'डाक्टरेट' उपाधिधारिणा एम. एम. इय व्याकरणशास्त्रि साहित्याचार्येण श्रीजगदीशचन्द्रमिश्रेण विरचित विमलाख्य संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वययुतं पञ्चरात्रं समाप्तम् ।

**सम्पूर्णं पञ्चरात्रम्**

# परिशिष्ट

## नोट्स ( टिप्पणी )

### प्रथम अङ्क

**नाटक के नाम की अन्वर्थकता**—दार्शनिक दृष्टि मे किसी नाम की अन्वर्थकता का अभाव चाहे जो कुछ हो साहित्यिक दृष्टि नाम की सार्थकता तो मानती ही है। नामकरण के औचित्य के सबध मे क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण स्पष्ट है—'नाम्ना कर्मानुरूपेण जायते गुणदोषयोः'।

ऐसी दशा मे किसी भी नाटक के प्रकृत अर्थ के अनुकूल नाम चुनने मे कवि की कला परिलक्षित होती है। इसी अन्वर्थकता एव सुप्रयुक्तता के कारण भास ने 'पञ्चरात्र' शब्द को अर्थगौरव की दृष्टि से शीर्षक के रूप मे ग्रहण किया है। इस नाटक की सारी घटनायें पाँच रात के भीतर ही घटित हुई हैं। 'पञ्चरात्र' पद यहाँ रूपक परक है।

'पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेन अस्येति पञ्चरात्रम्, अर्श आदित्वादच्।'

सामासिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका एक दूसरा भी विग्रह है—

'पञ्चाना रात्रीणा समाहार पञ्चरात्रम्।' यहाँ सख्यावाचक शब्द पूर्व मे रहने के कारण द्विगु समास हुआ है।

**श्लो० १—द्रोण'**—इस नाटक के मङ्गलश्लोक मे द्रोण आदि नाटक के प्रमुख पात्रो का नामोल्लेख एक साथ मुद्रालकार के रूप मे किया गया है। नामोल्लेख की यह विधि भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' एव 'प्रतिमानाटक' मे भी देखी जा सकती है। पात्रों के नामों का उल्लेख श्लिष्ट रूप मे है। 'द्रोण' काले काक और मेघ को भी कहते हैं। द्रोण द्रोणाचार्य का भी नाम था। यहाँ कुछ टीकाकारो ने द्रोण का अर्थ विशेषण के रूप मे कृष्ण के लिए काला कौआ का रङ्ग लिया है। लेकिन मेरी दृष्टि मे कृष्ण का रङ्ग सघन बादल की तरह श्यामवर्ण था, न कि कौए की तरह। अत हमने द्रोण

का अर्थ 'मेघ' ही लिया है, 'काक' नही। 'कृष्णवर्णसादृश्यात्' द्रोण का अर्थ काला कौआ भी होता है। अत कुछ लोगो ने लक्षणा के द्वारा इसका अर्थ 'द्रोणसदृश अर्थात् 'कृष्णकाकसदृश' लगाया है। मैं समझता हूँ, द्रोण का अर्थ बादल लगाना ही उचित है, जिसकी उपमा परब्रह्म श्रीकृष्ण को दी जाती है। cf 'अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदित'। मृच्छ०१०–२६।

**पायाद् विराट्**—यह भी एक विचारणीय शब्द है। 'विराट प्राचीन पुरुष का प्रतीक है जो हमारे सरक्षक हैं। विराट इस नाटक का एक पात्र भी है जो 'शब्दैकदेशलक्षणाविराज्' के रूप मे भगवान के साथ पहचाना जाता है जो इस सृष्टि का पुरातन तत्व है और बाद मे चलकर विष्णु के रूप मे सर्वमान्य है। अत इसका प्रयोग इस श्लोक मे दो अर्थों मे निहित है–एक तो कृष्ण का निरूपण करता है, दूसरा 'विराट'। नृपति का।

**पृथिव्यर्जुनभीमदूतः**—इसके भी दो अर्थ हैं–चमक और आश्चर्य का दूत पृथ्वी पर–पृथिव्या अर्जुनस्य भीमाना च (कर्मणा) दूत। यह अर्जुन और भीम के दूत का भी अर्थ बोध कराता है जो कौरव के न्यायालय मे धरती पर अपने हिस्से की माँग मे उपस्थित हुआ है। एक और बात, 'भ्रातुर्ज्यायस' के के अनुसार पहले भीम का नामोल्लेख होना चाहिए तब अर्जुन का। किन्तु अर्थच्छवि की दृष्टि से ऐसा प्रयोग किया गया है।

**शकुनीश्वरस्य कर्णधार**—शकुनीश्वरस्य, गरूडस्यनियन्ता। शकुनि इस नाटक का एक पात्र है। दुर्योधन का मामा तथा गान्धार देश का राजा।

**दुर्योधन**—दुष्कर शत्रुभि योधने यस्य। एक कठोर प्रहारक या अद्वितीय योद्धा। 'दुष्कर' शब्द का 'कर' 'प्रादिभ्यो धातुजस्य' वार्तिक से लोप कर दिया गया है। दुर्योधन की तरह युधिष्ठिर भी यौगिकार्थ सम्पन्न शब्द है युधि स्थिर'।

**उत्तरग**—उत्तर भी युधिष्ठिर की तरह इस नाटक का एक पात्र है तथा शब्दगत इसका अर्थ आश्चर्य जनक कार्य करता हुआ है। उत्तर प्रशस्त कार्य गच्छति आचरति। उपर्युदीच्यश्रेष्ठेष्वप्युत्तर इति अमर।

**स्थापना**—'प्रस्तावना' और 'आमुख' के सदृश ही 'स्थापना' है। अच्छे अच्छे नाटको मे 'प्रस्तावना' एव 'आमुख' का ही प्रयोग मिलता है, 'स्थापना' का नही। 'दशरूपक' म भी 'आमुख' और स्थापना की चर्चा तो है पर

'स्थापना' की कोई चर्चा नहीं है। भास ने अपने सभी नाटकों में 'स्थापना' का ही प्रयोग किया है। जब कि सूत्रधार पूर्वरंग-विधान के बाद मञ्च से उतर जाता है तो सूत्रधार एक समकक्ष नट, जिसे स्थापक कहा जाता है, रंगमञ्च पर आकर नाटक प्रयोग की 'स्थापना' करता है। 'स्थापक' के द्वारा नाटक प्रयोग की यह उपक्रमणिका ही 'स्थापना' कहलाती है।

श्लो० ३–भक्तं — इस शब्द का अर्थ सामान्यतः पका हुआ भोजन होता है। लेकिन यहाँ इसका प्रयोग विशेष रूप में हुआ है। कुछ लोगों ने इस शब्द का प्रयोग श्वेत पुष्प की तुलना में किया है और कुछ खीर के अर्थ में

**प्रकुसुमितकाशा इव दिशः** —यहाँ दिशाओं की तुलना काश के फूल से की गई है जो अत्यधिक श्वेत होता है। Cf. शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि, काशपुष्पलवेनेदम् साश्रुपातं कृतं मम। N. F. मृगैस्तुल्या इत्यादि। यह संस्कृत कवियों के वर्णन की विशेषता है कि वे तपोवन का चित्र ऐसा खींचते हैं जहाँ चैतन्य मानव की बात तो दूर रही, पालतू जानवर भी अपना विकास भयरहित शान्तिपूर्ण वातावरण में कर पाते हैं।

**वधनिभृतसिंहा** —वधे निभृता सिंहा येषु—जहाँ सिंह मारे जाने के भय से आक्रान्त रहते हैं और इनका अर्थ गणपति शास्त्री के शब्द में 'वधे ताडनेऽपि परकृते निभृता निर्विकारा अकोपना सिंहा येषु' है। सिंह भी शान्ति एवं तेजस्वी जीवन यहाँ उत्साह के साथ बिताते हैं, यहाँ तक कि कोई उन तंग भी कर देता हो तो उसे वे क्षमा कर देते हैं। सम्पूर्ण विश्व जैसे यज्ञ की दीक्षा लेने की कसम-सा खा लिया हो। काम—क्रोध आदि का त्याग तपोवन के अणु-अणु में व्याप्त हो उठा है। इस वर्णन को अत्यधिक उत्प्रेक्षा का उदाहरण कहा जा सकता है।

श्लो० ४–तप्तोऽग्निर्हविषाऽमरोत्तममुखम्—अग्नि और अमरोत्तम मुख एक दूसरे का विराधाभास है। अग्नि देवताओं के मुख को माना गया है—'अग्निमुखा वै देवा' इति श्रुति। गर्जन्नृपे सद्गुणे —इसका स्थान 'नृपे विद्यमाने' के लिए दीर्घवृत्तीय है। व्याख्या—नृपे (विद्यमाने इति शेष) सद्गुणे रक्षति सजत् इदं जगत् सम्प्रति हृष्टम्। सारा संसार राजा की प्रशंसा प्रसन्न हृदय से करता है। उदारोह-अतिशिरे—ऊपर उठ गया।

**दृप्ताः पक्षिगणाश्च**—यहाँ संयोजक 'च' का प्रयोग प्रत्येक शब्द के बाद या संयुक्त शब्द के अन्त मे ही होना चाहिए। अत इसकी व्याख्या 'ते ते नरा" के साथ होनी चाहिए न कि 'पक्षिगणा.' के साथ। ऐसा करने से एक साहित्यिक मुहावरे की भी सपुष्टि होती है।

**सर्वश**—'बह्वल्पार्थात् शस् कारकात् अन्यतरस्याम्'। पा. ५।४।४२ के अनुसार 'सर्व+शस्' से हुआ है।

**अत्र भवन्त**—पूज्याः। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। (पा. ५।३।१४) इति प्रथमान्ताद् भवच्छब्द योगे त्रल्। यहाँ 'त्र (ल्) का सयोग सर्वनाम 'इदम्' के लिए कर्त्ताकारक के रूप मे प्रयुक्त है। जब यह 'भवत्' के साथ संयुक्त होता है।

**श्लो० ५—श्लाघ्यप्रभूतश्रवाः**—श्लाघ्य प्रभूत श्रव (ख्याति या श्रवण या) येषा ते। जिसकी ख्याति एवं ज्ञान प्रशंसनीय एवं विस्तृत है।

स्वाध्यायशूरै. मुखै—उपलक्षिता.। उपलक्षणार्थे तृतीया। जिसके होठ बहादुर हो। जिसकी व्याख्या सीमा रहित हो। स्वाध्याय' 'वेदाध्ययनम्' है। शिष्यस्कन्ध० इत्यादि 'अर्च्चित' का अर्धपूजित हो—उनका प्रशसनीय हाथ।

**भो भो माणवकाः**—'बाल ;स्यान्माणवक' इत्यमरः। 'अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिक. स्मृत। नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणव।' स्वार्थेक्न माणवक.।

**अनवसिते** उत्सृष्टव्यः—जैसा कि व्याख्याकार की दृष्टि पड़ी है। यज्ञ समाप्ति के बाद यज्ञमण्डप मे, रूढिगत अग्नि की स्थापना की गई है।

**श्लो० ६—एवा** "कनकयूपभुजेव—यहाँ यज्ञवेदी के स्तूप को स्वर्ण-निर्मितबाहु की सज्ञा दी गई है। (कनकयूपविलम्बबाहु. और रुचिरकनकयूप-व्यायतालम्बबाहु।) चैत्याग्निलौकिकाग्नि- इत्यादि। चैत्य यज्ञस्थान तद्गतोऽग्नि. चैत्याग्नि.। यज्ञवेदी पर की आग तीन तरह की होती है—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। जिस आग को लडको ने जलाई उसे लौकिकाग्नि कहा जाता है। यह आग यज्ञवेदी की अग्नि से भिन्न तरह की आग स ली गई है। महाकवि भास ने इन दोनो (यज्ञाग्नि और लौकिकाग्नि) की तुलना ब्राह्मण और शूद्र के रूप मे की है।

**प्राग्वंशम्**—यज्ञशालाविशेष । 'प्राग्वंशं प्राग् हविर्गेहात्' । यह यज्ञशाला का वह भाग है जिसमें हवन की सारी सामग्रियाँ सुरक्षित रक्खी जाती हैं। अथवा—यह वह स्थान है जहाँ याज्ञिक लोग यज्ञकाल में निवास करते हैं। क्षीरस्वामी के शब्दों मे—'पत्नीशालाख्यं अग्निशालायाः प्राक् यो भाग' ।

**श्लो० ७—अग्निरग्निभयादेव**—यहाँ प्रथम अग्नि शब्द का प्रयोग पवित्र गार्हपत्याग्नि के रूप में हुआ है तथा द्वितीय अग्नि का प्रयोग सामान्य आग के रूप म । यज्ञवेदी की गार्हपत्याग्नि को यज्ञान्त में ऋत्विजों ने हटाकर प्राग्वंश में रक्खा था । आग लगने पर लौकिकाग्नि से कहीं यह दूषित न हो जाय इस भय म लोग इसे अलग हटा रहे हैं ।

**श्लो० ८—शकटी**—शकट शब्द का यह ङीप्रत्ययान्त रूप है । मृच्छकटिक में सुवर्णशकटिका, मृत्तिकाशकटिका आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । 'शकटी च घृता पूर्णा'—का आशय यह है—'यथा घृतापूर्णाशकटी वारिणा सिच्यमानापि वाह्निनादह्यत ... दह्यत तथैरवसारत्या नारीवाष्पवारिणा सिच्यमानापि वाह्निनाद अपत्यप्रेम्णा दह्यते इति कल्पदेशो महाशया ।

**बालस्नेहेन**—यह शब्द परम्परित श्लेष के रूप में व्यवहृत है । इसका एक अर्थ है 'बालक के प्रति स्नेह की भावना' और दूसरा अर्थ है अल्पस्नेह जिसकी उपमा अवशिष्ट अल्प घी के साथ है।

**श्लो० ९—चक्रधरस्य**—सर्वश्रेष्ठ परमात्मा का—सुयोधन, मुष्यति दर्भे धर्मदारदी दग्धुं प्रवृत्त । यज्ञीय सामग्री होने म प्रवृत्त साढ़े जहाँ पात्रों में आवृत होने के कारण आग धीरे-धीरे बढ़ रही थी, वहाँ अब तेज आग हो गई और उस आगे या ... जब तत्पर हुई तो क्रमशः फैलती हुई आग को बुझाने के लिए वह आँ की ओर बढ़ गया।

**नीलशाद्वलतया वह्निः शनैर्यामन**—घासों से हरित होने के कारण यह कम जलता है। पावक शब्द का प्रयोग वह्नि के रूप में पंक्ति दो में हुआ है।

**सूर्यायते**—सूर्य इव आचरति । मण्डलाकारतया सूर्य इव भाति । सूर्य शब्दात् आचारे क्यङ् । कर्तुं क्यङ् सलोपश्च । पा. ३।१।११ ।

**श्लो० १०—वहनेन भीताः**—अनियमित है और इसका रूप 'वहनाद् भीता' होना है—भीत्रार्थानां भयहेतु । पा० १।४।२५ ।

**श्लो० ११—कोटरान्तरदेहस्था**—कोटर एव अन्तरदेह देहाभ्यन्तर तत्र तिष्ठन्ति । आत्मा जो शरीर के अन्दर की वस्तु है, उसकी उपमा किसी पेड की गुफा मे प्रविष्ट किसी पक्षी से की गई है।

**श्लो० १२—शत्केशुंकेन**—इसके लिए Cf एकेनापि कुवृक्षेण कोटरस्थेन वह्निना । दह्यते तद्वन सर्वं कुपुत्रेण कुल यथा ॥ चाणक्यशतकम् मे उद्धृत है। (इसके बाद दो श्लोक गणपति शास्त्री के द्वारा सग्रहीत पुस्तक म दिया गया है। पर, त्रिवे-न्द्रम साहित्य के मूल पुस्तक मे इन दोनो श्लोको का अस्तित्व नही है।

**श्लो० १४—निविष्टो दुष्कुले साधु'**—व्याख्या—दुष्कुले स्त्रीदोषण निविष्ट साधु इव दह्यते । 'निविष्ट' का अर्थ यहाँ 'ससृष्ट' है । कोई सत्पुरुष यदि किसी गलत परिवार की दुष्ट महिला के सम्पर्क म आता है, तो उसका नाश भी निश्चित होता है।—दुष्टस्त्रीससर्गं सत्पुरुषस्य दोषाय भवति ।

**श्लो० १५—सवृक्षक्षुपगुल्मम्**—वृक्षै क्षुपै गुल्मैश्च सह वत्तमानम् 'वनम्' सपुष्ट करता है । क्षुप एक छोटी झाडी है । इसका प्रयोग 'अविमारक मे भी हुआ है । V–६–मनोमार्गरूढक्षुपा नीलाम्बुदा ।

**श्लो० १६—मधुपटल चक्रेण महता**–तृतीया उपलक्षणार्थ म है। लम्बा ताड का पेड अपने मधुकोष के साथ बडा भयावह दीखता है। इसकी तुलना रुद्र की कुल्हाडी से की गई है जो बडा ही सटीक है।

**श्लो० १८—स्रुग्भाण्डमरणी**—स्रुग का अर्थ बलटुल और भाण्डम् का अर्थ काठ का कटोरा होता है। 'स्रुक् हवनी सत्र जुहपमृदादिभेदभिन्न दारुमय होमसाधन–तद्रूप भाण्ड पात्रम्। उपभुङ्क्ते–अग्नि के साथ जलन का बोध कराता है। जहाँ उपमान के साथ इसका अर्थ 'खा जाना' होता है। विक्रीय जीवति–बेचकर खाता है।

**श्लो० १९—चलितैकपर्णहस्तः**—चलित एक पर्ण एव हस्ता यस्य स तथाभूत यहाँ पेड की टहनियाँ नदी के ऊपर झूल रही ह और जैसे-जैसे हवा उन्हे झुलाती हैं, वह पानी पर अब डूब रही ह। मानो वह आग म जलकर मरे हुए अपने वृक्षबधुओ को जलाजलि दे रही है। कवि की यही कल्पना है।

**श्लो० २०—आगतकथा मधुर**—आगतस्य प्रसक्तस्य यज्ञस्य कथया प्रस्तावेन मधुर यथा भवति तथा ।

**पाण्डवपरिग्रहं कुर्वन्ति**—मनुतामूलक क्रोधका परित्याग कर अपने स्वजनों पर दया करने का अनुरोध किया है। शब्दान्तर में पाण्डवों के ऊपर सहृदयता दिखाने का स्पष्ट आग्रह है।

**विष्कम्भकः**—विष्कम्भक तथा प्रवेशक में भी विष्कम्भक प्रधान है। प्रवेशक विष्कम्भक का ही दूसरा रूप कहा जा सकता है। जहाँ नीच पात्र होते हैं तथा उसका प्रयोग प्रथम अंक में प्रारम्भ में नहीं होता। विष्कम्भक के द्वारा भूत काल की या भविष्यत् काल में होने वाली घटना का संकेत किया जाता है। यज्ञ तो कार्य समाप्त हो चुका था। इस विष्कम्भक के माध्यम से नाटक की कथा वस्तु को समझा नहीं जा सकता। कवि ने अग्नि का विस्तृत वर्णन किया है। इस क्रम में उन्होंने यज्ञ मण्डप जलने का तथा यज्ञीय सामग्रियों को भी जला डालने का रोचक वर्णन किया है।

**श्लो० २२—रूप्यग्रहणात्**—यहाँ यह पाण्डवों की सम्पत्ति का जूए में जीतने के तात्पर्य को सपुष्ट करता है। 'रूप्य' का अर्थ मुहरयुक्त स्वर्णमुद्रा या कांसा जैसे धातुओं के सिक्के से है। रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्। पा. ५।२।१२०। रूप्य आहतस्वर्णरजते।

**अयशो निपीतवान्**—अयश को भी जिसने पी लिया है—नितरां अनुभूतवान्।

**श्लो० २३—मे निवसति गुणो**—मुझमें दयादि गुणों का निवास हो रहा है। यहाँ निवसति का अर्थ नितरां वसति है। मयि स्थिरवासं करोति 'मे' शब्द का प्रयोग इस श्लोक में उपयुक्त नहीं है—जगद् विश्रस्त में। फिर भी, यहाँ 'मयि' का प्रयोग संस्कृत भाषा के अनुसार होना चाहिए। फिर भी, इसे हम गुण के साथ ग्रहण कर सकते हैं। मे मम गुण निवसति।

यदिह कथयति—यहाँ 'लोक' या 'आगम' विषम प्रयोग उपयुक्त होगा।

व्याख्या—मृतं प्राप्य स्वर्गं (इति) यदिह (लोक) कथयति एतद् अनृतम्। VL यदिह कथयन्त्येतदनृतम् अच्छा होगा।

**गान्धारीमातः**—इस तरह का प्रयोग भास ने बहुत किया है—सुमित्रा-मात, कौसल्यामात, कैकेयीमात, (प्रतिमा)। शौरसेनीमात, यादवीमात (बालचरित में)। काशेलीमात (चारुदत्त में)।

इस तरह के प्रयोग मे पाणिनि के नियम की उपेक्षा की गई है, पाणिनि के अनुसार नद्यृतश्च, से कप् होना चाहिए।

समासान्तविधि की अनित्यता मानकर इसको शुद्ध कर लिया जाता है।

**धौतकल्मषाङ्गः अङ्गराजः**—अनुप्रास का यह एक सायास प्रयोग है। धौत कल्मषं यस्मात् तद् धौतकल्मषम्। धौतकल्मषं अङ्गं यस्य स.। अर्थात् कायविशुद्ध.।

**श्लो. २५—इक्ष्वाकुशर्याति**—ये सारे सूर्यवंशी राजा अपनी महानता और दयालुता के लिए प्रसिद्ध थे। नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते। Cf हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते—कर्णभार १७—धरन्ते किन्तु यहाँ आत्मने पद का प्रयोग असामान्य है। सामान्यतः भ्रियन्ते ( अर्थात् जीवन्ति ) रूप आता है।

**प्रथमक्रमः**—मास को क्रम के प्रति एक आस्था है। इस तरह का प्रश्न उन्होने प्रतिमा मे भी उठाया है। Cf राजा रामो लक्ष्मणो वैदेही व्ययमक्रम सुमन्त्र.—अथ कः क्रमः। प्रतिज्ञा ii १४२०।

**श्लो० २६—दैवतं मानुषीभूतम्**—महाभारत I–१०६ मे भीष्म को 'देवता' का अवतार माना गया है। ये आठ 'वसुओ मे से एक है। शापवश इन्हे मनुष्य योनि मे आना पडा है। अतः इन्हे मनुष्य के रूप मे देवता कहा गया है। दूसरी पक्ति की छद रचना जटिल है। व्याख्या—भीष्मपुरक्रम्य वन्दितु आचरणं अहं न मन्ये। वन्दितुम्—'तुमुन्' क्रियार्थ है। क्रियोपपद—वन्दितुम् आचरणं वन्दितुं चेष्टितं अहं न मन्ये नानुजानामि। भीष्म की उपेक्षा कर तुमने जो प्रथम मुझे प्रणाम किया है, उससे मैं संतुष्ट नही हूँ। या हम वन्दितुं की व्याख्या अन्य तरह से भी कर सकते है—जहाँ 'तुमुन्' मात्र धात्वर्थ के लिए ही प्रयुक्त है अर्थात् वन्दनं, आचरणं, अर्थात् शिष्टाचारं न मन्ये। भीष्म की उपेक्षाकर इस प्रणाम को मैं शिष्टाचार नही मानता।

**नमस्यताम्**—'नमस्यति' का कर्मवाच्य आज्ञा सूचक अन्य पुरुष एक वचन है। नाम धातु—नमस्+क्यच्। 'नमोवरिवश्चित्रङ' के अनुसार पा० ३।१।१९।

**श्लो० २७—भवान् स्वयम्**—भीष्म का यह कथन है। उन्होने द्रोण की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए यह कहा है कि मुझे माता ने जन्म दिया है और

आप स्वयम् अयोनिज हैं। महाभारत आदि पर्व के खण्ड-१३० म द्रोण के जन्म की कथा वर्णित है। उनका जन्म भरद्वाज मुनि के कलश म हुआ था। अत वे स्वयमू हैं।

**अपह्नव**—शब्द यहाँ एक विशेष अर्थ मे प्रयुक्त है। वस्तुत अपह्नव का अर्थ छिपाना होता है। किन्तु, म० म गणपति शास्त्री ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए 'स्नेह' अर्थ लिखा है—अपह्नव स्नेह मद्भावितविषस्य रागद्वेषौ न स्त सा। भूतमैश्वर्यं । अपनी इस व्याख्या की सपुष्टि म उन्होंने वैजयन्ती का उद्धरण दिया है 'अपह्नवो द्युतिस्नेहौ'।

**शिष्यमहत्तरा**—प्रमुख शिष्य। 'महीयस्' की तरह 'महत्' की तुलना 'महत्तर' के साथ है।

**नोत्सहन्ते महात्मान**—यह वाक्य अन्तर्निहित प्रश्नवाचक है। क्या महात्मा लोग अपनी प्रशसा करने म तत्पर होते हैं?

**बुद्धिप्रशमनम्**—बुद्धे महस प्रशमन रागद्वेषादि कलुषतानिवृत्ति। तुम्हारी बुद्धि प्रशात हुआ करे।

**श्लो० २८—समानीय**—अनुष्ठाय। **आप्तदक्षिणान**—आप्ता पर्याप्ता दक्षिणा येषु तान्। यहाँ क्रतु शब्द यज्ञार्थपरक है। यहाँ ब्राह्मणों को उदारता पूर्वक दान दिया जाता है। Cf क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणै। द्रोणपर्व १८-२५।

**उद्योग जनयति**—यहाँ 'उद्योग जनयति' का अर्थ हुआ 'युद्ध के लिए प्रेरित करता है। यह अभिव्यक्ति प्रतिमा I-१९ म आता है। अस्मद्राज्य-प्रशा भवत उद्योग जनयति। **प्राप्तक्रम**—'प्राप्तपर्याय यथा भवति तथा'।

**श्लो० २९—अन्तस्स्वनमाप्य**—म म गणपतिशास्त्री के शब्दो म—प्रातिपूर्वकमनामाप्य—इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य रामचन्द्रमिश्र ने लिखा है—'यज्ञानुष्ठाननियमादिना कृशकायस्त्वम् मदालिङ्गनज क्लं यदि सोढु शक्ष्यसि तदाह त्वा दृढमालिङ्ग्य सुखयिष्यामि, पर त्वदाय हृदयाभिप्रायम ज्ञात्वा नाह प्रवर्तिष्ये तवालिङ्गने इति भाव।'

**सभाजयति**—बधाई देता है। 'समाज प्रीतिसेवनयो' चुरादि। स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिना यमूनि। उत्तररामचरि० १,३।

**वासुभद्रेण—वासुदेवेन** । वासु का यहाँ अर्थ है वासुदेव, सम्पूर्ण वासुदेव शब्द के लिए यहाँ उसके एक देश 'वासु' का प्रयोग किया गया है। वासुश्चासौ भद्रश्च । बलभद्र या रामभद्र की तरह यहाँ श्रीकृष्ण के लिए वासुभद्र का प्रयोग किया गया है। क्षीर स्वामी ने इसकी व्याख्या की है—'जगत्या सर्वहृदये वसतीति वासुः।' महाभारत की कथा के अनुमार अभिमन्यु ने गोग्रहण म भाग नही लिया था । उत्तरा के साथ इसकी शादी निश्चित हो जाने पर ही बाद मे इसे मत्स्यपुर अर्थात् विराट नगरी मे बुला लिया गया ।

**व्यपश्रयिष्ये**—मैं प्रार्थना कर लूंगा ( कालान्तर मे माँग लूँगा ) ( वि+अप्+श्रि ) इसी अभिव्यक्ति का उपयोग 'मध्यमव्यायोग' मे भी एक जगह किया गया है—"वृद्धा—हन्त, निराशा स्म. । भवतु, पुत्र व्यपश्रयिष्ये तावदेनाम् । स्वप्नवासवदत्ता मे इस को व्याख्या है—व्यपाश्रयणा=प्रार्थना । आचार्य रामचन्द्रमिश्र ने लिखा है—"व्यश्रयिष्यते—साधारणो हि याचको दातारं समयान्तरे याचते, आचार्यस्तु न भवति मामान्ययाचकोऽतो नोचितम् तस्य व्यपश्रयणमिति ।

**श्लो० ३०—पीतः सोमो बाल्यदत्तः**—आचार्य ने युवावस्था मे ही सोमरस का नियोगात् अर्थात् विधिवत् पानकर लिया है। ( बाल्यदत्तः—बाल्ये तरुणे वयसि अभिषुत. ) यस्य दरिद्रः यस्मिन् दरिद्र ।

**प्रापस्तावत्**—पानी लाओ। जल की यह माँग कई नाटकों मे विभिन्न परिस्थितियों मे देखी जाती है। यथा—अभिषेक—१-२६[७], प्रतिमा २-२०[१], मध्यम १-४७[४], दूतवाक्य १-४३[१], प्रतिज्ञा १-१५[१९] ।

अश्रुपातोच्छिष्टस्य—वाष्पासारदूषितस्य अर्थात् आसुओ से अपवित्र

**श्लो० ३२—करणम् प्रतिग्रहाणाम्**—प्रतिग्रहाणाम् दामनस्वीकरणानाम् करणम् साधनम्-यहाँ करणशब्द अत्यधिक प्रभावकारी साधन या प्रमाण है। करण का यही अर्थ है एक बन्धपत्र, अनुबन्ध या प्रमाणपत्र। उदाहरण—मनु० Nu ५१ ५२।

**श्लो० ३३—येषां गति क्वापि**—येषा निराश्रयाणाम् कुत्राप्याश्रयस्तमाश्रयमलभमानानां कुत्रापि गति नोपलब्धा'—जिन्हें कोई आश्रय नही है। महाभारत के अनुमार कौरवों को यह पता नही था कि बारहवर्षों तक पाण्डव

दर दर की ठोकर खाने के बाद यह तेरहवां वर्ष अज्ञात वास में रूप में कहीं व्यतीत कर रहे हैं। प्रथम पंक्ति में उल्लिखित सर्वनाम यषाम् की तरह द्वितीय पंक्ति में पाण्डवों के साथ तेषाम् है।

श्लो० ३४—उपन्यस्तस्य—दक्षिणादानोपन्यासम्, दक्षिणा देने के प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले प्रतिगृह्यताम् दक्षिणा इति उपन्यास कुर्वाणस्य। उपन्यस्तस्य = उपन्यस्यवत कर्तरि क्त। और इसका यह अर्थ समर्पित (तुम्हारी देखरेख) में भी हो सकता है। गौरव-गुरुत्व तुम्हें आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक मान कर जिसने तुम पर विश्वास किया।

यज्ञप्रस्तुतम्—यज्ञे प्रस्तुतम्, यज्ञ के लिए आवश्यक बताना अर्थात् यज्ञ की आवश्यकताओं से लाभ उठाना यथा इप्सितदान प्रभृति, धर्मवञ्चना-धर्मेण हेतुना वञ्चना धर्म के नाम पर छल।

गान्धारविषयविस्मित विस्मित गर्वित। विस्मित शब्द का प्रयोग अन्यनाटकों में भी इसी अर्थ में हुआ है-यथा-विहगवाहनमानविस्मित दूतवाक्य। १-१२

सर्वलोकमनार्यमितिमन्यसे—यह वाक्य रचना अनियमित है। इस होना चाहिए था। सर्वं लोकं अनार्यं इति मन्यसे। यहाँ इति शब्द का योग भी जा सकता है। चूंकि 'मन्यसे' सर्वलोकमनार्यम्' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है। इति का ऐसा प्रयोग गीता में भी उपलब्ध है "यमन्यायमितिप्राहु।" ६-२।

श्लो० ३५—किं पर याचितं दत्त बलात्कारेण तेह तम—ऐसा ही प्रयोग भास ने श्रीकृष्ण के मुख से दूतवाक्य में किया है—

> दातुमर्हति मद्वाक्यात् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज।
> अन्यथा सागरान्ता गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवा॥

याचितं—याचनाभि। मावत।

अवभृथस्नानमात्रमेव खलु—इद यज्ञान्तस्नानम्। यहाँ 'इदानीम् वर्तते' का प्रयोग होना चाहिए। तुम इस समय यज्ञान्त स्नानकर चुके हो। इस पवित्रतम स्थिति में तुम्हें शकुनि की बात नहीं सुननी चाहिए क्योंकि शकुनि मित्रमुख. मित्र मुखम्—वाक्यस्य अर्थात् वाङ्मात्रमित्रम्।

**धर्मच्छलेन**—धर्मः इति छलं तेन। धर्मच्छलेन सत्यवचनपालनाग्रहेण। धर्म शब्द के नाटकीय व्याज से। द्यूताश्रयवृत्तिः—द्यूतव्यसनी, जुए का शौकीन।

**श्लो० ३८—तोलयन्नेव**—जब वह ऊर्ध्वोन्मुख हो ही रहा था। म० म० गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—उन्मिमान एव। उन्मानमिह तारतम्य-परीक्षणम्। किमनेन स्तम्भेन घर्षयितॄन् प्रहरेयं किममुना स्तम्भेनेति तत्सारफल्गुताम्—दृष्ट्या पर्यालोचयन् नन्। यथा—एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानिता द्रौपदी दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः समास्तम्भ तुलयति। दूतवाक्य—१–७।

यद्येकस्मिन् विमुक्तः—किसी एक व्यक्ति पर आक्षेप किया गया है। यद्यपि स्पष्टतः किसी का नामोल्लेख नहीं है फिर भी स्पष्टतः शकुनिकी ओर सकेत है।

**कर्दनम्**—कुत्सित. शब्दः। एपा च भिक्षा मम दक्षिणा च "इत्येवं रूप याच्ञादैन्यपरः शब्द.। म० म० गणपतिशास्त्री ने इसका अर्थ 'खुशामद' लिखा है। अर्थात् खुशामद मत करो।

कर्दनम् का अर्थ है 'कुत्सितम् याचनम्।'

**श्लो० १–३९—ज्येष्ठो भवान्**—इस कथन से स्पष्टतः यह पता चलता है कि उम्र की दृष्टि से दुर्योधन पाण्डवों से बडा था। किन्तु, महाभारत, आदि पर्व के अनुसार युधिष्ठिर तो कौरवो से बड़े थे ही। कदाचित् भीम भी दुर्योधन से बडे थे। क्योंकि दुर्योधनका भी जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन भीम ने जन्म लिया था—

> 'यस्मिन्नहनि भीमस्तु जज्ञे भारतसत्तम,
> दुर्योधनोऽपि तत्रैव प्रजज्ञे वसुधाधिप।'—महाभारत, आदिपर्व.

इसी श्लोक के अन्तिम पंक्ति मे प्रश्नार्थक दो विकल्प उपस्थित किये गये है—कुटुम्बे तान् धारयिष्यसि ? अथवा—'पाण्डवाः मृगैः सह वर्त्तयन्तु। तान् पाण्डवान् कुटुम्बे परिवारे धारयिष्यसि अन्तर्भाव्यपरिपालयसि ? अथवा—पाण्डवाः मृगैः सह वर्तयन्तु = देहयात्रा कुर्वन्तु। यहाँ वृत् धातु का प्रेरणार्थ रूप ( वर्तयति ) है जिसका अर्थ सदा कार्य रत रहना है।

**श्लो० ४०—गतमितमवसानम्**—इदम् अवसानम् गतम्, अब यह बात समाप्त हो चुकी है। रक्ष्यताम् शिष्यकार्यम्—शिष्यकार्यम् से कौरव और पाण्डव दोनों ही शिष्यों का हितसाधन कीजिए। 'पाण्डवो को 'राज्यांशप्राप्ति

म्द' अर्थात् आधा राज्य दिलवाकर हित साधन करें और कौरवों को 'गुरु-दक्षिणादान प्रतिज्ञा' की आपूर्ति करें।

श्लो० ४१—धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्तु—धर्माधिकाराः धर्मोप-देशाधिकारिणः गुरुजनाः, तेषां वचनेषु अर्थात् भवादृशानां महाकुलानां बान्धव-विग्रहोगुरुजनोपदेशैरेव शाम्यन्तीति भाव। इसी तरह का अन्य प्रयोग 'परिष्वङ्गः शमीक्रिया' और नष्टानि कार्याणि शमीकरोति। अविमारक ६–१६ पृष्ठ।

समर्थयितुम्—अनुमोदनम् कारयितुम्, स्वसहायानां सम्मतिं प्रार्थमित्यर्थः।

हृन्तविपन्नम् कार्यम्—यह वाक्य 'बालचरित १–१९ में प्राप्त है। यह एकस्वगत भाषण है और हम इसमें भय प्रदर्शन की आशा करते है। 'आत्मगतम्' सन्दर्भगत है।

यदि दातव्ये राज्ये—राज्ये यदि दातव्ये, जिसका अर्थ है 'राज्य दानव्यम् चेत्, यहाँ निर्देश की अस्पष्टता के कारण 'यदि' का प्रयोग आवश्यक नहीं है।

श्लो० ४५—क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणम्—राज्यार्द्धदानस्य क्षमा-क्षमत्वे युक्तायुक्तत्वे—तुम्हें अकेले ही इस बात का निर्णय लेना है कि राज्य आधा हिस्सा जो तुम पाण्डवों को दोगे, वह उचित है अथवा अनुचित।

सुभ्रातृनाम्—दन्दिते भ्रातृ। पा० ५।४।१५६ इति कप प्रतिषेधः। शोभनः भ्राता यस्य असौ सुभ्राता, तस्य भाव सुभ्रातृता। भास ने 'सौभ्रात्रम्' शब्द का प्रयोग प्रतिमा १–३० अभिषेक ३–२५ में किया है।

श्लो० ४६—शून्यमित्यभिधास्यामि—ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ पार्थ से अधिक शक्तिशाली कोई अन्य वीर हो अथवा—जहाँ राजा युधिष्ठिर राज्य करेंगे वहाँ ऊसर भी ऊपजाऊ हो जायेगा इस तरह की बात महाभारत में भी कही गई है—

> सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग् वर्षी न संशयः
> सम्पन्नसस्या च मही निरातङ्का भविष्यति
> न भय त्वा विद्येतत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः। महाभारतविराटपर्व २८

श्लो० ४७—प्रनमिह कुलवृद्धं—यहाँ तृतीया का प्रयोग कुलवृद्धैस्यः के लिए प्रयुक्त है। यदिह पृथिव्याम् प्रमाणम् कुलवृद्धमुखात् श्रुतम् अवगतम्। मैंने

गुरुदेव के हाथ मे जल छोड दिया है। यह इस दान का प्रमाण है, ऐसा कुल-वृद्धो न शास्त्रो से जाना है। 'अपनय' तस्मात् जलदानादिकर्म अपनय—अनीति-र्वाविञ्चना द्रोणकृतासमदप्रतारणा यथा वा अन्य एव वा कोप्यनयो भवत् जायताम्, नृप—शकुनि के लिए प्रयुक्त है।

**श्लो० ४८—सम्वत्सरद्वादशभिर्न दृष्टा**—म म गणपति शास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—द्वादशवर्षैभि करणभूतै—यहाँ तक की उनकी व्याख्या का तात्पर्य यह है कि—

प्रतिज्ञा यह थी कि बारह वर्षों के वनवास के बाद पाण्डवो को एक वर्ष गुप्तवास म रहना पडेगा। इस गुप्तवास की अवधि म यदि वह किसी की पहचान म आ गया तो पुन बारह वर्षो का वनवास भोगना पडेगा। किन्तु कठोर श्रम के बाद भी कौरवो को गुप्तवास की अवधि म पाण्डवो का पता नहीं चल सका। किन्तु, भास महाभारत की इस प्रचलित कथा मे पूर्णत अन-भिज्ञ प्रतीत होते है। क्योकि, इमसे पूर्व के पद्य म उ होने लिखा है कि 'बारह वर्षों से जिनका पता नही चला है—

येषा गति क्वापि निराश्रयाणा सवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा

—पञ्चरात्रम् १, ३३

**ग्रच्छलोघम**—अच्छल मित्रत्व नाम। अविमारक ४-१२-३३ अच्छलो हि स्नेहो नाम अविमारक-५-४

**श्लो० ५०—हनूमत्व गता स्पृहा**—स्पृहा अभिलाष, हनूमत्व गता मम इच्छा हनूमत इच्छेवातिविशाला जातेत्यर्थ। हनुमान को भी सीता के निवास स्थान का कुछ भी पता नही था फिर भी उन्हे जानकी का पता लगाने म सफलता मिली। दूसरी पक्ति मे प्रयुक्त 'येन' शब्द हनुमत् शब्द का ही बोध कराता है। प्रथम पक्ति मे यद्यपि जो शब्द अप्राप्य है फिर भी हनुमत्व मे तद्धित रूप मे वह प्राप्य है।

**कुतो न खलु पाण्डवाना प्रवृत्तिरुपानेतव्या**—तो फिर कहाँ से पाण्डवो का पता चले? द्रोण के इस स्वगत प्रश्न का उत्तर भट के-शब्दो म मिलता है—'विराटनगरात्' यद्यपि इसने यह उत्तर अन्य उद्धरणो के रूप म दिया है।

## द्वितीय अङ्क

गोपालो के इस दृश्य की तुलना 'बालचरित' के तृतीय अंक के प्रारंभिक दृश्य के साथ की जा सकती है।

**अहीनवत्साः**—न हीना अहीनाः, अहीना वत्सा यासां ता अहीनवत्सा.। अहीनवत्सा. की दूसरी व्याख्या 'स्वस्तिमन्त' अथवा—'अनपेत' भी की जा सकती है।

**आ अन्तु**—इसे 'आ अन्तु' आयान्तु होना चाहिए। म० म० गणपति शास्त्री ने इसकी व्याख्या—आअन्तु आगन्तु सज्जीकृतम्' के रूप मे की है।

**किदमङ्गलमोदआ**—इससे सुन्दर 'किदमङ्गलामोदा' प्रयोग है। कृत मङ्गलम् आमोदश्च यैस्ते। यहाँ 'मङ्गल' का अर्थ नवीन वस्त्र एवं आभूषण से है जिससे वे सजे सजाये हैं, और 'आमोद' का अर्थ उसके माला और सुगन्धि से है। अथवा हम यो कह सकते हैं कि 'मगल' का अर्थ शुभ होता है और आमोद का अर्थ 'प्रीति' खुशी या प्रसन्नता 'कृतः मङ्गल आमोदः यैस्ते—आमोद यहाँ खुशी और प्रसन्नता के लिए प्रयुक्त है। यथा—'विवाहामोदसंकुले राजकुले। स्वप्नवासवदत्ता, ३–३।

**एषो वा अषो पुक्खलुक्खं इत्यादि**—इस अपशकुन की सूचना के लिए द्रष्टव्य—

रूक्षस्वरं वाशति वायसोऽयम् एव शुष्कवृक्षस्थितोऽध्वाक्ष आदित्यमुखस्तथा—मृच्छकटिक ९–१०–११.

**एवु ज्येट्ठं गच्छिअ**—यहाँ ज्येष्ठम् का प्रयोग ज्येष्ठयम् के अर्थ मे हुआ है। अर्थात् वयोधिकत्वकृतं सत्कारमासाद्य व्याहरामि। मैं उनमे सबसे बड़े का अभिनय करूँगा।

**दिवाचन्द्रप्पभापण्डुल इत्यादि**—पण्डुलजोवगुण्ठिदमण्डलु—पाण्डुरजो-वगुण्ठितमण्डल'—दिवसनिशाकरस्य कान्तिरिव धवलपीतवर्णयद्रजस्तेनावगुण्ठित-व्याप्तम् छन्नं मण्डलं यस्य तादृशोयं सूर्य.। अस्ति च नास्ति च, आकारमात्रेण विद्यते प्रभया पुनर्नास्ति, सन्नपि न प्रकाशते इत्यर्थः। तात्पर्य यह है कि गोपबाल भयाक्रान्त होने के कारण अपनी आशका मे सूर्य के शतशतभयावह आँखो को आकाश मे देखता है जो धूल रूपी बादल की घूँघट से झाक रही हैं।

पक्कणः—अमरकोश के अनुसार—पक्कण का अर्थ शबरालय है। किन्तु, यहाँ इस शब्द का प्रयोग गोपालक की कुटिया के अर्थ में है। गोपालक शबर जाति होने के कारण निम्न कोटि में हैं अतः उनके लिए 'पक्कण' शब्द का प्रयोग यहाँ कवि को अभीष्ट है। डा० पुसाल्कर ने 'पक्कण' को चाण्डाल का निवास स्थान माना है और इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि वे गोपालक अपने कुटीर से बाहर कम्बल बनाने के लिए ज्यों ही निकले और शत्रु की सेना से आक्रान्त गायों को देखकर बुरी तरह घबरा कर चिल्लाने लगे। कुछ ही दूर पर स्थित 'पक्कण' निवासी चाण्डालों को आत्मरक्षा के रूप में पुकारने लगे।

बहुकम्बलप्रच्छन्नविग्रहैः—पञ्चकम्बलवस्त्रैः सम्पुटितवक्षस्थलैः अहृष्टैः मनुष्यैः। अपने शरीरों को छिपाकर लुटेरों की तरह कम्बलों में लिपट होकर लोगों को आतङ्कित कर रहे थे।

श्लो० १—दुर्लङ्घ्य कर्मैः—दस्युकर्मोद्यतेन पीडिताः वत्साः द्रवन्ति, गोगणा स्वयमनुसरन्ति, बालिश्चात्र दस्युना दर्शनमात्रेण सन्त्रासमापद्यन्ते। 'आकुलाटुम्बम्' में निपर्यासमयो पा० सू० ६।१।१४ से सिद्ध हुआ है।

श्लो० २—गोधा—इसकी व्याख्या 'ज्याघातवारणम्' के रूप में की गई है। वस्तुतः गोधा चमड़े की उस पट्टी का नाम है जो प्रत्यञ्चा के झटके लगने से होने वाली पीड़ा से बचने के लिए बायीं कलाई पर लगाई जाती है।

स्थिरनिष्पन्दस्था—यहाँ स्थिर का अर्थ पूर्ण सुनिश्चित है।

जन्मनक्षत्रक्रिया—यहाँ क्रिया का तात्पर्य पूजा के ढंग से है।

पुण्याहावसाने—धार्मिक कृत्य की समाप्ति को पुण्याहवाचन या स्वस्तिवाचन कहा जाता है। यह शुभ अनुष्ठान का एक अन्तिम चरण है। यज्ञसमाप्ति के बाद पुरोहित शुभाशीर्वाद का जो प्रयोग करते हैं वह भी पुण्याहवाचन के अन्तर्गत ही है।

प्रतिपालितकार्यम्—विलम्बितमहत्कार्यम्। इसी तरह इस शब्द का प्रयोग अभिषेक नाटक के तृतीय अङ्क में दर्शनीय है।

श्लो० ३—मा तावत्—इति गर्हायाम्—अव्यय के रूप में इस समूह के नाटकों में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'करोमि' का प्रयोग यहाँ 'अभ्यवहरामि' अर्थात् यथेच्छ भोजन के रूप में हुआ है।

**प्रविश्य**—मञ्च निर्देशन के लिए प्रयुक्त यह शब्द यहाँ अनावश्यक है, जबकि भट पहले से ही मञ्च पर उपस्थित है।

**एव समासः**—इस शब्द का प्रयोग कवि ने इसी प्रकार अपने कई नाटकों में किया है। यथा—अविमारक २–९, प्रतिज्ञा २–९।

**श्लो० ५–रणशिरसिगवार्थे**—इसी तरह का श्लोक भास ने 'कर्णभार' में भी लिखा है—

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे॥

ऐसे वर्णन के लिए कवि का मूल स्रोत श्रीमद्भगवद्गीता है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।

**मोक्षयित्वा**—अर्थात् गाः। यहाँ गाः कर्म के रूप में प्रयुक्त है।

**उन्नीतसन्तापाः**—प्राप्तदुःखाः अर्थात् हमलोग पर्याप्त कष्ट में थे। उन्नीतः उपचितः सन्तापः येषां ते तथाभूताः। यहाँ म० म० गणपति शास्त्री का कहना है कि—वयमुपनीतसंतापाः संवृत्ताः। परोक्षमपि—अप्रत्यक्षम्। क्योंकि हमें पाण्डवों के प्रति अप्रत्यक्ष सहानुभूति है फिर भी प्रत्यक्ष रूप में हम कौरवों के साथ हैं।

**श्लो० –अर्थित्वादपरिश्रान्तः**—भगवत युधिष्ठिरस्य परदोषानभिधायकत्वस्य निश्चये तत्सकाशे जिज्ञासा प्रकाशनमनुचितमिति चेत्तत्राह–अर्थित्वात् प्रयोजनशालित्वात् अपरिश्रान्तः-अपने स्वभाव से भगवान किसी का दोष बतायेंगे नहीं, फिर भी मुझे जानकारी प्राप्त करनी है, अतः मैं तो उनसे पूछूँगा ही।

**श्लो० ६–सानुकर्षा**–अधोधरकाष्ठयुक्ता क्रियन्त। रथों पर जुए डाल दिये जाँय। अनुकर्ष शब्द महाभारत में अनेकत्र प्रयुक्त है। अनुकर्ष शब्द की व्याख्या की गई है अनुकर्षः युद्धविमर्दे यस्यकस्यचित् रथावयवस्य नष्टस्य प्रतिसमाधानार्थम् यद्रथस्य अधोदारुबध्यते तत्। अनुकर्षोरथाधस्यदारुणीति–मेदिनी। इसका अर्थ रथ की धुरी है।–'रथ की धुरी कस दी जाय।' सानुकर्षाः–उपसर्गस्य पा० ६।३।१२२, सूत्र से दीर्घ विधान किया गया। यथा–सानुकर्षाः सतूनीराः सवरूथाः सतोमराः। महाभारत, उद्योगपर्व १५५.३।

**न खलु आत्मन्यस्तम्**—मुझे अपने लिए कोई भय नहीं है। मैं अपने चपल भाइयों के लिए डरता हूँ, ऐसे अवसरों पर वे अपने आप को छिपा न सकेंगे और गुप्तवास का रहस्योद्घाटन अनायास हो जायेगा।

**श्लो० ९-एकोदकत्वम्**—समानोदकत्वम्सम्बन्ध—एकम् उदकं निवापोदकं येषां ते एकोदकाः, तेषां भावः एकोदकत्वम्। दाह क्रिया के अवसर पर जो समान रूप से तिलाञ्जलि देने के हकदार हैं तथा पवित्र श्राद्ध के अवसर पर सपिण्ड के अधिकारी हैं ऐसे लोग सभी समानोदक हैं।

**तेषाम् सुखः**—सुखः का प्रयोग यहां विचारणीय है। मैं उनके लिए बहुत दुःखी हूं। तेषु विषये दुःखितोऽहम्। दुश्चेष्टमानेषु विषीदामि।

**प्रारम्भगतम्**—यह शब्द वाक्य के प्रारम्भ में प्रयुक्त होना चाहिए। सायुर्मित्रेनापि के बाद में इसीलिए म० म० गणपति शास्त्री के पाठ में 'प्रकाशम्' को हटा दिया गया है।

**श्लो० १३—रणातिथिः**—इस तरह का प्रयोग अभिषेक नाटक ४·२२ में भी द्रष्टव्य है—

आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः।

**श्लो० १४—रिपूणामित्यादि**—महाभारत के अनुसार गोग्रहण के समय महाराज अपनी राजधानी में उपस्थित नहीं थे। वे त्रिगर्तों को समाप्त करने में लगे थे। फिर पता नहीं भास ने किस उद्देश्य से विराट को इस राजधानी में उपस्थित दिखलाया है।

**श्लो० १८—स्वचक्रोद्धतः इत्यादि**—स्वचक्रैः उद्धतं रेणुना दुर्दिनं येन तम् रथं।

**श्लो० १९—भग्नो गहनलोभेन**—इसकी जगह त्रिवेन्द्रम् संस्करण में 'वाहनलोभेन' है। किन्तु यह संस्करण कहीं उपलब्ध नहीं है।

**श्लो० २१—नदीलीन इवाद्रिः**—इसी तरह इस शब्द का प्रयोग विक्रमोर्वशीय ४,२८ में है। यथा—'यथाद्रिः पातिम्नवल्लितमभिनंदाय बहुशः।'

**श्लो० २२—हावनि**—इसका प्रयोग प्रेरणार्थक क्रिया के रूप में यहां है। 'बढ़ने की प्रक्रिया', अन्तर्भावितण्यन्तार्थत्वादिति।

**श्लो० २३—अक्षयतूणित्वम्**—अक्षये तूण्यौ यस्य स. अक्षयतूणिस्तस्य भाव: तत्त्वम् । यह अर्जुन या उसके धनुष की ओर संकेत करता है जिसका तरकस कभी खाली नहीं होता है। यह अक्षय तूणीकत्व का संक्षिप्त रूप है। अन्त मे इस सामासिक शब्द के स्वरतूणि: के संयोग के कारण ही कप् प्रत्यय का 'क' लुप्त है।

**श्लो० २४—किमिदमिति**—इस शब्द मे चिन्तयन्ति का समावेशकर हम अर्थ कर सकते हैं—यह क्या हो रहा है ऐसा सोचकर चकरा गये है।

**श्लो० २६—सौभद्र स्वशरैः**—उत्तरः कुमारः किं स्वशरैः सौभद्र न धर्षयति, अवश्य जयतीति भावः। पितु. प्रत्ययात् अर्थात् अर्जुनस्य जगदेक-वीरताख्याते. भीत. शङ्कित. सन् ससृष्टोऽपि अभिमन्युना सहकृतमैत्रीकोऽपि सौभद्रवयसा समान वयः रक्षति। समानवयसोहि, तयोर्मैत्रीभावो जायमानो वयः कारणक एव सम्भवतीनि भावः। यो राजकुमार उत्तर' परशुरामेण सह युद्धेऽपि अप्राप्तक्षत भीष्मं तथा भन्त्रायुधम् द्रोणाचार्यमेवं कर्णं जयद्रथम् तथाऽन्यान् बहून् नृपतीन् पराभूतवान् तस्यैव कुमारस्याभिमन्युना सह जायमान सख्यं तयोस्तुल्यवयसोर्युक्तमेव, समवयसोर्हि सख्यस्य स्वाभाविकत्वम्। अतएव च सख्यादभिमन्युं नाभिभवति कुमार इति प० रामचन्द्र मिश्रः।

**भीष्मं रामशरैः**—महाभारत उद्योगपर्व १७९–१८६ मे वर्णन है कि एक बार भीष्म का युद्ध परशुराम के साथ हुआ था जिसमें परशुराम ने अपनी हार स्वीकार की थी। यहाँ इसी कथा की ओर सकेत है।

**श्लो० २७—आलम्बितो भ्रमति**—यहाँ सारथी अर्जुन ( बृहन्नला ) की असमर्थता का वर्णन है। सारथी रथ को आगे पीछे इस तरह घुमा रहा है जैसे वह आक्रमण का एकमात्र बहाना कर रहा है, वस्तुत' उसे किसी पर आक्रमण करना है ही नहीं। अतः अभिमन्यु की मार से अपने को बचाते हुए रथ को नचा रहा है।

**योग्योपदेशमिव**—योग्याथा उपदेशम्। योग्या का यहाँ अर्थ 'अभ्यास' से है। अभ्यास का तात्पर्य रथचर्या से है।

**अवजितम् गोग्रहणम्**—गायो को लूटने वाले लुटेरे पराजित हो गये हैं, यह अभिव्यक्ति अनूठी है। यह भी सभव है कि अवसितम् की जगह अवजितम्

पाठ हो गया हो। अवसितम् कहने पर अर्थ परिवर्तित होकर ध्वनित होता है। 'अब गोग्रहण का युद्ध समाप्त हो गया।

**दृष्टपरिस्पन्दानाम्**—परिस्पन्दः नायकत्व का बोधक है। यथा चारुदत्त ३–२०४ योगपुरुषाणा······ पुस्तकमारोपयति। इसी तरह अभिषेक ४–१८ क्रमान्निविश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदपि अविज्ञायमानो द्वौ वनौकसौ गृहीतौ।

**श्लो० २८—श्लाघनीयेन कर्मणा**—इसकी तृतीया विभक्ति 'हेतौ तृतीया' के कारण ही है। 'अप्रतिम साहस के कारण घायल। इसका अर्थ है 'श्लाघनीये कर्मणि ताडितस्य'।

**श्लो० २९—गाण्डीवेन**— "प्रतिस्पर्धितमासीत्—आसतगुणेन (भवता) गाण्डीव धनुष पर मौर्वी चढाने में मुझे कुछ देर तक कष्ट हुआ। बाण को पकडने और छोडने म दृढता नहीं रही, कुछ देर तक धानुष्क की स्थिति में पटुता का अभाव रहा। स्त्री वेश में रहने के कारण मुझे ये सारी वस्तुएँ अभिनव प्रतीत होती रहीं। पर शीघ्र ही मेरा पुरुष स्वभाव मुझे स्मरण हो आया।

**श्लो० ३०—लज्जायमानेन**—लज्जा से 'सुखादिभ्य' क्यङ् कर्तृवेदनायाम्' पा. ३।१।१८ से क्यङ् करने पर लज्जायमान रूप बना—अनेन स्त्रीवेषेण हेतुना लज्जामनुभवनेति।

**यात्रा तु तावत्**—यहाँ यात्रा का अर्थ सचार है। अर्थात् शत्रुओं की यात्रा बाण वर्षा म होने लगी। बहुपः—बहुडुहान।

**श्लो० ३१—जित्वापि गाम्**—यहाँ गाम् = गा·—जातावेकवचनम्। ये विराट के सभी गायों को लौटा लाये।

**श्लो० ३२—त्रिदण्डधारी**—त्रयाणाम् दण्डाना समाहारः त्रिदण्डम्, पानाद्यन्तस्य न' इत्यनेन स्त्रीत्वनिषेध। त्रिदण्डत्वेन—

> वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
> यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डी स निगद्यते॥ मनु० १२।१०।

**श्लो० ३३—परिभूतपूर्वकम्**—पूर्वं परिभूत परिभूतपूर्वम्। कुत्सायां कन्—परिभूतपूर्वकम्। पूर्वतिरस्कृत।

**संस्कृतमभिधीयताम्**—बृहन्नला स्त्री पात्र होने के कारण प्राकृत मे बोल रही थी, किन्तु, रणरूप ओजस्वीकर्म होने के कारण उसके वर्णन मे संस्कृत भाषा मे बोलने को कहा गया। इस सम्बन्ध मे दर्शनीय है—

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः। दशरूपकम् तथा—कालावस्थान्तरकृतं योज्यं पाठ्यं तु संस्कृतम्—भरतमुनि।

**वृष्णिपाण्डवनाथस्य**—वृष्णयः पाण्डवाश्च नाथा यस्य तस्य। लोग ऐसा सोच सकते हैं कि अभिमन्यु श्रीकृष्ण एवं पाण्डवो द्वारा सरक्षित है। अत: इन दोनो के भय से विराट ने कैदी अभिमन्यु का इतना सम्मान किया।

**यादवीपुत्रः**—अभिमन्यु। यादवी सुभद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ है।

**श्लो० ३९—स्वविभवै**—यहाँ 'स्व' का अर्थ विवादास्पद है। स्व शब्द का प्रयोग पाण्डवों के लिए भी हो सकता है और 'हमारे लिए' भी हो सकता है। यदि इसे पाण्डवों के लिए प्रयुक्त मानें तब अर्थ होगा 'पाण्डव अपनी श्रेष्ठता के कारण हमारे मित्र है।' यदि स्वशब्द का प्रयोग 'न' के लिए हुआ है तब अर्थ होगा—सम्पूर्ण सम्पदा के साथ हमारे लिए वे अतिथि के रूप मे पूज्य है।

**श्लो० ४०—लज्जते ह्येष पुत्रम्**—पुत्रमुद्दिश्य लज्जते। मेरे सामने पुत्र से मिलने मे वह लज्जा का अनुभव करता है। यहाँ 'लज्' धातु का सकर्मक प्रयोग अनियमित है।

**श्लो० ४२—त च श्रमं प्रथमम्**—यहाँ श्रम शब्द का प्रयोग 'तं श्रम' और 'प्रथमं श्रमम्' के रूप मे हुआ है। प्रथम के अनुसार पाँच व्यक्तियों को अपने कंधे पर भार लेने के अर्थ मे है तथा यहाँ इसका प्रयोग किसी एक व्यक्ति को रथ से उतारने के अर्थ मे है।

**श्लो० ४३—तनिमार्जितोदरः**—तनिम्ना अर्जितम् उदरं यस्य। यहाँ अर्जितम् का अर्थ संस्कृतम् है यथा 'सम्पादितसौष्ठवम्।' 'अर्ज प्रतियत्ने' चुरादि। स्थिरोन्नतांसोरुमहान्—स्थिरोन्नतासश्च ऊरुमहान्, ऊर्वोर्महांश्च। विशेषणोभयपद कर्मधारयः। यह एक अनियमित यौगिक है।

**भुजैकयन्त्रित**—एकभुजयन्त्रितः। यहाँ एक का परनिपात अनियमित है।

श्लो० ४४—करेणुशोभाभिरिवार्पितो गजः—यहाँ 'शोभा' का अर्थ है आभूषण। अर्पित का अर्थ है नियोजित'। ऋ धातु का णिजर्थक भूतकालिक क्रिया है।

श्लो० ४५—पूर्वयुद्धे—इदम् प्रथमे युद्धे अर्थात् 'अपने प्रथम युद्ध में हार' की बात जानकर एवमुद्दिश्य वासुदेवः रुष्यते। यहाँ रुष्यते का आत्मनेपद अनियमित है।

भीमसेन ने व्याकुल होकर 'अर्जुन' का नाम लेकर ही उन्हें सम्बोधित किया। आवेश में वे इस बात को भूल गये कि वे छद्मरूप में अज्ञातवास कर रहे हैं। अर्जुन ने भीम के इस आवेश को ठीक से समझा और भीम द्वारा की गई गलती को सुधारते हुए भीम की बात को बीच में काट कर कहा हाँ हाँ यह अर्जुन पुत्र ही है। इस तरह बीच में ही भीम की बात को काटते हुए अर्जुन ने उन्हें याद दिलाना चाहा। इसतरह परिचय दिलाना समय से पूर्व घातक सिद्ध हो सकता है।

श्लो० ४६—इष्टापत्त्या—द्रौपदी के साथ सम्बन्धित है। इष्टापत्त्या में 'अनचिच' पा० ८।४।४६ के अनुसार तकार को द्वित्व हुआ है। यहाँ 'इष्टापत्ति' शब्द दोनों ही स्थिति से सम्बद्ध है। पुत्र का शत्रु के हाथ में सौंपना अनुचित है, पर इसे केवल इसलिए यहाँ ले आया हूँ, कि इसे देखकर दु:खिनी द्रौपदी को सान्त्वना मिले।

श्लो० ४७—इहायं समुदाचारो ग्रहण परिभूयते—यह दुहरे प्रश्नों से सम्बन्धित वाक्य है क्या यहाँ यही शिष्टाचार है? क्या मैं बन्दी होने के कारण अनादरित हो रहा हूँ? अथवा—क्या मैं इस कैद में हूँ, इसीलिए तुम मुझे अपमानित करोगे?

श्लो० ४८—पितृवदाश्रय—तुम मुझसे इस तरह बातें कर रहे हो जैसे मेरे पिता हो मेरे साथ तुम्हारा व्यवहार या वार्तालाप ऐसा हो रहा है जैसे कोई पिता अपने पुत्र से बातें कर रहा हो।

गद्यः—सम्बन्धी—'तुम्हारे स्वजन' यह अभिमन्यु की व्यङ्ग्योक्ति है। क्योंकि वे इस बात को बिल्कुल पसंद नहीं कर रहे थे कि श्रीकृष्ण जैसे महा-पुरुष और सुभद्रा जैसी उसकी माँ के सम्बन्ध में नाम लेकर या सम्बन्धी की

तरह कोई अदना आदमी इस तरह प्रश्न पूछे। अतः वे जलभुनकर कहते हैं हाँ, हाँ वे तुम्हारे सम्बन्धी सकुशल हैं।

**हस्यते**—इसका 'भावे प्रयोग.' होना चाहिए। भवद्भिः हस्यते मा (उद्दिश्य इति शेष.)।

**श्लो० ५०—अलमात्मस्तवं कर्त्तुम्**—यहाँ कर्त्तुम् का प्रयोग नकारात्मक अव्यय अल के साथ अनियमित है। इसे 'अलंकृत्वा' होना चाहिए।

**श्लो० ५१—सरथतुरगहस्तनागयोधे**—रथैः तुरगैः हस्तनागैः योधैश्च सहिते गच्छति 'सैन्ये' या युद्धरङ्गे अर्न्तानिहित है। इन नाटकों में 'योध' की जगह बहुधा 'योध' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

**श्लो० ५५ सहजौ मे प्रहरणम्**—यह विचार अनेक नाटकों में प्राप्त है यथा—अयं तु दक्षिणो बाहु. आयुध सदृशम् मम। मध्यम व्यायोग १.४२. और वयमपि च भुजायुधप्रधाना'। अविमारक २–११ गिरीतटं कठिनासबेव बाहु ममैतौ प्रहरणमपरं तु दवादशा दुर्बलानाम् ३–१२, इसी प्रकार मृच्छकटिक ३–१६ भीमस्यानुकरिष्यामि शस्त्र बाहुर्भविष्यति।

**तस्यैतत्सदृशं वचः**—यथा इदमुपपन्न पितुर्मे भीमसेनस्य मध्यमव्यायोग १–४२ मध्यमस्तात'—यह शब्द एक प्रकार की उत्सुकता प्रदान करता है। महाभारत के अनुसार भीम युधिष्ठिर के बाद जन्म लिए थे। फिर भी उन्हें मध्यमतात अभिमन्यु ने क्यों कहा। मध्यम तो पाँचों पाण्डवों के बीच अर्जुन ही थे। फिर भीम के लिए मध्यम शब्द का प्रयोग चौंकाने वाला है।

**अनन्तरा वयं ब्राह्मणेषु**—यद्यपि इसका उत्तर उनके लक्ष्यों पर था, फिर भी वे एक ब्राह्मण के साथ उलझना नहीं चाहते थे। इस नाटक में ब्राह्मणों को अत्यधिक प्रतिष्ठा दी गई है।

**श्लो० ५७—योक्त्रयित्वा**—बद्धं विधाय योक्त्रवन्त कृत्वा। योक्त्र उस डोरी का नाम है जिससे गाड़ी के जुओ पर बैल को बाँधा जाता है। योक्त्रयित्वा अर्थात् योक्त्रवन्त कृत्वा यथा—योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यया। महाभारत द्रो० पर्व २२–६१ तुलयित्वा हल्के पन के साथ।

**असह्यं कर्म**—असहनीय दृश्य, भयावह कर्म। नीत कृष्णः तदर्हताम्। श्रीकृष्ण ने कंस का वध कर दिया अत्याचारी कंस जरासंध का जामाता था।

उसने कृष्ण से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसने सम्पूर्ण यादव वंश का विनाश करने का शपथ लिया था। अपने इस नीच उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने १८ बार श्रीकृष्ण को मथुरा मे घेरा था। अन्तत श्रीकृष्ण उससे बचकर मथुरा छोड़कर द्वारिका भाग आये थे। उससे बदला लेने की बात श्रीकृष्ण सोच ही रहे थे कि भीम ने उसकी हत्या कर दी। अत उसी दिन से श्रतदर्हं=जरासन्धवधार्नहं, बनाये गये।

श्लो० ५८—न से क्षेपेण रुष्यामि—इस श्लोक के अपराद्ध का विश्लेषण करने से–'अहम् क्व तिष्ठति यातु इति उक्त्वा किं नापराद्ध (भवेयम्) क्या मै क्रोध न करूँगा यदि कहूँ 'वह कैसे खड़ा है? (मेरी उपस्थिति मे) उसके साथ अलग हट जाओ। इसी की व्याख्या दूसरी तरह से भी की जा सकती है "क्या" कहते हुए, क्या मैंने तुम्हें क्रुद्ध नहीं किया? 'किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्' अथवा–यह मैं कैसे कह सकता हूँ–'तुम जा सकते हो' यहाँ तक कि जब तुम स्वय यहाँ खड़े हो। तिष्ठति (त्वयि) क्व यातु इति (ब्रवीमि) लेकिन यह एक विचित्र प्रयोग है। इसी तरह प्रतिमा नाटक के चतुर्थ अङ्क के श्लोक ५ म हम देखते हैं—भक्तिमान् आगत कश्चित् क्व तिष्ठतु यातिवति। प्रस्तुत यहाँ तिष्ठतु की जगह तिष्ठति का प्रयोग होना चाहिए। 'क्व तिष्ठतु यातु इति किमुक्त्वा नापराद्धोऽहम्। क्या मैं कह सकता हूँ 'खड़े रहो' या मैं कह सकता हूँ 'चले जाओ' क्या एसा कहकर मैं तुम्हारे विषय म अपराधी नही साबित होऊँगा?

श्लो० ६०—मिथ्याप्रशसा इत्यादि। इस श्लोक की प्रथम पक्ति की व्याख्या करें–येषा तु मिथ्यावचनेषु भक्ति (तेषा अन्तर्निहित है) मिथ्या प्रशसा खलुनाम कष्टा। यहाँ उन बन्दियो चारणो या भाटो की ओर सकेत है जो मिथ्यास्तुति के अभ्यस्त हैं। वाचानुवर्त्ती—वाङ्मात्रेण तद्वचनमङ्गीकुर्वन् मैं भी मुख स उनकी प्रशसा करता हूँ पर, हृदय से लज्जित हो रहा हूँ।

इदमाख्यास्यते—आख्यास्यते, की व्याख्या आगे के श्लोक मे 'किणम्' के साथ है। 'तुम्हारे असली परिचय का रहस्योद्घाटन इस हाथ पर के चिह्न मे हो जायगा। 'किण' शब्द पुल्लिग है। पर, यहाँ इसका प्रयोग नपुसक लिग की तरह हुआ है।

श्लो० ६४—सन्निरोधविवर्णत्वात्—'दबाव के द्वारा रङ्गहीन करना।' ठीक तौर की जगह। गोधास्थानम् अर्थात् मणिबन्ध पर।

श्लो० ६६—गतत्रयोदशवर्षान्ते—यत्तद् द्वादशवर्षान्ते, यह वर्णन प्रथम अङ्क के श्लोक ४८ एवं द्वितीय अङ्क के श्लोक ६३ के अनुरूप है।

उत्तरा सन्निकर्षेस्तु मां बाधते—उत्तरा के साथ यह घनिष्टता मेरे लिए कष्टप्रद है। यह सोचकर विराट हृदय से दुःखी थे कि अन्तःपुर में अर्जुन ने उत्तरा की एकान्त घनिष्ठता प्राप्त की है। साथ ही उत्तरा के चरित्र के सम्बन्ध में भी वे संदिग्ध हो उठे।

गोग्रहणविजयशुल्कार्थम्—गोग्रहण विजय एव शुल्कं तस्मै। गौहरण युद्ध में अर्जुन ने विजय प्राप्त की थी। इसके उपलक्ष्य में विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा को वधू के रूप में उन्हें समर्पित किया। यह उत्तरा गोग्रहणविजयशुल्क के रूप में समर्पित की गई।

एतद्वचनतं शिरः—युधिष्ठिर ने बड़ी गहराई से विराट के कथन पर चिन्तन किया। अर्जुन के चरित्र पर भी कोई संदेह कर सकता है, यह सोचकर ही उन्होंने कहा मेरा शिर झुक गया।' पाण्डव अपने चरित्र के लिए सब दिन 'उच्चैः शिरस' रहे हैं। वे अपने शिर सदा ही ऊँचा रखते हैं। लेकिन, यह काम मेरे लिए उचित नहीं कहा जा सकता है। युधिष्ठिर ने एक सामान्य बात पर बड़ी गहराई से चिन्तन किया है।

---

## तृतीयोऽङ्कः

श्लो० १—परिभूय पाण्डवान्—अन्यत्र-परिभूयबान्धवान्। कुरुभिर्न रक्षितः। गणपतिशास्त्री 'न रक्षितः' को एक यौगिक शब्द मानते हैं। नञर्थस्य न शब्दस्य सुप्सुपेतिसमासः। क्रियतां व्यपत्रपा—गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—व्यपत्रपा लज्जा क्रियताम् अनुभूयताम् अर्थात् कुरुभिः।

श्लो० २—रणपटुरुपनीतः—पाठान्तर, रणमुख उपनीतः। देवतैः शरैः—देवतासम्बन्धिभिः शरैः दैवी बाणैः।

पुरःसारम्—पुरुषश्रेष्ठम्। मजबूत आदमी। मनुष्यों में सर्वोच्च। यावदर्ल बल था। वाक्य बड़ा ही जटिल है। यावत् अलं और बल को सपृष्ट करता है और इसका अर्थ लगाया जाता है कितना और क्या? अतः क्रिया के तीन कर्म हैं—पुरःसारम्, यावदलम्, और बलम् च। मुझसे कहो, यह शक्ति कौन है? और इसका अर्थ क्या है? इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति का अर्थ है—'उसको ललकारने के लिए बलवान् दूत को उनके पास भेजता हूँ।' लेकिन, संवादवाहक का बलवान् होना क्यों आवश्यक है? और संवादवाहक को ही क्यों भेजा जाय? क्यों न शत्रु पर सीधे आक्रमण ही कर दिया जाय। अतः महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री का कथन है कि 'बलवत् इषुदूतान्' मूल अर्थ के रूप में मैं तेजस्वी बाण को शत्रु के पास भेजूँगा जो वहाँ मेरा संवादवाहक का काम करेगा।

श्लो० ३—भग्नाश्यानेष्वनभिज्ञदोषः—भग्न का अर्थ यहाँ 'पराजय' लिया गया है। इस अर्थ में भग्न शब्द का इस नाटक में अनेकशः प्रयोग हुआ है। यथा—नृपा भीष्मादयो भग्ना' २-४१ अत अभिव्यक्ति का अर्थ पराजित व्यक्तियों के अपमान में है। अनभिज्ञदोष दोषानभिज्ञ, खतरे से लापरवाह। फिर भी गणपतिशास्त्री ने इसकी व्याख्या की है—'अनभिज्ञ इति एव दोषो यस्य सः अथवा—अनभिज्ञत्व अनिपुणत्व दोषो यस्य स' इति।

मोक्षयामि—मोचयामि के अर्थ में मोक्षयामि का यहाँ प्रयोग है। यथा—अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच। भगवद्गीता।

श्लो० ४—ज्ञातिभेद—दायादवैरम्। गृहविरोध। वक्तृभि—विद्वद्भिः बुद्धिमान् अथवा वक्ता—मेरानिन्दक। मयि तु दोष—मयि एव अथवा तु का अर्थ विशेषण माना जा सकता है—मयि विशेषेण—आक्रमण मेरे ऊपर है।

श्लो० ५—मा तावत् स्वजनभयात्—मा तावत् की व्याख्या 'स मोक्षयितव्य:' के रूप में होनी चाहिए। उसे दुर्योधन को ही मुक्त कराना चाहिए। न केवल स्वजनों के भय से अथवा उनके शिशुत्व के कारण प्रत्युत वह तुम्हारे (दुर्योधन) के लिए ही इतनी बड़ी विपत्ति से गुजरा है। और, हम लोग उसे बचाने में असमर्थ रहे। अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए भी उसे मुक्त कराना आवश्यक होगा।

श्लो० ६—अवगतः—अवगतिः ज्ञानम्।

**रणाजिरात् अवजितम्**—यहाँ अपादानकारक प्रसंग का अनुसरण नहीं कर पाता है। रणाजिरात् की जगह इसे रणाजिरे होना चाहिए। रणाजिरात् 'अपगतम्' का प्रयोग दामोदर के साथ होना चाहिए। पर, ध्यान रखना चाहिए कि दामोदर युद्ध के मैदान से बहुत दूर थे। बलमहान्—एक विशेष कथन है—बले अर्थात् बलविषये महान्—शक्तियुक्त। बाणैरप्यवकृष्यते—योद्धा भी पकड़े जा सकते हैं और उन्हें अपने दुश्मनों के द्वारा उनके बाणों से कैद किया जा सकता है। अवकृष्यते = अवजित्य गृह्यते।

**श्लो० ९—गर्विताक्षरं**—प्रौढ़ै वाक्यैः साभिमान् शब्दों के द्वारा।

**श्लो० १०—न्यस्तचापस्करे**—इस श्लोक में दो चकार दो दृश्यों के द्योतक है। अतिक्रम्य अपस्करे योधासनस्थाने रथावयवे कर. निजहस्तो न्यस्त. स्थापित.। आपस्कर की जगह अपस्कर का प्रयोग दर्शनीय है। स्यादरथाङ्गम· पस्कर' इत्यमर'।

**श्लो० ११—पदातिनैवावजितो जयद्रथ**—यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। महाभारत वनपर्व २६० के अनुसार पहले जयद्रथ और भीम दोनों ही रथ पर सवार थे। बाद में दोनों ही रथ से उतर कर तब तक युद्ध करते रहे जब तक जयद्रथ ने अपनी हार स्वीकार नहीं कर ली।

**अहोहास्यमभिधानम्**—यही अभिव्यक्ति प्रतिज्ञा में भी दो दो बार आई है—अंक चार श्लोक १९ की तीसरी पंक्ति एवं उसी अंक के दशम श्लोक की चतुर्थ पंक्ति एवं दूतघटोत्कच प्रथम अंक ३७ वें श्लोक के बाद की प्रथम पंक्ति।

**श्लो० १४—वयं व्यपाश्रित्य**—इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में 'प्रयाम' है जब कि दूसरी पंक्ति में 'प्रयासी' का प्रयोग है। इन दोनों रूपों को देखते हुए निश्चय ही वर्तमानकालिक रूप में दोनों क्रिया की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

**श्लो० १६—निसृष्टशुष्काशनिगर्जितंघनः**—निसृष्ट (जनितम्) शुष्का· शनिगर्जितम् येन तत् जो वर्षाविहीन बादल की गर्जना–तर्जना है।

**ननु जानीते भवान्**—इसकी व्याख्या इससे पूर्व के श्लोक की प्रथम पंक्ति के साथ की जाती है। 'न च श्रोत्रं प्रयच्छति भवान्' क्या आपने इसे सुना नहीं? क्या आपने इस पर अपना ध्यान नहीं दिया?

**श्लो० २०—योधः स्यादर्जुनो नाम**—योधः योध' के लिए प्रयुक्त है। इन नाटक मे इसके अनेकश प्रयोग द्रष्टव्य हैं। प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययः।

**श्लो० २१—यावद्दृष्टेयुधिष्ठिरे**—यावत् का प्रयोग एव के अर्थ में हुआ है। एव यहां अवधारणार्थक है। युधिष्ठिरे दृष्टे एव।

**श्लो० २४—यथापुरम्**—यथापूर्वम्—पुरा अनतिक्रम्य यथापुरम्।

मृतेऽपि—मरणेऽपि के अर्थ मे।

महारथ—

> एकादशसहस्राणि योधयेयस्तुधन्विनाम्।
> शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः॥

**फाल्गुनः**—अर्जुन का ही फाल्गुन दूसरा नाम है—अर्जुन का यह नामकरण क्यो हुआ इसका उत्तर महाभारत के शब्दो मे—

> उत्तराभ्यां फाल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहंदिवा
> जातो हिमवत पृष्ठे तेन मां फाल्गुन विदु।

**श्लो० २६—प्रवृद्धकुलसग्रहा**—प्रवृद्ध (प्रकर्षेण वृद्धि प्राप्तः) कुलस्य (कुरुवंशस्य) सग्रह' उच्छ्राय येषाम्। सग्रह का यहाँ प्रयोग उच्छ्राय के अर्थ मे है। उच्छ्राय अर्थात् महानता। यथा—संग्रहा पुन। स्वीकारोच्छ्राय सक्षेपा। इति केशव.।

**राजसिंह**—भास ने अपने अनेक नाटको यथा अविकारक, अभिषेक, प्रतिमा और पञ्चरात्रम् के भरतवाक्य मे राजसिंह का उल्लेख किया है। किन्तु राजसिंह के सम्बन्ध मे इतिहास कुछ नहीं कहता है। पता नही ये राजसिंह (भास के आश्रयदाता) कहाँ के राजा थे?

# पञ्चरात्र में वर्णित स्थानों का परिचय

**१. अङ्ग**—आधुनिक बिहार के भागलपुर जिले का दक्षिणी क्षेत्र प्राचीन काल में अङ्गदेश के नाम से प्रख्यात था। इस देश का राजा कुन्तीपुत्र कर्ण था। अंग देश की तात्कालिक राजधानी अङ्गपुरी या चम्पानगरी थी। प्रतापी

एवं दानी कर्ण इस क्षेत्र का प्रशासक था, इसके प्रमाणस्वरूप मुगेर की कर्णचण्डी, मीरकासिम के किले मे अवस्थित कर्णचौरा एव भागलपुर की पार्श्वभूमि मे स्थित कर्णगढ आज भी साक्ष्यभूत है। बिहार विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० सुधाशु ने बिहार की मैथिली, मगही और भोजपुरी की तरह इस क्षेत्र की बोली को 'अंगिका' के नाम से प्रतिस्थापित करने की सफल चेष्टा की थी।

**२. कुरु**—गीता का कुरुक्षेत्र ही 'कुरु' देश के नाम से प्राचीनकाल में प्रसिद्ध था। कौरवो के पूर्वज कुरु नृपति के नाम पर ही इस देश का नामकरण किया गया था। आधुनिक दिल्ली का उत्तराञ्चल ही प्राचीन 'कुरु' है।

**३. गान्धार**—आधुनिक 'कान्धार' प्रदेश ही प्राचीनकाल मे गान्धारदेश के नाम से ख्यात था। इसकी आधुनिक भौगोलिक सीमा भारत और पर्सिया के बीच मे है। यह आधुनिक 'इन्डस' का पश्चिमी भाग है।

**४. खाण्डव**—कुरुक्षेत्र प्रदेश मे विद्यमान देवराज इन्द्र का एक प्रियवन था जिसे अर्जुनने श्रीकृष्ण की सहायता से कभी आग मे जला दिया था। यह वन यमुना नदी के उत्तरीय तट पर अवस्थित था।

**५. दक्षिणापथ**—आधुनिक 'डेकान' का प्राचीन नाम दक्षिणापथ था।

**६. विराट**—आधुनिक धौलपुर का ही प्राचीननाम विराट था। यही विराट नगर मत्स्यदेश के नाम से प्रसिद्ध था। यह धौलपुर के पश्चिम जयपुर से लगभग ४० मील उत्तर मे विराटा नाम से प्रसिद्ध है। सभवत. यही विराटा उस समय विराट की राजधानी रही हो।

**७. सिन्धु**—प्राचीन भारत के इतिहास मे इसका महत्वपूर्ण स्थान था। इसी के नाम पर 'हिन्दू' नामकरण हुआ है। यहाँ ही भारतीय सस्कृति फूली फली। एक समय महाभारत का प्रसिद्ध वीर जयद्रथ यहाँ राज्य करता था। यह आधुनिक इन्डस के आसपास की भूमि है। मालवा होकर बहने वाली सिन्धुनदी की तटवर्ती भूमि भी सिन्धु देश के नाम से ख्यात है।

**८. हस्तिनापुर**—यहाँ ही भरत की राजधानी थी। भारत के प्रशासन सूत्र का यही से बीजारोपण हुआ था। यह भारत की वर्त्तमान राजधानी दिल्ली से लगभग ५६ मील पश्चिमोत्तर में बसी थी। कौरवो की यहीं राजधानी थी।

## पञ्चरात्र में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

| अक्षर स० | प्रयुक्त छन्दो का नाम | कहाँ प्रयोग किया गया | श्लोकों की कुल सख्या | छन्दो की परिभाषाएँ |
|---|---|---|---|---|
| ८ | (१) अनुंष्टुप् | प्र० अं० २,७,८,११,१२,१३,१४ १७,१८,२६,२८,३४,३५,३७, ३८,४३,४४,४६,५०–५६ द्वि अ० ४,६,८,१२–१४,१६, १७,१९–२१,२३,२५,२८,३४, ३६-३८,४१,४७–५०,५२,५३, ५५–५९,६१–६९,७१,७२ तृ० अ० ९,१०,१३,१५,१७-२१, २३–२६ | ७९ | (१) पञ्चम लघुसर्वत्र सप्तम द्विचतुर्थयो । गुरुषष्ठ च पादाना चतुर्णां स्यादनुष्टुभि: । |
| ११ | (२) इन्द्रवज्रा | प्र० अङ्क १,२५,३३,४२,४९, द्वि० अं० ११,७०, तृ० अङ्क ३. | ८ | (२) स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौ ग: |
| " | (३) उपेन्द्रवज्रा | प्र० अङ्क १५. | १ | (३) उपेन्द्रवज्राजतजास्ततोगौ । |
| " | (४) उपजाति. | प्र० अ० १०,२१,२९,४५,४८द्वि. अं० ९,३०,६० तृ० अं०१२,१४ | १० | (४) अनन्तरोदीरितिलक्ष्म भाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता: |
| " | (५) शालिनी | प्र० अं० २४,३०, द्वि० अं० २, १०,४०,४६, | ६ | (५) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकै: । |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १२/१३ | (६) पुष्पिताग्रा | प्र० अ० १९,३२ द्वि० अ० ३५,५१ | ४ | (६) अयुजि न युगरे फतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा । |
| १२ | (७) वंशस्थ | प्र० अं० २२,२७ द्वि० अं० १, १८,३२,३३,४३,४४, तृ० अं० १,८,११,१६, | १२ | (७) जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । |
| १३ | (८) प्रहर्षिणी | द्वि० अ० ३,५४, तृ० अ० ५ | ३ | (८) म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् । |
| १४ | (९) वसन्तति० | प्र० अ० २०,३१,३६,३९,४१, द्वि० अ० २७,३१,४२, तृ० अं० २२, | ९ | (९) ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । |
| १५ | (१०) मालिनी | प्र० अं० ४०,४७, द्वि० अं० ५, १५,४५ तृ० अ० २,४, | ७ | (१०) ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः । |
| १७ | (११) शिखरिणी | प्र० अं० ३,१६,२३, द्वि० अ० ७,२२,२४, | ६ | (११) रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी । |
| १९ | (१२) शार्दूलवि० | प्र० अं० ४,५,९,५७ द्वि० अं० २६,२९,३९ तृ० अ०—६,७, | ९ | (१२) सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् । |
| २० | (१३) सुवदना— | प्र० अ०—६ | १ | (१३) ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनयुता म्लौ गः सुवदना । |
| | | | १५५ | |

# पञ्चरात्र में प्रयुक्त सुभाषित

| | |
|---|---|
| अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते । | २/३३ |
| अकाले स्वस्थवाक्य मन्युमुत्पादयति । | २/२०-१ |
| अच्छलो धर्मः । | १/४८-२ |
| अतीत्य बन्धून् अवलङ्घ्य मित्राण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः । | १/२३ |
| अविल्वादपरित्यागः पृच्छन्त्येव हि कार्यवान् । | २/६ |
| एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि | २/९ |
| को वा पुत्र मर्पयेच्छत्रुहस्ते ? | २/४६ |
| ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा,<br>अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ | २/२८ |
| न च दहति न कश्चित् सन्निकृष्टो रणाग्निः । | २/१५ |
| न विस्तार्हाणि विप्रियाणि | २/३-६ |
| नोत्सहन्ते महात्मानो आत्मानमपस्तोतुम् । | १/२७-१ |
| न्यस्तशस्त्रं हि को हन्यात् । | २/५२ |
| परोक्षे न स्वर्गो बहुगुणमिहैवेष फलति । | १/२३ |
| भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां धर्माधिकारवचनेषु धर्मीभवन्ति | १/४१ |
| मिथ्या प्रशंसा खलु नाम कष्टा । | २/६० |
| मृतेऽपि हि नरा सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति । | ३/२५ |
| रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते पराक्रमेण तु पुरुषाः । | ३/-८-३ |
| श्रीनं सतांपमिच्छति । | २/८ |
| रात्रि च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः | ३/४ |
| सर्वमिष्टेषु कथ्यते । | ३/१३ |
| सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम् । | १।४०-४ |



# पञ्चरात्रगत नाटकीय विषय

१ समवकार —

वृत्तसमवकारे तु स्यात देवासुराश्रयम्,सन्धयो निर्विमर्शास्तु त्रयोङ्कास्तत्र चादिमे॥ सन्धी द्वाव-त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुन ,नायका द्वादशोदात्ता प्रख्याता देवमानवा ॥ फलपृथक् पृथक्तेषा वीरमुख्योऽखिलो रस , वृत्तयो म दकैशिक्यो नात्रबिन्दुप्रवेशकौ॥ वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यथालाभ त्रयोदश, गायत्र्युष्णिङ्मुखा यत्रच्छ दासि विविधानि च ॥ त्रिशृ गारस्त्रिकपट कार्यश्चाय त्रिविद्रव , वस्तु द्वादशनालीभि निष्पाद्य प्रथमाङ्ककम् ॥ द्वितीयेङ्क चतसृभिद्वाभ्यामङ्क तृतीयके ॥ ( सा द )

२ पूर्वरङ्ग — यन्नाट्यवस्तुन पूर्वं रङ्गविघ्नोपशा तये ।
कुशीलवा प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्ग स उच्यते ॥

३ नान्दी — आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादाना तस्मान्नान्दीति सज्ञिता ॥

४ सूत्रधार — आसूत्रयन् गुणान् नेतु कवेरपि च वस्तुन ।
रङ्गप्रसाधन प्रौढ सूत्रधार इहोदित ॥

५ नेपथ्यम् — कुशीलवकुटुम्बस्य स्थल नेपथ्यमुच्यते ।

६ स्थापना — सूत्रधारो नटीम्ब्रूते मारिष वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥
प्रस्तावना स्थापना वा " ।

७ विष्कम्भक — वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथाशाना निदर्शक ।
सक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित ॥

८ प्रवेशक — प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित ।

९ प्रकाशम् — सर्वश्राव्य प्रकाशम् ।

१० स्वगतम् — अश्राव्य स्वगत मतम्

११ अपवारितम् — रहस्य कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।

१२. काञ्चुकीय — ये नित्य सत्यसम्पन्ना कामदोषविवर्जिता ।
ज्ञानविज्ञानकुशला काञ्चुकीयास्तु ते स्मृता ॥

१३ वीररस — विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभि ।
नीत सदस्यरस्यत्वमुत्साहो वीर उच्यते ॥



## नाटकगत शब्दार्थपरिचय

अक्षौहिणी—सेना का परिमाण जिसमें २१८७० रथ तथा हाथी, ६५११० घोड़े, एवं १०९३५० पैदल चलने वाले सैनिक होते हैं।
अङ्ग—देश, (जिसका कर्ण राजा था)।
अङ्गुलित्र—अंगुलि की रक्षार्थ पहना जानेवाला कवच।
अनर्ह—उसके योग्य नहीं।
अतिपाति—जिसका अवसर बीत रहा हो।
अतीत्य—अतिक्रमण करके।
अत्यर्थ—बहुत।
अनभिज्ञ—अज्ञानी।
अनवलित—असनाथ।
अनार्यभाव—क्षुद्रता।
अनिल—हवा।
अनुत्सेक—आडम्बररहित।
अनुकर्ष—रथ का ऊपरी हिस्सा।
अन्वय—वंश।
अपकृष्ट—न्यून।
अपत्य—सन्तति।
अपनय—दुर्नीति।
अपनीत—पृथक् किया गया।
अपह्नव—गुप्त रखना।
अपयात—भागा हुआ।
अपराध—दोष।



अपराद्ध—अपराधी।
अपास्त—हटाकर।
अभिधा—कथन।
अभिन्नकवच—अटूट कवच।
अभिवर्धमान—बढ़नशील।
अभिवादय—प्रणाम करो, हाथ जोड़ो।
अभ्यन्तर—भीतरी भाग।
अभ्युपगम—मंजूर करना।
अमर—देवता, नहीं मरने वाले।
अमर्ष—गुस्सा।
अरणि—एक यज्ञीय काठ जिसके मन्थन से आग पैदा होती है।
अर्ज—उपार्जन करना।
अर्जुन—पाण्डवों में तृतीय।
अर्णव—रत्नाकर।
अर्थतः—वास्तव में।
अर्थित्व—मांगना।
अवगुण्ठित—ढंका हुआ, आवृत।
अवजित—पराजित।
अवधीरण—तिरस्कार।
अवभृथ—यज्ञान्त स्नान।
अवलेप—अहंकार।
अवसान—अन्त, समाप्ति।
अविद्ध—अच्छेद्य।
अश्रद्धेय—श्रद्धा के पात्र नहीं।
अस्त्र—शस्त्र, आयुध।

**आकुलाकुल**—अधिक व्यग्र ।
**आचरण**—व्यवहार ।
**आचार्य**—अध्यापक, गुरु ।
**आज्ञाविधेय**—आज्ञापालक ।
**आदीपित**—प्रज्वलित, दग्धावशेष ।
**आभिरूप्य**—मनोरमता ।
**आयुध**—अस्त्र, शस्त्र ।
**आर्जव**—सरलता, मृदुता ।
**आर्त्त**—पीडित, खिन्न ।
**आर्य**—पूज्य, श्रेष्ठ ।
**आलम्बमान**—आश्रित, निर्भर ।
**आवर्जित**—केन्द्रित ।
**आवृत**—ढपा हुआ ।
**आसक्त**—आकृष्ट ।
**आसन्न**—निकटवर्ती ।
**आसाद्य**—पाकर ।
**इन्धन**—लकड़ी, जलावन ।
**उग्र**—भयङ्कर, उत्तेजित ।
**उच्छिष्ट**—भोजनावशेष, जूठा ।
**उत्सङ्ग**—गोद, क्रोड ।
**उदकक्रिया**—मृतक-जलदान ।
**उद्बाष्प**—आँसू, अश्रु ।
**उद्यत**—प्रस्तुत ।
**उन्नत**—ऊपर उठा हुआ ।
**उपन्यस्त**—प्रस्तुत हुआ ।
**उपरत**—मरा हुआ ।
**उपरतापत्या**—मृतवत्सा ।
**उपस्पर्श**—आचमन ।
**ओजस्**—आन्तरिक बल ।
**कपिल**—श्वेत ।
**करण**—कर्मसाधन ।
**करेणु**—हस्तिनी ।
**कर्णधार**—नौका खेनेवाला ।
**कर्वन**—नौवाचक शब्द ।
**कलभ**—हाथी का बच्चा ।
**कल्प**—प्रकार ।
**कल्मष**—पाप, अघ ।
**कशा**—चाबुक ।
**काश**—पवित्र तृण ।
**किण**—घाव का चिह्न, मांस ग्रंथि ।
**कुलविरोध**—वंशागत विद्रोह ।
**कूल**—किनारा, तट ।
**कृतकर्मा**—सफलमनोरथ, कृतकृत्य ।
**कृत्स्न**—सकल ।
**कृपण**—मक्खीचूस, कंजूस ।
**कृश**—दुर्बल, खिन्न ।
**कोश**—खजाना ।
**क्रतु**—यज्ञ ।
**क्रम**—क्रमिक, सिलसिलेवार ।
**क्षुप**—छोटे पौधे, उद्यान की क्यारी ।
**खग**—पक्षी ।
**खाण्डव**—वन का नाम ।
**खेद**—कष्ट, दुःख, सन्ताप ।
**गहन**—सघन, भयङ्कर ।
**गाङ्गेय**—भीष्मपितामह ।
**गुल्म**—वनप्रदेश की झाड़ी ।

गोधा—चमड़े का दस्ताना।
घृष्ट—पिसा हुआ।
घोष—गोष्ठ, बथान।
चापल—चपलता।
चिरस्य—अधिक दिनों के लिये।
चीर—वल्कल-वस्त्र।
चैत्य—चिता-मन्दिर, चिता पर के वृक्ष।
छन्द—इच्छा।
छन्न—आवृत, छिपा हुआ।
छलन—धोखा देना।
जतुगृह—लाह निर्मित घर।
जिह्मता—दुष्टता।
जीर्ण—पुराना, बेकाम।
ज्येष्ठयम्—बूढ़ापन।
ज्ञाति—दायाद, बन्धु, बान्धव।
तनिमा—कृशता, खिन्नता।
तीर्ण—तैरना।
तुण्ड—मुंह।
तूणी—तरकस।
दयित—प्रेमी, स्नेही।
दर्भ—कुशा।
दव—वन।
दस्यु—लुटेरा, डकैत।
दहन—जलन।
दिष्ट्या—भाग्यवशात्।
दीक्षा—उपदेश, सङ्कल्प।
दीक्षित—कृतसङ्कल्प।
दुन्दुभि—वाद्यविशेष।
दुर्दिन—मेघाच्छन्न दिन।
दुर्विनीत—नम्रता-शून्य
द्यूत—जुआ (दाव का खेल)।
द्रोण—मेघ, काक, द्रोणाचार्य।
धर्मशकटी—यज्ञीय वस्तुओं को ढोने वाली गाड़ी।
धर्माधिकार—न्यायाधिकार।
धौत—धुला हुआ वस्त्र।
धर्षण—आक्रमण।
धारा—जल स्रोत, प्रवाह।
धृति—धैर्य, उत्साह।
नाग—हाथी।
निग्रह—पराभव, पराजय।
निधन—मृत्यु।
निभृत—चुपचाप, शान्तिपूर्वक।
निमग्न—चिंता में डूबा हुआ।
निराश्रय—सहायरहित।
निर्यात—चला जाना।
निर्वासय—बाहर कर दो।
निर्व्याज—निःप्रपंच, सचाई से।
नेमि—रथ की धुरी।
न्यस्तशस्त्र—शस्त्र को रख देने वाला।
न्याय्य—उचित।
पक्कण—झोपड़ी, शबरालय।
पट्ट—रेशमी वस्त्र।
परशु—फरसा (शस्त्र विशेष)।
परिकर—तैयारी, आरम्भ।

परिग्रह—लेना।
परिघ—घेरा।
परिच्छन्द—भापने वाला।
परिष्वङ्ग—आलिङ्गन।
परिस्पन्द—रोमाञ्च, कंपन।
परुष—कठोर, क्लिष्ट।
पाण्डु—पाण्डुर वर्ण, पाण्डु राजा।
पाण्डुर—श्वेत पीत वर्ण।
पादप—वृक्ष सामान्य।
पारिहार्य—भूषण, वलय, कठहार।
पावक—आग।
पार्श्व—बगल, समीप।
पीन—स्थूल, मोटा।
पुण्याह—पवित्रदिन उत्सव समारोह।
पुरोग—अग्रगामी, आगे चलनेवाला।
पैतृक—बपौती, पूर्वजों की।
प्रकुसुमित—प्रफुल्लित।
प्रकोष्ठ—केहुनी के नीचे वाले भाग।
प्रतिग्रह—दान लेना।
प्रतिषेध—अस्वीकार, ग्रहण निषेध।
प्रत्यमित्र—शत्रु, दुश्मन।
प्रभावी—प्रभावशाली, पराक्रमी।
प्रमाण—मापक।
प्रवृत्ति—समाचार, कथोपकथन।
प्रवृत्तिपुरुष—गुप्तचर, सी आई डी
प्रसाद—अनुग्रह, कृपा।
प्रहरण—अस्त्र शस्त्र।

प्राग्वंश—यज्ञ शाला के पूर्वभाग में रचित वंशगृह।
बटु—बालक माणवक।
प्रोषित—घरसे पृथक, परदेश में स्थित।
बहुनाथ—अनेकों से रक्षित।
बाढम्—अच्छी बात, स्वीकार।
भग्न—नष्ट, पराजित।
भृश—अतिशय अत्यन्त।
भ्रान्त—भ्रमित, धोखे में।
मण्डल—गोलाकार।
मधुपटलवक—मधुमक्खी का छत्ता।
मन्यु—क्रोध।
महानस—रसोई घर।
माणवक—ब्रह्मचारी बटुक।
माद्रीज—माद्री के सुत, नकुल-सहदेव।
मानुषीभूत—मनुष्य के रूप में।
मार्दव—कोमलता, मृदुता।
मिश्र—आदरणीय, उपासनीय।
मोघ—व्यर्थ वृथा।
यन्त्रित—नियमित, परीक्षित।
यादवी—यदुवंश में उत्पन्न सुभद्रा।
यूथ—समुदाय, दल, सेना।
यूप—यज्ञस्तम्भ, यज्ञीय दारु।
योग्या—अभ्यास।
योध—लड़ाकू योद्धा।
रणविस्तर—युद्ध विस्तार।
रव—युद्ध नाद, शब्द।



॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२०८

महाकवि-भासप्रणीतं

# प्रतिमा-नाटकम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

मुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजसंस्कृतमहाविद्यालयप्राध्यापक.

प्रस्तावनालेखक.

डॉ० सत्यव्रत सिंहः

( प्राध्यापक : लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ )



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९८३

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : अष्टम, वि० सं० २०४०
मूल्य : १०–००


के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर-लेन
पो० बा० ८, वाराणसी–२२१००१ ( भारत )
फोन : ६३१४५

प्रधान वितरक
कृष्णदास अकादमी
पो० बा० नं० ११८
चौक, ( चित्रा सिनेमा बिल्डिंग ), वाराणसी–२२१००१ ( भारत )

HARIDAS SANSKRIT SERIES
208



# PRATIMĀNĀTAKAM

OF

MAHAKAVI BHASA

Edited with

*The 'Prakasha Sanskrit and Hindi Commentaries*

By

ACHARYA RAM CHANDRA MISHRA
Professor, D. S. S. College, Muzaffarpur



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1983

K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi–221001 ( India )
Phone : 63145

Eighth Edition
1983
Price Rs 10–00

Also can be had from

KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 118
Chowk, ( Chitra Cinema Building ), Varanasi–221001
( INDIA )

# प्रस्तावना

## भास-नाटक-चक्र

महाकवि भास के 'नाटक-चक्र' का संकेत सर्वप्रथम छठी-सातवीं शताब्दी के महाकवि बाण ने किया है :—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः । सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥'

(हर्षचरित)

इस संकेत से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि भास की नाटक-कृति एक नहीं अपितु अनेक थीं ।

महाकवि भास के नाम के साथ उनके रचित 'नाटक-चक्र' का सम्बन्ध कालान्तर में भी संस्कृत के विपश्चितों और लेखकों की स्मृति में सुरक्षित रहा क्योंकि 'सूक्तिमुक्तावली' के रचयिता कवि राजशेखर ने भी भास और उनकी नाटक-कृतियों का स्मरण किया था :—

'भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥'

१२ वीं शताब्दी के कवि कल्हण ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखर की 'सूक्तिमुक्तावली' की इसी उपर्युक्त सूक्ति का पुनरुल्लेख कर भास के 'नाटक-चक्र' की प्राचीन स्मृति को जागृत रखा है ।

किन्तु समय के हेर-फेर से भास का 'नाटक-चक्र' लुप्तप्राय हो गया । भास के 'नाटक-चक्र' की खोज १९०६ में हुई और महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने भास के १३ नाटकों को संस्कृत के विद्वज्जगत् के सामने उपस्थित किया । संस्कृत के अनुसंधानशील भारतीय और विदेशीय विद्वान् भास के इस 'नाटक-चक्र' के सम्बन्ध में दो विरुद्ध पक्षों में विभक्त हो गये । एक पक्ष ने दक्षिण भारत में उपलब्ध 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक-चक्र' के रूप में माना, किन्तु दूसरे पक्ष ने इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा । महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के द्वारा प्रकाश में लाये गये 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि १३ नाटकों को भास के 'नाटक-चक्र' के रूप में मानने वाले विद्वानों में डाक्टर कीथ, डाक्टर टामस, डाक्टर स्वरूप आदि रहे और इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखने वाले विद्वानों में डाक्टर बार्नेट, डाक्टर सिल्वन लेवी, डाक्टर तुलनर, म० म० कुप्पू स्वामी शास्त्री आदि थे ।

अस्तु, महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री की खोज में मिले 'नाटक-चक्र' में ये १३ नाटक हैं :—

१. स्वप्नवासवदत्तम्
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्
३. अविमारकम्
४. चारुदत्तम्
५. प्रतिमानाटकम्
६. अभिषेकनाटकम्
७. पञ्चरात्रम्
८. मध्यमव्यायोगः
९. दूतवाक्यम्
१०. दूतघटोत्कचम्
११. कर्णभारम्
१२. ऊरुभङ्गम्
१३. बालचरितम्

## प्रतिमानाटक : नामसार्थक्य

उपर्युक्त भास-नाटक चक्र में 'प्रतिमानाटक' एक मुख्य नाटक है। 'प्रतिमा नाटक' का नाम कुछ लोग इसलिये सङ्गत मानते हैं कि इसमें प्रतिमा-गृह अथवा मूर्तिगृह की घटना का महत्त्व ही नाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता है। प्रोफेसर ध्रुव के अनुसार इस नाटक का पूरा नाम 'प्रतिमा-दशरथ' रहा होगा जिसे संक्षिप्त रूप में 'प्रतिमा' कर दिया गया। भास का एक नाटक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायन' भी है जिसे संक्षेप में 'प्रतिज्ञा' नाटक कहा जा सकता है। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' की कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में केवल 'स्वप्न-नाटक' ही लिखा मिलता है।

## प्रतिमा का इतिवृत्त

भास ने 'प्रतिमा नाटक' का मूलवृत्त रामायण से लिया है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड में वर्णित वृत्त ही वस्तुतः इस नाटक का आधार वृत्त है। किन्तु इस आधारवृत्त की रचना जो नाटक के इतिवृत्त रूप में है वह महाकवि भास की अपनी नाटकीय कल्पना है। 'प्रतिमा' के सात अङ्कों में भास की इतिवृत्त-कल्पना जिस नाटकीय घटना-चक्र की सृष्टि करती है उसका रूप निम्न है :—

### प्रथम अंक
### ( दृश्य प्रथम )

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है। महाराज दशरथ ने राज्याभिषेक की सामग्री की तैयारी के सम्बन्ध में आज्ञा दे दी है और उनकी प्रतीहार रक्षी उनकी आज्ञा के पालन के सम्बन्ध में कञ्चुकी से सब समाचार जानना चाहती है। कञ्चुकी के द्वारा प्रतीहार-रक्षी को और प्रतीहार-रक्षी के द्वारा महाराज दशरथ को भी पता

चलता है कि राज-छत्र, राजसिंहासन, मङ्गलकलश आदि सभी सामग्रियाँ तैयार हैं और महर्षि वशिष्ठ राज्याभिषेक संस्कार प्रारम्भ करने के लिये महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

( दृश्य—द्वितीय )

सीताजी अपने हर्म्य-कक्ष में अपनी चेटियों के साथ हास परिहास में लगी हैं। इतने में उनकी एक चेटी आती है और अपने साथ एक वल्कल-वस्त्र लाती है जिसे उसने राजप्रासाद की नाट्य शाला से, नाट्यशाला की संरक्षिका को बिना बताये, ले लिया है। सीताजी इस चेटी को कुछ भला-बुरा कहती हैं और वल्कल को नाट्यशाला में लौटाने की आज्ञा देती हैं। चेटी वल्कल लौटाने ही जा रही है कि सीताजी उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर कौतुकवश उसे पहन लेती हैं। इतने में एक दूसरी चेटी आती है और सीताजी को राम के राज्याभिषेक की सूचना देती है। अभिषेक समारोह के मङ्गलवाद्य बजते-बजते अकस्मात् बन्द हो जाते हैं और सीता के पास राम आ पहुँचते हैं। राम प्रसन्न हैं क्योंकि उनका राज्याभिषेक होते होते रुक गया है। राम अपने राज्याभिषेक के रुकने का कारण बताते हैं और सीता प्रसन्न होती हैं। अकस्मात् राम का ध्यान सीता के वल्कल परिधान पर जाता है और स्वयं भी उन्हें वल्कल पहनने की इच्छा होने लगती है। इतने में अन्त पुर का करुण-क्रन्दन सुन पड़ता है और महाराज दशरथ के शोक-मूर्च्छित होने का समाचार फैल जाता है। क्रोध में लक्ष्मण सीता के हर्म्यकक्ष में पहुँच जाते हैं और कैकेयी से बदला लेने के लिये स्त्रीजाति के संहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम समझा बुझा कर लक्ष्मण को शान्त करते हैं और राम के साथ सीता और लक्ष्मण वन गमन के लिये तैयार हो जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण को वन गमन से रोकने में असमर्थ महाराज दशरथ शोकोन्मत्त हैं और अपने अन्त पुर में मूर्च्छित पड़े हैं। कौसल्या महाराज दशरथ को शान्त करने में लगी हैं। इतने में राम के साथ सीता और लक्ष्मण को अयोध्या की सीमा के पार पहुँचा कर लौटे हुये सुमन्त्र आते हैं। सुमन्त्र से राम के वन गमन का समाचार जान महाराज दशरथ मूर्च्छित और निष्प्राण हो जाते हैं।

तृतीय अङ्क

दिवंगत रघुवंशी राजाओं का प्रतिमागृह सजाया जा रहा है और मृत महाराज दशरथ की प्रतिमा के स्थापन संस्कार के लिये कौसल्या आदि रानियों के आगमन की प्रतीक्षा हो रही है। महाराज दशरथ के अस्वास्थ्य का समाचार सुन भरत अपने मातुलगृह ( केकय देश ) से चले आ रहे हैं और अयोध्या की सीमा पर निर्मित 'प्रतिमागृह' की सजावट देख वहाँ रुक जाते हैं। अयोध्या

से बहुत समय बाहर रहने के कारण भरत को यह प्रतिमा-गृह अपने पूर्वजों का स्मारक नहीं अपितु देवमन्दिर-सा लगता है। इतने में भरत के स्वागतार्थ शत्रुघ्न का सैनिक सेवक आता है और उन्हें अयोध्या-प्रवेश के लिए शुभमुहूर्त की प्रतीक्षा करने के लिये कहता है। अयोध्या-प्रवेश के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में भरत प्रतिमागृह के दर्शन के लिये चल पड़ते हैं और देवकुलिक (प्रतिमागृह के पूजनाधिकारी) के द्वारा क्रमशः दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओं का परिचय प्राप्त करते हैं। महाराज दशरथ की प्रतिमा दिखाये जाने पर और यह बताये जाने पर कि प्रतिमागृह दिवंगत रघुवंशी राजाओं का स्मारकभवन है, भरत मूर्च्छित हो जाते हैं। मूर्च्छा से उठने पर भरत को राम और दशरथ का पूरा वृत्तान्त बताया जाता है और भरत पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं। इतनेमें कौसल्या आदि रानियाँ प्रतिमागृह में पहुँचती हैं। भरत मूर्छा से उठते हैं और सुमन्त्र के साथ आये अपने मातृवर्ग से मिलते हैं। कैकेयी पर भरत क्षुब्ध होते हैं और अपने राज्याभिषेक के बदले राम के साथ वनवास करने का दृढ निश्चय प्रकट करते हैं।

चतुर्थ अङ्क

राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन में रहने लगे हैं। सुमन्त्र के साथ भरत राम की पर्णकुटी पर जा पहुँचते हैं भरत के स्वर से उन्हें पहचान कर राम उनसे मिलने को उत्सुक हो जाते हैं। भ्रातृमिलन के बाद भरत राम के प्रतिनिधिरूप से अयोध्या का राज्य चलाने पर किसी प्रकार तैयार होते हैं और राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं।

पञ्चम अङ्क

रावण कपट-परिव्राजक बनकर वन में पहुँचता है और राम का आतिथ्य ग्रहण करता है बातचीत में महाराज दशरथ के श्राद्ध के लिये रावण राम को सुवर्णमृग के निवाप का उपदेश देता है। राम सुवर्णमृग के पीछे चल पड़ते हैं और लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागतार्थ चले जाते हैं। सीता रावण का आतिथ्य करने रुक जाती है। रावण सीता को अपना वास्तविक परिचय देता है और डरा धमकाकर बलात् उनका अपहरण करता है। सीता का करुण-क्रन्दन जटायु को सुन पड़ता है और जटायु रावण के मार्ग में यथाशक्ति विघ्न उपस्थित करता है।

षष्ठ अङ्क

(दृश्य—प्रथम)

रावण सीता को आकाश-मार्ग से भगाये ले जा रहा है और जटायु रावण से लड़ता-भिड़ता उड़ रहा है। अन्त में जटायु की मृत्यु हो जाती है। 'जनस्थान' वन के दो ऋषिकुमार सीतापहरण तथा जटायुवध की घटना अवगत कराने के लिये राम को ढूँढने निकल पड़ते हैं।

( दृश्य-द्वितीय )

'जनस्थान'-वन से लौटे सुमन्त्र अयोध्या के राजप्रासाद में भरत से मिलते हैं और सीतापहरण का दुखद समाचार छिपाने की यथाशक्ति चेष्टा करते हैं। रावण के द्वारा सीतापहरण का समाचार मिलते ही भरत कैकेयी पर अपना क्रोध निकालने लगते हैं। कैकेयी क्षमा माँगती हैं और यह निवेदन करती हैं कि उनके मुँह से 'चौदह दिन' के वनवास के बदले 'चौदह वर्ष' का वनवास निकल पड़ा। भरत कैकेयी की बात पर सुमन्त्र के कहने से विश्वास कर लेते हैं और रावण पर आक्रमण करने के लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं।

सप्तम अंक

रावण विजय के बाद लङ्का से लौटे राम जनस्थान में पहुँच आये हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण हैं। जनस्थान की प्राचीन सुखद स्मृति में तीनों एक दूसरे से वार्तालाप कर रहे हैं। इतने में उन्हें भरत और उनकी सेनाओं के यहाँ पहुँचने का समाचार मिलता है। भरत के साथ सुमन्त्र और कैकेयी आदि हैं। सबकी उपस्थिति में भरत अपने अग्रज राम के चरणों में राज्य-भार समर्पण कर देते हैं और कैकेयी की आज्ञा से राम अपना राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं।

## 'प्रतिमा' के इतिवृत्त का रामायण के मूल वृत्त से भेद

सात अङ्कों में अङ्कित प्रतिमानाटक का इतिवृत्त रामायण के मूलवृत्त का नवीन कविकल्पना-प्रसूत रूपान्तर है। नाट्यविद्या की प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटककार को जो यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने रस-भाव की दृष्टि से प्राचीन मूलवृत्त में यथासम्भव परिवर्तन कर सकता है, उसका पूरा उपयोग प्रतिमानाटक में किया गया है। प्रतिमानाटक में महाकवि भास ने जो घटना-चक्र रचा है वह रामायण के कथानक से इन इन अंशों में नवीन है :—

( १ ) प्रथम अङ्क की वल्कल की घटना रामायण में नहीं है। नाटक कवि की यह अपनी कल्पना है, जिसका उद्देश्य सीता और राम के मधुर गार्हस्थ्य का प्रकाशन है। रामायण में राम के राज्याभिषेक में भरत के साथ शत्रुघ्न को भी अनुपस्थित दिखाया गया है किन्तु 'प्रतिमा' में केवल भरत अनुपस्थित रखे गये हैं और शत्रुघ्न को राज्याभिषेक के समय अयोध्या में उपस्थित बताया गया है।

( २ ) द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े दशरथ के सामने उनके स्वर्ग से आये पूर्वजों का जो दृश्य है वह नाटककार की कल्पना है क्योंकि रामायण में इसका कोई निर्देश नहीं है।

(३) तृतीय अङ्क की घटना नाटककार की एक मात्र नाटकीय कल्पना है। रामायण में 'प्रतिमागृह' की कोई भी चर्चा नहीं है। वस्तुतः तृतीय अङ्क की प्रतिमागृह-सम्बन्धी कल्पना ही प्रतिमानाटक की जन्मभूमि है।

(४) पञ्चम अङ्क में राम और रावण का जैसा मिलन वर्णित है उसका रामायण में कोई भी निर्देश नहीं। यहाँ मारीचरूपी मायामृग के बदले 'काञ्चनपार्श्व' मृग की कल्पना है और दिवंगत दशरथ के श्राद्ध के लिये इस मृग के अन्वेषण में राम को सीता के पास से जो हटाया गया है वह भी सर्वथा एक नयी कल्पना है।

(५) षष्ठ अङ्क में सुमन्त्र का पुनः दण्डकारण्य में जाना और रावण के द्वारा सीतापहरण की घटना से परिचित होना नाटककार की कल्पना है। रामायण में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है। साथ ही साथ सुमन्त्र द्वारा वर्णित सीता-पहरण के वृत्तान्त से दुःखित भरत का अपनी माता कैकेयी को कोसना और कैकेयी का यह कहना कि चौदह दिन के वनवास के बदले चौदह वर्ष का वनवास सम्भ्रमवश उसके मुँह से निकल पड़ा आदि बातें प्रतिमानाटक की इतिवृत्त रचना की विशेषता हैं क्योंकि रामायण में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं। रावणविजय के लिये भरत का सेना-समुद्योग भी नाटककार की ही कल्पना है जिसका रामायण में कोई उल्लेख नहीं है।

(६) सप्तम अङ्क में राम के राज्याभिषेक का जनस्थान में होना, अयोध्या के नरनारियों का इस राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होना, विभीषण, सुग्रीव आदि का भी वहाँ विराजमान रहना और पुनः धूमधाम से राज्याभिषेक के लिए सबका अयोध्या जाना आदि नाटककार की इतिवृत्त-कल्पना से सम्बद्ध हैं। इसका भी रामायण में कोई निर्देश नहीं है।

## 'प्रतिमा' में चरितचित्रण—रामायण की चरितवर्णना से भिन्न

—नाटककार भास ने 'प्रतिमा' में जैसा चरितचित्रण किया है उसी के अनुसार इतिवृत्त-रचना की है। 'प्रतिमा' का चरितचित्रण 'प्रतिमा' के रस-भाव का अनुसरण करता है। जहाँ 'प्रतिमा' में जो मुख्य रस-भाव विवक्षित है वह करुण-रस है और इसी के विविध प्रकार के परिपोष में प्रत्येक चरित विविधरूप में विकसित होते हैं।

### राम का चरितचित्रण

'प्रतिमा' के राम रामायण के राम नहीं। रामायण के राम अपने पिता महाराज दशरथ के सम्बन्ध में वह कोमल भाव नहीं रखते जो 'प्रतिमा' के राम में स्पष्ट झलकता है। 'प्रतिमा' के राम अपने राज्याभिषेक के होते-होते रुक जाने और अपने वनवास के सम्बन्ध में प्रसन्न होकर यह कहते हैं—

'वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावत्, मम पितृपरवत्ता बाल्यभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे॥

(पृ० ३१)

वहाँ रामायण के राम का इस अवसर पर कुछ दूसरा ही रूप है :—

'गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षाद्यदि वापि कामात्।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तन्न कुर्यादनृशंसवृत्तिः॥

(अयोध्याकाण्ड २१, ५१)

रामायण में राम को कैकेयी पर कुछ क्रोध और क्षोभ भी प्रकट करते वर्णित किया गया है :—

मम प्रव्रजनादद्य कृतकृत्या नृपात्मजा।
सुतं भरतमव्यग्रमभिषेचयतां ततः॥
मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि।
गतेऽरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम्॥

(अयोध्याकाण्ड २२, १२ १३)

किन्तु, 'प्रतिमा' (पृ० २८–२९) में राम को कैकेयी के प्रति क्रोध-क्षोभ-रहित दिखाया गया है :—

रामः—...अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः!

काञ्चुकीयः—स्वजनात्।

रामः—स्वजनादिति। हन्त, नास्ति प्रतीकारः!

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति॥

काञ्चुकीयः—तत्र भवत्याः कैकेय्याः।

रामः—किमम्बायाः? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम्।

काञ्चुकीयः—कथमिव?

रामः—श्रूयताम्—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति॥

रामायण के कवि ने राम को सीता के स्पृहा-विनोदन के लिए माया-मृग मारीच के प्रति भेजा है :—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति॥

(अरण्यकाण्ड ४३, ६)

याचद् गच्छामि सौमित्रे ! मृगमानयितुं द्रुतम् ।
पश्य लक्ष्मण ! वैदेही मृगत्वचि गतस्पृहाम् ॥

( अरण्यकाण्ड ४३, ४८ )

किन्तु 'प्रतिमा' के नाटककार ने राम को काञ्चन-पार्श्व मृग का पीछा करते चित्रित करते हुए पितृभक्त पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया है ( पृ० १३६-४० ) :—

रावणः—कौसल्यामातः ! अलमतिमनोरथेन । न ते ( काञ्चनपार्श्वाः मृगाः ) मानुषैर्दृश्यन्ते ।

रामः—भगवन् ! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम् ।

रामः—तेन हि पश्यतु भवान्—

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।
भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥

रावणः—( स्वगतम् ) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः । ( प्रकाशम् ) अये विद्युत्-संपात इव दृश्यते । कौसल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान् । एष काञ्चनपार्श्वः ।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

सीता—दिष्ट्या आर्यपुत्रो वर्धते ।

रामः—न न—

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥

## सीता का चरित-चित्रण

'प्रतिमा' की सीता वही नहीं जो 'रामायण' की सीता है । रामायण की सीता तो महाराज दशरथ की वनवास की आज्ञा के पालन में राम को कुछ खरी-खोटी भी सुनाती है :—

'सान्त्वमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥
सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिप- ।
-रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम्।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि॥
(अयोध्याकाण्ड ३०.१.७)

किन्तु 'प्रतिमा' की सीता राम के राज्याभिषेक में न तो प्रसन्न है और न वनगमन में खिन्न। राम से सीता इतना ही कहती है:—

'प्रियं मे। महाराज एव महाराजः। आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।' (पृ० २३)

रामायण की सीता मायामृग के आखेट के लिए निकले राम के पीछे लक्ष्मण को न जाते देख लक्ष्मण पर क्रुद्ध होती हैं:—

'तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियंमन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते॥
(अरण्यकाण्ड ४५-२-७)

किन्तु 'प्रतिमा' नाटक के कवि ने सीता के इस व्यक्तित्व का चित्रण करना अनुचित समझकर मायामृग की घटना में लक्ष्मण को ही अनुपस्थित निर्दिष्ट कर दिया है।

## कौसल्या का चरित-चित्रण

रामायण में तो कौसल्या को कैकेयी के दुर्व्यवहार पर क्षुब्ध चित्रित किया गया है और भरत पर भी रुष्ट बताया गया है:—

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत्॥
आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम्॥
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता।
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम्।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी॥
(अयोध्याकाण्ड ७५.६-१२)

किन्तु 'प्रतिमा' में कौसल्या का जो चरित है उसमें कहीं भी उसे रुष्ट अथवा क्षुब्ध नहीं देखा जा सकता।

और साथ ही साथ लक्ष्मण का क्रोध ( पृ० ३४ )—

'यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥

करुण रस का ही प्रादुर्भाव परिपोष का उपाय मात्र है।

द्वितीय अङ्क तो करुण रस से ओतप्रोत है ही।

तृतीय अङ्क ( पृ० ७२ ) में भरत की स्वजन-दर्शन की यह उत्सुकता—

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निग्धतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः
त्वरितमुपगता इवं भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥

सहृदय सामाजिक में जिस विचित्रता से करुण रस का सञ्चार करती है वह अन्यत्र सुलभ नहीं। 'प्रतिमागृह' में भरत का प्रतिमा-दर्शन और कलाविनोद करुण रस की एक नयी ही उद्भावना है। चतुर्थ अङ्क में जो करुण का विराम है और पञ्चम अङ्क में जो रावण के चरित्र में विस्मय-भाव का प्रकाशन है वह सब सीतापहार की दुःखद घटना में पर्यवसित होकर करुण का ही परिपोषक बना दिखाई देता है।

उत्तररामचरित का करुण काव्यव्यङ्ग्य करुण रस है किन्तु 'प्रतिमा' का करुण नाट्यव्यङ्ग्य करुण रस है। वैसे तो भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित' को नाटक रूप में ही रचा है किन्तु वहाँ जो करुण की अवतारणा है वह कविता का कार्य है। 'प्रतिमा' में करुण रस कविता द्वारा नहीं अपितु नाटक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। नाटक की मुख्य घटना 'प्रतिमागृह' और प्रतिमा-दर्शन में भरत की उत्सुकता–जिसकी स्मृति नाटक के नामकरण में सुरक्षित रखी गयी है—बिना काव्यमय करुण सन्दर्भों के ही करुण रस की उद्गमभूमि बनी प्रतीत हुआ करती है।

## 'प्रतिमा' का नायक

प्रतिमा नाटक के आलोचक विद्वानों की दृष्टि में 'राम' प्रतिमानाटक के नायक हैं। डाक्टर गणपति शास्त्री का कहना है :—

'In the Pratima, however, the central Rasa that runs through it, is the Dharmavira mingled with Karuna Rasa–the Dharmavira manifesting itself in the enthusiasm displayed by the hero (Rama) in cherishing the single thought of carrying out the Dharma i. e. fulfilling the mandates of his royal father'–Pratima- Introduction,

जिसका अभिप्राय यही है कि राम को नायक मान कर नाटककवि ने अपने नाटक में धर्मवीर रस की पूर्णरूप से अभिव्यक्ति की है। किन्तु ऐसा लगता है कि नाटककार को वहाँ करुणरस की ही अभिव्यक्ति अभिप्रेत है और इस दृष्टि से भरत ही इस नाटक के नायक रूप में चित्रित है।

रामायण में भरत का जो उदात्त चरित्र है उसकी छाप 'प्रतिमा' पर सर्वत्र पड़ी दिखाई देती है। यद्यपि इस नाटक के प्रथम अङ्क (पृ० ३७) में 'भरत' का दर्शन नहीं होता किन्तु राम की इस उक्ति अर्थात्—

'ताते धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे मुक्तानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु॥'

में भरत के व्यक्तित्व का धुँधला चित्र सहृदय सामाजिकों की अन्तर्दृष्टि के आगे अवश्य उपस्थित किया गया है। दूसरे अङ्क (पृ० ६४) में भी भरत को सहृदय सामाजिक नहीं देखते किन्तु राजा दशरथ की इस उक्ति अर्थात्—

'गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः।
क्षिप्रमानीयतो पुत्रः पापं सफलमस्त्विति॥'

में वे भरत की प्रतीक्षा में उत्सुक अवश्य हो उठते हैं। सहृदय सामाजिकों की उत्सुकता तीसरे अङ्क में भरत को देखकर शान्त हो जाती है। तीसरे अङ्क (पृ० ७०) में भरत का जो करुण चित्र सहृदय सामाजिक के सामने आता है वही अन्त तक नये-नये दृष्टिकोणों से दीखता चला करता है। सुमन्त्र के साथ भरत की जो उक्ति-प्रयुक्ति है:—

भरतः—पितुर्मे को व्याधिः।
सूतः—हृदयपरितापः खलु महान्।
भरत—किमाहुस्तं वैद्याः।
सूत—न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।
भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि।
सूत.—भूमौ निरशनः।
भरत.—किमाशा स्यात्।
सूत —दैवं।
भरत—स्फुरति हृदयं वाहय रथम्।

इसमें भरत का पिता के प्रति स्नेह शोक की एक तीव्र व्यथा से लिपटा प्रतीत हो रहा है। भरत का व्यक्तित्व एक शोकाकुल महापुरुष का व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्व में तन्मय सामाजिक को इस नाटक के अन्य पात्रों का व्यक्तित्व भी करुण-व्यक्तित्व ही लगा करता है।

सुमन्त्र की यह उक्ति ( पृ० ८७ )—

सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः—

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।

अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥

( प्रविश्यावलोक्य )

भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्–अयं हि पतितः कोऽपि वयस्थ इव पार्थिवः।

देवकुलिकः—परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥

राजा दशरथ की प्रतिमा–दशरथ सिद्ध करने के लिए नहीं अपितु भरत को करुण रस की प्रतिमा सिद्ध करने के लिए है। भरत का कैकेयी के प्रति यह क्षोभ ( पृ० ९९ )—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्, किमु नृपफलतर्ष. किं नरेन्द्रो न दद्यात्।

अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो, वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः॥

वस्तुतः भरत के शोक का ही एक प्रकाशन प्रकार है।

चतुर्थ अङ्क ( पृ० १०४ ) में भरत का व्यक्तित्व भरत के शब्दों में स्वयं प्रकाशित है :—

'निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।

भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यास्विति ॥'

छठे अङ्क ( पृ० १५९ ) मे भरत की यह उक्ति—

भरतः—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः। अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम्। अपि दृष्टं त्वया निष्कारणावहितवनवासं सौभ्रात्रम्।

भरत के करुण महान् व्यक्तित्व को और भी स्पष्टतया प्रकट कर देती है। भरत का कैकेयी से यह कहना ( पृ० १६६ )—

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आपृच्छाम्यत्रभवतीम्। अद्यैवाहमार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि। अयमिदानीं—

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम्।

बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं स्थलानि समुद्रं सह रावणेन ॥

जो रामायण में असम्भव है, भरत की कर्त्तव्यनिष्ठा की तो सूचना देता ही है किन्तु साथ ही साथ भरत के करुण व्यक्तित्व को भी झलका जाता है।

सप्तम अङ्क (पृ० १७७) में सहृदय सामाजिक भरत को अवश्य प्रसन्न देखते हैं—

भरतः—आर्य ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव।

वक्षः प्रसार्य कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन।

उद्दामयानमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्ये! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि।

सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! अभिवादये।

लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स! दीर्घायुर्भव। परिष्वजस्व गाढम्।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः।

किन्तु भरत की यह प्रसन्नता करुणा की ही प्रसन्नता है। नाटक को सुखान्त होना चाहिये। भरत की करुणा यद्यपि हँस रही है तथापि वह करुणा ही है।

## 'प्रतिमा' और अभिज्ञानशाकुन्तल

भासकृत 'प्रतिमा' की मधुर कल्पना ने महाकवि कालिदास को कम प्रभावित नहीं किया। 'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क में वल्कलावृता सीता के सम्बन्ध में अवदातिका की जो उक्ति है :—

'भट्टिनि! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम' (पृ० १२)

इसी की भावना अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास की इस स्मरणीय उक्ति की प्रेरणा है:—

'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १७)

'प्रतिमा' के पञ्चम अङ्क (पृ० १२७) में पेड़-पौधों को पानी से पटाती सीता का जो सुन्दर चित्र है—

'योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥'

इसी के आधार पर सम्भवतः महाकवि कालिदास ने शकुन्तला का यह चित्र खींचा है :—

'इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥'
(अभिज्ञानशाकुन्तल १. १७)

'प्रतिमा' के पञ्चम अङ्क (पृ० १३८) की यह मधुर कल्पना—

'आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च, विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च।'

अभिज्ञानशाकुन्तल की इस कल्पना में अपने पूर्ण माधुर्य में उभर उठी है—

'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तल ४.८)

'प्रतिमा' के सप्तम अङ्क (पृ० १७३) में राम की सीता के प्रति यह उक्ति—
'अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्तात् शुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्।'

अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में शकुन्तला की दुष्यन्त के प्रति इस उक्ति में झलक रही है :—

'नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितमासीत्। ...तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयाऽयं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पितोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्यामुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यारण्यकाविति।'

ऐसा लगता है कि भास की रेखा-रचना को कालिदास की कविप्रतिभा ऐसा उन्मीलित कर देती है कि देखने वाले चित्र देखने में ही मुग्ध हो जाते हैं और उसके पूर्वरूप को देखना नहीं चाहते।

## प्रतिमा और उत्तररामचरित

'प्रतिमा' की 'प्रतिमा-कल्पना' ने उत्तररामचरित की 'चित्र-वीथी' की कल्पना को भी प्रभावित किया है। यद्यपि उत्तररामचरित की 'चित्रवीथी'-कल्पना संस्कृत काव्यसाहित्य में एक अद्भुत कल्पना है और ऐसी कल्पना है जो चित्र और काव्यकला दोनों के गठबन्धन की एक अभूतपूर्व कल्पना है किन्तु इसकी सृष्टि भास की 'प्रतिमा'-कल्पना के कारण ही संभवतः हुई है। यद्यपि उत्तररामचरित की 'चित्रवीथी' की यह सुन्दरता :—

'अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो विसर्पन्धारामिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया, परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः॥'
(उत्तररामचरित १.२९)

"प्रतिमा' में कहीं नहीं, और हो भी नहीं सकती, क्योंकि आँसू का अंकन संगीत और चित्र तथा काव्य की कलायें ही कर सकती हैं—मूर्तिकला नहीं, किन्तु तब भी 'प्रतिमा' की 'प्रतिमा-कल्पना' उत्तररामचरित की 'चित्रकल्पना' की एक प्रबल प्रेरणा अवश्य है।

## 'प्रतिमा' में अलङ्कार-योजना

'प्रतिमा' में अलङ्कार-योजना की वही विशेषता है जो भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' किंवा 'अविमारक' आदि में दिखाई देती है। भास का परमप्रिय अलङ्कार 'उपमा' अलङ्कार है। कालिदास तो उपमा के प्रयोग और उपयोग में सिद्धहस्त प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु भास की 'उपमा' भी अपनी स्वाभाविकता और प्रभावमयता का प्रदर्शन किया ही करती है। 'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क (पृ० ४१) में लक्ष्मण की यह उक्तिः—

'अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा, पततति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं, व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः॥

'अर्थान्तरन्यास' के सदुपयोग का एक दृष्टान्त अवश्य है, किन्तु इसमें भी 'उपमानोपमेयभाव' का ही सौन्दर्य छिपा झलक रहा है। यह 'अर्थान्तरन्यास' नीरस नहीं अपितु सरस है।

'प्रतिमा' के तृतीय अङ्क (पृ. ८४) में भरत की इस उक्तिः—

'अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव॥'

में 'उपमा' की जो योजना है उसमें भरत की विकल मनःस्थिति का दर्शन स्पष्ट हो रहा है।

भास की 'उत्प्रेक्षा' भी 'प्रतिमा' में बड़ी प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। द्वितीय अङ्क (पृ. ४७) में महाराज दशरथ के इस वर्णन :—

'मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः॥'

में जो 'उत्प्रेक्षा' है, उसमें महाराज दशरथ और उनके पुत्रशोक—दोनों की महानता और गम्भीरता का स्पष्ट अङ्कन प्रतीत हो रहा है।

'प्रतिमा' के प्रथम अङ्क (पृ. ३३) में भास ने 'वल्कल' पर यह रूपक-रचना की है :—

'तप संग्रामकवच नियमद्विरदाङ्कुशः। खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः॥

किन्तु इसकी सुन्दरता इसलिये आकर्षक है कि इसके पहले (पृ. २७ में) भास ने 'वल्कल' को 'ससन्देह' अलङ्कार से अलङ्कृत कर दिया है :—

'आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः'। इसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा।

राम के लिये 'वल्कल' पहले तो मनोविनोद का साधन बना और बाद में ही 'तपः संग्रामकवच' आदि रूप में निखरा। अलङ्कार चरित-चित्रण में भी साधन है—यह यहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है।

# महाकवि भास

## काल-निर्णय

भारत के साहित्यिक इतिहास की सबसे बड़ी कठिनाई कवियों और काव्य-प्रकृतियों का काल-निर्णय है। महाकवि कालिदास भारत के कविसम्राट् हैं किन्तु अभी तक इनके भी युग के सम्बन्ध में मतभेद चल ही रहे हैं। महाकवि कालिदास ने 'भास' का आदरपूर्वक स्मरण किया है। कालिदास के पहले भास की नाटक-कृतियों का बोलबाला अवश्य रहा होगा। अन्यथा कालिदास से भास की स्तुति क्योंकर हो पाती। किन्तु तब भी भास के काल-निरूपण में एक का मत दूसरे से नहीं मिलता।

भास का समय भिन्न-भिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न मानते आ रहे हैं—म० म० गणपति शास्त्री, म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों की दृष्टि से भास का समय यदि ६००–४०० ई० पूर्व का होना चाहिये तो म० म० डाक्टर काणे, म० म० रामावतार शर्मा आदि विद्वानों के मत में ईसा की ९ वीं १० वीं शताब्दी। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, प्रिंसिपल ध्रुव आदि ऐतिहासिक भास को यदि २ री–१ ली शताब्दी पूर्व का सिद्ध करना चाहते हैं तो डाक्टर बार्नेट, प्रोफेसर देवधर आदि विद्वान् ईसा की ७ वीं शताब्दी का। भास को ईसा की २ री, ३ री, ४ थी, ५ वीं और छठी शताब्दी में स्थान देने वालों का भी अपना-अपना मत और अपना-अपना तर्क है। तात्पर्य यही है कि भास के युग के अनिर्णय में जितना संदेह नहीं उतना निर्णय में है।

भास का काल-निर्णय तभी संभव है जब कौटिल्य, शूद्रक, कालिदास और अश्वघोष का काल-निर्णय निःसन्दिग्ध हो जाय। ६ ठी–७ वीं शताब्दी के बाद तो भास को रखा ही नहीं जा सकता, क्योंकि महाकवि बाण के द्वारा भास और भास नाटकचक्र, भास-नाटक की विशेषता आदि के निर्देश एक समस्या बन जायेंगे। कालिदास के पहले भास का होना अनिवार्यरूप से आवश्यक है, क्योंकि कालिदास ने भास का नामोल्लेख किया है जिसका कारण है कालिदास के पूर्व भास की नाट्यकृतियों की प्रसिद्धि।

नाट्य-रचना की दृष्टि से भास का समय कालिदास से बहुत पहले का होना चाहिये। भास की नाटक-कृतियों पर भरतकृत नाट्यशास्त्र का प्रभाव नहीं दिखाई देता, किन्तु कालिदास की नाटक-कृतियाँ भरतमुनि की नाट्य-परम्परा में आ जाती हैं। म०म० गणपति शास्त्रीने भासकी नाटक-रचना पर भगवान् पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट 'नटसूत्र' के सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया है। भास

पाणिनि के पूर्ववर्ती न भी हों, क्योंकि अष्टाध्यायी पर भासकृत प्रयोगों की कोई छाप नहीं दिखाई देती, तब भी इतना तो माना जा सकता है कि भास के नाटक भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा से पहले की नाट्य मर्यादा का अनुसरण करते हैं।

भास को भगवान् बुद्ध का पूर्ववर्ती मानना, जैसा कि म० म० गणपति शास्त्री का कहना है, ठीक नहीं जँचता, क्योंकि भास के नाटकों में 'शाक्य-श्रमणक', 'नग्ना श्रमणिका' आदि-आदि प्रयोग बहुधा आये हैं।

भास के नाटकों में जिस सामाजिक परिस्थिति का चित्रण है वह कालिदास के नाटकों में चित्रित सामाजिक परिस्थिति से पर्याप्त रूप से प्राचीन है। 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह की प्राङ्गणभूमि में 'वालुका' (बालू) का छींटना जो वर्णित है उसके आधार पर म० म० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि भास ५ वीं शताब्दी ई० पूर्व के रहे होंगे क्योंकि आपस्तम्ब (६०० ई० पूर्व) ने ही 'बालुकास्तरण' का उल्लेख किया है और किसी गृह्यसूत्रकार ने नहीं। भास के 'अविमारक' में जिस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध का निर्देश है उसे मनुस्मृति युग में अवैध माना गया है। इसके आधार पर भी भास का युग मनुस्मृति (२ री शताब्दी ई० पूर्व) का पूर्ववर्ती सिद्ध किया जाता है।

भास के नाटकों में बौद्ध और जैन धर्म के प्रति कोई सद्भावना का भाव नहीं दिखाई देता, प्रत्युत जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह वैदिक धर्म का ही आदर्श है—भास की प्राचीनता में यह भी एक प्रमाण है।

भास के नाटकों में प्रतिबिम्बित सामाजिक जीवन कौटिलीय अर्थशास्त्र की राजनीति की पृष्ठभूमि सा लगता है। अर्थशास्त्र में मदिरा गृह और उसके राजकीय संरक्षण का उल्लेख भास के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण (अङ्क ४ प्रवेशक) की इन पंक्तियों में स्पष्टतया निर्दिष्ट है :—

गात्रसेवक—क इदानीमेषोऽस्य राजमार्गे गात्रसेवक! गात्रसेवक! इति मां शब्दापयति? पानागारान्निष्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि कमलखुरेण सुरण्डेन। १६ उप-मल्लकेन घृतमरिचलवणकल्पितो मांसखण्डो मुखे प्रक्षिप्तश्च। स्नुपा रज्यति पीता यदि। दस्युर्ननु दण्डोद्यता भवति।

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः।
धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभिः सञ्ज्ञापिताः॥

अर्थशास्त्र में, बड़े-बड़े नगरों में किन्हीं विशेष अवसरों पर नागरिकों के रात्रि-भ्रमण के प्रतिबन्ध (कर्फ्यू) का जो सङ्केत है और उसके लिए तूर्यवादन के द्वारा सबको सूचित करने का जो विधान है उसका चित्र भास के नाटक 'चारुदत्त' में स्पष्ट चित्रित है :—

विदूषक—भो वयस्य! क. कालः कृतपरिघोषणतया निःसम्पाता राजमार्गाः।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और भासनाटक-चक्र में समसामयिक जीवन का जो चित्र है उसके आधार पर भास को ईस्वी पूर्व का ही महाकवि मानना अनिवार्य

हो जाता है। कालिदास के पूर्ववर्ती भास को आज-कल उपलब्ध नाटकचक्र की कृति से सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध सिद्ध करने के भी अनेकानेक प्रयत्न किये जा चुके हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि आलङ्कारिकों द्वारा नामग्रहण के साथ उद्धृत 'स्वप्नवासवदत्त' यदि भासकृत है तो अन्य उपलब्ध १२ नाटक भी भासकृत ही होने चाहिये। भास की कृति के रूप में प्रसिद्ध 'स्वप्नवासवदत्त' आदि तेरहों नाटक एक प्रतिभाशाली नाटक कवि की रचनायें हैं न कि किसी प्राचीन नाटक मण्डली के द्वारा अभिनय के लिये संगृहीत रूपक-वस्तुयें। डाक्टर विंटरनिट्ज का इसीलिये कहना है :—

*'Plays like* ऊरुभङ्ग, पञ्चरात्र *and* बालचरित, *to say nothing of such works as the* स्वप्नवासवदत्त *and* प्रतिज्ञायौगन्धरायण *or* अविमारक *are original works and cannot by any stretch of the term be designated as Compilations.'*

## भास की शैली

भास की शैली संस्कृत नाटक की आदर्शशैली कहना चाहिये। नाट्याचार्यों ने जिसे 'भारती वृत्ति' कहा है उसमें आधुनिक नाट्य-मर्यादा का *Dialogue* (कथनोपकथन अथवा संवाद) अन्तर्भूत प्रतीत होता है। भास के नाटकों की जो 'भारती वृत्ति' है वह दूसरे संस्कृत नाटकों में दुर्लभ है। म० म० गणपति शास्त्री का कहना है :—

*'The superior excellence of sentences which are not subject to the restrictions of versification is everywhere to be observed in these Rupakas. It really surpasses in grandeur, the style of other works and is incomparable,* अर्थात् भास के नाटक चक्र में वाक्ययोजना की जो विशेषतायें हैं उनका अनुकरण नहीं हो सकता और न उन्हें अन्यत्र पाया ही जाता है।

भास की भाषा बोलचाल की संस्कृत भाषा है। भास की भाषा की स्वाभाविकता कालिदास की भाषा में नहीं। भास की भाषा पहाड़ी निर्झरिणी-सी स्वच्छन्द होते हुए सरल है किन्तु कालिदास की भाषा गङ्गा की धारा-सी संयत और सुन्दर है।

भास ने अपने नाटकों में चरितों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कालिदास के नाटकों में काव्यात्मकता की सुन्दरता स्थान-स्थान पर मिलती है किन्तु भास के नाटक नाटकीयता से पूर्ण हैं। भास को भारती वृत्ति—सवादरचना—का अ द्वितीय कलाकार कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भास की शैली के सम्बन्ध में यह उक्ति :—

*'He is terse and sparse in his expression He tells us more by the things he does not say than by the things he says. He is the master*

*of silence.* अर्थात् 'भास की शब्दार्थ-योजना अभिव्यञ्जना से ओतप्रोत है' सर्वथा युक्तियुक्त है प्रत्येक रस-भाव के अनुकूल, देश और काल के अनुसार भास की भाषा का प्रवाह देखते ही बनता है।

## भास की रस-योजना

अलङ्कारशास्त्र में 'रस' को नाट्य और काव्य की आत्मा कहा गया है। भास की नाटक कृतियों में रसरूपी आत्मतत्त्व सर्वत्र झलकता है। भास की रचना एक रससिद्धहस्त कवि की रचना है और इसीलिये उसमें शब्द-ग्राम, अर्थ माधुर्य उक्तिवैचित्री, कल्पना-वैचित्र्य सभी के सभी स्वभावतः खिंचे चले आये हैं। भास को वीर, वात्सल्य, हास्य, अद्भुत, रौद्र और करुणरस पर अधिकार है। भास की शृङ्गार रस की भी नाट्य कृतियाँ हैं, जिनमें रति अथवा प्रेम का भाव अत्यन्त उत्कृष्ट रूप का अभिव्यक्त हुआ है।

भास की रस योजना में अलङ्कार कहीं भी बाधक नहीं प्रतीत होते। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास—इन कतिपय अलङ्कारों की योजना भास की रससिद्ध रचनाओं की एक सुन्दरता है। कालिदास ने भास की नाटक कृतियों की शाला में अलङ्कार-योजना का अध्ययन किया है। कालिदास की अलङ्कार-योजना की सुन्दरता का बहुत कुछ श्रेय इस दिशा में भास के मार्ग-प्रदर्शन को है। डाक्टर ए० बी० कीथ की यह उक्ति'—

*His practical appreciation of the merits of the dramatist ( Bhasa ) with whose established fame his ( Kalidasa's ) nascent genius had to contend* अर्थात् 'कालिदास ने भास की विशेषताओं का अपने में आधान किया है क्योंकि कालिदास की उदीयमान कवि-प्रतिभा को भास की चमकती प्रतिभा का सामना करना पड़ा है' कोई अत्युक्ति नहीं।

## भास का प्रकृतिवर्णन

भास का प्रकृति-निरीक्षण सूक्ष्म और व्यापक दोनों है। सूक्ष्म इसलिये है कि प्रत्येक दृश्य केवल रेखानिवेश के रूप में नहीं अपितु पूर्ण चित्र के रूप में अङ्कित हुए हैं और व्यापक इसलिये कि भास की नाटक कृतियों में प्रकृति के अनेक दृश्य एक के बाद एक आया-जाया करते हैं। 'स्वप्नवासवदत्त' ( १. १६ ) में सायङ्काल का यह चित्रण :—

'खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥'

जितना स्वाभाविक है उतना ही सुन्दर और सरस भी है।

कालिदास की कृतियों में प्रकृति और मानव का जो घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित दिखायी देता है और प्रकृति के दृश्य मानव-हृदय के प्रति सान्त्वना और समवेदना के भावों से जो ओत-प्रोत लगते हैं उन सब का पूर्वरङ्ग भास की नाट्य-कृतियाँ हैं। भास ने अपने नाटक में अविमारक के वियोग-दुःख में निदाघ को संतप्त चित्रित किया है :—

'अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव॥' (अविमारक ४ ४)

इसी प्रकार 'अविमारक' की प्रसन्नता में प्रकृति भी प्रसन्नता से फूली नहीं समाती :—

'व्यास्पृष्टसूर्यतिलको वितताडुमालो नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः॥'
(अविमारक २. १२)

कालिदास ने आकाशमार्ग से इन्द्र-रथ पर चलते हुए महाराज दुष्यन्त के द्वारा देखे गये भूलोक के दृश्य का जो सच्चा और स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है :—

'शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥' (शाकुन्तल ७ ८)

उसकी रेखा भास के अविमारक ( ४. ११ ) में ही बन चुकी है :—

'शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं चक्रमिवावभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत्॥'

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल ( १ ९ ) में द्रुतगतिगामी रथ पर आरूढ दुष्यन्त के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन :—

'यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो
र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥'

अपनी स्वाभाविकता में जितना सुन्दर है उतना ही भास के प्रतिमानाटक (पृ. ७१) में शीघ्रगामी रथ पर आरूढ भरत के द्वारा देखे गये प्राकृतिक दृश्यों का यह वर्णन भी स्वभावमनोहर है :—

'द्रुमा धावन्तीव द्रुततरथगतिक्षीणविषया नदीवोद्‌वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे। अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं रजश्चाश्वोद्‌धूतं पतति पुरतो नानुपतति॥'

भासकृत रात्रि-वर्णन और संतमस-वर्णन वास्तविकता और कलात्मकता का बड़ा सुंदर संमिश्रण है। भास ने 'अविमारक' (२ १२) में 'सांध्यवेला' का जो चित्र खींचा है :—

'पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम्॥'

यह संस्कृत काव्य-साहित्य में अपनी स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में अनुपम है।

## भास की प्रमुख विशेषता

भास का अधिकार नाट्य-कला पर है। नाट्य-कला का चरितचित्रण—कला अत्यन्त आवश्यक अङ्ग है। यह चरितचित्रण—कला भास की सबसे बड़ी विशेषता है। भास के नाटकों में क्या देव और क्या मनुष्य सभी उपस्थित हैं। सबका चित्रण भास ने किया है और इस ढङ्ग से किया है जिसमें सहृदय सामाजिक उन्हें अनायास अपना सकें।

भास का चरित-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। मानवहृदय के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में भास सिद्धहस्त हैं। भास ने प्रायः २३० चरित अपनी नाट्य कृतियों में चित्रित किये हैं।

महाकवि बाण को भास की 'अनेक चरित-चित्रण कला' का स्मरण है '—

'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥'

भास की कल्पना द्वारा उद्भावित प्रत्येक चरित का अपना-अपना व्यक्तित्व है। क्या छोटे और क्या बड़े सभी प्रकार के चरित इस प्रकार चित्रित हैं कि उन्हें पृथक्-पृथक् देखना सरल है।

भास का 'प्रतिमानाटक' भास की चरितचित्रणकला का एक प्रमुख निदर्शन है। 'प्रतिमा' में चित्रित राम और सीता आदि के चित्र में सहृदय सामाजिक अनायास तन्मय हो सकता है। कालिदास और बाण द्वारा उद्भावित चरितों की कल्पनाशक्ति, भवभूति द्वारा चित्रित चरितों की भावुकता और शूद्रक की प्रतिभा से प्रसूत चरितों की स्वाभाविकता—इन सबकी विशेषतायें भास के चरित-चित्रण में घुली-मिली हैं किन्तु तब भी भास का चरित-चित्रण भास का ही चरित-चित्रण है।

## पात्र-परिचय

### पुरुष पात्र

१ सूत्रधार—नाटक का स्थापक।
२ राजा—अयोध्याधिपति महाराज दशरथ।
३ राम—महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, नाटक के नायक, कौशल्यानन्दन।
४ लक्ष्मण—महाराज दशरथ के पुत्र, सुमित्रातनय।
५ भरत—महाराज दशरथ के पुत्र, कैकेयीतनय।
६ शत्रुघ्न—लक्ष्मण के सोदर भाई।
७ सुमन्त्र—महाराज दशरथ के मन्त्री।
८ सूत—भरत के सारथी।
९ रावण—नाटक का प्रतिनायक लङ्काधिपति।
१० वृद्धतापसद्वय—रावण और जटायु के युद्ध को देखने वाले।
११ देवकुलिक—प्रतिमा गृह का पुजारी।
१२ तापस—दण्डकारण्य के तपस्वी।
१३ नन्दिलक—तपस्वी के परिजन।
१४ भट—राजपुरुष।
१५ सुधाकार—प्रतिमा-गृह में सुधा का लेप करने वाला।
१६ कांचुकीय—अन्तःपुर का वृद्धसेवक।

### स्त्री पात्र

१ नटी—सूत्रधार की स्त्री।
२ कौसल्या—महाराज दशरथ की प्रथम पत्नी, राम की माता।
३ कैकेयी—महाराज दशरथ की द्वितीय पत्नी, भरत की माता।
४ सुमित्रा—महाराज दशरथ की तृतीय पत्नी, लक्ष्मण की माता।
५ सीता—मिथिलेश महाराज जनक की कन्या, राम की पत्नी।
६ अवदातिका—सीता की सखी।
७ प्रतिहारी—अन्त पुर की द्वारपालिका।
८ विजया—कैकेयी के अन्तःपुर की प्रतिहारी।
९ नन्दिनिका—कैकेयी की परिचारिका।
१० तापसी—दण्डकारण्य की तपस्विनी।

---

॥ श्रीः ॥

# प्रतिमानाटकम्

## 'प्रकाश' संस्कृत–हिन्दीव्याख्योपेतम्

## अथ प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । )

---

यदिङ्गितं चक्रमदृष्टसाह्यं विनैव मृद्दण्डपटैकदेशान् ।
ब्रह्माण्डभाण्डानि सृजत्यखेदं तं कुम्भकारं प्रणतः प्रपद्ये ॥ १ ॥
यो गुरुर्मम विकास्य धीमुणी कल्पनामपि न जातु जग्मुषीम् ।
सिद्धिमानयत मा दयामये तस्य पादसरसीरुहं श्रये ॥ २ ॥
ध्यात्वा नतेन शिरसा 'जयमणि'-'मधुसूदनौ' पितरौ ।
प्रतिमा 'प्रकाश'विषये प्रयते श्रीरामचन्द्रोऽहम् ॥ ३ ॥
सन्तो गुणेन तुष्यन्ति स नैकान्तेन दुर्लभः ।
दोषाविलेऽपि तेनात्र दृक्पातः क्रियतां बुधैः ॥ ४ ॥

नाटकप्रणयनमाचार्यत्वेनाधुनावधि संस्तुतः प्रधानकविर्भासोऽभिनययोग्यं प्रतिमाऽभिधानं नाटकं निर्मित्सुः प्रारम्भे तस्य निर्विघ्नाभिनयसम्पत्तिं विद्वत्समुदयप्रतिपत्तिपरिपन्थिदुरितक्षयसाधनं पूर्वरङ्गप्रधानाङ्गं मङ्गलश्लोकपाठं तदङ्गभूतं च कथाप्रस्तावनिर्देशं प्रयोगनिपुणेन सूत्रधारेण प्रथममाचरणीयं विभावयंस्तस्य तावत् प्रवेशमाह—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इति । नान्द्या अन्ते इति समासः । नान्दी आनकः, 'दुन्दुभिस्त्वानको भेरी नन्दा नान्द्यपि' इति वैजयन्ती । सा चात्र वाद्यान्तराण्यप्युपलक्षयति । तथा चाभिनेयनाटकीयकथारम्भपूर्वाङ्गभूते

---

( नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश )

सूत्रधारः—

**सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च।**
**यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्॥१॥**

आनवादिवाद्यवादने समाप्त इत्यर्थः पर्यवस्यति। यद्वा—नन्दिरानन्दस्तस्या इव नान्दी–गीतवाद्यवादनादिक्रिया, तस्या अन्ते-उपरमे इत्यर्थः, तदनुष्ठानं च देवतापरिषदादिप्रसादनाय क्रियते। ततः तदुत्तरकालम्, नान्दीसमाप्त्यव्यवहितोत्तरकाल इति तु नार्थः, मध्ये वाद्यादिस्थापनादौ व्यापारान्तरेऽनुष्ठीयमानेऽपि पौर्वापर्याव्याघातात्, अव्यवधानांशस्याविवक्षितत्वात्, तस्वेऽप्यधिकचमत्काराऽनाधानात्। नान्दीलक्षणं साहित्यदर्पणे यथा–'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता' ॥ इति ॥

प्रविश्य सूत्रधारः कर्त्तव्यस्य कर्मणो निर्विघ्नसम्पूर्त्तये मङ्गलं विधत्ते-**सीताभव** इति। सीतायाः स्वनामख्याताया जनकदुहितुर्भवः क्षेमः तत्कारणमित्यर्थः, कार्यकारणयोरभेदोपचारकृत ईदृक्प्रयोगः। सुमन्त्रतुष्टः शोभनेन मन्त्रेण मुदितः। सहलक्ष्मणः-लक्ष्मणसहितः, अथवा भ्रातुरर्थे वनवासतत्परिचरणस्वप्रेयसीवियोगादिक्लेशानां सोढा लक्ष्मणस्तदभिधानो भ्राता यस्येत्यर्थः। विशेषणद्वयमपीदं रामस्य। सुग्रीवरामः—शोभनकण्ठश्चासौ राम इति कर्मधारयः। कर्तृपदमिदम् अनुसर्गम्-सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः, वीप्सायामव्ययीभावः। पातु-रक्षतु अस्मान् युष्मांश्चेति शेषः, तत्रास्मानिति पक्षे प्रयोगसाफल्यप्रदानमनः पालनेनाभिप्रेतम्, युष्मानिति पक्षे च यथामनवनीष्टं फलं दद्यादिति।

उत्तरार्धेन पुनरपि रामं विशिनष्टि-**यो रावणार्यप्रतिम** इति। रावणारिः रावणशत्रुः, न विद्यते प्रतिमा सादृश्यं यस्यासौ अप्रतिमः निरुपम इत्यर्थः। प्रतिमाशब्दस्य प्रसिद्धं मूर्तिवाचकत्वं तथापि-'सरोरुहं तस्य दृशैव निर्जितं जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः! अतद्द्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे' इति नैषधीये सादृश्यपरत्वमपि प्रतीतमिति बोध्यम्। देव्या-सीतया, सहित इति शेषः। विभीषणः रावणानुजः, तस्मिन् आत्माभे स्वसदृशे स्वसमसुखदुःख इति तात्पर्यम्।

सूत्रधार—सीता के आनन्ददाता, अच्छे मन्त्र के पक्षपाती, सुन्दर कण्ठशाली (अथवा सुग्रीव के मित्र), लक्ष्मण के सहचर, सीताहरण द्वारा कृतापराध रावण के निहन्ता, विभीषणाभिन्नहृदय (अथवा शत्रुभयङ्कर) भगवान् राम जन्म जन्म में हमारी तुम्हारी रक्षा करें॥१॥

( नेपथ्याभिमुखमवलोक्य )

आर्ये ! इतस्तावत् ।

( प्रविश्य )

नटी—आर्य ! इयमस्मि ।

अय्य ! इअम्हि ।

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—आर्य ! तथा ।

अय्य ! तह । ( गायति )

---

रतः अनुरक्तः च अस्तीति पदमध्याहार्यम् । अत्र पात्र-सीता राम-हनुमत्-सुग्रीव-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताभिधानानि नाटकीयानि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कारद्वारोपनिबद्धानि । अत्रतिलभटकः प्रतिमाशब्दस्यैकदेशविकृतन्यायमहिम्ना 'प्रतिमा' शब्दं स्मारयन् नाटकस्य नामधेयं प्रतिमानाटकमित्यस्य दैवमतावीमसूतं दशरथप्रतिमावृत्तं चाविष्करोति । इयं च द्वादशपदा नान्दी मङ्गलमाचरत्यत्र बोध्या । स्फुटमभियुक्तैः—'पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत' इति । अत्र पदपदं श्लोकपादं सुबन्ततिङन्तत्वव्यवस्थमाज च मङ्गलादि । अत्र यद्यपि 'समाप्य पुनरागमनात् समानपुनरागते'ति कथितं समाप्तपुनरात्तत्वं प्रतिभासते, तथापि पालनस्य रावणारि-त्वनिर्वाचनात्सम्यादिपदव्याख्यानमनायत्तैवनोच्चिताकाङ्क्षत्वं प्रतिपदपरिहरणीय इतिति बोध्यम् । अत्रेन्द्रवज्रावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' ।

इतस्तावदिति—आगम्यतामिति शेषाध्याहार्यम् ।

इममेवेति—अचिरप्रवृत्तम् । तावदित्यत्र प्रथममित्यर्थः । गीयताम्—गानमारभ्य-तामित्यर्थः ।

'अय्य तह' इति—तथेति वचनैः स्वीकृता, गायतीत्यर्थः ।

---

( नेपथ्य की ओर देखकर )

आर्ये, इधर तो आना ।

( नटी का प्रवेश )

नटी—आर्य, आई तो ।

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के सम्बन्ध में इस समय कुछ गाओ ।

नटी—अच्छी बात, गाती हूँ । ( गाती है )

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

( नेपथ्ये )

आर्य ! आर्य !
अय्य ! अय्य !

( आकर्ण्य )

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

---

अस्मिन्निति—इद चरतीत्यादिना पद्येन सम्बध्यते ।

**चरतीति** । अस्मिन् काले शरत्समये काशांशुः काशपुष्पप्रकाशा, कवासिनी जलनिवासिनी च । सुसहृष्टा अतिमुदिता सती हंसी वरटा पुलिनेषु नदीसैकतस्थलेषु चरति–यथेच्छमितस्ततो भ्रमति । हंसी धवला, शरदि काशविकासात् स्वच्छप्रभेत्यर्थः। एतावतो भागस्य श्रवणात् प्रवृत्तोऽभिनय इत्यस्मभिरपि समवर्तव्यमिति नेपथ्यगतानां पात्राणामितस्ततः सम्भ्रमं सम्भवन्तमुत्प्रेक्ष्याह–नेपथ्ये इति। प्रतीहार्याः प्रवेशाय कृतभूमिकाधारणाया. सम्भ्रमकृता द्विरुक्ति–'आर्य आर्य' इति।

विज्ञातम्—कस्य पात्रस्य वचनमिदमिति मया विदितमित्यर्थः । तस्यैव विदितोक्तेः पात्रविशेषस्य प्रवेशमनुजानान इव सूत्रधारः प्रतीहारीपदगर्भमार्योत्तरार्द्धं पूर्वार्द्धोपात्तहंस्युपादानमुखेनाह—

**मुदितेति** । हंसी अस्मिन् काले चरतीति पूर्वत्र पादेऽभिहितमिदानीं केव कस्मिन्निति वक्तव्यं तदाह–नरेन्द्रभवने दशरथाख्यनरपतेरन्तःपुरे प्रतीहाररक्षी प्रतीहारीद्वाराधिकृतेव। सा कथम्भूतेत्यपेक्षायामाह-मुदिता प्रसन्नान्तरङ्गा,त्वरिताकार्य-

---

सूत्रधार—इस शरत्समय में—

काश के फूलों से धवल प्रकाशवाली, ( अथवा अतिस्वच्छ काशकुसुमों से आच्छादित नदी तीर में रहनेवाली ) हंसी प्रसन्न-चित्त होकर नदीतट पर इस तरह पदसञ्चार कर रही है · · · ।

( नेपथ्य में )

आर्य, आर्य,

सूत्रधार—अच्छा समझ गया ।

जिस तरह ( काशपुष्प-सदृश श्वेत मृदुलवस्त्र पहने ) प्रसन्नहृदया द्वारपालिका शीघ्रतापूर्वक महाराज दशरथ के अन्तःपुर में ( परिभ्रमण करती है ) ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।
अय्य ! को इह कञ्चुईआण सण्णिहिदो ।

---

विघूतत्वेन सञ्जातत्वरा । किञ्चात्रोपमानभूतप्रतीहार्यामपि काशांशुकवासिनीति विशेषणं काशवदंशुकं वस्ते इति विगृह्य योजनीयम् । काशकुसुमवसनयोश्च सूक्ष्मत्वधवलत्वादिकृतं सादृश्यम् । अन्यत् स्पष्टम् ॥ २ ॥

निष्क्रान्ताविति-कथावस्त्वंशस्य स्थापनात् स्थापना*, प्रस्तावनेति पर्यायेणापीयमभिधीयते ।

आर्येति-प्रतीहारी कञ्चुकिनं कञ्चिदाह्वयति, कञ्चुकिनां मध्ये कोऽत्र सन्निहितः ? सन्निहितः—समीपस्थितः । यस्तथा तेनागन्तव्यमिति तदाशयः ।

---

(दोनों का प्रस्थान)

[प्रतीहारी का प्रवेश]

प्रतीहारी—आर्य, कौन कञ्चुकी यहाँ उपस्थित है ?

---

* अत्र गणपतिशास्त्रिणः—

'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत् ।
प्रस्तावना ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ॥' (नाट्यशा० ५)

'वाञ्छाकलापस्तु कवेरभीष्टार्थप्रकाशनम् ।
स्वाभिधेयगतत्वेन सा द्विधा परिपठ्यते ।
स्वगतं तु स्वगोत्रादिस्वीयकीर्तिप्रशंसनम् ।
अभिधेयगतं यत् तत् काव्यनाम्ना प्रकाशनम् ॥' (भावप्र०)

इत्यादिलक्षणशास्त्रविहिता कविकाव्यकीर्तना कालिदासादिनिखिलकविग्रामाचरिताऽत्र स्थापनाप्रकरणे कर्तव्या सती कस्मान्न कृता ? उच्यते—प्रस्तावनायां कविकाव्यकीर्तनसमुदाचारस्तावदस्य पुराणमहाकवेः काले नावर्तत, पश्चात् कालेन कवीनामुपजातं कविकाव्यकीर्तनसमुदाचारप्रणयं भूयिष्ठमुपलभ्य तदनुसारिलक्षणं लक्षणकारैः प्रणीतमित्यदोषः । अस्य तु नाटकस्य मातृकाग्रन्थान्तदृष्टपाठानुसारात् प्रतिमानाटकमिति संज्ञा । श्रीरामे वनाय प्रस्थिते दशरथस्य या दशा सा प्रतिमागृहे तत्प्रतिमा दृष्टवता भरतेनावगतेति प्रतिमाप्रधानत्वादस्य तथा व्यपदेशः । एतत्कवेश्च 'भास' इति नामधेयमनुमितम् । यथा च तदनुमितिसिद्धिस्तत् स्वप्नवासवदत्तोपोद्घाते निरूपितं तत एवावगन्तव्यम् इति ।

( प्रविश्य )

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो
अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो

दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभाव-
दसरहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जप्पहाव

संयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्तामिति ।
सञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति ।

काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् ।
पश्य—

---

किं क्रियताम् इति—अवसरप्राप्तं कार्यमादिश्यतामिति तत्तात्पर्यम् ।

अय्य महाराओ इति—आर्य, इति कञ्चुकिसम्बोधने, महाराजः—दशरथ इति विशेष्यमनतिदूरे देवासुरसंग्रामेषु देवदानवयुद्धेषु अप्रतिहतमनोरथ—अबाधप्रसार-महारथो रथमुख्यो यस्य स तथाभूतो दशरथ आज्ञापयति आदिशति । किमिति जिज्ञासायामाह—शीघ्रमिति । शीघ्रम्-अविलम्बम्, भर्तृदारकस्य—राजकुमारस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका राज्ञः कर्म राज्यं, प्रभाव =कोशदण्डजं तेजः, ताभ्यां संयोगः सम्बन्धस्तस्य कारका सम्पादयितारः अभिषेकसम्भाराः=अभिषेको-पकरणानि आनीयन्ताम्=सज्जीक्रियन्ताम् । अस्मिन् आदेशे राज्यप्रभावसंयोग-कारिका इत्यस्यायमाशयः, इदानीं रामो यौवराज्येऽभिषेक्तव्यः, तस्मिंस्तत्पदमा-श्रितवति तस्य राज्यकर्माधिकृतत्वेन स्वत एव राजकार्यभारः समापन्नो भवति, तेन यौवराज्याभिषेक एव राज्यप्रभावसंयोगकारक इति ।

सङ्कल्पितम् इति—सज्जीकृतमित्यर्थः । सज्जीकृतानि यौवराज्याभिषेकोपकर-णानि गणयितुं तानि नामग्राहमाह—

---

( कञ्चुकी का प्रवेश )

कञ्चुकी—आर्यै, मैं हूँ, आज्ञा दें, क्या कार्य है ?

प्रतीहारी—आर्य, देवासुरयुद्ध में समरविजयी महाराज दशरथ का आदेश है कि शीघ्रातिशीघ्र राजकुमार राम के राजोचितप्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत की जायँ ।

कञ्चुकी—आर्ये, महाराज की आज्ञा के अनुकूल सब कुछ तैयार है । देखिये-

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥३॥

प्रतीहारी—यद्येवं, शोभनं कृतम्।
जइ एव्वं, सोहणं किदं।

छत्रमिति—छत्रं राजधारणीयं श्वेतातपत्रं सव्यजनं वीजनसाधनान्वितं चामरसहितमित्यर्थः। कल्पितमिति शेषः। सनन्दिपटहं—नन्दिरानन्दः तस्य तत्कालोपयुक्तः पटहो—वाद्यविशेषस्तेन सहितं भद्रासनं मङ्गलमयमासनम्, अत्रापि कल्पितमित्यन्वितम्। सदर्भकुसुमाः—दर्भैः कुशैः कुसुमैः पुष्पैश्च सहिताः (तथा) तीर्थस्य गङ्गादितीर्थविशेषस्य तोयं जलं तेन पूर्णा भृतान्तराः हेममयाः सौवर्णाः घटाः कलशाश्च न्यस्ताः समुपस्थापिताः। राजपुत्राणां यौवराज्याभिषेकावसरे तत्तत्तीर्थोपहृतानां जलानामुपयोग इति तत्सम्प्रदायसिद्धम्। पुष्यरथः क्रीडाविहारप्रयोजनो रथविशेषश्च युक्तः योजिताश्वः कृतः, मन्त्रिभिस्तत्तत्कार्याधिकृतैः प्रधानराज्यकर्मचारिभिः सहिताः पौराः पुरवासिनः समभ्यागताः। अभिषेकदर्शनेन निजाक्षीणि सफलयितुमुपस्थिता इति भावः। नैतावद्भिरुपकरणैरेव सर्वं सम्पाद्यमन्तरेण तत्प्रधानदक्षपुरोहितोपस्थितिमित्याशयमन्तर्निधायाह—सर्वस्येति। अस्य पुरोदीरितस्य सर्वस्य वस्तुसमुदायस्य मङ्गलोपकरणकत्वेन प्रसिद्धावपि वसिष्ठसन्निधानेनैव तेषां तत्त्वम् इति भावः। अस्य छत्रादेः सर्वस्य मङ्गलोपकरणस्य मङ्गलं कुशलकारणम् भावप्रधाननिर्देशेन कुशलत्वहेतुरित्यर्थः। वसिष्ठः—तदाख्यया प्रसिद्धः ऋषिः वेद्याम् अनुष्ठानस्थाने स्थितः कर्मोपदेष्टृत्वेन वर्तमान इति भावः। अत्र काव्यलिङ्गं केषाञ्चित्कार्यसाधनसम्पत्तिसमुपस्थितिसूचनेन कार्यावसरं समर्थयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति ॥ ३ ॥

जइ इति—भवदुक्तकार्ये कृते पूरिता आवश्यकतेत्यर्थः।

ये छत्र और चवर हैं, ये माङ्गलिक बाजे और सिंहासन हैं, यहाँ कुश, पुष्प और मङ्गलमय तीर्थजलों से पूर्ण कलश रखे गये हैं, क्रीडारथ जुता खड़ा है, राजमन्त्रियों के साथ सकल पुरजन आ गये हैं, इस समूची आनन्दमयी सृष्टि के प्रवर्तक व भगवान् वसिष्ठ भी वेदी पर विराजमान हैं ॥ ३ ॥

प्रतीहारी—यदि ऐसी बात है तो अति उत्तम।

काञ्चुकीय --हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्या कृताः प्रजाः ।
रामाभिधानं मेदिन्या शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ ४ ॥

प्रतीहारी--त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।
तुरवदु तुरवदु दाणि अय्यो ।

काञ्चुकीय --भवति ! इदं त्वर्यते । ( निष्क्रान्त )

प्रतीहारी--( परिक्रम्यावलोक्य ) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ,
अय्य ! सम्भवअ ! सम्भवअ ! गच्छ,

त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय।
तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोवआरेण तुवरेहि।

( अन्यतो गत्वा ) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा
सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीदसालं गच्छिअ

---

हन्त भो इति--निपातसमुदायोऽयमानन्दव्यञ्जक इति ।

इदानीमिति--इदानीमधुना रामाभिधानं रामनामकं शशाङ्कं शीतलशील-प्रियदर्शनत्वादिना चन्द्रमसं मेदिन्या पृथिव्या धराभारधारणे यौवराज्येऽभिषिञ्चता स्थापयता भूमिपालेन राज्ञा दशरथेन प्रजा अस्मदादय प्रकृतय कृतकृत्या कृतार्था कृता विहिता. । रामयौवराज्याभिषेको हि जनतामनोरथसिद्धिरियं । अत्राभिषिञ्चतेत्यत्र-वर्तमानसामीप्ये लट् तत्स्थाने शतृ । तेन चानुपदमेव भवदभिषेक सम्पत्स्यते ॥

'तुवरदु' इति--अत पर करणीयानामनुष्ठाने क्षिप्रताऽऽदिश्यते ।
यथोपचारेण यथोचितसम्मानपूर्वकम् । त्वरय आगन्तुमनुरुध्यस्व । नाट

---

कञ्चुकी--अहो ! बड़े हर्ष की बात है--

पृथिवी पर के चन्द्र श्रीराम का राज्याभिषेक करके अब महाराज दशरथ ने सचमुच प्रजा को कृतकृत्य कर दिया है ॥ ४ ॥

प्रतीहारी--आर्य, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता ।

कञ्चुकी--आर्ये, यह शीघ्रता कर रहा हूँ ।

प्रतीहारी--(घूमकर और देखकर) आर्य सम्भवक, सम्भवक, जाओ, तुम भी महाराज के आदेशानुसार मान्य पुरोहितमहोदयको यथोचित आदर के साथ शीघ्र बुला लाओ (दूसरी ओर जाकर) ओ सारसिके, सारसिके, सगीतशाला में जाकर अभिनय करनेवालों से कहो कि वे आज एक सामयिक अभिनय दिखाने को तैयार

नाटकीयेभ्यो विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति।
णाडईआण विण्णवेहि—कालसंवादिणा णाडएण सज्जा होह त्ति।
यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।
जाव अहं वि सव्वं किदं ति महाराअस्स णिवेदेमि।

( निष्क्रान्ता। )

( ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा )

अवदातिका—अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या
अहो। अच्चाहिदं। परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए
ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितु-
मम एत्तिअं भअं आसी, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं
मिवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्।
विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं।

---

णोयेभ्यो नाटकप्रयोगाधिकृतेभ्यः कुशीलवेभ्य इत्यर्थः। अत्र कर्मणि षष्ठी चिन्त्या। सज्जा-प्रयोगाय कृतसन्नाहा। निवेदयामि यावत् निवेदयिष्यामि सूचयिष्यामीत्यर्थः। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यति लट्।

अहो-कष्टम्—अत्याहितम् महद्भयमुपस्थितम्। किन्तदिति विवृणोति–'परिहासेन' इति—अवदीयाम्-इतरस्वामिकाम्, अल्पमूल्याम्-अनधिकमूल्याम्, वृक्षस्य च तरुवल्कलं, परिहासेन विनोदपरिहासार्थम्, उपनयन्त्या -गृह्णन्त्या अपि मम एतावत् स्वानुभवैकगोचरप्रमाणं भयं साध्वसं जातं प्रादुर्भूतं चेद्, लोभेन परधनं-परकीयां सम्पदं हरतश्चोरस्य कीदृग् भयं जायेतेत्यर्थः। एतेन कैकेयीकर्तृकरामराज्यापहारकर्थेङ्गितेन सूचिता। हसितव्यमिति स्निग्धजनसंविभक्तं हि सुखमधिकं स्वदत इति द्वितीया-वेषणोचितम्।

---

रहे, मैं तब तक 'सब कुछ तैयार है' ऐसी सूचना महाराज को देती हूँ।

( प्रस्थान )

( वल्कल लिए अवदातिका का प्रवेश )

अवदातिका—ओह! बड़ा बुरा हुआ। विनोद में भी इन वल्कलों को उठा लाने से जब मैं इतना डर गयी हूँ, तो बुरी नीयत से परकीय धन को हरने वालों की क्या दशा होती होगी? हँसने की इच्छा भी हो रही है, परन्तु एकाकी हँसना तो भला न लगेगा।

सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय, निर्यातय ।
उम्मत्तिए ! एव्व दोसो वड्ढइ । गच्छ, णिय्यादेहि, णिय्यादेहि ।

अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । ( प्रस्थातुमिच्छति )
जं भट्टिणी आणवेदि ।

सीता—हला एहि तावत् ।
हला एहि दाव ।

अवदातिका—भट्टिणि ! इयमस्मि ।
भट्टिणि ! इअम्हि ।

सीता—हला ! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते ।
हला ! किण्णु हु मम वि दाव सोहदि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलङ्करोतु भट्टिनी ।
भट्टिणि ! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम । अलङ्करोदु भट्टिणी ।

---

उन्मत्तिके—उन्मादिनि, भ्रान्तचित्ते परिहासार्थमस्मदीयवल्कलादानं न खलु तथ साधु मत्वाऽनुतिष्ठन्ती भ्रान्तमतित्वमात्मनः सूचयतीति यथा सम्बोधिता । परिहासचोर्यमपि लोभमुत्पादयत् परमार्थचौर्ये प्रवर्तकत्वमुपयातीति भावः, निर्यातय-परावर्तय, अत्र द्विरुक्तिः सम्भ्रमसूचनार्था, सम्भ्रमश्च तस्य कार्यस्य त्वरमाणुष्ठानं व्यञ्जयितुम् ।

मम वि इति—मया धार्यमाणमिदं वल्कलं श्रियमावहति न वेति तत्प्रश्नाशय ।
इदम इति—सुरूपं सुभगं स्वभावरमणीयं वपुः शरीरं, सर्वशोभनीयम्—सर्वै सुन्दरताऽऽधानसमर्थ. मतथाविधैर्वा पदार्थैः शोभनीयं शोभयितुमलङ्कर्तुं समर्थम् । सुन्दरी आकृतिः केनापि पदार्थेन भूषयितुं शुक्येति तात्पर्यम् । अनुमोदितश्चायमर्थः कालिदासेनापि—'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' इति ।

---

सीता—पगली, इसी प्रकार बुराई बढ़ती है । जा, लौटा दे, लौटा दे ।
अवदातिका—जो आज्ञा । ( जाना चाहती है )
सीता—अरी ज़रा इधर तो आ ।
अवदातिका—महारानी, आई ।
सीता—सखी, क्या यह वल्कल मुझे भी भला लगेगा ?
अवदातिका-महारानीजी, सुन्दर रूप पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं । आप पहन कर देखें ।

सीता—आनय तावत्। (गृहीत्वालङ्कृत्य) हला! पश्य, किमिदानीं
आणेहि दाव। हला! पस्स, किं दाणिं
शोभते?
सोहदि?

अवदातिका—त्वं खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।
तुवं खु सोहदि णाम। सोवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तम्।

सीता—हञ्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि।
हञ्जे! तुवं किञ्चि ण भणासि।

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि
णत्थि वाआए पओअणं। इमे पहरिसिदा तणूरुहा

---

आणेहि दावत्यादि–इदानीं वल्कलधारणानन्तरम्, शोभत-भासते मम वपुरित्यर्थः। धृतेनानेन वल्कलेन मदीयशरीरकान्तिरधिकीकृता न वेति तदाशय। अथवा धारितेनानेन वल्कलेन मदीयशरीरमलङ्क्रियते स्वशोभा वा मत्कायसम्पर्कवशादतिशय्यते इति प्रश्नाशय। अत्रार्थे सीताया रूपगर्वितत्व प्रतीयते, तद्वर्णनञ्च तादृश्या नायिकाया नोपयुज्यत इति प्रथमार्थ एवादरः। तस्मिन्नाश्रीयमाणे 'किन्नु खलु ममापि तावच्छोभते' इति पूर्वोक्तस्य मम पुनरुक्तिरियमयन पाशारज्जुरियम्।

सौवर्णिकम् इति—सुवर्णनिर्मितमिव। त्वत्कायसम्पर्कमहिम्ना तरुवल्कलमिद सुवर्णनिर्मितमिवावभासत इत्यर्थ।

'ण भणसि' इति–त्वं किञ्चिन्न भणसि, अत्र प्रसङ्गे तवाभिप्रायो नाभिव्यज्यते, तत्र हेतुं न विद्म इति सीताऽभिप्रायः।

'णत्थि' इति—वाचा प्रयोजनम्—वचनस्यावश्यकता 'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' इत्यनुशासनात् निमित्तार्थकप्रयोजनशब्दयोगे वाचेत्यत्र तृतीया। न त्वेव वाचोऽप्रयोजनत्वेऽनुमापकप्रमाणाभाव इत्यपक्षायामाह इमानीति।

---

सीता—अच्छा ला। (लेकर तथा पहन कर) अरी, देख तो अब अच्छा लगता है?

अवदातिका-आपको तो अच्छा लगता है। यह वल्कल तो अब सुवर्णनिर्मित सा प्रतीत होता है।

सीता सखि, तुम कुछ नहीं बोलती।

चेटी—वाणी का प्रयोजन नहीं। ये हमारे रोंगटे सब कह दे रहे हैं।

मन्त्रयन्ते। ( पुलकं दर्शयति )
मन्तेन्ति।

सीता—हञ्जे! आदर्शं तावदानय।
हंजे! आदसअं दाव आणेहि।

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि! अयमादर्शः
जं मट्टिणी आणवेदि। मट्टिणि! अअं आदसओ

सीता—(चेटीमुख विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि ...
चिट्ठदु दाव आदसओ। तुवं किं वि वत्तुकामो विअ

चेटी—भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्। आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणि
मट्टिणि। एवं मए सुदं। अय्यबालाई कञ्चुई भणादि
अभिषेकोऽभिषेक इति।
अहिसेओ अहिसेओ त्ति।

सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति।
को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि।

---

तनूरुहाणि लोमानि प्रहर्षितानि-उद्गतानि। पुलकितानां रोम्णामेव मदन्तर्गतामन्दा नन्दाभिव्यजकत्वमालित्वे तदभिप्राया वागावश्यकतारहितेति भाव.। रोमोद्गमो ह्यानन्दप्रभव., आनन्दश्चात्र वल्कलाहितत्वत्कायशोभातिशयदर्शनजन्मैवेति मम वचनैः तार्थव्याहृतिमात्रतामुपगच्छेदिति कृत्वैवाहमवचना स्थितास्मीति चेट्याशयः।

'चिट्ठदु' इति—आनीतस्य दर्पणस्योपयोगस्तावन्मा कारि, किमपि त्वं विव क्षसि, तदाकर्ण्यैव परत किमपि तदाधारेण निर्धारणीयमिति सीताया आशयः।

को वि इति—दशरथस्य जीवनदशायामत्र राज्ये कस्यापि परिवर्त्तनस्यानावश्यकत्वेनाशङ्कनीयतया कुत्रापि राज्ये कोऽपि कुमार. अभिषेक्ष्यते तदस्माकमत्र ना

---

( रोमाञ्च दिखाती हैं )

सीता—सखि, जरा शीशा तो ला।

चेटी—जो आज्ञा। (जाकर तथा आकर) महारानीजी लीजिये यह दर्पण।

सीता—(सखी के मुँह पर दृष्टि देकर) दर्पण रहने दे। अच्छा पहले यह तो बता—क्या तू कुछ कहना चाहती है?

चेटी—महारानी, हमने ऐसा सुना है। आर्य बालाकि कञ्चुकी कह रहे थे-राजतिलक है, राजतिलक है।

सीता—हो, होगा किसी का राजतिलक।

चेटी—भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।
भट्टिणि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।

सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।
किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ।

चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते ।
भट्टिदारओ किल अहिसिच्चोअदि ।

सीता—अपि तातः कुशली ?
अवि तादो कुसली ।

चेटी—महाराजेनैवाभिषिच्यते ।
महाराएण एव्व अहिसिच्चोअदि ।

सीता—यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् । विशालतरमुत्सङ्गं कुरु ।
जइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं । विसालदर उच्छङ्गं करेहि ।

---

स्येति सीतया औदासीन्याभिव्यंजिका वाचो भङ्गिः ।

प्रियाख्यानिकम् इति—प्रियाख्यानमस्मिन्नस्तीति प्रियाख्यानिकं कर्म शुभ-संवाद इत्यर्थः ।

किम् इति—प्रतीष्य उपलभ्य, किमाधारीकृत्य त्वदीया शुभसंवादश्रावण-प्रवृत्तिरिति भावः ।

भर्तृदारक इति—भर्तुः स्वामिनः दारकः पुत्रः, राजकुमारि इत्यर्थं, तेन चात्र रामो विवक्षित. ।

अवि तादो इति—रामाभिषेक, पितरि जोवत्यसम्भवं मत्वा तत्कुशलप्रश्नो रामाभिषेकसंवादश्रवणेन दत्तावसर इति बोध्यम् ।

दुदीअ इति—दशरथेन रामो राज्येऽभिषिच्यत इत्यनेन दशरथः कुशली,

---

[ दूसरी चेटी का प्रवेश ]

चेटी—महारानीजी, शुभ संवाद है ! शुभ संवाद है !!

सीता—क्या मन में रख कर बोल रही है ?

चेटी—सुना है राजकुमार का अभिषेक हो रहा है ।

सीता—पिताजी सकुशल तो हैं ?

चेटी—महाराज ही तो अभिषेक करा रहे हैं ।

सीता—यदि ऐसी बात है तो मैंने दुहरी सुखावरी सुनी । अपना अंचल फैला ।

चेटी—भट्टिनि ! तथा। ( तथा करोति )
भट्टिणि । तह ।
सीता—( आभरणान्यवमुच्य ददाति )
चेटी—भट्टिनि ! पटहशब्द इव।
भाट्टणि ! पटहसद्दो विअ ।
सीता—स एव।
सो एव्व ।
चेटी—एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः ।
एक्कपदे ओघट्टिओ तुह्णीओ पटहसद्दो संवुत्तो ।
सीता—को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राज कुलानि नाम ।
को णु खु उग्घादो अहिसेअस्य। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअ उलाणि णाम ।

---

रामस्य चाभिषेक इति द्वयमति शुभम् । मे प्रियम्, मया श्रुतमिति व्याख्येयम्। उरसङ्गम्, अञ्चलपटम्, विशालतरम्–परिणाहिनम्, शुभसंवादश्रवणावसरत्वं पारितोषिकग्रहणायाञ्चलप्रसारणं करणीयं शुभद्वयसंवादश्रावणावसरे तु पारितोषिकद्वैगुण्यमुत्प्रेक्ष्य विशालीकरणायादेश. ।

सो एव्व इति—पटहशब्द एवेत्यर्थं । अभिषेकमङ्गलाङ्गभूत. पटहप्रणादः श्रूयत इत्याशयः ।

एक्कपदे इति—एकपदे-सद्यः अवघट्टिततूष्णीकः–आरब्ध–विरतः पटहरवः श्रूयत इति । बहुवृत्तान्तानि–नानाविधकथानि । राजान्तःपुरं हि कतिपयसदः परिवर्तनाकर इति भाव. ।

---

चेटी—जो आज्ञा। ( अंचल फैलाती है )
सीता—( गहने उतार कर देती है )
चेटी—महारानीजी, बाजे की आवाज-सी सुन रही हूँ।
सीता—हाँ, बाजे ही बज रहे हैं।
चेटी—बाजे बजते ही बन्द किये गये।
सीता—अभिषेक मे कौन-सा विघ्न आ पडा? अथवा राजकुल की कथा अनन्त होती है।

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतं—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं
गमिष्यतीति ।

भट्टिणि ! एव्वं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं
गमिस्सदि त्ति ।

सीता—यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम !

जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदओ, मुहोदअं णाम ।

( ततः प्रविशति रामः )

रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतिततोये घटे ।

---

भट्टिनि ! एवमिति—एवञ्च रामाभिषेकावसरप्रयुक्तस्य पटहप्रणादस्य झटिति विरतौ दशरथवनगमनाभिप्रायाकर्णनं कारणं कदाचिदुत्प्रेक्ष्येतेति भावः ।

मुखोदकमिति—रामवनगमनश्रवणप्रवृत्तबाष्पप्रक्षालनार्थमुदकमत्र मुखोदकपदेन विवक्षितमित्यर्थः ।

ततः प्रविशति राम इति—निश्चितप्रतिबद्धराज्याभिषेकस्य वनवासाय राजादिष्टस्य च रामस्य प्रवेशमाह—अनेन ।

हन्त भोः ! इति—हर्षोऽस्य निपातसमुदायस्यार्थः । स च रामस्य पितृनिर्देशपालनावसरलाभजन्योऽत्र ।

आरब्ध इति । पटहे वाद्यभेदे आरब्धे प्रारब्धवादने, गुरुजने वसिष्ठादिगुरुजने स्थिते अभिषेकमंगलावलोकनोत्सुकतया स्थित इत्यर्थः । भद्रासने सिंहासने लङ्घिते आरूढे मयेति शेषः । घटे तीर्थाहृतजलपूर्णकुम्भे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतिततोये स्कन्धोच्चारणेन शिरसि स्नापजने सुकरतासम्पादनाय स्कन्धोर्ध्व-

---

चेटी—महारानी जी, मैंने ऐसा सुना है—राजकुमार को अभिषिक्त कराके महाराज वन चले जायेंगे।

सीता—यदि ऐसी बात हुई तब तो यह अभिषेक-जल आँसू धोने का पानी होगा, अभिषेकजल नहीं।

( राम का प्रवेश )

राम—ओह !

बाजे बजने लग गये, गुरुवर्ग चले आये, मैं सिंहासन पर बैठा दिया गया, मङ्गलमय तीर्थजलों से पूर्ण घटों को उठा-उठाकर उनके द्वारा मैं नहलाया जाने

राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? ॥७॥

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अवदातिका--भट्टिनि ! भर्तृदारक खल्वागच्छति। नापनीतं वल्कलम्
भट्टिणि ! भट्टिदारओ खु आगच्छइ। णावणीदं वक्कलं

---

देशनयनेन नम्यमानं नम्रीक्रियमाणं यद्वदनं मुखं गलविवरः तस्मात् पातोन्मुखसलिले सतीत्यर्थः, मयि मल्लक्षणे जने राज्ञा महाराजेन भद्रासनादवतार्य गच्छेत्यादिष्टे मे मम (अभिषेकार्थमुपस्थापितस्य विना दोषमेवाकस्मात्तया विसृष्टस्यापीत्यर्थः) धैर्येण ... गाम्भीर्येण जनो विस्मितः आश्चर्याख्यं भावमावहन्। न चैतदुचितं तत्र विस्मयकरणीभूतालौकिककार्याभावात्, तदेवाह--स्व इति। यदि स्वः औरसः पुत्र पितुर्वचनं कुरुते प्रतिपालयति तत्र पुत्रकर्तृकपित्राज्ञापालने को विस्मय ? न कोऽपीत्यर्थः तस्य न्यायप्राप्तत्वेन सततमाश्वास्यमानत्वादिति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥७॥

विश्रम्यतामिति--विरम्यताम्-अभिषेकादिति भाव। विसर्जितस्य विसृष्टस्य स्वच्छन्दीकृतस्येति भाव। अपनीतभारोच्छ्वसितम्-अपनीतो दूरीकृतो यो भारो राज्य रक्षणावेक्षणादिकृतस्तेन उच्छ्वसितम्-साश्वासमिव जातमिति योजनीयम्। भारापहारकारणमाह--राम इत्यादिना। अहं पूर्ववद्रामः एव केवलं राम एव, न तु महाराजपदामिलप्य, महाराजः शासनाधिकृतः (पूर्ववत्) महाराज एवेति (स्ववनवासभरताभिषेकयाचनास्वरूपमजानतो रामस्येदमुक्ति सम्भाविनी)।

नापनीतमिति--सुन्दरतममसृणक्षौमयोग्याया भवत्या वल्कलपरिधानमालोक्य

---

लगा, इतना हो जाने पर भी राजा ने मुझे बुलाकर विदा दी। ... मेरी दृढ़ता पर लोग आश्चर्यित रह गये। किन्तु अपना पुत्र यदि पिता की आज्ञा पालता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥ ७ ॥

'पुत्र ? इस समय राज्याभिषेक रहने दो' इस प्रकार खुद महाराज से विदा प्राप्त कर अपने भार को उतरा समझ कर मेरा मन छुटकारे की सांस ले रहा है। परमात्मा ने बड़ी कृपा की, जो मैं वही राम बना रहा और महाराज महाराज ही बने रहे। अच्छा, तबतक चलकर सीता से भेंट करूँ।

अवदातिका—महारानीजी, राजकुमार आ रहे हैं। आपने अभीतक व

राम:—मैथिलि ! किमास्यते ?

सीता—हम् आर्यपुत्र । जयत्वार्यपुत्र. ।
हं अय्यउत्तो जेदु अय्यउत्तो ।

राम·—मैथिलि ! आस्यताम् । ( उपविशति )

सीता—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । ( उपविशति )
ज अय्यउत्तो आणवेदि ।

अवदातिका—भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेष । अलीकमिवैतद् भवेत् ।
भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे ।

सीता—तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।
तादिसो जणो अलिअं ण मन्तेदि । अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।

---

म· कदाचिन्मानमस्य वा कश्चन भावमुत्प्रक्षेत, ततोऽनुचितं स्यादिति तदाशय· ।

आस्यतामिति—आगतमात्रस्य रामस्य 'मैथिलि किमास्यते' इति प्रश्नः पुन· राम 'आस्यताम्' इत्यादेश विचारयतः 'सीता रामागमने प्रत्युत्थानाय स्वासनं वहाय स्थिते'ति स्पष्टमवभासते, तदय सीतायाश्चारित्र्यविशेष उपनिबद्धो वेदितव्यः।

अलीकमिति—अलीकम् अनृतम् रामाभिषेकवृत्तमसत्यम्, रामवेषस्यापरिवर्त्तनात् इति तदाशयः ।

तादृश इति—विश्वासपात्रतया राजकुले समाद्रियमाण. ।

---

नहीं उतारा ?

राम—मैथिली, बैठी क्या हो ?

सीता—पें, आर्यपुत्र हैं ? जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—मैथिली, बैठो । ( बैठते हैं )

सीता—जो आज्ञा । ( बैठती हैं )

अवदातिका—महारानी, राजकुमार का वेश तो अभी भी वही है । यह बात झूठी-सी मालूम पड़ती है ।

सीता—वैसे आदमी झूठी खबर नहीं फैलाते । अथवा राजकुल में बहुत-सी घटनायें होती रहती हैं ।

रामः—मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ।

सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति।
ण खु किंचि । इयं दारिआ भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।

रामः—अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । श्रूयताम् । अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र ! राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः ।

सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम् ?
तदाणि अय्यउत्तेण किं भणिदं ?

राम.—मैथिलि ! त्वं तावत् किं तर्कयसि ?

सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य
तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किंचि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स

---

अवगच्छामीति—कौतूहलम् अभिषेकवृत्तान्तश्रवणोत्कण्ठाम् । उपाध्यायाः वसिष्ठादयो विद्यायशस्विनः, अमात्याः सुमन्त्रादयो मन्त्रिणः, प्रकृतयः-प्रजामुख्या पौराश्च, तेषां समक्षं तेषु शृण्वत्सु, एकप्रकारसंक्षिप्तम्—एकेन प्रकारेण संक्षिप्तं मेलितम्, सकलार्थक्रोडीकरणेऽपि शब्दलाघवकृतं संक्षिप्तत्वमत्र बोध्यम् । कोसलराज्यम्-स्वाधिकारवर्ति समग्र राज्यम्, न तु कमपि भागमेकम्, मातृगोत्रम्-जननीनाम, आभाष्य उच्चार्य कौसल्यानन्दनेत्यदीर्येति भावः ।

तर्कयसीति—अनासादितराज्यभारो यथेच्छ पितृचरणपरिचर्यामाचरामि तस्मा

---

राम—मैथिली, यह क्या कहती है ?

सीता—कुछ नहीं । यह लड़की अभिषेक-अभिषेक कह रही थी ।

राम—तुम्हारी उत्सुकता समझता हूँ । हाँ सचमुच आज अभिषेक था । सुनो । आज पिताजी ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित, पुरवासीगण—सभी की उपस्थिति में एक प्रकार से छोटा-सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से परिचित अपने अङ्क में बैठाकर बड़ी ममता से 'कौसल्यानन्दन' नाम से पुचकार कर कहा—बेटा, यह राज्यभार स्वीकार करो ।

सीता—इस पर आपने क्या उत्तर दिया ?

राम—मैथिली, तुम्हीं बताओ, तुम क्या अनुमान करती हो ?

सीता—मेरा तो यही अनुमान है कि उस समय आर्यपुत्र कुछ भी मुँह से कहे

राम—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता—ततस्ततः।

तदो तदो।

राम—ततस्तदानीं,

> शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
> छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
> सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
> राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥ ७ ॥

---

तत इति—ततः बाष्पराविलनयनयोरावयोर्जातयोरनुनयेषु राज्यं ग्राहयितुं महाराजेन विहितेष्वनुरोधेषु मया अप्रतिगृह्यमाणेषु अनभ्युपगम्यमानेषु सत्सु आपन्नजरादोषैः आसादितवार्द्धक्यैः स्वैः प्राणैः शापितः उपालब्धः अस्मि, महाराजेनेति शेषः। यदि जरसाभ्युपेतस्य पितुर्मम प्राणान् रिरक्षिषसि तर्हि राज्यं गृहाणेत्यागृहीतोऽहं महाराजेनेति भावः।

तदानीमिति—अप्रतिपत्तिमूढतादशायामेवावयोरित्यर्थः।

शत्रुघ्नेति—शत्रुघ्नो लक्ष्मणकनिष्ठः लक्ष्मणश्च ताभ्यां गृहीतः करधृतः घटः तीर्थाहृतजलकलशो यस्य तस्मिंस्तथाभूते (अभिषेके) छत्रे श्वेतातपत्ररूपे राजचिह्ने रुदता आनन्दाश्रुविमुञ्चता नृपतिना स्वयम् आत्मना गृहीते सति, प्रवृत्तेऽभिषेककर्मणि इति भावः। सम्भ्रान्ततया त्वरया समुपसर्पन्त्या मन्थरया तदाख्यया कैकेयीपरिचारिकया राज्ञो महाराजदशरथस्य कर्णे किमपि जनान्तरेणाश्राव्यं यथा भवति तथा शनैरभिहितं निवेदितं च अहं राजा नास्मि न भवामि च। तदभिधानमात्रप्रतिबद्धराजभावोऽभूवमन्यथा सर्वाऽपि मदभिषेकसामग्री प्रस्तुता प्रवृत्तोपयोगा चासीदिति भावः। चकारद्वयेन मन्थरोक्तिमद्राजभावयोः प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावः सम्बन्धो व्यक्तमुक्तः। वसन्ततिलका वृत्तम्—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग' इति तल्लक्षणम् ॥ ७ ॥

---

राम—इसके बाद जब मैंने प्रत्येक अनुनय को अस्वीकार कर दिया, तब उन्होंने अपने जीर्ण-शीर्ण प्राणों की शपथ दी।

सीता—तब फिर?

राम—तब—

शत्रुघ्न और लक्ष्मणने तीर्थजल के घड़े को थामा, रोते हुए महाराज ने स्वतः छत्र संभाला (और इस प्रकार अभिषेक का कार्यारम्भ हुआ)। इतने में ही हाँफती हुई मंथरा ने आकर राजाके कानोंमें धीरेसे कुछ कहा और मैं राजा नहीं हुआ।

सीता—प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः।—
पिअं मे। महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो।

राम —मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

सीता—न खलु तावदाबध्नामि।
ण हु दाव आबज्झामि।

राम —न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथा हि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस सितामरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत्॥ ८॥

---

प्रियं मे इति—महाराज एव महाराज, न तु महाराजत्वाद्भ्रंशित इति, आर्यपुत्र आर्यपुत्र एव, न तु राजत्वसम्बन्धाद्न्याहृतत्वेन तस्य कियद्दीनापि स्नेहन्यूनीभावाशङ्केति भाव।

विमुक्तालङ्करणा—अवतारिताभरणा।

आबध्नामि—न विमुञ्चामि, सार्वदिको नायमलङ्कारत्यागो मम, किन्तु कियत्कालव्यापीति तदाशय.।

प्रत्यग्रावतारितै—अचिरपरित्यक्तै, द्वित्रिक्षणपूर्वमेव भूषणानां परित्यागस्त्वया विहितोऽत्र किमपि कारणमत्र स्यादिति रामस्याशय.।

भूषणानामचिरपरित्यक्तत्वसूचकप्रमाणानि प्रतिपादयति- कर्णौ त्वरेत्यादिना कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ त्वरया शीघ्रतया अपहृतभूषणौ अपसारितालङ्कारावत एव भुग्नौ वक्रतां गत. पाशः ग्रन्थिबन्धमानो भूषणधारणाधारभागो ययोस्तादृशौ, शीघ्रमपनीतभूषणे श्रवणे तदपगमकृत भुग्नत्वमधुनाऽप्युपलभ्यत इति तदपगमकार्यस्यानतिचिरनिर्वृत्तता विभाव्यताम.। हस्तौ बाहू च संस सितामरणगौरतलौ सद्य सितामरणौ

---

सीता—अच्छा हुआ, महाराज, महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे।

राम—सीते, गहने क्यों उतार डाले?

सीता—नहीं, नहीं, पहना करती हूँ।

राम—नहीं तो, पहनती तो हो, गहने अभी के उतारे जान पड़ते हैं, क्योंकि—शीघ्रता में आभूषण उतारने के कारण कानों के छेद अभी भी कुछ नीचे की ओर झुके हुए हैं, हस्ताभरण उतारने के कारण दबाव पड़ने से हथेलियों का वर्ण

सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम्।
पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं।

राम.—तेन हि अलङ्क्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा ? ॥ ९ ॥

---

दूरीकृतालङ्करणो अत एव गौरतलो कटकादिभूपणसंसनसम्भव बाहुभागगौरत्वमघुनापि विद्यमानं भूषणापगमस्यानतिचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति। गात्रे वपुषि आभरणभारनतानि भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि स्थानानि समताम् आगन्तुकनतत्वपरिहारेण स्वभावावस्थितिं भूषणावतारणोत्तरकालदीर्घलभ्यां नैव उपयान्ति नैव प्राप्नुवन्ति, एवं भूषणानि नातिपूर्वमपसारितवत्यसि यतस्तव भूषणभारनम्रीभूततत्स्थानसमताप्राप्तिपर्याप्तोऽपि कालो न व्यतीत इति स्वभावोक्तिः। पूर्वोक्तमेव। वृत्तम् ॥ ८ ॥

पारेदि इति—आर्यपुत्रोऽसत्यमपि वस्तु सत्यमिव वर्णयितुं शक्तः, सत्यभूतस्य वस्तुनो यथावद् वर्णनं तु तवातीव सुखेन साध्यमिति सीताया आशयः।

तिष्ठ—आदर्शाभिमुखी सती निश्चला तिष्ठेति भावः।

आदर्शे इति। आदर्शे दर्पणे वल्कलानीव वल्कलानि त्वया धृतानीव प्रतिभान्त इत्यर्थः, प्रतिभानसाम्यादाशङ्कते—एते सूर्यरश्मयः भास्कराकिरणानि किम् ? विशेषदर्शनेन निर्णयमधिगम्याह—तव हसितेन हासेन परिज्ञातम् अवगतम्, सूर्यरश्मितया सन्दिह्यमानं वस्तु वल्कलत्वेन निश्चितमित्यर्थः। वल्कलनिर्णयेनैव पृच्छति—क्रीडेयं नियमस्पृहेति। इयं प्रत्यक्षदृश्या तव नियमस्पृहा नियमिजनधार्यवल्कलधारणाभिलाषः तव क्रीडा अथवा वास्तविकनियमस्पृहेति प्रश्नकाकुः ॥ ९ ॥

---

अभी भी पूर्वानुरूप नहीं हो पाया है और आभूषण के भार से अवनत तुम्हारे अवयव अभी तक स्वाभाविक दशा को नहीं प्राप्त कर सके हैं ॥ ८ ॥

सीता—आप असत्य को सत्य साबित कर सकते हैं।

राम—जाने दो, तुम गहने पहनो, मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर) ठहरो।

दर्पण में यह कुछ वल्कल-सा मालूम पड़ता है। कहीं ये सूर्य की किरणें तो नहीं हैं। अच्छा, तुम्हारी हँसी ने सारा रहस्य बता दिया। ठीक-ठीक कहो, तपस्विजनोचित यह वल्कल क्या तुमने केवल हँसी-खेल में पहने हैं, अथवा साधना करने का ही विचार है ? ॥ ९ ॥

अवदातिके ! किमेतत् ?

अवदातिका—भर्तः ! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेनाऽऽ-
मृष्टा ! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण
मट्टा !

सावज्ञा ।

राम—मैथिलि ! किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते ।
अस्त्यस्माकं प्रीतिः । आनय ।

सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु ।
मा खु मा खु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु ।

---

सीतामुदासीनवदासीनमनुत्तरयन्तीमालोक्य तत्सखीमवदातिकामनुयुङ्क्ते—किमेतदिति । एतत्सीताकर्तृकवल्कलधारणं किम्निमित्तकमिति प्रश्नः ।

भर्त: इति—नैव सीताया नियमस्पृहा, किन्तु शोभते न वा शोभते इति परीक्षामात्रप्रयोजनेयं वल्कलधारणेति तदाशयः ।

किमिदमिति त्वया क्रियमाणमिदं वल्कलधारणमयुक्तमित्यर्थः । अयुक्तत्वे कारणमाह—इक्ष्वाकूणामिति । इक्ष्वाकूणामिक्ष्वाकुवंश्यानां वृद्धालङ्कारो वार्धक्यकार्योऽलङ्कारो वल्कलं त्वया धार्यते, इक्ष्वाकवो हि वृद्धाः सन्तः पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकाः वानप्रस्थे कृतमतयो वल्कलं परिदधन्ति । इक्ष्वाकुपदं रामवंशे पुरा प्रादुर्भूतस्य राज्ञो वाचकम्, तत्सम्बन्धादेव तद्वंशजानाम्, तथा च प्रयुक्तं कालिदासेन—'इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वाम्' इति, अन्यत्रापि—'पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिः धृतम्' इति । प्रीतिः वल्कलधारणाभिलाषः, आनय वल्कलं मह्यं देहीत्यर्थः ।

'मा खलु' इति—भवद्युक्तो वल्कलग्रहणानुरोधो नितरामयुक्तः अमङ्गलपरत्वादिति सीताऽऽशयः ।

---

अवदातिके, क्या बात है ?

अवदातिका—'भले लगते हैं या नहीं ?' यही देखने के लिये केवल विनोद में यह वल्कल पहना गया है ।

राम—मैथिलि, क्या बात है ? तुम इक्ष्वाकुओं के वृद्धावस्था के अलङ्कार वल्कल इसी उम्र में पहने हुई हो । मैं भी पहनना चाहता हूँ । लाओ तो ।

सीता—नहीं, आप ऐसा अमङ्गल मुँह से न निकालें ।

रामः—मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता—उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति !

(उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि ।)

रामः—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

---

वारयसि वल्कलग्रहणप्रार्थनां प्रतिषेधसि ।

उज्झितराज्याभिषेकस्य—परित्यक्त राज्याभिषेकस्य । अयमाशयः—आरब्धाभिषेकपरित्याग एव तावदेकममङ्गलं, वनवासिजनोपयुक्तं वल्कलस्याचनमिदं क्रियमाणं 'वनवासपरिक्लेशोऽपि ते भावी'ति सूचयदिदं मे द्वितीयामङ्गलभावेन भासत इत्यर्थः ।

**मा स्वयमिति**—मम परिहासे स्वदुपयुक्तवल्कलयाचनात्मके विशेषतो विशेषेण स्वयम् आत्मनैव मन्यु दुःखं मा उत्पाद्य अलं विधाय । विनोदवशाद् मया भवत्या परिहितस्य वल्कलस्य याचने विधीयमाने तवो माविनोऽमङ्गलस्याशङ्कया मा क्लिष्टा इत्यर्थः । खेदाभावे कारणमुपन्यस्यति—शरीरार्धेनेति । यदा त्वया मे मम रामस्य शरीरार्धेन देहार्धभागभूतेन जायात्वरूपेण अर्धाङ्गिनीत्वयं, पूर्वं मदावनादनन्तरः प्रागेव वल्कला आबद्धा शरीरशोभार्थमुपयुक्ताः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी' इति हि श्रूयते । त्वं च वल्कलं दधाना सती ममापि वल्कलधारणं विहितवत्येवासि, तदधुना मया धृतेऽपि वल्कले न किमपि हीयते इति वृथैव ते खेद इति भावः । अत्र 'मा उत्पाद्ये'ति कथा चिन्त्यः ॥ १० ॥

हा हा इति—हा इति खेदे । सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । हा महाराज. खेदविषयो दशरथः, शोच्या दशामनुप्रपन्न इति यावत् ।

---

राम—मैथिलि, किस लिये रोक रही हो ?

सीता—अभी-अभी आपका अभिषेक होते-होते रुक गया है । इससे आपका वल्कलधारण मुझे अमङ्गल-सा लगता है ।

राम—खुद अमङ्गलकी आशङ्का मत करो, विशेषतः विनोदमें। जब मेरी अर्धाङ्गिनी होकर तुमने पहले ही वल्कल पहन लिये, तो समझो मैंने भी पहन लिया।१०।

(नेपथ्य में)

हाय ! हाय ! महाराज !!!

सीता—आर्यपुत्र ! किमेतत् ?
अय्यउत्त ! किं एद ?

रामः—( आकर्ण्य )

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

( प्रविश्य )

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः ।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

काञ्चुकीयः—महाराजः ।

---

किमेतदिति—किमिदं महाराजकोलाहलमसमये समापतितमिति सीतायाः व्याकुलोक्तिः ।

नारीणामिति—यदा नारीणां वनितानां पुरुषाणां च निर्मर्यादः सीमानमति-क्रान्तः ध्वनिः खेदप्रकाशकः ममयः शब्दः, (तदा) सुव्यक्तं सुस्पष्टमेव कारणमस्य कलकलस्येति भावः । सुस्पष्टमेव कारणमेवोपन्यस्यन्नाह—प्रभवामीति । दैवेन भाग्येन प्रभवामीति—'सर्वसामर्थ्यशाली भवामि' इति द्योतयितुं मूले प्रधान-स्थाने महाराजरूपे ताडितं प्रहृतम्, न तु शाखायां स्कन्धे वा कृतः प्रहार इति । दैवो ह्यपूर्वविक्रमाक्रान्ता प्रजानां महाराजविपत्तिरियं न कारणान्तरजनितेति तात्पर्यम् । एतेन महाराजविपत्तिसम्भावनया रामस्य खेदः प्रकटीकृतः ॥ ११ ॥

महाराजः दशरथः परित्रातव्य इति शेषः ।

---

सीता—आर्यपुत्र, यह क्या हुआ ?

राम—( सुनकर ) जो यह नर नारियों का जोरों से कोलाहल सुनाई पड़ रहा है, इससे ज्ञात होता है कि काल ने अपनी सर्वसामर्थ्यशालिता के बल पर मूल में प्रहार किया है ॥ ११ ॥

शीघ्र कोलाहल के कारण का पता लगाओ ।

( प्रवेश कर )

कञ्चुकी—कुमार, रक्षा करें ।

राम—किसकी रक्षा ?

कञ्चुकी—महाराज की ।

रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ।

काञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतिकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ? ॥ १२ ॥

---

नन्विति—महाराजः परित्रातव्य इत्यभिधानेन महाराजस्य विपद्ग्रस्तताऽनुमीयते, तथा च सकलाया धरण्या रक्षणाय क्षममाणस्य महाराजस्य विपद्ग्रस्तत्वे तत्परिपालितायाः पृथिव्या अपि विपदुपनिपातस्तत्ताऽव्यवस्थाग्रामत्वे तत्पालनायापि प्रयत्नः करणीय इति रामस्याशयः । एकशरीरसंक्षिप्ता–एकस्मिन् शरीरे महाराजरूपे संक्षिप्ता तत्पाल्यतया तदन्तर्भूतत्वेन स्थिता पृथिवी धरणी भूमिः रक्षितव्येति । अयं दोषः महाराजस्य विपत्प्राप्तिरूपो दोषः ।

स्वजनात्—आत्मीयात्, परिजनात् इत्यर्थः । आत्मीयजनेनैव जनितोऽयं दोष इत्यर्थः ।

स्वजनादितीति—आत्मीयजनाचरिते दोषे कोऽपि प्रतिकारो नास्ति, परेणापकृते तन्मारणेन तद्वारणेन वा प्रतिक्रियते, स्वजने तु न तेऽभ्युपायाः, तेषां दमने आत्मीयदमनेन पुनः खेदावसरोपनिपातात् ।

शरीरे इति—अरिः शत्रुः शरीरे काये प्रहरति ताडयति, स्वजनः हृदये अन्तर्मर्मणि प्रहरति इति । शरीरप्रहाराच्च हृदयप्रहारो दुःसहतर इति हार्दिकमात्मीयकृतमाघातं सोढुमक्षमस्य महाराजदशरथस्य विपत्प्राप्तिरतीव सम्भाविनीति भावः । येन महाराजस्येयं विपत्प्राप्तिरुपपादिता, कतमोऽसौ परिजनः ? तं परिजनेषु गणयितुं वाध्यस्य मम लज्जावनतं शिरो भवेत्, जघन्यकार्यविधानदुर्ललितस्य सम्पर्को हि साधुजनं ह्रेपयतीति भावनयेयमुक्तिः । स्वजनशब्दाभिधेयेषु बहुषु कतमोऽसौ यस्य

---

राम—महाराज की ? तब यही कहिये कि एक शरीर में संक्षेप में वर्त्तमान समूची पृथ्वी का पालन करना है । अच्छा, यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी ?

कञ्चुकी—आत्मीय जन से ही ।

राम—क्या आत्मीय जन से ? तब तो इसका प्रतीकार भी नहीं किया जासकता। बाहरी शत्रु केवल देह पर आघात करता है, किन्तु स्वजन मर्मस्थान पर ही आघात करते हैं । न जाने इस विपत्तिमें कौन स्वजन निमित्तहुए हैं? जिनकी याद

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।

रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः—कथमिव ?

रामः—श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥१३॥

---

'स्वजन.' इत्यय शब्दो मम एक्षो ह्लियम् उत्पादयिष्यति ॥ १२ ॥

किमम्बाया इति—किमत्र स्वजनशब्दः अम्बा मातरं कैकेयीं विषयीकरोति ? इति प्रश्नाशयः । यद्येवं तर्हि नासौ दोषः तस्याः, एतादृशाचरणप्रवृत्तेरलीकत्वात् । केनापि कारणविशेषेण तयाऽनुष्ठानेऽपि ■प्रति दोषत्वेन प्रतीयमानस्यास्य विपदुपनिपातस्य परिणामगुणप्रदत्वादिति तात्पर्यम् । उदर्केण उत्तरफलेन, गुणेन हितकरेण ।

कथमिति—सम्प्रति स्वतस्त्वेन, प्रतीतस्य कालान्तरेऽपि यथा विना कमपि यत्न सदा भावेनैवोपलभ्यमानता, तथाऽम्बया विहितस्य दोषस्यापि सदा दोषत्वमेव लभ्यं न गुणत्वमिति त्वयोच्यमानमुदर्के गुणत्व केन प्रकारेण शक्योपपादनमिति पृच्छति 'कथमिति' ।

पूर्वोक्तां शङ्कां परिहरति—श्रूयतामिति । यथोक्तो कारणमाकर्ण्यतामिति भावः । यस्या इति—यस्याः कैकेय्या भर्ता स्वामी शक्रसमः इन्द्रतुल्यः, परमैश्वर्यशालित्वेन मानुषसामर्थ्यासाध्यमपि साधयितुमलमित्यर्थः. न केवलमेतावदेव, किन्तु सा सुपुत्रापि, तदाह—या च मया पुत्रवती सेत्यर्थः । मया पुत्रवतीत्यत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति वार्तिकेनाभेदे तृतीया यान्वेन पतवानित्यत्र यथा । तस्या. इन्द्रसमस्वामिना सनाथायाः मया च पुत्रवत्याः कस्मिन् फले स्पृहा अभिलाषः, येन लब्धुमिष्यमाणेन फलेन हेतुभूतेन अकार्यम्—दशरथव्यसनापादनरूपम्

---

मेरे लिये लज्जाकर होगी ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—महारानी कैकेयी की ।

राम—क्या क्या ? मेरी माताजी की ? तब तो अवश्य ही इसका परिणाम भला होगा ।

राम—सुनिये—

जिसके पतिदेव इन्द्र के समान हों और मैं जिसका पुत्र होऊँ, भला उसे क्या

काञ्चुकीय.—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् ।
तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र ।

काञ्चुकीय.—कथमिव ?

राम.—श्रूयताम् ,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।

---

अकर्त्तव्य करिष्यति विधास्यति । तदेव तु फल न विभावयामि, मद्राज्याऽह वा तदनुरोधेन साधयितु न क्षमेय, चात्र केनापि महता कारणेन भवितव्यमिति भाव । तथा चास्य दोषस्य परिणामे गुणत्वं पूर्वोक्तं पुष्यति ॥ १३ ॥

उपेति—उपहतासु नष्टासु स्वभावकुटिलासु इत्यर्थ , स्त्रीबुद्धिषु वनिताजनमतिषु, स्वबुद्धिगत निजमतिसम्बन्धि, उपनिक्षेप्तुम् आरोपयितुम्, अल नोपयुज्यत इत्यर्थः । यथा तव मतिरतिसरला तथा स्त्रीबुद्धिरपि मा मंस्था इत्याशय । कैकेयीबुद्धेः कुटिलत्वं निर्धारयितुमाह—तस्या एवेति । एतेन च स्त्रीसामान्यबुद्धेरसरलता प्रतिज्ञा स्थापिता । अत्रोपनिक्षेप्तुमलम्, इत्यत्र तुमुन्प्रत्ययोपपत्तिरपाणिनीया, एतादृशस्थले क्त्वाप्रत्ययस्यौचित्यात् 'अल खल्वो: प्रतिषेधयो. प्राचा क्त्वा' इत्यनुशासनादिति ।

गुणान् गणयति—वनगमनेति । तावत् प्रथम पार्थिवस्य महाराजस्य एव वनगमनात् मद्राज्याभिषेकात् परतः कर्त्तव्यत्वेनापतितात् अध्यवसितादित्यर्थः, निवृत्तिरित्येको गुण', मम रामस्य पितृपरवत्ता पितृपारतन्त्र्यलक्षणमन्वारध्य सर्वथाऽभिलषितमिति स एव चरानुवृत्तः बालभावः शिशुभाव इति चेति द्वितीयतृतीयौ [illegible] गुणौ । प्रजाना नवनृपतिविमर्दो नूतनराजकर्तृके राज्यभारनिर्वहणे विषये शङ्काविचिकित्सा नास्तीति च चतुर्थो गुणः । अथ च किञ्च मे मम भ्रातरो भरतादय.

---

कामना हो सकती है ? जिसके लिये वे ऐसा बुरा कार्य करेंगी ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—कुमार, स्वभावतः मारी गई नारीबुद्धि पर अपने सीधेपन का आरोप न करें। उसीके रोकने से तो आपका अभिषेक होते-होते रुक गया।

राम—आर्य, इसमें अवश्य बहुत-सी भलाइयाँ हैं।

कञ्चुकी—सो कैसे ?

महाराजका वन जाना रुक गया, मैं पिता की छत्र-छाया में बाल की तरह रह

नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ १४ ॥

काञ्चुकीय —अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। अत्राप्यलोभः ?

राम—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते । कुतः,

---

परिभोगै. राजकुमारतादशालभ्यैर्भोग्यानुभवै. वञ्चिता रहिता न भवन्तीति पञ्चमो गुण. । अयमाशयः—राज्याभिषेके प्रतिबध्यमाने आपाततोऽध्यवसितविघातलक्षणो दोषोऽप्यसौ, पर यदह राजा न क्रियेय, महाराज एव यथापूर्वं राज्यधुरा दधीत, अस्यामवस्थायां पञ्च गुणा.—राजा वनगमनक्लेशान्निवारितो भवति इत्येकः, मम पितृपादकल्पतरुच्छायावाससुखसौलभ्यमिति द्वितीय., राज्यभारानधिगत्य यथासुखमिवातिव्यवस्थावासिश्च ममेति तृतीय', प्रजाना नवनिर्वाचितोऽयं राजाऽसाधु साधु वा स्व कर्तव्य पालयेदिति कातरभावेन चिन्तनान्मुक्तिरिति चतुर्थ', पितृपादेषु शासनाधिष्ठितेषु तत्पुत्रतया समेऽपि राजकुमारा असाधारणसुखभाज., भ्रातरमपि तथाभूतं तु स्वयमागमनाधिकारशालिनस्ते स्युरिति पञ्चमो गुण. । तदेवं मध्यमाग्वाऽध्यवसायो गुणगुम्फित इति । गणपतिशास्त्रिणस्तु चरमचरणस्य 'भ्रातरो भरतादय. परिभोगैर्महाजनाभवनालभ्यैर्भोग्यानुभवैः वञ्चिता अकृतसविभागा न भवन्तीति । मे मया तृतीयार्थेऽव्ययमिदम्' इत्यर्थमाहु' । मालिनीवृत्तम्—'ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै' इति तल्लक्षणम् ॥ १४ ॥

न केवलमेतावदेव तयोपहृतं, यत्स्वं राज्यान्निवर्तित , इत्थ हि सति कदाचित्वदुक्तदिशा तदलोभताऽपि समर्थिता सति चेतसि पदमादध्यात्, किन्तु लोभाकृष्टचेतस्कतया भरताभिषेकमपि याचितो महाराज इत्याह—अथ चेति ।

अस्मत्पक्षपातात् अस्मासु स्नेहातिशयात् । अर्थं वस्तुतत्त्वं, नावेक्षते न गणयति स्वोक्तार्थेऽनवधानस्य काञ्चुकीयस्य रामपक्षपातादेव वस्तुतत्त्वानवबोधो रामाशय ।

---

गया, प्रजाओंका 'नया राजा कैसा होगा ?' इस आशङ्का से पिण्ड छूटा और मेरे भाई भी राज्यसुखोपभोग से वञ्चित नहीं हुए ॥ १४ ॥

कञ्चुकी—इस पर भी उसने विना बुलाए ही महाराज के पास जाकर 'भरत को राजतिलक हो', ऐसा कहा, क्या इसमें भी उसका लोभ नहीं झलकता ?

राम—आर्य, हमारी ओर अधिक झुकाव होने के कारण आप वास्तविकता की ओर नहीं देखते । क्योंकि,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्य लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥ १५ ॥

काञ्चुकीयः—अथ ।

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः ।

कैकेय्या अलोभतामेव समर्थयति—शुल्के इति । शुल्के विवाहसमये कन्यार्थे विपणितं विशेषेण पणीकृतं सम्भावितं राज्यं पुत्रार्थे यस्याः पाणिग्रहणावसर एव 'योऽस्याः पुत्रो भवेत् स एव राज्यमधिकुर्यादि'ति पणः कृतस्तदौरसपुत्रकृते यदि राज्यं याच्यते प्रार्थ्यते, अत्र पूर्वपणीकृतराज्ययाचने तस्याः मध्यमाम्बायाः लोभः अविवेककारित्वम्, भ्रातृराज्यापहारिणां भ्रातुर्भरतस्य राज्यं पित्रा पणीकृत्य दातुं प्रतिज्ञातं ततश्चैव स्वभूतं हृतं स्वायत्तीकृतं शीलं येषां तेषां परराज्यगृध्नूनां नः अस्माकं लोभो न समर्थ्यते प्रतिपाद्यत इति आर्यस्य पक्षपातमेवास्मासु विजृम्भमाणमुत्प्रेक्षामहे कारणमिति भावः ॥ १५ ॥

कैकेय्या दोषान्तरमभिधातुमुपक्रमते—अथेति ।

अतः परमिति—दोषान्तराभिधानाय यतमानं काञ्चुकीयं निवारयितुमिच्छामि न श्रोतुमिच्छामीति । गुरुजनपरिवादश्रवणस्यावमंजनकत्वस्य स्मृत्युक्तत्वादिति ।

तत इति—ततो भरताभिषेकप्रार्थनानन्तरम्, तदानीम् इत्युत्तरान्वयि ।

शोकादिति—राज्ञा महाराजदशरथेन शोकात् कैकेयीयाचनजनिताद् विषादात् अवचनात् वचनं विनैव किमप्यनुक्त्वैवेत्यर्थः । तत्र कारणं च शोकाभिभूतत्वम् ।

विवाहावसर में प्रतिज्ञात राज्य यदि पुत्र के लिये माँगा जाता है तो इसमें उसका लोभ है, और भाई के राज्याधिकार के हरण करने वाले हम लोगों की निर्लोभता ही रही ॥ १५ ॥

कञ्चुकी—और—

राम—इससे अधिक और माँ की निन्दा नहीं सुनना चाहता हूँ । पहले महाराज का समाचार बताइए ।

कञ्चुकी—तब उसी समय—

शोक के कारण महाराज ने मौन हो हाथ के इशारे से ही मुझे कैकेयी के विचार

किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥ १६ ॥

राम.—कथं मोहमुपगतः ?

( नेपथ्ये )

कथं कथं मोहमुपगत इति ?

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

रामः—( आकर्ण्य पुरतो विलोक्य )

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः।

---

हस्तेन गद्गदकण्ठतया विसंज्ञप्रायतया च करचेष्टयैव ( अहम् ) विसर्जितः, गच्छ कैकेयीचरितं रामभद्राय आख्याहीति गन्तुमनुज्ञातः । न केवलं वाक्शक्तिविरह एव राज्ञ, किन्तु सर्वेन्द्रियलोपप्रमुखो मोहोऽपीत्याह—किमपीति । नृपतिः महाराजः किमप्यभिमतम् अमोहदशाया अपेक्षया किञ्चिदिष्टत्वेन मन्यमानं मोहं सर्वेन्द्रियसंज्ञालोपं च गतः । अयमर्थ —एतादृशाप्रियोपनिपाते ससंज्ञस्य हृदयं शतधा दीर्येत, विसंज्ञभावेन स्थितस्य तु न तदवसर इति ज्ञानावस्थापेक्षया मोहावस्थाया मनागिष्टत्वमवसेयम्, तथा च प्रयुक्तं कालिदासेन—'सा मुक्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासु समतप्यतान्तः । तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः' इति ॥

कथमिति—कथं मोहमुपगतः केन कारणेन विसंज्ञोऽभवत् । मदभिषेकप्रतिघातस्य तु मोहयितुमसामर्थ्यात्, 'न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया' इति न्यायात् । अतिधीरत्वाभिमानकृतेयमुक्तिः ।

अक्षोभ्य इति—धैर्यसागरः गाम्भीर्यपयोनिधिः (कोपयितुमशक्यः ) लक्ष्मणः सौमित्रिः केन कारणीभूतेन वस्तुना जनेन वा क्षोभितः रोषमुपगमितः । येन लक्ष्मणेन रुष्टेन कुपितेन तिष्ठता अयतः पुरःप्रदेशम्, शताकीर्णम्, जनशतपरीतमिव

---

से आपको अवगत कराने के लिये भेजा और स्वयं मूर्छित हो गये। इस कारण दुःख की अवस्था में होश में रहने की अपेक्षा मूर्छित हो जाना ही उन्होंने भला समझा।।

सीता—क्यों मूर्छित हो गये ?

( नेपथ्य में )

यह क्यों—क्यों मूर्छित हो गये ?

यदि राजा की मूर्छितावस्था असह्य है तो धनुष धारण कीजिये, दया का समय नहीं है।

राम—(सुनकर और सामने देखकर) अतिप्रशान्त धैर्यसागर इस लक्ष्मण को

येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥ १७ ॥
( ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः )

लक्ष्मणः—( सक्रोधम् ) कथं कथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥ १८ ॥

---

पश्यामि एषोऽपि क्षुभितो लक्ष्मणः कोपकुटिलभ्रुकुटिः शतजनसम्बाधमिवाग्रतः प्रदेशं करोतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

**यदि न सहसे इति**—यदि राज्ञः तातस्य महाराजस्य मोहं विसंज्ञभावेनावस्थानम्, न सहसे न मर्षयसि, प्रतिविकिर्षसि चेत्, धनुः स्पृश चापमास्फाल्य, मोहहेतुजने चापं व्यापारयेरित्यर्थः । दया, तितिक्षा मा न कर्त्तव्येत्यर्थः । तत्र कारणमाह—स्वजनेति । स्वजने ( अपकारपरायणेऽपि ) निजे परिजने निभृतः क्षमाशीलः मृदुः शीतलस्वभावः सर्वोऽपि ( भवद्विधोऽखिलोऽपि जनः ) परिभूयते सर्वदा तिरस्कारस्य पात्रत्वमुपयातीति भावः । अथ न रुचितं स्वजनविषये स्वयं धनुरादानं नेच्छसि चेत् ( अलं तथा कृत्वा, त्वयि धनुरास्फालयति साध्यस्य कार्यस्य ममापि साध्यत्वादिति मनसिकृत्याह) माम् लक्ष्मणं मुञ्च स्वविचारमनुसृत्य व्यवहर्तुं स्वतन्त्रं कुरुष्वेत्यर्थः । अनुज्ञातस्य स्वस्य कर्त्तव्यमाह—अहमिति । अहं लोकं संसारम्, युवतिरहितं युवतिजात्या विरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः निर्धारितमतिः कृतप्रतिज्ञ इत्यर्थः । युवतिविषयकस्य स्वप्रद्वेषस्य कारणमभिधातुमाह—यत इति । यतः यस्मात् कारणात् वयं छलिताः वञ्चिताः राज्यात् भ्रंशिता इत्यर्थः । युवत्या हि कैकेय्या स्वयौवनेन राजानं प्रलोभ्य स्वहावभावादिभिराकृष्य च वयं राज्याद् भ्रंशिताः ,अतोयुवति-

---

किसने उभाड़ दिया ? इस अकेले लक्ष्मण के क्रोधित होने से मैं अपने आगे जन समूह-सा देख रहा हूँ ॥ १७ ॥

( हाथ में धनुष बाण लिये लक्ष्मण का प्रवेश )

लक्ष्मण—( क्रोध से ) यह 'क्यों क्यों मूर्छित हो गये' ।

यदि महाराज की मूर्च्छितावस्था सह्य न हो धनुष बाण सँभालें । यह दया का अवसर नहीं है । स्वजन के लिये शान्तिप्रवीण जनों का इसी भाँति अनादर हुआ करता है । यदि स्वजनों के ऊपर धनुष उठाने का आपका विचार न हो तो मुझे तो

सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः
  अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं । अपूव्वो
  खल्वस्यायासः ।
  क्खु से आआसो ।

राम—सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

लक्ष्मण—कथं कथ किमिदम् ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।

---

जातिरवास्मान्व्यपराधिनीति तद्विध्वंसोपाय प्रवर्तितुमिच्छामि, केवलं त्वदादेशमात्र प्रतीक्ष इति तदाशय । कृतापकारे दण्डविधया क्रियमाणस्यापकारस्यानिषिद्धत्वादि-यमनुज्ञायाचना । हरिणीवृत्तम्, तल्लक्षण यथा—'नसमरसला ग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता' इति ॥ १८ ॥

अय्यउत्त इति—रोदितव्ये रोदनायोपस्थिते । 'रुदन्त्यस्मिन्निति रोदितव्यः' इत्यधिकरणे तव्यद् बाहुलकात् । अस्य लक्ष्मणस्य, आयास खेद , अपूर्वं, अदृष्ट-पूर्वप्रकारक , शोकप्रकाशनावसरे कोपाविष्कारस्यायुक्तत्वेनेत्यमुक्तिः ।

सुमित्रामातरिति—सुमित्रा माता यस्य तत्सम्बुद्धौ तथा । मातृगुणवत्तया गुणवत्त्वमाशसमानाया इद सम्बोधनम् । यद्यप्यत्र 'नद्यृतश्चे'ति कप् प्राप्नोति, तथापि 'मातृमातृकमातृषु' इत्यत्र मातृशब्दे परतो बहुव्रीहौ व्यङ सम्प्रसारण-विकल्पविधायके मातृशब्ददर्शनात् कपो वैकल्पिकत्व कल्पयित्वेदं निर्वाह्यम् । किमिदम् अकाण्डे मरम्मस्य विमुपस्थित कारणमिति ।

कथ कथमिति अधुनाऽपि किमिदमिति प्रश्नस्यावसरमसहमान लक्ष्मणस्तथाह ।

क्रमप्राप्ते इति—क्रमप्राप्ते न्यायतः स्वदायाद्यभावेनोपस्थिते राज्ये हृते बला-

---

छोड दें, (यह सहने के योग्य बात नहीं है कि) एक युवती—स्वामी को मुट्ठी में करके हम सभी को छल से परास्त कर दे, अतः मैंने सम्पूर्ण विश्व को युवति शून्य कर देने का निश्चय कर लिया है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मण ने रोने के अवसर पर धनुष उठाया है । इनका इतना क्षोभ तो कभी नहीं देखा गया ।

राम—सुमित्रानन्दन, यह क्या ?

लक्ष्मण—क्यों, क्या अब भी पूछ रहे हैं कि यह क्या ?

वंशपरम्परा से प्राप्त राज्य छिन गया, महाराज मूर्च्छित दशा में भूमि पर लोटते

इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ? ॥ १६ ॥

राम —सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति ।
आः, अपण्डितः खलु भवान् ।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ २० ॥

लक्ष्मण —न शक्नोमि रोष धारयितुम् । भवतु भवतु । गच्छाम-
स्तावत् । ( प्रस्थित )

---

दपहृते सति नृपे महाराजदशरथे च भुवि धरिन्याम् । ( न तु पर्यङ्के ) शोच्यासने तु खासिकायाम् ( न तु सुखशयनीये ) सति इदानीमपि अस्यामपि भियसो तदपकारितायां प्रकट प्रतीतायामपीत्यर्थं , सन्देह —प्रतिक्रियाविधाननिश्चयाभाव (किमिदमित्यादिवचनेनोह्यमान.) नव किं क्षमा सहनशीलता, निर्मनस्विता मनस्वितावि्रहो वेति ( न जाने इति भाव ) एतादृश्यमपि तस्या अपकारितायां प्रकट प्रतीतायामपि तव कर्त्तव्यानवधारणम्वरूप सन्देह क्षमायर गौरवभावनाशून्यतया वा प्रसूत इति न निर्णेतु शक्नोमीति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥

उद्योगम्—युद्धसन्नाहम्, अपण्डित विवेकविधुर , मयि राज्यासनात् पातिते स्व युद्धाय सन्नद्ध इति तवाविवेक एवेत्यर्थं ।

**भरतो वेति** --भरतो वा राजा भवेत् वय वा राजानो भवेम, तदन्यतराभिषेचन ननु सम तव विषये तुल्यम् औदासीन्येनावस्थानस्यैव प्रवर्त्तकमिति भाव । यदि ते धनु श्लाघा धनुर्धरत्वगर्व ( अस्ति ) तदा स नवाभिषिक्तः राजा भरत परिपाल्यता सहायत्वमासाद्यान्तरेभ्यो बाह्येभ्यश्च विघ्नेभ्यो रक्ष्यताम् । अत्र मद्विषये दोषे त्वया चिन्ता मा कारीत्युक्त वा रामस्यात्मनिर्भरता व्यक्ता । अन्यत्स्पष्टम् ॥ २० ॥

रोषमिति—रोष कोपवेग धारयितु नियन्तु न शक्नोमि न क्षमे, तदत्रस्थित्वा-

---

हैं, क्यों, अब भी आपको संदेह है ? क्षमा आत्मगौरवशून्यता को तो नहीं कहते।।

राम—सुमित्रानन्दन, हमारी राज्यच्युति तुम्हें इतना उत्तेजित कर रही है, खेद ! तुम इतने अधीर हो ।

चाहे भरत को राज्य मिले या राम को तुम्हारे लिए तो दोनों बातें एक सी हैं। हाँ, यदि तुम्हें अपने धनुषपर अभिमान है तो जाओ, राजा भरतकी सहायताकरो।

लक्ष्मण—मैं रोष को रोक नहीं सकता, अच्छा जाता हूँ। ( प्रस्थान )

राम.—त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता ।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥ २१ ॥
सुमित्रामातः ! इतस्तावत् ।

लक्ष्मण —आर्य ! अयमस्मि ।

राम —भवतः स्थैर्यमुत्पादयता । मयैवमभिहितम् ।
ताते धनुर्न मयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम् ।

---

उत्तम्, अन्यथा तदावेशवशात् कदाचिदवाच्यमुच्येत अकार्यं वा क्रियेत, परमत इतः स्थानादन्यत्र गन्तुमिति प्रकरणार्थः ।

**त्रैलोक्यमिति**—त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम् चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् । तत् भुवनत्रयम् दग्धु कामो यस्याः सा दग्धुकामा दिधक्षन्तीव ललाट-पुटसंस्थिता कपालदेशेऽवस्थापिता एषा प्रत्यक्षदृश्या लक्ष्मणस्य भ्रुकुटि वक्रीभूता कोपव्यञ्जिका भ्रूलता नियति व्योमनि इव व्यवस्थिता । कोपातिरेकेण लक्ष्मण-स्योर्ध्वंवदवक्रभ्रुकुटितया दृग्भङ्गैराकाशावस्थितमुत्प्रेक्षते । 'नियतीव' इति पाठे नियति भाग्यरेखेवेत्यर्थं । अत पाठेऽर्थसामञ्जस्येऽपि ङीप्सिद्धये क्तिजन्तत्वावि-धमनुसरणीयम् । तच्चागतिकगतिभूतमिति सुधियो विभावयन्तु ॥ २१ ॥

स्थैर्यम्—चित्तविक्रियोपरमम् उत्पादयता जनयता त्वां शान्तयतेत्यर्थं । उच्यताम् इदानी शान्तचित्तेन भवता मत्प्रश्नोत्तरमभिधीयताम् ।

**तात इति** । मयि स्वविधेय मल्लक्षणे जने मामवलम्ब्येत्यर्थं । सत्य स्वप्रति-श्रुतभरताभिषेकात्यन्तभावम् अवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे ताते धनुर्न चापावसर एव नास्ति । किञ्च स्वधन विवाहावसरप्रतिश्रुत लब्धतया निश्चित स्वधन राज्यरूपं

---

राम—त्रिभुवन को भस्म करने के लिए उद्यत लक्ष्मण की भ्रुकुटि विधाता की इच्छा की तरह अटल मालूम पड रही है ॥ २१ ॥

सुमित्रानन्दन जरा इधर तो आना ।

लक्ष्मण—आर्य, यह आया ।

राम—तुम्हें शान्त करने के उद्देश्य से ही मैंने वैसा कहा है, अब तुम्हीं बताओ-क्यों पिता पर धनुष उठाया जाय जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं, या माता पर प्रहार किया जाय जो पूर्व-प्रतिज्ञात अपना विवाह शुल्क माँग रही हैं,

दोषेषु वाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥ २२ ॥

लक्ष्मणः—( सबाष्पम् ) हा धिक् ! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥ २३ ॥

---

हरन्त्या मातरि कैकेय्या शरं मुञ्चानि बाल्यानि ? नैतदप्युपयुज्यते । दोषेषु एषु मद्राज्यप्राप्तिप्रतिबन्धकीभूतव्यापारकलापेषु बाह्यं पृथग्भूत हनानि मारयाणि, नैतदपि युक्त, तस्य सर्वथा दोषरहितत्वात् । अस्यां स्थितौ एषु त्रिषु पातकेषु पितृ-मातृभ्रातृवधाख्येषु महापापेषु रोषणाय कोपकलुषाय तुभ्यं किं कतमत् पातकं रुचिरं रुचिप्रदं रोचत इत्यर्थः । स्वजनोऽप्यपकुर्वन् हन्तव्य इति हि त्वदभिप्राय । न चात्र गर्हितकर्मणि कस्यापि स्वजनस्यापराधं निर्णेतुमीशे, तातस्य स्ववचोरक्षा-व्रतपरायणत्वात्, मातुर्मध्यमायाः स्ववचनप्राप्तिप्रवृत्तत्वात्, मम भ्रातुर्भरतस्यैभिर्व्या-पारकलुषपङ्कैरलिप्तत्वादतोऽत्र निरपराधप्रियपरिजनत्रयमध्ये कस्य वधो मया क्रियमाणस्त्वयाऽभिप्रेयत इति रामाशय. । वसन्ततिलकं वृत्तम्, लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥

हा धिगिति—कष्टमित्यर्थः, अविज्ञाय ज्ञातव्यमर्थमविज्ञाय । उपालभसे तिरस्करोषि । ज्ञाने वृत्तान्ते तथापि ममैव व्यग्रा चित्तवृत्तिर्भवेदित्यर्थः ।

तद्वस्तुतत्त्वमेवाह—यत्कृत इति । यत्कृते येनार्येण जनिते महति दुरन्ते क्लेशे खेदे, मनसाऽध्यायमान इति शेष । मे मम राज्ये राजपदे मनोरथ अभिलाषो न । तमेव क्लेशमविज्ञाय त्व मामुपालभस इत्यर्थ. । क्लेशमाह—वर्षाणीति । त्वया रामेण चतुर्दशवर्षाणि वने वस्तव्य स्थातव्यम्, इति । चतुर्दशव-र्षाणीत्यत्रात्यन्तसयोगे द्वितीया । न हि केवल दुराशयया कैकेय्या भरताभिषेक-मात्रेण तृप्त, किन्तु तव वनवासोऽपि तया वृत इति भाव । चरमश्चायं वरो मर्मवेधी येनाहं पूर्वप्रकारेण वक्तु बाधित इति सरलार्थः ॥ २३ ॥

---

अथवा अत्यन्त निर्दोष भरत को मारा जाय ? पितृवध, मातृवध और बन्धुवध; इन तीनों पातकों में कौन-सा पातक तुम्हारे रोष को अभिमत है ? ॥ २२ ॥

लक्ष्मण—( रोकर ) खेद है, आप बिना जाने हमें उलाहना दे रहे हैं ।

मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है, किन्तु जिस बात पर मुझे इतना खेद हुआ वह यह है कि—आपको चौदह वर्ष तक वन में रहना होगा ॥ २३ ॥

राम.—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् ? हन्त ! निवेदितमप्रभुत्वम् । मैथिलि !

> मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
> करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥ २४ ॥

सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः ।
(गह्णादु अय्यउत्तो ।)

राम —मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् ।
(ण सहधम्मआरिणी क्खु अहं ।)

---

तत्र भवान् पूज्यस्तातः । अत्र मदनवासन्दर्भे विषये । हन्त खेदे, अप्रभुत्वम् विपदुपनिपातसहनासामर्थ्यम् । निवेदितं प्रकटीकृतम् । मया सुखं साधयितुं यावत् कार्यं तातस्य तादृशी दशा तत्पक्षे नितरामदुक्तेति भावः ।

अवसरप्राप्तं कर्तव्यमादिशति-मङ्गलार्थे इति । अनया अवदातिकाभिधानया हत वेट्या दत्तान् वल्कलान् तरुवल्कल्पितानि वसनानि मङ्गलार्थे मङ्गलमय-पित्राज्ञापालनात्मवनवासापयोगिवल्कार्थम् आनय मह्यमर्पय । वनवासस्य मङ्गल-मयतामेवोपपादयति पराद्धेन-करोमीति । अन्यैः मद्भिन्नैः नृपैः राजभिः नैव आप्तं वाल्यभावे कर्तव्यत्वेनाधिगतं नोपपादितम् नानुष्ठितं च । राजानो हि वार्द्धके पुत्रसमर्पितराज्यभारा सन्त एव वनवासावसरमलभन्त तदाऽश्रयन्त्, प्रथमोऽयमवसरो यदहं बाल एव वनवासाय लब्धावसरस्तथा कर्तुं यत इति मङ्गलमयभावोऽस्य वनगमनस्तदानुगुणं मम वल्कलानीति रामस्याशयः ॥ २४ ॥

व्यवसितम्—दृष्टे मयि वनाय चलिते त्वया किं विकोचितमिति भावः ।
सहधर्मचारिणी—सहधर्मानुष्ठानशीला । एतेन मयापि वस्तव्यमिति व्यञ्जितम् ।

---

राम—क्या इसी बात पर महाराज मूर्च्छित हो गये ? अफसोस ! उन्होंने अपनी अधीरता व्यक्त की । मैथिलि,

इस समय उपस्थित इस मङ्गलमय कार्य के लिए मुझे अवदातिका द्वारा लाये गये वल्कल दो । उन्हें पहन कर मुझे ऐसा धर्म-कार्य करना है, जिसे किन्हीं राजाओं ने नहीं किया ॥ २४ ॥

सीता—लीजिये आर्यपुत्र !

राम—मैथिलि, तुम्हारी क्या राय है ?

सीता—मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी ठहरी ।

राम —मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

सीता—अतो न खल्वनुगच्छामि ?

अदो ण खलु अणुगच्छामि ।

राम —वने खलु वस्तव्यम् ।

सीता—तत् खलु मे प्रासादः ।

तं खु मे पासादो ।

राम —श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निवर्तयितव्या ?

सीता—एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते ।

ण उद्दिसअ देवदान पणामा करोअदि ।

राम —लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मण —आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् ।

कुतः—

---

एकाकिना सहायान्तररहितेन गुर्वाज्ञाया अक्षरशोऽर्थतोऽनुवृत्तौ मम सहाय-कान्तरत्क्षण धर्मच्युतिरतस्त्वया तथाऽऽग्रहो न कर्तव्य इति रामाभिसन्धि ।

अतो नु इत्यिति । असहायेन भवता गम्यतेऽत एव तु मया विशिष्य गन्तु काम्यते, त्वत्सहायतया मद्गमत्वादिति ।

एतां गुरुशुश्रूषाम्, गुरुशुश्रूषास्थाने वनदेवता प्रणम्य चैतां सान्त्वयिष्यामि । अथवा मया पतिसहानुवृत्तिपरतन्त्रतया गृहेऽवस्थाय गुरुशुश्रूषा विधातु नाशकीति विवशाया त्वस्या अपराधमिमं मर्षयितु देवता प्रणस्यामीति तदाशय ।

काले सीतायास्त्वदनुगमनाऽध्यवसायसमये ।

---

राम—मुझे तो अकेले वन जाना है ।

सीता—इसी से तो आपके साथ जाना है ।

राम—वहाँ तो वन मे रहना होगा ।

सीता—वह वन मेरे लिये प्रासाद होगा ।

राम—सास ससुर की सेवा भी तो तेरा कर्तव्य है ।

सीता—इसके लिये मैं ( सर्वसाक्षी ) देवो को प्रणाम करती हूँ ( कि वे हमारी लाचारी देखें ) ।

राम—लक्ष्मण, इसे वन जाने से रोको ।

लक्ष्मण—आर्य, ऐसे प्रशंसनीय अवसर मे आर्या को रोकने का साहस नहीं हो रहा है, क्योंकि—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥२५॥

( प्रविश्य )

चेटी—जयतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—
जेदु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—
अवदातिकया सङ्गीतशाला आच्छिद्य वल्कला आनीता।
ओदादिआअ सङ्गीअसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा।

---

अनुचरतीति। तारा चन्द्रमसो भार्या शशाङ्कं चन्द्रं राहुकृतोपरागेऽपि राहुग्रसनदशायामपीत्यर्थः, अनुचरति अनुगच्छति न तु स्वामिनं विपदुपनिपतितं त्यजति। किञ्च वनवृक्षे वन्ये तरौ पतति ( सति ) लता वल्लरी च भूमिं याति॰ अधोदेशसंयोगवती भवतीत्यर्थः। किञ्च करेणुः हस्तिनी पङ्कलग्नं कर्दममग्नम्, गजेन्द्रं न त्यजति अनुयात्येव। एवं देवभावमारभ्य सर्वादिभावपर्यन्तं स्त्रीणां स्वनाथानुमरणस्य रूपेषु भूयिष्ठं दृश्यमानत्वेन सीताया अपि त्वदनुवर्त्तनाभ्यन्तमामाग्निवर्त्तनं न योग्यमित्यर्थः। सीतायाः कर्त्तव्यनिर्णयमेव समर्थयति—व्रजतु त्वामनुवर्त्तताम् धर्मं पत्यनुवृत्तिलक्षणं सतीसमुदाचारं चरतु अनुतिष्ठतु। तमिममर्थमर्थान्तरन्यासेन पोषयति—भर्तृनाथा हि नार्य इति। नार्यः स्त्रियो भर्तृनाथाः स्वामिपरतन्त्राः, अतस्तासां तदनुवृत्तिस्तत्समसुखदुःखता च सदोचितेति भावः। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासभेदः। हिशब्दोऽस्यार्थस्य प्रसिद्धतां द्योतयति, शेषं सुगमम् ॥ २५ ॥

विज्ञापयति सूचयति। आच्छिद्य बलादपहृत्य। अननुभूता अभिनवा अनुप॰

---

राहुग्रहण के अवसर पर भी रोहिणी चन्द्रमा का साथ देती है, वृक्ष के धराशायी होने पर भी उसकी लतायें उससे लिपटी ही रहती हैं, गजराज के पङ्कपतित होने पर भी हथिनियाँ साथ नहीं छोड़तीं ( इसलिए ) उन्हें भी वन जाने दो, अपना धर्म निभाने दो। स्त्रियों के तो पति ही अवलम्ब होते हैं ॥२५॥

( चेटी का प्रवेश )

चेटी—जय हो महारानीजी की। नेपथ्यपालिका आर्या रेवा प्रणामपूर्वक निवेदन करती है कि अवदातिका सङ्गीतशाला से कुछ वल्कल स्वयं ही ले आयी

इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः। निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति।

इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला। णिव्वत्तीअदु दाव किल पओअण त्ति।

रामः—भद्रे! आनय, सन्तुष्टैषा। वयमर्थिनः।

चेटी—गृह्णातु भर्ता। ( तथा कृत्वा निष्क्रान्ता )

गह्णादु भट्टा।

( रामो गृहीत्वा परिवर्ते )

लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी॥ २६॥

मुक्ताः। प्रयोजनम् उपयोग.। अनुष्ठीयतां सम्पाद्यताम्, यथेच्छमुपयुज्यतामित्यर्थः।

सन्तुष्टा पूर्वंत एव वल्कलपरिधानेन तृप्ता। एषा सीता। अर्थिनः वल्कलग्र हणे याचका·, तथा मह्यं पात्रामर्पयेति रामाशय.।

रामेण वल्कले धार्यमाणे लक्ष्मणः स्वस्य रामानुगमनाभिलाषं व्यञ्जयन्नाह—प्रसीदत्वार्य इति।

**निर्योगादिति।** निर्योगात् वस्त्रकञ्चुकादेराच्छादनोपयोगिवमनात्, भूषणात् कटककुण्डलादेरलङ्कारात्, माल्यात् पुष्पादिस्रजः सर्वेभ्यो मे मह्यम् अर्धम् समार्धं प्रदाय दत्त्वा चीरं वल्कलम् ( त्वया ) एकाकिना मह्यमप्रदायैव बद्धं परिहितम्। बहुमूल्यवसनाभरणस्रगादीनां संविभागकरणे गतस्वार्थता दृष्टपूर्वा, चीरस्य तु अतिहीनमूल्यस्य सविभागे तव स्वार्थबुद्धिरुदितेत्याश्चर्यम्, इत्याह-चीरे **खल्वसि मत्सरीति।** इदमपि मह्यं प्रदाय मामपि सह नयेति तदाशय॥२६॥

है। ( हो सकता है वे अच्छे नहीं हों ) ये नये वल्कल हैं, इनसे अपना प्रयोजन पूरा कीजिये।

राम—भद्रे, इधर लाना, इनका तो काम चल गया है, मुझको जरूरत है।

चेटी—स्वामी ग्रहण करें। ( वल्कल देकर प्रस्थान )

( राम लेकर पहनते हैं )

लक्ष्मण—आर्य, प्रसन्न हों। आज तक सभी तरह के वस्त्र, भूषण, माल्य-सभी प्रकार की भोग्य वस्तुओं में आप मुझे आधा देते आये हैं. फिर इस वल्कल में इतना लोभ क्यों है कि इसे अकेले पहन रहे हैं?॥ २६॥

राम —मैथिलि ! वार्यतामयम् ।

सीता—सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल ।

सोमित्ते ! णिवत्तीअदु किल ।

लक्ष्मण —आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ? ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥ २७ ॥

सीता—दूयतां खल्वार्यपुत्रः । सन्तप्यते सौमित्रिः ।

दीअदु क्खु अय्यउत्तो । सन्तप्पदि सोमित्ती ।

राम —सौमित्रे ! श्रूयताम् । वल्कलानि नाम—

तपः सङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः ।

---

निवर्त्यतां वनगमनाध्यवसायादिति शेषः ।

गुरोर्मे इति । मे मम गुरोः पूजनीयस्य ज्येष्ठभ्रातुः पादशुश्रूषाम् चरणसंवाहनादिपरिचर्याम् त्वम् एका सहायान्तरनिरपेक्षा कर्तुं विधातुम् इच्छसि ? त्वमेवैकाकिनी मम पूज्यस्य चरणौ सेवितुकामा त्वं माम् उक्तकार्यावसरलाभतो वञ्चयसीति तव कौशलमित्यर्थः । अथ तव महानाग्रहश्चेत्तर्हि तदीयं दक्षिणं पादं परिचर, मम कृते सव्यमेव तदीयं पादं विसृज । एवमपि मया तत्पादपरिचर्यावसरो गौणभावेनापि लब्धो भवेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

तपःसङ्ग्रामेति । वल्कलानि नाम तप एव संग्रामः युद्धम् तत्र कवचं वर्म युद्धे परसंप्रहतया प्रतिष्ठम् । (तान्येव वल्कलानि) नियमो व्रतमेव द्विरदो गजः तस्य

---

राम—मैथिलि, इसे मना करो ।

सीता—लक्ष्मण, रहने दो ।

लक्ष्मण—आर्ये,

मेरे पूज्य राम की चरणशुश्रूषा तुम अकेले करना चाहती हो ? । अच्छा दक्षिण चरण पर तुम्हारा ही एकाधिपत्य रहेगा मैं वाम चरण की ही सेवा करके अपना जीवन सार्थक समझ लूंगा ॥ २७ ॥

सीता—आर्यपुत्र, आप दया करें, लक्ष्मण को ( रोकने से ) कष्ट होता है ।

राम—लक्ष्मण, यह वल्कल—

तपस्यारूप संग्राम में कवच, संयमरूप हाथी के वशीकरण में अंकुश, इन्द्रिय-

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं द्रष्टव्यं वनवासिनाम् ?

राम —

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु ॥ ३१ ॥

( इति निष्क्रान्ता सर्वे )

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

## द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति कञ्चुकीय )

कञ्चुकीय —भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

( प्रविश्य )

---

**चीरमात्रेति**—चीरमात्रमुत्तरीयं येषान्ते चीरमात्रोत्तरीया वल्कलमात्रोत्तरीयवसना ( न तु पीताम्बरपरिधाना ) तेषां वनवासिनां किं द्रष्टव्यं न किमपीत्यर्थ । तेन च राज्ञ आगमनस्य तत्प्रतीक्षार्थमवस्थानस्य चाभावश्चमत्कृत्वमुक्तम् । अस्मासु गतेषु अप्रतीक्ष्यैव राजानं वनं प्रस्थितेषु राजा दशरथ नोऽस्माकं शिरःस्थानानि प्रधानवासस्थानानि विलोकयतु । अस्मदध्युषितानि स्थानानि विलोकयास्मान् सान्त्वयत्वित्यर्थ ॥ ३१ ॥

इति मैथिलपण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक-प्रकाशे प्रथमोऽङ्क ।

---

**प्रतीति**—प्रतीहारव्यापृता प्रतीहार द्वारदेशे व्यापृता नियुक्ता, अप्रमत्ता सावधाना ।

---

चीरमात्रपरिधान हम वनवासियों को देख कर क्या करेंगे ? ।

राम—हमारे चले जाने पर महाराज हमारे प्रधान निवासस्थानों को देखा करेंगे ॥ ३१ ॥

( सब का प्रस्थान )

प्रथम अङ्क समाप्त ।

---

( कञ्चुकी का प्रवेश )

कञ्चुकी—ऐ द्वारपालो, आप अपने स्थानों पर सावधान रहें ।

( प्रतिहारी का प्रवेश )

प्रतीहारी—आर्य ! किमेतत् ?
अय्य ! किं एदं ?

कञ्चुकीय —एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ १ ॥

---

किं एद इति—अवयानोपदेशाने प्रयोजन किमिति प्रश्नाशय ।

सत्यवचनरक्षणपर सत्यवाक्पालनतत्पर, उपावर्तयितु स्वाध्यवसायान्निवर्तयितुम् । शोकाग्निना खेदवह्निना तस्य च वह्नित्वमत्यन्तसन्तापकत्वेनोपचरितम् । प्रलपन् निरर्थक भाषण कुर्वन् । समुद्रगृहके कृतकस्य समुद्रस्य समीपवर्तिनि गृहे तद्वति वा गृहे । कृतकसमुद्रनिर्माण हि क्रीडाशैलादिनिर्माणवद् भोगार्थम् ।

मेरुरिति—युगस्य क्षयो युगान्तस्तस्य सन्निकर्षे सामीप्योपसृतौ, मेरु सुमेरुश्चलन्निव कम्पायमान इव, अप्रमेय परिच्छेत्तुमशक्य, महोदधि सागर शोष व्रजन् शुष्यन् इव । मण्डलमात्रलक्ष्यम् उपसहृतप्रभाजालतया मण्डलमात्रेण लक्ष्य प्रशान्तदीधितिरित्यर्थः । सूर्यो रवि पतन्निव च समान इव शोकाद् अतिप्रियपुत्रविरहवृत्ताद् खेदात् शिथिलदेहमति अवसन्नकायबुद्धि अस्तीति शेष । युगक्षये हि विनाशस्यासत्तौ प्रलयपवनेन मेरुश्चलति, प्रशान्त सागर शुष्यति, आसन्नपतनश्च रविर्निष्प्रभतया मण्डलमात्रेणोपलक्षितो भवति, तद्वदधुना राजापि शिथिलकाय शिथिलबुद्धिश्च दृश्यत इति भाव । अत्र त्रिभिरप्युपमानमूर्तैर्मेरुमहोदधिभास्करै राज्ञो मरणस्यासन्नत्वमुक्तम् । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥ १ ॥

---

प्रतीहारी—आर्य, यह क्या ?

कञ्चुकी—क्या कहूँ, प्रतिज्ञापालक महाराज राम को वन जाने से लौटा नहीं सके, और अब पुत्रवियोग की ज्वाला से सन्तप्त हृदय हो पागल की भाँति प्रलाप करते समुद्रगृह में लेटे हुए—

महाराज युगान्त समीप आने पर डगमगाते हुए सुमेरु के समान अथवा सूखते हुए सागर के समान अथवा मण्डलमात्रलक्ष्य सूर्य के समान अपार शोकसागर में निमग्न दुर्बलकाय तथा हीनचेतन होते जा रहे हैं ॥ १ ॥

प्रतीहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ?
　　　हा हा एव्वगओ महाराओ ?

कञ्चुकीय.—भवति ! गच्छ ।

प्रतीहारी—आर्य ! तथा ।
　　　अय्य ! तहा । ( निष्क्रान्ता ) ।

कञ्चुकीय —( सर्वतो विलोक्य ) अहो नु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य शून्येवेयमयोध्या संलक्ष्यते कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलापविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
　हेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनितावालाश्च पौरा जनाः ।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
　रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी ॥ २ ॥

---

एवमिति एवंगतः ईदृग्दशत्वमुपगत ।

अहो इति—'अहो नु खलु' पदसमुदायोऽयं खेदमाह ।

शून्यत्वमेवोपपादयति–नागेन्द्रा इति । नागेन्द्रा गजमुख्याः यवसाभिलाप-विमुखा घासग्रासग्रहणपराङ्मुखा , वाजिनः अश्वा सास्रेक्षणा. सास्रे सवाष्पे ईक्षणे येषा ते तथोक्ता , वाजिनः न केवल सास्रेक्षणाः किन्तु हेषाशून्यमुखा मूका. हेषा अश्वशब्दस्तद्रहिता इत्यर्थ । सवृद्धवनितावाला. वृद्धैर्वनिताभिर्वालैश्च सहिता पौरा जनाः पुरवासिनः त्यक्तहारकथाः विसृष्टभोजनवार्ता सुदीनवदना अतिदीनमुखा क्रन्दन्तश्च । सर्वेऽपीमे गजेन्द्रवाजिपौरजना अमी तामेव दिश पश्यन्ति यया दिशा सदारसहज. सीतालक्ष्मणाभ्यामनुयातो रामो याति एतेन तेषा तं प्रति गाढानुराग-

---

प्रतीहारी—हाय, महाराज की ऐसी दशा ?

कञ्चुकी—श्रीमती जी, आप जायें ।

प्रतीहारी—जाता हूँ ।

कञ्चुकी—( चारो ओर देखकर ) जब से राम गये, तब से यह समूची अयोध्या सूनी दीख रही है ? क्योंकि—

गजराजों ने चारा खाना छोड दिया है, साश्रुनयन घोड़ों ने हिनहिनाना बन्द कर दिया है, नगरवासी बूढ़े, स्त्रियाँ, बच्चे, जवान—सबने भोजन की बात भुला दी है और जोर से रोने से उनका चेहरा उतर गया है । राम, सीता और लक्ष्मण जिधर गये हैं; सबकी आँखें टकटक उसी ओर लगी हैं ॥ २ ॥

यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अये! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहमपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगूह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति। कष्टा खल्ववस्था वर्तते। एष एष महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः॥ ३॥

( निष्क्रान्तः )

मिश्रविष्कम्भकः।

---

वत्ताऽभिहिता। आङ्गारकथात्यागाभिधानेन पौराणा विम्नायमानतोक्ता। स्पष्टमन्यत्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, पूर्वमुक्तञ्च तल्लक्षणम्॥ २॥

महादेव्येति—महादेव्या कौसल्यया। सुदु सहम् अत्यन्तासह्यम्। संस्थापयन्तीभ्याम् आश्वासनादिना धारयन्तीभ्याम्।

पततीति—हा हा इति मुहु उच्चैर्लपन् उच्चारयन् उत्थायोत्थाय पतति उत्तिष्ठति पुनश्च भूमौ पततीत्यर्थं। तामेव दिश च पश्यति, यया दिशा रघूद्वहः रघुवंशश्रेष्ठो यात इत्यर्थ.॥ ३॥

मिश्रविष्कम्भक इति—तल्लक्षणमुक्त यथा—

'वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथांशाना निदर्शक।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजित॥

---

अच्छा अब मैं भी महाराज के पास चलूं, ( घूमकर और देखकर ) ऐं ये ही तो महाराज हैं, कौशल्या और सुमित्रा अत्यन्त असहनीय पुत्रशोक को भी किसी भाँति सहकर महाराज को आश्वासन देती हुई उनकी सेवा में लगी हैं। कैसी दर्दनाक दशा है। यह महाराज—

उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं, हाय हाय की रट लगाये हुये हैं, फिर लड़खड़ाते हैं और उसी ओर एकटक निहार रहे हैं, जिधर से राम लक्ष्मण वन को गये हैं॥ ३॥

( प्रस्थान )

( मिश्रविष्कम्भक )

( वर्णित रूप में राजा और देवियों का प्रवेश )

**सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।**
**सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ७ ॥**

( ऊर्ध्वमवलोक्य ) भोः कृतान्तहतक !

**अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।**

---

**सूर्य इवेति**—रामः सूर्य इव गतः दृष्टिवर्त्मबहिर्भूतः एतेन पुनः सूर्यस्येव पुनरुदयसम्भावनोक्ता ( तादृशमस्तगतम् ) सूर्यमिव रामं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः, यथास्तमितं भास्वन्तं दिवसोऽनुगच्छति तथा वनं गतं रामं लक्ष्मणोऽनुसृतवानिति विवक्षितोऽर्थः । सूर्यश्च दिवसश्चेति सूर्यदिवसौ तयोरवसानेऽन्तर्धाने छायेव सीता न दृश्यते । अयमाशयः—यथा सूर्येऽस्तमिते दिवसोऽपसरति, तत्र चापसृते छायाऽनुविनश्यति, तथैव रामे प्रस्थिते लक्ष्मणस्तमनुगतः तयोश्च प्रस्थाने छायेव सीता पृथक्पथमतीत्य स्थिताऽभूदिति । अत्रोपमात्रयम्, सूर्य इव राम इति प्रथमा, दिवस इव लक्ष्मण इति द्वितीया, छायेव सीतेति तृतीया । तत्र रामस्य सूर्योपमया प्रकाशातिशयेन प्रतापवत्ताऽऽधिक्यम्, तददर्शनस्य मोहसमयत्वम्, सकलकार्यविरामश्चेत्यादयोऽर्था व्यक्ताः । लक्ष्मणस्य च दिवसोपमया रामेण समं प्रयाणस्य स्वभावसिद्धत्वमावेदितम्, सीतायाश्छायोपमया च तस्या अतिशयितपत्यनुवृत्तिलक्षणं चारित्र्यं प्रकटीकृतम् । किञ्च सूर्यस्यास्तमितस्यापि यथा पुनरुदयस्तत्सम्बन्धेन च दिवसश्रियो यथा पुनरनुवृत्तिश्छायायाश्च पुनर्यथा गृहाङ्गणालङ्करणभावस्तथा तेषामपि पुनरावृत्तिरिति च सर्वत्र प्रतिपाद्यमिति ॥ ७ ॥

कृतेति—कृतान्तहतक कालहतक, हतकपदं निन्दाद्योतनार्थम् ।

कृतान्तहतक इत्युक्तं तत्र तस्य हतकत्वमकार्यकारित्वादिति, तदाह—**अनपत्या इति** । त्वया एतत् अद्य किं कुत्सितं न कृतम्, अवश्यमकरणीयमिदमद्य कृतं परित्यक्तं यतश्च परित्यक्त ततस्त्वं निन्द्य इति । तदेव अद्य विवरीतुमाह—अनपत्या इति । वयमहमित्यर्थः, अनपत्याः सन्तानरहिताः रामस्तदाख्यः, अन्यस्य परस्य महीपते

---

सूर्य की भाँति राम चला गया, सूर्य के पीछे दिन की तरह लक्ष्मण भी चला गया। सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया की तरह सीता भी नहीं दीख पड़ती ॥ ७ ॥

( ऊपर की ओर देखकर ) अरे दुर्दैव—

(इससे अच्छा तो यही होता कि) तुम मुझे निस्सन्तान, राम को किसी दूसरे

वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—( सरुदितम् ) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य पर-
अलं दाणिं महाराओ अदिमत्तं सन्तप्पिअ पर-
वशमात्मानं कर्तुम् । ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य
वसं अत्ताणं कादुं । णं सा ते अ कुमारा महाराअस्स
समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति ।
समआवसाणे पेक्खिदव्वा भविस्सन्ति ।

राजा—का त्वं भो ?

कौसल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।
असिणिद्धपुत्तप्पसविणी क्खु अहं ।

---

राज्ञ पुत्रः सुत इति, तथा कैकेयी तदाख्या मम मध्यमा भार्या, वने अरण्ये व्याघ्री व्याघ्रयोनिजाता; इति त्रयं कुतो न कृतमिति पूर्वेणान्वयः । अयमाशयः - यदि वयमनपत्याः स्याम तर्हि गुणवत्तमपुत्रपरित्यागावसरलाभेन नाक्ष्यामेति, रामस्य चान्यनृपतिकुमारत्वे पुत्रोचितराज्यस्थाने वनवासकष्टं नापतिष्यत् कैकेय्याश्चेद्वाक्रूरसत्त्वाया. काननव्याघ्रीमात्र एवोचित इति त्रयमप्याशंसनमुपपन्नमेव । स्पष्टमन्यत् ॥ ८ ॥

समयावसाने समयस्य चतुर्दशवर्षात्मकस्य वनवासावधेरवसाने समाप्तौ, प्रेक्षितव्या. आलोकनीयाः ।

का त्वमिति—भ्रमोपहतदृष्टितया रामादिविरहजनिताश्रुपूर्णलोचनतया वा राज्ञ समीपस्थेऽपि जने तथा प्रश्नः ।

अस्निग्धेति—अस्निग्धः. स्नेहशून्यः, तस्य च वृद्धौ जननीजनकौ परित्यज्य वनगमनादुपपद्यते । अथवा राज्ञा वनवासाज्ञाप्रदानात्तदप्रीतिपात्रत्वेनास्निग्धत्वमभिप्रेतम् ।

---

राजा का पुत्र और कैकेयी को वनव्याघ्री बनाते । फिर तुमने ये तीनों कार्य क्यों न किये ? ॥ ८ ॥

कौसल्या—( रोती हुई ) महाराज, अब अधिक खेद न करें, बहुत विलाप करके अपना धीरज न खोवें । चौदह वर्षों के बीत जाने पर तो आप सीता और राम लक्ष्मण को देखेंगे ही ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौसल्या—मैं उसी अप्रिय पुत्र की जननी हूँ ।

राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौसल्या ?

कौसल्या—महाराज ! सैव मन्दभागिनी खल्वहम् ।

महाराज ! सा एव मन्दभाइणी खु अहं ।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि । त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः ।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम् ।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

( सुमित्रां विलोक्य ) इयमपरा का ?

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मण—( इत्यर्धोक्ते )

महाराज ! वच्छलक्खण—

राजा—( सहसोत्थाय ) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् ।

( देव्यौ ससम्भ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते )

---

मन्दभागिनीति-मन्दभागिनी हतभाग्या, तच्च च पुत्रप्रवासक्लेशोपनिपातात् ।

सारवतीति—सारवती सारं प्रशस्तं वस्तु रामनामकं तद्वती मतुबर्थः सम्बन्ध, स चात्र जन्यजनकभावलक्षणो वेदितव्य. ।

अहमिति—अहं नितान्तमसह्यं सोढुमशक्यम्, ज्वलनोपमम् अग्नितुल्यं तत्तुल्यता च सन्तापप्रदानात् । दुःखं प्रियतमपुत्रप्रवासात् समुत्पन्नं क्लेशम् नैव सोढुं मर्षयितुम् शक्नोमि; न संहर्तुं प्रतिक्रियायाऽपनेतुं शक्नोमि, तत्र कारणमाह—मुषितेन्द्रिय इति । मुषितानि, उपहतसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि ज्ञानकर्मोभयेन्द्रियाणि यस्य तथाभूतः । इन्द्रियोपहतौ परिच्छेदाभावेन सहनप्रतिकारयोरुभयोरशक्यसम्पादनत्वादिति भाव. ॥ ९ ॥

---

राजा—क्या कहा ? तुम सर्वनयनाभिराम राम की माता कौसल्या हो ?

कौसल्या—हाँ महाराज, मैं वही अभागिन हूँ ।

राजा—कौसल्या, नहीं तुम धन्य हो । तुमने तो राम को गर्भ में धारण किया । अभागा तो मैं हूँ, जो अग्नि के समान अत्यसह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ और न दूर कर सकता हूँ । मेरे इन्द्रियगण शून्य हो गये हैं ॥ ९ ॥

( सुमित्रा की ओर देखकर ) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज, वत्स लक्ष्मण—

राजा—( सहसा उठकर ) कहाँ है ? कहाँ है वह लक्ष्मण ? नहीं दीखता है । बड़ी तकलीफ है ।

( दोनों रानियाँ हड़बड़ाकर उठती और राजा को संभालती हैं )

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयो-

महाराअ ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तु मए

प्रक्रान्तम् ।

पक्कन्दं ।

राजा—अयि सुमित्रे !

> तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने ।
> रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥ १० ॥

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा—( सहसोत्थाय सहर्षम् ) अपि रामेण ?

---

तवैवेति—तव सुमित्रायाः पुत्रो लक्ष्मण एव सत्पुत्रः प्रशस्तोत्तमः तनयः । तस्य प्रशंसायाः कारणमाह—येनेति । येन लक्ष्मणेन वने रघुकुलश्रेष्ठः रघुवंशावतंसः रामः नक्तन्दिवं दिवानिशम्, छाययेवानुगम्यते । अत्र लक्ष्मणस्य छायोपमायां लिङ्गभेदेन 'सुधेव विमलश्चन्द्रः' इत्यत्रेवालङ्कारदोषो नोद्भाव्यः, तत्र सामान्यधर्मस्य पुंलिङ्गविमलपदघटितत्वेन तेनोपमानोपमेययोरुभयोरन्वेतुमशक्यतया दोष-स्वीकारेऽपि प्रकृतेऽस्मिन्ननुगम्यते इति क्रियायाः सामान्यधर्मत्वेनोभयत्रान्वययोग्यत्वात् तथा दोषानुपपत्तेः । उक्तञ्च—'न लिङ्गवचने भिन्ने न न्यूनाधिकतापि वा । उप-मादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥' इति । इत्थं लिङ्गभेदेऽपि सादृश्येनोपनिबन्धो बाणेन कृतः, यथा—'कामतनयनदीसीमान्तसेतुबन्धेन ......' इति ॥ १० ॥

अपि रामेणेति—अत्र रामेण सह प्राप्त इति विवक्षा, सहार्थशब्दयोगाभावेऽपि तृतीया 'वृद्धो यूने' स्यादाविव तदध्याहारसाध्या ।

---

कौसल्या—महाराज, मैं तो यह कह रही थी कि यह वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा है ।

राजा—सुमित्रे,

तेरा ही पुत्र सत्पुत्र है, जो छाया की भाँति रात दिन वन में रघुकुलश्रेष्ठ राम के पीछे-पीछे चलता है ॥ १० ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । यह आर्य सुमन्त्र आ गये ।

राजा—( सहसा उठकर हर्ष से ) क्या राम के साथ ?

काञ्चुकीय.—न खलु, रथेन ।

राजा—कथं कथं रथेन केवलेन ? ( इति मूर्च्छितः पतति )

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । ( गात्राणि परामृशत )

महाराअ ! समस्ससिहि समस्ससिहि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! कष्टम् । ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि !

राजा—( किञ्चित् समाश्वस्य ) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

काञ्चुकीय.—महाराज ! अथ किम् ।

राजा—कष्टं भो !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेपितो रथः ॥ ११ ॥

---

मूर्च्छित. असज्ञ , तयाभावश्च रामशून्यरथागमनश्रवणेन रामपरावृत्त्याशातन्तुच्छेदाद् बोध्य. ।

ईदृग्विधाः ईदृशा:, लोकोत्तरत्व मनमिकृत्येत्थमुक्तम् । विधिः भवितव्यता, अनतिक्रमणीय: अनुल्लङ्घनीय. ।

**शून्य इति**-शून्य· जनानधिष्ठित·, रथ· यदि प्राप्त आयातस्तर्हि मम मनोरथो रामपरावृत्तिलक्षणो भग्नस्त्रुटित.। एतन्मनोरथभङ्गस्य चमन्मृत्युनिदानत्वमित्याह-नूनमिति । दशरथ नेतु कालेन यमेन रथ. प्रेषितो नूनम् । नूनं पदमुत्प्रेक्षायाम् ।

---

कन्चुकी – नहीं, खाली रथ लेकर ?

राजा—क्या कहा ? खाली रथ लेकर ? ( मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है )

दोनो रानियाँ—महाराज,धीरज धरें,धीरज धरें । (महाराजकी देह सहलाती हैं)

कन्चुकी—हाय, कैसा दारुण दुःख है ? ऐसे महापुरुष को भी इस प्रकार की आपत्ति सहनी पड़ती है । सचमुच, भवितव्यता किसी से नहीं टाली जा सकती ।

राजा—( कुछ सँभलकर ) बालाकि, क्या सुमन्त्र अकेले ही आये हैं ?

कन्चुकी—जी हाँ ।

राजा—हा शोक !

रथ का खाली लौटना मेरे मनोरथ का टूटना है । जान पड़ता है कि—काल ने दशरथ को बुला लाने के लिये ही यह रथ भेजा है ॥ ११ ॥

तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीय—यदाज्ञापयति महाराजः । ( निष्क्रान्तः )

राजा—धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥ १२ ॥

( ततः प्रविशति सुमन्त्रः )

सुमन्त्रः—( सर्वतो विलोक्य सशोकम् )

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहा विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥१३॥

---

ततश्च सुमन्त्रप्रेषणस्यानयनार्थितया यमदूतः सुमन्त्रप्रेषणं दशरथानयनार्थमेवेति गम्यते ॥ ११ ॥

धन्या इति—तटाकपरिवर्तिनः पद्माकरपरिवर्तनशीलाः वने वाताः काननमारुताः धन्याः खलु । धन्यत्वमेव समर्थयितुमुपन्यस्यति—विचरन्तमिति । ये वाताः वने विचरन्तं विहरन्तं रामं यथासुखं यथेच्छं स्पृशन्ति आलिंगन्ति, रामदेहस्पर्श एव वातान् धन्यान् करोतीत्युक्तं या तद्विरहिनस्य स्वस्याधन्यत्वमुक्तम् । स्मरामि चात्र पद्ये दृष्टे—'धन्या खलु वने वाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः । राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः ॥' इति ॥ १२ ॥

एते भृत्या इति—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि स्वनियोगान् हित्वा परित्यज्य रामे विषये स्नेहात् भावबन्धात् जातबाष्पाकुलाक्षाः सञ्जातबाष्पकलुषनेत्राः, चिन्तादीनाः चिन्तया मलिनाः, शोकसन्दग्धदेहाः रामविरहजनितखेदाग्निज्वलितवपुषः विक्रोशन्तं बहु विलपन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति निन्दन्ति ॥ १३ ॥

---

अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर बुलाओ।

कञ्चुकी—जो महाराज की आज्ञा। ( प्रस्थान )

राजा—सरोवरों से होकर गुजरनेवाली वन की हवायें ही धन्य हैं, जो वन में विचरते हुए राम को स्वेच्छा से आलिङ्गन करती हैं ॥ १२ ॥

( सुमन्त्र का प्रवेश )

सुमन्त्र—( चारों ओर देखकर शोक से )

राम के स्नेह से उदश्रु, चिन्ता से म्लानमुख, शोक के मारे दग्धहृदय ये नौकर चाकर भी अपने-अपने कार्यों को छोड़ 'राम राम' की रट लगाते हुए महाराज को धिक्कार रहे हैं ॥ १३ ॥

( उपेत्य ) जयतु महाराजः ।

राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क्व मे ज्येष्ठो रामः—

न हि न हि युक्तमभिहितं मया ।

क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥ १४ ॥

---

क्व मे ज्येष्ठ इति—हे प्रियसुत, सुमन्त्र मे ज्येष्ठः सुतः रामः क्व ? इति प्रष्टुमुपक्रान्तम्, मध्ये मन्दभाग्यस्य स्वस्य रामेण सह सम्बन्धं परिजिहीर्षन्नाह—**क्व ते ज्येष्ठ इति** । ते तव ( वनगमनकालेऽनुवृत्त्या प्रियसुतत्वं व्यञ्जितवतस्तव, न तु वनवासाज्ञाप्रदानेन निर्घृणस्य मम ) ज्येष्ठः प्रथमः पुत्रो रामः क्व ? कुत्रोद्देशे वर्तत इति जिज्ञासा । गुरुजने श्वशुरादौ निरतिशयभक्तिः सर्वातिशायिभक्तिसवलिता विदेहानां मिथिलामहीमहेन्द्राणां शासने स्थितानां देशविशेषाणां भर्तुर्जनकस्य दुहिता सुता सीता च क्व ? सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः लक्ष्मणः वा क्व ? किं ते रामलक्ष्मणसीताख्यास्त्रयोऽपि जनाः सकलजनशोकार्णवकरम् अखिललोकखेदसमुद्रोत्पादकम् (तत्त्वं च रामवनवासाज्ञाप्रदानात्खेदावसरसमर्पणाद्युज्यते) आसन्नं सन्निहितं मरणं यस्य तं मुमूर्षुमित्यर्थः । हतपितृकम् अभाग्यभाजनं निजजनकं मां ते किमप्याहुः किमपि सन्दिदिशुः ? अथ तथा त्वरितमभिधीयतामिति तदाशयः । शिखरिणीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति ॥ १४ ॥

---

( पास आकर ) जय हो महाराज की ।

राजा—भाई सुमन्त्र,

कहाँ है मेरा बेटा राम ?

नहीं नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा,

कहाँ है तुम्हारा बेटा राम ? ऐ राम को प्यार करनेवाले, कहाँ है वह गुरुजनों पर निरतिशय श्रद्धा रखनेवाली सीता ? कहाँ है वह सुमित्रा की आँखों का तारा ? क्या उन्होंने सबके लिए शोकप्रद, आसन्नमृत्यु मुझ अभागे पिता को कुछ संवाद कहा ? ॥ १४ ॥

सुमन्त्र—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः । अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि ।

राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया । नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः । तत् कथ्यताम् । अपि तपस्विनां तपो वर्धते ? अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ?

सुमित्रा—सुमन्त्र ! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाऽप्यबालचारित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति ?

सुमन्त ! बहुवक्कलालङ्किदसरीरा बालावि अबालचरित्ता भत्तुणो सहधम्मआरिणी अम्हे महाराजं च किञ्चि णालवदि ।

सुमन्त्र—सर्व एव महाराजम्—

राजा—न न । श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैरेभिर्नामधेयैरेव श्रावय ।

---

अमङ्गलवचनानि अशुभसूचकवाक्यानि । तस्यश्च राज्ञोक्तौ आसन्नमरणस्वार्थनिधानेन बोध्यम् ।

तपस्विना नागरभोगजिहासया तापसत्वं परिगृहीतवतां रामादीनां अधुनातन् । तपो वर्धते नियमादिकं निर्विघ्नमनुष्ठीयते । स्वाधीनानि स्वभर्तृनुवर्तितगुप्तिवशाद् आत्मवशे स्थितानि, अकुतोभयसञ्चाराणीति यावत् ।

बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा अधिकमङ्गलवल्कलवासिनी, एतेन सीतायाः धारीरकल्यनव्युत्पत्तेन कार्यदशाद्योतितमुखेन प्रौढिमा । बाला अल्पवयस्का, अबालचारित्रा प्रौढव्यवहारा ।

तेषां सर्वनाम्ना निर्देशया-

न नेति निषेधश्चैव महाप्रेमपुत्रप्रेमपराधीनस्य राज्ञः.

---

सुमन्त्र—महाराज, आप ऐसे अमङ्गल वचन अपने मुख से न निकालें । आप उन्हें शीघ्र देखेंगे ।

राजा—सचमुच मैंने ठीक नहीं कहा । तपस्वियों के विषय में ऐसे प्रश्न ठीक नहीं । अच्छा बताओ—तपस्वियों का तप तो निर्विघ्न है ? वन में निरशङ्क विचरती हुई वैदेही थकती तो नहीं ?

सुमित्रा—सुमन्त्र, बहुत वल्कलों से भूषितशरीरा बाला होकर भी आदर्शचरित्रा, पतिसहचारिणी वह पतिव्रता सीता हमलोगों तथा महाराज को कुछ कह तो न रही थी ?

सुमन्त्र—सबने महाराज को.........

राजा—नहीं नहीं, कर्णरसायन तथा आतुर हृदय के लिये जीवनौषधिस्वरूप

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

राजा—राम इति। अयं रामः। तन्नामश्रवणात् स्पृष्ट इव मे प्रतिभाति। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री।

राजा—इयं वैदेही। रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः।

सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः ?

राजा—रामो, वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।

---

सहृतादयअकस्याश्यग्रत्ताव्यअक। योऽरसायनैः, श्रुतिप्रियैः हृदयानुरोधैः,मानसिकव्यथाप्रशमनपटुभिः। एप चार्थं आहु रदस्य भावप्रधानस्याश्रयणेन लभ्य इति बोध्यम्

अक्रमः अनुपयुक्तः क्रमः, सीताया मध्यनिर्देशस्योपपन्नत्वेनैवमुक्तम्।

**रामलक्ष्मणयोरिति**—'रामो लक्ष्मण सीता' इत्यस्याभिधानस्याक्रमत्वं ब्रुवाणेन राज्ञा 'रामः सीता लक्ष्मणः' इत्यय क्रमो निजाभिलषितो व्यक्तीकृतः, तदुपपत्तिमप्याह—अत्रापीति। मैथिली सीता अत्र नामधेयनिर्देशावसरेऽपि रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठतु, एकतो रामस्य नामान्यतश्च लक्ष्मणस्य नामाभिधीयमानं सीताया मध्येऽभिधीयमानं नामावृणोत्वित्यर्थः। अत्रापीत्यपिना नामधेयनिर्देशेऽपि मध्यगत्वेनाभिप्रेतायाः सीताया वनवासावस्थायां सर्वदैव रामलक्ष्मणान्तरालवर्तित्वमभिप्रेत-

---

प्रत्येक का नाम लेकर उनके संवाद सुनाओ।

सुमन्त्र—चिरंजीवी राम।

राजा—अच्छा राम, यह राम, राम का नाम सुन लेने से ऐसा जान पड़ता है मानो हमने उसे छाती से लगा लिया हो। हाँ फिर ?

सुमन्त्र—चिरंजीवी लक्ष्मण।

राजा—चिरंजीवी लक्ष्मण। अच्छा आगे।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता।

राजा—यह सीता ! 'राम, लक्ष्मण, सीता' यह क्रम तो ठीक नहीं।

सुमन्त्र—तो फिर कौन-सा क्रम ठीक होगा ?

राजा—राम, सीता, लक्ष्मण ऐसा कहिये।

यहाँ नामोच्चारण में भी मैथिली राम और लक्ष्मण दोनों के बीच में ही रहे,

बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥ १५ ॥

सुमन्त्र —यदाज्ञापयति महाराजः । आयुष्मान् रामः ।

राजा—अयं रामः ।

सुमन्त्र —आयुष्मती जनकराजपुत्री ।

राजा—इयं वैदेही ।

सुमन्त्र —आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । राम ! वैदेहि ! लक्ष्मण ! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः ।

सकृत् स्पृशामि वा रामं सकृत् पश्यामि वा पुनः ।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥ १६ ॥

---

मभिव्यज्यते । तत्र कारणमाह—बहुदोषाणीति । अरण्यानि वनानि बहुदोषाणि नानाविधभयानि, अत एव पाल्कसापन्ननिवासानानि एव स्थिता, एषा सनाथा उभयोरपि वन्दितरामलक्ष्मणरूपरक्षितृभिः पालिता वने निर्भयावस्थाना । एतत् सर्वं दशरथस्य मनोदशां निरूपयत् वात्सल्यातिशयं पोषयति ॥ ५ ॥

परिष्वजध्वम् आलिङ्गत ।

व्याकुलतावस्थयैव भ्रष्टमपि पुत्रान्—सकृदिति । सकृत् एकवारं रामं स्पृशामि वा पुनः सकृत् तं पश्यामि, ( रामदर्शनस्पर्शनयोरन्यतरनियमाय वाप्रतिपादनेन वात्सल्यमेव ) तत्फलमाह—गतायुरिति । गतायुः मुमूर्षुः यथा अमृतेनाऽऽप्यायितेन जीवति तथा रामस्य दर्शनेन स्पर्शनेन वा मया जीवितव्यम् । इति मम मतिः निश्चयात्मिका बुद्धिः तपस्या स्वस्यावस्थाभाविमरणसूच्यते स्पष्टमेव ॥ १६ ॥

---

क्योंकि वन में बहुत से भय हुआ करते हैं, दोनों के बीच में रहने से यह निरापद रहेगी ॥ १५ ॥

सुमन्त्र—जो महाराज की आज्ञा । चिरजीवी राम ।

राजा—यह राम ।

सुमन्त्र—आयुष्मती जनकनन्दिनी सीता ।

राजा—यह सीता ।

सुमन्त्र—चिरजीवी लक्ष्मण ?

राजा—यह लक्ष्मण । राम, सीता, लक्ष्मण, आओ मुझसे लिपट जाओ, मेरे प्यारे बच्चों ।

मैं फिर कभी न कभी रामसे मिलूंगा, उसे देखकर आँखें शीतल करूँगा, इस सम्भावनासे मैं उसी प्रकार जी रहा हूँ, जैसे आसन्नमरण जीव अमृत की बूंदोंसे॥

सुमन्त्र --शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराज शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ १७ ॥

राजा--कथमनुक्त्वैव वनं गताः ? ( इति द्विगुणं मोहमुपगतः )

सुमन्त्र --( ससम्भ्रमम् ) बालाके । उच्यताममात्येभ्यः--अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति । .

---

विज्ञापयितुम्--सन्देष्टुम्, आरब्धा आरब्धवन्तः अत्र कर्तरि क्तस्य मुख्यम् । कमपीति । कमपि पितरि श्रद्धा धार्ग्याद्धि पुत्रैस्तथाविधाया स्थितौ पितुराश्वासनायोपयुज्यमानं सदेशनीयम् अर्थं (वनवासस्य तातवचनपालनावसरप्रदायित्वेन नानानदनदीकाननसुखविहारावसरसमर्पकत्वेन चास्माकं कृते प्रमोदावहत्वमेवेत्थं रूप, अयोध्यावासावस्थायां भवच्चरणशुश्रूषणावसरोऽस्माभिरनुदिनं लभ्यते स्म, इदानीं स विच्छिद्यमानोऽपि पुनर्नालभ्य इति कियन्ति हायनानि भवता स्वीयो वृद्धो देहो न विपद्य विषादनोय इत्येवंविधो वान्यादृशो वात्र सन्देशाय )चिरं बहुकालं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः प्रचलितोष्ठपुटाः अधरस्फुरणानुमितवचनप्रयत्ना अपीति यावत्, बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् सद्यः प्रियपितृपरिजनादिवियोगप्रभवेन स्तम्भितो निरुद्धव्यापार. कण्ठो यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् अनुक्त्वा चिन्तितमपि असन्दिश्यैव वनं गताः । एतेन तेषामवचनस्य शोकवेगपराहतचित्तताप्रसूतत्वेन कारणान्तरजन्यता निरस्ता, दशरथादीन् प्रति तेषां भावातिशयश्च व्यञ्जितः ॥१७॥

अनुक्त्वैवेति—मया जनितस्य वनवासात्मकखेदस्यातिभूमिप्राप्तिरेव वचनप्रतिबन्धकरीति कथमहमेव तथा भावे निदानमिति राज्ञो भाव , अत एव च द्विगुणमोहोपगतिसङ्गतिः ।

---

सुमन्त्र--शृङ्गवेरपुर मे रथ से उतर कर अयोध्या की ओर मुख करके सब ने महाराज को सन्देश कहने का उपक्रम किया ।

न जाने कौन सी बात बड़ी देर तक सोचते रहे, कुछ कहने के लिये उनके ओठ फड़के, किन्तु अश्रुवेग से कण्ठावरोध हो जाने के कारण बिना कुछ कहे ही वे वन चले गये ॥ १७ ॥

राजा—क्या, बिना कुछ कहे वन चले गये ? ( यह कहकर घोर मूर्च्छा में पड़ जाता है )

सुमन्त्र—( हड़बड़ाहट के साथ ) बालाकि, मन्त्रियों से जाकर कहो कि

काञ्चुकीयः—यथा । ( निष्क्रान्तः )

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

महाराज ! समस्समिहि समस्समिहि ।

राजा—( किञ्चित् समाश्वस्य )

अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये ! न त्वां पश्यामि चक्षुषा ।

रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥ १८ ॥

पुत्र ! राम ! यत् खलु मया सन्तत चिन्तितम्—

राज्ये त्वामभिषिच्य सम्परपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः

कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्यात्मनः सन्ततम् ।

इत्यादिश्य च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया

---

अङ्गमिति । कौसल्ये, मे मम अङ्गं शरीरं स्पृश (यत स्वां सन्निहितां प्रतीत्य किञ्चिदाश्वासितहृदयत्वेन सुखय) त्वां चक्षुषा रूपदर्शनसामर्थ्येन नयनेन न पश्यामि ( अयान्त विरहदुःखनितान्तेन यदि मदीया दर्शनशक्तिर्नष्टा स्यात् तदा तु दर्शनेनैव तव सान्निध्यं ज्ञात्वाङ्गस्पर्शनेन त्वां स्वपार्श्वस्थितां सूचनाय नाह्वयिष्य-मिति भावः ) रामं प्रति तद्विषये गता (न तु प्रविना, एतेन राज्ञो विरहत्वमुक्तम्) अद्यापि अधुनाऽपि न निवर्तते न परावर्तते । एवञ्च बुद्धिविरहितस्य ममाकार्य-कारित्वं सम्प्रवृत्तमेऽपि मदाश्वासस्थानं प्राप्तव्यानमिति भावः ॥

राज्ये त्वामिति । त्वां राज्ये नृपाधिकारेऽभिषिच्य व्यवस्थाप्य सत्पते: प्रजानामधिपस्य स्वप्रभवस्य राज्ञो लाभात् प्रजाः प्रकृतिजनान् कृतार्थाः कृतकृत्याः कृत्वा विनाय त्वत्सहजान् तव सहजन्मनो भरतादीन् भ्रातॄन् समानविभवान् स्वतुल्यभोग्यार्थसम्पदधिकारिणः कुर्विति च ते तुभ्यमादिश्य व्याहृत्य इतोऽयोध्यायाः तपोवन

---

महाराज की दशा असाध्य हो चुकी है ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा । ( जाता है )

दोनों रानियाँ—महाराज, धीरज धरें, धीरज धरें ।

राजा—( कुछ सँभलकर )

कौसल्या, मेरे अङ्गों पर हाथ फेरो मुझे तुम नहीं दीखती हो । राम की ओर गया हुआ मेरा हृदय अभी नहीं लौट रहा है ॥ १८ ॥

बेटा राम, मैं सदा सोचता जा रहा था कि—

तुम्हें राजगद्दी पर बैठाकर, प्रजावर्ग को उत्तमराजा के लाभ से कृतार्थ कर और तुम्हें यह कहकर कि 'अपने भाइयों को सदा समदृश ऐश्वर्यशाली बनाये रखना'

कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥ १९ ॥
सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

गतो रामः, प्रियं तऽस्तु, त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति ॥ २० ॥

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

राजा—( ऊर्ध्वमवलोक्य ) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ?

( प्रविश्य )

---

तपसे समुपयुज्यमान किमपि काननं गन्तव्यामिति (यन्मया सन्तत चिन्तितम्) तत् चिन्तित वस्तु निरदोषम् अखिलम् कैकेय्या अहो एकक्षणे क्षणमात्रेण अन्यथाकृतम् विपरीतता गमितम् । अहो कष्टम् ' पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकस्य स्वस्य वनगमने चिन्त्यमाने पुत्रस्यैव वनगमनं विपरीत सद्वपर्यंकमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

**गत इति** । रामः गतः, वनमिति योजनीयम् । ते प्रियमस्तु त्वं तद्वनगमनश्रवणेन प्रीता भव । पुत्र भरत क्षिप्रमानीयताम् अविलम्बमाकार्यताम्, पाप रामनिर्वासनस्वरूपम्, सफलं भरताभिषेकेण फलेन सहित यथा तथा अस्तु जायताम्, रामो वन गतो भरताय राज्यं देहीति राज्ञः सोल्लुण्ठवचनम् ॥ २० ॥

श्रवणसन्दग्धेति—श्रवणस्य भ रामस्मरणद्वारा सन्तापकत्वादित्युक्तिः । पितर. पितृभूता , पितृपितामहादयः पूर्वजाः, तद्दर्शनस्य सन्निहितमरणसूचकत्वम् । एतच्च नियतमरणव्यापक लिंगमरिष्टम् । तदुक्तम्—

'भकाककङ्कगृध्राणा प्रेताना यक्षरक्षसाम् । पिशाचोरगनागाना भूताना विकृतामपि ॥
यो वा मयूरकण्ठाभ विधूम वह्निमोक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्यु स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ ( सु सू. अ. ३० )

---

मैं छुटकारा प्राप्त कर, इस वृद्धावस्था को तपोवन में व्यतीत करूँगा। परन्तु हाय, इन बातों को कैकेयी ने क्षणभर में पलट डाला ॥ १९ ॥

सुमन्त्र, जाओ, कैकेयी से कह दो—

राम वन चले गये, तुम अपना मनोरथ पूर्ण कर लो, मुझे भी मेरे प्राण छोड़ चले । अब तुम अपने बेटे को बुलवा लो, तुम्हारा पापाध्याय पूरा हो जावे ॥२०॥

सुमन्त्र—जो आज्ञा ।

राजा—( ऊपर की ओर देखकर ) ओ, राम की इस विपद्गाथा से दग्ध मुझको सान्त्वना देने के लिए पितृगण आ गये हैं । कोई है यहाँ ?

( कञ्चुकी का प्रवेश )

सर्वे—हा हा महाराजः हा हा महाराजः।
हा हा महाराओ। हा हा महाराओ।
( निष्क्रान्ताः सर्वे )
द्वितीयोऽङ्कः।

## अथ तृतीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति सुधाकारः )

सुधाकारः—( सम्मार्जनादीनि कृत्वा ) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्य-
मोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य

सम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि। ( स्वपिति )
सम्भवअस्स आणत्तं। जाव मुहुत्तं सुविस्सं।

( प्रविश्य )

भटः—( चेटमुपगम्य ताडयित्वा ) अह्नो दास्याःपुत्र! किमिदानीं कर्म
अह्नो दासीएपुत्त! किं दाणि कम्मं

---

यथा—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति ॥२१॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते प्रतिमानाटक-प्रकाशे द्वितीयोऽङ्कः।

सुधाकार इति—सुधा चूर्णम्, तां करोतीति विग्रहेण भवनभित्तिधवलीकरणाय सुधालेपनाधिकृतः सुधाकार इत्युच्यते। स चात्र दशरथप्रतिमागृहपरिमार्जनेऽधिकृतो वेदितव्यः।

आर्येति—आर्यसम्भवकस्य पूज्यस्य सम्भवकाख्यस्य काञ्चुकीयस्य, आज्ञप्तम् आदेशः। सम्बन्धसामान्ये षष्ठी।

अह्नो इति—निपातोऽयं सकोपामन्त्रणार्थः। दास्याःपुत्रेति निन्दार्थम्, अदासी-

---

सर्वे—हा महाराज, हा महाराज! ( सबका प्रस्थान )
द्वितीय अङ्क समाप्त ॥ २ ॥

( सुधाकार का प्रवेश )

सुधाकार—( झाड़ू लगाकर ) अच्छा, आर्य संभवक द्वारा आदिष्ट सब कार्य तो कर लिए, अब थोड़ी देर सो लूँ। ( सोता है )
( भट का प्रवेश )

भट—(चेट के पास जाकर तथा उसे पीट कर) अरे दासीपुत्र, अब काम क्यों

न करोपि ? ( ताडयति )

ण करेसि ?

सुधाकार —( बुद्ध्वा ) ताडय मां ताडय माम् !

तालेहि म तालेहि म ।

भट —ताडिते त्वं किं करिष्यसि ?

ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ?

सुधाकार —अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति ।

अधण्णस्स मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।

भट —बाहुसहस्रेण किं कार्यम् ?

बाहुसहस्सेण किं कय्यं ?

सुधाकार —त्वां हनिष्यामि ।

तुवं हणिस्सं ।

---

पुत्रस्यैव तथा सम्बोध्यमानत्वात् । 'षष्ठ्या आक्रोशे' इति षष्ठ्या अलुक् । कर्म स्वनियोगम्, कर्त्तव्यत्वेनादिष्ट व्यापारम् ।

ताडयेति —स्वकर्त्तव्यस्य समापितत्वेन गर्वितस्य तस्येत्यमुक्तिर्निरपराधताडनस्य बलवदनर्थानुबन्धित्वमावेदयति ।

ताडिते इति—'त्वयि' इति विशेष्यमध्याहार्यम्, अथवा भावे क्त, तथा च सति ताडने कृतेऽपि त्वं किं करिष्यसीति स्वाभिमान. ।

कार्त्तवीर्यस्य तदाख्यस्य, तथा हि स्मर्यते—'कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् । योऽस्य सङ्कीर्त्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानव ॥ न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते ध्रुवम् ॥' इति ।

---

नहीं करता ? ( पीटता ही है )

सुधाकार—( जागकर ) मार लो, मुझे मार लो ।

भट—मारूँगा ही तो तुम क्या करोगे ?

सुधाकार—मैं अभागा सहस्रबाहु की तरह हजार हाथ नहीं पाया ।

भट—हजार हाथ होने पर क्या करते ?

सुधाकार—तुमको मार डालते ।

भटः--एहि दास्याःपुत्र ! मृते मोक्ष्यामि । ( पुनरपि ताडयति )
एहि दासिएपुत्त ! मुदे मुञ्चिस्सं ।

सुधाकारः--( रुदित्वा ) शक्यमिदानीं भर्त ! मेऽपराधं ज्ञातुम् ।
सक्क दाणि भट्टा ? मे अवराहं जाणिदुम् ।

भटः--नास्ति किलापराधो नास्ति । ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य
णत्थि किल अवराहो णत्थि । ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स
रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य
रामस्स रज्जविब्भट्टकिदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिणो दसरहस्स
प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्त-
पडिमागेहं देक्खिदुं अज्ज कौसल्लापुरोएहिं सव्वेहिं अन्तेउरेहिं इह आअन्त-
व्यमिति । अत्रेदानीं त्वया किं कृतम् ?
व्वं त्ति । एत्थ दाणिं तुए किं किदं ?

सुधाकार--पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम् ।
पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगिहं ।

---

मृत इति--त्वयि मृत एव त्वां त्यक्ष्यामीति भाव । जीवन्तं त्वां न परित्यजामीति हृदयम् ।

अपराधमिति--जानातेरिदं कर्म, शक्यमित्यत्र भावे प्रत्यय , जानातेः कर्तरि तुमुन्, तेन कर्मणि द्वितीया । एतादृशस्थले एवमेव व्यवस्थापनीयम् ।

नास्तीति--काक्वार्थविपर्ययः अस्त्येव तवापराध इति भाव. विभ्रष्टं विभ्रंश. । सन्दिष्ट. आज्ञप्त , त्वमिति शेष. । प्रतिमागेहं मृताना राज्ञा स्मृतिचिह्नभूताः प्रतिमा यत्र स्थाप्यन्ते तद् गृहम् ।

अपनीतेति--सुधाकारस्य स्वकृतकार्यताप्रदर्शनार्थेयमुक्ति । अपनीत दूरीकृतं

---

भट--आः, अरे दासीपुत्र, अब तो खतम करके ही छोड़ूंगा । (फिर पीटता है)

सुधाकार--(रोते हुए) तो क्या इस समय आप हमारा अपराध बता सकते हैं;

भट--कुछ अपराध नहीं, सचमुच कुछ अपराध नहीं । भला मैंने जो तुमको आज्ञा दी थी कि--राजकुमार राम राज्यच्युत होकर वन चले गये उनके शोक से महाराज ने प्राण दे दिये, उनकी प्रतिमा का दर्शन करने के लिये उनका समस्त अन्तःपुर प्रतिमागृह जाने वाला है । बता, तूने यहाँ क्या काम किया है ?

सुधाकार--देख लीजिये, प्रतिमागृह के अपरिमार्जन से पक्षियों ने घोसले बना

सुधावर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा वालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम्?

सुधावण्णअदत्तचन्दणपञ्चङ्गुला भित्तीओ। ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा वालुआ। एत्थ दाणिं मए किं ण किदं?

भट—यद्येवं विश्रब्धो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि।

जइ एव्वं विस्सद्धो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि।

(निष्क्रान्तौ)
(प्रवेशकः)
(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

---

कपोतसन्तानकं कपोतनीड इत्यर्थः। चित्ररचितासु हि भित्तिषु कपोतादयो नीडानाबध्नन्ति। भित्तौ सुधावर्णकं दत्त्वा दत्तं निवेशितं चन्दनपङ्कपञ्चाङ्गुलं चन्दनपङ्काङ्गुल्याकारो यासु ताः। अवसक्तैः संयोजितैः माल्यदामभिः पुष्पमालाभिः शोभितुं शीलमेषामिति तथाभूतानि। वालुकाः सूक्ष्मसिकताः पादस्पर्शसुखार्थं ता प्रकीर्यन्ते। विश्रब्धः कृत्यकर्तव्यतया शङ्कारहितः इत्यर्थः।

प्रवेशक इति—प्रवेश एव प्रवेशकः। तल्लक्षणं यथा—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। सङ्क्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।
एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः। तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः॥

'शिरसानीयन्तां पुत्र.' इति कुलगुरुसन्देशेन अस्मदागमनं स्मृतिम् मन्यसे

---

लिये थे, वे हटा दिये गये हैं, दीवारें पुतवा दी गयी हैं, उन पर चन्दनाङ्गुलि का आकार बना दिया गया है, दरवाजे पुष्पमालाओं से सजा दिये गये हैं, सजावट के लिये चारों ओर रेत बिछा दी गई है। आप ही कहिये-यहाँ मैंने क्या नहीं किया!

भट—यदि ऐसी बात है तो इत्मीनान से जाओ, मैं भी मन्त्रीजी को तैयारी की सूचना देता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)
(प्रवेशक)
(रथ में बैठे भरत और सारथि का प्रवेश)

भरत —( सावेगम् ) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः

सूत — हृदयपरितापः खलु महान्

भरत —किमाहुस्तं वैद्याः

सूत — न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

भरत —किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूत — भूमौ निरशनः

भरत —किमाशा स्याद्

सूत — दैवं

भरत — स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ १ ॥

---

तत्प्रवेशमाह—सूत इति ।

मातुलेति—मातुलपरिचयात् मातुलस्य युधाजितः परिचयात्, तद्गृहे भूशनिवासात् । अविज्ञातवृत्तान्तः अविदितराजसमाचारः । दृढं नितान्तम् । अकल्यशरीरः अस्वस्थदेहः । उच्यतां राज्ञोऽस्वस्थतायाः सामान्यतो ज्ञातत्वेनादितायां विशेषजिज्ञासायां शान्तये विविच्य प्रतिपाद्यतामित्यर्थः ।

भरतस्य प्रश्नान् सूतेन दत्तान्युत्तराणि चकपद्येनैवाह–पितुरिति । निपुणाः दक्षाः, हृदयपरितापस्य निदानापगमस्यासाध्यतया शमयितुमक्षमेव वैद्याना तथा प्रसरादिति ।

दैवं भाग्यम्, तदेवात्र राजजीवने आशामुज्जीवयितुमीश इतिभावः । स्फुरति हृदय

---

भरत—( चिन्तापूर्वक ) सारथि, चिरकाल तक मामाजी के यहाँ रहने से मुझे घर की कुछ खबर नहीं मिली, मैंने सुना था महाराज अधिक रुग्ण हैं, तुम तो कहो—मेरे पिता को कौन व्याधि है ?

सूत—दारुण मानसिक सन्ताप ।

भरत—वैद्यों ने क्या कहा ?

सूत—उन्हें कुछ पता नहीं चला ।

भरत—खाने और सोने की क्या व्यवस्था है ?

सूत—भूमि पर निराहार पड़े रहते हैं ।

भरत—क्या उनके जीने की आशा है ?

सूत—दैव जाने ।

भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाओ ॥ १ ॥

सूत — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । ( रथं वाहयति )

भरत —( रथवेगं निरूप्य ) अहो नु खलु रथवेगः । एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया

नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे ।

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं

रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

---

सोत्कण्ठतया त्वरया स्पन्दत इत्यर्थः । जीवत्पितृचरणदिदृक्षादु स्यस्य मम शान्तये रथमारवानु चालयति नाव । सवादपद्यमिति न विशिष्यव्याख्यामर्हति ॥ १ ॥

अहो न खल्विति—आश्चर्यकरस्तव रथस्य वेग इत्यर्थः ।

**द्रुमा इति**—द्रुतया शीघ्रया रथगत्या रथचलनेन क्षीणविषया अल्पीभूतदृष्टिविषयपातिद्रुममाणा द्रुमा वृक्षा धावन्तीव धावन्त इव प्रतीयन्ते । रथवेगमहिम्ना त्वरया दृश्यमाना अपि द्रुमावयवा दूरमुपसर्पन्तो दृग्गोचरता जहतीति तेषां धावनमुत्प्रेक्षते । उद्वृत्ताम्बु उद्भ्रान्तजला मही भूमिः नदीव नेमिविवरे प्रधिरन्ध्रे निपतति निपतन्तीव भाति । भूभागविशेषे विद्यमाना जलाशया रथवेगेन रथस्थानां दृष्टौ चलज्जला इति नदीस्थिताया भुवो नदीभावेन नेमिप्रवेश उत्प्रेक्ष्यते । अराणां नेमिनाभिमध्यवर्तिदण्डाकारावयवानां व्यक्तिः स्फुटावभासता पार्थक्येन प्रतीयमानता नष्टा तिरोहिता जवात् रथवेगात् चक्रवलयं चक्रमण्डलं स्थितमिव गतिरहितमिव अतित्वरितगामिनो रथचक्रस्य त्वरितभ्रमणं नोपलक्ष्यत इति स्थितत्वप्रतिभासः । अश्वोद्धूतं वाजियुगाघातोत्थापितं रजश्च पुरतः अग्रे पतति उद्गच्छति, न अनुपतति न रथमनुगच्छति, निमेषमात्रेण रजोऽनुपतनगोचरदेशातिक्रमणादित्यर्थः उत्प्रेक्षासहकृता स्वभावोक्तिरलङ्कारः । शिखरिणीवृत्तम् ॥ २ ॥

---

सूत—जो आज्ञा । ( रथ चलाता है )

भरत—( रथ के वेग को देखकर ) वाह,

रथ जिस शीघ्रता से भागा जा रहा है ? ये वृक्ष रथ की द्रुतगामिता में क्षण भर में ही आँखों से ओझल हो गये, भँवर से युक्त जलवाली नदी की भाँति पृथ्वी धुरी के छिद्र में गिर रही है, बड़ी तेजी से घूमने के कारण चक्र के आरे दीख नहीं पड़ रहे हैं और धूलि घोड़ों की टापों से उड़कर सामने ही गिरती है, पीछे नहीं ॥ २ ॥

सूत—आयुष्मन् ! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम् ।

भरतः—अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः सम्प्रति हि,

**पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित-**
**स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ।**
**सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया**
**परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥३॥**

सोपस्नेहतया-वृक्षबाहुल्यनिमित्तकापक्लेदवत्तया। त्वरता उत्कण्ठिता, स्वजनदर्शनानन्तरमाविस्वामोदकल्पनप्रवृत्तेत्यर्थः, अत्र मत्वरतेति त्वरितेति वा साधुर्बोध्यम् ।

**पतितमिवेति**—पितुः पादयोश्चरणयो शिरः मम मस्तकं पतितमिव, किञ्चित्कालानन्तरं राजानं प्रणंस्यामीति सोत्कण्ठतयाऽधुनैव शिर पितृपादयो. पतितं प्रत्येमीति भाव. । स्निह्यता सुतवात्सल्यद्रुतान्तरङ्गेणैव राज्ञा दशरथेन समुत्थापितः पादप्रदेशादाकृष्य स्वाङ्कमारोपित इवास्मि । भ्रातर रामाद्य त्वरित मदागमनमाकर्णनोत्तरकालमविलम्बेनैव उपगता. मातुलकुलादुपागत मा परिवार्य स्थिता इत्यर्थ. । मातरः माम् अश्रुभिः पुत्रागमनप्रसूतानन्दाश्रुभि क्लेदयन्तीव आर्द्रयन्तीव, सदृश इति । यस्यामेव कायिकस्थितावितो मातुलकुल गतस्तदवस्थ एव परावृत्त इति, महानिति यावदाकारो गतस्तत उपचितावयव सन् परावृत्त इति, व्यायत परिशीलितव्यायामश्चेति भृत्यै. सेवया चरणसंवाहनादिना स्तुत इवाहम् । भृत्या हि चिरादुपेतं स्वामिपुत्रमुपलभ्य चरणसेवनादिकुर्वाणास्तत्प्ररोचनार्थं यथास्वबुद्धि पुरोदीरितमिवाभिदधतीति स्थितिः। आत्मनः वेष कैकयदेशोचितपरिधानीयनिवेश भाषा तद्देशवासाव-

सूत—वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अयोध्या समीप में ही है ।

भरत—अहो, आत्मीय जनों के दर्शनार्थ मेरा मन कितना उतावला हो रहा है । क्योंकि, इस समय—

*ऐसा लग रहा है कि मैं पिताजी के चरणों में नत हूँ और उन्होंने* वात्सल्य से मुझे गोद में उठा-सा लिया है । भाई शीघ्रता से आकर मुझे घेर से रहे हैं और माताओं की आँखें आनन्दाश्रु बरसा रही हैं, जिससे मैं भी भीगता-सा जा रहा हूँ । भरत जैसे जाने के समय थे, अब भी वैसे ही हैं, एक ने कहा,

सूत --( आत्मगतम् ) भोः ! कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाश-
मुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।
जानद्भिरप्ययमस्माभिर्न निवेद्यते । कुतः,

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ? ॥४॥

( प्रविश्य )

---

त्यापरिशीलनमात्रप्रभावेनापि बलान्मुखान्निर्गच्छन्ती सरस्वती च सौमित्रिणा लक्ष्मणेन परिहसितमिव पश्यामि । लक्ष्मणो मम भाषां वेषं च भेदेन प्रतिपद् परिहसिष्यतीति तद्वचनमिवावगच्छामीति भरतस्योत्कण्ठाकृता प्रतीतिः । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मत्तद्विरदच्छन्दो वृत्तमेव ॥ ३ ॥

उदर्के उत्तरकाले निष्फलाम् पितृविपत्तिदर्शनेन फलयोगं नानुभविष्यन्तीम् । आशां पितृप्रणामनमस्कारमातृवात्सल्यभृत्यसेवादिप्राप्तिविषयं मनोरथम् । जानद्भिरिति । सर्ववृत्तान्तज्ञोऽपि नाहं किमपि भरताय निवेदयामीति ।

तत्र कारणमाह--**पितुरिति**-पितुः प्राणपरित्यागं मृत्युम्, मातुः जनन्याः ऐश्वर्यलुब्धताम् धनलोलुपताम्, ज्येष्ठभ्रातुः रामचन्द्रस्य प्रवासं वनगमनरूपं देशान्तरगमनं च ( एतान् ) त्रीन् दोषान् कः वक्ता अभिधास्यति ? भरताय निवेदयिष्यति ? नाहं क्षम इति भावः । पितृमरणजननीलोभभ्रातृप्रवासानां त्रयाणामेकैकस्य मर्मव्यथकत्वेन महतां तेषां भरतं प्रति भरताय निवेदनमसुकरमिति तात्पर्यम् ॥ ४ ॥

---

दूसरे ने कहा-नहीं, वृद्ध पके और पुष्ट भी हो गये हैं। इस तरह भृत्यगण मेरी स्तुति प्रीति से करते हैं और लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेशभूषा तथा भाषा पर परिहास कर रहा है ॥ ३ ॥

सूत—( स्वगत ) ओह ! कितने शोक की बात है कि महाराज की मृत्यु से अनजान होने के कारण भरत मिथ्या आशा लिये अयोध्या में प्रवेश करेंगे और सकलवृत्तान्ताभिज्ञ होने पर भी मैं इन्हें कुछ भी नहीं बता रहा हूँ। बताऊँ भी कैसे ?

पिता का स्वर्गवास, माता का राज्यैश्वर्यलोभ, बड़े भाई का वनवास, एक एक से बढ़कर इन तीनों दोषों को कहने के लिए कौन जीभ हिलाएगा ? ॥ ४ ॥

( भट का प्रवेश )

भट —जयतु कुमारः।

भरत —भद्र, किं शत्रुघ्नो मामभिगतः?

भट —अभिगतः खलु वर्तते कुमारः। उपाध्यायास्तु भवन्तमाहु॰।

भरत —किमिति किमिति?

भट —एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्या प्रवेक्ष्यति कुमारः।

भरतः—बाढमेवम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छ त्वम्।

भट —यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्त)।

भरत —अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये। भवतु, दृष्टम्। एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्त्तं विश्रमिष्ये। तदुभय भवि-

---

उपेति—उपाध्याया वसिष्ठवामदेवादय।

एकेति —एकनाडिकावशेष एका नाडिका दण्डोऽवशेषो यस्य तथा।

कृत्तिकेति—कृत्तिकाविषय कृत्तिकानक्षत्रयुक्त काल।

बाढम्—अङ्गीकारे। एव गुर्वादिष्टेन प्रकारेणानुतिष्ठामीति भाव। नातिक्रान्तपूर्वं न लङ्घितपूर्वम्।

विश्रति–विश्रमिष्य दीर्घाध्व क्लृनश्रममपाकरिष्यामि। आत्मनेपदमपाणिनीयमिति गणपतिशास्त्रिण।

वृक्षेति–वृक्षान्तरालाविष्कृते वृक्षावकाशलक्षिते। उभय श्रमनिवृत्ति देवसम्भावना च, उपोपविश्य उपकण्ठे क्षणमुपविश्य। सत्समुदाचार शिष्टाचार। एतेन श्रमा-

---

भट—जय हो राजकुमार की।

भरत—भद्र, क्या शत्रुघ्न आये हैं।

भट—कुमार तो आ ही रहे हैं, किन्तु उपाध्यायों ने आप को कहा है!

भरत—क्या कहा है।

भट—कृत्तिका एक दण्ड रह गया है, उसके बीत जाने पर रोहिणी में कुमार अयोध्या में प्रवेश करें।

भरत—बहुत अच्छा। मैंने कभी गुरुजनों के वचन नहीं टाले। तुम जाओ।

भट—जो आज्ञा। (जाता है)

भरत—किस जगह तबतक विश्राम करूँ। अच्छा, देख लिया। वृक्षों के अन्त से होकर एक मन्दिर देख रहा हूँ, वहीं चलकर कुछ देर विश्राम करूँ, इस

ष्यति—दैवतपूजा विश्रमश्च। अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः। तस्मात् स्थाप्यतां रथः।

सूत—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। ( रथं स्थापयति )

भरत—( रथादवतीर्य ) सूत! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूत—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। ( निष्क्रान्तः )

भरत—( किञ्चिद् गत्वावलोक्य ) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः, अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा वालुकाः। किन्तु खलु पार्वणोऽयं विशेषः? अथवा आह्निकमास्तिक्यम्? कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं

---

पाकरणदेववन्दनसदाचारपालनात्मकं प्रयोजनत्रयमत्र वृक्षावकाशे समुपवेशनेन साध्यत इत्यहो सौकर्यमिति भावः॥

साध्वित्यादि—साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता साधुना दातस्वान्तेन देवादिपूजा-रसिकेन मुक्तैः अवकीर्णैः पुष्पैः लाजैश्च आविष्कृताः प्राकट्यं गमिताः पार्वणः पर्वणि तिथिविशेषे भवः। अयं बल्यादिकृतः। आह्निकम् अहन्यहन्यनुष्ठीयमानम्। आस्तिक्यम् अस्ति दिष्टमिति मतिर्येषां ते आस्तिकाः तेषां भावः कर्म वा आस्ति-क्यम्। दैवतस्य स्कन्दाद्यन्यतमस्य। प्रहरणम् आयुधम् ( शक्त्यादि ) ध्वजः

---

तरह देवदर्शन और विश्राम, एक पन्थ दो काज होंगे। एक बात और—नगरों के समीप थोड़ा बैठकर नगर में प्रवेश करना चाहिए, इस चिरागत शिष्टाचार का भी पालन हो जायगा। अतः रथ रोको।

सूत—जो आज्ञा! ( रथ रोकता है )

भरत—(रथ से उतर कर) सूत, एक ओर ले जाकर घोड़ों को विश्राम दो।

सूत—जो आज्ञा! ( प्रस्थान )

भरत—( कुछ चलकर और देखकर ) यहाँ तो विधिवत् फूल और खील के नैवेद्य दिये गये हैं, दीवारों की पुताई के ऊपर चन्दन से पाँचों अङ्गुलियों की पाँच छापें लगाई गई हैं, दरवाजों पर फूलों की मालाएँ लटक रही हैं, बाहर चारों ओर रेत बिछी हुई है। क्या कोई त्योहार है? जिसकी यह विशेषता है, अथवा प्रति-दिन का नियमपालन है? अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ। ( भीतर जाकर

दृश्यते । भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये ( प्रविश्यावलोक्य ) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् । अहो भावगतिराकृतीनाम् । दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासतासां प्रतिमानाम् । किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः ! अथवा यानि तानि भवन्तु । अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः ।

> कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः ।
> शूद्रवत्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ॥ ५ ॥

( प्रविश्य )

---

कुक्कुटादि बहिश्चिह्नं वाह्यं दैवतविशेषलक्ष्म । पाषाणमयीनां प्रतिमानां दर्शनेनाह्लादितचित्तस्य भरतस्योक्तिः—

अहो इति—पाषाणानां शिलाशकलानाम्, क्रियामाधुर्यम् शिल्पचातुर्यम् । आकृतीनाम् आकाराणां भावव्यक्तिः अहो । आसां प्रतिमानां दैवतोद्दिष्टानामपि दैवप्रतिमात्वेन सङ्कल्पितानामपि मानुषविश्वासता मनुष्यप्रतिमाविश्वासयोग्यता । प्रतिमानां गणनां कृत्वाऽऽह—किन्नु खल्विति । चतुर्दैव चत्वारि दैवतानि अवयवा यस्य तादृशः स्तोमः सङ्घः । अथवेति—चतुर्दैवतत्वोमत्वशङ्कां प्रतिक्षिप्याह—यानीति । यानि तानि भवन्तु दैवतानि वा भवन्तु अन्यथा वा भवन्तु, मे मम मनसि प्रहर्षः प्रतिमानामादरभाजनताविषया तृप्तिरस्त्येवेति भावः ।

**काममिति**—दैवतमित्येव देवताबुद्ध्यैव शिरो नमयितुं कामं युक्तम् । तु किन्तु प्रणामः न मन्त्रैरर्चितं पूजितं दैवतं यत्र तथाभूतः अत एव शूद्रवत् शूद्रकृत इव स्यात् । सम्भावनायां लिङ् । शूद्रो हि मन्त्रपाठं विनैव पूजयेदिति धर्मशास्त्रविधिः, मन्त्रपाठस्य निषेधात् । शिरोनामने न कोऽपि दोषः, दैवतविशेषनिश्चयाभावात् मन्त्रपाठस्तु किंवतकं क्रियेतेति स परित्यज्यत इति भावः ॥ ५ ॥

---

और देखकर ) अहा, पत्थर की कारीगरी कितनी अच्छी बनी है ? मूर्तियाँ भाव व्यञ्जना में सजीव प्रतीत होती हैं । देवमूर्तियाँ होकर भी मनुष्यमूर्तियाँ जान पड़ती हैं । देव तो चार ही नहीं । जो हो मुझे तो इन्हें देखकर अपार आनन्द हो रहा है ।

ये देवमूर्तियाँ हैं, ऐसा समझकर प्रणाम करना उचित है, परन्तु विशेष परिचय नहीं होने से बिना मन्त्र पढ़े ही प्रणाम करना होगा और वह परिपाटी शूद्रों की सी होगी ॥ ५ ॥

( पुजारी का प्रवेश )

देवकुलिकः—भोः ! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः ? भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये । ( प्रविशति )

भरतः—नमोऽस्तु !

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः ।

भरतः—मा तावद् भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ ६ ॥

---

देवकुलिकः देवगृहरक्षकः । नैत्यिकावसाने नित्यकर्मणो देवपूजादिरूपस्य, अवसाने समाप्तौ, प्राणिधर्मं भोजनम् । अल्पान्तराकृतिः स्वल्पभेदाऽऽकृतिः समानाकृतिरित्यर्थः । यादृशी प्रतिमानामाकृतिस्तत्तुल्याऽऽकृतिरित्यर्थः ।

प्रणामनिषेधे स्वापमानमुत्प्रेक्ष्य निषेधन्तं देवकुलिकं प्रति तदीयैतदाचरणस्यानौचित्यं प्रतिपादयन्नाह—मा तावद्भोरिति ।

वक्तव्यमिति—किमपि अस्मासु मत्कर्तृकेषु अन्यु वक्तव्यं वाच्यम्, दूषणम् ( येनाहं प्रणामकरणायोग्यो गण्येय । अथवा ) विशिष्टः मदपेक्षयोत्कृष्टः मदपेक्षया श्रेष्ठ प्रणामाधिकारी प्रतिपाल्यते प्रतीक्ष्यते (मदपेक्षयोत्कृष्टः एवं प्रणाम कर्तुमर्हति?)। अयम् भवता विधीयमानः प्रतिषेध 'न खलु न खलु प्रणामः कार्यं' इत्येवंरूपस्य प्रयोगस्य प्रतिषेधः किंकृत. ? अस्मद्दूषणाच्छ्रेष्ठप्रतिपालनयोः कारणयोर्मध्ये केन कारणेन कृत. ? तृतीयं कारणमुत्प्रेक्षते—नियमप्रभविष्णुतेति । भवतः नियमेषु तपोऽनुष्ठानेषु प्रभविष्णुता प्रौढि ( एवात्र कारणमिति प्रश्नः ) । अयमाशय.—नाहं दूष्यामि, न वा मदुत्कृष्ट एव प्रणामेऽधिक्रियते, इत्यवतरकारणद्वयनिरासे स्वतपसि प्रौढिमाश्रो भवत स्वतपोविघ्नाशङ्काकृत एवायं निषेधो भवितुमर्हतीति । अथवा नियमे

---

देवकुलिक—अरे नित्य नियत पूजापाठ कर लेने के बाद मेरे भोजनादि के अवसर पर इन मूर्तियों से मिलती आकृतिवाला कौन इस प्रतिमागृह में बैठा है ? अच्छा, भीतर जाकर पता लगाता हूँ । ( भीतर जाता है )

भरत—नमस्कार ।

देवकुलिक—नहीं नहीं, प्रणाम मत करो ।

भरत—क्यों, क्या बात है ?

क्या हममें कोई दोष है ? या हमारी अपेक्षा किसी श्रेष्ठ

देवकुलिक—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम्। किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः।

भरतः—एवम्। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः। अथ के नामात्रभवन्तः?

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः।

भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति। एते तेऽयोध्याभर्तारः।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।

---

रियोगे प्रभविष्णुता स्वातन्त्र्यमेवात्र निषेधे हेतुः? भवतोऽत्र प्रतिमागृहेऽधिकृतस्य नैकच्छत्रं राज्यमुज्जृम्भते इति वस्तुतोऽधिकारिणोऽपि मम प्रणमनक्रिया वारयत-स्तवैव स्वेच्छामात्रानुवर्त्तनेति भाव. ॥ ६ ॥

. एतै. दोषकलुषितत्व-प्रणामायोग्यत्व स्वेच्छाचारित्वैः। परिहरामि भवन्तो ब्राह्मणाः दैवतभ्रमेण प्रतिमा एता मा प्रणंसुरिति निषेधामि। अत्रभवन्त· पूज्याः मूर्त्तिषु चित्रिता.।

एते त इति—अतिप्रसिद्धा इमे इक्ष्वाकवः दैवताना देवानाम् असुरपुरवधे। राक्षसै. सम युद्धे तद्वधे अभिसरी साहाय्यार्थमभिगमन गच्छति। देवसाहाय्यार्थं राक्षसान् हन्तु स्वर्गं गच्छन्तीति। एतेन इक्ष्वाकूणा देवासाध्यराक्षसवधसमर्थत्वप्रतिपादनेन तदपेक्षयाऽधिकपराक्रमशालित्व व्यञ्जितम्। एते ते इक्ष्वाकव· स्वसुकृतै· स्वाचरितै. पुण्यै सपुरजनपदा. सनगरप्रजा शक्रलोके स्वर्गं यान्ति एतेनैषा पुण्य-

---

की प्रतीक्षा कर रहे हो? यह प्रणाम करने का निषेध क्यों कर रहे हो? क्या यह तुम्हारा अधिकारमद तो नहीं है? ॥ ६ ॥

देवकुलिक—नहीं, इन कारणों से नहीं रोक रहा हूँ, किन्तु इसलिये रोक रहा हूँ कि कहीं तुम ब्राह्मण होकर देवमूर्त्ति के भ्रम से इन राजमूर्तियों को प्रणाम न कर लो। ये क्षत्रियों की मूर्तियाँ हैं देवप्रतिमायें नहीं हैं।

भरत—अच्छा, क्या ये क्षत्रिय महानुभाव हैं, तो फिर ये कौन महानुभाव हैं?

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकुवंशीय हैं।

भरत—इक्ष्वाकुवंशीय! यही अयोध्या के राजा?

ये वे ही लोग हैं, जो असुरपुर के विनाश में देवो की सहायताके लिये जाते थे। क्या ये वे ही हैं, जो अपने पुण्यप्रताप से अपने नगर तथा प्रजाजन के साथ स्वर्ग

एते ते प्राप्नुवन्त. स्वभुजबलजिता कृत्स्ना वसुमती
मेते ते, मृत्युना, ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥ ७ ॥
भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् ! अभिधीयता
कस्तावदत्रभवान् ?

देवकुलिक —अथ खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो
यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः ।

भरत —नमोऽस्तु धर्मपरायणाय । अभिधीयता कस्तावदत्रभवान् ?

---

प्रकर्षं प्रख्याप्यते । एते ते स्वभुजबलजिता निजबाहुपराक्रमायत्तीकृता कृत्स्नां समग्राम्, मही पृथ्वीम्, प्राप्नुवन्त सन्तीति शेष । एते ते छन्द मृगयता इच्छामनुवर्तमानेन मृत्युना कालेन चिर बहुकालम् अनवसिता अभक्षिता । 'मृतिर्नो जायताम्' एवमिच्छतामेवैक्ष्वाकूणा प्राणहरणे प्रभवता मृत्युना तत्प्राणहरणे तदिच्छानुवर्तनमेवोपाय इति मृत्युजयप्रभुत्वरूप प्रकर्ष । अपत् स्पष्टम् । सुवदनावृत्तम्, तल्लक्षण यथा—'सुवदना म्रौ भ्नौ य्भौ ल्गावृषिस्वरर्त्तव ' ॥ ७ ॥

महदिति—महत् फलम् महापुरुषप्रतिमावलोकनरूपम् ।

सन्निहितसर्वरत्नस्य सन्निहितानि विश्वविजयापाहृतानि सर्वरत्नानि सकलश्रियानि अनर्घ्यवस्तूनि यस्य तस्य । विश्वजित तदाख्यस्य यज्ञविशेषस्य । प्रवर्तयिता आहर्त्ता । प्रज्वलितधर्मप्रदीप प्रज्वलित सततप्रदीप्त धर्म एव प्रदीपो यस्य स तादृश । धर्मस्य प्रदीपत्वञ्चाघतमसावृतोत्तरलोकमार्गप्रदर्शकत्वाद् बोध्यम् । धर्मैकपरायणाय धर्म एक परमयन गतिर्यस्य तादृश, धर्मैकनिरत इत्यर्थ । तस्मै धर्मनिष्ठाय ।

---

जाते थे? क्या ये वे ही हैं जो अपने बाहुबल से सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतकर अपने अधिकार में करते थे ! और जिनकी मृत्यु अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी ॥७॥

अहा ! अकस्मात् मुझे महान् फल मिल गया । अच्छा, बताइये ये कौन महानुभाव हैं ?

देवकुलिक—ये हैं महाराज दिलीप, जिन्होंने सभी रत्नों को इकट्ठा कर विश्वजित् यज्ञ पूर्ण कर धर्म प्रदीप को प्रकाशित किया था ।

भरत—धर्मप्राण को नमस्कार । (प्रणाम करता है) आगे कहिये, ये कौन हैं?

देवकुलिक.——न खलु, अतिक्रान्तानामेव ।

भरतः——तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

देवकुलिकः——तिष्ठ ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः ।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे ? ॥ ८ ॥

भरतः——हा तात ! ( मूर्च्छितः पतति । पुनः प्रत्यागत्य )

हृदय ! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत् ।

---

अतिक्रान्तानामेव इह लीलां समाप्य लोकान्तरे गतानामेव ।

आपृच्छे, पृच्छन्नामन्त्रये । गमनकालिकमनुज्ञायाचनामन्त्रणादिकमाप्रच्छ्यते, तथा च कालिदासेन प्रयुज्यते मेघदूते——'आपृच्छस्व प्रियसख ममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलम्' इति । 'आङि नुप्रच्छ्यो' रिति तङ् ।

येनेति——येन राज्ञा दशरथेन स्त्रीशुल्कार्थे विवाहावसरे स्त्रियै देयतया प्रतिज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कं तदर्थे प्राणाः राज्यं राज्यकर्म च विसर्जिता. परित्यक्ताः, तस्य दशरथस्य इमां पुरोवर्तमानां प्रतिमां त्वं किन्नु पृच्छसे किमिति न जिज्ञाससे । जिज्ञास्यचरित्रस्वात्तथाऽभिधानम् । अत्र प्राणा विसर्जिताः, राज्यं च विसर्जितमिति लिङ्गवचनविपरिणामेनान्वय. कार्य., अन्यथैकशेषे नपुंसकबहुवचनप्रसक्तिः स्यादिति बोध्यम् ॥ ८ ॥

प्रत्यागत्य——संज्ञां लब्ध्वा ।

हृदयेति——हे हृदय चित्त ! सकामं पूर्णमनोरथं भव । पूर्णकामत्वं च स्वशङ्कितार्थाविसंवादादित्याह– त्वं यत्कृते यस्मिन् विषये शङ्कसे स्वाकर्णनीयत्वेनोत्प्रेक्षसे स्म, तत् स्वाशङ्कितं विषयं शृणु आकर्णय निश्शङ्कं निशमय स्वाशङ्कित पितृमरणमिति भाव. । गच्छेमार्गं जायमानैरशकुनलक्षणैरन्यैश्च विकृतिदर्शनादिभिर्यत्त्वया

---

देवकुलिक—नहीं जी केवल मृतकों की ।

भरत—अच्छा, अब आप मुझे आज्ञा दें ।

देवकुलिक—ठहरो,

जिन्होंने स्त्री-शुल्क के लिये अपने राज्य और प्राण सब कुछ छोड़ दिये, उन्हीं महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं जानना चाहते ? ॥

भरत—हा पिताजी ( मूर्च्छित होकर गिरता है, फिर होश में आकर )

हृदय, अब तुम्हारी कमाना पूर्ण हुई, जिसकी तुम्हें आशङ्का थी, वह पितृमरण

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ ६ ॥

आर्य !

देवकुलिक.—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरत—अथ किम् , अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

देवकुलिक—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

---

पितृपादनिधनवृत्तमकर्णनीयत्वेन सम्भावितं तदधुना शृण्वदारमनः पूरय मनःकाममिति स्पष्टार्थः । तु किन्तु नीचः गर्हितः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशेत् यदि मां सम्भवनीयात् विषयीकुर्यात् , मद्राज्याभिषेचन शुल्कशब्दार्थत्वेन वक्तुरभिप्रेतं चेदित्यर्थः ( न केवलं कथनमात्रेण किन्तु सत्यसत्यत्वपरीक्षणेन ) । अथ च सत्यं भवति यदि, (तद्वचनं तदभिप्रायेणोच्यमानं सत्यं यदि) तत्र तर्हि देहः विशोध्यः अग्निपु पाकादिना शुद्धिं प्रापणीयः । अयमाशय —अन्योऽपि कृतमहापापः प्रायश्चित्तान्तरेणाशोध्ये स्वपापे कश्चिदग्निपुटे स्थित्वा प्राणान् जहाति शुध्यति च, तथैवाहमपि यदि मदीयजनन्या मदभिषेचनार्थमेव स्वविवाहशुल्कभावेन राज्य याचमानया प्राणाः पितृपादानामपहारिता इति सत्योक्तिस्तदा अग्निपुटे दग्ध्वा स्वं निजमयशः क्षालयिष्यामीति ॥

आर्येति—आर्य इत्येव रूप सामान्येऽपि जने सबहुमानमामन्त्रणं सम्बोधनम् इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नपुरुषसाधारणम् । इयती सुजनता नम्रता मिष्टभाषिता चैतेष्वेव सम्भाव्यत इति भावः ।

अथ किम् अङ्गीकारेण इक्ष्वाकुकुलत्वमात्रे स्वीकृतिः प्रदत्ता न सर्वांशे, तदाह—न कैकेय्या इति ।

---

वृत्तान्त सुनो और धीरज बाँधो । किन्तु हाय ! यदि श्री-शुल्क में याचित राज्य का उद्देश्य मैं बनाया गया होऊँगा, तब तो देह की शुद्धि करनी होगी अर्थात् कड़ी परीक्षा देकर अपना निर्दोषत्व साबित करना पड़ेगा ॥ ६ ॥

आर्य !

देवकुलिक—'आर्य' कहकर बात करना तो इक्ष्वाकुवंशी लोगों का क्रम है, क्या आप कैकेयीपुत्र भरत तो नहीं हैं ?

भरत—जी हाँ, दशरथ का पुत्र भरत हूँ, कैकेयी का पुत्र नहीं ।

देवकुलिक—अच्छा, अब आप मुझे आज्ञा दें ।

भरत.—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिक—का गतिः ? श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः । सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

भरत—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः ? ( द्विगुण मोहमुपगतः )

देवकुलिक.—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

भरतः—( समाश्वस्य )

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ १० ॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति । तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् ।

---

का गतिरिति—अयोध्यावृत्तान्तमभिधातुमागृहीतस्य मम कष्टनिवेदेऽपि तस्मिन् प्रवृत्ति. कर्त्तव्यैवेत्यनन्यगतिकतामापद्य परितापं व्यनक्ति । उपरत मृतः ।

अयोध्यामिति-पित्रा परलोकप्रवासेन भ्रात्रा वनगमेन च वर्जिता परित्यक्ताम् अत एव प्रियजनपरिहीनतया निरानन्दामटवीभूतामरण्यभाव गताम् अयोध्याम् पिपासया पानीयाभिलाषेण आर्त्तः पीडित. क्षीणतोया शुष्कजला नदी धारामिव अनुधावामि । अयमर्थः—यथा कोऽपि पिपासार्त्त मरुषु शुष्यत्तोया सरितमनुधावन् विफलाभिलाषो भवति, तथैवाहमपि प्रियपितृपादस्नेहपरायणभ्रातृद्वितयोमान्यामपि ताभ्या विरहिते अयोध्यानामनि पुरे प्रविशामि,तत्राभिलाषपूर्त्तेरसम्भवादिति । उपमालङ्कार. ॥ १० ॥

विस्तरश्रवणं विवरणपूर्वकाकर्णनम्, ( पितृभ्रातृव्यसनस्येति शेष ) स्थैर्यं आकुलीभाववैधुर्यम् , अनवशेष नि शेषम्, अभिधियमाने राज्यधुरि नियोज्यमाने ।

---

भरत—ठहरिये, और कुछ कहिये ।

देवकुलिक—क्या किया जाय ? सुनिये । महाराज दशरथ अब नहीं रहे। सीता और लक्ष्मण के साथ राम क्यों वन चले गये ? इसका पता मुझको नहीं है।

भरत—क्या आर्य भी वन को चले गये ? ( फिर मूर्च्छित होते हैं )

देवकुलिक—कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो ।

भरत—( होश में आकर )

हाय पिताजी और आर्य राम से शून्य इस वन के समान अयोध्या में जा रहा हूँ, जैसे कोई प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो ॥ १० ॥

आर्य, विस्तारपूर्वक सुनने से मेरे मन को कुछ सहारा मिल रहा है, कृपया पूरा वृत्तान्त कह सुनाइये ।

देवकुलिकः—श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल।

भरतः—तिष्ठ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाभ्यसन्त्या व्रज सुत ! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा वल्कधीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः ॥
(मोहमुपगतः)

---

अत्र वर्त्तमानार्थकशानचा कैकेयीकर्त्तृकविघ्नस्य अभिषेकप्रवृत्तिकालिकत्वमुक्तं तेन च तादृशव्यवहारस्य नितान्तमनौचित्यम्, तेनाधिकखेदावहत्वं च व्यञ्जितम्। भवतो जनन्या इव मात्रा, अत्रापि तस्या नाम्नोनुपादानं क्षोभस्य व्यञ्जनायम्।

तिष्ठ अलमितोऽग्रेऽभिधायेत्यर्थः। एतावतैव तदाचरितेन तन्मनोवृत्तेः परिचये शेषस्य स्वयमूहितुं शक्यत्वादिति भावः।

तं स्मृत्वेति—तं पूर्वोक्तं शुल्कं वैवाहिकपणम् (अनर्थकारितया) दोषं स्मृत्वा मनसिकृत्य 'मम कैकेय्याः सुतो भरतो राजा भवतु' इति कैकेय्या राजेऽभिहितमुक्तम्, तद्धैर्येण स्वोक्तप्रार्थनस्य राज्ञा स्वीकृतत्वे पुत्रकर्तृकराजत्वप्राप्तौ जातेन विश्वासेन आद्यसन्त्याऽभिलाषसफलतया सन्तोषं वहन्त्या तया कैकेय्या आर्यः रामोऽपि 'त्वं वनं व्रज चतुर्दश वर्षाणि वने निवासे व्यतियापयेति' अभिहितः उदीरितः। तं रामं वल्कधीरं 'वनवासाय प्रस्थातुकामेन तदुपयुक्तवसनादिधारणीयमि'ति परिहितवल्कलं दृष्ट्वा राजा दशरथः असदृशं स्वरूपाननुरूपं निधनं मृत्युं गतः। पुत्रशोकेन प्राणान् पर्यत्याक्षीदित्यर्थः। (अधुना कैकेय्या तथाऽनुष्ठिते) शेषाः सर्वस्यास्य

---

देवकुलिक—सुनिये, जब माननीय महाराज राजकुमार राम का अभिषेक कर रहे थे उस समय आपकी माता ने कहा······

भरत—चुप कीजिये,

इस अनर्थकारी विवाहशुल्क की याद आने से कहा होगा कि 'मेरा पुत्र राज्याधिरूढ हो'। इस प्रार्थना के सफल हो जाने से उसका हार्दिक बल बढ़ गया होगा, और इसने दूसरी प्रार्थना की होगी कि—राम वन को जाँय। वल्कलधारी रामको वन जाते देख राजा बेमौत मर गये होंगे। इन सब बातों से दुःखी प्रजा इन सभी बातों का मूल मुझे मानकर धिक्कारती होगी। उसका धिक्कारना ठीक भी है ॥ ११॥

(मूर्च्छित हो गये)

( नेपथ्ये )

उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।

उस्सरह अय्या ! उस्सरह ।

देवकुलिकः—( विलोक्य ) अये,

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते ।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥ १२ ॥

( ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च )

सुमन्त्र —इत इतो भवत्यः ।

---

दुराचरणस्य फलभूताः धिक्प्रलापा धिगित्युक्तयो निन्दावादा. प्रकृतिभिः अमात्य॰ पुरोगैः पुरजनैः मयि भरते पात्यन्ते निधीयन्ते । अयमेव भरतो यदर्थमयमनर्थं समुपनतो धिगिमम् इत्यधिक्षिपन्ति जना इति भावः । तिष्ठेत्यनेन दोषस्य स्वयमूहनं प्रतिज्ञातं तदनेन प्रकाशितमिति बोध्यम् ॥ १२ ॥

दशरथप्रतिमा साक्षात्कर्तुं कौसल्यादयो देव्य आजिगमिषन्ति, तदेतदवस्थानु॰ रूपं समुदाचारमाचरति परिजनः—उत्सरतेत्यादिना ।

**काले इति**—देव्यः कौसल्यादयो राजाङ्गनाः काले उचिते समये आगताः उपेताः खलु । तदेव समर्थयितुमाह—पुत्रे इति । पुत्रसमाश्वासनावसरस्योपस्थित॰ त्वादत्रासामधुनोपसत्तिः कालान्तरोपसत्त्यपेक्षया समधिकोपयोगेत्याशय । ननु सामान्यजनेनापि मूर्च्छितस्य भरतस्य वीजनादिनोपचारेण मूर्च्छादा निरसनीयत्वे तन्मातॄणामुपस्थितिर्नाधिकप्रयोजनेत्याशङ्कायामाह—हस्तेति । मातॄणां हस्तस्पर्श मातृभिः क्रियमाणः पाणिकरणकः स्पर्शः अजलस्य जलरहितस्य जलार्थिनः जला॰ ञ्जलिः स इव तृप्तिप्रदो मातृहस्तस्पर्शं इति भावः । अत्र सामान्येन विशेषसमर्थ॰ नरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

---

( नेपथ्य में )

हट जाइये । हट जाइये ।

देवकुलिक—( देखकर ) अच्छा,

पुत्र के मूर्च्छित होने पर मातायें आ गईं, बड़ा अच्छा हुआ । क्योंकि पुत्र के लिये माता का हस्तस्पर्श प्यासे के लिए जलधारा के समान हुआ करता है ॥१२॥

( देवियों तथा सुमन्त्र का प्रवेश )

सुमन्त्र—महारानि, आपलोग इधर से आवें ।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः ।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१३॥

( प्रविश्यावलोक्य ) भवत्यः ! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः ।

देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ १४ ॥

( निष्क्रान्तः )

---

इदमिति । यस्य प्रतिमागृहस्य समुच्छ्रयः औन्नत्यम्, हर्म्यदुर्लभः प्रासाद-दुरापः स प्रसिद्धः, यदिदं नितरां प्रसिद्धम्, न अस्माकं इक्ष्वाकूणां प्रतिमा-नृपस्य प्रतिमारूपेणावस्थितस्य नः प्रतिमागृहम् अस्तीति शेषः । ( यत् इदम् प्रतिमागृहम् ) अप्रतिहारिकागतैः द्वारपालैरदर्शनेन प्रविष्टैः एव अयन्त्रितैः कपाटादिनियन्त्रणरहितैः पथिकैः अध्वगैः विना प्रणामम् अन्तरेणैव नमस्कारम् उपास्यते मार्गश्रमापनोदनाय निशातिवाहनाय वा अध्युष्यते । साक्षान्नृपस्य भवन प्रतीहारिद्वारान्ते, पदे पदे नियन्त्रितैः अमात्यादिभिरपि प्रणामादिसमुचितशिष्टा-चारपूर्वकं प्रविश्यते सेव्यते च, प्रतिमागृहमिदं तु पथिकैः स्वयं निरवरोधं प्रविश्यते प्रणामादिकमन्तरेणैवाध्युष्यते चेति प्रतिमागृहस्य राजगृहान्न्यूनताभावो व्यतिरेकः ॥

प्रविशन्तीनां देवीनां निषेधं कृत्वा, सम्प्रति तत्कारणमाह—अयमिति ।
वयःस्थः वयसि वर्तमानस्तरुणः पार्थिव इव दशरथ इव कोऽपि पतितः भूमौ निप-तितः । अस्तीति शेषः ।

परशङ्कापरं भरतादन्योऽयमिति शङ्कावितर्कं कर्तुं मुधा अलं वृथा, परोऽयमिति मा शङ्किष्टा इति भावः । नियमेन बोधयन्नाह—अयं भूमौ भरतः पतितः गृह्यताम्, उत्थाप्य सद्भावारोप्य शीतलजलवीजनादिकोपचारैः प्रकृतिमानेतुमिमं प्रयत्यतामिति यावत् ॥

---

यह है कि प्रतिमारूप से अवस्थित महाराज का सदन जो ऊंचाई में राज-महलों से भी बढ़ा है। यात्री लोग यहाँ बिना रोक-टोक के आते जाते और बिना प्रणाम के उपासना करते हैं ॥ १३ ॥

( घुसकर और देखकर ) आप अन्दर मत आवें,
यहाँ कोई कुमार गिर पड़ा है। मालूम पड़ता है जैसे राजा दशरथ की जवानी की देह हो।

देवकुलिक—आप दूसरे की आशङ्का मत करें, ये भरत हैं, इन्हें संभालिये॥१४॥

( जाता है )

देव्यः—( सहसोपगम्य ) हा जात ! भरत ! ( हा जाद ! भरद ! )

भरतः—( किञ्चित् समाश्वस्य ) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा ( इत्यर्धोक्ते सविषादम् ) अहो स्वरसादृश्यम् ! मन्ये प्रतिमास्थो महाराजा व्याहरतीति ।

भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था । ( अवगुण्ठनमपनयन्ति )
जाद ! एसा णो अवत्था ।

सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।

भरतः—( सुमन्त्रं विलोक्य ) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

---

स्वरसादृश्यं वाग्भङ्गीतुल्यत्वम् , येन भरते वदति प्रतिमागतो महाराजो वदतीति मादृशोऽपि चिरसहचरो जनो भ्राम्यति ।

इदानीं तातपादनिधनरामप्रवासानन्तरम् ।

अवगुण्ठनमपनयन्ति—अवगुण्ठनपटमपनीय स्वचिर.सिन्दूरप्रमोषं शिरोघूनन-जनितं भ्रयपु च दर्शयन्ति, तेन निताग्तक्लेशावस्थाअक्षरोच्चारणमेवावेदिता भवति । निगृह्यता मनस्सु नियम्यताम् । उत्कण्ठा आवेगः ।

सर्वसमुदाचारसन्निकर्षः सर्वस्मिन् सर्वप्रकारके अवगुण्ठनापनयनादिरूपे (पुत्र-विसम्भवृद्धमन्त्रिभिन्नपुरुषसन्निकर्षे विधातुमयोग्येऽपि) सन्निकर्षः सन्निधिस्थितिस्तु मां सूचयति बोधयति'अमुको भवानि'ति अनुमापयति । अनुमितमेवार्थं निश्चयायोदा-हरति—कच्चिदिति । अवगुण्ठनापसारणादिककार्यं राजदाराणामतिविविक्ते प्रियपुत्रा-

---

रानियाँ—( वेग से समीप जाकर ) हा पुत्र ! भरत !

भरत—( कुछ होश में आकर ) आर्य !

सुमन्त्र—जय हो महा······( आधा कहकर ही शोक से रुककर ) अहा ! कितना स्वरसादृश्य है ? ज्ञात होता है जैसे दशरथ की प्रतिमा ही बोल रही हो।

भरत—माताओं की क्या अवस्था है ?

रानियाँ—पुत्र, यह हमारी अवस्था है। ( घूंघट हटाती है )

सुमन्त्र—देवियों, अपने आवेग को रोकें।

भरत—( सुमन्त्र को देखकर ) सभी प्रकार के व्यवहार में आपकी उपस्थिति से मुझे जान पड़ता है, आप सुमन्त्र हैं ?

सुमन्त्र —कुमार ! अथ किम् । सुमन्त्रोऽस्मि ।
अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः ।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः ॥१५॥
भरत —हा तात ! ( उत्थाय ) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम् ।
सुमन्त्र —बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।
भरत —अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

विपरिजनादिमात्रमप्रियाने समर्थति, भवति च सन्निहिते वत्तामिराचरितमिति कार्येण रूपादिर्मवादेन चात्र भरतस्य सुमन्त्रपरिचयो बोध्य ।

अन्वास्यमान इति—चिरजीवदोषैः दीर्घजीविपुरुषसुलभैः स्वप्रियजनविपदुपनिपातप्रत्यक्षीकरणादिभिर्दूषणैः अन्वास्यमानः अनुगम्यमान , कृतघ्नभावेन कृतघ्नतया विडम्ब्यमान लोकैः कृतघ्नोऽयमिति परिहास्यमान , (स्वामिमरणेऽपि तदननुवृत्त्या परिहासः ) अहं सुमन्त्र तस्मिन् प्रसिद्धपराक्रमे नृपतौ विपन्ने विपद्ग्रस्ते मृत इत्यर्थ , शून्यस्य राज्ञा रहितत्वेन रिक्तस्य रथस्य सूतश्चालकः जीवामि कथञ्चिद् प्राणान् धारयामि । अयमाशय —यदहं चिरजीविता नाप्स्यम्; ईदृश राजमरणरामवनवासादिदर्शनावसरं मनोव्यथकं नाप्स्यमिव्यम्, राजनि मृते तदनुसरणकरणात् कृतघ्नोऽयमिति लोकाना परिहासस्य पात्रता नाप्स्यम्, मृते च राजनि शून्य रथं नावाहयिष्यमिति सर्वमपीद मदीयचिरजीविताविजृम्भितमिति धिङ् मम जीवनम् ॥ १५ ॥

अभिवादनेति—बहुकाल प्रोष्य इदानी मातृषु का केति विशेषमजानन् कस्यै प्रथम प्रणाममुपनयेदिति व्यामोहेनेदम् प्रश्न ।

अनपराद्ध. अकृतापराधः, एतेन कैकेय्या कृते कुकर्मणि स्वासम्मतिः प्रकाशिता ।

सुमन्त्र—कुमार, हाँ मैं सुमन्त्र ही हूँ ।

दीर्घकालजीविता ने मुझमें अनेक बुराइयाँ ला दीं । कृतघ्नताने मुझे विडम्बित किया, और अब मैं राजा के मर जाने पर सुने रथ का सारथि हूँ ॥ १५ ॥

भरत—हा तात, ( उठकर ) तात, अब मैं माताओं के प्रणाम करने का क्रम जानना चाहता हूँ ।

सुमन्त्र—अच्छा । ये हैं राम की माता देवी कौसल्या ।

भरत—अम्ब, निरपराध मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते ।
दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ? ॥ १९ ॥

कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या ?

जाद ! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदव्वा ?

भरतः—वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया ।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम् ॥ २० ॥

---

कीदृशः सम्बन्धी । पुत्रो न भवति किमित्यर्थः । आर्ये राज्येऽभिषिच्यमाने त प्रतिषिध्य मदर्थं राज्यं याचमानाया भवत्याः रामं प्रति पुत्रभावो न स्थित इति भवत्याऽनुचितमाचरितमिति ।

**पितुरिति**—आर्यः रामः मे मम पितुः औरसः धर्मभार्यायां स्वबीजोत्पन्नः पुत्रो न भवति किम् ? कारवा तस्य तद्भावोऽभिधेय । क्रमेण वय क्रमेण नाभिषिच्यते ? पुत्रेषु वयसा प्रथमः राज्येऽभिषेच्य इति व्यवहारः किमस्मत्कुले नास्ति ? अस्त्येवेत्यर्थः । भ्रातरः आर्यरामादयो मत्सहिताः दयिताः अन्योन्यस्नेहपरायणाः न स्युः किम् ? न भवन्ति किम् ? सन्त्येवेत्यर्थः । ( आर्यस्याभिषेकः ) प्रकृतीनाम् अमात्यादीनां न रोचते न प्रिय किम् ? अयमाशय —रामे पितुरौरसे पुत्रे कुलसमुदाचारमनुसृत्य ज्येष्ठक्रमेणाभिषिच्यमाने तदभिषेके बन्धुविरोधस्य प्रकृतिकोपस्य चासम्भावनाया भवत्या तदभिषेके विघ्नमाचर्य सर्वथातिदारुणं चरितमिति भावः ॥

**प्रष्टव्येति**—शुल्के प्रतिज्ञातस्यार्थस्यावश्यप्रदेयतया तं याचमानाहं न केनापि निन्दिताचरणदोषेण भर्त्सनीयेति भावः ।

**वल्कलैरिति**—शुल्कप्रतिज्ञातमर्थं याचितुमहमधिकारिणीति भाषणेन कुपितो भरतः । पुत्रराज्याभिषेकस्य यथा कथञ्चित्प्रार्थनायोग्यत्वेऽपि रामवनवासस्य सर्वथाऽयोग्यत्वमाहानेन । वल्कलैः चीरैर्हृतराजश्रीः अपहृतराजलक्ष्मीकः, पदातिः पादचारी भार्यया सह भार्यासहितः (आर्यरामः) त्वया वनवासम् आज्ञप्तः वने वसेत्या-

---

क्या वे मेरे पिता के औरस पुत्र नहीं ? क्या उनका अभिषेक ज्येष्ठ के क्रम से प्राप्त नहीं ? क्या हममें भ्रातृप्रेम का अभाव है ? क्या राम का अभिषेक प्रजानुमोदित नहीं ? ॥ १९ ॥

कैकेयी—बेटा, क्या विवाहशुल्क का लालच रखने वाली से ऐसे प्रश्न किए जाते हैं ?

भरत—तुमने राम को राज्य से वञ्चित कर चीर पहना कर सीतासहित पैदल को भेजा, यह भी विवाहशुल्क में कहा गया था ? ॥ २० ॥

कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि ।

जाद ! देसकाले णिवेदेमि ।

भरतः—

अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किम् नृपफलतर्पः किं नरेन्द्रो न दद्यात् ।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ? ॥ २१ ॥

---

शिष्टः । शुल्के एतदपि समार्यस्यार्यस्य वनगमनमपि उदाहृतं कथितपूर्वम् किम् ? काम पुत्राभिषेचनमुदाहृतम्, आर्यवनगमनं तु कदाचिदपि नोदाहृतमितीदानीमकाण्डे कल्पितवत्यसीति धिक् त्वां दुर्बुद्धिमिति भावः ॥ २० ॥

निवेदयामि रामवनवासाज्ञाप्रदानस्य कारणं समुचिते देशे काले च त्वां बोधयिष्यामीति तदाशयः । एतेन पुत्रस्य प्रलोभनार्थं तया प्रपञ्चप्रपनप्रकारः प्रकटितः ।

अयशसीति=यदि अयशसि कीर्त्तिविपर्यये लोभो यदि चेति अस्मान् कीर्त्तयित्वा किम् ? अस्मन्नामकीर्त्तनेन किं प्रयोजनं तेन विनैवायशस सुलभत्वादिति भावः । एवं चाकीर्तिमात्रस्योद्देश्यत्वे प्रकारान्तरेणाऽपि तल्लाभसम्भवे भरतार्थं राज्यं याच इति मदीयनाम्नः सम्बन्धनस्य तत्र नितरामनावश्यकत्वमिति भावः । नृपफलतर्पः राजप्रियत्वप्राप्यभोग्यवस्तुतृष्णा किमु ? नरेन्द्रः किं न दद्यात् ? सर्वार्थदातरि राजनि तव प्रिये तल्लोभोऽपि तथानुचित एवेत्याशयः । अथ तव नृपतिमाता राजजननी इत्येष शब्दः (स्वबोधकत्वेन) इष्टः अभिलषितश्चेत्, (अयि) भवति, आर्यः रामः तव पुत्रः न भवति किम् ? इति सत्यं वदतु, सत्यभावेन रामस्य पुत्रत्वे तदन्यथाभावे वा स्वां भावनामाविष्करोतु । एवं च रामस्य तव पुत्रत्वे राजमातेति विरुद्धमपि त्वया तस्मिन्नभिषिच्यमानेऽपि लभ्यतया वृथा कदर्थितोऽयं लोक इति भावः । मालिनीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति ॥ २१ ॥

---

कैकेयी—उचित स्थान और अवसर मिलने पर कभी बताऊँगी ।

भरत—यदि तुम्हें अयश ही मोल लेना था तो इस बीच में मेरा नाम क्यों ले लिया ? यदि राजैश्वर्य की कामना थी तो महाराज से तुम्हें क्या नहीं मिल सकता था ? यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की लालसा थी तो सच बता, क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ? उनके राजा होने से तुम राजमाता नहीं बन सकती थी ? ॥ २१ ॥

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुत ज्येष्ठ च त्वं व्रज वनमिति प्रेपितवती।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीं
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदय वज्रकठिनम् ॥ २२॥

सुमन्त्र—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेक पुरस्कृत्य भवन्त प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः—

गोपहीना यथा गावो विलय यान्त्यपालिताः।
एव नृपतिहीना हि विलय यान्ति वै प्रजाः ॥ २३ ॥

---

त्वयेति। भवति, राज्यैषिण्या पुत्राय राज्य कामयमानया त्वया नृपति राजा असुभिः न गणितः प्राणै परित्यज्यमानो नापेक्षित (एतेन भर्तृद्रोह उक्त ) ज्येष्ठ सर्वश्रेष्ठं सुत पुत्र राम च त्व वन प्रेपितवती अस्मात् मदभिषेकदानसतृष्णात् नगरान्निष्कासितवती (एष पुत्रद्रोह ), जनकतनया सीता वल्कलवती चाराणि वसाना दृष्ट्वा यत् तव हृदय न शीर्णम् द्विधा न विदलित तत् तव हृदय धात्रा वज्रकठिन वज्रवद् कर्कश सृष्टम्। अयमाशय ——त्वया राज्यलोभेन भर्तार विपादय त्या कठोरता प्रदर्शिता ततोऽपि पुत्रस्य वनवासाकामन्या जननीहृदयदुराप दौरात्म्य व्यञ्जितम्, यथा कथञ्चिदनयोर्वृत्तयोर्लोभप्राबल्यनकल्पनीयत्वेऽपि सीतासमाना पुत्रवधू वल्कलानि परिदधती वीक्षमाणायास्तव हृदय यन्न भि न तदवश्य तस्य वज्रासाधारण काठिन्यमिति।

प्रकृतिभि अमात्यादिभि, अभिषेक तदुपयोगिद्रव्यजातम्, पुरस्कृत्य सह नीत्वा।

गोपहीनेति–यथा गोपहीना गावोऽपालिता (सत्य ) विलय विनाश यान्ति तथैव प्रजा नृपविहीना राजविरहिता विलय यान्ति विपद्यन्ते, बाह्यान्तराक्रमणदोषैः

---

तुमने बड़ा बुरा किया—

राज्यलालसा से तुमने महाराजके प्राणों की कुछ चिन्ता न की। अपने बड़े लड़के को तुमने वन भेज दिया। जनकदुलारी सीताको वल्कलवसना देखकर भी तुम्हारा हृदय नहीं विदीर्ण हुआ! विधाता ने तुम्हारे हृदयको वज्र कठिन बनाया है॥२२॥

सुमन्त्र—कुमार, भगवान् वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्यों के साथ आपके राज्याभिषेक के लिये आपको सूचित करते हैं कि—

जिस प्रकार गोपाल के बिना गायें विनष्ट हो जाती हैं, ठीक उसी तरह राजा प्रजाओं का नाश हो रहा है॥ २३ ॥

भरत —अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्र —अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरत —अभिषेकमिति ! इहात्रभवते प्रदीयताम् ।

सुमन्त्र —क्व भवान् यास्यति ?

भरत —तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।

नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ २४ ॥

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

तृतीयोऽङ्कः ।

---

स्यत्रानुरमावादिति भावः ॥ २३ ॥

अनुगच्छन्तु मदीयाज्ञां पालयन्तु, एतेन राज्यभारस्य स्वीकारः कृतः । केवलमभिषेकस्य स्वीकारो न कृतः । अथवा यत्राहं यामि तत्र चलन्तु प्रकृतयः, तत्रैवाभिषेकस्यापि निर्णयो भवेदिति भावः ।

'अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः' इत्यनेन गमने सूचिते 'क्व यास्यसी'ति सुमन्त्रेण पृष्टे तदुत्तरमाह—तत्रेति । 'लक्ष्मणप्रियः' इत्युक्त्या मध्यमाम्बां प्रति ईर्ष्योक्तिः । शेषं सुगमम् ॥ २४ ॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटकप्रकाशे' तृतीयोऽङ्कः ॥ ३ ॥

---

भरत—प्रजायें मेरे साथ चलें ।

सुमन्त्र—राज्याभिषेक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—अभिषेक ? अभिषेक इनको दिया जाय ।

सुमन्त्र—आप कहाँ जायेंगे ?

भरत—मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ लक्ष्मणप्रिय राम हैं, उनके बिना अयोध्या अयोध्या नहीं रही । राम जहाँ, अयोध्या वहाँ ॥ २४ ॥

( सबका प्रस्थान )

तृतीय अङ्क समाप्त ।

( ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च )

भरत.—स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥ १ ॥

सुमन्त्रः—एष एष आयुष्मान् भरतः—
दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥ २ ॥

---

**स्वर्गमिति**—सुकृत पुण्यमनुयात्र सहगामि यस्य तस्मिन् सुकृतानुयात्रे पुण्यानुग नरपतौ राजनि स्वर्गं गते दिवमुपयाते पौराणा पुरवासिनामश्रुपातसलिलैर्बाष्पजलैरनुगम्यमान. अहम् अकृपणेषु उदारेषु ( रमणीयषु ) तपोवनेषु (वसन्तमिति सम्बन्धनीयम्) रामाभिधान रामसञ्ज्ञकं जगत. ससारस्य अपर प्रसिद्धचन्द्रादतिरिच्यमान शशाङ्क जगदाह्लादकत्वशीतलशीलत्वादिना चन्द्र द्रष्टुं प्रयामि गच्छामि । रामे चन्द्रत्वारोपाद्रूपकम् । ईदृशा. प्रयोगा परत्रापि दृश्यन्ते । यथा नैषधीये—'इद तमुर्वीतलशीतलद्युतिम्' इति । वसन्ततिलक वृत्तम् ।

**दैत्येन्द्रेति**—दैत्येन्द्रोऽसुरश्रेष्ठस्तस्य मान दर्पस्तन्मथनस्य दलनकारकस्य असुराधिपाहङ्कारापहारिणो दशरथस्य नृपस्य राज्ञ पुत्रस्तनय. । यज्ञोपयुक्तविभवस्य यज्ञार्थविनियुक्तधनसम्पदो नृपस्य अजस्य पौत्रः । पितु प्रियकरस्य तातेप्सिताचारिण. जगत्प्रियस्य जगतीहितकारिण: । रामस्य भ्राता भरत रामसदृशेन रामतुल्येन पथा

---

( रथ में बैठे हुए भरत, सुमन्त्र और सारथि का प्रवेश )

भरत—महाराज दशरथ अपने पुण्य के बल स्वर्ग गये। मैं पुरवासियों के अश्रु-प्रवाह का संबल लेकर, उदार, तपोवन में रमते हुए राम को देखने जा रहा हूँ, जो पृथ्वी पर के दूसरे चन्द्र हैं ॥ १ ॥

सुमन्त्र—यह चिरायु भरत—

दैत्यराज के अभिमान को दूर करनेवाले दशरथ के पुत्र, समूची राज्यसमृद्धि को यज्ञों में लगा देने वाले अज के पौत्र, पितृप्रिय राम के भ्राता, राम की भाँति आदर्श-पथ पर जा रहे हैं ॥ २ ॥

भरत —भोस्तात !

सुमन्त्र.—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—क्व तत्रभवान् ममार्यो रामः ? क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः । क्व मन्त्रिदर्शनं मान्यताम् ? क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः ? क्व तत् पात्रं यशसः ? क्वासौ नरपतेः पुत्रः ? क्वासौ सत्यमनुव्रतः ?

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता ।

---

मार्गेण प्रयाति । यादृशेन मार्गेण रामो व्यवहरति, तादृशेन विश्वप्रसरयेन मार्गेण भरतोऽपि व्यवहरतीति भावः । अत्र पितृपितामहप्रभृतीनां तत्तद्गुणगणविशेषेण भरतेऽपि तेषां गुणानां सद्भावविषये निश्चितताप्रतिपादिता । विशेषणानां साभिप्रायतया परिकराख्यालङ्कारः, 'विशेषणानां साभिप्रायत्वे परिकरः' इति तल्लक्षणात् । पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २ ॥

महाराजस्य प्रतिनिधिः प्रतिनिधिरिव, एतेन तस्मिन् भरतस्य विशेषं बहुमानं सूचितम् । ... तु रामीयेन निदर्शनम् ... । प्रत्यादेशः तिरस्क्रिया, राज्यप्राप्तये ... व्यवहरन्त्याः कैकेय्याः प्राप्तमपि राज्यं तृणाय मन्यमानो वनाय प्रतिष्ठमानो रामो मूर्तिरिव तत्पराभवस्य भवति स्मेति भावः । नरपतेः पुत्रः, ... मनोभावतया यथार्थभावेन पुत्रपद-व्यवहारार्हः, एतेन ... व्यञ्जितम् । अन्यत्सर्वमिति तद्व्याख्यानं स्वयमूहनीयम् । अत्र सर्वत्र 'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, अग्रणीर्जितयानाम्, धौरेयः साहसिकानाम्' इत्यत्रेवोल्लेखालङ्कारः, तल्लक्षणं यथा—'क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित् । एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते ॥' इति ।

ममेति—मम भरतस्य मातुः कैकेय्याः प्रियं हितं कर्तुं येन रामेण लक्ष्मी

---

भरत—तात !

सुमन्त्र—राजकुमार, यहीं तो हूँ।

भरत—कहाँ हैं हमारे पूज्य राम ? कहाँ हैं वे महाराज के प्रिय प्रतिनिधि ? कहाँ हैं वे धीरों के उत्तम उदाहरण ? कहाँ हैं वे राज्यलुब्धा कैकेयी के तिरस्कर्ता ? कहाँ हैं वे यशोनिधि ? कहाँ हैं वे महाराज के आदर्श पुत्र ? कहाँ हैं वे सत्यसंकल्प ?

मेरी माता की इष्टसिद्धि के लिए, जिन्होंने राज्य के ऐश्वर्य को ठुकरा दिया।

तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ ३ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥ ४ ॥

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । ( तथा करोति )

भरतः—( रथादवतीर्य ) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । ( निष्क्रान्तः )

भरतः—भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

---

( उपस्थितापि ) राज्यश्रीः विसर्जिता परित्यक्ता, तं मम परमं सततराध्यं दैवतं द्रष्टुं विलोकयितुम्, अहं भरतः, इच्छामि इच्छन् यामीति । अन्यदीयमातुः प्रियं कर्तुं यः समुपस्थितां राज्यश्रियं परिहरति, सोऽयमसाधारणमाहात्म्यवत्तया देवोपमः श्रद्धयाऽऽराध्य इति तमहं द्रष्टुं गच्छामीति तदाशयः ॥ ३ ॥

अत्रेति । महायशाः प्रचुरविमलकीर्तिः रामः, सीता, लक्ष्मणश्च तिष्ठन्तीति शेषः । येषु रामसीतालक्ष्मणेषु सत्यं शीलं भक्तिश्चेति त्रयम् । क्रमशः सत्यनिष्ठा, स्नेहो, गुरुजनविषयो भावश्चेति त्रितयं विग्रहवत् मूर्तिमदिव स्थितम् । तत्र रामे सत्यं सदा सत्यपालनपरायणत्वात्, सीतायां शीलं पत्यनुरागाधीनचित्तत्वात् लक्ष्मणे भक्तिः संततिज्ञाप्रतिपालनादिति बोध्यम् ॥ ४ ॥

विश्रामय मार्गश्रममपाकर्तुं विश्रान्तान् कारय ।

---

अपने उन्हीं आराध्य देव के दर्शन की कामना है ॥ ३ ॥

सुमन्त्र—कुमार, इसी आश्रम में—

महायशा राम, सीता और लक्ष्मण वास करते हैं; जहाँ ऐसा मालूम पड़ता है, मानो मूर्तिमान् सत्य, भक्ति और शील रहते हों ॥ ४ ॥

भरत—अच्छा, तो रथ रोको !

सूत—जो आज्ञा । ( रथ को खड़ा करता है )

भरत—( रथ से उतरकर ) सारथि, घोड़ों को एक ओर ले जाकर विश्राम करने दो ।

सूत—जो आज्ञा । ( प्रस्थान )

भरत—तात, सूचित कीजिए ।

सुमन्त्रः—कुमार ! किमिति निवेद्यते ?

भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम् ।

भरतः—युक्तं, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् । तेन हि उच्यताम्—
'इक्ष्वाकुकुलव्यङ्गभूतो भरतो दर्शनमभिलषती'ति ।

सुमन्त्रः—कुमार ! नाहमेवं वक्तुं समर्थः । अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम् ?

भरतः—न न । नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति । किं ब्रह्मचारिणामपि परेण निवेदनं क्रियते ? तस्मात् तिष्ठतु भवान् । अहमेव निवेदयिष्ये । भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

---

परदोषमन्यदीयमपराधम् न न्याय्यम् अनुचितमित्यर्थः । इक्ष्वाकुकुलव्यङ्गभूत इक्ष्वाकुवंशकलङ्कभूत ।

न नेति—केवलं मम नाम नाभिधीयमानमित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—नामेति । इदं पवित्रीयाणामुच्चैश्चनामोच्चारणेन महदापत्तिनिवेदनं न युक्तम् । तदेवोपपादयति अद्येति । वस्तुतो विद्यमानस्य दोषस्य कीर्तनमन्तरा अस्मदभिधानमभिधीयमानं तु कृतानुतापस्यप्रायश्चित्तं भवतीति, तदैव मदीयनाम सूचयितुमुपयुक्तमिति भावः । ब्रह्मचारिणां ब्रह्मचर्यामसमानधर्मकलुषितानाम्, तस्मात् परेणाभिधातुमयोग्यत्वादिति भावः ।

---

सुमन्त्र—कुमार, क्या सूचित किया जाय ?

भरत—राज्यलुब्धा कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

सुमन्त्र—गुरुजनों की निन्दा आप न किया करें ।

भरत—ठीक है, दूसरे की निन्दा करना अच्छा नहीं है । यह सूचित कीजिये कि इक्ष्वाकुकुलकलङ्क भरत आपका दर्शन करना चाहता है ।

सुमन्त्र—ऐसा मैं नहीं कह सकता । हाँ, भरत आये हैं, ऐसा निवेदन करूँ ?

भरत—नहीं, नहीं, केवल नाम लेने से प्रायश्चित्त नहीं हुआ सा मुझे मालूम पड़ता है । ब्रह्मचारियों की सूचना भी दूसरे देते हैं ? आप रहने दें । मैं खुद सूचित करूँगा । पिता के वचनों की रक्षा करनेवाले महानुभाव रघुकुलतिलक को सूचित करो—

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ५ ॥

( ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम् )

राम.—( आकर्ण्य सहर्षम् ) सौमित्रे ! किं शृणोषि ? अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम्।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥६॥

---

**निर्घृणश्चेति**—निर्घृणः दयारहितः, कृतघ्नः कीर्त्तिविघाती च, प्राकृतः पामरः, प्रियसाहसः अनुचितसाहसविषयप्रेमपरायणः, ( एतावद्दोषगणसङ्कुलोऽपि ) भक्तिमान् त्वद्विषयेण भक्तिगुणेन युक्तः कश्चित् अनिर्देशार्हाभिधान आगतः, स कथं केन प्रकारेण तिष्ठतु त्वद्दर्शनप्रतीक्षाद्वारि सक्तो भवतु यातु दर्शनानर्हतया दृष्टिगोचरादपसरतु वा ? दोषाधिक्यादपगच्छतु, भक्तिमहिम्ना त्वद्दर्शनं प्रतीक्षतां वेति द्वैतं विनिगमनाविरहादिति भावः ॥ ५ ॥

**कस्यासाविति**—मे मम पितुः सदृशतरः मत्पितृस्वरतुलितः कस्य असौ, स्वरः वर्णपद्धतिप्रयोगपरिपाटी गाम्भीर्यात् मेघनादं घनरवं परिभवति अतिशेत इव । यः सस्नेहः स्नेहाख्यमानसभावव्यञ्जकः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां बन्धुरयमिति सन्देहं जनयन् इष्टतः इष्टतया कर्णरसायनतया श्रुतिपथं कर्णविवरं प्रविष्टः । अयं भावः—कस्यायं मत्तातपादस्वरसदृशो घनगर्जितानुकारी च शब्दो मम श्रोत्रमाप्याययन् वर्त्तते, यमुपश्रुत्य मम बन्धुना कृतोऽयं शब्द इति मम मनः सन्दिग्धे। प्रहर्षिणीवृत्तम्, 'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति तल्लक्षणम् ॥ ६ ॥

---

एक नृशंस, कृतघ्न, अधम और उद्दण्ड, किन्तु भक्तिशाली व्यक्ति आया है। क्या वह दरवाजे पर प्रतीक्षा में ठहरे या लौट जाय ॥ ५ ॥

( राम का सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश )

राम—( सुनकर, हर्ष के साथ ) लक्ष्मण, क्या सुन रहे हो ? जनकपुत्रि, क्या तुम भी सुन रही हो ?

मेरे पिताजी के स्वर से एक दम मिलनेवाला और गम्भीरता में मेघगर्जन के समान यह स्वर किसका हो सकता है ? यह स्वर मेरे हृदय में भ्रातृ सन्देह उत्पन्न करता है, तथा स्नेहपूर्ण रूप में कर्णगोचर हो रहा है ॥ ६ ॥

लक्ष्मण —आर्य ! ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति।
तथा हि—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ ७ ॥

राम —सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः क्लेदयतीव मे हृदयम्।
वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां दृश्यतां तावत्।

लक्ष्मण —यदाज्ञापयत्यार्यः। ( परिक्रामति )

---

घन इति—घनो निबिडो मांसलः, स्पष्टो व्यक्ताक्षरः, धीरो गम्भीरः, समदवृषभस्निग्धमधुरः मत्तवृषभस्वरवत् स्निग्धमधुरः, कलः रमणीयः कलः कोमलध्वनिः स्फुटं प्रकटं श्रोत्रयुक्तः वा करणं वा बाह्याभ्यन्तरलक्षणः प्रयत्नो येषां तानि स्फुटकरणानि नानाक्षराणि यस्मिन् सः स्फुटकरणनानाक्षरस्तस्य भावस्तया प्रयत्नकृताक्षरलभ्यस्फुटीभावेनेत्यर्थः। कण्ठे गले वक्षसि हृदयदेशे च यथास्थानं प्राप्य यस्याक्षरस्य यत् स्थानं ताल्वादि तत्तत् स्थानमनतिक्रमेण सम्प्राप्येत्यर्थः। अनुपहतसञ्चाररभसः अप्रतिबद्धप्रचारवेग अत एव च स्थानप्रयत्नकृतदोषविरहिततया अनुपहतसञ्चाररभसः अप्रतिबद्धप्रचारवेग। एष हि स्वरः चतुर्णां वर्णानां ब्राह्मणादीनाम् अभयं दातुं व्यवसितः उद्युक्त इव प्रतिभातीति भावः। स्वरस्य यथोक्तगुणयोगित्वया सत्प्रयोक्तुः चातुर्वर्ण्यरक्षाचातुर्यं समर्थ्यते। एतेन चातुर्वर्ण्यरक्षाधिकारस्थस्य प्रकृतस्वरप्रयोक्तुर्महापुरुषत्वं प्रतिपादितम्, अन्यत्सुगमम्। शिखरिणीवृत्तम् ॥

क्लेदयति आर्द्रीकरोति स्वजनस्वरस्यैवैष स्वभावो यद्हृदयमावर्जयतीति। तथा च भवभूतिः—'अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मनः' इति।

---

लक्ष्मण—आर्य, निश्चय ही यह स्वर मेरे हृदय में बन्धुजनोचित सम्मानभाव पैदा कर रहा है, क्योंकि—

यह स्वरसंयोग घन, स्पष्ट, गम्भीर, मतवाले साँड की आवाज के तुल्य सरस, मधुर, अभिरामता से भरा, यथास्थान से वर्णोच्चारण वाला, गले और छाती में अप्रतिहत ढंग से प्रभावशाली है, जिससे प्रतीत हो रहा है कि चारों वर्णों को वह अभयदान देने को उद्यत हो ॥ ७ ॥

राम—निश्चय ही यह स्वरसंयोग किसी अबान्धव जन का नहीं है। इसे सुन कर मेरा हृदय पसीजा जा रहा है। वत्स लक्ष्मण, देखो तो।

लक्ष्मण—जो आज्ञा। ( टहलता है )

भरत --अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता--एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।

एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरेहि ।

सुमन्त्र --प्रविशतु कुमारः ।

भरत --तात इदानीं किं करिष्यसि ?

सुमन्त्र --अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे ।

विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥ १५ ॥

भरत --एवमस्तु । ( राममुपगम्य ) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

राम --( सहर्षम् ) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

---

अहमिति--( यतः ) नराधिपे राजनि दशरथे स्वर्गं याते विदितार्थस्य अवगततत्स्वर्गगमनमाचारस्य ( कर्तरि षष्ठी ) रामस्य अधुना भुवि एतत् पूर्वदर्शनं मम प्रथमं साक्षात्कारं ( अतः ) अहं पश्चात् त्वयि प्रविष्टवति प्रवेक्ष्यामि । अयमाशयः--यदवधि दशरथो दिवमुपयातस्तदवधि नाहं राममैक्षिषि, तदधुना मां दृष्ट्वा प्रमीतं तातमनुस्मृत्य रामो विमनायेत, सा च तदवस्था प्रियभ्रातृसमागमानन्दपरिपन्थिनी स्यादतो नाहं पूर्वं प्रवेष्टुमिच्छामि, न वा त्वया सह किन्तु त्वया पूर्वं प्रविष्टेन सह समागमं कृत्वाऽऽनन्दमनुभूतवति रामे प्रविष्टस्य मम दर्शनेन जनितोऽपि तातस्मृतिप्रभूतो विषादो नामृतमानन्दं रुन्ध्यादिति ॥ १५ ॥

वक्ष इति--कपाटपुटप्रमाणं कपाटोदरविस्तीर्णम्, वक्षः उरोदेशम्, प्रसारय

---

भरत--आपका अनुगृहीत हुआ ।

सीता--आओ वत्स, अपने भाई के मनोरथ को पूर्ण करो ।

सुमन्त्र--कुमार भीतर जावें ।

भरत--तात, आप इस समय क्या करेंगे ?

सुमन्त्र--महाराज जब से स्वर्गवासी हुए हैं, और इसकी सूचना राम को मिली है इसके बाद यह मेरी राम से पहली भेंट है, अतः मैं पीछे जाऊँगा ॥ १५ ॥

भरत--ऐसा ही सही । ( राम के समीप जाकर ) मैं भरत आपको नमस्कार करता हूँ ।

राम--(हर्ष से) आओ इक्ष्वाकुकुमार तुम्हारा कल्याण हो । तुम चिरायु होवो । किवाड़ की जोड़ी की तरह चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओं

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥ १६ ॥

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुमन्त्रः—( उपेत्य ) जयत्वायुष्मान् ।

रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरसमये खं समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ।
सश्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं

---

विस्तृतं कुरु, तथा च तात त्वदालिङ्गनस्य सुखमधिकमनुभवितुं शक्नुयामिति भावः । मां सुविपुलेन अतिलम्बेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन आलिङ्ग्य परिष्वजस्व । इदं मम शरदिन्दुकल्पं शारदनवरीश-सदृशम् आननम् उन्नामय उन्नतं कुरु । तथा च सति सकलभागेषु दृष्टिर्मम व्याप्रियेताधिकमानन्दं च विन्देदिति (एभिश्च व्यापारैः) व्यसनदग्धं तातवियोगत्वद्विच्छेदादिजनितेन दुःखेनोपहतम् इदं शरीरं प्रह्लादय शिशिरय । स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवतीति न्यायेन कियताऽपि प्रसादमधिगच्छेयमिति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १६ ॥

गत्वेति—यः पूर्वं पुरा समये सासुराणां दैत्यैः सहितानां सुराणां देवानां विमर्दे संग्रामे देवासुरयुद्ध इत्यर्थः, अभिसरे साहाय्यकार्थं प्रस्थानस्य समये समानैः देवाभ्युपितविमानोपमैः विमानैः व्योमयानैः (करणैः) स्वसैन्यैरात्मसैनिकैः (सह) खं गत्वाऽऽकाशमुत्प्लुत्य स स (वीर्यातिशयेन सर्वेषां पश्यतां विस्मयजननेन) सोऽयं दशरथ इति विख्यातः प्रसिद्धः, जात इति शेषः । सश्रीमान् लब्धलक्ष्मीकः त्यक्तदेहः विमुक्तकायो नरेन्द्रः महाराजः दयितं प्रियसुहृदं स्नेहवन्तं अनुरागशालिनं भवन्तं

---

द्वारा मुझसे भेंटो । शरद्‌ऋतुके चाँदके सदृश अपने मुखको उठाओ, और शोक की ज्वाला में जलते हुए मेरे अङ्गोंको शीतल करो ॥ १६ ॥

भरत—मैं आपका अनुगृहीत हुआ ।

सुमन्त्र—( आकर ) जय हो आयुष्मान् की ।

राम—हा तात,

आप पहले देवासुर संग्रामोंमें देवोंकी सहायताके लिए स्वर्ग जाते थे, उस यात्रामें आपके विमान देव विमानोंके सदृश होते थे और उस युद्धमें महाराजकी विजयपर लोग आदर-सम्मान प्रकट करते थे, वही आप अपने प्रीतिपात्रोंके

स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥१७॥

सुमन्त्र —( सशोकम् )

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ १८ ॥

सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।

रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदावीअदि तादो ।

राम —मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण !
आपस्तावत् ।

---

विना अन्तरा स्वर्गस्य रान् अधुना पितृभूतै पितृकोटिगणनीयै स्वैरात्मीयै नरेन्द्रै रमयति आत्मान विनोदयति किम् ? न कथमपीति प्रश्नकाकुलभ्योऽर्थ । य पुरा त्वया सहितो देवसहायताये सशरीर स्वर्ग गत., स इदानी त्वा विना शरीर त्यक्त्वा तत्र गतोऽपि कथमिवात्मान विनोदयेत्, सुहृद्विनाकृतत्वादिति भाव । शौर्यातिशयरूपसमृद्धिवर्णनादुदात्तालङ्कार, 'उदात्त वस्तुन सम्पद्' इति तल्लक्षणात् । पूर्वार्द्धे प्रतीयमानो वीरो रस उत्तरार्धे राजमरणात् प्रतीयमानस्य करुणस्याङ्गमिति बोध्यम् । स्रग्धराच्छन्द, 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति हि तल्लक्षणम् ॥ १७ ॥

**नरपतीति** । नरपतिनिधन राज्ञो देहावसानम्, भवत्प्रवास भवता त्र्याणा वनयात्राम्, भरतविषाद भरतस्य भवत्प्रवासादिनिमित्त दु खम, कुलस्य ईदृगुणतस्येक्ष्वाकुवशस्यानाथताम् अशरणताम्, इत्येव रूप बहुप्रकारक दुष्प्रसह्य कृच्छ्रेण सोढव्य दु ख क्लेशमनुभूय मे मम आयुषा जीवितेन गुणे चिरजीवित्वलक्षणे इव बह्वपराद्धम् अनल्प उपघात ;कृत । यदहं चिरजीविता नाध्यगमिष्य तदेतानि दु खानि नान्वमविष्यमिति ममायुषा चिरस्थायिताश एवापराध कृत इति भाव । पुष्पिताग्रावृत्तम्॥

---

विना स्वर्गमें भी क्या आनन्द पाते होंगे ? ॥ १७ ॥

सुमन्त्र—(शोकसे) महाराजकी मृत्यु, आपका वनवास, भरतकी तकलीफ वंशकी अनाथता, वगैरह नाना प्रकारके कष्टोंको दिखाकर हमारी लम्बी उम्रने गुणोंके साथ दोष ही अधिक दिये ॥ १८ ॥

सीता—रोते हुए आर्यपुत्रको तात और भी रुला रहे हैं ।

राम—मैथिलि, यह देखो, अपने को समाल लेता हूँ । वत्स लक्ष्मण जल ले आओ ।

लक्ष्मण:—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । ( कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य ) इमा आपः ।

राम.—( आचम्य ) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः ।

अय्यउत्त ! ण एदिणा वि सुस्सूसइदव्वो ।

रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ १६ ॥

---

पर्यवस्थापयामि प्रकृतावारोपयामि । आपस्तावद् जलमाह्रियताम्, येन मुख-प्रक्षालनादिना प्रकृतिपुनरापत्तौ क्षमेयेति भाव. ।

क्रमेण अवरजत्वानुसारेण, योऽवरज. । स एव शुश्रूषेतेति भाव.

विशीर्यते विच्छिद्यते, अधुनावधि वने लक्ष्मणस्यैव जलाहरणादि कार्यमासीत्, अधुना भरतस्तत्र व्याप्रियत इति तद्विच्छेद. ।

इह वने, तत्रस्थ· नगरस्थः शुश्रूषयतु मत्कर्मानुतिष्ठतु, तदयं शुश्रूषाविभागोऽतिरमणीय इति भावः ।

**इहेति** । इह त्वया नित्यनिवासेन सनाथीकृते वने देहेन सदेह· स्थास्यामि; तत्र राजधान्यां कर्मणा राज्यपालनात्मकेन कर्त्तव्येन स्थास्यामि । कायेनात्र तिष्ठन् सर्वमपि राजधानीकार्यमनायास सम्पादयिष्यामीति । ननु नित्यावधानसाध्ये राज-

---

लक्ष्मण—जो आज्ञा ।

भरत—आर्य, यह ठीक नहीं होगा । क्रमसे शुश्रूषा करेंगे । मैं ही जल लाऊँगा ( कलश लेकर जाता और आता है ) यह लीजिये जल ।

राम—( आचमन करके ) मैथिलि, लक्ष्मणका धन्धा छूट-सा रहा है ।

सीता—आर्यपुत्र, इनको भी शुश्रूषा करनी चाहिये ।

राम—अच्छा, तो यहाँ लक्ष्मण शुश्रूषा करें और वहाँ भरत शुश्रूषा करेंगे

भरत—आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

देहसे मुझे यहाँ रहने दिया जाय, वहाँ केवल मेरा प्रबन्ध रहेगा । रक्षा तो आपके नाम मात्र से हो जायगी ॥ १६ ॥

रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! मा मैवम् ।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यघनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क तिष्ठतु ?

रामः—यत्र मे मात्राऽभिहितं, तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः । आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

---

कर्मणि भवतोऽत्र दूरदेशे कृतकार्यता कथं सम्भाव्यतामित्यत्राह—नाम्नैवास्ति रामस्य राज्यमिति भवन्नामधेयान्वयमात्रेण अस्मदायासलेश विनैवेत्यर्थः । कुलरक्षा सुरक्षिता भविष्यति । एवञ्चात्र मयि स्थिते न कस्यापि किमपि हीयत इति मां मामत्र स्थातुमिच्छन्तं प्रतिषेधीति भावः ॥ १९ ॥

कैकेयीमातः कैकेयी माता यस्येति विग्रहे बहुव्रीहौ समासः 'मातन्मातृक-मातृषु वा' इति वार्त्तिके मातृकमात्रोरुभयोर्निर्देशात् कपो विकल्पमाद्रूपम् ।

पितुरिति—अहं पितुः नियोगात् अनुशासनात् वनं काननम्, आगतः भयाद् वनं नागतः, दर्पाद् वनं नागतः, विभ्रमाद् बुद्धिनाशाद् वनं नागतः । नः अस्माकं कुलं वंशश्च सत्यघनं सत्यपालनव्यसनितया प्रसिद्धम् (तत्) ते ब्रवीमि (त्वया ज्ञायमानमपि) अवधानविशेषदानार्थं बोधयामि । एवं स्थिते भवान् नीचपथे राज्यभारग्रहणरूपपित्राज्ञापरित्यागलक्षणे कुत्सितमार्गे कथं केन प्रवर्तते ? न कथमपि भवता तत्र पथि वर्तनीयमिति भावः ॥ २० ॥

अभिषेकोदकम् अभिषेकार्थमानीतम् अनेकपुण्यतीर्थोद्धृतं जलम् । क तिष्ठतु कस्य शिरसि निधातव्यं भवान् मन्यत इत्यर्थः ।

व्रणे प्रहर्तुम् क्लेशिते क्लेशयितुम् । मद्राज्यवार्त्तयैव भवान् इमामवस्थां गमित-

---

सीता—वत्स, कैकेयीनन्दन, नहीं नहीं, ऐसा मत कहिये ।

मैं पिताकी आज्ञासे वन आया हूँ, वत्स ! न तो मैं अभिमानसे यहाँ आया हूँ, न भयसे, और न चित्तविभ्रमसे । हमारा वंश सत्यका पुजारी होता आया है, फिर तुम उससे उतरकर नीच पथपर क्यों उतरना चाहते हो ? ॥ २० ॥

सुमन्त्र—तो बताइये, अब अभिषेकका जल किसपर छोड़ा जाय ?

राम—जिसपर मेरी माताने कहा, उसीपर दीजिये ।

भरत—आर्य, आप मुझपर दया दिखावें, आर्य, अब फोड़ेपर नमक मत छिड़कें ।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः । किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते ।
अय्यउत्त ! अदिकरुणं मन्तेअदि भरदो । किं दाणिं अय्यउत्तेण चिंतीअदि ।

राम—मैथिलि !

---

इति खेदमावहतो मम राज्याभिषेकप्रसङ्ग पुनरपि खेद दीपयति, तस्माद्विरम्यता तथोक्तेरिति भाव ।

अपीति—हे सुगुण, शोभनगुणनिलय ! त्वत्प्रसूति त्वदुत्पत्तिवंशो ममापि प्रसूति अपि ममापि प्रभवश्चेत्यर्थ । निभृतधीमान् अचञ्चलप्रशस्तधिषण स प्रसिद्ध खलु ते पिता मे पितेतीहापि सम्बन्धनीयम् । हे सुपुरुष ! पुरुषाणा मातृदोषो मातृकृतोऽपराधो न दोषश्चेत् हे वरद, ईप्सितार्थदायिन् ! आर्तम् अतिपीडितम् यथावद् यथाहम् भरत पश्य तावदिति वाक्यालङ्कारे । यदि मामपि रघुवंशोद्भव दशरथपुत्र त्वद्भ्रातर च जानासि, मातृकृतापराधेनादण्डनीय च प्रतिपद्यसे, तदा मा मामुपेक्षिष्ठा इति भाव ॥ २१ ॥

अतिकरुणम् अतिशयहृदयावर्जकम् । चिन्त्यते विचार्यते, नास्ति भरत इत्थं विलपति कस्याप्यर्थस्य चिन्तनस्यावसरस्तस्मादाशु भरतोक्तप्रकारेणानुष्ठानमनुजानीहीति द्वाभ्या सीताया आशय ।

---

हे सुगुण, मेरा भी जन्म उसी वशमें हुआ जिसके आप अलकार हैं, मैं भी उन्हींका पुत्र हूँ जिनके आप वशधर हैं। हे सुपुरुष, मातृदोपसे पुरुषोंको दोषी नहीं गिना जाता, अत आप अभिलषित वरदाता होनेके कारण व्यथित भरत को दयादृष्टिसे देखें ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, भरतकी बातें अतिकरुणमय हो रही हैं। आप इस समय क्या सोच रहे हैं ?

राम—मैथिलि,

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु॥ २२॥

वत्स! कैकेयीमातः!

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्य वशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया

---

तं चिन्तयामीति—सुरलोकयातं स्वर्गगतं तं नरपतिं तातमहाराजं चिन्तयामि, भरतनिष्ठगुणावलीसाक्षात्कारवेलायामस्या स्मरामि येन अयं निश्चविलक्षणं आत्मजविशिष्टगुणः आत्मजेषु चतुर्ष्वपि स्वतनयेषु मध्ये विशिष्टगुणः सर्वाधिकगुणपूर्णः न ■ तत्त्वेन साक्षात्कर्तुं न शक्तः, इदमीयगुणविकासावसरे तन्निधनादियमीदृशी भणितिः। ईदृग्विधम् एतादृशं गुणमयं पुत्रं समवाप्य लब्ध्वा लोके पुरुषोत्तमेषु मानुषश्रेष्ठेषु तातपादसदृशेषु यदि विधेर्भाग्यस्य बलं प्रभुत्वं तर्हि धिग् भो। एतादृशविशिष्टपुत्रलाभेन धन्यस्यापि तातस्य तदीयगुणसाक्षात्कारणपरिपन्थिदैवपारवश्यमत्यन्तानुचितमिति भावः॥ २२॥

यत्सत्यमिति—भवता यत्सत्यं वस्तुतः परितोषितः स्नेहमयेन सरलेन च व्यवहारेण सन्तुष्टान्तरङ्गः कृतोऽस्मि। भवान् निष्कल्मषात्मा निष्पापबुद्धिः। भवतः ख्यातैः लोकेऽसाधारणतया प्रसिद्धिमाप्तैः गुणैः सौजन्यसारल्यादिभिः निर्जितः पराजितः स्वायत्तीकृतः। (अहम्) त्वद्वाक्यस्य त्वदीयवचनस्य वशानुगः वश्योऽस्मि, भवदुक्तमलङ्घनीयं मन्ये इत्यर्थः। नन्वेवमनुष्ठीयतां मद्वचनमित्यत्राह—किन्त्व-

---

मैं सुरधामको प्रस्थित पिताजीको सोचता हूँ, जो अपने इन अनुपम गुणोंकी निधि इस पुत्ररत्नको नहीं देख सके। ऐसे गुणागार पुत्रको पाकर भी पिताजी कालकवलित हो ही गये, हत दैवको धिक्कार॥ २२॥

वत्स कैकेयीनन्दन,

तुमने मुझे सचमुच बहुत प्रसन्न किया, तुम्हारी अन्तरात्मा अत्यन्त निर्मल है तुम्हारे वचनोंने मुझे वशमें कर लिया है, तुम्हारे जगद्विदित गुणोंने मुझे जीत लिया है। परन्तु महाराजकी यह आज्ञा है कि भरतको राजगद्दी मिले, उसे असत्य करना उचित नहीं। तुम्हीं बताओ तुम्हारे ऐसे धर्मधुरंधर पुत्रको पैदा करके तुम्हारे

किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता ॥२३॥

भरत.—यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप ! पादमूले ।

रामः—मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥ २४ ॥

भरत.—हन्त अनुत्तरमभिहितम् । भवतु समयतस्ते राज्यं परि-

---

त्यादि । किन्तु एतत् राज्यं भरतोऽभिषेक्तव्य इतीदं नृपतेर्यद्वचो वचनम् अनृतीति दोषः । तत् त्वया अनृतं मिथ्याभूतं (मा निर्बन्धेन राज्येऽभिषिच्य तदुक्तिरसत्या मा कारि मत्तु' न युक्तम् । पितुर्वचनस्य स्वादृशेन सुपुत्रेण सर्वदा पालनीयत्वेन आशास्य- मानत्वाद् इत्याशयः । किञ्च भवद्विधं पुत्रमुत्पाद्यापि ते पिता मिथ्याऽभिधायी असत्याभिधानदोषपातुलो भवतु नैतदुपपद्यत इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥२३॥

**यावदिति**—यावत् यावन्तं कालं व्याप्य भवतो नियमस्य वनवासव्रतस्य अवसानं समाप्तिर्भविष्यति तावद् इह वने नृप, राजन् ते पादमूले त्वदाश्रितो भवेयं वर्तेयेति । यावद् भवान् स्ववनवासावधिं व्यतियापयति तावदिह भवन्तं शुश्रूषमाण- स्तिष्ठेयमिति भरतस्यानुरोधः ।

पद्यस्य उत्तरार्द्धभागं रामोक्तमाह—**मैवमिति**—मैवम् एवं मा वादीरित्यर्थः नृप तातपादः स्वसुकृतैः स्वसत्यवादित्वादिजनितपुण्यैः सिद्धिं फलोदयम् अनुयातु लभताम् । 'त्वत्कर्तृकराज्यास्वीकरणे तु तातस्य मिथ्यावादित्वमिदं प्रथमतयोद्भ- वत् सिद्धेरपाययेदतोऽलं तथाभिधायित्वाशयः ( एवमपि ) स्वराज्यं निज राज- कर्तव्यं न परिरक्षसि चेत् मे मम शापितः अभिशप्तः असि भविष्यसि । वर्तमान- सामीप्ये लट् अहं त्वां शापेन विपाकयिष्यामीति रामाभिप्रायः ॥ वसन्ततिलकं वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ २४ ॥

अनुत्तरम् अविद्यमानप्रतिवचनम्, पितुः सत्यवचनतापालनाय त्वया राज्यमङ्गी-

---

पिता मिथ्यावादी बनें ? ॥ २३ ॥

भरत—तब तक मैं आपकी चरण-शुश्रूषा में रहूँ, जब तक आपके वनवास नियमका अवसान हो ।

राम—ऐसा हठ मत करो, पिताजी अपने किये पुण्योंसे निरवच्छिन्न स्वर्ग भोगें तुम्हें मेरी शपथ, यदि तुम अपना राज्य न सँभालो ॥ २४ ॥

भरत—हाय आपने मुझे अनुत्तर कर दिया। अच्छा, एक शर्तपर आपका राज्य

पालयामि ।

राम.—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिगृहीतुमिच्छामि।

राम.—एवमस्तु ।

भरत.—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

भरत.—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

राम.—वत्स किमिच्छसि ! किमहं ददामि ? किमहमनुष्ठास्यामि ?

---

करणीयमन्यथा शापं प्रदास्यामीत्येव रूपम् । समयतः किमपि निश्चित्य सविद-मनुसृत्येत्यर्थः—'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः, न तु निरवधि-कालस्य कृते राजा भविष्यामीति भावः ।

कः समयः, तवेष्ट इति शेषः, एतेन त्वयोच्यमानमेव समयमङ्गीकरोमीति कथनेन रामस्य प्रेमपारवश्यं सूचितम् ।

निक्षिप्तं न्यासीकृतम् । चतुर्दशवर्षान्ते चतुर्दशानां वर्षाणां वनवासयापनीया-नाम् अन्तेऽवसाने । प्रतिग्रहीतुं स्वीकर्तुम् ( त्वयेति योजनीयम् ) अथवा प्रतिग्रहीतुं प्रतिग्राहयितुम् । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र ग्रहि. ।

आर्य ! श्रुतमिति—रामकृतसमयाङ्गीकारस्यान्यथाभावमुद्भाव्य सीतालक्ष्मण-सुमन्त्रान् साक्षिणः प्रत्यवस्थापयितुमित्यमुच्यते ।

किमहमिति—किं प्रदाय किमनुष्ठाय वा तोषयेयमिति प्रश्नेन त्वत्कृते मम किमप्यदेयमननुष्ठेयं वा नास्ति तदर्हसि यथारुचि प्रार्थयितुमिति प्रघट्टकार्थः ।

---

संभालूँगा ।

राम—कौन-सी शर्त ?

भरत—( शर्त यही कि ) चौदह वर्षोंके बाद अपना राज्य वापस लें, और तब तक मैं धरोहरकी तरह आपके राज्यका रक्षक बनूँ ।

राम—एवमस्तु ।

भरत—आर्य, सुना आपने ? आर्ये, आपने सुना ? तात, सुना आपने ?

सभी—हम सभी श्रोता साक्षी रहेंगे ।

भरत—एक वरदान और चाहता हूँ ।

राम—वत्स, क्या चाहते हो ? क्या दूँ, क्या करने को कहते हो ?

भरत—पादोपभुक्ते तव पादुके म एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना।
यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद्भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥२५॥

राम.—( स्वगतम् ) हन्त भोः !
सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय।
अय्यउत्त ! णं दीयदि खु पुढमजाअण भरदस्स।

---

पादोपभुक्ते इति–मूर्ध्ना शिरसा प्रणताय प्रणमते मे मह्यम् एते पादोपभुक्ते चरणाभ्यां व्यवहृते पादुके काष्ठनिर्मिते पादत्राणे प्रयच्छ वितर। किमर्थं पादुकायाचनमिदमित्याह—यावदिति। यावत् यदवधि भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति स्वकार्यमवसाय्यागमिष्यति तावत् तावत्कालपर्यन्तमनयो पादुकयोर्विधेय आज्ञाकारी भविष्यामि तदनन्तरं तुभ्यं राज्यं प्रत्यर्पयिष्यामीति भाव., तथा च रामायणे—'चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्। फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन। तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ॥'

इन्द्रवज्रावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' ॥ २५ ॥

सुचिरेणेति–सुचिरेण कालेन अपि मया किञ्चिदत्यल्पं यश. (पित्राज्ञापालनपरायणत्वरूपम्) कीर्ति' अर्जितम्। भरतेनाद्य मामित्यमात्मवशीकुर्वता अचिरेण कालेन अतिशीघ्रतया अर्जितम्। यादृशस्य पितृभक्तत्वरूपस्य यशसोऽर्जनाय मया चिरकाल परिश्रान्तम्, अद्य तादृशमेव ततोऽपि वोत्कृष्टं भ्रातृभक्तत्वात्मकं यशो भरतेन अचिरेणैव कालेन अर्जितमित्यहो भरतस्य महापुरुषत्वमिति भाव' ॥२६॥

प्रथमयाचनं प्राथम्येन याच्यमानं पादुकारूपं वस्तु। अत्र भवदीयपादुकयोः आवर्जयितुं निक्षेप्तुम्।

---

भरत—आपके चरणोंमें लगी ये चरण पादुकाएँ मुझ नत किङ्करको दीजिये, मैं तब तक उन्हीं पादुकाओंका वशवर्ती रहूँगा जब तक आप अपना कार्य सिद्ध करके आयेंगे ॥ २५ ॥

राम—( स्वगत ) अहा !

मैंने बहुत दिनोंमें जितना यश सञ्चित किया था, भरतने उतना यश आनन फानन उपार्जित कर लिया ॥ २६ ॥

सीता—आर्यपुत्र, आप भरतको पहिली बार माँगी गई चीज देते हैं ?

राम —तथास्तु । वत्स ! गृह्यताम् ।

भरत —अनुगृहीतोऽस्मि । ( गृहीत्वा ) आर्य ! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि ।

राम —तात ! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम् ।

सुमन्त्र —यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

भरत —( आत्मगतम् ) हन्त भोः !

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः ।
भ्रातॄणां गुणशालिना बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥ २७ ॥

---

हन्त अत्र प्रसादे हन्तशब्द स च रामानुग्रहसिद्धया कृतकृत्यतया भरतस्य बोध्य , तदेव विवृणोति श्लोकनाद्रिमेण ।

श्रद्धेय इति—अह (सम्प्रति) स्वजनस्य निजबन्धुजनस्य श्रद्धेय विश्वास भाजनम्, जात इति शेष । एवमग्रेऽपि सर्वत्र जात इत्यूहनीयम् । पौररुचित पौराणा नागराणा रुचित इष्ट । लोकस्य दृष्टो दर्शने क्षम , रामेणानुगृहीतस्य ममेदानीं बन्धुजनविश्वासपात्रता पौरप्रीतिभाजनता लोकलोचनसाक्षात्कारयोग्यता चाभूदित्यर्थ । स्वर्गस्थस्य दिवंगतस्य नराधिपस्य राज्ञ शीलान्वित सद्वृत्त दयित. प्रिय सुतश्च पुनोऽहं सञ्जात । रामाज्ञया तदादेशानुवर्तनात्तत् प्रियत्वादिकस्यापि रामानुग्रहलभ्यत्वमुक्तम् । गुणशालिना भ्रातृणा बहुमत बहुमानविषय । कीर्ते महत् प्रकृष्ट भाजन जातोऽस्मीति सर्वत्र योज्यम् । गुणवता संवादेषु परस्परालापेषु कथाश्रय

---

राम—तथास्तु, वत्स ! लो ।

भरत—बडी कृपा, (पादुकाएँ लेकर) आर्य, इसपर अभिषेक जल प्रक्षेप करना चाहता हूँ ।

राम—तात, भरत जो जो चाहें, सब किया जाय ।

सुमन्त्र—आयुष्मान् की जो आज्ञा ।

भरत—अहा !

*अब मैं सगे सम्बन्धियोंका श्रद्धापात्र, नगरवासियोंका प्रेमभाजन, ससारकी* ओर आँख उठाकर देखने योग्य, स्वर्गीय महाराजका सुचरित पुत्र, भाई लोगोंका प्यारा, कीर्त्तिका भाजन, गुणवानोंके परस्पर वार्त्तालापमें चर्चाका विषय तथा पूर्णमनोरथ जनोंका स्नेही हुआ हूँ ॥ २७ ॥

राम.—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

सीता—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः ।
हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो ।

राम —अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।

भरत —आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशायन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया ।
तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

---

प्रस्तावविषय लक्ष्मप्रियाणाम् अधिगतकामानां प्रियः पूर्णकामतया तस्माज्जारयात-
त्प्रीतिपात्रमित्यर्थः । एतत्सर्वं रामकृपाया एव फलमन्यथा तु जना कैकेयीकृताप-
राधसम्बन्धेन मामतिजघन्य जानीयुरिति भाव । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ २७ ॥

विजयाय—राज्यकार्यनिर्वहणाय ।

आशायन्त इति—पौराः पुरवासिन पुरे नगरे (तेषा) त्वद्दिदृक्षया त्वद-
वलोकनोत्कण्ठया आशावन्त त्वद्दर्शनविषयकाशाशालिन स्थास्यन्ति भविष्यन्ति ।
'भरतो राममनुरुध्य प्रसाद्य चायोध्यामानेष्यती'ति विश्वासेन त्वद्दर्शनेन चक्षु साफल्य-
सम्भावनापरायणा. पौरा. स्थास्यन्तीत्यर्थं । तेषां त्वां दिदृक्षमाणानां पौराणां प्रीतिं
प्रसन्नताम् त्वत्प्रसादस्य त्वया दीयमानस्य पादुकारूपस्य वरस्य दर्शनात् पादुका
दर्शयित्वेत्यर्थः, करिष्यामि । त्वां दर्शयितुमशक्तो भरतस्त्वत्पादुकादर्शनेनापि बलव-
दुत्कण्ठितपुरवासिजनपरितोषाय किमनाधीन कल्पिष्यत इत्यर्थः, एनेनात्र स्थित्या
स्वपरितोष., अयोध्यापरावृत्त्या च पुरजनपरितोष इति द्वयोरनयो. साध्ययोर्मध्ये
चरम एव समादरः, प्रकृत्यनुरञ्जनस्य भवदादेशावयवत्वादिति भावः ॥ २८ ॥

---

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, राज्यकी ओरसे थोड़ी देरके लिए भी असावधा-
नता नहीं करनी चाहिये । इसलिए तुमको आज ही जाना है ।

सीता—क्या भरतकुमार आज ही लौटेंगे ?

राम—अधिक स्नेह मत प्रदर्शित करो, कुमारको राज्यकी हिफाजतके लिए
आज ही लौटना है ।

भरत—आर्य, मैं आज ही जाऊँगा ।

नगरनिवासी आशा लगाए आपके दर्शनों के लिए अधीर हो राह देखते होंगे,
मैं जाकर आपकी चरणपादुका उन्हें दिखाऊँगा, जिससे प्रसन्नता मिलेगी ॥२८॥

सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदानीं किं कर्तव्यम् ?
रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।
सुमन्त्रः—यदि जीवामि, तावत् प्रयतिष्ये ।
रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।
भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

( रथमारोहतः )

रामः—मैथिलि ? इतस्तावत् । वत्स ! लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्र भविष्यामः ।

( इति निष्क्रान्ताः सर्वे )

चतुर्थोऽङ्कः ।



अनुयात्र भविष्याम । अनुगमिष्याम । एतेनादरो व्यञ्जितः दूरं तु नानुगमिष्याम 'यमिच्छेत् पुनरायातं न तं दूरमनुव्रजेदि'ति व्यवहारस्मरणादिति भावः ।

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटक'-प्रकाशे चतुर्थाङ्कः ॥ ४ ॥



सुमन्त्र—आयुष्मन्, अब मुझे क्या करना है ।
राम—तात, महाराजकी जगह आप भरतके साथ रहें ।
सुमन्त्र—यदि जीता रहा, तो कोशिश करूँगा ।
राम—वत्स कैकेयीनन्दन, मेरे सामने रथ पर चढ़ो ।
भरत—जो आज्ञा ।

( दोनों रथ में बैठते हैं )

राम—मैथिलि, लक्ष्मण, इधर आओ चलो, आश्रमके द्वारतक भरतका अनुगमन करें ।

( सभी जाते हैं )

चौथा अङ्क समाप्त



# अथ पञ्चमोऽङ्कः

( ततः प्रविशति सीता तापसी च )

सीता—आर्ये ! उपहारसुमनआकीर्णः सम्मार्जित आश्रमः । आश्रम-
पदविभवेनानुष्ठितो दैवसमुदाचारः । तद् यावदार्यपुत्रो नाग-
च्छति, तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि ।

अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो । अस्सम-
पदविभवेण अणुट्ठिदो देवसमुदाआरो । ता जाव अय्यउत्तो ण आअ-
च्छदि, ताव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं ।

तापसी—अविघ्नमस्य भवतु ।

अविग्घं से होदु ।

( ततः प्रविशति रामः )

रामः—( सशोकम् )

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-

---

उपहारसुमनआकीर्णः देवनिर्माल्यपुष्पाकीर्णः । सम्मार्जितः पुष्पाद्यपनयेन संशोध्य स्फोटितः गमितः । आश्रमपदविभवेन आसमन्तात् श्राम्यन्ति तपसा कार्यं क्लेशयन्ति यत्र स आश्रमः, तदेव पदं स्थानम्, तत्र सुलभेन पुष्पफलाद्युपकरण-सम्पदेति भावः, दैवसमुदाचारः देवार्चनादिराचारः । उदकप्रदानेन जलसेचनेन । अनुक्रोशयिष्यामि अनुग्रहीष्यामि ।

अविघ्नं विघ्नाभावः, अव्ययीभावसमासः ।

त्यक्त्वेति—गुरुणा तातपादेन मया च रहितां शून्यीकृतां रम्यां सर्वमनो-हरामयोध्यां नाम निजां पुरीं नगरीं त्यक्त्वा अखिलं सम्पूर्णमपि मम वनवासिनो

---

( सीता और तापसी का प्रवेश )

सीता—आर्ये, निर्माल्यपुष्पसे आकीर्ण आश्रम झाड़-बुहार दिया है, आश्रम-सुलभ फल-फूल आदि उपकरणोंसे देवपूजन कर लिया है, इस समय इन छोटे-छोटे पौधोंको ही सींचती हूँ, जब तक आर्यपुत्र नहीं आते ।

तापसी—तुम्हारा कार्य निर्विघ्न हो ।

( रामका प्रवेश )

राम—( शोकके साथ )
पूज्य पिताजी और मुझसे रहित उस सुन्दर अयोध्या-नगरीको छोड़कर मेरे

कथं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ३ ॥

( उपेत्य ) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

सीता—हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः ।

हं अय्यउत्तो ! जेदु अय्यउत्तो ।

राम.—मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः, आस्यताम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । ( उपविशति )

ज अय्यउत्तो आणवेदि ।

रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि किमिदम् ?

---

यम् न एति नानुभवति ? कष्टं खेदावहोऽय विषयः ( यत् ) लताभिः सम स्त्रीजनसौकुमार्यं लतामार्दवोपमेयं ललनाजनमार्दवं वनम् (कर्तृ) कठिनीकरोति दृढं विधायायाससहनशीलं विदधातीत्यर्थः । एष वनवासस्यैव महिमा यदिय मृणालकोमलकाययष्टिः स्वेन करेण दर्पणमपि धारयितुमपारयन्ती पूर्वमिदानी स्वयं जलपूर्णं कलशमादाय वृक्षान् सिञ्चति इति उपजातिर्वृत्तम्, तल्लक्षणमाहुर्यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥ ३ ॥

तपः वृक्षमूले जलप्रदानलक्षण शरीरपरिश्रमसाध्य पुण्यकर्म । अपि वर्द्धते ? अपि निर्विघ्नं सम्पद्यते अपिशब्दोऽत्र प्रश्नार्थोऽपि, तथा च कालिदास —'जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ? अपि स्ववशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे ? अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मन ? इत्यादि ।

धर्मविघ्नः अनुष्ठानावसरातिपातः । वृक्षसेचनमवसितं चेदित्यर्थः ।

प्रतिवचनार्थिनी किमपि पिपृच्छिषन्तीम् । पश्यामि ओष्ठस्फुरणादिमुखचेष्टाभिर्लक्षयामि ।

---

उठानेमें भी नहीं थक रहा है। वनमें निवास लताओंके साथ स्त्रियोंकी भी सुकुमारताको कठोरतामें परिणत कर देता है ॥ ३ ॥

( समीप आकर ) मैथिली, तपस्या तो चल रही है ?

सीता—जय हो आर्यपुत्र की ।

राम—यदि तुमको किसी प्रकार का धर्मविघ्न न हो तो बैठो ।

सीता—जो आज्ञा । ( बैठती है )

राम—सीते, मालूम होता है तुम कुछ पूछना चाहती हो । क्या बात है ?

सीता—शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः किमेतत् ?
मोअसुण्णहिअअस्स विअ अज्जउत्तस्स मुहराओ। किं एदं ?

राम—मैथिलि ! स्थाने खलु कृता चिन्ता।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे तथैव तावद्धृदयव्रणो मे।
नानाफलाः शोकशराभिघातास्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः ?
अज्जउत्तस्स को विअ सन्दावो ?

राम—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः। कल्पविशेषेण निर्वपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। तन् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते। अथवा—

---

शोकशून्यहृदयस्य शोकेन निमित्तभूतेन शून्यं निर्विषयं तदेकायत्तं हृदयं यस्य तस्य। मुखरागः मुखवर्णः औदास्यविवर्णतेत्यर्थः।

स्थाने उचितेऽवश्यमभाधेय विषये चिन्ता कथमिदं निर्वहेयमिति भावना। एतेन चिन्ताविषयस्यावश्यसमाधेयत्वप्रतिपादनेन चिन्तामहत्त्वमुपचीयते।

कृतान्तेति—कृतान्तस्याभिमते शल्यवद्व्यथकेन कालेन अभिहते आहते मे शरीरे (पितृवियोगखेदक्लिष्टे) हृदयव्रणः पितृवियोगशोकलक्षणो मानसिकः खेदस्तथैव तावत् यथापूर्वावस्थ एव न विरूढो न वा विरोहदवस्थः, किन्तु नव एवेत्यर्थः। तत्रैव हृदयव्रणे नानाफलाः अनेकप्रयोजनाः (बहुप्रकारकप्रयोजनाभिसन्धिनिमित्ता) शोकशराभिघाताः पुनः पतन्ति। तत्रैवेति द्विरुक्तिर्मर्मप्रहारस्य नितान्तव्यथकत्वप्रतीतये। अयमर्थः—पितृविरहदुःखशल्यमनुखातमेव यावत्तावन्नानाविधप्रयोजनोपनिपातचिन्ता मम मानसं व्यथयितुमुपतिष्ठन्त इति। उपजातिश्छन्दः॥४॥

श्व. आगामिनि दिने। अनुसंवत्सरश्राद्धविधिं वार्षिकं श्राद्धम्। कल्पविशेषेण सामर्थ्यानुसारेण। निर्वपनक्रिया पिण्डदानविधिम्, इच्छन्ति कामयन्ते। तथा च

---

सीता—आपके चेहरेपर शोकका चिह्न देखता हूँ। क्या बात है।

राम—चिन्ता करनेकी बात तो है ही।

दुर्दैव के बाणप्रहारोंसे व्यथित मेरे हृदयका घाव तो अभी भरा नहीं है, और फिर नानामुख शोकशल्योंसे दैवने उसी पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया है॥४॥

सीता—आर्यपुत्रको किस बातकी चिन्ता है ?

राम—कल पिताजीका वार्षिक श्राद्धदिवस है, पितरोंको सामर्थ्यानुसार श्राद्ध

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

सीता--आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्धया, अवस्थानुरूपं
अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धिए, अवत्थाणुरूव
फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः । एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।
फलोदएण वि अय्य उत्तो । एद तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि ।

राम.--मैथिलि !

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः ।

---

स्मरन्ति— जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात् । गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभि पुत्रस्य पुत्रता ॥' इति ।

गच्छन्तीति । येन केन येन केनापि प्रकारेण (पुत्रदशानुसारिणा विधिना) पितरस्तुष्टिं तृप्तिं यान्ति लभन्ते खलु । हि यत' त एव पितर एव मे मम तां वर्तमानवनवासकालिकीं दशां जानन्ति । एवञ्च स्वसामर्थ्यमनुसृत्य वार्षिकं सम्पादयतो मम व्यवहारेण पितरो मयि न खिद्येरन्निति भाव । नन्वेवं विज्ञायापि चिन्त्यत इत्यनुचितमित्यत आह—इच्छामीति । तथापि स्वसामर्थ्यानुश्राद्धविधे पितृतृप्तिसाधनताप्रत्यये सत्यपि तातस्य पितु रामस्य स्वस्य च सानुरूपां योग्याम्, पूजां श्राद्धक्रियां कर्तुं विधातुमिच्छामि । दिगन्तविख्यातप्रभावस्य पितु प्रथितस्य स्वस्य चानुरूपं श्राद्धं विधातुमेव मम चिन्ता न पितृपरितोषविषयेति भाव । अत्र सानुरूपाम् इत्यस्य स्थाने 'अनुरूपाम्' इतीयतैव निर्वाहे 'स' इति व्यर्थम् । वंशस्थ वृत्तम् ॥५॥

ऋद्धया समृद्धिसम्पाद्यैः महार्घ्यै पदार्थै, फलोदकेन फलेन जलेन चेत्यर्थ, फलं च उदकं चेति द्वन्द्व, 'जातिरप्राणिनाम्' इत्येकवद्भाव ।

फलानीति—दर्भेषु कुशेषु न तु सौवर्णादिपात्रेषु न अस्माकम् स्वहस्तरच-

---

चाहिए। उसे मैं किस भाँति पूरा करूँगा ? यही चिन्ता है, अथवा—

वे जिस भाँति तृप्त होते हों, होवें, उन्हें हमारी स्थितिका ज्ञान तो है ही। तथापि मैं पिताजीकी प्रतिष्ठा तथा अपने सामर्थ्यके अनुरूप पितृश्राद्ध करना चाहता हूँ ॥ ५ ॥

सीता-आर्यपुत्र, बड़े वैभवके साथ पिताजीका श्राद्ध तो भरत करेंगे ही, आप भी अपनी अवस्थाके योग्य फल जलसे श्राद्ध करें, पिताजी इसे हो पर्याप्त मानलेंगे।

राम—मैथिलि,

कुशोंपर हमारे अपने हाथोंसे विन्यस्त फलोंको देखते ही हमारे वनवासकी

स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ ६ ॥

( ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः )

रावणः—एषः भो !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि॥

---

तानि निजकरन्यस्तानि न तु भृत्यादिनिहितानि फलानि न तु महार्घवस्तूनि दृष्ट्वा ततो दशरथ वनवासम् अस्माकमत्र वने निवास स्मारितस्तत्र स्वर्गेऽपि रोदिति विलपिष्यति । अस्माकमशक्तिकृतमुपहारदारिद्र्यमालोक्य वनवासितां स्मृत्वा स्वर्गेऽपि तातो रोदिष्यतीति किमनुष्ठेयमिति रामस्य चिन्ताया विषयः ॥ ६ ॥

प्रविशति रङ्गमञ्चमवतरति । सीतापहरणं घटयिष्यन् श्राद्धप्रसङ्गेन ब्राह्मण-परिव्राजकवेषस्य रावणस्य प्रवेशमाहानेन प्रसङ्गेन ।

नियतमिति । अनियतात्मा अजितेन्द्रियः अहम् एतद्रूप वञ्चकपरिव्राजक-वेष गृहीत्वाऽह नियत जितेन्द्रियं खरवधकृतवैर खरो नाम मत्प्रियो राक्षसस्तस्य वधेन कृतवैरं कृतापराधम्, राघव वञ्चयित्वा काञ्चनमृगमाययाऽऽश्रमपदादन्यत्र गमयित्वा तां राघवविरहिता जनकनृपसुता सीताम्, स्वरपदपरिहीणा स्वरपदविभागवर्जिताम्, स्वरेण पदेन च दुष्टैर्मन्त्रैर्देवेभ्यो दीयमाना हव्यधारा हविराज्यधारामिव हर्तुकाम प्रयामि । अयमाशय —यथा मन्त्रदोषेण दीयमानाया हव्यधाराया राक्षसा ग्रहीतारो भवन्ति, तथैव खरदूषणादिवध विधाय कृतवैरं राम वञ्चयित्वा सीतामहमपहरामीति। एतदुपमया स्वस्य सीताप्राप्त्यनधिकार सूचयति । अत्र हर्तुं कामो यस्येति विग्रहे 'तुं काममनसोरपी' ति मलोप । 'परिहीणाम्' इति प्रयोगे णत्व चिन्त्यम्, परेरनुप-सर्गत्वया णत्वाप्राप्ते । अनुपसर्गत्व च 'अधिपरी अनर्थकौ' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञयो-पसर्गसंज्ञाबाधेन बोध्यम् । मालिनीच्छन्दः, लक्षण पूर्वमुक्तम् ॥ ७ ॥

---

याद आ जानेसे पिताजी वहाँ भी रो देंगे ॥ ६ ॥

( सन्यासी के वेशमें रावण का प्रवेश )

रावण—अरे यह—

रामने खरका वध करके मेरे साथ वैर बढ़ाया है। मैं आज उसे ठगनेके लिए अविरक्त होकर भी विरक्तका रूप धारण करता हूँ। मैं सीताका हरण करने इस प्रकार जा रहा हूँ, जिस प्रकार स्वर तथा पदसे अशुद्ध मन्त्रोच्चारण होमकी आज्यधारा को हर लेता है ॥ ७ ॥

( परिक्रम्याधो विलोक्य ) इदं रामस्याश्रमपदद्वारम् । यावदवतरामि । ( अवतरति ) यावदहमप्यतिथिसमुदाचारमनुष्ठास्यानि। अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ?

रामः—( श्रुत्वा ) स्वागतमतिथये ।

रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

रामः—( विलोक्य ) अये भगवन् । भगवान् ! अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

रावणः—( आत्मगतम् ) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन । ( प्रकाशम् ) बाढम् ( उपविशति )

रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

---

साधु स्वभावसुन्दरम्, रूपम् आकृतिः, स्वरेण श्रवणावर्जकेन शब्देन विशेषितं रमणीयतरं कृतमित्यर्थः ।

भगवान् सन्यासिविशेषः ।

आस्यताम् इदमासनम् अलङ्क्रियताम् इति वक्तव्ये आस्यतामिति कथनं किमन्तमाज्ञामात्रं व्यञ्जयति, तदृश्यति आज्ञप्त इवेति ।

पाद्य पादार्थमुदकम् ।

---

(घूमकर तथा नीचेकी ओर देखकर) यह है रामाश्रमद्वार। अच्छा, नीचे तो उतर लूँ। ( उतरता है ) अब मैं अतिथिका रूप धारण करता हूँ। मैं अतिथि आया हूँ, कौन है यहाँ ?

राम—( सुनकर ) स्वागत अतिथिका ।

रावण—इसके स्वरने रूपको और चमका दिया है ।

राम—( देखकर ) भगवान् हैं ? भगवन्, प्रणाम ।

रावण—कल्याण हो ।

राम—भगवन्, यह है आसन, आप विराजिए ।

रावण—( आत्मगत ) यह हुक्म क्यों कर रहा है ? (प्रकट) बहुत अच्छा। ( बैठता है ) ।

राम—सीता, महात्माके लिए पाद्य जल लाओ ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । ( निष्क्रम्य, प्रविश्य ) इमा आपः ।
जं अय्यउत्तो आणवेदि । इमा आवो ।

राम—शुश्रूषय भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।
जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

रावण—( मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा ) भवतु भवतु ।
इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥

राम.—तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

---

शुश्रूषय पादप्रक्षालनेनोपचरेत्यर्थः ।

**मायाप्रकाशनेति**—मायाया स्वकृतस्य कपटपरिव्राजकवेषस्य प्रकाशनेन प्रकटतया ( ज्ञातविषया ) पर्याकुल. व्याकुल । सीतया हि स्वपादे स्पृश्यमाने अजितेन्द्रियस्य रावणस्य रोमाञ्चोद्गमादिना माया प्रकटीभवेदिति शङ्काकुलीभाव । भवतु शुश्रूषणं परित्यजतु इति ।

**इयमेकेति**—इय हि निश्चयेन पृथिव्या धरित्रीपृष्ठे मानुषीणा मानवीनाम् एका सजातीयद्वितीयरहिता अरुन्धती पतिव्रताशिरोमणिः । अरुन्धती नाम वसिष्ठ-धर्मपत्नी स्वपातिव्रत्यप्रभावेण सप्तर्षिमध्ये वसति, इह तत्प्रयोग पतिव्रतासामान्य-पर । यस्याः सीतायाः भर्ता स्वामीति हेतो भवान् नारीभि सत्कृत पूजित सन् कथ्यते वर्ण्यते । पतिव्रतायाः सीताया लोकनमस्यत्वम् । तत्पातिव्रत्यप्रभावेण तत्पति-र्भवानपि यतो लोके पूज्यतेऽतः पतिव्रताप्रधानभूतया सीतया क्रियमाणं पादस्पर्शं सानुचम्य इति भाव. ॥ ८ ॥

---

सीता—जो आज्ञा ( बाहरसे जल लाकर ) यह है जल ।

राम—महात्माकी शुश्रूषा करो ।

सीता—जो आज्ञा ।

रावण—( भेद खुलनेके भयसे हक्का-बक्का होकर ) रहने दो रहने दो । यह सीता पृथ्वीपरकी अरुन्धती मानवी है, जिसके स्वामी होने के कारण स्त्रियाँ आपका यश गाती हैं ॥ ८ ॥

राम—लाओ, मैं खुद शुश्रूषा करूँगा ।

रावण —अयि, छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

राम —बाढम् । ( उपविशति )

रावण —( आत्मगतम् ) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । ( प्रकाशम् ) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति ।

---

**अधीति**—योऽहं भवदीयशरीरस्य सततानुगमनात् छायातुल्यां सीतामपि शुश्रूषार्थस्पर्शदूषणलक्षणाल्लङ्घनात् परिहरामि, स कथं साक्षाद्भवच्छरीरमेव लङ्घये इत्यर्थः । वाचा सूनृतया गिरा, अनुवृत्तिः अनुकूलभाषणम् । तदुक्तमातिथ्यप्रस्तावे 'तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता' इति ।

साङ्गोपाङ्गम् अङ्गैः षड्भिः शिक्षाव्याकरणच्छन्दोनिरुक्तज्योतिषकल्पाभिधेयैः । उपाङ्गैः पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्ररूपैश्चतुर्भिश्च सहितम् । मानवीयं मनुना प्रवर्त्तितम् । धर्मशास्त्रं धर्मानुशासनम् । बार्हस्पत्यं बृहस्पतिना प्रोक्तं राजनीतिप्रतिपादनप्रधानं शास्त्रविशेषम् । माहेश्वरं महेश्वरान्छिववादागतं माहेश्वरं योगशास्त्रं पातञ्जलयोगशास्त्रस्य मूलभूतम् । मेधातिथेर्गौतमस्य । प्रचेतसा वरुणेन प्रोक्तं प्राचेतसं, श्राद्धकल्पं श्राद्धप्रक्रियाम् । अधीये इति क्रियया सर्वत्र सम. सम्बन्धः ।

कथं कथमित्यादरातिशयद्योतिका द्विरुक्तिः ।

---

रावण—छायाके समान सीताकी सेवासे निषेध करने वाला मैं शरीरकी सेवा कैसे ग्रहण करूँगा । मीठे वचनोंसे स्वागत ही सच्चा अतिथिसत्कार होता है । मेरी शुश्रूषा हो चुकी । आप विराजिए ।

राम—अच्छा, जो आज्ञा । ( बैठता है । )

रावण—( स्वगत ) तब तक मैं ब्राह्मणका आचार करूँ । ( प्रकट ) अजी मेरा गोत्र काश्यप है । मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र, बृहस्पतिका अर्थशास्त्र, मेधातिथिका न्यायशास्त्र और प्रचेताका श्राद्धकल्प इनका अध्ययन किया है ।

राम—क्या कहा ? श्राद्धकल्प ।

रावण —सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता । किमेतत् ?

राम —भगवन् ! श्रद्धायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः ।

रावण.—अलं हरिहृत्य, पृच्छतु भवान् ।

राम —भगवन् ! निर्वपनक्रियाकाले येन पितॄंस्तर्पयामि ।

रावण —सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।

राम —भगवन् ! अनादरतः परित्यक्तं भवति । विशेषार्थं पृच्छामि ।

रावण —श्रूयताम् । विस्रष्टेपु दर्भाः, ओपधीपु तिलाः, कलाय

---

श्रुती. वेदान् तदङ्गभूतानि शास्त्राण्यपि श्रुतिपदेनात्र सङ्गृह्णाति प्रयद्धत् । श्रद्धाया समाहायाम्, पितृमत्ताया जीवत्पितृकतायाम्, एष एव श्राद्धकल्प एव, आगमः शास्त्रम्, प्रमीतपितृकस्य मम श्राद्धकल्प एवोपयोगावहः, प्रयोजनेनापेक्षणात् । अपेक्षोपेक्षे हि प्रयोजनतदभावाभ्यां सृज्येते पदार्थानाम् इति रामाशयः ।

श्राद्धमिति—पितॄनुद्दिश्य श्रद्धया दीयमानं श्राद्धम् । येन केनापि श्रद्धया दत्तेन पदार्थेन पितरस्तृप्यन्ति, न तु बहुमूल्यानेव पदार्थानपेक्षन्त इति भाव. । श्राद्धप्रसङ्गं मनुराह—'यद्यद्दाति विधिवत् श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् । तत्तत् पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥' इति । अनादरतः अश्रद्धया, दत्तं परित्यक्तं भवति, परित्यागमात्रं तत्, न तु श्राद्धमश्रद्धोपहतत्वादिति भावः । विशेषार्थं श्रद्धापूर्वं दीयमानेषु पदार्थेष्वप्यस्ति कश्चिद्विशेष इति भावः ।

विस्रष्टेपु तृणजातिपु, दर्भाः कुशाः, ओपधीपु 'ओपध्यः फलपाकान्ताः' इति परिभाषितासु, कलायं कालशाकं , वार्ध्रीणसः पक्षिभेदः 'नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपाद

---

रावण—आपने और सभी शास्त्रोंको छोड़कर श्राद्धकल्पमें अत्यादर प्रकट किया क्या बात है ?

राम–पितृहीन होनेके कारण इस समय हमारे लिए इसीका ज्ञान अपेक्षित है ।

रावण—आपको यह विषय छोड़ना न चाहिये । पूछिये ।

राम—महाराज, पिण्डदानके समय किस चीजसे पितरोंको तृप्त करूँ ।

रावण—जो कुछ श्रद्धासे दिया जाय, वह सब श्राद्ध कहलाता है ।

राम—अश्रद्धासे दिया गया तो त्याग कर दिया जाता है । मैं तो विशेष जानने के लिए पूछ रहा हूँ ।

रावण—सुनिये । घासोंमें कुश, ओपधियोंमें तिल, शाकोंमें कलाय, मछलियोंमें

शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्रीणसः, पशुषु गौः खड्गो वा इत्येते मानुषाणां विहिताः ।

राम.—भगवन् ! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति ।

रावण.—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम् ।

राम —भगवन् ! एष एव मे निश्चयः ।

उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति ।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥ ९ ॥

रावण —सन्ति । हिमवति प्रतिवसन्ति ।

---

सितच्छद. । वार्ध्रीणस. स्यात् पक्षीश.' इति लक्षित· । मार्कण्डेयोऽपि 'रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचक्षुर्विहङ्गमः । कृष्णवर्णेन न तथा पक्षो वार्ध्रीणसो मतः ॥' इति । 'कालशाक महाशल्का' खड्गलोहामिष मधु । आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वश ॥' इति मनु । खड्गः गण्डकः पशुभेदः ।

वाशब्देन मनुक्तसमुच्चयार्थकतयात्र प्रयुक्तेन वापदेन । एतेनोक्तावशिष्टमपि पितृतृप्तये क्षममस्तीति प्रतीयत इति भावः ।

एष एव प्रभावसम्पादितेन द्रव्येण पितॄंस्तर्पयामीत्येवरूप एव ।

**उभयस्येति**—मयि मल्लक्षणे जने उभयस्य साधनभूतस्य तपसो धनुषश्चेति साधकद्वयस्य सान्निध्य समीपवर्तित्वमस्ति । अह धनुषा तपसा वा यत्किमपि प्रभाव-सम्पाद्यमाहर्तुमीशः तपोबलक्षात्रबलातिरिक्ततृतीयबलस्याप्रसिद्धेरुभयोश्च तयोर्मयि सान्निध्यमिति प्रभावसाध्य नाम ममासाध्य न भवतीति भावः । तदेवाह—तपसि श्रान्ते प्रयोगातिशयेन खिन्ने धनुषि च तथाभूते तपोवने वा व्यापारणीयमिति मदसाध्य न प्रत्येमीति भाव· ॥ ९ ॥

**सन्तीति**-प्रभावसम्पाद्यानि द्रव्याणि नालीकानीति भावः। स्थानमाह-हिमवतीति।

---

महाशफर, पक्षियोंमें वार्ध्रीणस और पशुओंमें गाय या गैंडा, मनुष्योंके लिए ये ही विहित हैं ।

राम—महाराज, क्या कुछ और है ?

रावण—हाँ, है, किन्तु उसे कोई प्रतापी ही प्राप्त कर सकता है ।

राम—यही मेरा भी निश्चय है ।

जो इस कार्यको सिद्ध करेंगे वे दोनों (तप, बल) साधन मेरे पास मौजूद हैं । यदि तपस्या असफल हुई तो बल और बलके असफल होने पर तप ॥ ९ ॥

रावण—हैं तो, परन्तु हिमालय पर रहते हैं ।

रावण —( स्वगतम् ) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः। ( प्रकाशम् ) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते । कौसल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

राम —भगवतो वृद्धिरेषा।

सीता—दिष्ट्याऽऽर्यपुत्रो वर्धते

दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्डइ।

राम —न न,

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्ग

अय्यउत्त ! ण तित्थजत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्ग॰

---

अवलेपः पराक्रमाभिमानः (तदयमहति मायाकृता वञ्चनाम्) इत्यस्य हिमवद्गि॰रिकाननमप्राप्तमेव। पूजयति निजाङ्कणचारिकाञ्चनमृगोपहारेण समर्पयति। एतेन गौरवप्रकर्ष उक्तः। वृद्धिः प्रभावातिशयः।

**तातस्येति**—यदि ( काञ्चनमृगः ) इह मदध्युषितप्रदेशे स्वयमन्तरैव कमपि प्रयासविशेषमागतः प्राप्तः एतानि तातस्य पितुः (अश्वमेधे करिष्यमाणवार्षिकश्राद्धोपयु॰क्तवस्तुस्वयमुपनिपातहेतुभूतानि ) भाग्यानि। एष हि काञ्चनपार्श्वो मृगः पूजायां वार्षिकविधौ अर्हति उपयुज्यते। मैथिलि सीते, लक्ष्मणं ब्रूहि। इममर्थमिति शेषः। तथा च स शीघ्रमेवैनमानयिष्यतीति भावः ॥ १३ ॥

कुलपतिं तत्तपोवनप्रधानमृषिविशेषम्। प्रत्युद्गच्छ प्रत्युत्थानेन सम्भावय।

---

रावण—(स्वगत) इसका घमण्ड तो सहा नहीं जाता। ( प्रकट ) बिजलीकी सी चमक मालूम पड रही है। कौसल्यानन्दन, तुम्हारे यहीं रहने पर भी हिमालय तुम्हारा आदर कर रहा है, यह है काञ्चनमृग।

राम—यह आपकी महिमा है।

सीता—अहोभाग्य, आप बड़े प्रभावी हैं।

राम—नहीं, नहीं।

यह पिताजीका भाग्यातिशय है कि यह काञ्चनमृग खुद यहाँ आ पहुँचा है। यह पूजाके लायक है, मैथिलि, लक्ष्मणको खबर दो ॥ १३ ॥

सीता—आर्यपुत्र, लक्ष्मणको तो आपने तीर्थयात्रासे लौटते हुए कुलपति*की

---

* कुलपतिलक्षण—
मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।

च्छति सन्दिष्टः सौमित्रिः ।

च्छेहित्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती ।

राम —तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता—आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ?

अय्यउत्त ! अहं किं करिस्सं ?

रामः—शुश्रूषयस्व भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

जं अय्यउत्तो आणवेदि ।

( निष्क्रान्तो रामः )

रावण —अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः । एष इदानीं पूजामनपेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः ।

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः

---

चिरप्रवासात् परावृत्तो हि स्निग्धः प्रत्युद्गम्य कुशलादिकं जिज्ञास्यत इति शिष्टसमुदाचार. ।

अनवेक्ष्य परित्यज्य ।

अहो बलमिति—अहो इत्याश्चर्ये, बलं शारीरिकी शक्तिः, वीर्यमान्तरिकः

---

भगवानोंके लिए भेजा है ।

राम—तब तो मैं ही जाऊँगा ।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम—महाराजकी शुश्रूषा ।

सीता—जो आज्ञा ।

( रामका प्रस्थान )

रावण—अभी तो राम मेरे निमित्त अर्घ्य लिये आ रहे थे, और अभी पूजा-पराङ्मुख हो भागे जाते हुए काञ्चनमृगको देखकर धनुष चढ़ा रहे हैं । अहा ! कैसा असीम पराक्रम, कैसी अनुपम बहादुरी, कैसा लोकोत्तर पौरुष और कैसा

---

अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥

यहाँ कुलपतिके होनेमें प्रमाण—

एवं ते तापसा देवि ! दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ॥ (रामायण युद्धकाण्ड १२३ अ०)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व
अय्यउत्त ! परित्ताअहि परित्ताअहि। सोमित्ती ! परित्ताअहि
परित्रायस्व माम्।
परित्ताअहि म।

रावण.—सीते श्रूयतां मत्पराक्रमः।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व
अय्यउत्त ! परित्ताअहि परित्ताअहि। सोमित्ती ! परित्ताअहि
परित्रायस्व माम्।
परित्ताअहि मं।

रावणः—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम्।

---

**भग्न इति**—शक्र इन्द्रो भग्नो युद्धे पराजितः, वित्तनाथः कुबेरः कम्पितः भयेन चालितः, सोम चन्द्र कृष्टः कर्षितः स्वावासदेशादाकृष्य स्वप्रासादशिखरे स्थापित। सूर्यपुत्रः यमः मर्दितः मानापाकरणेन निस्तेजस्कः कृत इत्यर्थ। एतादृशपराक्रमोऽहमस्मीति रावणस्य गर्वः। नन्वेवं तर्हि स्वर्ग एव त्वया स्वावासभूमिः किमिति न कृतेत्यत्राह—धिगिति। भीतदेवै., भीरुस्वभावै सुरैः निविष्टमधिष्ठितं स्वर्गं धिक्, सा भूमिरियं धरित्री धन्या प्रशंसनीया, यत्र सीता ( सीतासदृशी रमणीयगुणसौन्दर्या स्त्री ) वर्तते। शालिनीवृत्तम् ॥ १७ ॥

**राम इति**—राम शरणं त्रातारमुपेहि गच्छ, लक्ष्मणं वा शरणमुपेहि त्रातारमाश्रयस्व, स्वर्गस्थ दशरथं तन्नामानं वा नरेन्द्र शरणमुपेहि त्रातारमाश्रयस्व, नानेन

---

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो। लक्ष्मण, रक्षा करो, रक्षा करो।
रावण—सीते, सुनो मेरा पराक्रम।

मैंने इन्द्रको परास्त किया, कुबेरको कँपाया, सोमको खींच लिया और यमराजको मर्दित किया है। धिक्कार है उस स्वर्गको जहाँ मेरे भयसे भीत देवगण रहा करते हैं, धन्य तो वह पृथ्वी है, जहाँ सीता रहती है ॥ १७ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो, लक्ष्मण, मुझे बचाओ, बचाओ।
रावण—तुम चाहे रामकी शरण लो, लक्ष्मणकी अथवा स्वर्गवासी दशरथकी

किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ! सौमित्रे ! परित्रायस्व

अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि । सोमित्ती ! परित्ताआहि

परित्रायस्व माम् ।

परित्ताआहि म ।

रावण.—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे ! विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।
विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥१६॥

सीता—( सरोषम् ) शप्तोऽसि ।

सत्तो सि ।

---

किमपि साध्यमिति । एतैः कुपुरुषसंश्रितैः कुत्सितपुरुषविषयैः दुर्बलत्वेनाशिक्तुरसा-पात्ररामलक्ष्मणदशरथविषयैस्त्रायस्वेति वचनैर्मम रावणस्य किं स्यात् ? किमपि न छिद्यतेति भाव.। तत्र दृष्टान्तमाह—न व्याघ्रमिति । व्याघ्रं द्वीपिनं मृगशिशव. हरिणशावका. न प्रधर्षयन्ति नोत्पीडयन्ति । यथा व्याघ्रस्य कृते हरिणशिशवो न भयदास्तथा ममापि कृते रामलक्ष्मणदशरथाः फल्गव इति वृथा तानाक्रोशसीति भावः । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ १८ ॥

विलपसीति—विशालनेत्रे विशालाक्षि, किमिदं विलपसि ? वृथा तवाय विलापो मासकाशात्त्वां त्रातु कस्याप्यसमर्थत्वादिति भाव.। मां तवार्यपुत्रं भर्तारं यथा इव विगणय जानीहि । यतोऽहं तव भर्तुरप्यधिकबलवानतो मामेव भर्तार-मङ्गीकुर्वित्यर्थ.। तथा हि एष त्वया त्राणार्थं प्रार्थ्यमान विपुलेन महता सैन्येन युतः सहित. सुराणां देवानां गणैः समूहैश्च सहित. अपि राम. मम योद्धुं युद्धेऽव-स्थातुम् असमर्थ एव । अशक्त एव । तस्मान्मामेव भर्तारं भजेति भावः। एतेन रावणस्य भुजबलावलेपो व्यक्त । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १९ ॥

---

ही शरण में जाओ। इन कायर पुरुषों की पुकार से मेरा क्या बिगड़ेगा, क्या मृग के बच्चों से सिंह का पराभव सम्भव है ॥ १८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो। लक्ष्मण, मेरा परित्राण करो।

रावण—हे विशालनेत्रे, अब तुम यह वृथा विलाप क्यों कर रही हो ? अब से अपने आर्यपुत्र की जगह मुझे समझो। समस्त देवों के सहित तथा अपरिमित सेना से युक्त होकर भी राम मुझसे युद्ध करने में असमर्थ ही रहेगा ॥ १९ ॥

सीता—( क्रोध से ) मैं तुमको शाप देती हूँ।

रावण —अहह ! अहो पतिव्रतायास्तेजः ।

> योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः ।
> अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।
अज्जउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।

रावण —( सीतां गृहीत्वा ) भोः भोः ! जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः—

> बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति ।
> क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।
अज्जउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि ।

---

अहहेति सीताशापोपहासे ।

**योऽहमिति**—वेगादुत्पतित आकाशं गतो योऽहं सूर्यस्य रश्मिभिः भास्करस्य प्रखरैः करैर्न दग्धः परितापितोऽस्मि । सोऽहं सूर्यतेजःपरिभवनसमर्थोऽहम्; अस्याः सीतायाः शप्तोऽसि एभिरेतैः परिमितैः त्रिभिरक्षरैर्वर्णैः दग्धः परितापितोऽस्मि ? अयमुपहासः सीतानुकूलनाय कृतो बोध्यः । जनस्थानवासिनस्तपोधनाः = जनस्थानं दण्डकारण्यमध्यवर्ति मुनिजनाधिष्ठितं तपोवनम्, तत्र वसन्तीति ते । तपोधना मुनयः ॥ २० ॥

**बलादिति** । एषः दश ग्रीवाः कण्ठा यस्य स दशग्रीवः रावणः बलात् पराक्रमात् बलमास्थायेत्यर्थे ल्यब्लोपे पञ्चमी । सीतामादाय गच्छति स्वपुरीमिति शेषः । यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः अनुरागी तदा पराक्रमं कुर्यात् प्रकटयेत् । मया क्रियमाणस्यास्यापराधस्य प्रतिशोधयेदिति भावः ॥ २१ ॥

---

रावण—हहह !! वाह रे पतिव्रता का तेज !

जो मैं वेग से आकाश में उड़ने के समय सूर्यकिरणों से नहीं जलता, वही मैं इससे 'मैं तुमको शाप देती हूँ' इन गिने अक्षरोंसे झुलस गया ? ॥ २० ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावण—( सीता को पकड़कर ) हे वनवासी तपस्वियों, आप सुन लें—

सीता को रावण बलपूर्वक हरण कर लिये जा रहा है, यदि राम को क्षात्रधर्म पर कुछ आस्था हो तो अपना पराक्रम प्रकट करे ॥ २१ ॥

सीता—आर्यपुत्र, रक्षा करो, रक्षा करो ।

रावणः—( परिक्रामन् विलोक्य ) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनखण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः । आः ! तिष्ठेदानीम् ।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ २२ ॥

( निष्क्रान्तौ )

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

---

स्वपक्षयोः निजगरुतोः पवनेन शीघ्रचालनप्रसूतेन वातेन, य उत्क्षेप उपरिक्षेपणम्, तेन क्षुभिताः सञ्चालिता वनखण्डाः वनसमूहा येन तादृशः । एतेन ससम्भ्रमपतनेन जटायोरवसरमिनत्वं व्यक्तम् । चण्डा भीषणा तीव्रप्रहारा चञ्चूर्यस्य स । अभियायति मां लक्ष्यीकृत्यागच्छति । एतेन रावणस्य चिन्तोक्ता । आः कोपे ।

मद्भुजेति—मम भुजेन बाहुना आकृष्टः कोशादुद्धृतो यः निस्त्रिंशः खड्गस्तेन कृत्तयोश्छिन्नयोः पक्षयोर्यत् क्षतं व्रणस्तस्मात् च्युतैर्गलितैः रुधिरैः रक्तैः आर्द्राणि सिक्तानि क्लिन्नानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तथाभूतं त्वां यमस्य सदनमेव सादनं गृहं नयामि प्रापयामि । मया क्षतपक्षस्य रुधिरोक्षितस्य तव प्राणानचिरेणाहं हरिष्यामीत्यर्थः । प्राणहरणस्य यमसादनप्रापणभङ्ग्याभिधानात् पर्यायोक्तालङ्कारोऽत्र ॥

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रकृते 'प्रतिमानाटक-प्रकाशे' पञ्चमाङ्कः ॥५॥

---

रावण—( घूमकर तथा देखकर ) अरे, अपने पंखोंकी तेज वायुसे सारे वनखण्डोंको कम्पित कर देनेवाला और भयानक चोंचवाला यह जटायु मेरी ही ओर दौड़ा आता है, आः ! ठहर तो अभी :—

मैं अपने हाथोंसे अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार निकाल कर तेरे पंखोंको काटता हूँ और शोणितसे भिगाकर तुझे यमलोक भेजता हूँ ॥ २२ ॥

( दोनों का प्रस्थान )

पञ्चम अङ्क समाप्त

तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पात्यते ॥ ३ ॥

द्वितीय —हन्त ! सक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणासदेशे हतः ।

उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्रभवान् जटायुः ।

प्रथम —भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः—

कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥४॥

---

महता पराक्रमेण युध्यते इत्यर्थोऽभिमत ,अथवा वीर्यविषयम् इति परिभूयत्यस्य कर्म, तथा च वीर्यविषय स्वबललक्ष्यभूत रावण परिभूयत्यर्थ । अचल स्थिर सन् तुण्डाभ्या चञ्चूभ्या सुनिघृष्ट तीक्ष्ण च यथ स्यात्तथा सवष्टन चेष्टते सम्यग् वेष्टनयुक्त यथा स्यात्तथा चेष्टते । एव च तुण्डाग्रेण तीक्ष्णेन प्रतियोद्धार निपत्य निपपति पुनर्वलयाकारेण वेष्टते चेत्यर्थ. । आयसकण्टकैरिव लौहमयै कण्टकैरिव तीक्ष्णै निशिताग्रभागै नखै नखरै वक्षस रावणोरस भीममतिभयानक भयोत्पादकम् आन्तरम् मासादिवज्राग्रै कुलिशकोटिभि दार्यमाण विषमात् पाटितत्वेनान्तरपदार्थप्रत्यक्षीभावमीपणात् शैलात् पर्वतात् शिलाप्रस्तरशकलमिव पाटयते पाटयित्वा गृह्यते । अत्र कर्तृप्रत्ययकर्मप्रत्ययकृत प्रक्रमभङ्गो दोष । शार्दूलविक्रीडित वृत्तम् ॥ ३ ।

कृत्वेति—स्वीयसदृश निजभुजबलानुरूप परममुत्तम प्रयत्न प्रयास सीतापरित्राणविषय कृत्वा, शत्रु रावणसदृश विपक्ष क्रीडामयूरमिव क्रीडनकशिखावलमिव अचिन्तयित्वा अविगणय्य पराक्रमवत्तयाऽविमान्येति भाव । निशाचरपते राक्षस-

---

के साथ द्वन्द्व युद्ध कर रहा है, किस प्रकार खूब डटकर अपने तीक्ष्ण चञ्चुयुगल द्वारा उसे काट खानेकी चेष्टा कर रहा है । वह लौहकण्टकतुल्य नखों से रावणकी छातीपर भयानक तथा विस्तृत घाव इस तरह पैदा कर रहा है, मानो वज्राग्रद्वारा कठोर शिला फाड़ी जा रही हो ॥ ३ ॥

दूसरा—शोक ! क्रुद्ध रावणने गृध्रराजके दाहिने कन्धेपर तलवारका प्रहार कर दिया ।

दोनों—हा शोक !! जटायु गिर गया ।

पहला—खेद ! यह पुण्यात्मा जटायु—

अपने पराक्रमके अनुरूप आखिरी दम तक लड़कर, शत्रुके बलवीर्यकी चिन्ता न कर और राक्षसराजके प्रचण्ड पराक्रमको दबाकर, इस समय वनगजके द्वारा

उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीय —बाढम् । प्रथमः कल्पः । ( निष्क्रान्तौ )

( विष्कम्भः )

( ततः प्रविशति काञ्चुकीयः )

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

( प्रविश्य )

प्रतिहारी—आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?

अय्य ! अहं विजया । किं करीअदु ?

काञ्चुकीय —विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—'एष खलु

---

राजस्य धीसम् सुमनिदम् गज. पराक्रमप्रतापम् अवधूय स्वपराक्रमप्रदर्शनेनाथ. ह्वाया नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव वारणमज्जमानकाननतरुरिव अवसन्नः अवसादं प्राप्य पतित । अत्रैव जटायुरिति पूर्वोक्तेन सम्बन्ध । एवञ्च नास्ति सीतोद्धारं प्रत्याशेति खेदो व्यक्तः, वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

स्वर्ग्यं स्वर्गार्हं, परोपकारत्यक्तदेहत्वात् पुण्यगत्यर्हः । प्रथमः कल्पः आद्यो विधिः सर्वप्रथममनुष्ठेयः ।

विष्कम्भ इति—वृत्तवर्तिष्यमाणकथांशनिदर्शकः । स चात्र शुद्धो बोध्यः मध्यमपात्रप्रयोजितत्वात् ।

काञ्चनतोरणद्वारम् सुवर्णरचितं बहिर्द्वारम् 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमर

---

उत्पाटित वनवृक्षकी तरह उखाड़ फेंका गया है ॥ ४ ॥

दोनों—इसको स्वर्ग मिले।

पहला—काश्यप, आओ इस समाचारकी सूचना रामको दें।

दूसरा—बहुत अच्छा ! यह तो सबसे पहला कार्य है। ( दोनोंका प्रस्थान )

( मिश्रविष्कम्भक )

( कञ्चुकीका प्रवेश )

कञ्चुकी—काञ्चनद्वार तोरणपर कौन नियुक्त है ? ( प्रतिहारीका प्रवेश )

प्रतीहारी—आर्य, मैं हूँ विजया, कहिये क्या आज्ञा है।

कञ्चुकी–विजये, राजकुमार भरतको सूचित कर दो कि वनमें रामके दर्शनार्थ

लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ॥ ७ ॥

काञ्चुकीय —( उपगम्य ) जयतु कुमारः ।

भरत —अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते नत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीय —असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

भरत —तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ?

काञ्चुकीय —यदाज्ञापयति कुमारः । ( निष्क्रान्तौ )

( तत प्रविशति सुमन्त्र प्रतिहारी च )

---

दण्डकारण्यभूमिं प्रपद्य लब्धप्रसादशपथे लब्ध प्रसाद पादुकारूप प्रसन्नताङ्क, शपथ चतुर्दशहायनात्मकवनवासावधिसमाप्तावहमागत्य राज्य प्रतिग्रहीष्यामीत्येव लक्षणो वागनुग्रहश्च येन तादृशे मयि सन्निवृत्ते रामाधिष्ठितकाननात् प्रत्यागते अथ सुमन्त्र प्रजाना जनाना नयनाना नेत्राणा बुद्धीना ( ग्राहिका प्रत्यक्षानन्तरप्रकट-प्रभावा चेतना बुद्धि ) धिया मनसा हृदयानाञ्च अभिराम रमणीयम् राम दृष्ट्वा प्रत्यक्षीकृत्य इह राजधान्याम् आगत प्राप्त किम् ? यद्येव कृतार्थीकृता वय तद्विषयकवृत्तान्तावगमावसरलाभादिति भाव । एतेन भरतस्य रामविषयक उत्कट कोटिको भावो व्यक्त । बुद्धिमनसो पृथगुपादान ग्रहणस्मरणावस्थाभेदविवक्षया कृत, तेन रामस्य प्रथमदर्शनसमये स्मरणकाले च प्रजानन्दजनकतया लोकानुराग-प्रकर्ष प्रतिपादित । वृत्तमनन्तरोक्तम् ॥ ७ ॥

---

पादुकारूप प्रसाद तथा चौदह वर्षोंके बाद राज्य सम्भालनेका आश्वासन लेकर आनेपर यह आर्य सुमन्त्र प्रजाके नयन, बुद्धि तथा मनके अभिराम श्रीरामका दर्शन कर लौटे हैं क्या ? ॥ ७ ॥

कञ्चुकी—( समीप जाकर ) जय हो कुमार की ।

भरत—क्यों, आर्य सुमन्त्र किधर हैं ।

कञ्चुकी—वे स्वर्णतोरणद्वारपर खडे हैं ।

भरत—उन्हें शीघ्र भीतर बुला लाओ ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ।

( दोनोंका प्रस्थान )

( सुमन्त्र तथा प्रतिहारीका प्रवेश )

सुमन्त्र—( सशोकम् ) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

**नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् ।**
**श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥ ८ ॥**

प्रतिहारी—( सुमन्त्रमुद्दिश्य ) एत्वेत्वार्यः । एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।

*एदु एदु अय्यो । एसो भट्टा । उवसप्पदु अय्यो ।*

सुमन्त्र—( उपसृत्य ) जयतु कुमारः ।

भरत—तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारण-

---

नरपतीति—नरपते राज्ञो दशरथस्य निधनं मरणम् मया सुमन्त्रेणानुभूतम् प्रत्यक्षीकृतम्, नृपतिसुतानां रामभरतलक्ष्मणानां व्यसनं दुःखम् ( रामस्य वनगमनम्, भरतस्य ततोऽप्यधिककष्टसाध्यव्रतधारणम्, लक्ष्मणस्य रामानुगमनजन्यवनवासाश्रमम् ) मयैव दृष्टम् । इह सम्प्रत्यपि सीताप्रणाशः सीतापहारश्च श्रुतः, (सदेवम्) मे आयुषा गुणे बह्वपराद्धम् आयुषो दीर्घत्वं गुणस्य एव स्थाने दोषो जात इति भाव. । विशेषजिज्ञासायां द्रष्टव्या चतुर्थाङ्कगताष्टादशपद्यव्याख्या ॥ ८ ॥

लोकाविष्कृतपितृभक्तिः लोके प्रकटितपितृभक्तिः, कीर्तितपितृभक्तिर्वा, अर्थतः राम एव विवक्षित , तस्यैव तथात्वाभ्युपगतत्वाच्च । अरुन्धतीचारित्र तदभिधानाया वसिष्ठभार्यायाः प्रसिद्ध पातिव्रत्यम् । द्विधाभूतम् अपरेण रूपेण सीतालक्षणेन वर्तमानम् । एतेन सीतायाःपातिव्रत्यस्यारुन्धतीपातिव्रत्यसादृश्य प्रतिपादितम् । निष्कारणविहि-

---

सुमन्त्र—( शोकपूर्वक ) शोक, हा शोक !

मेरे फूटे भाग्यने महाराजकी मृत्यु देखनेको मुझे बाध्य किया, रामवनगमन का खेद भी भोगना पड़ा, और अब सीताका हरण भी सुन रहा हूँ। हाय, मेरी इस लम्बी आयुने गुणके बदले अपराध ही अधिक किये ॥ ८ ॥

प्रतिहारी—( सुमन्त्रको लक्ष्य करके ) आइये आइये, ये हैं भर्त्ता, इनसे मिल लें ।

सुमन्त्र—( समीप जाकर ) जय हो कुमार की ।

भरत—तात, क्या आपने लोकविख्यात पितृभक्तके दर्शन किये ? आपको द्वितीय अरुन्धतीचरित्र देखनेका अवसर मिला ? क्या आपने अकारण वनवास

भरत.—तात ! कथमिव ?

सुमन्त्र —सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ १० ॥

भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ?

सुमन्त्रः—( स्वगतम् ) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । ( प्रकाशम् ) कुमार ! न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता !

भरत.—तात ! किं गूहसे ? स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः, यदि न सत्यं ब्रूयाः ।

---

**सुग्रीव इति** । ज्येष्ठेन अग्रजन्मना भ्रात्रा वालिना राज्याद् भ्रंशितः अपहृतराज्यलक्ष्मीकः हृतदारः स्वायत्तीकृतपत्नीकः शैले ऋष्यमूकाभिधाने पर्वते वसन् सुग्रीवः तुल्यं समानं दुःखं हृतदारत्वलक्षणं यस्य तेन रामेण मोक्षितः मोक्षं गमितः । वालिनं हत्वा तारानामस्त्रिया राज्येन च योजित इत्यर्थः । अत्र रामस्य सुग्रीवतुल्यदुःखतोक्त्या तस्यापीहाभ्यन्तरे भार्याऽपहृतेत्युक्तम् ॥ १० ॥

सुमन्त्रोक्तं 'हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः' इति वचः श्रुत्वा साशङ्को भरतस्तं पृच्छति—तातेति । तुल्यदुःखेन समानकष्टेन इत्याहेति ।

सुमन्त्रः स्वोक्तिमनुपितां गम्यमानो मनसि विचारयति—हन्तेति । हन्तेति खेदे । तुल्यदुःखेनेत्यादि कथितवता मया सर्वमुक्तप्रायमिति नोचितं कृतमिति पुनस्तदन्यथा समर्थयन्नाह—कुमारेत्यादिना । ऐश्वर्यतुल्यभ्रंशता राज्यसम्पदो द्वयोर्भ्रष्टतया तुल्यतेति भरतवचनस्याशय इति ।

स्ववाक्यमन्यथाकृत्य समर्थितवन्तं सुमन्त्रं भरतस्तथ्यभाषणायोपायान्तरशून्यतया पितृशपथं दत्त्वा पृच्छति तातेत्यादि । गूहसे गोपयसि । स्वर्गं गतेन मृतेन, महाराज.

---

भरत—तात, सो कैसे ?

सुमन्त्र—सुग्रीवको उसीके बड़े भाई वालिने राज्यच्युत कर दिया था और उसकी स्त्री भी छीन ली थी। उस सुग्रीवको तत्समानधर्मा रामने क्लेशमुक्त कर दिया है ॥ १० ॥

भरत—तात, 'सुग्रीवसमानधर्मा राम' इसका क्या आशय ?

सुमन्त्र—( स्वगत ) हाँ ! मैंने सब बात खोल दी ( प्रकट ) कुछ नहीं, मेरा अभिप्राय राज्यच्युति की समानता है ।

भरत—तात, सच्ची बात क्यों छिपाते हो ? तुमको स्वर्गवासी महाराजकी शपथ है, यदि मिथ्या बताया।

सुमन्त्र —का गतिः । श्रूयतां,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ ११ ॥

भरत —कथं हृतेति ? ( मोहमुपगत )

सुमन्त्र —समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

भरत —( पुन समाश्वस्य ) भोः कष्टम् ।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे ।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥

---

पादमूलेन मस्तिमृचरणेन शापित शपथं लम्भित ।

भरतेनैव दशरथशपथ लम्भित सुमन्त्र सम्प्रति सीतापहरणगोपनस्याशक्य-त्वात्तसानुतापमाह—नेति गतिरवस्था मम तव भरतस्य चेति शेष ।

वैरमिति—मुनिजनस्य ऋषिजनस्यार्थे कृते ( रामेण ) महता बलिना रक्षसा निशाचरेण रावणेनेत्यर्थ , वैरं विरोध कृतम् । ततस्तस्माद्रावणेन दशाननेन माया कपटम्, उपाश्रित्य सीता राघवकुलवधूर्मैथिली हृता चोरिता ॥ ११ ॥

सीताहरणमुपश्रुत्य मूर्च्छामाहतो भरत आह—कथमिति ।

पित्रेति-मम आर्य राम पित्रा बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दूरीकृतो वनप्रदेशे काननोद्देशे महत् दुस्सह दु ख क्लेशमनुभूय लब्ध्वा भार्यावियोगं सीताविप्रवासजन्य-पत्नीविरहमुपलभ्य प्रासाद्य पुन खे जीमूतचन्द्र इव मेघावृतशशीव प्रभया ज्योत्स्नया वियुक्तो जात इति शेष । यथाऽऽकाशे वर्त्तमानस्य शशिनो मेघेनावरणे तत्प्रभा वियुज्य तं तापयति तथैव पित्रा बान्धवैश्च वियुज्य खेदमनुभवतो रामस्य सीताविरहो भूयः परितापकरो जात इति भाव । अत्रोपमाऽलङ्कारेण मेघावरणे चन्द्रस्य प्रभयेव

---

सुमन्त्र—लाचारी है । सुनिये—

मुनियोंकी रक्षाके कारण बलवान् राक्षसोंसे शत्रुता हो गयी थी । इसी कारण रावणने कपटवेष धारणकर सीताका हरण कर लिया ॥ ११ ॥

भरत—क्या सीता हर ली गई ? ( मूर्च्छित होता है )

सुमन्त्र—धैर्य धरें, धैर्य धरें ।

भरत—( फिर सम्भलकर ) हा शोक !

मेरे आर्य राम पिता तथा बान्धवों से बिछुड़े, वनों में दारुण दुःख सहे और अब भार्यावियोग प्राप्त कर गगनमण्डल में मेघावृत चन्द्रमाके समान प्रभाहीन हो गये ॥

भोः ! किमिदानीं करिष्ये ? भवतु, दृष्टम् ! अनुगच्छतु मां तातः !

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

( उभौ परिक्रामतः )

सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् । देवीनां चतुश्शालमिदम् ।

भरतः—अत्रैव मे कार्यम् । भोः ! क इह प्रतिहारे ?

( प्रविश्य )

प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः । विजया खल्वहम् ।

जेदु भट्टिदारओ । विजआ खु अहं ।

भरतः—विजये ! ममागमनं निवेदयात्र भवत्यै ।

प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि ?

कदमाए भट्टिणीए णिवेदेमि ?

भरतः—या मां राजानमिच्छति ।

---

रामस्य पुनः सम्भवति सीतया संयोगरूपं वस्तुध्यज्यते । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥१२॥

चतुश्शालम् गृहप्रकारभेदः । अन्योन्याभिमुखशालाचतुष्टयम् ।

राजानमिच्छति—कस्यै देव्यै त्वदागमनं निवेदयामीति प्रश्नस्य भरतेनेत्थमुत्तरणे मद्राज्यरामनाकमनर्थमुनस्यापिनयतीति मया वक्तुं कैकेय्येव द्रष्टव्येति गूढो भावः ।

---

हाय ! अब क्या किया जाय ? अथवा सोच लिया,-आप मेरे साथ आवें ।

सुमन्त्र—जो आज्ञा ?

( दोनों घूमते हैं )

सुमन्त्र—( भरतको अन्तःपुरकी ओर जाते देखकर ) कुमार, मत जाइये, यह देवियोंका अन्तःपुर है ।

भरत—यहीं मुझे कार्य है । अरे, यहाँ द्वार पर कौन है ?

( प्रतिहारीका प्रवेश )

प्रतिहारी—कुमारकी जय हो । मैं हूँ विजया ।

भरत—विजया, माताजीको मेरे आनेकी सूचना दो ।

प्रतिहारी—कौन-सी महारानीजीको सूचना दूँ ।

भरत—जो मुझे राजा देखना चाहती है ।

प्रतिहारी—(आत्मगतम्) हुं किन्तु खलु भवेत् ? (प्रकाशम्) भर्तः ! तथा !
हं किणु खु भवे ? भट्टा ! तह !
(निष्क्रान्ता)
(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च)

कैकेयी—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः ?
विजए ! मं पेक्खिदुं भरदो आअदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात्
भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो
तातसुमन्त्र आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो
तादसुमन्तो आअदो । तेन सह भट्टिदारओ भरदो
भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल ।
भट्टिणिं पेक्खिदुं इच्छदि किल ।

कैकेयी—(स्वगतम्) केन खलूद्‌घातेन मामुपालप्स्यते भरतः ?
केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो ?

प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः ?
भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ ?

कैकेयी—गच्छ । प्रवेशयैनम् ।
गच्छ । पवेसेहि णं ।

प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा (परिक्रम्योपसृत्य) जयतु भर्तृदारकः ।
भट्टिणि ! तह जेदु भट्टिदारओ ।

---

उद्‌घातेन प्रस्तावेन । उपालप्स्यते धिक्करिष्यति ।

---

प्रतिहारी—(स्वगत) न जाने क्या बात हो ? (प्रकट) आपकी जो आज्ञा। (जाती है)

(बाद कैकेयी तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

कैकेयी—विजया, क्या भरत मुझसे मिलने आया है ?

प्रतिहारी—रानीजी, जी हाँ। राजकुमार रामके पाससे सुमन्त्र लौट आये हैं। सम्भव है उनके साथ राजकुमार रानीजी से मिलना चाहते हों।

कैकेयी—न जाने किस उपक्रमसे भरत मुझे उलहना दे ?

प्रतिहारी—रानीजी, क्या राजकुमार आवें ?

कैकेयी—जाओ भीतर बुला लाओ।

प्रतिहारी—रानीजी जो आज्ञा। (चलकर तथा पास आकर) जय हो

प्रविशतु किल।
पविसदु किल।

भरतः—विजये, किं निवेदितम् ?

प्रतिहारी—आम्।

भरतः—तेन हि प्रविशावः। ( प्रविशतः )

कैकेयी—जात ! विजया मन्त्रयते—रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगत इति।
जाद ! विजआ मन्तेदि—रामस्स सआसादो सुमन्तो आअद त्ति।

भरतः—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै।

कैकेयी—जात ! अपि कौसल्या सुमित्रा च शब्दयितव्ये।
जाद ! अपि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा।

भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम्।

कैकेयी—( आत्मगतम् ) हं किन्नु खलु भवेद् ? ( प्रकाशम् ) भण जात !
हं किं णु हु भवे ? भणाहि जादे !

---

शब्दयितव्या आकारयितव्या, रामसकाशादागतजनानीतवृत्तान्तस्य तयापि श्रोतुमिष्यमाणत्वान्मातृभावेनौचित्याच्च। ताभ्याम् कौसल्यासुमित्राभ्याम्। भवत्या एव रामनिष्कासनपुण्योपचयशालितया तत्र रामदुःखगाथाश्रवणेऽधिकारो न तयोरिति भरतस्य सोपालम्भ तात्पर्यम्।

---

राजकुमार की, आप भीतर चलें।

भरत—विजया, क्या सूचना दे दी ?

प्रतिहारी—जी हाँ,

भरत—तो भीतर चलें।

( दोनों भीतर जाते हैं )

कैकेयी—वत्स, विजया कहती है—रामके पाससे सुमन्त्र आये हैं ?

भरत—आपको इससे भी अधिक प्रिय बात सुनाता हूँ।

कैकेयी—वत्स, तो क्या कौसल्या और सुमित्राको भी बुला लिया जाय ?

भरत—नहीं, उनके सुननेकी बात नहीं।

कैकेयी—( स्वगत ) हाय, न जाने, ऐसी कौन-सी बात है ? ( प्रकट ) सुनाओ बेटा।

भरतः—श्रूयतां,

> यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः।
> तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः॥ १३॥

कैकेयी—हं !

भरतः—हन्त भोः ? सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम्।

> वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम्॥ १४॥

कैकेयी—( आत्मगतम् ) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम्। ( प्रकाशम् )

मोदु दाणि कालो कहेउं।

जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम्।

जाद ! तुवं ण जाणासि महाराअस्स सावं।

---

यः राज्यमिति—यः रामः त्वन्नियोगात् त्वत्प्रेरणावशात् स्वस्यात्मनो राज्यं परित्यज्य वनं गतस्तस्य भार्या सीता ( रावणेन ) हृता, ( इति ) ते तव मनोरथः पर्याप्तः अभिलाषः पूरितः। रामस्य वनवासे हेतुत्वं गतायास्तव तद्भार्याहरणवृत्तान्तोऽपि श्रोतुमिष्टः स्यादिति भरतस्य सोल्लुण्ठनं वचनम्॥ १३॥

'हम्' सीताहरणश्रवणे खेदप्रकाशकमव्ययपदमिदम्।

हन्तेति—अत्रभवतीम् पूजनीयामत्रतीम् (विपरीतलक्षणया निन्दनीयाचरणां त्वाम्) वधूं प्राप्य वधूभावेन लब्ध्वा सत्त्वयुक्तानां पराक्रमशालिनां मनस्विनाम् मानवताम् ( पूर्वं कदापि मानभङ्गावसरमीदृशमप्राप्तवताम् ) इक्ष्वाकूणां तदाख्ययशोभाजानाम् वधूप्रधर्षणं स्त्रीहरणं प्राप्तमुपनतम्। अतो धिक् त्वामिति भावः॥

शापम् श्रवणस्य पित्रा प्रदत्तम्। रामस्य वनगमने स शाप एव कारणं नाहमिति त्वत्कर्तृकं मदुपालम्भनं सर्वं त्वदज्ञानमूलकमित्याशयः।

---

भरत—सुनो—

जो राम तुम्हारी आज्ञा से राजपाट छोड़कर वन चला गया था, उसकी भार्या सीता (रावण द्वारा) हर ली गई है। अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ॥१३॥

कैकेयी—अहो ?

भरत—हा शोक ? तुम जैसी बहू को पाकर महापराक्रमी और मानवाले इक्ष्वाकुवंश को वधूहरण के दिन भी देखने पड़े॥ १४॥

कैकेयी—( स्वगत ) अच्छा, अब रहस्य कह देने का मौका आ गया। ( प्रकट ) वत्स, तुम महाराज के शाप की बात नहीं जानते।

भरत—किं शप्तो महाराजः ?

कैकेयी—सुमन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण ।

सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण ।

सुमन्त्र—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्—पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगज-बृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

भरत—हिंसित इति । शान्तं शान्तं पापम् । ततस्ततः ?

सुमन्त्र—ततस्तमेवंगतं दृष्ट्वा,

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।
यथाहं भोस्तथमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥ इति ।

---

मृगयाम् आखेटकम् । बृंहित करिगर्जितम् । तदनुकरोति साहश्येनानुहरति भूतेन शब्देन हेतुभूतेन उत्पन्नो वनगजोऽयमिति शङ्काभ्रमः तया । शब्दवेधिना शब्दानुसारेण लक्ष्यमदृष्ट्वैव लक्ष्यवेधिना । विपन्नचक्षुषोऽन्धस्य महर्षेः ।

**तेनोक्तमिति**—सत्यं भाषितु शील यस्य तेन सत्यितःवचनेन रुदितस्य रोदनस्यान्ते यथाऽहं पुत्रशोकाद् ( विपद्ये ) एव त्वमपि विपत्स्यसे मरिष्यसि । इत्येवमुक्तम् अभिशप्तम् । तथा चात्र संवदति कालिदास.—'दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्ते वयस्यहमिवेति' ॥ १५ ॥

---

भरत—क्या महाराज को शाप था ?

कैकेयी—सुमन्त्र, विस्तारपूर्वक कह दो ।

सुमन्त्र—महारानी की जो आज्ञा । कुमार, सुनिये—महाराज एक समय शिकार को गये थे, उन्होंने अन्धमुनि के नयनरूप पुत्र श्रवण को वनगज के भ्रम से मार डाला, जब कि वह जलाशय में घड़ा भर रहा था, जिससे गड़गड़ाहट की धुन आती थी । महाराज ने उसे ही लक्ष्यकर शब्दवेधी बाण छोड़ दिया ।

भरत—मार दिया । महापाप ! इसके बाद क्या हुआ ?

सुमन्त्र—तब उस पुत्र को इस स्थिति में देखकर—

उस सत्यवचन अन्धमुनि ने खूब रो लेने के बाद महाराजको शाप दिया कि—राजन्, मेरी ही तरह तुम भी पुत्रशोक में तड़प-तड़प कर प्राण दोगे॥१५॥

भरत—नन्विदं कष्टं नाम !

कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मा निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं
जाद ! एदण्णिमित्तं अवराहे मं णिक्खिविअ पुत्तओ रामो वणं

प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः
पेसिदो, ण हु रज्जलोहेण । अपरिहरणीओ महरिसिसाओ

पुत्रविप्रवासं विना न भवति ।
पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ ।

भरत—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः ?

कैकेयी—जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः ।
जाद ! मादुलकुले वत्तमाणस्स पकदीहूदो दे विप्पवासो ।

भरत—अथ चतुर्दश वर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि ।

कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया
जाद ! चउद्दस दिवस त्ति वत्तुकामाए पज्जाउलहिअआए

---

एतन्निमित्तम् मुनिशापजनितावश्यम्भाविदशरथमरणरूपकारणात् । मां आत्मानम्, अपराधे निक्षिप्य अपराधिनीं कृत्वा । रामवनप्रेषणे मुनिशापसार्थक्यकरणमेव कारणं न तु राज्यलाभ इति भावः ।

नन्वेवं पुत्रवियोगस्य रामस्य शापसाधनत्वे मयैव किमिति न वनं प्रेषित इत्यत्राह प्रकृतीति । प्रकृतीभूतः स्वाभाविकतामापन्नः, तव मातुलकुलवासस्य सार्वदिकतया रामस्य मरणकारणत्वापगमाद्राम एव वनं गमित इत्यर्थः ।

अल्पकालिकेनापि पुत्रप्रवासेन राज्ञो मरणे सिद्ध्यति किमिति रामश्चतुर्दश-वर्षव्यापिवनवासको दीनः कर्तित इति पृच्छति भरत—अथेति ।

पर्याकुलहृदयया सम्भावितप्रियपुत्ररामवियोगाद् आर्तविमनाया ।

---

भरत—यह कष्टकर कथा है ।

कैकेयी—इसीलिए मैंने अपनेको दोषी बनाकर बेटा रामको वन भेजा, राज्य के लोभसे नहीं । अवश्यंभावी महर्षिशाप पुत्रवियोगके बिना सफल कैसे होता ?

भरत—पुत्रवियोग तो तुल्य ही था, फिर मुझको ही क्यों न वन भेजा ?

कैकेयी—मातामह कुलमें रहनेके कारण तुम्हारा वियोग महाराजके लिए सह्य सा हो रहा था ।

भरत—अच्छा तो फिर चौदह वर्षों की अवधि किस लिये लगा दी ?

कैकेयी—मैं तो चौदह दिन कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक व्याकुलतासे चौदह वर्ष कहा गया ।

## अथ सप्तमोऽङ्कः

( ततः प्रविशति तापसः )

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

( प्रविश्य )

नन्दिलकः—आर्य ! अयमस्मि ।

अय्य । अअं ह्मि ।

तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षस-

---

अथ रावणं जितवतो रामस्य सीतया सह तपोवनं प्रति गमनम्, तत्र मातृसहितस्य भरतस्य समागमः, मिलितानां सर्वेषां पुनरयोध्यां प्रतिनिवर्त्तनमित्यादिकथावस्तु निवेश्य प्रबन्धमुपसंहर्तुं सप्तमाङ्कमारभते—तत इति प्रविशतीति ।

कुलपतिः तपोवनाधिष्ठाता मुनिवरः । विज्ञापयति बोधयति ।

स्वदारापहारिणम् स्वस्य दाराणां पत्न्या अपहारिणम् अपहर्त्तारम्, त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम्, चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । तत् विद्रावयति भयद्रुतं करोतीति त्रैलोक्यविद्रावणस्तम् । गुणगणविभूषणं गुणानां दयादाक्षिण्यविवेकादीनां गणाः समूहास्ते विभूषणानि तदाश्रितत्वेन शोभाजनकानि यस्य तादृशः, अथवा गुणगणानां विभूषणम् अलङ्कर्त्तारम्, तमाश्रितवता गुणगणानां शोभासमृद्धेः अभिषिच्य लङ्काराज्याभिषिक्तं कृत्वा । देवर्षिसिद्धविमलचारित्रां देवैर्ऋषिभिः प्रमाणभूतैः साक्षिभिः सिद्धं निश्चित्य प्रत्यायितं निष्कलङ्कतया विमलं शुद्धं चारित्रं शीलं यस्यास्ताम् । ऋक्ष-

---

( तपस्वी का प्रवेश )

तपस्वी—नन्दिलक, नन्दिलक,

( नन्दिलक का प्रवेश )

नन्दिलक—आर्य, यह आया ।

तपस्वी—नन्दिलक, कुलपति आदेश देते हैं कि अपनी स्त्रीको हरकर ले जाने वाले तथा तीनों भुवनों को प्रताप से तबाह करनेवाले रावण का नाश कर, दुराचारी राक्षसों के प्रतिकूल आदर्शचरित्र विभीषण को लङ्काराज्य पर अभिषिक्त कर, ऋषियों के समक्ष परीक्षित निष्कलङ्क सीता को साथ लेकर, ऋक्षराज तथा

वानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्त्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः । तदत्रास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यम्, तत् सर्वं सज्जीक्रियतामिति ।

नन्दिलक—आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् । किन्तु,
अज्ज ! सव्वं सज्जीकिदं । किन्तु,

तापस—किमेतत् ?

नन्दिलक—अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्तं
एत्थ विभीषणकेरआ रक्खसा । तेसं भक्खणणिमित्तं

कुलपतिः प्रमाणम् ।
कुलवदी पमाणं ।

तापस—किमर्थम् ?

नन्दिलक—ते खलु खादन्ति ।
ते खु खज्जन्ति ।

---

राक्षसवानरमुख्यैः ऋक्षमुख्या जाम्बवदादयः, राक्षसमुख्या विभीषणादयः, वानरमुख्या सुग्रीवादयस्तैः । शरद्विमलचन्द्राभिरामः शरदि तदाख्यस्तु विशेषे विमलः निर्मलप्रकाशो यश्चन्द्रस्तद्वदभिरामो रमणीयदर्शनः । अस्मद्विभवेन आरण्यकसुलभेन । सङ्कल्पयितव्यं तस्यागतार्थमुपकल्पनीयम् ।

किमेतद् 'किन्तु' इत्यग्रे किं भवता विवक्षितं तदुच्यतामिति भावः ।

विभीषणसम्बन्धिनः तदनुचारकाः परिजनाः । राक्षसाः क्रव्यादाः । भक्षणनिमित्तम् भक्षणार्थं । कुलपतिः अरण्यवासिमुनिमुख्यः । प्रमाणं राक्षसभक्षणीयवस्तुनिर्णयप्रभुः ।

---

वानराधीश के दलबलों के सहित निर्मल शरदिन्दुसदृश अभिराम राम यहीं आ रहे हैं । आप इस अरण्य में अरण्यसुलभ भोग वैभव के अनुसार उनका स्वागत करने के लिए जो अभीष्ट है, वह सब सज्जित करके रखा जाय ।

नन्दिलक—सब ठीक कर लिया गया है । किन्तु

तपस्वि—वह क्या ?

नन्दिलक—जहाँ विभीषण के साथी राक्षस भी आये हुए हैं, उनके भोजन के विषय में कुलपति ही जानें ।

तपस्वी—क्यों ?

नन्दिलक—वे खाते हैं (नर) मांस ।

तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ॥ ३ ॥

( ततः प्रविशति सीता तापसी च )

तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पैनम् । न शक्यं त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम् ।
हला ! एसो देव कुटुम्बिओ । उवसप्प ण । ण सक्क तुम एआइणिं पेक्खिदुं ।

सीता—हम् अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । ( उपसृत्य )
हं अज्ज वि अविस्ससणीअं मे पडिभादि ।

जयत्वार्यपुत्रः ।
जेदु अय्यउत्तो ।

राम—मैथिलि ! अपि जानासि, पूर्वोधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अत्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

---

मिश्र इत्युपैति तपस्विदारैर्मुनिपत्नीभिः स्निग्धतरमतिमधुरं सम्भाष्यमाणा व्याह्रियमाणा जनकेन्द्रपुत्री मन्द शनैः शनैः समुपैति मामुपसर्पति ॥ ३ ॥

कुटुम्बिको भर्ता ।

एकाकिनीम् सहायान्तररहिताम् । तथाविधा भूत्वा त्वमपह्रियसे तेन त्वां तथाविधां कर्तुं नेच्छामि तेनोपसर्प प्रियपतिमिति भाव. ।

अद्यापि प्रियसम्प्रयोगकालेऽपि । अविश्वसनीय विश्वासानर्हम् , मन्दभागिन्या प्रियप्राप्तिर्न सम्भविनीतिधारणा चिरविरहकदर्थनया जनिता,तदाधारीकृत्येदमुच्यते ।

अपि जानासि स्मरसि किम् ? पुत्रकृतकाः पुत्रनिर्विशेषं परिवर्द्धितत्वात् कृत्रिमपुत्रकाः ।

---

है । अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार कोई मुनिपत्नी सीताको 'सखी', कोई 'सीता', कोई 'जानकी' और कोई 'बहू' कहकर पुकारती है ॥

( सीता और तापसीका प्रवेश )

तापसी—सखी, ये हैं तुम्हारे पतिदेव, उनके पास जाओ । तुम्हें अकेली नहीं देख सकती हूँ ।

सीता—आज भी मुझे विश्वास नहीं होता । ( समीप जाकर ) जय हो आर्य पुत्र की ।

राम—मैथिली, क्या जानती हो कि पहले हम इस जनस्थान में रहा करते थे और पहचानती हो इन कृतकपुत्र वृक्षों को ?

सीता—जानामि जानामि। अवलोकितपत्रका ऊर्ध्वायततया इदानीं
जाणामि जाणामि। आलोइअपत्तआ [illegible]ओअद्दद्दा दाणिं
संवृत्ताः।
संवुत्ता।

राम—एवमेतत्। निम्नस्थलोत्पादको हि कालः। मैथिलि! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्।

सीता—आर्यपुत्र! दृढं खलु स्मरामि।
अय्यउत्त! दिढं खु सुमरामि।

राम—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः। अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निर्वापनक्रिया चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः।

---

अवलोकितपत्रकाः अतिबालतया छिन्नपत्रा अत एव च अवनिसमचक्षुषा दृष्टाः, (इदानीम्) उच्चोच्छ्रयिण्यः सन्नतत्वादूर्ध्वनिक्षिप्तचक्षुषा द्रष्टव्याः। अत्युन्नत हि वृक्षं वीक्षितुं चक्षुरूर्ध्वं व्यापारणीयं भवतीति भावः।

निम्नस्थलोत्पादकः निम्नं च स्थलं च तयोरुत्पादकः, निम्नोत्पादकः स्थलोत्पादकश्चेति। कश्चिद्धि देशः कालस्य प्रभावाद् निम्नभावं भजते, कश्चिच्च निम्नस्य स्थलतामापद्यत इत्याशयः। अप्युपलभ्यते स्मर्यते, परित्रस्तं भयकातरम्, मृगयूथं हरिणकुलम्। शुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वाऽनारण्यकोऽयमस्मानुपद्रवेदिति चिन्तया तेषां भीतिः।

महाकच्छः महान् जलाशयः, (जलप्रायं हि कच्छमाहुः)।

---

सीता—याद है, खूब याद है, जिन वृक्षों को नन्हे-नन्हे पत्तों वाली अवस्था में देखा था, अब वे आँखें ऊपर करके देखने योग्य हो गये हैं।

राम—बिल्कुल ऐसी ही बात है, समय ही उत्थान-पतन का कारण है। मैथिली, याद है-इस सप्तपर्ण वृक्षके नीचे श्वेतवस्त्रधारी भरत को देखकर मृगगण भयभीत हो उठे थे?

सीता—आर्यपुत्र, खूब याद है।

राम—यह हमारे तप का साक्षी महासरोवर है, यहाँ बैठकर हमने पिताजी की श्राद्धक्रिया की चिन्ता करने के समय काञ्चनपार्श्व मृग को देखा था।

आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः ॥ ६ ॥

रामः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव । दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां
जाद ! चिरं जीव । दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं
कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य ।
कुसलिणं सह बहुए पेक्खिअ ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरं जीव ।
जाद ! चिरं जीव ।

लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—आर्याः ! वन्दे ।
अय्या ! वन्दामि ।

---

मिव तैस्तैर्वर्षैरपि प्रकाशयितुमशक्यैरयोग्यैश्च प्रवृद्धविपदैः नानाप्रकारैः विषमैः सङ्कटैः विमुक्तम् आर्यासहायम् सीतासनाथवामभागम् गुरुम् पितृतुल्यम् पूजनीयम् दिदृक्षुः द्रष्टुमुत्सुकः प्राप्तोऽस्मि । सङ्कटमुक्तस्य रामस्य मेघनिर्मुक्तचन्द्रमादृश्यवर्णनादुपमालङ्कारः, तथा चोपमया यथा चन्द्रेण जगदाह्लाद्यते तथा रामेणापि भुवनं स्वगुणैः प्रसादं प्रापयिष्यत इति वस्तु व्यज्यते । वृत्तमनुपदोक्तम् ॥ ६ ॥

अवसितप्रतिज्ञम् पूर्णप्रतिज्ञम्, नियतसमयावधिवनवासनिश्चयोऽत्र प्रतिज्ञा ।

---

उत्तीर्ण तथा सीता सहित अपने गुरुवर के दर्शनार्थ मैं अतिप्रसन्न हृदय से आत्मीयजनों के साथ यहाँ आया हूँ ॥ ६ ॥

राम—पूज्य माताओ को प्रणाम ।

सब—प्रियपुत्र, चिरञ्जीव हो । हमारे धन्यभाग्य, जो हम चौदह वर्षों के अनन्तर सीता सहित तुमको सानन्द देखती हैं ।

राम—बड़ी कृपा ।

लक्ष्मण—माताओं को प्रणाम ।

सब—चिरञ्जीवी रहो ।

लक्ष्मण—अनुगृहीत हूँ ।

सीता—पूज्य जनों को प्रणाम ।

सर्वा—वत्से ! चिरमङ्गला भव ।

वच्छे ! चिरमङ्गला होहि ।

सीता—अनुगृहीतास्मि ।

अणुग्गहिदम्हि ।

भरत—आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—एह्येहि वत्स ! इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।७।

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि ।

सीता—आर्यपुत्रेण चिरसञ्चारी भव ।

अय्यउत्तेण चिरसञ्चारो होहि ।

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मण—एह्येहि वत्स ! दीर्घायुर्भव । परिष्वजस्व गाढम् । ( आलिङ्गति )

भरत—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः ।

---

चिरमङ्गला—अनन्तकालस्थायिसौभाग्या ।

वक्षः प्रसारयेति—व्याख्यातमिदं पद्यं पूर्वं (पृ० १११) चतुर्थेऽङ्के ॥७॥

---

सब—बेटी, सदा सुहागिन रहो ।

सीता—कृपा से अनुगृहीत हुई ।

भरत—आर्य, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम—आओ, आओ, इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो, चिरजीवी रहो ।
किवाड़की चौखटके समान चौड़ी अपनी छाती फैलाओ, अपने विशाल बाहुओंसे मुझसे मिलो । शरद्‌ऋतुके चाँदसे तुलित अपने मुखड़ेको ऊपर उठाओ और शोकसन्तप्त मेरे हृदयको आह्लादित करो ॥ ७ ॥

भरत—मैं आपका अतिअनुगृहीत हूँ । आर्ये, मैं भरत आपको अभिवादन करता हूँ ।

सीता—आर्यपुत्रके चिरसङ्गी बनो ।

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, नमस्कार ।

लक्ष्मण—आओ आओ, चिरजीवी रहो, जी भरकर गले लगो । ( भेंटता है )

भरत—बड़ी कृपा । आर्य, अपना राज्यभार संभालिए ।

रामः--वत्स ! कथमिव ?

कैकेयी--जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।

जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो ।

( ततः प्रविशति शत्रुघ्नः )

शत्रुघ्न --विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम् ।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम् ॥ ८ ॥

( उपगम्य ) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये ।

राम.--एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

शत्रुघ्न --अनुगृहीतोऽस्मि । आर्ये ! अभिवादये ।

सीता--वत्स ! चिरंजीव ।

वच्छ ! चिरं जीव ।

शत्रुघ्न --अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मण--स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

---

चिराभिलषित• सुदीर्घकालवाञ्छितः । एषः स्वस्कर्तृकराज्यभारग्रहणरूपः ।

विविधैरिति--विविधैर्नानाप्रकारकै• व्यसनै. सङ्कटैः क्लिष्ट सम्पीडितम् ( तथापि ) अक्लिष्टगुणतेजसम् अनुपहतगुणप्रभावम् रावणान्तकरम्, तं गुरुम् पूज्यमार्यरामं द्रष्टु मे बुद्धिर्मनस्त्वरते शीघ्रता करोति बलादुत्कण्ठत इत्यर्थः ॥८॥

---

राम--क्यो ?

कैकेयी--बेटा, यह हमलोगों का चिरमनोरथ है ।

( शत्रुघ्न का प्रवेश )

शत्रुघ्न--नाना प्रकारके संकटोंसे सताये जानेपर भी अतिगुणी तथा तेजस्वी और रावणसंहारकारी अपने गुरुदेवके दर्शनार्थ मेरा मन उतावला हो रहा है ॥

( पास जाकर ) मैं शत्रुघ्न आपको अभिवादन करता हूँ ।

राम--आओ आओ वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिरायु होवो ।

शत्रुघ्न--बड़ी कृपा । आर्ये, प्रणाम ।

सीता--तुम्हारा कल्याण हो ।

शत्रुघ्न--बड़ा अनुग्रह, आर्य प्रणाम ।

लक्ष्मण--तुम्हारा चिरजीवन मङ्गलमय हो ।

शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥ १ ॥

कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् ।

गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं ।

रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा । ( निष्क्रान्तः )

( नेपथ्ये )

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

---

एतौ सन्निहितौ, वसिष्ठवामदेवौ कुलगुरुपुरोहितौ । प्रकृतिभि प्रजाभिः । अभिषेकं पुरस्कृत्य अभिषेचनमुद्दिश्य ।

**तीर्थोदकेनेति**—मुनिगणाः भवतस्तव प्रसादात् रावणवधकृतसुलभसञ्चारसञ्जातसुखानन्दात् स्वयमाहृतेन नानानदीनदगतेन भिन्नभिन्नपुण्यसलिलधारासम्बन्धिना तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तं प्राक्कृताभिषेकं तव मुखं सलिलसिक्तं जलाभ्युक्षितं कमलमिव द्रष्टुमिच्छन्ति । अचिराभिषिक्तस्य जलकणशालिवदनं जलसिक्तपद्ममिवेत्युपमा । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

---

शत्रुघ्न—मैं आपका आभारी हूँ । ये महर्षि वसिष्ठ और वामदेव, प्रजावर्ग तथा अमात्योंके साथ राज्याभिषेकके उद्देश्यसे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

मुनिजन स्वयं जाकर छोटे-बड़े नदों और नदियोंसे तीर्थजल लाए हैं । उनकी इच्छा है कि कृपया आप पहले अभिषेक ग्रहण कर लें । उसके बाद अभिषेक जल से सिक्त आपके मुखको वे लोग जलसिक्त कमलकी तरह देखें ॥ १ ॥

कैकेयी—जाओ बेटा, राज्याभिषेक स्वीकार करो ।

राम—माताजी की जो आज्ञा ।

( नेपथ्य में )

आपकी जय, स्वामीकी जय, महाराजाधिराजकी जय, देवकी जय, भद्रमुख की जय, आर्यकी जय, रावणके संहारककी जय ।

कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति ।
एदे पुरोहिता कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो आसीहि पूजअन्ति ।

सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति ।
पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विअअं वड्ढअन्ति ।

( नेपथ्ये )

भो भो जनस्थानवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः ।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमौघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः ।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः ॥ १० ॥

---

**हत्वेति**—अप्रतिमम् अतुलनीयं रिपोः शत्रोः प्रभव उत्पत्तिर्यस्य तम् तमसः सङ्कटस्य ओघं समूहं सूर्यः अन्धकारमिव शौर्यमयैः पराक्रमरूपैः मयूखैः किरणैः हत्वा विनाश्य सकलैः अशुभैः अमङ्गलैर्वर्जनीया रहिता सीता प्राप्य सर्वजनाभिरामः सकललोकप्रियः रामः महीं पृथ्वीं जयति स्वायत्तीकरोति । यथा—सूर्योऽशुभिरन्धतमसं ओघं विनाश्य प्रकाशेन भुवं व्याप्नोति तथैव रामोऽपि शत्रुद्भूतान् क्लेशान् शौर्येणातिक्रम्य सीतां पुनरासाद्य तेजसा भुवं व्याप्नोति । उपमाऽत्र स्फुटा । तमस

---

कैकेयी—अहा, ये पूज्य पुरोहित, कञ्चुकी वगैरह मेरे पुत्रका जयघोष, आशीर्वाद तथा अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सुमित्रा—अहा ! अमात्य, परिचारक तथा अन्य सज्जन वृन्द मेरे पुत्रकी जयाशंसा कर रहे हैं ।

( नेपथ्य में )

ओ जनस्थाननिवासी तपस्वियो, आप लोग सुन लें ।

जिस तरह सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसी तरह शत्रुसे फैलाए हुए अतुल्य तमःपटलको अपने पराक्रमसे नाशकर मङ्गलमयी सीताको प्राप्तकर नयनाभिराम रामने समूची पृथ्वीपर अधिकार कर लिया है ॥

कैकेयी—अम्महे ! पुत्तस्स मे विजयघोसणा वट्टदि ।
अम्महे ! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्तते ।

( ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः )

रामः—( विलोक्याकाशे ) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत् ।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ११ ॥

भरतः—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् ।

---

घोषमिति समासे तल्लिङ्गतालिनीय. । केचित्तु 'ये ये मान्ताःस्ते तेऽदन्ता' इत्यभि-मानेनेदमित्याहुः । १० ॥

स्वर्गेपीति—स्वर्गे अपि ( लोके तु त्वं नाल्पभाक्तुष्टिम् ) इदानीं दिव्यपि तुष्टिं मद्राज्याभिषेकजन्यमानन्दमुपगच्छ लभस्व, दैन्यं खेदं मनोरथापूर्तिकृतम् विमुञ्च जहीहि । त्वया मयि यत्कर्म राज्यारोहणरूपमभिलषितमिष्टमासीत् एतत् सम्प्रति मत्कर्म राज्याभिषेकरूपमेतत् तत् । त्वयाभीप्सितम् मद्राज्याभिषेकरूपं कार्यमधुना सम्पन्नमिति इदानीं तव प्रसादे खेदस्यावसरः नास्ति इति भावः । इदमेवोपपादयति राजेति । भुवि सत्कृतभारवाही सत्कृतराज्यरूपभारवाही राजा अस्मि, धर्मेण धर्मपूर्वकम् लोकपरिरक्षणम् ( मया ) अभ्युपेतम् अङ्गीकृतम् । किलेति वाक्यालङ्कारे ॥ ११ ॥

अधिगतेति—अधिगत नृपशब्द राजशब्दवाच्यता येन तम्, धार्यमाण-मातपत्रं छत्रं यस्मिन् तं तत्कालोचितराजधार्यत्वेनातपत्रं विकसितकृतमौलिम् उप-

---

कैकेयी—अहा, मेरे पुत्रकी जयघोषणा बढ़ रही है ।

( कृताभिषेक रामका परिवारके साथ प्रवेश )

राम—( आकाशकी ओर देखकर ) पितृदेव,

आप अब स्वर्गमें ही आनन्द प्राप्त करें और कष्ट भूल जायँ । आपने मेरा राज्याभिषेक करना चाहा था, वह अब पूरा हुआ । अब मैं पृथ्वीपर पुण्यभारका वहन करनेवाला राजा बन गया हूँ । मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालनका उत्तरदायित्व उठा लिया है ॥ ११ ॥

भरत—आज अपने पूज्य भ्राता को देखनेसे मेरी आँखें नहीं थकतीं । उन्होंने

गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न—एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥ १३ ॥

राम —वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि !

लक्ष्मण —दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

( प्रविश्य )

काञ्चुकीय —जयतु महाराजः । एष खलु तत्रभवान् विभीषणो विज्ञापयति—सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्रमुखाश्चातु

---

मितमूर्धानम् तीर्थतोयाभिषिक्त गुरु पूज्यम् अधिगतलीलम् आसादितश्रीकम् जनौघै॰ लोकसमूहैर्वन्द्यमान प्रणम्यमानम् नवशशिनं प्रत्यग्रोदितमिन्दुमिव आर्यं रामं पश्यतो विलोकयतो मे तृप्ति सन्तोषो न । भवतीति शेष । यथा सम्भृतशोकस्य लोकैः प्रणम्यमानस्याचिरोदितस्य चन्द्रमसो दर्शनेन चक्षुषी न तृप्यतस्तथैवार्यरा-मदर्शनान्ममापि चक्षुषी न तृप्यत इत्युपमा । मालिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

**एतदार्येति**—आर्यस्य पूज्यस्य रामस्याभिषेकेण राज्यारोहणेन नष्ट कल्मषं कलङ्को (न्यायप्राप्तज्येष्ठभ्रात्रभिषेकाभावरूपम्) यस्य तदेतन्मे कुलं सोमस्य चन्द्रस्योदये जगदिव पुन. प्रकाशतां दीप्तिशालितां याति । स्पष्टमन्यत् ॥ १३ ॥

---

'महाराज' की पदवी पाई, राजच्छत्र ग्रहण किया, शिर पर प्रकाशमान मुकुट पहना, पावन तीर्थजलसे अभिषेक स्वीकार किया और राजगौरव पाया । चारों ओर प्रजाएँ उनका जयकार करती हैं, नये चाँदकी भाँति उनका अभिनन्दन किया जा रहा है ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न—जिस प्रकार चन्द्रमाके उदयसे सारा संसार प्रकाशित होने लगता है, उसी प्रकार आर्यके राज्याभिषेकसे निष्कलङ्क मेरा यह रघुकुल फिरसे प्रकाशमान हो रहा है ॥ १३ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण, अब मैंने राज्य पा लिया ।

लक्ष्मण—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

( कञ्चुकी का प्रवेश )

कञ्चुकी—जय हो महाराज की । यह लङ्काधिपति विभीषण निवेदन करते हैं,

गच्छन्तो विज्ञापयन्ति—'दिष्ट्या भवान् वर्धत' इति ।

राम:—'सहायानां प्रसादाद् वर्धत' इति कथ्यताम् ।

काञ्चुकीय —यदाज्ञापयति महाराजः ।

कैकेयी—धन्या खल्वस्मि । इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि !

धण्णा खु म्हि । इद अब्भुदअं अओज्जाअ पेक्खिदु इच्छामि ।

राम —द्रक्ष्यति भवती । ( विलोक्य ) अये ! प्रभाभिन्नमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । ( विमाव्य ) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्त पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति । तत् सर्वैरारुह्यताम् ।

( सर्वे आरोहन्ति )

राम:—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।

---

सूर्यवत् सूर्यंयुक्तम्, अत्र सादृश्यार्थवत्प्रत्ययो न, किन्तु आश्रयार्थो मतुबेव । कृतसमयं कृतसिद्धान्तम् । 'समया शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इति कोशः ।

**अद्यैवेति**—सम्बन्धिमित्रैः सम्बन्धिमित्रभरतप्रभृतिभिर्मित्रैः सुग्रीवविभीषणादिभिश्च अनुगम्यमानोऽहम् अद्यैव अस्मिन्नेवाहनि (विलम्बमकृत्वैव) अयोध्यां तन्नामकस्वकराजधानीं यास्यामि प्राप्स्यामीति मात्राज्ञा विपालयिषो रामस्योक्तिः । तदेव

---

सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान् तथा हनुमान् वगैरह आपके अनुचर निवेदन करते हैं—अहोभाग्य, आपको बधाई ।

राम—'सहायकों की कृपा से सब विजय है' ऐसा कह दो ।

कञ्चुकी—जो आज्ञा ।

कैकेयी—मैं धन्य हूँ । इस अभ्युदयको मैं अब अयोध्यामें भी देखना चाहती हूँ ।

राम—आप वहाँ भी देखेंगी । ( देखकर ) प्रभापुञ्जसे यह समस्त कानन सूर्यकी भाँति चमक रहा है । ( विचार कर ) अच्छा, समझ गया, आकाश में रावण वाला पुष्पक विमान आ रहा है । स्मरणमात्र करनेसे वह ठीक समय पर उपस्थित हो जाता है । अब आप लोग इसपर चढ़िये ।

( सब सवार होते हैं )

राम—मैं आज ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मित्रोंको लेकर अयोध्या जा रहा हूँ ।

लक्ष्मणः—अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥ १४ ॥
( भरतवाक्यम् )
यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ १५ ॥
( निष्क्रान्ताः सर्वे )
इति सप्तमोऽङ्कः ।



लक्ष्मणः समर्थयति—अद्यैवेति । नागराः अयोध्यानगरनिवासिनः च त्वाम् उदयस्थम् उदयाचलशिखरारूढम् अभ्युदयपदं च सनक्षत्रं नक्षत्रमण्डलपरिवृतं सुहृद्बन्धुयुतं च चन्द्रमिव अद्यैव पश्यन्तु । चन्द्रसाम्यादुपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १४ ॥

भरतवाक्यम्—भरतस्य नटस्य वाक्यं सामाजिकाभ्युदयाशंसनरूपम् । एवं हि समुदाचारो यत्प्रयोगान्ते भरतेन सामाजिकसमनुवादेनाशीः प्रयुज्यते । सा चेयं प्रशस्तिः निर्वहणसन्धिवर्णनाङ्गम् ।

**यथा रामश्चेति**—रामो यथा जानक्या बन्धुभिश्च समागतः तथा लक्ष्म्या समायुक्तो नोऽस्माकं राजा भूमिं धरणीं प्रशास्तु परिपालयतु ॥ १५ ॥

'निष्क्रान्ताः सर्वे' इति समाप्तिं सप्तमाङ्कस्य सूचयति ।

शरदि रामविरहदुःखविलक्षानतिशान्तौ, नास्ति तपसि मासाधिमासपुरुनिधौ सितावासे ।
प्रतिमानाटकमिदं 'प्रकाश' युतं सम्पन्नं, श्रान्त्यै कृपया विद्वद्भिरिहानुपश्यतु ॥१॥

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तर्गत 'पकड़ी' ग्रामवास्तव्येन मुजफ्फरपुरस्थसनातनधर्म-
संस्कृतमहाविद्यालये वेदान्तशास्त्राध्यापकेन व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्योपाधिना
श्रीविश्वनाथशास्त्रिणा प्रणीत. प्रतिमानाटक 'प्रकाशः' सम्पूर्णः ॥

---

लक्ष्मण—और आज ही सभी नगरवासी उदयाचलगत नक्षत्रसहित चन्द्रमा की भाँति आपके दर्शन प्राप्त करें ॥ १४ ॥

( भरत वाक्य )

जिस प्रकार भगवान् राम जानकी तथा बन्धुओंके साथ राज्य करते रहे, उसी तरह राजलक्ष्मीसे युक्त हमारे महाराज (राजसिंह) पृथ्वीका पालन करें ॥ १५ ॥

( सबका प्रस्थान )

प्रतिमानाटक समाप्त



# परिशिष्टम्

## नोट्स

### १ नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः (पृ. १)

इस नाटक में और भास के अन्य कतिपय नाटकों में भी सर्वप्रथम लिखा मिलता है—नान्द्यन्ते इत्यादि। परन्तु अन्य कविकृत नाटकों में पहले यथायोग्य एक या तदधिक श्लोकों में मङ्गलाचरण निबद्ध करके तब लिखा जाता है—नान्द्यन्ते इति०। यह परिपाटी भास के समय में नहीं थी, भास के मतानुसार सब नट मिल कर पहले नान्दी कर लेते थे, जो परदे के पीछे ही कर ली जाती थी, बाद में केवल सूत्रधार प्रवेश करता था, जो कथाज्ञापक श्लोक कहता था। यही क्रम भास के नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है। इसीलिए नान्दी का आधुनिक लक्षण इनके मङ्गल श्लोकों में नहीं पाया जाता, क्योंकि इनकी नान्दी तो ग्रन्थ में निबद्ध होती ही नहीं, वह तो पहले ही कर ली जाती है।

### २ प्रतिहाररक्षी (पृ. ४)

यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है, 'प्रतिहार रक्षति' इस विग्रह में 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग होने से टिड्ढाणञ् डीप्। णिनि प्रत्यय करने पर तो प्रतिहाररक्षिणी यह रूप होगा, अत अण् ही करना चाहिये।

### ३ स्थापना (पृ. ५)

इस स्थापना शब्द से प्रस्तावना विवक्षित है। नाट्यशास्त्र में लिखा है—'प्रसाद्य रङ्गं विधिवत्कवेर्नाम च कीर्तयेत्। प्रस्तावनां ततः कुर्यात्काव्यप्रख्यापनाश्रयाम्'॥ इसके अनुसार प्रस्तावना में काव्य की प्रशंसा और उससे पूर्व कविनामनिर्देश हो जाना चाहिये, परन्तु इस प्रथा को भास आदि प्राचीन नाटककारों ने मान्यता नहीं दी थी। उस पद्धति को कालिदास ने प्रवृत्त किया, तदनुसार परवर्ती कवियों ने भी आचरण किया। पीछे चलकर वह लीक सी बन गई।

## ३४ अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि ( पृ. ८९ )

माताओ को किस क्रम से प्रणाम किया जाय, कौन बडी माता है जिनको पहले, उसके बाद मझली माँ को, उसके बाद छोटी माँ को पहचान कर ही तो क्रमशः प्रणाम किया जायगा, तदर्थ आप उन्हे परिचित करा दें जिसमे यथोचित क्रम से प्रणाम किया जाय। यही इस वाक्य का अर्थ है। इस अर्थ मे यह वाक्य अवाचक है, क्योकि यहाँ 'उपदेष्टुम्' का सम्बन्ध ठीक नही बैठ रहा है अतः उसकी जगह—'अभिवादनक्रममुपदिष्टमिच्छामि' ऐसा पाठ मानना चाहिये। बहुत सम्भव है यही पाठ रहा भी हो, पीछे लेखनप्रमाद से वर्तमान पाठ प्रचलित हो गया होगा।

## ३५ आक्रुष्ट इवास्म्यनेन ( पृ ९० )

कौसल्या ने भरत से कहा—नि सन्तापो भव। इसका अर्थ स्पष्ट है तुम्हारे सन्ताप दूर हो। यहाँ सन्ताप कैसा ? यह विचारणीय है, सभी अपने मन की सोचेंगे। कौसल्या ने कहा कि राम-वनगमन से जो सन्ताप तुमको है वह छूट जाय, उससे तुम्हे त्राण प्राप्त हो। भरत को दूसरा ही अभिप्राय ज्ञात हुआ। उन्होंने समझा कि ये मुझे ताने दे रही है—रामरूप विरोधी के रहने से जो राज्याप्राप्तिरूप सन्ताप था वह अब दूर हो गया, निश्चिन्त हो जाओ। कौसल्या के कथन का यही मतलब भरत ने लगाया।

## ३६ अतिसन्धितः ( पृ. ९० )

अतिसन्धा अतिसन्धानम्, वञ्चनमित्यर्थः, देखिये शाकुन्तल—'परातिसन्धान-मधीयते ये विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाच ' सा अतिसन्धा सञ्जाता अस्येति अति-सन्धितः, 'तदस्य सञ्जात तारकादिभ्य इतच्' यही इसकी सिद्धि का उपाय है। धा से सीधे क्त प्रत्यय करने पर तो 'अतिसहितः' यह रूप होगा। अतिसन्धित= वञ्चित। लक्ष्मण ने जिसे वञ्चित कर रखा है अर्थात् उन्होंने स्वयं राम की सेवा का अवसर प्राप्त कर लिया, भरत को वैसा नही करने दिया, यही लक्ष्मण द्वारा यहाँ भरत की अतिसन्धा है।

३७ इद् प्रयतिष्ये ( पृ ९० )

यत् धातु प्रयत्नार्थक तथा अकर्मक है, इसके योग में इद पद का किसी प्रकार समन्वय नहीं होता है। यहाँ 'इह प्रयतिष्ये' ऐसा पाठ हो जाय तो सब ठीक हो जायगा।

३८ अभिषेक पुरस्कृत्य ( पृ ९६ )

'अभिषेक पुरस्कृत्य' इसमें अभिषेक शब्द से क्रिया नहीं, क्रिया की सामग्री ली गई है, किया [illegible] जायेगा, उसकी सामग्री [illegible]। आदि लेकर जाने का प्रसङ्ग भी है।

३९ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्या ( पृ १०१ )

राम राज्यलुब्धा कैकयी के लिए तिरस्कार स्वरूप थे। राम राज्य से एकदम निरपेक्ष थे और कैकेयी ने राज्य के लिए अति अकर्तव्य किया, ऐसी दशा में कैकेयी के विषय में कुछ नहीं कह कर राम का वन जाना ही कैकेयी का पर्याप्त तिरस्कार हो गया। इसी व्यवहार को प्रत्यादेश-तिरस्कार का रूप दे दिया गया है। ऐसे उदाहरण बाण की कादम्बरी में भी अधिक आये हुए हैं—'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेय साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम् धौरेय साहसिकानाम्।'

४० इक्ष्वाकुकुलन्यङ्गभूतः ( पृ. १०३ )

न्यङ्ग शब्द का अर्थ है 'कलङ्क'। न्यङ्ग शब्द अप्रचलित है। इसका 'नि-अङ्ग' निकृष्ट भाग इस अवयवार्थ का बहुत थोड़ा भाव आशयार्थ में आता है।

४१ पितृवचनकराय ( पृ १०३ )

करोति इति कर, पितृवचनस्य करः इति पितृवचनकर, तस्मै पितृवचनकराय। पितृवचन करोति यः स तस्मै इस विग्रह में पितृवचनकाराय, ऐसा रूप होगा क्योंकि कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय हो जायगा। इसीलिए कौमुदी में लिखा है। 'कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादयः, कर्मणः शेषत्वविवक्षाया भविष्यन्ति।'

४२ विशालीक्रियता ते चक्षुः ( पृ. १०७ )

भरत को देखने के लिए तुम अपनी आँखें विशाल कर लो। अच्छी वस्तु

देखन के लिए बडी आँखो का होना वर्णित है, देखिए—'विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णा प्रकामविस्तारफलं हरिण्य.' ( रघुवंश ) ।

## ४३ गुरुरयम् , आर्य ! अभिवादये, आयुष्मान् भव ( पृ. १०७ )

भरत ने लक्ष्मण के विषय मे कहा—'गुरुरयम्' आप श्रेष्ठ हैं; फिर लक्ष्मण के प्रति कहा—'आर्य अभिवादये', लक्ष्मण ने आशीर्वाद दिया—'आयुष्मान् भव ।' इस कथोपकथन के सिलसिले से प्रकट होता है कि लक्ष्मण बडे थे और भरत छोटे । भरत ने प्रणाम किया, लक्ष्मण ने श्रेष्ठजनोचित आशीर्वाद दिया । परन्तु यह बात संदिग्ध है, सभी रामायणकार या रामायणाश्रित साहित्यग्रन्थकार भरत को ज्येष्ठ मानते हैं, लक्ष्मण को छोटा । फिर भास को क्या सूझा कि उन्होंने उल्टा लिख दिया ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि राम तथा लक्ष्मण समान चरु भाग-प्रसूत थे, अत. राम की तरह लक्ष्मण भी भरत से ज्येष्ठ हुए । यह भी कहा जा सकता है कि चरुभाग जो पुत्रेष्टियज्ञोपरान्त रानियो को दिया गया था उसम लक्ष्मणजनक चरुभाग प्रथमार्पित रहा हो । इन उत्तरो में सन्तोषक्षमता नहीं है । रामायण की कथा में इस तरह की गलती क्षम्य नही हैं । नाटकीय चमत्कारार्थ कवि ने परिवर्तन किया है यह बात भी नही कही जा सकती, क्योंकि नाटकीयाश में कोई चमत्कार उससे नही बढ पाया है । मैं समझता हूँ कि भास के समय में कोई रामायण ऐसा भी प्रचलित रहा होगा जिसमें लक्ष्मण को भरत से ज्येष्ठ कहा गया होगा। कालक्रम से वह रामायण लुप्त हो गया है। इस तरह की बातें अति असम्भव नही कही जा सकती हैं ।

## ४४ आत्मजविशिष्टगुणः ( पृ. ११८ )

आत्मज ( पुत्र ) के विशिष्ट ( अद्भुत ) गुण। इस वाक्य मे समास न करके आत्मजस्य विशिष्टगुण ऐसा कहने से साहित्यिक चमत्कार कम हो जाता, इसलिए व्याकरण की परवाह न करके समास कर दिया गया है ।

## ४५ कः समयः ? ( पृ. १२० )

यहाँ समय शब्द का अर्थ है 'शर्त' 'सिद्धान्त' 'समया'—'शपथाचारकालसिद्धान्तसविद.' ( इत्यमरः ) 'शर्त पर आपका राज्य चला दूँगा' ऐसा भरत ने स्वीकार किया, जिस पर राम ने पूछा कि कौन शर्त ?

## ४६ प्रतिग्रहीतुम् ( पृ. १२० )

यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' पद अन्तर्भावितण्यर्थ मानने पर ही प्राकरणिक सङ्गत अर्थ हो सकेगा, नहीं तो विवक्षितार्थ प्रतीति नहीं होगी। 'प्रतिग्रहीतुम्' का साधारण अर्थ है—लेने के लिए। देखिये, कुमारसम्भव—'प्रतिग्रहीतुं प्रणयि- प्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च'। इसीलिए यहाँ 'प्रतिग्रहीतुम्' में ग्रहधातु को अन्तर्भावितण्यर्थ मान लेने से 'ग्रहण कराना चाहता हूँ' यह अभीष्ट अर्थ होगा।

## ४७ अवस्थाकुटुम्बिनीम् ( पृ. १२६ )

'कुटुम्बिनी' शब्द से स्त्री या सहायक स्त्री, यही अर्थ प्रतीत होता है, उसके साथ अवस्था पद जोड़कर राम सीता की प्रशंसा कर रहे हैं। उनके कहने का अर्थ यह होता है कि सीता साधारण विलासलुब्धा स्त्री नहीं, वह हमारी भी दशा की सहायिका स्त्री है।

## ४८ निवपनक्रियाम् ( पृ. १२९ )

निवपन शब्द का अर्थ है पितरों के उद्देश्य से किया गया श्राद्धतर्पण आदि। कालिदास ने भी इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है। देखिये शाकुन्तल—

'अस्मत्परं बत यथाश्रुति सम्भृतानि। को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति॥'

निवपन, निवाप दोनों समानार्थक हैं। 'येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम्' निवाप शब्द से 'नैवाप' भी बनकर प्रयुक्त हुआ है—'दशरथदुरवाप प्राप नैवापमम्भ'॥

## ४९ स्वरपदपरिहीणाम् ( पृ. १३१ )

स्वर तथा पद से रहित। यहाँ हीन और परिहीन में कोई अर्थभेद नहीं है, क्योंकि परि निरर्थक है। निरर्थक परि को 'अधिपरी अनर्थकौ' इससे कर्मप्रवच- नीय संज्ञा होगी, उपसर्गसंज्ञा का उससे बोध हो जायगा, अतः परिहीण पद में णत्व अयुक्त है, अत एव—कारिकावली में 'सामान्यपरिहीनास्तु सर्वे जात्यादयो मता.' ऐसा दन्त्यघटित ही पाठ है।

### ५० 'माहेश्वरं योगशास्त्रम् , मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम् प्राचेतसं श्राद्धकल्पम्' ( पृ १३४ )

महेश्वरकृत योगशास्त्र । यह माहेश्वर योगशास्त्र कौन है इस विषय मे बड़ा सन्देह है, प्रसिद्ध योगशास्त्र तो पातञ्जल ही है। महेश्वरकृत योगशास्त्र, हो सकता है पहले रहा हो, अब तो उसकी प्रसिद्धि नही रही। यह भी सम्भव है वह माहेश्वर योगशास्त्र प्रचलित पातञ्जल योगशास्त्र का मूलभूत रहा हो, समय को गति मे उसका लोप हो गया है। आज सर्वत्र जिस पाणिनीय व्याकरण की ख्याति है उसका भी मूलभूत अन्य बहुविध व्याकरण था, जो अब नही रहा।

मेधातिथि को न्यायशास्त्र का प्रवर्तक कहा गया है। मेधातिथि प्रसिद्ध हैं उनका ग्रंथ तो धर्मशास्त्र में ही मिलता है। ये मेधातिथि कौन थे ? इस प्रश्न का उत्तर अब नही दिया जा सकता है कि ये भी कोई प्राचीन आचार्य रहे होंगे जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर गौतम का न्याय बना होगा, जो आज प्रचार में है। इन बातो पर अनुसन्धान होना चाहिये। वरुणकृत श्राद्धकल्प की भी यही स्थिति है।

### ५१ क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ( पृ. १३९ )

परशुराम और कार्तिकेय महादेव से अस्त्रवेद का सविधि अध्ययन कर रहे थे। दोनों में विद्या के तारतम्य का सङ्घर्ष उपस्थित हुआ। महादेव ने परीक्षा के लिए तय किया कि इस पर्वत को बाणो द्वारा जो भिन्न कर देगा उसे प्राधम्य प्राप्त होगा। परशुराम ने वैसा किया, इसीलिए उनको यश के साथ गुरुकृपा भी मिली। इन्ही कारणों से उस शरदलित पर्वत को कालिदास ने—'हंसद्वार भृगुपतियशोवर्म तत्क्रौञ्चरन्ध्रम्' कहा है।

### ५२ क्रव्यात् ( पृ. १५० )

'राक्षस. कौणपः क्रव्यात्'। 'अदोऽनन्ने' इस सूत्र से क्रव्योपपदक अद् धातु से विट् प्रत्यय, उसका सर्वापहार, क्रव्य–आम मास।

### ५३ गुण इव बहुपराद्धमायुषा मे ( पृ १५५ )

अधिक दिनो तक जीना गुण माना जाता है, परन्तु मेरी चिरजीविता गुण जगह दोष हो रही है क्योंकि जीते रहने से ही मुझे अप्रिय घटनायें देखनी

## प्रतिमानाटकगतानि सुभाषितानि

१. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा।
२. अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्।
३. अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते।
४. विधिरनतिक्रमणीयः।
५. किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते?
६. कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम्।
७. गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता।
८. गोपहीना गावो विलयं यान्ति।
९. छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि।
१०. तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति।
११. न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्।
१२. न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति।
१३. निम्नस्थलोत्पादको हि कालः।
१४. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च।
१५. पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
१६. पिपासार्त्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव।
१७. पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः।
१८. बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम।
१९. भर्तृनाथा हि नार्यः।
२०. राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम्।
२१. शरीरेऽरिः प्रहरति, स्वजनो हृदये।
२२. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम।
२३. सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते।
२४. सुलभापराधः परिजनो नाम।
२५. स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः?
२६. हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः।

———

# नाटकीय-वस्तुलक्षणानि

नाटकम्—वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं 'नाटकं तदुदाहृतम् ॥

जिसमें वीर, शृङ्गार में अन्यतर रस प्रधान हो, अन्य रस अङ्गभूत रहें और प्रख्यात नायक हो, वह नाटक कहा जाता है ।

पूर्वरङ्ग—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय कथा की अवतारणा से पहले रङ्गभूमि के विघ्नों को दूर करने के उद्देश्य से नर्तक लोग जो कुछ करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं ।

नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

देवगण, ब्राह्मण और राजादिकों की आशीर्वाद सहित स्तुति इसके द्वारा की जाती है इसलिए लोग इसे नान्दी कहते हैं ।

सूत्रधार—आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नायक, कवि और कथावस्तु के गुणों को संक्षेप में ( नान्दी द्वारा ) सूचित करने वाला सूत्रधार नाम से विदित कराया जाता है । इसका रङ्गमञ्च को सजाने की कला में प्रवीण होना भी आवश्यक है ।

---

१. 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूतिर्नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतम् ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्' इति । ( सा० द० )

## टीकाकर्तुः परिचयः

माण्डरसंज्ञकमैथिलभूसुरवंशेऽजनिष्ट कृती ।
श्रीमान् 'कन्हाइ'मिश्रो हृतजनताऽज्ञानतामिस्रः ॥ १ ॥
उदितः 'छाँतन'शर्मा ततः सुमेरोरिवादित्यः ।
योऽमानि मानिनिवहश्रेयान् सुकृतावदातात्मा ॥ २ ॥
मृतपितृकः स हि बाल्ये मातुलकुलमाश्रितः शरणम् ।
ग्रामे पकड़ीनामनि गृहस्थतां प्रापितो न्यवसत् ॥ ३ ॥
तत्तनयेषु प्रथमो वयसा ज्ञानेन यशसा ।
'मधुसूदन'मिश्राख्यो भक्तश्चतुराग्रणीरभवत् ॥ ४ ॥
तत एव श्री'जयमणि'संज्ञाया मातरि प्रापम् ।
जनिमब्धिरामवसुभूमितशाके 'रामचन्द्रो'ऽहम् ॥ ५ ॥
प्रभवादष्टमशरदि स्नेहान्मामुपनिनीषन्तम् ।
तातं सदा स्वतन्त्रा नियतिरकार्षीत्कथाशेषम् ॥ ६ ॥
बाल्ये पण्डित'झिङ्गुरशर्म'कृपाप्राप्तबोधस्य ।
अथ चक्षुषी चमत्कृतसस्कृतभाषाप्रयोगेषु ॥ ७ ॥
उन्मीलिते अभूतां श्री'श्रीनाथाख्य'विबुधस्य ।
मम मातुलस्य चरणौ निषेवमाणस्य न चिरेण ॥ ८ ॥
गूढं शास्त्ररहस्यं ज्ञातुं निखिलं निबद्धकक्षस्य ।
उपदेशको ममाभू'दीश्वरनाथो' विदां वन्द्यः ॥ ९ ॥
स्वाभाविक्या कृपया स्नेहेनान्ताप्ररूढेन ।
मम तादृशा च यो मामपुपत्स्योदर्यभावेन ॥१०॥
तत्कृपयाधिगताखिलसंस्कृतसाहित्यमर्माणम् ।
बुधवर'किशोरिशर्मा' मां व्यधिताचार्यपदभाजम् ॥११॥
श्रीयुत'बटेश्वरा'भिधविद्वद्वरपादमुपजीव्य ।
दर्शनशास्त्ररहस्यं न चिरेणाशेषमाचकलम् ॥१२॥
एतानन्यांश्च गुरून्मनसि ममाषस्थितान्सततम् ।
ध्यायामि यत्कृपा मे मानुष्यकमञ्जसाऽस्राक्षीत् ॥१३॥
सोऽहं वाक्परिचरणव्यापृतचेताः 'प्रकाश'मसृ ।
निरमामिह विद्वांसः कृपास्पृशं स्वां दृशं दध्युः ॥१४॥

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
७४

भासनाटकचक्रे

# अभिषेकनाटकम्

"शशिप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० जमुना पाठकः

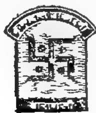
एम० ए, पी एच. डी,

संस्कृत विभागः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

प्रस्तावकः

डॉ० श्रीनारायण मिश्रः

रीडर, संस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८५

# दो शब्द

नाटक-ग्रन्थों की रमणीयता सर्वविदित है—'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। कोई भी सहृदय इनसे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। इसी आकर्षण के कारण नाटकों पर कार्य करने के लिए मेरी अभिरुचि उत्पन्न हुई। परिणामतः १९७८ में अभिज्ञानशाकुन्तल की व्याख्या प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् अन्य कई नाटकों पर कार्य किया, किन्तु दुर्भाग्यवश वे अभी प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

इस नाटक का सम्पादन, डॉ० सुधाकर मालवीय, संस्कृत-विभाग, का० हि० वि० वि०, वाराणसी के निर्देशन में हो सका है। वे मेरे अग्रज हैं। अस्तु, उनसे मैं क्षमाकांक्षी हूँ। कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के सुयोग्य कर्मठ सञ्चालक का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने इस संस्करण के प्रकाशन का भार ग्रहण किया।

अन्ततः, गुरुवर्य डॉ० श्री नारायण मिश्र जी, प्रवाचक, संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के असीम शुभाशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अत एव मैं उनके चरण-कमलों में विनयावनत हूँ। इसमें जो कुछ भी गुण है, वह श्रद्धेय गुरु जी की देन है तथा जितने दोष हैं, वे मेरे हैं। अस्तु,

दीपावली, १९८५

विद्वच्चरणानुरागी-
जमुना पाठक

# भूमिका

## महाकवि भास

संस्कृत कवियों का मुख्य उद्देश्य विषयवस्तु-स्थापन ही था। आत्म-स्थापन से वे बहुत दूर रहते थे। यहाँ तक कि कतिपय उपलब्ध ग्रन्थों में उनके कर्ता के नाम का भी अभाव है। महाकवि भास इन्हीं कवियों में एक हैं। नाटक जगत् में इनका नाम प्राचीन-काल से ही प्रसिद्ध है तथा इस क्षेत्र में इनका प्रथम स्थान है किन्तु इनकी किसी भी कृति में इनका नाम तक उपलब्ध नहीं है। अतः इनके कृतियों के कर्त्तृत्व के विषय में भी सन्देह बना रहा है। यद्यपि विद्वानों ने बाह्य तथा अन्त साक्ष्य के आधार पर इस सन्देह का निराकरण किया है फिर भी इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध की आवश्यकता है।

भास संस्कृत के प्रथम नाटककार हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृत-वाङ्मय में इनसे पूर्व नाटकों की रचना नहीं हुई थी प्रत्युत् सम्प्रति उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन इन्हीं के नाटक उपलब्ध हैं। प्राचीन अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में इनकी कृतियों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किया है। किन्तु बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे प्रथितयश नाटककार के जीवन परिचय के विषय में हम बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

## भास का स्थिति-काल

भास का स्थिति काल भी अधिक विवादास्पद है। उल्लेख के अभाव में निश्चित-रूप से कुछ भी कहना कठिन है। फिर भी ये कालिदास से पूर्ववर्ती अवश्य थे क्योंकि उन्होंने मालविकाग्निमित्र में बड़ी श्रद्धा के साथ भास के नाम का स्मरण किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के समय तक भास नाटककार के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके थे।

कालिदास के समय के विषय मे भी विद्वानो मे अत्यधिक मतभेद है। कतिपय विद्वान् कालिदास को चतुर्थ शताब्दी में मानते हैं अत उनके अनुसार भास चतुर्थ शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कतिपय विद्वान् कालिदास को ई० पू० प्रथम-शताब्दी में स्वीकार करते हैं।[1] उनके अनुसार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से पहले निश्चित होता है।

भास के नाटको की खोज से पूर्व सबसे प्राचीन शूद्रक का 'मृच्छकटिक' नाटक माना जाता था किन्तु यह नाटक भास के 'चारुदत्त' नाटक के अनुकरण पर विरचित तथा उसका परिवर्धित रूप है। इस प्रकार चारुदत्त नाटक की रचना मृच्छकटिक के कर्ता शूद्रक से प्राचीन ठहरती हैं। शूद्रक का शासन काल ई०पू० २२०–१९७ वर्ष था अत भास को इससे पूर्ववर्ती होना चाहिए।

भास के एक श्लोक को कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त भास ने प्रतिमा नाटक मे बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र की रचना भास के बाद हुई थी। इस प्रकार भास का समय कौटिल्य के समय से भी पूर्ववर्ती हैं। कौटिल्य के समय की उच्चतम सीमा ई०पू० चतुर्थ शताब्दी है।

भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे अत उनके समय की निम्नतम सीमा ई० पू० प्रथम शताब्दी है। इस प्रकार भास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी से ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के मध्य मे निश्चित होता है।

## भास की कृतियाँ—नाटकचक्र

सम्प्रति भास-कृत् नाटक 'नाटकचक्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमे १३ नाटको का उल्लेख है। जिसमे ६ नाटको का कथानक महाभारत से लिया गया है—मध्यम-व्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग, पञ्चरात्र। दो नाटको का उपजीव्य रामायण है–प्रतिमा, अभिषेक। एक नाटक भागवत-पुराण पर आधारित है—बालचरित। दो नाटक लोक-कथाओ से

१. विस्तृत-विवरण के लिए द्रष्टव्य मेरे द्वारा सम्पादित अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की भूमिका—पृ० १२-१७

सम्बन्धित है—दरिद्रचारुदत्त और अविमारक। दो नाटक उदयन कथा पर आश्रित हैं—प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तम्। इन सभी नाटकों में भास की मौलिक एवं अनूठी कल्पनाशक्ति तथा अद्भुत नाट्यकुशलता का परिचय मिलता है। रचनाक्रम के आधार पर इन नाटकों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसमें वत्सराज उदयन तथा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की राजकुमारी वासवदत्ता के प्रेम तथा परिणय का वर्णन है। उदयन को जब प्रद्योत कैद कर लेता है तब उसका (उदयन का) मन्त्री यौगन्धरायण उसे कैद से छुड़ाने तथा वासवदत्ता के साथ उसका विवाह कराने की प्रतिज्ञा करता है। इसी प्रतिज्ञा के कारण ही इस नाटक का नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' रखा गया है। यौगन्धरायण अपनी प्रतिज्ञानुसार उदयन को वासदत्ता सहित उज्जयिनी से भगाने में सफल हो जाता है तथा उदयन और वासवदत्ता का विवाह सम्पन्न हो जाता है। यह सुखान्त नाटक है।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्—यह छ अङ्कों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञायौगन्धरायण की कथा के बाद की कथा का विवेचन है। वासवदत्ता के परिणय के बाद राजकार्य को छोड़कर उदयन उसमें अत्यधिक आसक्त हो जाता है। इस कमजोरी से उसका एक शत्रु आरुणि उस पर चढ़ाई करके उसका राज्य छीन लेता है। पुन राज्य प्राप्ति के लिए यौगन्धरायण उदयन का विवाह मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से कराना चाहता है किन्तु वासवदत्ता के रहते उदयन का अन्य स्त्री के प्रति आकृष्ट होना असम्भव जानकर उदयन के आखेट के लिए बाहर चले जाने पर शिविर मे आग लगवा कर यह कहला दिया कि वासवदत्ता जल कर मर गयी। यह सुनकर उदयन शोकाकुल हो गया। उधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर रख देता है। बाद में उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है। तत्पश्चात् दोनो वत्स और मगध की सेनाओं से आरुणि पराजित हो जाता है और अपहृत वत्सराज्य उदयन को प्राप्त हो जाता है। पुन बड़े

नाटकीय ढग से वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट होते है। यह सुखान्त नाटक है।

(३) उरुभङ्ग—यह एकाङ्की नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन के जङ्घा को तोडने का वर्णन है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नाम 'उरुभङ्ग' रखा गया है। सम्पूर्ण सस्कृत-साहित्य मे केवल यही अकेला दु खान्त नाटक उपलब्ध होता है।

(४) दूतवाक्यम्—यह भी एकाङ्की नाटक है। इसमे महाभारत-युद्ध के पहले श्री कृष्ण के दौत्यकार्य का वर्णन है। सन्धि कार्य के लिए पाण्डवो की ओर से श्री कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पास जाते है। किन्तु दुर्योधन उनकी बात नही मानता और वे निराश होकर लौट आते है।

(५) पञ्चरात्रम्—यह तीन अङ्को का नाटक है। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवो को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार होता है कि यदि पाण्डव पांच रात्रि के अन्दर ही मिल जाय तो उन्हे आधा राज्य दे दिया जाएगा। कौरवो ने विराट् की राजधानी पर गायो के लिये चढाई किया। राजकुमार उत्तर ने अज्ञात-वास मे स्थित पाण्डवो की सहायता से विजय प्राप्त की। इसी समय पाण्डवो के प्रकाश मे आ जाने पर द्रोणाचार्य ने आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया और दुर्योधन मान लिया।

(६) बालचरित—यह पांच अङ्को का नाटक है। इस नाटक मे भगवान् श्री कृष्ण की बाललीलाओ का वर्णन है, इसलिए इसका नाम 'बालचरित' रखा गया हैं। इसमे श्री कृष्ण के जन्म लेकर कस-वध तक की कथा समायोजित है।

(७) दूतघटोत्कच—यह एकाङ्की नाटक है। इसमे अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् हिडिम्बापुत्र घटोत्कच दूत बन कर श्री कृष्ण का सन्देह कौरवो के पास ले जाता है। दुर्योधन अपमान करता है जिससे दुर्योधन और घटो-त्कच मे गरमा गरमी हो जाती है। धृतराष्ट्र शान्त करते है। घटोत्कच अभिमन्यु के वध का बदला अर्जुन द्वारा लिये जाने की धमकी देकर वापस

रखा जाता है। दौत्य-प्रधान होने के कारण इसका नाम 'दूतघटोत्कच' रखा गया है। कथा-वस्तु कवि-कल्पना-प्रसूत है क्योंकि घटोत्कच के दौत्यकार्य का वर्णन महाभारत में उपलब्ध नहीं होता।

(८) कर्णभार—यह भी एकाङ्की नाटक है। द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् कर्ण कौरवों का सेनापति बनाया जाता है अतः युद्ध का सम्पूर्ण भार कर्ण पर आ जाता है। कर्ण का यह नियम था कि दोपहर के समय वह जल में खड़ा होकर सूर्य को अर्घ्य देता था और उस समय ब्राह्मणों को उनकी इच्छानुसार दान देता था। इसी अवसर पर ब्राह्मण के रूप में उपस्थित होकर इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुण्डल की याचना की। कर्ण सहर्ष उसे दान में दे देता है।

(९) मध्यमव्यायोग—यह एकाङ्की नाटक है। इसकी रचना मध्यम-पाण्डव भीमसेन को आश्रित करके की गयी है। इसमें भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण के मध्यम पुत्र की रक्षा करना, भीम की अपने पुत्र घटोत्कच के दर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा मिलन का वर्णन है।

(१०) प्रतिमानाटकम्—यह सात अङ्कों का नाटक है। राम के वनवास से लेकर रावणवध पर्यन्त चौदह वर्ष की कथाओं का संक्षेप में वर्णन है। राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की प्रतिमा को देखकर उनके मृत्यु का अनुमान भरत को हो जाने के कारण ही इसका 'प्रतिमा' नाम रखा गया है।

(११) अभिषेकनाटकम्—इसमें छः अङ्क हैं। इसमें किष्किन्धा-काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड पर्यन्त कथा का वर्णन है। रावण की मृत्यु के पश्चात् राम का राज्याभिषेक भी लङ्का में ही हो जाता है। इसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

(१२) अविमारक—छः अङ्कों वाले इस नाटक में सौवीर के राजकुमार अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी की प्रेमलीला का वर्णन है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'अविमारक' रखा गया है।

(१३) चारुदत्तम्—यह चार अङ्कों का नाटक है। नायक के नाम पर ही इस नाटक का नाम 'चारुदत्त' रखा गया है। इसमें निर्धन किन्तु उदारमना

ब्राह्मण चारुदत्त तथा वसन्तसेना नामक वेश्या के प्रणय-सम्बन्ध का वर्णन है। यह नाटक अपूर्ण है। सम्भवत यह भास की अन्तिम रचना है, जिसको मृत्युपर्यन्त पूरा नही कर सके।

## नाटकचक्र के रूपको का एककर्तृत्व

बाह्य तथा अन्त -साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है। कि 'नाटक-चक्र' के सभी नाटक किसी एक ही कवि की रचनाएँ है। जो इस प्रकार है—

१—बाह्य-साक्ष्य—नाटकचक्र के नाटको की आकृति का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते है—

(१) सभी नाटक सूत्रधार के प्रवेश मे प्रारम्भ होते है। संस्कृत के अन्य नाटको मे मङ्गलाचरण-रूप नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है।

(२) कर्णभार को छोडकर सभी नाटको मे 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(३) इन सभी नाटको मे प्ररोचना (कवि परिचय) का अभाव है।

(४) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम्, पञ्चरात्रम् तथा ऊरुभङ्गम्—इन नाटको के प्रथम श्लोक मे मुद्रणालङ्कार द्वारा पात्रो के नामो की सूचना मिल जाती है।

(५) इन नाटको की समाप्ति प्राय समान है। अधिकाश नाटको के 'भरतवाक्य' एक ही है। लगभग सभी नाटको के भरतवाक्य मे 'राजसिंह प्रशास्तु न' यह अवश्य प्रयुक्त है।

(६) इन नाटको की भूमिका अत्यन्त छोटी है। उनमे यह विशेषता भी है कि प्राय एक ही भूमिका कई नाटको मे उपलब्ध होती है।

(७) कुछ पात्र भिन्न-भिन्न नाटको मे एक ही नाम और कार्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

२—अन्त साक्ष्य—'नाटकचक्र' के नाटको का आन्तरिक सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते है।

(१) सभी नाटकों की भाषा तथा शैली प्रायः समान है। कुछ पद वाक्य तथा पाठ्य समान रूप से पाये जाते हैं। सूकथन्कर की सूची के अनुसार समान-पाठ्य इत्यादि की संख्या १२७ है।

(२) इन सभी नाटकों में अपाणिनीय और आर्ष शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। इन शब्दों को पाणिनि व्याकरण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

(३) इन नाटकों में अधिकांशतः अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। इनमें सुवदना, दण्डक इत्यादि अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

(४) इन नाटकों में व्यङ्ग्य शक्ति का अभाव ही वैशिष्ट्य है। इसलिए पताका स्थानक का प्रयोग सर्वत्र मिलता है।

(५) इनमें कुछ नाटक ऐसे हैं जो पूर्णरूपेण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासवदत्तम् का पूर्वभाग प्रतीत होता है। प्रतिमा-नाटक भी अभिषेकनाटक का अङ्ग प्रतीत होता है। दोनों नाटकों में पात्रों की भिन्नता नगण्य है।

उपर्युक्त समानताओं एवं वैशिष्ट्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृतियाँ हैं।

## नाटकचक्र के नाटकों का भास-कर्तृत्व

'नाटकचक्र' के नाटक भास की ही रचनाएँ हैं। वह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि बाण ने हर्षचरित में भासप्रशंसा युक्त पद्यों का निर्माण किया है। उसमें उन्होंने यह बतलाया है कि भास ही एक ऐसे नाटककार हैं जिनके नाटकों का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश से होता है।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो भासो देवकुलैरिव ॥

अतः नाटकचक्र के सभी नाटक का आरम्भ सूत्रधार के प्रवेश के साथ होने से वे भासकृत् सिद्ध होते हैं।

राजशेखर ने तो स्पष्ट उल्लेख किया है कि स्वप्नवासवदत्तम् नाटक

भास के नाटकचक्रो मे है और इसकी तुलना मे कोई दूसरा नाटक इतना प्रभावशाली एवम् आकर्षक नही है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहको भून्न पावकः॥

इस प्रकार सिद्ध होता है कि स्वप्नवासवदत्तम् भासकृत नाटक है तथा स्वप्नवासवदत्तम्-युक्त 'नाटकचक्र' के अन्य नाटक भी भास की रचनाएँ है।

## भास की नाट्यकला

भास संस्कृत-साहित्य के सफल नाटककार है। यद्यपि इन्होने नाट्यशास्त्र के नियमो का अक्षरश: पालन नही किया है किन्तु अपनी अनूठी प्रतिभा से उन्हे रोचक बना दिया है। संस्कृत के प्राय: सभी नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अनुपयुक्त प्रतीत होते है किन्तु भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल है। भास ने ही सर्व-प्रथम एकाङ्की नाटकों का प्रणयन किया। भास के नाटको मे विषय वस्तु की सङ्घटना, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, रसयोजना तथा भाषा-शैली इतनी हृदयग्राही, आकर्षक, उपयुक्त तथा समीचीन है कि उनकी नाट्य-रचनाओ को सहृदय के हृदय का भाजन बना देती है।

इस प्रकार भास के नाटकों की कथावस्तु कतिपय सार्थक घटनाओ द्वारा उद्घाटित एव विकसित की गयी है। उसमे कही भी अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती। भास परोक्ष की घटनाओ को इस प्रकार प्रस्तुत करते है, मानो प्रेक्षक उनका साक्षात् दर्शन कर रहा हो। जैसे—प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे उदयन और वासवदत्ता रङ्गमञ्च पर कभी नही आते, किन्तु दर्शक उनकी उपस्थिति का निरन्तर आभास करते है। भास के नाटको मे अप्रत्याशित घटनाओ का भी बडे स्वाभाविक ढग से चित्रण हुआ है।

भास ने पात्रो का चरित्रचित्रण भी अत्यधिक निपुणता से किया है। पात्रो को उन्होने वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता एव मार्मिकता के साथ चित्रित करके सर्वथा नवीन एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनके नाटको के पात्र

जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है। स्वप्नवासवदत्तम् का उदयन यदि प्रेम के लिए अत्यधिक समर्पित है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के उत्कृष्ट त्याग की साक्षात् मूर्ति है। पद्मावती एक आदर्श की प्रतिमा है तो यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता की मूर्ति है। विदूषक तो गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति को हास्यरस में सराबोर कर देते हैं। इस प्रकार भास के सभी पात्र उनकी उत्कृष्ट निपुणता से सजे-सँवरे हैं।

भास के नाटकों में कथोपकथन अत्यधिक नपा तुला है। कोई भी पात्र व्यर्थ का वाग्विस्तार नहीं करता और न ही कल्पना का रंग चढाता है। पात्रों का कथोपकथन अत्यधिक संक्षिप्त एवं जीवन्त है। उनका एक-एक वाक्य उनके हृदय के स्तरों को उभारता हुआ दर्शकों के सामने रख देता है।

भास की भाषा में स्वाभाविकता की अधिकता है जिसमें अनुमान होता है कि उनके समय में संस्कृत आम बोल चाल की भाषा थी। वाक्य छोटे छोटे, पद प्राय समास-रहित हैं। सरलता से समझ में आ जाते हैं। कवि ने स्वाभाविक अलंकारों का ही प्रयोग किया है, जानबूझ कर उनको थोपा नहीं है। वास्तव में भास सूत्र-रूप में व्यक्ति थे। अति संक्षेप में अपनी बातों को कहना उस समय की परम्परा थी। भास उस परम्परा से अछूते नहीं थे।

भास की शैली ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से ओतप्रोत है। विकट-बन्ध, क्लिष्ट-कल्पना, तथा समास भूयस्त्व का उनमें अभाव है। पदों का विन्यास स्वाभाविक है तथा भावसौष्ठव एवं प्रवाह की प्रचुरता है। भास रस के अनुकूल शैली में भी परिवर्तन कर देते हैं। उन्होंने उपमा, रूपक इत्यादि सरस एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास की नाट्यकला उत्कृष्ट है। जिसके कारण उनके नाटक प्रेक्षकों के अन्तःकरण में सरलता से घर कर जाते हैं।

## भास का प्रकृति-चित्रण

भास एक नाटककार हैं, काव्यकार नहीं। अतएव उनका प्रकृति-चित्रण कथावस्तु को गतिशील बनाने वाला और संक्षिप्त है। भास प्रकृति का नैसर्गिक

वर्णन करके उसका हृदयग्राही रूप उपस्थित करते हैं। इसका प्रकृति चित्रण आलम्बन-रूप से ही अधिक हुआ है, उद्दीपन-रूप में बहुत कम। भास के चित्र अत्यधिक स्वाभाविक और बिम्बग्राही होते है। जैसे भास का सन्ध्या-कालीन सूर्य का वर्णन दर्शनीय है—

अस्ताद्रिमस्तकगत　प्रतिसंहृतांशु
सन्ध्यानुरञ्जितवपु प्रतिभाति सूर्य ।
रक्तोज्वलांशुकवृते　द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन　रचित　पुलको यथैव ॥
(अभिषेक ४।२३)

अर्थात् अस्ताचल के शिखर पर स्थित, किरणों को समेटे हुए, सन्ध्या द्वारा लाल बनाए गये भगवान् सूर्य उसी प्रकार सुशोभित हो रहे है जैसे हाथी के लाल चमकीले रेशमी कपड़े से ढके मस्तक भाग पर सोने का बना गोलाकार आभूषण शोभायमान हो।

सायकाल का कैसा स्वाभाविक चित्र खीचा है भास ने—

खगावासोपेता　सलिलमवगाढो　मुनिजन
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सक्षिप्तकिरण
रथ व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥
(स्वप्नवासव १।१६)

अर्थात् चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलों में चली गयी, मुनिलोग स्नान करने लगे, आग जल गयी (अत) तपोवन ग धूआँ फैल गया और बहुत ऊँचे से गिरे हुए सूर्य भी किरणों को समेट कर तथा रथ को छोटा करके धीरे-धीरे अस्ताचल को जा रहे हैं।

सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय का कितना बिम्बग्राही वर्णन भास ने किया है—

उदयति हि शशाङ्क क्लिन्नखर्जूरपाण्डु
युवतिजनसहायो　राजमार्गप्रदीप ।

तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
हृतजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति ॥
(चारुदत्त १।२९)

सरस खजूर के समान पीले वर्ण वाला, युवतियों का सहायक, राजमार्ग का दीपक चन्द्रमा उदित हो रहा है अन्धकार की राशि के मध्य में उसकी श्वेत किरणें उसी प्रकार पड़ रही हैं जैसे सूखे जलवाले कीचड़ में दूध की धारा हो।

समुद्र का कितना स्वाभाविक वर्णन है—

क्वचित्फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद्भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥
(अभिषेक ४।१७)

यह समुद्र कहीं फेनों को उगलता हुआ, कहीं मछलियों से व्याप्त जल वाला, कहीं बिखरे शङ्खों वाला, कहीं काले बादल के समान श्याम वर्ण वाला कहीं तरङ्गों के समूह से युक्त, कहीं नक्रों के कारण भयानक, कहीं भयङ्कर भँवरों वाला और शान्त जल वाला बना हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास संक्षिप्त तथा स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण में सिद्धहस्त हैं।

## अभिषेक का संक्षिप्त कथानक

**प्रथम अङ्क**—प्रथम अङ्क की स्थापना से ज्ञात होता है कि वालि सुग्रीव की पत्नी को बलात् लेकर सुग्रीव को निकाल दिया है। सीता-हरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण से सुग्रीव की भेंट हो गयी है। राम और सुग्रीव दोनों परस्पर सहयोग के लिये वचनबद्ध हो गये हैं। वाली को मारने की तैयारी हो गयी है ॥ स्थापना समाप्त ॥

उसे लोगो के समक्ष नाटक के रूप मे प्रस्तुत किया है। इस परिवर्तन के कारण मूलकथा मे थोडी नवीनता आ गयी है जिससे दर्शको की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। कवि द्वारा परिवर्तित स्थल द्रष्टव्य हैं—

(१) रामायणीय कथा मे वालि तथा सुग्रीव का स्वरूप एक जैसा होने से राम बालि को पहचान नही पाते। अत सन्देह होने के कारण बालि को मार नही पाते। सुग्रीव युद्ध मे परास्त होकर भाग जाता है। पुन गजपुष्पी-लता को गले मे धारण करके जाता है तथा इस बार बालि और सुग्रीव को पहचान कर राम वालि का वध करते हैं किन्तु अभिषेक मे पहली वार के युद्ध मे ही सुग्रीव बालि से मार खाकर गिर जाता है तथा हनुमान् द्वारा प्रतिज्ञा का याद दिलाये जाने पर राम बालि का वध कर देते हैं।

(२) रामायणीय कथा मे हनुमान् सीता को विश्वास दिलाने के लिए राम की अङ्गूठी ले जाते है तथा वापस होते समय राम के विश्वास के लिए सीता की चूडामणि को ले आते हैं। भास ने इस घटना का परित्याग करके नयापन लाया है। अभिषेकनाटक की सीता बिना किसी चिह्न के ही बात-चीत के चलते हनुमान् और उनकी बातो की विश्वसनीयता की परीक्षा कर लेती है। इसी प्रकार बिना किसी चिह्न के प्रमाण के ही राम भी हनुमान् की बातो पर विश्वास कर लेते हैं।

(३) समुद्र पार करने के लिये रामाणीय कथा मे नल और नील द्वारा पुल बनवाया जाता है किन्तु अभिषेकनाटक मे स्वय वरुण राम के सम्मुख उपस्थित होते है। पुन उनकी कृपा से समुद्र का जल दो भागो मे बँट जाता है तथा बीच का जल स्थिर हो जाता है जिससे सेना पार चली जाती है।

(४) रामायणीय कथा मे मेघनाथ का लक्ष्मण से युद्ध होता है। लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। सञ्जीवनी बूटी द्वारा जिलाये जाते हैं। पुन दोनो मे युद्ध होता है तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाथ मारा जाता है किन्तु भास ने राम द्वारा ही मेघनाथ का वध दिखलाया है।

(५) रामायणीय कथा मे रावण वध के बाद जब राम अयोध्या पहुचते हैं तब वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है किन्तु अभिषेकनाटक मे लका मे

हीं अग्निदेव दशरथ तथा देवों की उपस्थिति में उनका राज्याभिषेक कर देते हैं। मजे की बात तो यह है कि इस अवसर पर इन्द्र के आदेश से भरत तथा शत्रुघ्न-सहित सम्पूर्ण अयोध्या के प्रजाजन लंका में पहुँच जाते हैं।

नाटक का नामकरण—अभिषेक घटना प्रधान नाटक है। घटनाओं के आधार पर ही नाटक का नामकरण हुआ है। इस नाटक में तीन बार राज्याभिषेक हुआ है (१) वालि के वध के बाद किष्किन्धा के राज्य पर सुग्रीव का अभिषेक (२) रावण द्वारा निर्वासित तथा राम की शरण में आये हुए विभीषण का लङ्का के राज्य पर अभिषेक तथा (३) रावण-वध के पश्चात् लङ्का में ही समस्त अयोध्यावासियों की उपस्थिति में अयोध्या के राज्य पर राम का अभिषेक। इन्हीं अभिषेक की घटनाओं के आधार पर इसका 'अभिषेक' नाम उपयुक्त है। इसमें प्रमुख राज्याभिषेक था—अयोध्या राज्य पर राम का। प्रमुखत: राम का राज्याभिषेक ही इस नाटक के नाम का प्रमुख आधार है।

## पात्रों का चरित्र चित्रण

### राम

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार राम इस नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। वे स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर हैं। रावण के वध के पश्चात् उनसे मिलने के लिए जब सीता आती हैं तो रावण के घर रहने के कारण उसे अपने पवित्र इक्ष्वाकुवंश का कलंक कहकर रोक देते हैं। सीता के अग्नि में प्रविष्ट होने के बाद जब अग्निदेव सीता की पवित्रता का प्रमाण देते हैं तब उसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि सीता पवित्र है फिर भी उसकी पवित्रता के विषय में लोगों को विश्वास दिलाने के लिए ऐसा करते हैं।

जानताऽपि च वैदेह्या शुचितां धूमकेतन !
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ (६ । २९)

इस नाटक में राम को अवतारी एवं वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। लोकमर्यादा एवं धर्म की रक्षा ही उनका परम उद्देश्य है। वालि से

राम की व्यक्तिगत कोई शत्रुता नहीं थी। उसने अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य से बाहर निकाल दिया था। इतना ही नही बालि ने सुग्रीव की पत्नी के साथ अभिगमन किया था, जो अनुचित था।

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता।
आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ (१।२०)

राम शरणागत वत्सल हैं। शरण मे आये हुए शत्रुपक्ष के व्यक्ति को भी स्वागत-सहित अपना कर उसकी रक्षा करते हैं। शरणागत की सहायता एवं उसकी रक्षा ही धर्म है। जब रावण द्वारा परित्यक्त तथा अपमानित विभीषण राम की शरण मे आता है तो वे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं तथा उसे लंकाधिराज बना देते हैं—'अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लंकेश्वरो भव'।

रावण द्वारा भेजे गये दो गुप्तचर शुक और सारण राम की सेना मे पकड़े जाते हैं। विभीषण उन दोनों को रावण का अभिन्न गुप्तचर कहकर यथोचित दण्ड देने के लिए आग्रह करता है किन्तु राम उनके साथ वीरोचित व्यवहार करते हैं—उन दोनों को छोड़ देते हैं—

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ (४।२१)

इस नाटक मे राम को विष्णु का अवतार बतलाया गया है। स्वयं जगत् के कारण-रूप चक्र, शार्ङ्ग तथा गदाधारी विष्णु मनुष्य का रूप ग्रहण करके लोक मङ्गल के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं—

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ (४।१४)

## सीता

सीता इस नाटक की स्वीया नायिका है। वह आदर्श भारतीया नारी है। भारतीय स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म है—पातिव्रत-धर्म। वह उसमे कूट-कूट कर भरा है। इस समय वह पति के विरह-वेदना से सन्तप्त है। राक्षस-राज रावण उसे हरण करके अपनी राजधानी लंका मे ले गया है। वह उसे डरा-धमका

कर तथा ममझा बुझा कर उससे प्रणय-याचना करता है। किन्तु वह अपने पातिव्रत-धर्म पर अटिग रहती है। और उसे शाप देने के लिए तत्पर हो जाती है—"शप्नोऽस्मि"। सीता के इस शाप से त्रिभुवन-विजेता रावण घबड़ा जाता है—

> देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे।
> मोऽहं मोहं गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः॥ (२।१८)

सीता का अपने पति राम के प्रति सच्चा अनुराग है। पति के सुख दुख को अपना सुख दुख समझती है। जब हनुमान् सीता से राम का समाचार सुनाते हैं कि राम आप के वियोग में सर्वदा सन्तप्त रहते हैं तो वह दुखी हो जाती है। वह नहीं चाहती कि राम को किसी प्रकार का कष्ट हो। इसी लिए वे हनुमान् से कहती हैं कि आप मेरी इस कष्ट की दशा को आर्यपुत्र से ऐसे ढंग से कहना जिससे वे शोकाभिभूत न हो जाँय।

भद्र ! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति तथा मे वृत्तान्तं भण।

वह विरह से अत्यधिक सन्तप्त है। इस समय इसकी अवस्था धूप में फेंकी हुई माला के समान हो गयी है—

> असितभुजकरया धारयन्त्येकवेणीं करपरिमितमध्या कान्तसमक्तचित्ता।
> अनशनकृशदेहा बाष्पसिक्तानना सरसिजमालेवातपे विप्रविद्धा॥
> (२।८)

उसके लिए पति भक्ति के समक्ष सब कुछ तुच्छ है। रावण उन्हें प्रणय के बदले अपनी विशाल शक्ति, धन-सम्पत्ति तथा राज्यलक्ष्मी तक देने को तैयार है किन्तु वह उसको त्याग देती है। रावण के द्वारा यह धमकी दिये जाने पर कि आज मेरे शस्त्र द्वारा दोनों—राम तथा लक्ष्मण को धराशायी कर दिया जाएगा। वे इस पर विश्वास नहीं मानती। क्योंकि व राम के पराक्रम से अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः रावण को मूर्ख कहती हुई इस कार्य को वह हाथ से मन्दराचल उठाना बताती है—

हं मूढः खल्वसि रावणकः यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः ।

रावण की माया द्वारा कटे हुए राम तथा लक्ष्मण के सिर को देखकर वह मूर्च्छित हो जाती है तथा रावण से अपने सिर को भी उसी तलवार से अलग करने के लिए प्रार्थना करती है—

भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृत तेन मामपि मारय ।

रावण के मार दिये जाने पर वह बडी उत्सुकता तथा अभिलाषा के साथ राम से मिलने जाती है किन्तु राम द्वारा रावण के घर मे निवास करने के कारण कुलकलङ्किनी कह कर रोक दी जाती हैं। उसे अग्नि में प्रवेश करना पडता है । अग्निदेव साथ आकर उसकी पवित्रता का साक्ष्य देते है—

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षता शुद्धा जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥ (६।२८)

और दे भी क्यों न । जगत्पावनी जानकी तो भगवती लक्ष्मी है । भगवती लक्ष्मी की अवतार-भूता जानकी में अपवित्रता कहाँ से प्रवेश करती । जो संसार को पवित्र करने वाली है उनकी पवित्रता के विषय मे यह सन्देह ? इसी लिए अग्निदेव ने उनकी पवित्रता को प्रमाणित किया ।

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥ (६।२८)

## हनुमान्

हनुमान् अतुलित बलशाली, महापराक्रमी तथा सच्ची निष्ठा से युक्त बानर है वे सुग्रीव के मन्त्री हैं। विपत्ति मे सर्वदा अपने स्वामी का साथ देते है । मैत्री हो जाने पर जब राम के द्वारा उत्साहित सुग्रीव बालि से लडने जाता है तब बालि के द्वारा आहत कर दिया जाता है । सुग्रीव की ऐसी दशा देखकर हनुमान् अत्यधिक दु खी होते है और बालि को शीघ्र मारने के लिए राम को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं —

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलस्तु पतिर्मम ।
अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ॥ (१।१५)

सीता के अन्वेषण में हनुमान् का प्रमुख हाथ होता है। समुद्र पार लङ्का में प्रवेश करना बड़े साहस और पराक्रम का कार्य है। सम्पाति द्वारा सीता का वृत्तान्त सुनकर हनुमान् अपने बल से समुद्र को लाँघ कर लङ्का पहुँच जाते हैं—

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्या खगेन्द्रात् आरुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रं महेन्द्रम्।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं वीर्यप्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽथ॥
(२।१)

लङ्का के सभी स्थलों में ढूढते हुए वे क्रीडोद्यान में पहुँचते हैं। वहाँ अशोक वृक्ष के कोटर में बैठकर सभी वृत्तान्त को समझते हैं। रावण के अभिमान को देख कर उनका क्रोध बढ जाता है किन्तु वे सन्तुलित रहते हैं। वे सोचते है कि यदि मैं रावण को मार देता हूँ तब तो कार्य पूरा हो जाएगा किन्तु यदि मुझे रावण ने मार दिया तो राम का सारा का चौपट हो जाएगा—

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते॥ (२।१६)

हनुमान् महान् निर्भीक हैं। जिस रावण से देवता तक कापते हैं। उसे वे लंका में अपने आगमन की सूचना दिये बिना नहीं लौटना चाहते। जब रावण को हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका उजाड़ दिये जाने का समाचार मिलता है तब वह अपनी सेना सहित अक्षयकुमार को भेजता है। हनुमान् सेना-सहित अक्षयकुमार को मार डालते हैं।

क्रोधात् मरत्कनेन त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं
प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम्।
तान् बाणान् निर्विधून्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
कण्ठे सङ्गृह्य धृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान॥ (३।७)

तदनन्तर मेघनाद के पहुँचने पर उसे मारने में सक्षम होते हुए भी उसे मारते नहीं। उनका उद्देश्य तो रावण के सम्मुख उपस्थित होना था, अतः मेघनाद के पाश में बँध जाते हैं।

वह पक्का राजनीतिज्ञ भी है। हनुमान् को मारने का निर्देश देते देते रुक जाता है। दूत-वध लोकापवाद का विषय है—'दूतवधः खलु वचनीयः' मेघनाथ का वध सुनकर सभी अनिष्ट की जड़ सीता को ही मारना चाहता है किन्तु स्त्रीवध निन्दनीय सुनकर उनका वध नही करता।

वह दृढ-निश्चय वाला व्यक्ति है। उसे राम से युद्ध करके उन्हे पराजित करना है। जब वह पराक्रम-शाली कुबेर से राज्यलक्ष्मी को छीन सकता है तो मनुष्यरूप राम को क्या समझता। अपनी जाती हुई राज्यलक्ष्मी को उन्हें मारकर रोक लेने का दावा करता है।

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये।
बलादेव ग्रहीष्ये त्वा हत्वा राघवमाहवे॥ (५।५)

## बालि

बालि किष्किन्धा का राजा तथा सुग्रीव का बड़ा भाई है। वह महा-बलशाली है। उसे अपने बल पर बहुत बड़ा गर्व है। अतः सुग्रीव की गर्जना सुनकर वह आग-बबूला हो जाता है। पत्नी के द्वारा रोके जाने पर भी वह अपने बल की सराहना करते हुए उससे युद्ध करने जाने के लिए तैयार हो जाता है।

तारे! मया खलु पुराऽमृतमन्थनेऽपि
गत्वा प्रहस्य सुरदानववैरमसङ्घान्।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदग्ररूप—
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते॥ (१।११)

वह अपने बल के सामने इन्द्र, शङ्कर, विष्णु को भी कुछ नही जोड़ता। इस लिए सुग्रीव से कहता है कि अब तुम बच नही सकते।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यति॥ (१।१२)

सुग्रीव में ताकत कहाँ जो बालि का सामना कर सके। वह तो राम के द्वारा उसे मारे जाने का वादा किये जाने पर उस (बालि) पर आक्रमण

करता है। राम उसे मारते तो अवश्य हैं किन्तु छिपकर। वे भी उसे सामने से मारने मे असमर्थ हैं। राम के इस कृत्य को निन्दनीय मानता है।

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च।
छलेन मा प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥ (१।१८)

फिर भी वालि समझदार व्यक्ति है। वह अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन किया है, जो अनुचित है। राम द्वारा यह तर्क दिये जाने वह अपने वध को न्याय-सगत मान लेता है।

'अनुत्तरा वयम्'।

मरते समय वह सुग्रीव से क्षमा माँगता है तथा अपने पुत्र अङ्गद की सुरक्षा का भार सुग्रीव को सौंप देता है।

मया कृतं दोषमपास्य बुद्धया
त्वया हरीणामधिपेन सम्यक्।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं
कुलप्रवालं परिगृह्यतां न ॥ (१।२६)

—जमुना पाठक

## पात्र-परिचय

पुरुष—

१. राम—दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र।
२. लक्ष्मण—राम का छोटा भाई।
३. वालि—सुग्रीव का बड़ा भाई और किष्किन्धा का राजा।
४. सुग्रीव—वालि का छोटा भाई।
५. अङ्गद—वालि का पुत्र।
६. हनुमान्—सुग्रीव का मंत्री।
७. नील—एक वानर-अधिकारी।
८. बलाध्यक्ष—वानर-सेनापति।
९. बिलमुख—एक वानर योद्धा।
१०. ककुभ—एक वानर-अधिकारी।
११. वानर-काञ्चुकीय—सुग्रीव का कञ्चुकी।
१२. रावण—लङ्का का राजा।
१३. विभीषण—रावण का छोटा भाई।
१४. विद्युज्जिह्व—एक राक्षस।
१५. शंकुकर्ण—रावण का एक सेवक।
१६. शुक, सारण—रावण के मंत्री।
१७ राक्षस-काञ्चुकीय—रावण का कञ्चुकी।
१८. तीन विद्याधर।
१९. अग्निदेव।
२०. वरुणदेव।

स्त्रियाँ—

१. सीता—रामपत्नी।
२. तारा—वालि-पत्नी।
३. राक्षसियाँ।
४. विजया—रावण की प्रतिहारी।

भासनाटकचक्रे

# अभिषेकनाटकम्

'शशिप्रभा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

## प्रथमोऽङ्कः

( नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः )

सूत्रधारः—

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता
युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता ।
दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता ॥ १ ॥

* शशिप्रभा *

अन्वय —यः गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता, युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता, दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता, निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता (अस्ति) सः वः पायात् ।

(नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है।)

सूत्रधार—जो गाधि के पुत्र (विश्वामित्र) के यज्ञ में विघ्न करने वाले (राक्षसों) का वध करने वाला है, युद्ध में विराध, खर, दूषण (आदि राक्षसों) के पराक्रम का अन्त करने वाला है, अत्यधिक गर्वशाली तथा उग्र कबन्ध और कपीश (बाली) को मारने वाला है, तथा राक्षसेन्द्र (रावण) के वंश का संहार करने वाला है, वह भगवान् (राम) आप लोगों की रक्षा करें।

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अये किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग, पश्यामि।

( नेपथ्ये )

सुग्रीव ! इत इतः।

( प्रविश्य )

पारिपार्श्वकः—भाव !

---

यो गाधिपुत्रेति—य = भगवान्, गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता = गाधे चन्द्रवंशीयस्य क्षत्रियविशेषस्य पुत्रः सुतः विश्वामित्र इत्यर्थः तस्य मखे यज्ञे विघ्नकराणां विघ्नविधायकानाम् अभिहन्ता वधकर्ता, युद्धे = रणे, विराधखरदूषणवीर्यहन्ता = विराधश्च खरश्च दूषणश्च इति विराधखरदूषणाः तेषां वीर्यस्य पराक्रमस्य हन्ता विनाशकः, दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता = दर्पेण अभिमानेन उद्धतौ उद्दण्डौ च उल्बणौ बलशालिनौ च कबन्ध राक्षसविशेष कपीन्द्रः च बाली च तयो हन्ता वधकर्ता, निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता = निशिचराणां राक्षसानां इन्द्रः स्वामी तस्य कुलस्य वंशस्य अभिहन्ता ध्वंसकः अस्तीति शेषः, स = भगवान् रामः, व = युष्मान्, पायात् = रक्ष्यात्। अन्त्यानुप्रास अलङ्कार। वसन्ततिलकाछन्द।

८ एवमिति—एवम् = अनेन प्रकारेण, आर्यमिश्रान् = पूजनीयान्, विज्ञापयामि = निवेदयामि, परिक्रम्य = परिभ्रम्य, अवलोक्य = दृष्ट्वा, विज्ञापनव्यग्रे = निवेदनव्यासक्ते, श्रूयते = आकर्ण्यते।

---

आप आदरणीय सज्जनों (दर्शकों) को मैं यह सूचित करता हूँ। (घूम कर और देखकर) अरे! मेरे द्वारा विज्ञापित करने में व्यस्त होने पर यह कैसा शब्द सुनायी दे रहा है। अच्छा, देखता हूँ।

[ नेपथ्य से ]

हे सुग्रीव ! इधर से, इधर से आइये।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—हे महाशय !

कुतो नु खल्वेष समुत्थितो ध्वनिः प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान् ।
प्रचण्डवातोद्धृतभीमगामिना बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥७॥

सूत्रधारः—मार्ष ! किं नावगच्छसि । एष खलु सीतापहरणजनित-सन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च, दाराभिमर्शननिर्विषयीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीवस्य च परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिं हेममालिनं वालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते । तत एतौ हि—

---

अन्वयः—प्रचण्डवातोद्धृतभीमगामिना खे अभिगर्जता बलाहकानाम् इव श्रोत्रविदारणः एष महान् ध्वनिः कुतः नु खलु समुत्थितः प्रवर्तते ।

कुत इति—प्रचण्डवातोद्धृतभीमगामिना=प्रचण्डः प्रकर्षेण चण्डः तीव्रगतिः यः वातः वायुः तेन उद्धृताः उत्थापिताः भीमं भीषणं यथा स्यात् तथा गामिनां चलितानाम्, खे=आकाशे, अभिगर्जताम्=अभितः परितः गर्जनां ध्वनिं कुर्वताम्, बलाहकानामिव=मेघानामिव, श्रोत्रविदारणः=श्रोत्रयोः कर्णयोः विदारणः भेदकः, एषः=अयम्, महान् ध्वनिः=विपुलः शब्दः, कुतः=कस्मात्स्थानात्, नु=इति पृच्छायाम्, खलु=निश्चयेन, समुत्थितः=उत्पन्नः, प्रवर्तते=प्रसरति । उपमालङ्कारः । वंशस्थछन्दः ।

मार्षेति—मार्ष=हे मारिष, अवगच्छसि=जानासि, सीतापहरणजनित-सन्तापस्य=सीतायाः जानक्याः अपहरणेन अपनयनेन जनितः उत्पादितः सन्तापः दुःखं यस्य तस्य, रघुकुलप्रदीपस्य=रघूणां रघुवंशीयानां नृपाणां

---

कानों को फाड़ता हुआ-सा—यह महान् शब्द कहाँ से आ रहा है, मानो यह प्रबल आँधी से प्रेरित होकर आकाश में दौड़ने वाले मेघों का गर्जन हो ।

सूत्रधार—अरे ! क्या नहीं जानते हो ।— यह सीताहरण से पीड़ित-रघुकुल के दीपक सर्वलोकप्रिय राम एवं पत्नीहरण-पूर्वक निष्कासित सम्पूर्ण वानर एवं ऋक्षों के स्वामी उन्नत ग्रीवा वाले सुग्रीव की परस्पर उपकार करने की प्रतिज्ञा (हुई है, उस प्रतिज्ञा) के अनुसार सम्पूर्ण वानरों के स्वामी स्वर्णमालाधारी बाली को मारने के लिए उपाय हो रहा है । इसीलिए यह—

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ।
पुनः स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव॥ ३॥

( निष्क्रान्तौ।)

---

यत्कुलं वंश तस्य प्रदीपस्य, सर्वलोकनयनाभिरामस्य = सर्वे च ते, लोका जनाः तेषां नयनानां नेत्राणाम् अभिरामः रमणीयः, रामस्य = राघवस्य, दाराभिमर्षणनिर्विषयीकृतस्य = दाराणां स्त्रियाः अभिमर्षणम्, आकर्षणम् अभिगमनमित्यर्थः तेन निर्विषयीकृतस्य बहिष्कृतस्य, सर्वहर्यृक्षराजस्य = सर्वे च ते हरयः वानराः ऋक्षाश्च भल्लूकाश्च तेषां राजा अधिपः तस्य, सुविपुल महाग्रीवस्य = सुष्ठु विपुला विस्तृता महती विशाला च ग्रीवा गलः यस्य तस्य, सुग्रीवस्य = एतन्नामकस्य कपिराजस्य परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयो = परस्परं अन्योऽन्यं य उपकारः हितकार्यं तस्मिन् कृता विहिता प्रतिज्ञा दृढसङ्कल्प याभ्यां तयोः, सर्ववानराधिपतिं = सर्वे सकला ये वानराः कपयः तेषाम् अधिपतिं ईशम्, हेममालिनं = हेम्नः सुवर्णस्य माला हारः यस्य तम्, वालिनं = वालीनामकं राक्षसम् हन्तुं = मारितुम् समुद्योगः = समुपायः, प्रवर्तते = क्रियते।

अन्वयः—इदानीं हरिहरौ राज्यविभ्रष्टम् इन्द्रम् इव रामलक्ष्मणौ राज्य-विभ्रष्टं सुग्रीवं (पुनः) राज्यं स्थापयितुं प्राप्तौ (स्तः)।

इदानीमिति—इदानीम् = अधुना, हरिहरौ = हरिः विष्णुः हरः च शङ्करः च, राज्यविभ्रष्टं = राज्यात् राज्याधिकारात् विभ्रष्टं विच्युतम्, इन्द्रमिव = पुरन्दरमिव, रामलक्ष्मणौ = रामः रामचन्द्रः लक्ष्मणः च सौमित्रिः च द्वौ, सुग्रीवं = एतन्नामकं वानरराजम्, पुनः = भूयः, स्थापयितुम् = आरोपयितुम्, प्राप्तौ = आगतौ। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।

---

इस समय राज्यच्युत सुग्रीव को पुनः राज्य पर स्थापित करने के लिए राम और लक्ष्मण आये हैं, मानो इन्द्र को पुनः राज्य पर स्थापित करने के लिए आये हुए विष्णु और शिव हों।

[ निकल जाते हैं ]

॥ स्थापना ॥

( ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च )

रामः—सुग्रीव ! इत इतः ।

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्णदेहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ॥ ४ ॥

अन्वय—अद्य सहसा मत्सायकात् निहतभिन्नविकीर्णदेहं तव शत्रुं भुवि पातयामि । हे राजन् ! त्वं भयं त्यज समरे च निहतः सः वाली मम अपि समीपवर्ती सन् त्वया दृष्टः ।

मत्सायकेति—अद्य=अस्मिन्दिवसे सहसा=अकस्मात्, मत्सायकात्=मम सायकात् बाणात्, निहतभिन्नविकीर्णदेहं=निहतं मारितं भिन्नं छिन्नं विकीर्णं इतस्ततः प्रसृतं देहं शरीरं यस्य तम्, तव=सुग्रीवस्य, शत्रुं=रिपुम्, भुवि=पृथिव्याम्, पातयामि=पतितं करोमि, राजन्=हे नृप सुग्रीव ! भयं=भीतिम्, त्यज=मुञ्च, समरे च=युद्धे च, निहतः=मारितः, सः=पुरोवर्ती, वाली=एतन्नामकः तव अग्रजः, मम अपि=मम रामस्य अपि, समीपवर्ती=समीपस्थः, सन् त्वया=सुग्रीवेण, दृष्टः=विलोकितः । वसन्ततिलकाछन्दः ।

॥ स्थापना समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

राम—हे सुग्रीव ! इधर से, इधर से आओ !

आज मैं अपने बाणों द्वारा तुम्हारे शत्रु (बाली) के शरीर को विदीर्ण करके (उसे) धराशायी कर रहा हूँ । हे राजन् ! मेरे समीप में रहकर भय छोड़ो । अभी युद्ध में मरे हुए बाली को देखोगे ।

सुग्रीव—हे महाराज ! आप की कृपा से मैं देवताओं के राज्य की आशा करता हूँ, वानरों के राज्य की क्या बात है ? क्योंकि—

सुग्रीवः—देव ! अहं खल्वार्यस्य प्रसादाद् देवानामपि राज्यमाशङ्के, किं पुनर्वानराणाम् ! कुतः—

मुक्तो देव ! तवाद्य वालिहृदयं भेत्तुं न मे संशयः
सालान् सप्त महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छ्रीधर !
भित्त्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणीं गत्वा च नागालयं
मज्जन् वीर ! पयोनिधौ पुनरयं सम्प्राप्तवान् सायकः ॥५॥

देवेति—देव=हे महाराज ! अहं=सुग्रीवः, खलु=निश्चयेन, आर्यस्य=पूजनीयस्य भवतः, प्रसादात्=अनुग्रहात्, देवानामपि=सुराणामपि, राज्यं=राज्याधिकारम्, आशङ्के=आशंसे।

अन्वयः—हे देव ! श्रीधर ! (त्वया) मुक्तः तव अयं सायकः महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमान् सप्त सालान् भित्त्वा वेगवशात् धरणीं प्रविश्य नागालयं च गत्वा पयोनिधौ मज्जन् पुनः अद्य वालिहृदयं भेत्तुं प्राप्तवान् (इति) मे न संशयः (अस्ति)।

मुक्त इति—श्रीधर देव=हे लक्ष्मीनाथ देव ! मुक्तः=क्षिप्तः, तव=रामस्य, अयं=पुरोवर्ती, सायकः=बाणः, महावने=विशालारण्ये, हिमगिरेः=हिमालयस्य, शृङ्गोपमान्=शिखरसदृशम् सप्त=सप्त संख्यकान् सालान्=एतन्नामकवृक्षविशेषान् भित्त्वा=छित्त्वा, वेगवशात्=जवकारणात् धरणी=पृथिवीम्, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा नागालयं च=सर्पगृहं पातालपुरं च, गत्वा=यात्वा, पयोनिधौ=समुद्रे मज्जन्=अवगाहमानः, पुनः=भूयः, अद्य=अस्मिन्दिवसे, वालिहृदयं=वालिनः एतन्नामकराक्षसस्य हृदयं=अन्तःकरणम्, भेत्तुं=छेत्तुम् प्राप्तवान्=गतवान्, मे=मम, न=नहि, संशयः=सन्देहः, अस्तीति शेषः। दीपकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

हे लक्ष्मीनाथ देव ! आपका छोड़ा हुआ बाण महावन में (हिमालय के शिखरों जैसे सात साल वृक्षों को तोड़कर, तेजी से पृथिवी में घुसकर, पाताल में आकर तथा समुद्र में डूबता हुआ, हे वीर ! आज बाली का हृदयभेदन करने के लिए (आपके पास) आ रहा है—इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

हनुमान्— तव नृप ! मुखनिःसृतैर्वचोभि—
विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः।
रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं
गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम् ॥

लक्ष्मणः— आर्य ! सोपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम् ।

सुग्रीवः—सम्यगाह कुमारः ।

---

अन्वय.—हे नृप ! मुखनि मृतैं तव वचोभि वयं हि विगतभयाः विनष्ट-शोका च (स्म) हे रघुवर ! विजयं प्रदातुं सनीरनीर-दाभम् गिरिम् अभिगच्छ ।

तवेति—नृप=हे राजन्, मुखनि मृतै.=मुखात् वक्त्रात् नि मृतैं विनिर्गतै, तव=रामस्य, वचोभि=वचनै, वय=हनूमानादय, विगत-भया=भयरहिता, विनष्टशोका=शोकरहिता । रघुवर=हे रघुश्रेष्ठ ! हरये=वानराय, विजय=जयम्, प्रदातु=वितरितुम्, सनीरनीरदाभं=सनीरण जलेन सह वर्तमान सनीर सनीर चासौ नीरद बादल तस्य आभा कान्ति इव आभा यस्य तम्, गिरि=पर्वतम्, अभिगच्छ=अभियाहि । उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राछन्द ।

सोपस्नेहतयेति—सोपस्नेहतया=स्वच्छतया, वनान्तरस्य=अरण्यसमीपस्य, किष्किन्धया=एतन्नामकनगर्या, भवितव्य=भवनीयम् ।

सम्यगेति—सम्यक्=उचितम् ।

---

हनुमान्—हे राजन्, आपके मुख से निकले वचनों से हम लोग निर्भय एवं शोकरहित हो गये हैं। हे रघुवर ! वानर (सुग्रीव) को विजय प्रदान करने के लिए जलपूर्ण बादल के समान इस पर्वत पर चलिए।

लक्ष्मण—हे आर्य ! (जङ्गल के) स्वच्छ होने के कारण (ज्ञात होता है कि) इस वन के पास ही किष्किन्धा होनी चाहिये ।

सुग्रीव—कुमार (लक्ष्मण) ने ठीक ही कहा ।

सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।
तिष्ठ त्वं नृवर ! करोम्यहं विसंज्ञं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम् ॥७॥

रामः—भवतु, गच्छ ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः । (परिक्रम्य) भोः ।

अपराधमनुद्दिश्य परित्यक्तस्त्वया विभो ।
युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्तुमिच्छति ॥८॥

अन्वयः—हे नृप ! (पूर्वं) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता (सम्प्रति) तव बाहुसम्प्रगुप्ता किष्किन्धा सम्प्राप्ता । हे नृवर ! त्वं तिष्ठ, अहं नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकं (च) विसंज्ञं करोमि ।

सम्प्राप्तेति—नृप=हे राजन् ! (पूर्वम्) हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता= हरिवरस्य वानरश्रेष्ठस्य बाहुभ्यां भुजाभ्यां सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, (सम्प्रति) तव=भवतः, बाहुसम्प्रगुप्ता बाहुभ्यां भुजाभ्यां सम्प्रगुप्ता संरक्षिता, किष्किन्धा =एतन्नामकनगरी, सम्प्राप्ता=आगता । नृवर=हे नरश्रेष्ठ ! त्वं=भवान्, तिष्ठ=स्थितिं विधारयतु, अहं=सुग्रीवः, नादेन=गर्जनेन, नृलोकं=नरजगत्, विसंज्ञं=चेतनारहितम्, प्रचलमहीधरं=कम्पमानपर्वतम् करोमि विदधे । अन्त्यानुप्रासालङ्कारः । प्रहर्षिणीच्छन्दः ।

अन्वयः—हे विभो ! अपराधम् अनुद्दिश्य त्वया परित्यक्तः सुग्रीवः युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां कर्तुम् इच्छति ।

अपराधेति—विभो=हे प्रभो ! अपराधम्=दोषम्, अनुद्दिश्य=न निरूप्य, त्वया=वालिना, सुग्रीवः=अहं सुग्रीवः, युद्धे=रणे, त्वत्पादशुश्रूषां= तव पादौ चरणौ तयोः शुश्रूषां सेवाम्, कर्तुं=विधातुम्, इच्छति=वाञ्छति ।

हे राजन् ! पहले कपिराज (बाली) के बाहुओं से रक्षित (किन्तु अब) आपके भुजाओं के अधीन किष्किन्धा आ गयी । हे नृवर ! आप रुकिए । मैं गर्जन से पर्वत को प्रकम्पित तथा नरलोक को चेतनाविहीन कर रहा हूँ । ।

राम—अच्छा, जाओ ।

सुग्रीव—महाराज जैसी आज्ञा देते हैं । (घूमकर) अहा !

हे महाराज (बाली) ! बिना अपराध को बताए आपके द्वारा निकाले दिया गया यह सुग्रीव युद्ध में आपके चरणों की सेवा करना चाहता है ।

(नेपथ्ये) कथं कथं सुग्रीव इति।

(ततः प्रविशति वाली, गृहीतवस्त्रया तारया सह।)

बाली—कथं कथं सुग्रीव इति।

तारे ! विमुञ्च मम वस्त्रमनिन्दिताङ्गि !
प्रस्रस्तवक्त्रनयने ! किमसि प्रवृत्ता।
सुग्रीवमद्य समरे विनिपात्यमानं
तं पश्य शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रम् ॥ १॥

---

अन्वय—हे अनिन्दिताङ्गि तारे ! मम वस्त्रं विमुञ्च। हे प्रस्रस्तवक्त्र-नयने ! किं प्रवृत्ता असि। अद्य समरे विनिपात्यमानं तं सुग्रीवं शोणित-परिप्लुतसर्वगात्रं पश्य।

तारे इति—अनिन्दिताङ्गि=हे मनोहराङ्गि ! तारे=हे मम पत्नी तारे ! मम वस्त्रं=मम वसनम्, विमुञ्च=त्यज। प्रस्रस्तवक्त्रनयने=हे शिथिलनेत्रे ! किं=केन कारणेन, प्रवृत्ता असि=संलग्ना असि, अद्य=अस्मिन्दिवसे, तं=पुरोवर्तमानम्, सुग्रीवं=एतन्नामकं ममानुजम्, समरे=युद्धे, विनिपात्यमानं=विनाश्यमानम्, शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रं=शोणितेन रुधिरेण परिप्लुतं परिपूर्णं सर्वं सम्पूर्णं गात्रं शरीरं यस्य तम्, पश्य=विलोकय। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

---

[नेपथ्य में]

क्या सुग्रीव आया है।

[तत्पश्चात् वस्त्र पकड़ी हुई तारा के साथ बाली प्रवेश करता है]

बाली—क्या सुग्रीव आया है।

हे अनिन्दिताङ्गि तारा ! मेरे वस्त्र को छोड़ो। हे उदासीन मुख और नेत्रों वाली ! क्यों मुझे (रोकने में) लगी हो। आज युद्ध में (मेरे द्वारा) मारे जाते हुए तथा रक्त से लथपथ शरीर वाले सुग्रीव को देखो ॥ १॥

**तारा**—पसीअउ पसीअउ महाराओ। अप्पेण कारणेण ण आगमिस्सइ सुग्गीओ। ता अमच्चवग्गेण सह सम्मतिअ गन्तव्वं। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीवः। तदमात्यवर्गेण सह सम्मन्त्र्य गन्तव्यम्।]

**बाली**—आः,

शक्रो वा भवतु गतिः शशाङ्कवक्त्रे!
शत्रोर्मे निशितपरश्वधः शिवो वा।
नालं मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्र. ॥१०॥

---

अल्पेनेति—अल्पेन=लघुना, कारणेन=हेतुना, न आगमिष्यति, न आयास्यति। तत्=अत एव, अमात्यवर्गेण=मन्त्रिदलेन, समन्त्र्य=मन्त्रणा कृत्वा, गन्तव्यं=गमनीयम्।

अन्वय.—हे शशाङ्कवक्त्रे! शक्र वा निशितपरश्वध शिव वा विकसितपुण्डरीकनेत्र विष्णु वा मे शत्रो गति भवतु, अभिमुखम् एत्य मा सम्प्रहर्तुं न अलम्।

शक इति—शशाङ्कवक्त्रे=चन्द्रमुखि, शक्र वा=इन्द्र वा, निशितपरश्वध =निशितौ तीक्ष्णौ परश्वधौ परशुकुठारौ यस्य स, शिव वा=शङ्कर वा, विकसितपुण्डरीकनेत्र=प्रफुल्लितकमलनयन, विष्णु वा=नारायणं वा, मे=मम, शत्रो =अरे सुग्रीवस्य, गति =रक्षक, भवतु=जायताम्, अभिमुखं=सम्मुखम्, एत्य=आगत्य, माम्=बालीम्, सम्प्रहर्तुं=आहन्तुम्, न अलं=न समर्थ । उपमालङ्कार । प्रहर्षिणीच्छन्द ।

---

तारा—हे महाराज! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। साधारण कारण से सुग्रीव नहीं आएगा। तो मन्त्रीवर्ग से मन्त्रणा करके जाना चाहिए।

बाली—ओह!

हे शशिमुखी! मेरे शत्रु (सुग्रीव) के रक्षक इन्द्र हों अथवा हाथ में तीक्ष्ण परशु धारण करने वाले शिव हों अथवा विकसित कमल के समान नेत्रों वाले विष्णु हों, (मेरे) सामने आकर भी मुझ पर प्रहार नहीं कर सकते।

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। इमस्स जणस्स अणुग्गहं दाव करेउं अरिहदि महाराओ। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अस्य जनस्यानुग्रहं तावत् कर्तुमर्हति महाराजः।]

वाली—श्रूयतां मत्पराक्रमः।

तारे! मया खलु पुरामृतमन्थनेऽपि
गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान्।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदग्ररूप-
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते ॥ ११ ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज।]

---

अन्वयः—हे तारे! पुरा अमृतमन्थने अपि गत्वा सुरदानवदैत्यसङ्घान् मया आकृष्यमाणम् उत्फुल्लनेत्रम् उदग्रनेत्रम् उदग्ररूपम् उरगेन्द्रम् अवलोक्य ते सुविस्मिता खलु (जाता)।

तारे इति—तारे=हे तारे! पुरा=प्राचीनकाले, अमृतमन्थने अपि=अमृतस्य सुधायाः मन्थने मथने अपि, गत्वा=यात्वा, सुरदानवदैत्यसङ्घान्=सुराः देवाः दानवाः राक्षसाः दैत्याः दैतेयाश्च तेषां सङ्घान् समूहान्, प्रहस्य=उपहस्य, मया=वालिना, आकृष्यमाणं=धृष्यमाणम्, उत्फुल्लनेत्रं=विस्फारितनयनं, उदग्ररूपं=भयङ्कररूपम्, उरगेन्द्रं=शेषनागम्, अवलोक्य=विलोक्य, ते=सर्वे, सुविस्मिताः=आश्चर्ययुक्ताः, खलु=निश्चयेन, जाता इति शेषः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

---

तारा—हे महाराज प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए। इस व्यक्ति (मुझ) पर कृपा करनी चाहिये।

वाली—मेरा पराक्रम सुनो।

हे तारा! पहले अमृतमन्थन (के समय) पर भी जाकर देवता, राक्षस और दैत्यगणों पर हँसकर मेरे द्वारा खींचे जाते हुए शेषनाग को देखकर जिसकी आँखें फटी-सी हो रही थी और चेहरा उत्तेजित हो उठा था—वे सब बहुत चकित हो गये थे।

तारा—हे महाराज! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए।

बाली—आः, मम वशानुवर्तिनी भव। प्रविश त्वमभ्यन्तरम्।
तारा—एसा गच्छामि मन्दभाआ। (निष्क्रान्ता।) [एषा गच्छामि मन्दभागा।]

बाली—हन्त प्रविष्टा तारा। यावदहं सुग्रीवं भग्नग्रीवं करोमि। (द्रुतमुपगम्य) सुग्रीव! तिष्ठ तिष्ठ।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यसि ॥ १२ ॥

इत इत।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः।

---

ममेति—वशानुवर्तिनी = ममाज्ञापालिका, अभ्यन्तरम् = रनिवासम्, प्रविश = प्रवेश कुरु।

प्रविष्टेति—प्रविष्टा = प्रवेश कृता, भग्नग्रीवं = खण्डितगलम्।

अन्वयः—इन्द्र वा प्रभु मधुसूदन वा ते शरणम् अस्तु मच्चक्षुष्पथम् आसाद्य सजीव न एव यास्यसि।

इन्द्रो वेति—इन्द्र वा = शक्र वा, प्रभु = स्वामी, मधुसूदन वा = विष्णुः वा, ते = तव सुग्रीवस्य, शरण = सरक्षक, अस्तु = भवतु, मच्चक्षुष्पथ = मम चक्षु नयन तस्य पन्थान मार्गम्, गोचरमित्यर्थ, आसाद्य = प्राप्य, सजीव = जीवित, न एव यास्यसि = नैव गमिष्यसि। अनुष्टुप् छन्द।

---

बाली—ओह! मेरी बात मानो, तुम अन्दर जाओ।

तारा—यह मैं जाती हूँ। (निकल जाती है।)

बाली—ओह! तारा अन्दर चली गयी। तो मैं सुग्रीव की गर्दन तोड़ता हूँ। (शीघ्रता से जाकर) हे सुग्रीव! रुको, रुको।

इन्द्र तुम्हारे रक्षक हों अथवा भगवान् विष्णु, मेरे आँखों के सामने आकर तुम जीवित नहीं जाओगे।

इधर से, उधर से।

सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा।

( उभौ नियुद्धं कुरुतः । )

रामः—एष एष वाली,

सन्दष्टोष्ठश्चण्डसंरक्तनेत्रो मुष्टिं कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्रः ।
गर्जन् भीमं वानरो भाति युद्धे संवर्ताग्निः सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १३ ॥

लक्ष्मणः—सुग्रीवमपि पश्यत्वार्यः ।

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः ।
हरिवरमुपयाति वानरत्वाद् गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—वानरः सन्दष्टोष्ठः चण्डसंरक्तनेत्रः उद्वृत्तदंष्ट्रः च मुष्टिं गाढं कृत्वा भीमं गर्जन् युद्धे (जगत्) सन्दिधक्षुः संवर्ताग्निः यथा एव भाति ।

सन्दष्टोष्ठेति—वानरः=कपिः वाली, सन्दष्टोष्ठः=सन्दष्टः दन्तैः खण्डितः ओष्ठः दन्तच्छदः येन सः, चण्डसंरक्तनेत्रः=चण्डेन क्रोधेन संरक्ते लोहिते नेत्रे नयने यस्य सः, उद्वृत्तदंष्ट्रः=उद्वृत्ता बहिर्निःसृता दंष्ट्रा=दन्तविशेषः दाढ यस्य सः, मुष्टिं=बद्धपाणिम्, गाढं=कठोरम्, कृत्वा=विधाय, भीमं=भीषणम् गर्जन्=गर्जनं विधास्यन्, युद्धे=रणे, संवर्ताग्निः यथा=प्रलयाग्निः इव, भाति=भ्राजते । उपमालङ्कारः । शालिनीच्छन्दः ।

अन्वयः—विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः वानरत्वात् सतां वृत्तं विहाय, गुरुम् अभिभूय हरिवरम् उपयाति ।

[दोनों युद्ध करते हैं ।]

राम—यह वाली,

वानर (वाली) दाँतों से ओठ काटे, क्रोध से आँख लाल किये, दाढ़ ऊपर किये (तथा) भयङ्कर रूप से गरजता हुआ युद्ध में (जगत् को) भस्म कर देने वाली प्रलय-अग्नि की तरह चमक रहा है ।

लक्ष्मण—महाराज सुग्रीव को भी देखिए,

खिले हुए कमल के समान लाल आँखों तथा सोने के बाजूबन्दों से बँधी मोटी भुजाओं वाला (वह) वानर होने के कारण सज्जनों का आचरण त्याग कर (अपने) श्रेष्ठ (भाई) का अपमान करके वानरराज (वाली) पर आक्रमण कर रहा है ।

युक्तं भो ! नरपतिधर्ममास्थितेन युद्धे मां छलयितुमक्रमेण राम !
वीरेण व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलमपनेतुमुद्यतेन ॥ १७ ॥

हन्त भो !

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥ १८ ॥

भो राघव ! चीरवल्कलधारिणा वेषविपर्यस्तचित्तेन मम भ्रात्रा सह युद्धव्यग्रस्याधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वधः ।

---

अन्वय.—भो राम ! नरपतिधर्मम् आस्थितेन व्यपगतधर्मसंशयेन, लोकानां छलम् अपनेतुं उद्यतेन वीरेण त्वया युद्धे अक्रमेण माम् छलयितुं युक्तम् ? —

युक्तमिति—भो राम = हे राम ! नरपतिधर्मं = नृपतिकर्तव्यम्, आस्थितेन = आश्रितेन, व्यपगतधर्मसंशयेन = व्यपगत असन्दिग्ध धर्मसंशय धर्मसन्देह यस्य तेन, लोकानां = जनानाम्, छलं = कपटम्, अपनेतुम् = अपाकर्तुम्, उद्यतेन = सन्नद्धेन, वीरेण = वीरपुरुषेण, युद्धे = रणे, अक्रमेण = अन्यायेन, माम्, छलयितुं = प्रतारयितुम्, युक्तं = उचितम्, अस्तीति शेषः । प्रहर्षिणीछन्दः ।

अन्वय.—सौम्यरूपेण यशसः भाजनेन छलेन माम् प्रहरता भवता अयशः प्ररूढं कृतम् ।

भवतेति—सौम्यरूपेण = प्रियाकारेण, यशसः = कीर्तेः, भाजनेन = पात्रेण, भवता = रामेण, छलेन = कपटेन, मां = बालीम्, प्रहरता = प्रहारं कुर्वता, अयशः = अपकीर्तिः, प्ररूढ = अङ्कुरितम्, कृतं = विहितम् ।

भो राघवेति—चीरवल्कलधारिणा = चीररूपं वल्कलं वृक्षत्वक् धारयतीति तेन, वेषविपर्यस्तचित्तेन = वेषेण परिधानेन विपर्यस्त विपरीत चित्त

---

हे राम ! राजा के धर्म पर आरूढ, असन्दिग्ध धर्मज्ञान वाले, संसार का छलप्रयत्न दूर करने में संलग्न और वीर आप के द्वारा अन्याय से छलना (अन्यायपूर्वक छल से मारना) क्या उचित है ।

ओह, खेद है !

सौम्यरूप वाले तथा यश के पात्र आपके द्वारा छलपूर्वक मेरे ऊपर प्रहार करते हुए (आप) के द्वारा महान् अपयश अङ्कुरित (प्राप्त) किया गया ।

रामः—कथमधर्म्यं खलु प्रच्छन्नो वध इति ।

वाली—क संशय. ।

रामः—न खल्वेतत् । पश्य,

> वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वध ।
> वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाञ्छन्नेन दण्डित. ॥ १९ ॥

वाली—दण्ड्य इति मा भवान् मन्यते ।

रामः—क सशय ?

वाली—केन कारणेन ?

---

मन यम्य तेन, युद्धव्यग्रयस्य=युद्धे रणे व्यग्रम्य व्यासक्तस्य, अधर्म्यं=धर्म-प्रतिकूल , प्रच्छन्न =अप्रकट., वध =घात कृत ।

अन्वय.—वागुराच्छन्नम् आश्रित्य मृगाणा वध. इष्यते । वध्यमानत्वात् च मृगत्वात् च भवान् छन्नेन दण्डित ।

वागुरेति—वागुराच्छनं=वागुरा जाल च छन्न छदन च तम्, आश्रित्य =आश्रय कृत्वा, मृगाणा=पशूनाम्, वध =हननम्, इष्यते=अनुमन्यते, वध्य-त्वात्=वधार्हत्वात्, मृगत्वात् च=पशुत्वात् च, भवान्=वाली, छन्नेन=प्रच्छन्नेन मया इति शेष , दण्डित =दण्ड दत्त । काव्यलिङ्गम् अलङ्कार । अनुष्टुप्छन्द ।

---

हे राम ! चीरवल्कल धारण करने वाले (फिर भी) वेष के विपरीत हृदय वाले आपके द्वारा, भाई के साथ युद्ध मे व्यस्त मेरा छिपकर मारा जाना अधर्म है ।

राम—छिपकर मारना कैसे अधर्म है ?

वाली—क्या इसमे सन्देह है ।

राम—यह नही है, देखो,

जाल और छिपाव का आश्रय लेकर पशुओ का वध अनुमत है । वध-योग्य और पशु होने के कारण छिपे हुए मैंने आपको दण्ड दिया है ।

वाली—आप मुझको दण्डनीय मानते है ।

राम—(इसमे) क्या सन्देह है ।

वाली—किस कारण से (मुझे दण्डनीय मानते हैं ।)

**रामः**—अगम्यागमनेन ।

**वाली**—अगम्यागमनेनेति । एषोऽस्माक धर्म ।

**रामः**—ननु युक्त भो !

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।
आत्मान मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ २० ॥

**वाली**—भ्रातृदाराभिमर्शनेन तुल्यदोषयोरहमेव दण्डितो, न सुग्रीव ।

---

अगम्येति—अगम्यागमनेन=अगम्या अभिगन्तुम् अयोग्या तस्या गमन सम्भोगा तेन ।

अन्वय —धर्माधर्मौ विजानता वानरेन्द्रेण मृगम् उद्दिश्य भवताभ्रातृदाराभिमर्शन युक्तम् ?

भवतेति—धर्माधर्मौ=धर्मश्च, अधर्मश्च तौ, विजानता=बुध्यमानेन, वानरेन्द्रेण=वानराणा कपीनाम् इन्द्रेण स्वामिना, भवता=त्वया बालिना, मृग=पशुम्, उद्दिश्य=कथयित्वा, भ्रातृदाराभिमर्शन=भ्रातु अनुजस्य सुग्रीवस्य दाराणा पत्न्या अभिमर्शनम् अभिगमनम्, युक्तम्=उचितम् । अनुष्टुप्छन्द ।

भ्रातृदारेति—भ्रातृदाराभिमर्शनेन=अनुजपत्न्याभिगमनेन, तुल्यदोषयो =समानापराधयो, दण्डित =दण्ड प्राप्त ।

---

राम—अगम्यागमन के कारण (तुमको दण्डनीय मानता हूँ ।)

वाली—अगम्यागमन के कारण ? यह तो हमारा धर्म है ।

राम—अरे ! क्या यह उचित है ।

धर्म और अर्थ को जानते हुए आप वानरेन्द्र के द्वारा अपने को (साधारण) मृग कहकर भाई की पत्नी को दूषित किया जाना (क्या उचित है ।)

बाली—भाई की पत्नी को दूषित करने के कारण समान अपराध वाले (मुझ तथा सुग्रीव) दोनो मे मैं ही दण्डित हुआ, सुग्रीव क्यो नही (दण्डित) भ ।

वाली—सुग्रीवेणाभिमृष्टाऽभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम।
तस्य दाराभिमर्शेन कथ दण्ड्योऽस्मि राघव ! ॥ २१ ॥

राम.—न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम्।

वाली—हन्त अनुत्तरं वयम्। भवता दण्डितत्वाद् विगतपापोऽहं ननु।

राम.—एवमस्तु।

सुग्रीव.—हा धिक्।

राम.—दण्डितस्त्वं हि दण्ड्यत्वाद्, अदण्ड्योऽनेव दण्डयते।

---

अन्वय.—सुग्रीवेण गुरो मम धर्मपत्नी अभिमृष्टा अभूत्, तस्य दाराभिमर्शेन हे राघव ! (अहं) कथं दण्ड्यः अस्मि।

सुग्रीवेण—सुग्रीवेण=एतन्नामकेन मत्सानुजेन, गुरो=अग्रस्य मम, धर्मपत्नी=भार्या तारा, अभिमृष्टा=अभिगता, अभूत्। तस्य=सुग्रीवस्य, दाराभिमर्शेन=पत्न्याभिगमनेन, राघव=हे राम !, कथ=कस्मात्कारणात्, दण्ड्य=दण्डनीय, अस्मि। अनुष्टुप्छन्द।

हन्तेति—अनुत्तरा=उत्तररहिता। विगतपाप=पापरहित।

---

राम—दण्डनीय होने कारण तुम (बाली) ही दण्डित हुए। दण्डनीय न होने के कारण (सुग्रीव) दण्डित नहीं हुआ।

वाली—हे राम ! सुग्रीव के द्वारा मुझ बड़े (भाई) की पत्नी दूषित की गयी। (तब) उसकी पत्नी को दूषित करने के कारण मैं ही क्यों दण्डनीय हूँ ?

राम—छोटे (भाई) के मरने में बड़े (भाई) की पत्नी इस प्रकार (दूषित) नहीं होती है।

वाली—ओह ! हम निरुत्तर हो गये। आपके द्वारा दण्डित किया गया मैं निष्पाप हो गया।

राम—ऐसा ही है।

सुग्रीव—ओह ! धिक्कार है।

करिकरसदृशौ गजेन्द्रगामि-
स्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च।
अवनितलगतौ समीक्ष्य बाहू
हरिवर ! हा पततीव मेऽद्य चित्तम् ॥ २२ ॥

वाली—सुग्रीव ! अलमलं विषादेन। ईदृशो लोकधर्मः।

(नेपथ्ये)

हा हा महाराओ।

वाली—सुग्रीव ! सवार्यतां सवार्यतां स्त्रीजनः। एवंगतं नार्हति मां द्रष्टुम्।

---

अन्वय —हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर ! तव करिकरसदृशौ रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ अवनितलगतौ च बाहू समीक्ष्य हा ! मे चित्तम् अद्य पतति इव।

करिकरेति—हे गजेन्द्रगामिन्=हे गजेन्द्रगामिन् ! हरिवर=कपिराज ! करिकरसदृशौ=करिणः हस्तिनः करः शुण्डः तेन सदृशौ समानौ रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ=रिपोः शत्रोः शस्त्रेण आयुधेन परिक्षते भग्ने अङ्गदे केयूरे ययोः तौ, अवनितलगतौ=अवन्याः पृथिव्याः तलम् अधः गतौ प्राप्तौ, तव=भवतः, बाहू=भुजौ, समीक्ष्य=विलोक्य, हा=खेदे, मे=मम सुग्रीवस्य, चित्तं=मनः, पतति=स्रंसते। उत्प्रेक्षालङ्कारः। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

सुग्रीवेति—सवार्यतां=निरुद्ध्यताम्, स्त्रीजनः=नारीलोकः एवं गतम्=एतां दशां प्राप्तम् द्रष्टुं=विलोकयितुम् न अर्हति=समर्थः नास्ति।

---

हे गजराज के समान गति वाले कपिराज (वाली) ! हाथी की सूंड के समान, शत्रु के शस्त्र से टूट गये बाजूबन्दों वाली तथा भूतल पर पडी हुई भुजाओं को देखकर मेरा मन आज मानो बैठा जा रहा है।

वाली—हे सुग्रीव ! विषाद करना व्यर्थ है। यह तो संसार का नियम है।

[नेपथ्य में]

हाय ! हाय ! महाराज !

वाली—हे सुग्रीव ! स्त्रियों को रोको, रोको। ऐसी अवस्था में पडे हुए (मे) देख नही सकती।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः। हनूमन्! एवं क्रियताम्।
हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमार। (निष्क्रान्तः)
(ततः प्रविशत्यङ्गदो हनूमांश्च)
हनूमान्—अङ्गद! इत इतः।
अङ्गदः—

श्रुत्वा कालवशं यान्तं हरिमृक्षगणेश्वरम्।
समापतितसन्तापः प्रयामि शिथिलक्रमः॥ २३॥

हनूमन्! क्व महाराजः।
हनूमान्—एष महाराजः,

---

अन्वयः—ऋक्षगणेश्वरं हरिं कालवशं यान्तं श्रुत्वा समापतितसन्तापः (अहं) शिथिलक्रमः प्रयामि।

श्रुत्वेति—ऋक्षगणेश्वरम्=ऋक्षाणां भल्लूकानां गणस्य समूहस्य ईश्वरं स्वामिनम्, हरिं=वानरं वालीमित्यर्थः, कालवशं=कालस्य मृत्योः वशम् अधीनताम्, यान्तं=गच्छन्तम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, समापतितसन्तापः=समापतितः समागतः सन्तापः शोकः यस्मिन् सः, शिथिलक्रमः=शिथिलः मन्दः क्रमः पादप्रक्षेपः यस्य सः, प्रयामि=गच्छामि। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।

---

सुग्रीव—महाराज जो आज्ञा देते हैं। हे हनुमान्! ऐसा करो।

हनुमान्—कुमार जो आज्ञा देते है। (निकल जाता है)।

(तत्पश्चात् अङ्गद और हनुमान् प्रवेश करते हैं)

हनुमान्—हे अङ्गद! इधर से, इधर से (आइए)।

अङ्गद—वानरगण और ऋक्षगण के स्वामी (वाली) का यमपुर में जाना (मृत्यु को प्राप्त होना) सुनकर खिन्न (और) शिथिल अङ्गो वाला मैं चल रहा हूँ।

हे हनुमान्! महाराज कहाँ है?

हनुमान्—ये महाराज है—

क्षन्तुमर्हसि ।

रामः—बाढम् ।

बाली—सुग्रीव ! प्रतिगृह्यतामस्मत्कुलधन हेममाला ।

सुग्रीवः—अनुगृहीतोऽस्मि । (प्रतिगृह्णाति)

बाली—हनूमन् ! आपस्तावन् ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आप ।

बाली—(आचम्य) परित्यजन्तीव मा प्राणा. । इमा गङ्गाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगता. । एप सहस्रहसप्रयुक्तो वीरवाही विमान. कालेन प्रेषितो मा नेतुमागत. । अयमयमागच्छामि । ( स्वर्याति ) ।

---

=वानराणा कपीना चापल चाञ्चल्यम्, क्षन्तु =मर्पयितुम्, अर्हसि= योग्योऽसि । बाढम्=स्वीकारे । प्रतिगृह्यता =स्वीक्रियताम्, अस्मत्कुलधन =अस्माक कुलस्य वंशस्य धनं सम्पत्ति. , हेममाला=हेम्न सुवर्णस्य माला हार । अनुगृहीत =उपकृत । आप =अलम् ।

परित्यजेति—मा =वालिम्, प्राणा =प्राणवायव , परित्यजतीव =

---

सुग्रीव) की बानर चपलता को क्षमा कीजिएगा ।

राम—ठीक है ।

वाली—हे सुग्रीव ! हमारे कुल की सम्पत्ति (इस) सुवर्ण की माला को ग्रहण करो ।

सुग्रीव—मैं अनुगृहीत हूँ ।

वाली—हे हनुमान् ! पानी लाओ ।

हनुमान्—जो महाराज की आज्ञा ! (निकल कर प्रवेश करके) यह पानी है ।

वाली—(आचमन करके) मेरे प्राण मुझे छोड़ रहे हैं । ये गङ्गा इत्यादि नदियाँ, उर्वशी इत्यादि अप्सराएँ मुझे लेने आ रही हैं । यह हजार हंसों वाला वीरवाही (नामक) यमराज द्वारा भेजा गया विमान मुझे लेने के लिए आ गया है । अच्छा, यह मैं आ रहा हूँ ।(स्वर्ग चला गया)

सर्व—हा हा महाराज ! ।
राम—हन्त स्वर्गं गतो वाली । सुग्रीव ! क्रियतामस्य सस्कार ।
सुग्रीव—यदाज्ञापयति देव. ।
राम:—लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिषेक: कल्प्यताम् !
लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्य. !

(निष्क्रान्ता सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः

—०—

---

उज्ज्वलन्ति इव । अभिगता=प्रत्यायाता । महस्त्रहसप्रयुक्त =महत्त्वमस्पर्श इमं पक्षिविशेषं प्रयुक्त आकृष्ट, विमान =यानम्, कान्त=गमन, प्रेषित = प्रेरित । आगच्छामि=आयामि ।

सस्कार =अन्त्येष्टि । अभिषेक =राज्याभिषेक , कल्प्यता= क्रियताम् ।

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

—०—

---

सभी—हाय, हाय महाराज ।
राम—हाय, वाली स्वर्ग चला गया । हे सुग्रीव इसका सत्कार करो ।
सुग्रीव—जो महाराज की आज्ञा ।
राम—हे लक्ष्मण ! सुग्रीव के अभिषेक की तैयारी करो ।
लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा ।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

—०—

अहो व्यर्थो मे परिश्रम । भवतु, एतद्धर्म्याग्रमारुह्यावलोकयामि। (तथा कृत्वा) अये अय प्रमदवनराशि । इम प्रविश्य परीक्षिष्ये। (प्रविश्यावलोक्य) अहो प्रमदवनसमृद्धि इह हि,

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैर्विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा ।

---

भवनप्रासादहर्म्येषु पानागारनिशान्तदेशविवरेषु च अह बहुश आक्रान्तवान् अस्मि । भो सर्व विचितम् च, नृपते पत्नी न एव मया दृश्यते ।

गर्भागारेति—गर्भागारविनिष्कुटेषु= गर्भस्य अन्तरस्य, आगाराणि गृहाणि च विनिष्कुटेषु उद्यानेषु, शालाविमानादिषु=शाला गृहाणि विमानानि आदि येषा तेषु, स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रासादहर्म्येषु=स्नानागाराणि स्नानगृहाणि निशाचरेन्द्रस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवनानि गृहाणि प्रसादा आट्टालिकानि हर्म्याणि राजगृहाणि च तेषु, पानागारनिशान्तदेशविविरेषु च=पानागाराणि मधुशाला निशान्ता नि शब्दा देशविवराणि सुरङ्गानि तेषु च, अह=हनूमान्, बहुश =बहुप्रकारेण, आक्रान्तवान् अस्मि= समन्तात् भ्रमन् अस्मि । भो=अरे ! सर्व=सम्पूर्णम्, स्थानमितिशेष , विचित =अन्विष्टम्, नृपते = राज्ञ रामस्य, पत्नी=दारा सीता, न एव=नहि एव, मया=हनुमता, दृश्यते=विलोक्यते । शार्दुलविक्रीडित छन्द ।

अहो इति—व्यर्थ =प्रयोजनरहित , परिश्रम =श्रम , एतत् पुरोवर्तमान, हर्म्याग्रम्=राजभवनशिखरम् आरुह्य=ऊर्ध्वं गत्वा, अवलोकयामि=विलो कयामि । प्रमदवनराशि =विलासोद्यानपक्ति । परीक्षिष्ये=निरीक्षण करिष्ये , प्रमदवनसमृद्धि =विलासोद्यानसम्पन्नता ।

अन्वय —कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलै विकृतमहाद्रुमपक्तिचित्रदेशा रुचिर

---

ओह ! मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया । अच्छा, इस महल पर चढकर देखता हूँ । (वैसा करके) अरे ! यह तो प्रमदवन है । इसमे प्रवेश करके खोजता हूँ । (प्रवेश करके देखकर) अहा ! प्रमदवन की रमणीयता (कैसी) अद्भुत है) । क्योकि यहाँ—

स्वर्ण खचित मूँगे ( प्रवाल ) तथा इन्द्रनील से बना हुआ, विचित्र ।र बडे बडे वृक्षो की पक्तियो से रङ्ग विरङ्गा स्थान यह चमकीले पर्वतो

रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥५॥

अपि च—

> चित्रप्रस्नुतहेमधातुरुचिराः शैलाश्च दृष्टा मया
> नानावारिचराण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीर्घिका ।
> नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुता देशाश्च दृष्टा मया
> सर्वं दृष्टमिदं हि रावणगृहे सीता न दृष्टा मया ॥ ६॥

---

तरनगा शुभ्रा नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा विभाति ।

कनकरचितेति—कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलैः=कनकरचिता सुवर्णरचिता विद्रुमा प्रवालाः इन्द्रनीलाः च नीलकान्तमणयः च तैः, विवृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा=विवृता परिवर्तनं प्राप्ता ये महान्तः विशालाः द्रुमाः वृक्षाः तेषां पङ्क्तिभिः श्रेणिभिः चित्राः कर्बुराः देशाः स्थानानि यस्याः सा, रुचिरतरनगा=रुचिरतराः देदीप्यमानाः नगाः पर्वताः यस्याः सा, शुभ्रा=उज्ज्वला, नभसि=आकाशे, सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा=इन्द्रविहारभूमिसदृशा, विभाति=शोभते ।

अन्वयः—मया चित्रप्रस्नुतहेमधातुरुचिराः शैलाः च दृष्टाः, मया नानावारिचराण्डजैः विरचिताः दीर्घिकाः, मया नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुताः देशाः च दृष्टाः । इदं सर्वं हि दृष्टं (किन्तु) मया रावणगृहे सीता न दृष्टा ।

चित्रप्रस्नुतेति—मया=हनुमता, चित्रप्रस्नुतहेमधातुरुचिराः=चित्राः विचित्राः प्रस्नुताः प्रस्यन्दिताः ये हेम्नः सुवर्णस्य धातुः खनिजः तेन रुचिराः

---

से युक्त तथा उज्ज्वल बनी हुई ऐसी शोभायमान है जैसे आकाश में इन्द्र की विहार भूमि (जगमगाती है) ।

और भी—

मेरे द्वारा नाना प्रकार के तथा रिसे हुए सुवर्ण धातु से चमकीले पर्वत देख लिए गए । अनेक प्रकार के जलचर-जीवों और पक्षियों से शोभायमान बावलियाँ देख ली गयीं । मेरे द्वारा सर्वदा पुष्पों और फलों से सम्पन्न वृक्षों वाले स्थान भी देख लिये गये । यह सब कुछ (मेरे द्वारा) देख लिया गया किन्तु रावण के घर में मेरे द्वारा सीता नहीं देखी गयी ।

किमिदानीं करिष्यते। भवतु, दृष्टम्। एनमशोकपादपमारुह्य कोटरान्तरितो भूत्वा दृढं वृत्तान्तं ज्ञास्यामि। (तथा करोति।)

(ततः प्रविशति रावणः सपरिवारः।)

रावणः—

दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणं
युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम्।
सीता मामविवेकिनी न रमते सक्ता च मुग्धेक्षणा
क्षुद्रे क्षत्रियतापसे ध्रुवमहो दैवस्य विघ्नक्रिया ॥१०॥

मणिविरचितेति—मणिविरचितमौलिः = मणिविरचितः रत्नरचितः मौलिः मुकुटं यस्य सः, चारुताम्रायताक्षी = चारूणि मनोहराणि च ताम्राणि रक्तवर्णानि च आयतानि विशालानि च अक्षीणि नयनानि यस्य सः, मदललितगामी = मदेन गर्वेण ललितं सविलासं यथा स्यात्तथा गच्छतीति गामी, मत्तमातङ्गलीलः = मत्तः मदोत्कटः यः मातङ्गः गजः तद्वत् लीला क्रीडा यस्य सः, युवतिजननिकाये = स्त्रीवर्गसमूहे, चेष्टमानः = चेष्टां कुर्वन्, असौ = पुरोवर्तमानः, राक्षसेशः = राक्षसेन्द्रः रावणः, हरिणीनां = मृगीणाम्, अन्तरे = मध्ये, हरिः इव = सिंह इव, भाति = शोभते। उपमालङ्कारः। मालिनीच्छन्दः।

किमिति—अशोकपादपं = अशोकवृक्षम्, आरुह्य = आरोहं कृत्वा, कोटरान्तरितः = कोटरेण क्रोडेन अन्तरितः व्यवहितः, दृढं = निश्चयपूर्वकम् वृत्तान्तं = समाचारम्, ज्ञास्यामि = उपलप्स्ये।

अन्वयः—अविवेकिनी मुग्धा सीता दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं

---

अब क्या करूँ। अच्छा! (उपाय) समझ गया। इस अशोक के पेड़ पर चढ़ कर कोटर में छिप कर सभी समाचार को मालूम करूँगा।

( तत्पश्चात् सपरिवार रावण प्रवेश करता है )

रावण—दिव्य अस्त्रों द्वारा देवता तथा राक्षसों की सेना को खदेड़ देने वाले तथा युद्ध में क्रोधित ऐरावत के दन्तरूपी वज्र से क्षत हुए वक्षःस्थल वाले मुझ (रावण) पर भोली भाली नादान सीता अनुरक्त होकर रमण नहीं करती, क्षुद्र क्षत्रिय—तपस्वी पर अनुराग करती है, निश्चय ही (मेरे) दुर्भाग्य का यह विघ्न-कार्य है।

(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष एष चन्द्रमा,
रजतरचितदर्पणप्रकाशः करनिकरैर्हृदयं ममाभिपीड्य ।
उदयति गगने विजृम्भमाणः कुमुदवनप्रियबान्धवः शशाङ्कः ॥११॥

---

युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशाव्यालीढवक्षःस्थलं मां न रमते, क्षुद्रे क्षत्रियतापसे च मक्ता ।

दिव्यास्त्रैः इति—अविवेकिनी=मूढा, मुग्धा=मनोहरा, सीता=जानकी, दिव्यास्त्रैः=दिव्यायुधैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावण=सुरा देवा दैत्याश्च दानवाः राक्षसाश्च तेषां चमूना सेनानां विद्रावणम् अपकर्त्तारम् युद्धे=रणे, क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम्=क्रुद्धाः कुपिता ये सुराणां देवानां इभाः गजाः तेषां दन्ताः दशनाः कुलिशा वज्रा इव तैः व्यालीढम् आस्वादितम् वक्षःस्थलम् उरःस्थलं यस्य तम्, मां रावणम्, न रमते=न रमयति, क्षुद्रे=तुच्छे, क्षत्रियतापसे=क्षत्रियश्चासौ तापसः तपस्वी तस्मिन्, च, मक्ता=अनुरक्ता, अस्तीति शेषः, अहो=आश्चर्यम्, ध्रुवम्=निश्चयेन, दैवस्य=भाग्यस्य, विघ्नक्रिया=बाधनम् । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

अन्वयः—रजतरचितदर्पणप्रकाशः कुमुदवनप्रियबान्धवः शशाङ्कः गगने विजृम्भमाणः करनिकरैः मम हृदयम् अभिपीड्य उदयति ।

रजतेति—रजतरचितदर्पणप्रकाशः=रजतेन रौप्येन रचितः निर्मितः यः दर्पणः मुकुरः तस्य इव प्रकाशः आलोकः यस्य सः, कुमुदवनप्रियबान्धवः=कुमुदानां कैरवाणां यत् वनं समूहः तस्य प्रियबान्धवः स्नेहीबान्धवः शशाङ्कः चन्द्रः, गगने=आकाशे, विजृम्भमाणः=प्रसरन्, करनिकरैः=रश्मिसमूहैः, मम=रावणस्य, हृदयम्=अन्तःस्थलम्, अभिपीड्य=सन्ताप्य,उदयति=उदेति । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

---

(ऊपर देखकर) यह, यह चन्द्रमा—

चाँदी से निर्मित दर्पण के प्रकाश के समान प्रकाश वाला, अपने सामर्थ्य को प्रदर्शित करता हुआ, कुमुद-समूह का प्रियबन्धु, (यह) चन्द्रमा अपने किरणों से मुझ (रावण) के हृदय को (काम से) पीडित करता हुआ आकाश में उदित हो रहा है ।

**सीता**—हस्सी खु रावणओ, जो वअणगदसिद्धिं वि ण जाणादि।
[हास्य खलु रावणक, यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति।]

**हनूमान्**—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेप।

तौ च बाहू न विज्ञाय तच्चापि सुमहद्धनु।
सायकं चापि रामस्य गतायुरिति भाषते॥ १५॥

न शक्नोमि रोषं धारयितुम्। भवतु अहमेवार्यरामस्य कार्यं साधयामि। अथवा,

---

हास्य इति—रावणक=कुत्सित रावण, खलु=निश्चयेन, हास्य=हसनीय, वचनगतसिद्धि=वचने कथने गता स्थिता सिद्धि निष्पत्ति ताम्, न जानाति=न वेत्ति।

अहो इति—अवलेप=अभिमान।

अन्वय—रामस्य तौ च बाहू तत् च अपि सुमहत् धनु सायकं च अपि न विज्ञाय गतायु इति भाषते।

तौ चेति—रामस्य=राघवस्य, तौ=प्रसिद्धौ बाहू=भुजौ, तत्=प्रसिद्धम्, च अपि, सुमहत्=सुविशालम् धनु=चापम् सायक=बाणम्, च अपि, न विज्ञाय=न ज्ञात्वा, इति=एवं प्रकारेण भाषते=कथयति। अनुष्टुपच्छन्द।

न शक्नोमीति—शक्नोमि=समर्थोऽस्मि, रोष=क्रोधम्, धारयितु=धारण कर्तुम्। कार्य=रावणवधरूप अनुष्ठानम्, साधयामि=करोमि।

---

सीता—निश्चित ही नीच रावण उपहास (हँसी) के योग्य है जो बोलने का ढंग भी नहीं जानता है।

हनुमान्—(क्रोध के साथ) ओह! (यह) रावण का अभिमान है!

(यह रावण) राम के उन हाथों को (उनके) उस विशाल धनुष को तथा बाण को बिना जाने ही (राम का) समाप्त आयु वाला कह रहा है।

मैं (अपने) क्रोध को धारण करने (रोकने) में समर्थ नहीं हूँ। अच्छा, राम का कार्य कर दे रहा हूँ। अथवा—

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति ।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

रावणः—
वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभां विमुच्य वेणीम् ।
बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व देवि ! ॥१७॥

अन्वयः—यदि अहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिः भविष्यति, यदि रक्षः मां प्रहरेद्, महत् कार्यं विपद्यते ।

यद्यहमिति—यदि=चेत्, अहं=हनुमान्, रावणं=दशाननम्, हन्मि=मारयामि, कार्यसिद्धिः=कार्यस्य रावणवधरूपस्यानुष्ठानस्य सिद्धिः निष्पत्तिः, भविष्यति, यदि=चेत्, रक्षः=राक्षसः रावणः, मां, प्रहरेत्,=मारयेद्, महत्=विपुलम्, कार्यं=रामस्य सीताप्रत्यानयनरूपमनुष्ठानम्, विपद्यते=निष्फलीभवति । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—हे वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे ! कुवलयदामनिभां वेणीं विमुच्य हे देवि ! बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं दशशिरसं मनसा भजस्व ।

वरतन्विति—वरतनु=हे सुन्दरि, तनुगात्रि=हे कृशाङ्गि ! कान्तनेत्रे=हे सुनयने ! देवि=हे सीते ! कुवलयदामनिभां=कुवलयानां नीलकमलानां यद् दाम माल्यं तन्निभां=तत्सदृशाम् वेणीं=कबरीम्, विमुच्य=विहाय, बहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं=बहवः अनेकाः विधाः प्रकाराः येषां तानि यानि मणिरत्नानि बहुमूल्याः पाषाणविशेषाः तैः भूषितानि सुशोभितानि अङ्गानि गात्राणि यस्य तम्, दशशिरसं=दशाननं मां रावणम्, मनसा=चित्तेन, भजस्व=स्वीकुरु । उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्राछन्दः ।

यदि मैं रावण को मार दूँगा (तो सीता प्राप्तिरूपी) कार्य सिद्ध (पूरा) हो जाएगा । यदि राक्षस (रावण) मुझे मार देगा (तो सीता प्राप्ति रूपी) कार्य नष्ट हो जाएगा ।

रावण—हे सुन्दरी ! हे कृशाङ्गी ! हे सुनयने देवि (सीते) ! नीलकमल की माला के समान (इस) वेणी को छोड़कर अनेक प्रकार के मणियों तथा रत्नों से भूषित शरीर वाले (इस) दशानन (रावण) को मन से स्वीकार करो ।

**सीता**—ह विपरीओ खु धम्मो, ज जीवदि खु अअ पापरक्खसो ।
[ह, विपरीत खलु धर्म, यद् जीवति खल्वय पापराक्षस ।]

**रावणः**—ननु देवि !

**सीता**—सत्तो सि । [शप्तोऽसि]

**रावण**—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेज !

देवा सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।
सोऽह मोह गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरै ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

---

हमिति—ह=खेदे ! विपरीत =विरुद्ध, पापराक्षस =पाप पापयुक्त चासौ राक्षस निशिचर, रावण इत्यर्थ ।

अन्वय —सेन्द्रादय देवा दानवा च मया रणे भग्ना । स अहम् अद्य सीताया त्रिभि अक्षरै मोह गत अस्मि ।

देवा इति—सेन्द्रादय =इन्द्रादिभि सह, देवा =सुरा, दानवा =दैत्याश्च, मया=रावणेन, रणे=युद्धे, भग्ना =पराजिता, स =प्रसिद्ध, अह=रावण, अद्य=अस्मिन्दिवसे, सीताया =जानक्या, त्रिभि =त्रिसङ्ख्यकै, अक्षरै =वर्णै, 'शप्तोसि' इत्यात्मकै, मोह=मुग्धताम्, गत =प्राप्त, अस्मि । अनुष्टुप्छन्द ।

---

सीता—ओह ! धर्म भी बडा उल्टा है, जो पापी राक्षस (अभी) जी रहा है ।

रावण—हे देवि !

सीता—(मेरे द्वारा) शाप दे दिये जाओगे ।

रावण—ओह ! पतिव्रता का तेज (आश्चर्यजनक) है ।

सम्पूर्ण इन्द्र इत्यादि देवता तथा राक्षस मेरे द्वारा युद्ध मे पराजित कर दिये गये, वही मैं आज सीता के (शप्तोऽसि—इन) तीन अक्षरो के द्वारा मुग्ध हो रहा हूँ ।

[नेपथ्य मे]

जयतु देव । जयतु लङ्केश्वर । जयतु स्वामी । जयतु महाराज। दश नाडिका पूर्णा । अतिक्रामति स्नानवेला । इत इतो महाराज ।

(निष्क्रान्ता सपरिवारो रावण)

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावण, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रिय । अय कालो देवीमुपसर्पितुम् । (कोटरादवरुह्य) जयत्वविधवा ।

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना ।
त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

---

जयत्विति—लङ्केश्वर = लङ्केश रावण, नाडिका = घटिका, पूर्णा = समाप्ता, स्नानवेला = स्नानसमय, अतिक्रामति = अत्येति ।

हन्तेति—हन्त = खेदे । निर्गत = निर्यात, सुप्ता = शयिता, राक्षसस्त्रिय = राक्षसानामसुराणा स्त्रिय नार्य, अयम् = एव, काल = समय, देवी = सीताम्, उपसर्पितु = उपयातुम् अविधवा = सौभाग्यवती ।

अन्वय —विदितात्मना त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा नरेन्द्रेण रामेण अह प्रेषित ।

प्रेषित इति—विदितात्मना = ज्ञातधृति, त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा = त्वयि सीताया गत स्थित य स्नेह प्रणय तस्माद् य सन्ताप, दु ख तेन विक्लवीकृत विह्वलीकृत चेत मन यस्य तेन, नरेन्द्रेण = राज्ञा रामेण = राघवेण प्रेषित अस्मि = प्रहित अस्मि । अनुष्टुप्छन्द ।

---

देव विजयी होवे, लङ्केश्वर विजयी होवे, स्वामी विजयी होवे, महाराज विजयी होवे । दस बज गया । स्नान का समय बीत रहा है । महाराज इधर, इधर से (चलिए) ।

( सपरिवार रावण निकल जाता है )

हनुमान्—अरे ! रावण निकल गया और राक्षसों की स्त्रियाँ सो गयी । देवी (सीता) के समीप चलने का यह (उचित) समय है । (कोटर से उतर कर) सुहागिनी (आप) की जय हो ।

आप (सीता) में स्नेह के सन्ताप से व्याकुल हृदय वाले आत्मज्ञ राजा राम के द्वारा मैं भेजा गया हूँ ।

सीता—(आत्मगतम्) को णु खु अअं, पापरक्खो अय्यउत्तकेरओत्ति अत्ताणं ववदिसिअ वाणररूवेण मं वञ्चिदुकामो भवे। भोदु, तुह्णिआ भविस्सं। [को नु खल्वयं, पापराक्षस आर्यपुत्रसम्बन्धीत्यात्मानं व्यपदिश्य वानररूपेण मां वञ्चयितुकामो भवेत्। भवतु, तूष्णीका भविष्यामि।]

हनूमान्—कथं न प्रत्येति भवती। अलमन्यशङ्कया। श्रोतुमर्हति भवती।

इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वहम्।
प्रेषितस्त्वद्विचित्यर्थं हनुमान् नाम वानरः॥ २०॥

---

कोन्विति—पापराक्षस = पाप पापयुक्त राक्षस निशाचर, आर्यपुत्रसम्बन्धी = आर्यपुत्रस्य प्राणनाथस्य सम्बन्धी सम्बन्धवान्, आत्मानं = स्वम् व्यपदिश्य = कथयित्वा, वञ्चयितुकाम = वञ्चयितुं प्रतारयितुं कामः अभिलाषः यस्य स। तूष्णीका = शान्ता।

कथमिति—प्रत्येति = विश्वसिति। अन्यशङ्कया = अन्यथा चिन्तया।

अन्वयः—इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वद्विचित्यर्थम् अहं हनुमान् नाम वानरः प्रेषितः।

इक्ष्वाकुकुलेति—इक्ष्वाकुलदीपेन = रघुवंशश्रेष्ठेन रामेण, सन्धाय = सन्धिं कृत्वा, हरिणा = वानरेण सुग्रीवेण, त्वद्विचित्यर्थं = तव ते सीतायाः विचितिः अन्वेषणं तस्मै, अहं = हनुमान्, हनुमान् = पवनतनयः, नाम, वानरः = कपिः, प्रेषितः = प्रहितः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

---

सीता—(अपने मन में) यह कौन है? यह कोई पापी राक्षस (अपने को) आर्यपुत्र (राम) का सम्बन्धी बतला कर वानर के रूप से मुझे छलना चाहता है। ठीक है, चुपचाप रहूँगी।

हनुमान्—आप विश्वास क्यों नहीं करती हैं। अन्यथा सोचना व्यर्थ है। आप सुनिए—

वानरों से सन्धि करके आप की खोज करने के लिए इक्ष्वाकुवंश के दीपक (राम) के द्वारा भेजा गया मैं हनुमान् नामक नामक वानर हूँ।

सीता—(आत्मगतम्) जो वा को वा भोदु। अय्यउत्तणामसङ्कित्तणेण अहं एदेण अभिभासिस्सं। (प्रकाशम्) भद्द! वुत्तन्तो अय्यउत्तस्स?
(यो वा को वा भवतु। आर्यपुत्र नामसङ्कीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिष्ये। भद्र! को वृत्तान्त आर्यपुत्रस्य?)

हनूमान्—भवति! श्रूयताम्,

अनशनपरितप्तं पाण्डु स क्षामवक्त्रं
तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम्।
वहति विगतधैर्यं ह्रीयमानं शरीरं
मनसिजशरदग्धं वाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥ २१ ॥

---

यो वेति—आर्यपुत्रनामसङ्कीर्तनेन=आर्यपुत्रस्य प्राणनाथस्य नाम्नः नामधेयस्य सङ्कीर्तनेन उच्चारणेन, अहं=सीता, एतेन=पुरोवर्तमानेन हनूमता, अभिभाषिष्ये=आलपिष्यामि। वृत्तान्तः=समाचारः।

भवतीति—श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्।

अन्वयः—स अनशनपरितप्तं पाण्डु क्षामवक्त्रं तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलं मनसिजशरदग्धं विगतधैर्यं वाष्पपर्याकुलाक्षं ह्रीयमानं शरीरं वहति।

अनशनेति—सः=रामः, अनशनपरितप्तम्=अनशनेन अनाहारेण परितप्तं पीडितम्, पाण्डु=पीतवर्णम्, क्षामवक्त्रम्=शुष्कमुखम्, तव=सीतायाः, वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम्=वरगुणाः श्रेष्ठगुणाः तेषां चिन्तया चिन्तनेन, वीतलावण्यलीलं नष्टसौन्दर्यविलासम्, मनसिजशरदग्धम्=कामबाणपीडितम्, विगतधैर्यम्=धैर्यरहितम्, वाष्पपर्याकुलाक्षम्=

---

सीता—(अपने मन में) जो कोई भी हो। आर्यपुत्र का नाम लेने के कारण इससे बातें करूँगी। (प्रकट रूप में) हे भद्र! आर्यपुत्र का क्या समाचार है।

हनुमान्—हे देवि! सुनिए—

वे राम अनाहार के कारण सन्तप्त, पीत वर्ण वाले, सूखे हुए मुख वाले, आप के श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करने के कारण सौन्दर्य और विलास से रहित, कामदेव के बाणों से जले हुए धैर्य-रहित, अश्रु पूर्ण आँखों वाले.. दुर्बल शरीर को धारण कर रहे हैं।

**सीता**—(आत्मगतम्) हद्धि वीलिआ खु म्हि मन्दभाआ एव सो- अन्त अय्यउत्त सुणिअ । अय्यउत्तस्स विरहपरिस्सम वि मे सफलो स- वुत्तो त्ति पेक्खामि, जदि खु अअ वाणरो सच्च मन्तेदि । अय्यउत्तस्स इमस्सि जणे अणु क्कोस परिस्सम च सुणिअ सुहस्स दुक्खस्स अ अन्तरे डोलाअदि विअ मे हिअअ । (प्रकाशम्) भद्द ! कह तुम्मेहि अय्यउत्तस्स सङ्गमो जादो । [हा धिग्व्रीडिता खल्वस्मि मन्दभागा एव शोचन्तमार्यपुत्र श्रुत्वा । आर्यपुत्रस्य विरहपरिश्रमोऽपि मे सफल सवृत्त इति पश्यामि, यदि खल्वय वानर सत्य मन्त्रयते । आर्यपुत्रस्यास्मिन् जनेऽनुक्रोश परिश्रम च श्रुत्वा सुखस्य दु खस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम् । भद्र ! कथ युष्माभिरार्यपुत्रस्य सङ्गमो जात ] ।

**हनूमान्**—भवति ! श्रूयताम्—

---

अश्रुपूर्णनेत्रम्, हीयमान=क्षीयमाणम्, शरीर=देहम् वहति=धारयति । काव्यलिङ्गमलङ्कार । मालिनीच्छन्द ।

हा धिगेति—व्रीडिता=लज्जिता, मन्दभागा=दुर्भाग्यशालिनी, शोचन्त =चिन्तयन्तम् । विरहपरिश्रम=वियोगखेद, सवृत्त =जात, मन्त्रयते= कथयति । अस्मिन् जने=मयि सीतायाम्, अनुक्रोश=अनुकम्पाम्, परिश्रम= श्रमम्, अन्तरे=मध्ये, मे=मम, सीताया , हृदयम्=अन्त करणम्, दोलायत इव=दोला प्रेंखा तद्वत् आचरण करोति इव । सङ्गम =समागम ।

---

सीता—(अपने मन मे) ओह ! धिक्कार है । इस प्रकार (मेरे प्रति) शोक करते हुए आर्यपुत्र (के समाचार) को सुनकर मैं अभागिनी लज्जित हो रही हूँ । यदि यह वानर सत्य कह रहा है तो मेरा आर्यपुत्र विषयक विरह- कष्ट भी सफल हो गया, ऐसा मैं देखती (समझती) हूँ । आर्यपुत्र का इस व्यक्ति (मुझ सीता) के प्रति दया और सन्ताप को सुनकर मेरा हृदय मानो झूले के समान सुख और दुख के बीच लटक रहा है । (प्रकट रूप में) हे भद्र ! कैसे आर्यपुत्र की आप से भेंट हुई ।

हनुमान्—आप, सुनिए—

हत्वा वालिनमाहवे कपिवरं त्वत्कारणादग्रजं
सुग्रीवस्य कृतं नरेन्द्रतनये ! राज्यं हरीणां ततः ।
राज्ञा त्वद्विचयाय चापि हरयः सर्वा दिशः प्रेषिता-
स्तेषामस्म्यहमद्य गृध्रवचनात् त्वां देवि ! सम्प्राप्तवान् ॥ २२ ॥

अपि च, ईदृशमिव ।

सीता—अहो अअरुणा क्खु इस्सरा एव्व सोअन्त अय्यउत्तं करअन्तो [अहो अकरुणाः खल्वीश्वरा एव शोचन्तमार्यपुत्रं कुर्वन्तः ।]

---

अन्वय :—हे नरेन्द्रतनये ! त्वत्कारणात् अग्रजं कपिवरं वालिनं हत्वा ततः हरीणां राज्यं सुग्रीवं कृतम् । राज्ञा च त्वद्विचयाय हरयः सर्वाः दिशः प्रेषिताः । हे देवि ! तेषाम् अहम् अद्य गृध्रवचनात् त्वां सम्प्राप्तवान् अस्मि ।

हत्वेति—नरेन्द्रतनये=हे राजपुत्री !, त्वत्कारणात्=तव हेतोः, अग्रजं =ज्येष्ठभ्रातरम् कपिवरं=वानरश्रेष्ठम् वालिनं=एतन्नामकं सुग्रीवाग्रजम्, हत्वा=मारयित्वा, ततः=तत्पश्चात् हरीणां=वानराणाम्, राज्यं=राज्यकार्यम् सुग्रीवस्य=एतन्नामकस्य वानरेन्द्रस्य, कृतं=विहितम् राज्ञा= सुग्रीवेण, त्वद्विचयाय=तव विचयाय अन्वेषणाय, हरयः=वानराः च सर्वाः=निखिलाः, दिशः=दिशाः, प्रेषिताः=प्रहिताः । देवि=हे महिषि ! तेषां=कपीनाम्, अहं=हनुमान्, अद्य=अस्मिन्दिवसे, गृध्रवचनात्= गृध्रस्य सम्पातेः वचनात् कथनात्, त्वां=सीताम्, सम्प्राप्तवान्=आगतवान् अस्मि । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

---

हे राजकुमारी ! आप के कारण युद्ध में सुग्रीव के बड़े भाई कपीन्द्र बाली को मारकर तत्पश्चात् (सुग्रीव) को वानरों का राज्य (दिया)। (तदनन्तर) आप को खोजने के लिए राजा (सुग्रीव) के द्वारा सभी दिशाओं में वानर भेजे गये हैं। हे देवि ! उन्हीं में से मैं आज गृध्र (जटायु) के वचनानुसार आप को पा सका हूँ।

और भी, ऐसा ही है।

सीता—*ओह ! आर्यपुत्र को चिन्तित करता हुआ ईश्वर निश्चित ही निष्ठुर है।*

हनूमान्—भवति मा विषादेन । रामो हि,

प्रगृहीतमहाचापो वृतो वानरसेनया ।
समुद्धर्तुं दशग्रीवं लङ्कामेवाभियास्यति ॥ २३ ॥

सीता—किण्णु सिविणो मए दिट्ठो । भद्द ! अवि सच्चं । ण आणामि । [किन्नु खलु स्वप्नो मया दृष्टः । भद्र ! अपि सत्यम् ? न जानामि ।]

हनूमान्—(स्वगतम्) भो ! कष्टम् ।

एवं गाढं परिज्ञाय भर्तारं भर्तृवत्सला ।
न प्रत्यायति शोकार्ता यथा देहान्तरं गता ॥ २४ ॥

---

अहो इति—अकरुणा=निष्ठुराः, ईश्वरा=देवाः । निष्पादेन=शाकेन ।

अन्वयः—प्रगृहीतमहाचापः वानरसेनया वृतः (रामः) दशग्रीवं समुद्धर्तुं लङ्काम् एव अभियास्यति ।

प्रगृहीतेति—प्रगृहीतमहाचापः=प्रगृहीतः धृतः महान् चापः धनु येन सः, वानरसेनया=कपिबलेन, वृतः=परिवृतः, दशग्रीवं=रावणम्, समुद्धर्तुं=विनाशयितुम्, लङ्कामेव=एतन्नामकनगरीमेव, अभियास्यति=आक्रमिष्यति ।

किन्निवति—मया=सीतया, स्वप्नः=स्वापः, दृष्टः=विलोकितः ।

अन्वयः—भर्तृवत्सला भर्तारम् एवं गाढं परिज्ञाय शोकार्ता न प्रत्यायति यथा देहान्तरं गता ।

---

हनुमान्—आप शोक न करें । क्योंकि राम—

विशाल धनुष को धारण करने वाले, वानर सेना से युक्त (राम) दशानन (रावण) को मारने के लिए लङ्का पर शीघ्र ही आक्रमण करेंगे ।

सीता—क्या मेरे द्वारा स्वप्न देखा जा रहा है । हे भद्र ! क्या सच है । मैं नहीं जानती हूँ ।

हनुमान्—(अपने मन में) ओह ! कष्ट है ।

पतिपरायणा तथा शोकार्ता (सीता) पति के विषय में इस प्रकार भलीभाँति जानकर भी विश्वास नहीं कर रही है, जैसे (यह) लोकान्तर गयी हुई हो ।

(सकामम्) भवति ! अयमिदानीं,

समुदितवरचापबाणपाणिं पतिमिह राजसुते ! तवानयामि ।
भव हि विगतसंशया मयि त्वं नरवरपार्श्वगता विनीतशोका ॥२५॥

सीता—भद्द ! एदं मे अवत्थं सुणिअ अज्जउत्तो जह सोअपरवसो ण होइ, तह मे वुत्तन्तं भणेहि । [भद्र ! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोक-परवशो न भवति, तथा मे वृत्तान्तं भण ।]

---

एवमेति—भर्तृवत्सला=पतिप्रिया, भर्तरि=पतिषु, एवम्=अनेन प्रकारेण, गाढ=पूर्णतया, परिगता=आप्ता, शोकार्ता=दुःख पीडिता, न=नहि, व्यवसायति=निश्चिनोति, यथा=येन प्रकारेण, देहान्तर=द्वितीय शरीरम्, गत.=प्राप्त । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय—हे राजसुते ! समुदितवरचापबाणपाणिं तव पतिम् इह आनयामि, त्वं हि मयि विगतसंशया नरवरपार्श्वगता विनीतशोका भव ।

समुदितेति—राजसुते=हे राजकुमारि ! समुदितवरचापबाणपाणिं=समुदितौ उन्नितौ च वरौ विशालौ च चापबाणौ धनुःशरौ च पाणौ यस्य तम्, तव=सीतायाः, पतिं=भर्तारम्, इह=अत्र, आनयामि=प्रापयामि, त्वं=सीता, हि=निश्चयेन, मयि=ममविषये, विगतसंशया=सन्देहरहिता, नरवरपार्श्वगता=नरवरस्य नरश्रेष्ठस्य रामस्य पार्श्वं सामीप्यं गता प्राप्ता, विनीतशोका=शोकरहिता, भव=स्याः । पुष्पिताग्राछन्द ।

भद्रेति—भद्र=हे कल्याणकारक ! मे=मम, एतां=पुरोवर्तमानाम् अवस्थां=दशाम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, यथा=येन प्रकारेण, शोकपरवशः=दुःख-

---

(प्रकट रूप में) हे पूजनीय ! यह अब—

हे राजकुमारी ! हाथ में विशाल धनुष और बाण धारण करने वाले तुम्हारे पति (राम) को (लङ्का में) लाऊँगा । मेरे प्रति निःशङ्क होइए । आप (शीघ्र ही) नरेन्द्र (राम) की समीपवर्ती तथा शोक-रहित होएंगी ।

सीता—हे भद्र ! मेरी ऐसी अवस्था को सुनकर आर्यपुत्र शोकाभिभूत न हो जाँय, इस प्रकार मेरे समाचार को (उनसे) कहना ।

**हनूमान्**—यदाज्ञापयति ।

**सीता**—गच्छ, कय्यसिद्धी होतु । (गच्छ, कार्यसिद्धिर्भवतु ।)

**हनूमान्**—अनुगृहीतोऽस्मि । (परिक्रम्य) कथमिदानीं ममागमनं रावणाय निवेदयामि । भवतु, दृष्टम् ।

परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं
सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटम् ।
करचरणविमर्दैः काननं चूर्णयित्वा
विगतविषयदर्पं राक्षसेशं करोमि ॥ २६ ॥

---

पराधीन, न भवति, तथा=तेन प्रकारेण, मे=मम, वृत्तान्त=समाचारम्, भण=कथय ।

अनुगृहीत इति—अनुगृहीत=अनुकम्पित, निवेदयामि=सूचयामि, दृष्ट=चिन्तितम् ।

अन्वय—करचरणविमर्दैः परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटं काननं चूर्णयित्वा राक्षसेशं विगतविषयदर्पं करोमि ।

परभृतेति—करचरणविमर्दैः=करचरणैः हस्तपादैः विमर्दैः मर्दनैः, परभृतगणजुष्ट=परभृतानां कोकिलानां गणेन समूहेन जुष्टं सेवितम्, पद्मषण्डाभिराम=पद्मानां कमलानां षण्डेन समूहेन अभिरामं शोभायमानम्, सुरुचिरतरुषण्ड=सुरुचिराः मनोहराः ये तरुषण्डाः वृक्षसमूहाः यस्मिन् तत्,

---

हनुमान्—आप जैसी आज्ञा देती है । (वैसा ही करूँगा) ।

सीता—जाओ । कार्य पूरा होवे ।

हनुमान्—मैं अनुगृहीत हूँ । (घूमकर) अपने आने की सूचना रावण को कैसे दूँ । अच्छा, (उपाय) सूझ गया ।

कोयलो के समूह से सेवित, कमल-कुलो से शोभायामन रमणीय वृक्षो वाले, मेघ के समान श्यामल इस त्रिकूट (नामक) उपवन को (अपने) हाथो तथा पैरो के घातो से मर्दित करके राक्षसेन्द्र (रावण) को गर्व रहित कर रहा हूँ ।

(निष्क्रान्तौ)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥



---

तोयदाभं=बादलसदृशम्, निकुञ्ज=यत्र विनम्रलताः कुञ्जाः, मंजुमञ्जूनि यस्मिन् तत्, काननं=वनम्, दुर्गनिन्दा=मर्दनिन्दा, गतसैर्य = गतसैन्यं रावणम्, विगतविनयदर्पं=विगत नष्टः विनयदर्पः अभिमानः यस्य तम्, करोमि=विदधामि। इत्यलङ्कारः। मालिनीच्छन्दः।

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥



---

( दोनों निकल जाते हैं )

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥



## अथ तृतीयोऽङ्कः

( तत प्रविशति शङ्कुकर्ण )

**शङ्कुकर्णः**—क इह भो ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

( प्रविश्य )

**प्रतिहारी**—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु । [ आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ? ]

**शङ्कुकर्णः**—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लङ्केश्वराय—भग्नप्रायाशोकवनिकेति । कुतः,

यस्या न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।

---

कइहेति—इह=अत्र, काञ्चनतोरणद्वार=काञ्चनस्य सुवर्णस्य, तोरणद्वारंबहिर्द्वारम्, अशून्यं=न शून्य रहितम्, कुरुते=विधत्ते ।

विजयेति—निवेद्यता=सूच्यताम्, लङ्केश्वराय=रावणाय, भग्नप्राया=भग्नः विनिष्ट. प्राय. बाहुल्य यस्या सा, अशोकवानिका=अशोकवनिका ।

अन्वय—यस्या देवस्य महिषी मन्दोदरी प्रियमण्डना अपि सती स्नेहाद् पल्लवान् न लुम्पति, यस्या च पुन करैः अपृष्टवालद्रुमा वीजन्त मलया-

---

( तत्पश्चात् शङ्कुकर्ण प्रवेश करता है )

**शङ्कुकर्ण**—यहाँ काञ्चनतोरण द्वार पर कौन उपस्थित है ?

( प्रवेश करके )

**प्रतीहारी**—हे आर्य ! मै विजया हूँ । क्या किया जाय ।

**शङ्कुकर्ण**—हे विजया ! सूचित करो, महाराजा लङ्केश्वर (रावण) को सूचित करो कि अशोकवाटिका भग्नप्राय हो गयी । क्योकि—

आभूषण-प्रिया (आभूपण को पसन्द करने वाली) भी महाराज (आप) की महारानी मन्दोदरी स्नेह के कारण जिस (अशोकवाटिका) मे पत्ते नहीं

वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमाः
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ १ ॥

प्रतिहारी—अय्य ! णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स जणस्स अदिट्ठपुव्वो अअं सम्भमो । किं एदं । [ आर्य ! नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्य जनस्यादृष्टपूर्वोऽयं संभ्रमः । किमेतद् । ]

शङ्कुकर्णः—भवति ! अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्रं निवेद्यताम्

---

निला अपि भयात् न वीजन्ति, सा इयं शक्ररिपो अशोकवनिका भग्ना इति विज्ञाप्यताम् ।

यस्यामिति—यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, देवस्य = महाराजस्य, महिषी = राज्ञी मन्दोदरी, प्रियमण्डना अपि = आभूषणप्रिया अपि, स्नेहात् = प्रेम्णः, पल्लवान् = किसलयान्, न लुम्पति = न त्रोटयति, यस्याम् = अशोकवाटिकायाम्, वीजन्तः = चलन्तः, मलयानिला अपि = मलयवायव अपि, भयात् = भीतेः, न पुनः वीजन्ति = नैव वहन्ति, या = अशोकवाटिका च, करैः = हस्तैः, अस्पृष्टबालद्रुमा = अस्पृष्टा न परामृष्टा बालद्रुमा स्पृष्टवृक्षा यस्याः सा, सा = पूर्वोक्ता, इयं = पुरो वर्तमाना, शक्ररिपो = रावणस्य, अशोकवनिका = अशोकवाटिका, भग्ना = छिन्ना-भिन्ना जाता । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

आर्येति—नित्यं = प्रतिदिनम्, भर्तृपादमूले = स्वामीचरणतले, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, जनस्य = व्यक्तेः संभ्रमः = वैकल्यम् ।

भवतीति—अतिपाति = आकस्मिकम् ।

---

तोड़ती थी, हवा करने वाले मलयानिल भी (आप के) भय से जिसमें पाया नहीं झलते थे । जिसके वृक्ष के पत्ते नहीं छुए गये हैं, इन्द्रशत्रु (रावण) की वही अशोकवाटिका तोड डाली गयी—ऐसा (रावण से) सूचित कर दो ।

प्रतिहारी—हे आर्य ! प्रतिदिन स्वामी के चरणों में रहने वाले व्यक्ति (आप शङ्कुकर्ण) का यह अपूर्वदृष्ट (इतनी अधिक) घबराहट क्यों है । यह क्या (बात) है ?

शङ्कुकर्ण—हे पूजनीये ! यह कार्य बहुत शीघ्रता वाला है । सूचित करो,

निवेद्यताम् ।

**प्रतिहारी**—अय्य ! इय णिवेदेमि । ( निष्क्रान्ता ) [ आर्य ! इय निवेदयामि ।]

**शङ्कुकर्णः**—(पुरतो विलोक्य) अये, अय महाराजो लङ्केश्वर इत एवाभिवर्तते । य एष,

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोग ।
त्वरितमभिपतत्यसौ सरोषो युगपरिणामसमुद्यतो यथार्क ॥ २ ॥
(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टो रावण )

---

अये इति—अभिवर्तते = आगच्छति ।

अन्वय —अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोग सरोष असौ यथा युगपरिणामसमुद्यत अर्क (तथा) त्वरितम अभिपतति ।

अमलकमलेति—अमलकमलसन्निभोग्रनेत्र = अमल स्वच्छ यत् कमल जलज तत्सन्निभे तत्सदृशे उग्रे भीषणे नेत्रे नयने यस्य स कनकमयोज्ज्वल-दीपिकापुरोग = कनकमया सुवर्णयुक्ता उज्ज्वला शुभ्रा दीपिका उल्का पुरोगा अग्रगामिन्य यस्य स सरोष = सक्रोध , असौ = पुरोवर्तमान रावण इति शेष , यथा = येन प्रकारेण युगपरिणामसमुद्यत = युगपरिणामाय युगान्ताय समुद्यत उद्युक्त , अर्क = सूर्य यथा = इव त्वरित = शीघ्रम् अभिपतति = अभिगच्छति । उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

---

शीघ्र सूचित करो ।

**प्रतिहारी**—हे आर्य ! यह मैं सूचित करती हूँ । (निकल जाती है)

**शङ्कुकर्ण**—(चारो ओर देखकर) अरे ! यह महाराज लङ्केश्वर इधर ही आ रहे हैं । जो यह—

निर्मल कमल के समान तथा भीषण आँखो वाले आगे आगे चलने वाले सुवर्णमय उज्ज्वल दीपक से युक्त ये (महाराज रावण) क्रोध के साथ प्रलयकालिक सूर्य की भाँति शीघ्रता से आ रहे है ।

(तत्पश्चात् यथोक्त अवस्था वाला रावण प्रवेश करता है)

रावणः—

कथ कथ भो नववाक्यवादिञ्छृणोमि शीघ्रं वद केन चाद्य ।
मुमूर्षुणा मुक्तभयेन धृष्टं वनाभिमर्दात् परिधर्षितोऽहम् ॥ ३ ॥

शङ्कुकर्णः—(उपसृत्य) जयतु महाराज । अविदितागमनेन केनचिद् वानरेण समरम्भमभिमृदिताशोकवनिका ।

रावणः—(सावज्ञम्) कथं वानरेणेति । गच्छ, शीघ्रं निगृह्यानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः) ।

---

अन्वय.—भो नववाक्यवादिन् ! शृणोमि, शीघ्रं वद, मुमूर्षुणा मुक्त-भयेन केन च अद्य कथम् अद्य वनाभिमर्दात् अहं धृष्टं परिधर्षितः ।

कथमिति—भो नववाक्यवादिन् = हे नूतनवाक्यवक्ता शृणोमि = श्रवणं करोमि, शीघ्रं = त्वरितम्, वद = कथय, केन, मुमूर्षुणा = मृत्युमभिलषता, मुक्तभयेन = निर्भयेन, अद्य = अस्मिन् दिवसे, वनाभिमर्दात् = वनस्य अशोक-वाटिकायाः अभिमर्दात् भञ्जनात्, अहम् = रावणः, धृष्टं = धृष्टतापूर्वकम्, परिधर्षितः = तिरस्कृतः, अस्मीति शेषः । उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ।

जयत्विति—अविदितागमनेन = अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् यस्य तेन, समरम्भं = सक्रोधम्, अभिमृदिता = अभिमर्दिता ।

यथेति—निगृह्य = गृहीत्वा, आनय = प्रापय ।

---

रावण—

अरे नयी बात कहने वाले ! मैं सुन रहा हूँ । शीघ्र बतलाओ—अपनी मृत्यु को चाहने वाले अब एवं निर्भय किस (व्यक्ति) के द्वारा धृष्टतापूर्वक वन का विनाश करने के कारण मैं अपमानित किया गया हूँ ।

शङ्कुकर्ण—(समीप जाकर) महाराज विजयी होवें । अकस्मात् आये हुए किसी वानर के द्वारा शीघ्रता से अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी है ।

रावण—(तिरस्कार पूर्वक) क्या वानर के द्वारा (अशोकवाटिका उजाड़ दी गयी) । जाओ शीघ्र पकड़कर ले आओ ।

शङ्कुकर्ण—जैसी आप आज्ञा देते हैं । (निकल जाता है)

**रावणः**—भवतु भवतु ।

युधि जगत्त्रयभीतिकृतोऽपि मे यदि कृतं त्रिदशैरिदमप्रियम् ।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिनः फलमतो निजशाठ्यसमुद्भवम् ॥ ४ ॥

( प्रविश्य )

**शङ्कुकर्णः**—जयतु महाराजः । महाराज ! महाबलः खलु स वानरः । तेन खलु मृणालवदुत्पाटिताः सालवृक्षाः, मुष्टिना भग्नो दारुपर्वतकः, पाणितलाभ्यामभिमृदितानि लतागृहाणि, नादेनैव विसर्जी-

---

अन्वय —यदि युधि जगत्त्रयभीतिकृत अपि मे इदम् अप्रियं त्रिदशैः कृत (तर्हि) अमृताशनाः अतः निजशाठ्यसमुद्भवं फलम् अचिरात् अनुभवन्तु ।

युधीति—यदि=चेत्, जगत्त्रयभीतिकृत अपि=लोकत्रयभयकारकस्य अपि, मे=मम, इदम्=एतद्, अप्रियम्=अप्रीतिकरम्, त्रिदशैः=देवैः, कृतं =विहितम्, तर्हि, अमृताशिनः=देवाः, अतः=अस्मात् कारणाद्, निजशाठ्यसमुद्भवं=निजं स्वकीयं शाठ्यं धूर्तता तस्मात् समुद्भवः उत्पत्तिः यस्य तद्, फलं=परिणामम्, अचिरात्=शीघ्रमेव, अनुभवन्तु=प्राप्नुवन्तु । द्रुतविलम्बितं छन्दः ।

जयत्विति—महाबलः=अतिबलशाली, तेन=वानरेण, सालवृक्षाः= सालनामकतरवः, मृणालवत्=कमलदण्डवत्, उत्पाटिताः= उन्मूलिताः, दारुपर्वतकः=दारुनामकः पर्वतः, मुष्टिना=मुष्टिकया, भग्नः=विनाशितः, लतागृहाणि=कुञ्जानि, पाणितलाभ्यां=करतलाभ्याम्, अभिमृदितानि=

---

रावण—अच्छा, अच्छा !

युद्ध में तीनों लोकों को भयभीत करने वाले मुझ रावण का यदि देवताओं द्वारा यह अप्रिय (कार्य) किया गया है तो अमृत का भोजन करने वाले वे (देवता) अपनी दुष्टता से उत्पन्न फल को शीघ्र प्राप्त करेंगे ।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—महाराज विजयी हों। हे महाराज ! यह वानर बड़ा बलशाली है । उसके द्वारा ही साल के वृक्ष कमलनाल की तरह उखाड़ दिये गये, मुष्टिका (के प्रहार) से दारु पर्वत तोड़ दिया गया, करतल (हथेली) से लता-

कृता. प्रमदवनपालाः । तस्य ग्रहणसमर्थं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः ।

**रावणः**—तेन हि किङ्कराणां सहस्रं बलमाज्ञापय वानरग्रहणाय ।

**शङ्कुकर्णः**—यदाज्ञापयति महाराजः ( निष्क्रम्य प्रविश्य ) जयतु महाराजः ।

> अस्मदीयैर्महावृक्षैरस्मदीया महाबलाः ।
> क्षिप्रमेव हतास्तेन किङ्करा द्रुमयोधिना ॥ ५ ॥

---

विदलितानि, प्रमदवनपालाः = प्रमदोद्यानरक्षकाः, नादेन = गर्जनेन, विसंज्ञीकृताः मूर्छिताः कृताः । तस्य = वानरस्य, ग्रहणसमर्थं = ग्रहणे आरोधे समर्थम् समम्, बलं = सैन्यम्, आज्ञापयितुं = आदेष्टुम्, अर्हति = समर्थोऽस्ति ।

तेन हि इति—किङ्कराणां = सैनिकानाम् सहस्रमसंख्याकम्, बलं = सेनाम्, आज्ञापय = आदिश ।

अन्वयः—द्रुमयोधिना तेन अस्मदीयैः महावृक्षैः अस्मदीयाः महाबलाः किङ्कराः क्षिप्रम् एव हताः ।

अस्मदीयैः इति—द्रुमयोधिना = द्रुमैः वृक्षैः युद्ध्यते युद्धं करोतीति तथोक्तेन, तेन = वानरेण, अस्मदीयैः = अस्माकीनैः, महावृक्षैः = महातरुभिः, अस्मदीयाः = अस्माकीनाः, महाबलाः = महाबलयुक्ताः, किङ्कराः = भृत्याः, क्षिप्रं = त्वरितम्, एव, हताः = मारिताः । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

वृक्ष मसल दिये गये, गर्जन से ही प्रमदवन के रक्षक मूर्च्छित कर दिये गये । उसको पकड लाने में समर्थ सैनिक को महाराज आज्ञा दीजिए ।

रावण—तो भृत्यो की एक हजार सेना को वानर को पकडने के लिए आदेश दे दो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी आप की आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महाराज विजयी होवे ।

वृक्ष से युद्ध करने वाले (उस वानर) के द्वारा हमारे ही वृक्षो से (प्रहार करके) हमारी बलशाली सेना शीघ्र ही मार दी गयी ।

**रावणः**—कथं हता इति। तेन हि कुमारमक्षमाज्ञापय वानर-ग्रहणाय।

**शङ्कुकर्ण**—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्त।)

**रावणः**—(विचिन्त्य)

कुमारो हि कृतास्त्रश्च शूरश्च बलवानपि।
प्रसह्य चापि गृह्णीयाद्धन्याद् वा त वनौकसम् ॥ ६ ॥

(प्रविश्य)

**शङ्कुकर्णः**—अनन्तरीय बलमज्ञापयितुमर्हति महाराज।

**रावणः**—किमर्थम्?

---

अन्वय—कुमारः कृतास्त्रः शूरः बलवान् अपि (अस्ति), प्रसह्य च अपि तं वनौकस गृह्णीयात् हन्यात् वा।

कुमार इति—कुमार = अक्षय, हि = निश्चयेन, कृतास्त्रः = कृतानि शिक्षितानि अस्त्राणि आयुधानि येन, शूर = वीर, बलवान् अपि = बलशाली अपि, अस्ति इति शेष। प्रसह्य = बलात्, त = पूर्वोक्तम्, वनौकस = वानरम्, गृह्णीयात् = ग्रहण कुर्यात्, हन्यात् वा = व्यापादयेत् वा। अनुष्टुप्छन्द।

अनन्तरीयमिति—अनन्तरीयम् = अनन्तरवर्ति, बल = सैन्यम्, आज्ञाप-यितुम् = आदेष्टुम्, अर्हति = समर्थ अस्ति।

---

रावण—क्यों मार दी गयी? तो कुमार अक्ष को वानर को पकडने के लिए आदेश दे दो।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—(सोच कर)—

कुमार ने अस्त्र (चलाना) सीखा है। (वह) वीर तथा बलशाली है। उस वानर को पकड लेगा या मार डालेगा।

[प्रवेश करके]

शङ्कुकर्ण—सुरक्षित सेना को महाराज आदेश दीजिए।

रावण—किस लिए।

शङ्कुकर्णः—श्रोतुमर्हति महाराजः। कुमारं वानरमभिगच्छन्तं दृष्ट्वा महाराजेनानाज्ञापिता अप्यनुगताः पञ्च सेनापतयः।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततस्तानभिद्रुतान् दृष्ट्वा किञ्चिद् भीतेन इव तोरणमाश्रित्य काञ्चनपरिघमुद्यम्य निपातितास्तेन हरिणा पञ्च सेनापतयः।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततः कुमारमक्षं-

क्रोधात् सरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं

प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम्।

---

श्रोतुमिति—वानरं—कपिं प्रति अभिगच्छन्तं—अभियान्तम्, कुमारम्—अक्षम्, दृष्ट्वा—निरीक्ष्य, महाराजेन—भवता, अनाज्ञापिता अपि—अनादिष्टा अपि, अनुगताः—अनुयाताः।

ततस्तानिति—अभिद्रुतान्—अस्मान् प्रति पलायितान्, तान्—अनुयातान् सेनापतीन्, दृष्ट्वा—विलोक्य, किञ्चित्—ईषत्, भीत—भयं प्राप्त, तोरणं—बहिर्द्वारम्, आश्रित्य—उपगम्य, काञ्चनपरिघं—सुवर्णमुसलम्, उद्यम्य—उत्थाप्य, तेन—पूर्वोक्तेन, हरिणा—वानरेण, निपातितः—मारितः।

अन्वयः—क्रोधात् सरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तं (कुमारं) तान् बाणान् निविधून्वन्

---

शङ्कुकर्ण—सुनिए महाराज। वानर की ओर जाते हुए कुमार (अक्ष) को देखकर आप की आज्ञा बिना ही पाँच सेनापति (उसके) पीछे गये।

रावण—तब, तब (क्या हुआ)।

शङ्कुकर्ण—तब आक्रमण के लिए आते हुए उन (सेनापतियों) को देखकर कुछ डरे हुए के समान होकर उस वानर के द्वारा काञ्चनद्वार पर चढ़कर सुवर्णमय परिघ के प्रहार से पाँचों सेनापति मार डाले गये।

रावण—तब, तब।

शङ्कुकर्ण—तब कुमार अक्ष को—

क्रोध के कारण लाल आँखों वाले, बड़े वेग से घोड़े और रथ को हाँकते

तान् बाणान् निर्विघुन्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
　　कण्ठेसङ्गृह्य धृष्ट मुदिततरमुखो मुष्टिना निजघान ॥ ७ ॥

रावणः—(सरोषम्) आः, कथ कथ निर्जघानेति !

　　तिष्ठ त्वमहमेवनमासाद्य कपिजन्तुकम् ।
　　एष भस्मीकरोम्यस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् ॥ ८ ॥

कपि अपि सहसा तद्रथ लंघयित्वा कण्ठे सगृह्य मुदिततरमुखः धृष्टं मुष्टिना निर्जघान ।

क्रोधादिति—क्रोधात् = पञ्चसेनापतिवधात् रोषात्, संरक्तनेत्रं = संरक्तं रक्तवर्णे नयने यस्य तम्, त्वरिततरहयं = त्वरितर. द्रुततर. हय अश्वः यस्य तम्, स्यन्दनं = रथम्, वाहयन्तं = चालयन्तम्, प्रावृट्कालाभ्रकल्पं = प्रावृट्काल वर्षासमयः तस्य अभ्रस्य मेघस्य कल्पं सदृशम्, परमलघुतरं = परमम् अत्यन्त लघु. त्वरितं यथास्यात्तथा, बाणजालान् = शरसमूहान् वमन्तं = वर्षन्तम् कुमारम् = अक्षम्, तान् = पूर्वोक्तान्, बाणान् = शरान्, निर्विधुन्वन् = अपाकुर्वन्, कपि. = वानर, सहसा = अकस्मात्, तस्य = कुमारस्य, रथं = स्यन्दनम् = लङ्घयित्वा = आरुह्य, कण्ठे = गले, संगृह्य = गृहीत्वा, मुदित = हृष्टम्, धृष्टं = धृष्टतापूर्वकम्, मुष्टिना = मुष्टिकया, निर्जघान = हतवान् । उपमालङ्कारः । स्रग्धराच्छन्द ।

अन्वय—त्वं तिष्ठ, एषः अहम् एव एत कपिजन्तुकम् आसाद्य अस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् भस्मीकरोमि ।

तिष्ठेति—त्वं = शङ्कुकर्ण , तिष्ठ = विरम, एष = अयम्, अहमेव =

---

हुए, वर्षाकालीन मेघ की भाँति शीघ्रतापूर्वक बाणसमूहो को छोडते हुए (कुमार अक्ष) को, उन बाणो को काटता हुआ वानर भी उनके रथ पर हमला करके धृष्टता पूर्वक गला दबाकर प्रसन्नमुख से मुष्टिका के द्वारा मार डाला ।

रावण—(क्रोध के साथ) क्या, क्या मार दिया ?

तुम रुको । मैं ही इस क्षुद्र वानर को अपने क्रोधाग्नि के कणो से शीघ्र भस्म करता हूँ ।

शङ्कुकर्णः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। कुमारमक्षं निहतं श्रुत्वा क्रोधाविष्टहृदयः कुमारेन्द्रजिदभिगतवांस्तं वनौकसम्।

रावणः—तेन हि गच्छ। ज्ञायतां वृत्तान्तः।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः! (निष्क्रान्तः)

रावणः—कुमारो हि कृतास्त्रश्च,

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा।
तथापि क्षुद्रकर्मेदं मह्यमीषन्मनोज्वरः॥ ९॥

---

रावण एव, एनम्=इमम्, कपिजन्तुकं=तुच्छजन्तुम् आसाद्य=प्राप्य, अस्मत्क्रोधानलकणे.=अस्माकं क्रोधस्य कोपस्य एव अनलस्य अग्ने कणे, लवे, क्षणात्=शीघ्रमेव, भस्मीकरोमि=दहामि।

प्रसीदत्विति—निहतं=मारितम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, क्रोधाविष्टहृदयः=क्रोधाविष्टं कोपाभिभूतं हृदयम् अन्तःकरणं यस्य सः, कुमारेन्द्रजित्=कुमारः इन्द्रजित् मेघनादः, अभिगतवान्।

अन्वयः—युधि वीराणाम् अवश्यं वधः वा विजयः अथवा तथापि इदं क्षुद्रकर्म मह्यम् ईषत् मनोज्वरः (अस्ति)।

अवश्यमिति—युधि=युद्धे, वीराणां=शूराणाम्, अवश्यं=निश्चितरूपेण, वधः=हननम्, विजयः वा=जयः वा, तथापि, इदम्=एतत् क्षुद्रकर्म=वानरमारणरूपं क्षुद्रं तुच्छं कर्म कार्यम्, मह्यं=मम कृते, ईषत्=किमपि, मनोज्वरः=चित्तसन्तापः, अस्तीति शेषः। रूपकालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।

---

शङ्कुकर्ण—प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए महाराज। कुमार अक्ष का मारा जाना सुनकर क्रोधपूर्ण हृदय वाले कुमार इन्द्रजित् (मेघनाद) उस वानर के समीप गये हैं।

रावण—तो जाओ। फिर समाचार मालूम करो।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—और कुमार अस्त्राभ्यासी है।

युद्ध में निश्चित ही वीरों की मृत्यु होती है अथवा विजय। तो भी यह नीच कार्य है, अतः मुझको खेद है।

(प्रविश्य)

**शङ्कुकर्ण.**—जयतु महाराज. । जयतु लङ्केश्वर. ! जयतु भद्रमुख !

संवृत्त तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च ।
तत. स वानरः शीघ्रं बद्ध. पाशेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥

**रावण.**—कोऽत्र विस्मयं इन्द्रजिता शाखामृगो बद्ध इति। कोऽत्र भोः !

(प्रविश्य)

**राक्षसः**—जयतु महाराज. !

**रावण**—गच्छ विभीषणस्तावदाहूयताम् !

---

अन्वयः—कुमारस्य च तस्य च तुमुल युद्धं सवृत्तम् । तत शीघ्र सः वानरः साम्प्रतं पाशेन बद्धः अस्ति ।

सवृत्तमिति—कुमारस्य च=मेघनाथस्य च, तस्य च=वानरस्य हनुमत च, तुमुलं=भयानकम्, युद्धं=सग्राम, सवृत्तं=जातम्, तत = तत्पश्चात्, शीघ्रं=त्वरितम्, स =पूर्वोक्त, वानर =कपि, सम्प्रतम् = अधुना, पाशेन=ब्रह्मपाशेन, बद्ध =बन्धन प्राप्त । अनुष्टुप्छन्द ।

कोऽत्रेति—विस्मय =आश्चर्यम्, शाखामृग =वानर, इन्द्रजिता= मेघनाथेन, बद्ध =बन्धन प्राप्त ।

---

[प्रवेश करके]

**शङ्कुकर्ण**—महाराज विजयी होवे, लङ्केश्वर विजयी होवे, भद्रमुख विजयी होवे ।

कुमार (मेघनाथ) तथा उस (वानर) के बीच घोर युद्ध हुआ । तत्पश्चात् वह वानर शीघ्रतापूर्वक (कुमार के द्वारा) पाश से बाँध लिया गया है ।

**रावण**—इन्द्रजित् (मेघनाथ) के द्वारा वानर बाँध लिया गया, इसमे क्या आश्चर्य है । अरे ! यहाँ कौन है ।

[प्रवेश करके]

**राक्षस**—महाराज विजयी होवे ।

**रावण**—तो जाओ, विभीषण को बुला लाओ ।

राक्षस—यदाज्ञापयति महाराज ! (निष्क्रान्त)

रावण—त्वमपि तावद् वानरमानय।

शङ्कुकर्ण—यदाज्ञापयति महाराज ! (निष्क्रान्त।)

रावण—(विचिन्त्य) भो ! कष्टम्।

> अचिन्त्या मनसा लङ्का सहितैः सुरदानवैः।
> अभिभूय दशग्रीवं प्रविष्टः किल वानरः ॥ ११ ॥

अपि च,

जित्वा त्रैलोक्यमाजौ ससुरदनुसुतं यन्मया गर्वितेन

भ्रान्त्वा कैलासमीशं स्वगणपरिवृतं साकमारम्य देव्या।

---

अन्वय—लङ्का सहितैः सुरदानवैः मनसा (अपि) अचिन्त्या (आसीद्)। दशग्रीवं अभिभूय वानरः किल प्रविष्टः।

अचिन्त्येति—लङ्का=एतन्नामकनगरी, सुरदानवैः=सुराः देवाः दानवाः च असुराः च तैः, मनसा=चित्तेन, अचिन्त्या=अचिन्तनीया, आसीदिति शेषः। दशग्रीवं=रावणम् अभिभूय=तिरस्कृत्य, वानरः=कपिः, किल=निश्चयेन प्रविष्टः=प्रवेशं प्राप्तः। अनुष्टुप्छन्दः।

अन्वय—यत् आजौ ससुरदनुसुतं त्रैलोक्यं जित्वा गर्वितेन मया कैलासं भ्रान्त्वा देव्या साकं स्वगणपरिवृतम् ईशम् आरम्य तस्मात् प्रसादं लब्ध्वा

---

राक्षस—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—तो तुम भी वानर को ले आओ।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। (निकल जाता है)

रावण—(सोच कर) ओह ! कष्ट है।

जो लङ्का देवता तथा दानवों द्वारा मन से भी अचिन्तनीय (अनाक्रमणीय) है, दशानन (रावण) को तिरस्कृत करके (उसमें) वानर प्रवेश कर गया है।

और भी—

क्योंकि युद्ध में देवता और दानव सहित तीनों लोकों को जीतकर, कैलास को लाँघ कर पार्वती के साथ अपने गणों से घिरे हुए शङ्कर को हिला कर, उन (महादेव) से प्रसाद प्राप्त करके, अभिमान में आये हुए मेरे द्वारा अपमानित

लब्ध्वा तस्मात् प्रसाद पुनरगसुतया नन्दिनानादृतत्वाद्
दत्त शप्त च ताभ्या यदि कपिविकृतिच्छद्मना तन्मम स्यात् ॥१२॥

(तत प्रविशति विभीषण )

**विभीषण.**—(सविमर्शम्) अहो नु खलु महाराजस्य विपरीता बुद्धि सवृत्ता। कुत.—

---

अनादृतत्वात् पुन अगसुतया नन्दिना च ताभ्या तत् शमम् दत्त, यदि कपि-विकृतिच्छद्मना मम तत् स्यात्।

जित्वेति—यत् = यत, आजौ = युधि, ससुरदनुसुत = सुरा देवा दनु-सुता वानवा तै सह त्रैलोक्य = लोकत्रयम्, जित्वा = पराजित्य, गर्वितेन = अभिमानिता, मया = रावणेन, कैलासम् = एतन्नामकपर्वतम्, क्रान्त्वा = अभिक्रम्य, देव्या = पार्वत्या, साक = सह, स्वगणपरिवृत्त = स्वगणेन नन्दि-प्रमथादयेन परिवृत्त परिगतम्, ईश = शङ्करम्, आकम्प्य = कम्पयित्वा, तस्माद् = आकम्पमाद्, प्रसाद = अनुग्रहरूपेण चन्द्रहासम्, लब्ध्वा = प्राप्य, अनादृतत्वात् = तिरस्कारात्, अगसुतया = पर्वतपुत्र्या पार्वत्या, नन्दिना = शङ्करस्य प्रधानगणेन, ताभ्याम् = उभाभ्याम् शप्त = शापम्, दत्त = प्रति-पादितम्। यदि = इति सम्भावनायाम्, कपि = वानर हनूमान्, निर्वृत्त = तस्य शापस्य वानररूपेण परिणमन् विक्रिया, छद्मना = तस्य व्याजेन, तद् = शापः, स्याद् = भवेत्। व्याजापह्नुतिरलङ्कार। सग्धराच्छन्द।

अहो इति—महाराजस्य = रावणस्य, विपरीता = प्रतिकूला, बुद्धि = मति, सवृत्ता = जाता।

---

किए जाने के कारण पार्वती और नन्दी दोनो ने शाप दे दिया। सम्भवत वानर के बहाने यह (शाप) काम कर रहा है।

(तत्पश्चात् विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—(सोच कर) ओह! महाराज की बुद्धि विपरीत हो गयी है। क्योंकि—

रावणः—छिद्यतामेषा कथा । त्वमपि तावद् वानरमानय ।
विभीषणः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रान्त ।)
(तत प्रविशति राक्षसैर्गृहीतो हनूमान् )
सर्वे—आ इत इत ।
हनूमान्—
नैवाहं धर्षितस्तेन नैर्ऋतेन दुरात्मना ।
स्वयं ग्रहणमापन्नो राक्षसेशदिदृक्षया ॥ १४ ॥
(उपगम्य) भो ! राजन ! अपि कुशली भवान् ?
रावणः—(सावज्ञम्) विभीषण ! किमस्य तत् कर्म ?

---

कथा=वार्ता, छिद्यता=समाप्यताम् ।

अन्वय—दुरात्मना तेन नैर्ऋतेन अहम् न एव धर्षित , राक्षसेशदिदृक्षया स्वयं ग्रहणम् आपन्न ।

नैवाहमिति–दुरात्मना=दुर्मना, तेन=मेघनादेन, नैर्ऋतेन=राक्षसेन, अहं=हनूमान् नैव=नहि एव, धर्षित =अभिभूत , किन्तु, राक्षसेशदिदृक्षया =राक्षसेशस्य राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दिदृक्षया विलोकितु इच्छया, स्वयमेव =आत्मना एव, ग्रहण=बन्धनम्, आपन्न =प्राप्त । अनुष्टुप्छन्द ।

भो राजनिति–कुशली=कुशलपूर्वकम्, तत्=पूर्वोक्तम्, कर्म=कार्यम् ।

---

रावण—इस वार्ता को छोडो । तो तुम भी वानर लेते आओ ।
विभीषण—जो महाराज की आज्ञा । (निकल जाता है)
(तत्पश्चात् राक्षसो द्वारा पकडे गये हनुमान् प्रवेश करते हैं)
सभी—अरे ! इधर से, इधर से चलो ।
हनुमान्—मैं उस दुष्ट राक्षस द्वारा नही पकडा गया हूँ । राक्षसेन्द्र (रावण) को देखने की इच्छा से मैं स्वयं बँध गया हूँ ।
(समीप जाकर) हे राजन् ! आप सकुशल तो हैं ?
रावण—(तिरस्कारपूर्वक) हे विभीषण ! क्या इस (वानर) ने ही वह ( अशोकवाटिका को उजाडना इत्यादि ) कार्य किया है ।

**विभीषण.**—महाराज ! अतोऽप्यधिकम् ।

**रावण**—कथं त्वमवगच्छसि ?

**विभीषण**—प्रष्टुमर्हति महाराज कस्त्वमिति ।

**रावण**—भो वानर ! कस्त्वम् ? केन कारणेन धर्षितोऽस्माकमन्तःपुरं प्रविष्टः ।

**हनूमान्**—भो ! श्रूयताम्

> अञ्जनायां समुत्पन्नो मारुतस्यौरसः सुतः ।
> प्रेषितो राघवेणाहं हनुमान् नाम वानरः ॥ १५ ॥

**विभीषण**—महाराज ! किं श्रुतम् ?

---

अतः अपि=अस्मादपि, अधिकम्=अतिरिक्तम् । अवगच्छसि=जानासि, अर्हसि=योग्योऽसि, अन्तःपुरम्=अवरोधकम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतः ।

अन्वय—अञ्जनायां समुत्पन्नः मारुतस्य औरसः सुतः हनूमान् नाम वानरः अहं राघवेण प्रेषितः (अस्मि) ।

अञ्जनायामिति—अञ्जनायाम्=एतन्नाम्न्यां वानर्याम्, समुत्पन्नः=जातः, मारुतस्य=वायोः औरसः सुतः=पुत्रः हनूमान् नाम=एतन्नामकः, वानरः=कपिः, राघवेण=रामेण प्रेषितः=प्रहितः अस्मीति शेषः । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

विभीषण—हे महाराज ! उससे भी अधिक ।

रावण—तुम कैसे जानते हो ?

विभीषण—महाराज आप (इससे) पूछिए कि तुम कौन हो ?

रावण—हे वानर ! तुम कौन हो ? किस कारण से बिना सोचे समझे हमारे अन्तःपुर में प्रवेश किया ।

हनुमान्—अरे ! सुनिए,

अञ्जना के गर्भ से उत्पन्न मैं पवन ( देव ) का औरस पुत्र हनुमान् नामक वानर, रामचन्द्र के द्वारा भेजा गया हूँ ।

विभीषण—हे महाराज ! क्या सुन लिया आप ने ?

**रावण** —किं श्रुतेन !

**विभीषण** —हनूमन् ! किमाह तत्रभवान् राघव ।

**हनूमान्** —भो श्रूयतां रामशासनम् ।

**रावण** —कथं कथं रामशासनमित्याह । आः हन्यतामयं वानर ।

**विभीषण** —प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज ! सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः । अथवा रामस्य वचनं श्रुत्वा पश्चाद् यथेष्टं कर्तुमर्हति महाराज ।

**रावण** —भो वानर ! किमाह स मानुष ?

**हनूमान्** भो ! श्रूयताम्,

वरशरणमुपेहि शंकरं वा प्रविश च दुर्गमं रसातलं वा ।
शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं यमसदनं प्रतियापयाम्यहं त्वाम् ॥ १६ ॥

---

हनूमतिति—तत्रभवान् = पूज्य, राघव = राम, किमाह = किं अकथयत् । रामशासन = रामादेशम्, हन्यतां = मार्यताम् । सर्वापराधेषु = सर्वे च ते अपराधाः आगांसि तेषु, अवध्याः = अमारणीयाः । पश्चात् = तदनन्तरम् यथेष्टं = इच्छानुसारम् ।

**अन्वय** —वरशरणं शङ्करं वा उपेहि दुर्गमं रसातलं वा प्रविश च, शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं त्वाम् अहं यमसदनं प्रतियापयामि ।

---

रावण—सुनने से क्या (प्रयोजन) !

विभीषण—हे हनुमान् ! पूजनीय राघव ने क्या कहा है ?

हनुमान्—अरे सुनिए, राम का आदेश ।

रावण—क्या, क्या यह राम का आदेश कहता है तो मार दिया जाय यह वानर ।

विभीषण—प्रसन्न होइए, हे महाराज ! सभी अपराध मे दूत अवध्य होते है । अथवा राम का आदेश सुनकर तत्पश्चात् आप अपनी इच्छानुसार कीजिएगा ।

रावण—हे वानर ! उस मनुष्य राम ने क्या कहा है ।

हनुमान्—अरे ! सुनिए,

रावणः—ह ह ह !

> दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा मयाभिभूता
> दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिन समस्ता. ।
> पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो
> भो ! राम. कथमभियाति मानुषो माम् ॥ १७ ॥

---

वरशरणेति—वरशरण = श्रेष्ठाश्रयम्, शङ्कर वा = शिवम् वा, उपेहि = उपगच्छ, दुर्गमम् = अतिदुर्गमम्, रसातल वा = पातालम् वा, प्रविश = प्रवेश कुरु । शरवरपरिभिन्नसर्वगात्र = शरवरेण बाणश्रेष्ठेन परिभिन्नानि परिछिन्नानि सर्वाणि गात्राणि अङ्गानि यस्य तम्, त्व = रावणम्, अह = राम, यमसदन = यमराजगृहम्, प्रतियापयामि = प्रेषयामि । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

अन्वयः—मया दिव्यास्त्रै त्रिदशगणा अभिभूत, समस्ता दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिन (सन्ति) अपहृतपुष्पक पौलस्त्य अवसन्न । भो ! मानुष राम कथ माम् अभियाति ।

दिव्यास्त्रैरिति—मया = रावणेन, दिव्यास्त्रै = दिव्यायुधै, त्रिदशगणा = देवसमूहा, अभिभूता = पराभूता, समस्ता = सम्पूर्णा, दैत्येन्द्रा = दानवेन्द्रा, मम = रावणस्य, वशवर्तिन = वशीभूता, सन्तीति शेष । अपहृतपुष्पक = अपहृत अछिन्न पुष्पक एतन्नामक विमान यस्मात् स, पौलस्त्य =

---

शङ्कर के श्रेष्ठ शरण में जाओ अथवा दुर्गम पाताल मे प्रवेश करो । मैं (राम) बाणों से छिन्न भिन्न हुए शरीर वाले तुम (रावण) को यमराज के घर भेजूँगा ।

रावण—अहा !

मेरे द्वारा दिव्यास्त्रों से देवगण परास्त कर दिये गये । सम्पूर्ण राक्षसराज मेरे वशीभूत हैं । (मेरे द्वारा) छीन लिए गये पुष्पक (नामक विमान) वाले कुबेर भी नत हो गये हैं । अरे ! मनुष्य राम मुझ पर कैसे आक्रमण करेगा ।

वक्तुम्। मा तावद् भो!

नक्तञ्चरापद! रावण! राघवं तं
वीराग्रगण्यमतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पम्।
प्रक्षीणपुण्य! भवता भुवनैकनाथं
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार! नीचैः ॥ २१ ॥

**रावण.**—कथं कथं नामाभिधत्ते। हन्यतामयं वानरः। अथवा दूतवधः खलु वचनीयः। शङ्कुकर्ण! लाङ्गूलमादीप्य विसृज्यतामयं वानरः।

---

राघव=रामम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, वक्तुम्=कथितुम्, किं युक्तम्=किमुचितम्, अस्तीति शेषः।

अन्वयः—हे नक्तञ्चरापद! प्रक्षीणपुण्य! गतसार! रावण! वीराग्रगण्यम् अतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पं भुवनैकनाथं तं राघवम् एवं नीचैः वक्तुं भवता उचितं किम्?

नक्तञ्चरेति—नक्तञ्चरापद=हे राक्षसाधम! प्रक्षीणपुण्य=हे नष्टसत्कर्म! गतसार=हे विनष्टबल! रावण=हे दशानन! वीराग्रगण्य=वीरेषु शूरेषु अग्रगण्यः मुख्यः तम्, अतुलम्=अद्वितीयम्, त्रिदशेन्द्रकल्प=इन्द्रसदृशम्, भुवनैकनाथ=भुवनस्य जगतः एकम् एकमात्रं नाथं प्रभुं तम्, तं=पूर्वोक्तम्, राघव=रामम्, एवम्=अनेन प्रकारेण, नीचैः=सावज्ञम्, वक्तुं=कथितुम्, भवता=रावणेन, किम् उचित=युक्तम्, अस्तीति शेषः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

कथमिति—नाम=रावणेति मम नाम, अभिधत्ते=उच्चारयति। दूत-

---

ऐसा कहा जाना क्या उचित है। अरे! ऐसा नहीं—

हे राक्षसाधम! हे नष्ट पुण्य वाले! हे समाप्त बल वाले! हे रावण! अद्वितीय, वीरों में अग्रगण्य, इन्द्र के समान, भुवनों के अकेले स्वामी राम के प्रति आप के द्वारा इस प्रकार कहा जाना क्या उचित है?

रावण—क्यों (मेरा) नाम ले रहा है। मार दिया जाय यह वानर। अथवा दूत का वध निन्दनीय है। हे शङ्कुकर्ण! पूँछ में आग लगाकर यह

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः। इत इत।

रावणः—अथवा एहि तावत्।

हनूमान्—अयमस्मि।

रावणः—अभिधीयतां मद्वचनात् स मानुषः।

अभिभूतो मया राम! दारापहरणादसि।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान्॥ २२॥

हनूमान्—अचिराद् द्रक्ष्यसि।

वधः=दूतमारणं, वचनीयः=निन्दनीयः। लाङ्गूलं=पुच्छम्, आदीप्य=प्रज्ज्वाल्य, विमृज्यतां=मुच्यताम्, अभिधीयतां=कथ्यताम्, मद्वचनात्=ममादेशात्, सः=पूर्वोक्तः, मानुषः=मनुष्यः रामः।

अन्वयः—हे राम! दारापहरणात् मया अभिभूतः असि। यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति (तर्हि) मे महान् रणः दीयताम्।

अभिभूत इति—राम=हे राघव! दारापहरणात्=दाराया धर्मपत्न्या अपहरणाद् आनयनात्, मया=रावणेन, अभिभूतः=पराजितः, असि, यदि=चेत्, ते=तव, धनुःश्लाघा=धनुषः चापस्य श्लाघा अभिमानः, तर्हि, मे=मम रावणस्य, महान्=घोरम्, रणः=सङ्ग्रामः, दीयतां=प्रदीयताम्। अनुष्टुप्छन्दः।

अचिरादिति—अचिरात्=शीघ्रम्, द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि।

वानर छोड़ दिया जाय।

शङ्कुकर्ण—जो महाराज की आज्ञा। इधर से, इधर से (आओ)

रावण—अथवा इधर आओ।

हनुमान्—यह मैं हूँ।

रावण—मेरी ओर से उस मनुष्य से कहना—

हे राम! (तुम्हारी) पत्नी का अपहरण होने के कारण मेरे द्वारा अपमानित हुए हो। यदि तुम्हें धनुष पर भरोसा हो तो मुझको महान् युद्ध प्रदान करो (अर्थात् मेरे साथ युद्ध करो)।

हनुमान्—शीघ्र देखोगे—

**विभीषणः**—अभय दातुमर्हति महाराज ।

**रावण**.—दत्तमभयम् । उच्यताम् ।

**विभीषणः**—बलवद्विग्रहश्च ।

**रावणः**—( सरोषम् ) कथ कथ बलवद्विग्रहो नाम ?

शत्रुपक्षमुपाश्रित्य मामय राक्षसाधम ।
क्रोधमाहारयस्तीव्रमभीरुरभिभाषते ॥ २४ ॥

कोऽत्र ?

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्र शत्रुपक्षमुपाश्रितम ।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टु तस्मादेष निरस्यताम् ॥ २५ ॥

---

गूहसे=गोपायसे, अभय=अभयदानम् । उच्यता=कथ्यताम् । बलवद्विग्रह =बलवता प्रबलेन रामेण विग्रह युद्धम् ।

अन्वय —शत्रुपक्षम् उपाश्रित्य अभीरु अय राक्षसाधम (मम) क्रोधम् आहारयन् मा तीव्रम् अभिभाषते ।

शत्रुपक्षमिति—शत्रुपक्षम्=अरिपक्षम्, उपाश्रित्य=आश्रय गृहीत्वा, अभीरु=निर्भय, अयम्=एष, राक्षसाधम=नीचराक्षस विभीषण, तीव्र=कटु, क्रोध=कोपम्, आहारयन्=जनयन्, अभिभाषते=कथयति । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय —मम सौभ्रात्रम् अनवेक्ष्य शत्रुपक्षम् उपाश्रितम् (एत) पुरत द्रष्टु न उत्सहे, तस्मात् एष निरस्यताम् ।

---

विभीषण—हे महाराज ! मुझे अभय प्रदान करें ।

रावण—अभय दे दिया । कहो ।

विभीषण—बलवान् से विरोध ।

रावण—(क्रोध के साथ) कैसा, कैसा बलवान् से विरोध ?

यह राक्षसाधम (नीच राक्षस विभीषण) शत्रु (राम) का पक्ष लेकर मुझको तीव्र क्रोध उत्पन्न करता हुआ निडर बातें कर रहा है ।

यहाँ कौन है ?

मेरे सौभ्रात्र (उत्तम भ्रातृभाव) की उपेक्षा करके शत्रुपक्ष से मिल जाने

विभीषण —प्रसीदतु महाराजः अहमेव यास्यामि ।

शासितोऽहं त्वया राजन् ! प्रयामि न च दोषवान् ।
त्यक्त्वा रोषं कामं च यथा कार्यं तथा कुरु ॥ २६ ॥

( परिक्रम्य ) अयमिदानीम्—

अद्यैव तं कमललोचनमुग्रचापं
रामं हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम् ।

---

समेति—मम = रावणस्य, सौभ्रात्र = सुभ्रातृत्वम्, अनवेक्ष्य = अविचार्य, शत्रुपक्ष = वैरिपक्षम्, उपाश्रितम् = आश्रयगतं विभीषणम्, पुरतः = अग्रे, द्रष्टुं = विलोकितुम्, न उत्सहे = न शक्नोमि, तस्मात् = तस्मात् कारणात्, एष = विभीषण, निरस्यता = निष्काम्यताम् । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय —हे राजन् ! त्वया शासित अहं प्रयामि (अहं) च दोषवान् न (अस्मि) । रोषं कामं च त्यक्त्वा यथा कार्यं तथा कुरु ।

शासित इति—राजन् = हे नृप ! त्वया = रावणेन, शासित = आदिष्ट, अहं = विभीषण, प्रयामि = गच्छामि, च, दोषवान् = अपराधी, न = नहि अस्मि । रोषं = क्रोधम्, कामं = विषयभोगेच्छाम् च, त्यक्त्वा = परित्यज्य, यथा = येन प्रकारेण, कार्यं = करणीयम्, तथा = तेन प्रकारेण, कुरु = विधेहि । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय —अद्य एव कमललोचनम् उग्रचापं रावणवधाय कृतप्रतिज्ञं संश्रितहितप्रथितं नृदेवं संश्रित्य नष्टं निशाचरकुलं पुनः उद्धरिष्ये ।

---

वाले (इस विभीषण को) सामने देखने के लिए उत्साह (इच्छा) नहीं करता हूँ, अतः यह दूर किया जाय ।

विभीषण—महाराज प्रसन्न होइए, मैं ही जा रहा हूँ ।

हे राजन् ! आप के द्वारा आदेश दिया गया मैं जा रहा हूँ । (इसमें) मैं दोषी नहीं हूँ । (आप) क्रोध एवं काम का परित्याग करके जैसा किया जाना चाहिए, वैसा कीजिए । (घूमकर) अब यह मैं,

आज ही उस कमल के समान नेत्र वाले, महाधनुर्धारी, रावण के वध के लिए कृतप्रतिज्ञ तथा आश्रित जनों की भलाई करने में प्रसिद्ध मनुष्यदेव

संश्रित्य संश्रितहितप्रथितं नृदेवं
नष्टं निशाचरकुलं पुनरुद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

**रावणः**—हन्त निर्गतो विभीषणः। यावदहमपि नगररक्षां सम्पादयामि।

( निष्क्रान्ता )

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

---

अद्यैवेति—अद्य एव = अस्मिन्दिवसे एव, कमललोचनं = राजीवनयनम्, उग्रचापं = भीषणधनुः, रावणवधाय = दशाननमारणाय, कृतप्रतिज्ञं = विहितप्रणम्, संश्रितहितप्रथितम्, = संश्रितानाम् आश्रितानां हितप्रथितम् उपकारख्यातम्, नृदेवं = नरेन्द्रम्, तम् = पूर्वोक्तम् रामं = राघवम् संश्रित्य = आश्रित्य, नष्टं = विनष्टम्, निशाचरकुलं = राक्षसवंशम् पुनः = भूयः, उद्धरिष्ये = उद्धारं करिष्ये। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकाच्छन्दः।

हन्तेति—निर्गतः = निर्यातः। नगररक्षा = पुरीरक्षणम्, सम्पादयामि = करोमि।

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

—*—

---

राम का आश्रय लेकर नष्ट राक्षस कुल का फिर उद्धार करूँगा।
( निकल जाता है)

रावण—ओह! विभीषण निकल गया। तो मैं भी नगर की रक्षा करूँगा।

( निकल जाता है )

॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

—*—

## अथ चतुर्थोऽङ्कः

( ततः प्रविशति वानरकाञ्चुकीयः )

काञ्चुकीयः—भो भो बलाध्यक्ष ! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम् ।

( प्रविश्य )

बलाध्यक्षः—आर्य ! किंकृतोऽयं समुद्योगः ?

काञ्चुकीयः—तत्रभवता हनुमतानीतः स्वार्यरामस्य देव्याः सीतायाः वृत्तान्तः ।

बलाध्यक्षः—किमिति किमिति ?

काञ्चुकीयः—श्रूयताम्,

---

भो भो इति—भोः = हे ! बलाध्यक्ष = सेनाध्यक्ष । वानरवाहिनीम् = वानराणां वर्तिनां वाहिनीं सेनाम्, सन्नाह = सज्जनाम्, आज्ञापय = आदिश । किंकृत = केन विहितम्, समुद्योग = समुद्यम । तत्रभवतेति—हनुमता = पवनतनयेन, आनीत = आहृतः । वृत्तान्त = समाचार ।

---

( तत्पश्चात् वानरकाञ्चुकीय प्रवेश करता है )

काञ्चुकीय—हे, हे सेनाध्यक्ष ! वानरसेना को तैयार होने का आदेश दीजिए ।

( प्रवेश करके )

सेनाध्यक्ष—हे आर्य ! किसलिए यह तैयारी की जा रही है ।

काञ्चुकीय—पूजनीय हनुमान् के द्वारा सीता देवी का आर्य राम के प्रति समाचार लाया है ।

सेनाध्यक्ष—क्या, क्या ( समाचार है ) ?

काञ्चुकीय—सुनिए—

लङ्कायां किल वर्तते नृपसुता शोकाभिभूता भृशं
　　पौलस्त्येन विहाय धर्मसमयं सक्लेश्यमाना ततः ।
श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्याथिना
　　राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभयासन्नाहमाज्ञापिता ॥ १ ॥

**बलाध्यक्षः**—एवम् ! यदाज्ञापयति महाराज ।

**काञ्चुकीयः**—यावदहमपि सन्नद्धा वानरवाहिनीति महाराजाय निवेदयामि ।

---

अन्वयः—भृशं शोकाभिभूता धर्मसमयं विहाय पौलस्त्येन सक्लेश्यमाना नृपसुता लङ्कायां वर्तते किल । ततः एतत् श्रुत्वा भृशशोकतप्तमनसः रामस्य-कार्यार्थिना राज्ञा प्रतिभयं वानरवाहिनी सन्नाहम् आज्ञापिता ।

लङ्कायामिति—भृशं = अत्यधिकम्, शोकाभिभूता = शोकसन्तप्ता, धर्मसमयं = धर्माचरणम्, विहाय त्यक्त्वा, पौलस्त्येन = रावणेन, सक्लेश्यमाना = पीड्यमाना, नृपसुता = राजकुमारी सीता, लङ्कायाम् = एतन्नामकनगर्याम्, वर्तते = अस्ति । ततः = हनुमतः, एतत् = वृतान्तम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, भृशशोकतप्तमनसः = भृशेन अत्यधिकेन शोकेन दुःखेन तप्तं पीडितं मनः चित्तं यस्य तस्य, रामस्य = राघवस्य, कार्यार्थिना = कार्येच्छुकेन, राज्ञा = नृपेण सुग्रीवेण, प्रतिभया = भीतिकरा, वानरवाहिनी = कपिसेना, सन्नाहं = सज्जताम्, आज्ञापिता = आदिष्टा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

यावदिति—सन्नद्धा = सज्जा, निवेदयामि = सूचयामि ।

---

'धर्म मर्यादा का उलङ्घन करने वाले रावण के द्वारा (नाना प्रकार से) पीडित की जाती हुई अत्यधिक शोकसन्तप्ता राजकुमारी (सीता) लङ्का में है' यह सुनकर अत्यन्त शोक से सन्तप्त हृदय वाले राम के (सीता-प्राप्ति-रूपी) कार्य को करने की इच्छा वाले राजा सुग्रीव के द्वारा शत्रुओं को भयभीत करने वाली वानरसेना को तैयार होने का आदेश दिया गया है ।

सेनाध्यक्ष—ऐसी बात है । महाराज की जैसी आज्ञा ।

काञ्चुकीय—तब तक मैं भी महाराज (सुग्रीव) को सूचित कर दूँ कि वानर-सेना तैयार है ।

( निष्क्रान्तौ )

॥ इति विष्कम्भकः ॥

( ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणः सुग्रीवो हनूमांश्च )

रामः—

आक्रान्ताः पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः
सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।
क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं
सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातटं साम्प्रतम् ॥ २॥

अन्वय —पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमा पर्वता आक्रान्ताः, सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यः च मया तीर्णा, पुष्पफलाढ्यपादपयुत चित्र महत् कानन क्रान्तम्, कपीन्द्रसैन्य सहित (अह) साम्प्रत वेलातट सम्प्राप्त अस्मि ।

आक्रान्ता इति—पृथुसानुकुञ्जगहना = पृथूनि विशालानि यानि सानूनि शिखराणि तेषु ये कुञ्जाः गुल्मानि तैः गहना घना, मेघोपमा. = मेघसदृशा, पर्वता. = गिरय, आक्रान्ता = लङ्घिता । सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला = सिंहा केसरिण. च व्याघ्रा शार्दूलाश्च गजेन्द्रा गजराजाश्च तै पीतानि पानकृतानि यानि सलिलानि जलानि यासा ता, नद्य = सरित च, मया = रामेण, तीर्णा. = पारं गतवान् पुष्पफलाढ्यपादपयुत = पुष्पाणि कुसुमानि फलानि प्रसवानि च तै. आढ्या. परिपूर्णा पादपा वृक्षा तै युत युक्तम्, चित्र = आश्चर्यजनकम्, महत् = विशालम्, कानन = वनम्, क्रान्त = लङ्घितम् । कपीन्द्रसैन्यसहित = कपीन्द्रस्य वानरेन्द्रस्य सुग्रीवस्य सैन्येन सेनया सहित युक्त,

( दोनो निकल जाते है )

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

( तत्पश्चात् राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान् प्रवेश करते हैं )

राम—विशाल शिखरो पर वर्तमान कुञ्जो के कारण घने तथा बादल के सदृश पर्वत मेरे (द्वारा) लाँघ दिये गये, अब वानरेन्द्र (सुग्रीव) की सेना के साथ समुद्र तट पर मैं उपस्थित हूँ ।

लक्ष्मणः—एष एष भगवान् वरुण ,
सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
विलुलितफेनतरङ्गचारुहार ।
समधिगतनदीसहस्रबाहु-
र्हरिरिव भाति सरित्पति शयान ॥ ३ ॥

रामः—कथ कथ भो !
रिपुमुद्धर्तुमुद्यन्त मामय सक्तसायकम् ।
सजीवमद्य त कर्तुं निवारयति सागर ॥ ४ ॥

---

साम्प्रतम् = इदानीम्, वेलातट = समुद्रतीरम्, सम्प्राप्त अस्मि = आगत अस्मि । उपमालङ्कार । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय.—सजलजलधरेन्द्रनीलनीर विलुलितफेनतरङ्गचारुहार समधिगतनदीसहस्रबाहु सरित्पति शयान हरि इव भाति ।

सजलेति—सजलजलधरेन्द्रनीलनीर = सजल जलभरित य जलधर मेघ तद्वत् य इन्द्रनील इन्द्रनीलमणिरिव नीरम् जलम् यस्य स , विलुलितफेनतरङ्गचारुहार = विलुलिता उत्क्षिप्ता ये फेनतरङ्गा फेनवीचय तै चारु सुन्दर हार माला यस्य स, समधिगतनदीसहस्रबाहु = समधिगतानि प्राप्तानि ये नदीसहस्राणि सरित्सहस्राणि तदेव बाहव भुजा य तथाभूत , सरित्पति = नदीश्वर वरुण , शयान = स्वपन् । हरि इव = विष्णु इव, भाति = शोभते । उपमालङ्कार । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

अन्वय —अय सागर रिपुम् उद्धर्तुम् उद्यन्त सक्तसायक माम् अद्य त

---

लक्ष्मण—यह, यह भगवान् वरुण,

जल से युक्त बादल के समान काले जल वाले, फैली हुई तरङ्ग-रूपी सुन्दर हार वाले सरित्पति (वरुण) सोते हुए सहस्रभुज (विष्णु) के समान, मिलने वाली नदी रूपी हजार हाथो से युक्त (होकर) शोभायमान हो रहे हैं ।

राम—अरे ! क्यो क्यो ?

उस (रावण) को सजीव बनाये रखने के लिए यह समुद्र आज शत्रु

सुग्रीवः—अये वियति,

सजलजलदसन्निभप्रकाश
कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः।
अभिपतति कुतो नु राक्षसोऽसौ
शलभ इवाशु हुताशनं प्रवेष्टुम्॥ ५॥

हनूमान्—भो भो वानरवीरा! अप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः।

---

सजीवं कर्तुं निवारयति।

रिपुमिति—अयम्=एष, सागरः=समुद्रः, रिपुं=शत्रुम्, उद्धर्तुं=विनाशयितुम्, उद्यन्तम्=उद्यतम्, सशरासनम्=आरोपितबाणम्, माम्=रामम्, अद्य=अस्मिन् दिवसे, तं=रावणम्, सजीवं=जीवन्तम्, कर्तुं=विधातुम्, निवारयति=रुणद्धि। अनुष्टुप्छन्दः।

अन्वयः—सजलजलदसन्निभप्रकाशः कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः असौ राक्षसः आशु हुताशनं प्रवेष्टुं शलभः इव कुतः नु अभिपतति।

सजलेति—सजलजलदसन्निभप्रकाशः=सजलेन सनीरेण यः जलदः बादलः तत्सन्निभः सदृशः प्रकाशः कान्तिः यस्य सः, कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः=कनकमयानि सुवर्णयुक्तानि अमलानि निर्मलानि च यानि भूषणानि आभूषणानि तैः उज्ज्वलानि देदीप्यमानानि अङ्गानि अवयवाः यस्य सः, असौ=अयम्, राक्षसः=निशाचरः, आशु=शीघ्रम्, हुताशनम्=अग्निम्, प्रवेष्टुम्=प्रवेशं कर्तुम्, शलभः इव=पतङ्गः इव, कुतः=कस्मात्, नु=निश्चयेन, अभिपतति=अभिमुखम् आयाति। उपमालङ्कारः। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

---

रावण को नष्ट करने के लिए उद्यत तथा धनुष धारण करने वाले मुझको रोक रहा है।

सुग्रीव—अरे दुर्भाग्य!

जल से युक्त बादल के समान कान्ति वाला, सुवर्णयुक्त निर्मल आभूषणों से शोभायमान अङ्गों वाला यह राक्षस आग में प्रवेश करने के लिए (उद्यत) पतङ्ग के समान क्यों आ रहा है।

हनुमान्—हे, हे वानर-वीरो! आप लोग सावधान हो जाँय।

शैलैर्द्रुमैः सम्प्रति मुष्टिबन्धैर्दन्तैर्नखैर्जानुभिरुग्रनादैः ।
रक्षोवधार्थं युधि वानरेन्द्रास्तिष्ठन्तु रक्षन्तु च नो नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

**रामः**—राक्षस इति । हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

**हनूमान्**—यदाज्ञापयति देवः ।

( ततः प्रविशति विभीषणः )

**विभीषणः**—भो ! प्राप्तोऽस्मि राघवस्य शिविरसन्निवेशम् । ( विचिन्त्य ) अकृतदूतसम्प्रेषणमविदितागमनममित्रसम्बन्धिनं कथं नु खलु मामवगच्छेत् तत्रभवान् राघवः । कुतः,

---

भो भो इति—वानरवीराः =कपिशूराः , अप्रमत्ताः = सावधानाः ।

अन्वय —सम्प्रति वानरेन्द्राः शैलैः द्रुमैः मुष्टिबन्धैः दन्तैः नखैः जानुभिः उग्रनादैः (च) युधि रक्षोवधार्थं तिष्ठन्तु, नः नरेन्द्रं च रक्षन्तु ।

शैलैः इति—शैलैः =पर्वतैः, द्रुमैः =वृक्षैः , मुष्टिबन्धैः =मुष्टिकाप्रहारैः , दन्तैः =द्विजैः , नखैः =नखरैः , जानुभिः =ऊरुभिः , उग्रनादैः= उच्चगर्जनैः , युधि =युद्धे, रक्षोवधार्थम्=राक्षसमारणाय, तिष्ठन्तु= स्थिताः भवन्तु, नः = अस्माकम्, नरेन्द्रं =राजानम्, च रक्षन्तु=पान्तु । उपजाति छन्दः ।

राक्षस इति—सम्भ्रमः =सभयम्, अलं = व्यर्थं ।

भो इति—राघवस्य=रामस्य, शिविरसन्निवेशं= शिविरस्य सेनानिवासस्य सन्निवेशः स्थानम्, प्राप्तः अस्मि =आगतः अस्मि । अकृतदूतसम्प्रेषणं=

---

पर्वतों, पेड़ों, मुष्टि प्रहारों, दाँतों, नाखुनों, जङ्घाओं तथा घनघोर गर्जना से (आप) वानर गण युद्ध में राक्षसों के वध के लिए उद्यत रहें और हमारे महाराज की रक्षा करें ।

राम—राक्षस है । हे हनुमान् ! घबड़ाना व्यर्थ है

हनुमान्—जो महाराज की आज्ञा

( तत्पश्चात् विभीषण प्रवेश करता है )

विभीषण—अरे ! राघव के शिविर के समीप आ गया हूँ । (सोचकर) बिना दूत भेजे, अतर्कित भाव से उपस्थित मुझ शत्रुसम्बन्धी को पूजनीय राघव क्या समझेंगे । क्योंकि—

क्रुद्धस्य यस्य पुरतः सहितोऽप्यशक्तः
स्थातुं सुरैः सुररिपोर्युधि वज्रपाणिः ।
तस्यानुजं रघुपतिः शरणागतं मां
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ ७ ॥

अथवा,
दृष्टधर्मार्थतत्त्वोऽयं साधुः संश्रितवत्सलः ।
शङ्कनीयः कथं रामो विशुद्धमनसा मया ॥ ८ ॥

---

अज्ञतम् अविहित दूतसम्प्रेषणं दूतसम्प्रेरणम् येन तम्, अविदितागमनम्= अविदितम् अज्ञातम् आगमनम् उपस्थापन यस्य तम्, अमित्रसम्बन्धिनम्= अमित्रस्य शत्रो. सम्बन्धिन बान्धवम, अवगच्छेत्=अवधारयेत् ।

अन्वय.—क्रुद्धस्य यस्य सुररिपो पुरत सुरै सहित अपि वज्रपाणि स्थातुम् अशक्त तस्य शरणागतम् अनुज माम् रघुपति किं वक्ष्यति इति मे हृदय परिशङ्कितम् ।

क्रुद्धस्येति—क्रुद्धस्य=कुपितस्य, यस्य=रावणस्य, देवरिपो =देवशत्रोः रावणस्य, पुरत =अग्रे, सुरै =देवैभि , सहितैः=सह अपि, वज्रपाणि = इन्द्र , स्थातु =स्थिर भवितुम्, अशक्त =असमर्थ , तस्य=रावणस्य, शरणागतम्=आश्रयप्राप्तम्, अनुजम्=कनिष्ठभ्रातरम्, मा=विभीषणम्, रघुपति =राम , किं वक्ष्यति=किं कथयिष्यति, इति, मे=मम विभीषणस्य, हृदय=अन्त करणम्, परिशङ्कितम्=आशङ्कितम्, अस्तीति शेष । अर्थापत्तिरलङ्कार । वसन्ततिलकाच्छन्द ।

अन्वय —दृष्टधर्मार्थतत्त्व संश्रितवत्सल अयं साधु राम विशुद्धमनसा

---

युद्ध मे क्रोधित जिस देव-शत्रु (रावण) के सामने देवताओ के साथ वज्रपाणि (इन्द्र) भी स्थिर रहने मे असमर्थ थे, उसी के शरणागत अनुज मुझ (विभीषण) को राम क्या कहेंगे ? यह मेरे हृदय मे आशङ्का है ।

अथवा,

धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाले, आश्रित जनो (शरणागत लोगो)

(अधोऽवलोक्य) इद रघुकुलवृषभस्य स्कन्धावारम् । यावदतरामि । (अवतीर्त) हन्त इह स्थित्वा ममागमन देवाय निवेदयामि ।

**हनूमान्**—( ऊर्ध्वमवलोक्य ) अये कथ तत्रभवान् विभीषण: !

**विभीषणः**—अये हनूमान् ? हनूमन् ! ममागमन देवाय निवेदय ।

**हनूमान्**—वाढम् । ( उपगम्य ) जयतु जयतु देव. ।

राजस्त्वत्कारणादेव भ्रात्रा निर्विषयीकृत. ।
विभीषणोऽय धर्मात्मा शरणार्थमुपागत ॥ ९ ॥

---

मया कथं शङ्कनीय ।

दृष्टधर्मार्थेति—दृष्टधमार्थतत्त्व = दृष्ट ज्ञात धर्मार्थतत्त्व धमार्थयाथार्थ्यम् येन स, सश्रितवत्सल = सश्रितेषु शरणागतेषु वत्सल स्नेहयुक्त, अयम् = एष पुरोविद्यमान, साधु = सज्जन, राम = राघव, विशुद्धमनसा = पवित्रचेतसा, मया = विभीषणेन, कथ = केन प्रकारेण, शङ्कनीय = शङ्क्य । अनुष्टुप्छन्द ।

इदमिति—इदम् = एतत्पुरोवर्तमानम्, रघुकुलवृषभस्य = रघुवशश्रेष्ठस्य, स्कन्धावार = सेनानिवासम्, स्थित्वा = स्थिति प्राप्य, मम = आत्मन ।

अन्वय —हे राजन् ! त्वत्कारणात् एव भ्राता निर्विषयीकृत अयं धर्मात्मा

---

से प्रेम करने वाले तथा सज्जन ये राम पवित्र हृदय वाले मुझ (विभीषण) के द्वारा शङ्का करने योग्य कैसे है ।

(नीचे की ओर देखकर) यह रघुकुल-श्रेष्ठ (राम) की सेना का निवास-स्थल है । तो उतरता हूँ । (उतरकर) अरे ! यहाँ (ही) रुककर अपने आगमन को महाराज (राम) को सूचित करता हूँ ।

हनुमान्—(ऊपर देखकर) अरे ! क्या पूजनीय विभीषण है ?

विभीषण—अरे ! क्या हनुमान् है ? हे हनुमान् ! मेरे आने को महाराज से सूचित कर दो ।

हनुमान्—अच्छा । (समीप जाकर) विजयी हो, महाराज विजयी हो ।

हे राजन् ! आप (राम) के कारण ही भाई (रावण) के द्वारा निष्कासित ये धर्मात्मा विभीषण आश्रय के लिए आये हैं ।

रामः—कथं विभीषणः शरणागत इति ? वत्स लक्ष्मण ! गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः—सुग्रीव ! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये ।

सुग्रीवः—देव ! बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः । तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

हनुमान्—महाराज ! मा मैवं,

देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम् ।

---

विभीषणः शरणार्थम् उपागतः ।

राजन्निति—राजन्=हे नृप । त्वत्कारणात्=तव हेतोः, भ्रात्रा=अग्रजेन रावणेन, निर्विषयीकृतः=देशात् निष्कासितः, अयम्=एष पुरोविद्यमानः, धर्मात्मा=धर्मशीलः, विभीषणः=एतन्नामकः रावणस्यानुजः, शरणार्थम्=आश्रयार्थम्, उपागतः=उपायातः । अनुष्टुप्छन्दः ।

कथमिति—वत्स=हे भ्रातः, सत्कृत्य=सत्कारं कृत्वा, प्रवेश्यताम्=प्रविष्टः क्रियताम् । वक्तुकामम्=वक्तुं कथितुं कामः इच्छा यस्य तम्, लक्षये=पश्यामि । बहुमायेति—बहुमायाश्छलयोधिनः=बह्वी विपुला माया, मोहनोच्चाटनादिकं येषां ते छलेन कपटेन युद्ध्यन्ते युद्धं कुर्वन्तीति । सम्प्रधार्य=विचार्य । प्रवेश्यताम्=प्रविष्टः क्रियताम् ।

अन्वयः—देवे यथा वयं भक्ताः तथा विभीषणं मन्ये । पूर्वं मया पुरे

---

राम—क्या विभीषण शरण में आये हैं ? हे भाई लक्ष्मण ! जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले आओ ।

लक्ष्मण—जो आप की आज्ञा ।

राम—हे सुग्रीव ! मैं समझता हूँ कि (आप) कुछ कहना चाहते हैं ।

सुग्रीव—हे महाराज ! राक्षस बहुत मायावी और छलपूर्वक युद्ध करने वाले होते हैं । तो विचार करके विभीषण को प्रवेश कराया जाय ।

हनुमान्—हे महाराज ! नहीं, ऐसा नहीं ।

जैसे हम महाराज आप के भक्त हैं वैसे ही विभीषण को भी मैं समझता

भ्रात्रा विवदमानोऽपि दृष्ट. पूर्वं पुरे मया ॥ १० ॥

रामः—यद्येवं गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्य. । ( परिक्रम्य ) अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् !

विभीषणः—अये कुमारो लक्ष्मणः ? कुमार ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—विभीषण ! उपसर्पावस्तावदार्यम् ।

विभीषणः—बाढम् ।

( उपसर्पत. )

---

भ्राता विवदमान. अपि दृष्ट' ।

देवे इति–देवे = महाराजे त्वयि, यथा = येन प्रकारेण, वय = हनूमानादयः, भक्ताः = भक्तिपूर्णाः, तथा = तेन प्रकारेण, विभीषणम् = एतन्नामकरावणानुजम्, मन्ये = अवगच्छामि । पूर्वम् = पूर्वकाले, मया = हनुमता, पुरे = लङ्कायाम्, भ्रात्रा = अग्रजेन रावणेन, विवदमान = विवादं कुर्वन्, दृष्टः = विलोकितः । उपमालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्द' ।

यदाज्ञापयेति—कुशली = कुशलयुक्तः, उपसर्पावः = समीपं गच्छावः ।

---

हूँ । क्योंकि मेरे द्वारा (लङ्का) नगर मे (आप के लिए) भाई के साथ झगडा करते हुए देखा गया था ।

राम—यदि ऐसा है तो जाओ, सत्कार करके विभीषण को ले जाओ ।

लक्ष्मण—जैसी आर्य की आज्ञा । ( घूमकर ) अरे विभीषण हैं ! हे विभीषण हैं ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—अरे कुमार लक्ष्मण हैं ! हे कुमार ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

लक्ष्मण—हे विभीषण ! आर्य (राम) के समीप चलिए ।

विभीषण—अच्छा ।

(दोनो समीप जाते हैं)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

विभीषणः—प्रसीदतु देवः । जयतु देव ।

रामः—अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ?

विभीषण—देव ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

भवन्तं पद्मपत्राक्षं शरण्यं शरणागतः ।
अद्यास्मि कुशली राजंस्त्वद्दर्शनविकल्मष ॥ ११ ॥

रामः—अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लङ्केश्वरो भव ।

विभीषण.—अनुगृहीतोऽस्मि ।

रामः—विभीषण ! त्वदागमनादेव सिद्धमस्मत्कार्यम् । सागरतरणे

---

अन्वयः—हे राजन् ! पद्मपत्राक्षं शरण्य भवन्त शरणागत (अहं) अद्य कुशली त्वद्दर्शनविकल्मष च अस्मि ।

भवन्तमिति—राजन्=हे भूपाल ! पद्मपत्राक्ष=कमलदलनयनम्, शरण्यं =शरणागतरक्षकम्, भवन्त=रामम्, शरणागत=आश्रयप्राप्तः, अद्य = अस्मिन् दिवसे, त्वद्दर्शनविकल्मष.=तव दर्शनेन विकल्मषः निष्पापः, अस्मि=भवामि । उपमालङ्कार । अनुष्टुप्छन्द. ।

अद्येति—अद्यप्रभृति=अस्मात् दिवसात्, मद्वचनात्=ममादेशात्, लङ्केश्वर.=लङ्केश., अनुगृहीत.=अनुकम्पित. । त्वदागमनात्=तव आगमनात्;

---

लक्ष्मण—आर्य विजयी हो ।

विभीषण—प्रसन्न होइए महाराज ! आप की विजय हो ।

राम—अरे विभीषण है । हे विभीषण ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषण—हे महाराज ! आज सकुशल हो गया हूँ ।

हे राजन् ! कमल-पत्र के समान नेत्र वाले, (शरणागत लोगो के) आश्रय आप की शरण मे आया हुआ मैं आज आप के दर्शन से पाप-रहित होकर सकुशल हो गया हूँ ।

राम—आज से आप मेरे आदेश से लङ्केश्वर होइए ।

विभीषण—अनुगृहीत हूँ ।

राम—हे विभीषण ! आप के आने से ही हमारा कार्य सिद्ध हो गया ।

खलूपायो नाधिगम्यते ।

**विभीषणः**—देव ! किमत्रावगन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, समुद्रे दिव्यमस्त्रं विस्रष्टुमर्हति देवः ।

**रामः**—साधु विभीषण ! साधु । भवतु, एवं तावत् करिष्ये । ( सहसोत्तिष्ठन् सरोषम् )

मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।
यदि मम न ददाति मार्गमेनं प्रतिहतवीचिरवं करोमि शीघ्रम् ॥१२॥

---

सिद्धं=पूर्णम्, अस्मत्कार्यं=अस्माकं कार्यम् । सागरतरणे=समुद्रलङ्घने, उपायः=युक्तिः, न अधिगम्यते=न ज्ञायते । विस्रष्टुं=प्रक्षेप्तुम् ।

अन्वयः—यदि मम मार्गं न ददाति (तर्हि) शीघ्रम् एव एनम् मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं करोमि ।

ममेति—यदि=चेत्, मम=मह्यम्, मार्गम्=पन्थानम्, न ददाति=न प्रयच्छति, शीघ्रं=त्वरितम्, एनं=समुद्रम्, मम=रामस्य, शरपरिदग्धतोयपङ्कं=शरेण बाणेन परिदग्धे प्लुष्टे तोयपङ्कौ जलकर्दमौ यस्य तम्, हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागं=हता मृत शतानि अनेकसङ्ख्यकानि ये मत्स्या मीना तैः विकीर्णः व्याप्तः भूमिभागः भूमिप्रदेशः यस्य तम्, प्रतिहतवीचिरवं=प्रतिहतः समाप्तः वीचिरवः तरङ्गशब्दः यस्य तम्, करोमि=विदधे । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

---

समुद्र पार करने का उपाय नहीं समझ में आ रहा है ।

**विभीषण**—हे महाराज ! इसमें क्या समझना है । यदि (समुद्र) रास्ता नहीं देता तो आप समुद्र में दिव्यास्त्र छोड़ सकते हैं ।

**राम**—ठीक है, हे विभीषण ! ठीक है । अच्छा, तो ऐसा ही करता हूँ ।

(सहसा उठकर क्रोध के साथ)

(यह समुद्र) यदि मुझको रास्ता नहीं देता तो इस (समुद्र) को मैं शीघ्र ही अपने बाणों से दग्ध जल तथा पङ्क वाला, (जल सूख जाने से) मरी हुई सैकड़ों मछलियों से व्याप्त-स्थान वाला तथा समाप्त तरंग-ध्वनि वाला बना रहा हूँ ।

( ततः प्रविशति वरुणः )

वरुणः—( ससम्भ्रमम् )

नारायणस्य नररूपमुपाश्रितस्य
कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः ।
देवस्य देवरिपुदेहहरात् प्रतूर्णं
भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि ॥ १३ ॥

( विलोक्य ) अये अयं भगवान्,

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः ।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

---

अन्वयः—नररूपम् उपाश्रितस्य नारायणस्य कार्यार्थम् अभ्युपगतस्य देवस्य कृतापराधः (अहं) देवरिपुदेहहरात् शरात् भीतः सन् प्रतूर्णम् एनं शरणम् उपाश्रयामि ।

नारायणस्येति—नररूपं = मानुषस्वरूपम्, उपाश्रितस्य = धारयतः, कार्यार्थं = कार्याय, अभ्युपगतस्य = संसारे आगतस्य, नारायणस्य = विष्णोः, देवस्य = महाराजस्य, कृतापराधः = विहितदोषः, अहमिति शेषः, देवरिपुदेहहरात् = देवरिपूणां सुरशत्रूणां देहानां शरीराणां हरात् हरति विनाशयति इति तस्मात्, शरात् = बाणात्, भीतः = त्रस्तः, प्रतूर्णं = शीघ्रम्, एनं = रामम्, शरणम् = आश्रयम्, उपाश्रयामि = गृह्णामि । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ।

अन्वयः—स्वयं कारणभूतः चक्रशार्ङ्गगदाधरः मानुषं रूपम् आस्थाय

---

वरुण—(घबराहट के साथ)

मनुष्य का रूप धारण करने वाले, कार्य के लिए आये हुए विष्णुरूप महाराज (राम) के प्रति अपराधी बना हुआ मैं देवताओं के शत्रुओं के शरीर का नाश कर देने वाले बाण से डरा हुआ शीघ्र इनकी (राम की) शरण लेता हूँ । (देखकर) अरे ! ये भगवान् हैं,

स्वयं (संसार के) कारणरूप तथा चक्र, शार्ङ्ग और गदाधारी (विष्णु)

रामः- कथमन्तर्हितो भगवान् वरुणः। विभीषण! पश्य पश्य भगवत्प्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम्।

विभीषण.—देव! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः।

रामः—क्व हनूमान्?

हनूमान्—जयतु देवः।

रामः—हनूमन्! गच्छाग्रत।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः।

( सर्वे परिक्रामन्ति )

रामः—( विलोक्य सविस्मयम् ) वत्स लक्ष्मण! वयस्य विभीषण! महाराज सुग्रीव! सखे हनूमन्! पश्यन्तु पश्यन्तु भवन्तः। अहो विचित्रता सागरस्य इह हि,

---

अस्ति। एष.=अयम्, मार्गः=पन्था, प्रयातु=गच्छतु।

कथमिति—अन्तर्हितः=तिरोहित, भगवत्प्रसादात्=भगवत. वरुणस्य प्रसादात् अनुग्रहात्, निष्कम्पवीचि=निष्कम्पा. निश्चला वीचयः तरङ्गा यस्य तम्, सलिलाधिपतिं=जलस्वामिनम्, । देवेति—देव=हे महाराज! जलनिधिः=समुद्र, द्विधाभूत. इव=द्वयोः भागयोः विभक्त. इव।

वत्सेति—वयस्य=हे मित्र! विचित्रता=आश्चर्यजनकता।

---

राम—क्या भगवान् वरुण अन्तर्धान हो गये। हे विभीषण! देखिए, देखिए। भगवान् वरुण देव की कृपा से समुद्र स्थिर तरंगो वाला हो गया है।

विभीषण—हे महाराज! समुद्र अब दो भागो मे बँटता हुआ-सा दिखलायी पड रहा है।

राम—हनुमान् कहाँ हैं?

हनुमान्—महाराज विजयी होवे।

राम—हे हनुमान्! आगे चलो।

हनुमान्—जैसी महाराज की आज्ञा।

( सभी घूमते हैं )

राम—(देखकर आश्चर्यपूर्वक) हे भाई लक्ष्मण! हे मित्र विभीषण!

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥१७॥

भगवत्प्रसादादतीतः सागरः ।

---

अन्वय —क्वचित् फेनोद्गारी क्वचित् अपि मीनाकुलजलः, क्वचित् शङ्खाकीर्णः क्वचित् अपि च नक्रप्रभृतयः क्वचित् भीमावतः क्वचित् अपि च निष्कम्पसलिलः (अस्ति) ।

क्वचिदिति—क्वचित्=कस्मिंश्चित् प्रदेशे, फेनोद्गारी=फेनम् डिण्डीरम् उद्गिरति उद्वमति इति सः मीनाकुलजलः=मीनैः मत्स्यैः आकुलं व्याप्तं जलं नीरं यस्य सः, क्वचित्=कस्मिंश्चित् स्थाने, शङ्खाकीर्णः= शङ्खैः कम्बुभिः आकीर्णः व्याप्तः क्वचिदपि=कस्मिंश्चित् प्रदेशेऽपि नीलाम्बुदनिभः=नीलः नीलवर्णः यः अम्बुदः बादलः तन्निभः तत्सदृशः, क्वचित्= कस्मिंश्चित् स्थले, वीचीमालः=वीचीनां तरङ्गाणां माला श्रेणी यस्मिन् सः, क्वचिदपि=कस्मिंश्चिदधिष्ठाने, नक्रप्रतिभयः=नक्रैः कुम्भीरैः प्रतिभयः भयङ्करः, क्वचित्=कस्मिंश्चित्प्रदेशे, भीमावर्तः=भीमाः भयङ्कराः आवर्ताः जलभ्रमयः यस्मिन् सः, क्वचिदपि=कस्मिंश्चित्प्रदेशे, निष्कम्पसलिलः= निश्चलजलः, अस्ति । शिखरिणीच्छन्दः ।

भगवदिति—अतीतः=लङ्घितः । सागरः=समुद्रः ।

---

हे महाराज सुग्रीव ! हे मित्र हनुमान् ! देखिए देखिए आप लोग । यहाँ समुद्र की कैसी विचित्रता है, क्योंकि—

(यह समुद्र) कहीं फेन से व्याकुल, कहीं मछलियों से परिपूर्ण जल वाला, कहीं शङ्खों से व्याप्त, कहीं नीले बादल के समान जल (-युक्त), कहीं तरङ्ग समूहों वाला, कहीं नक्रों के कारण भयानक, कहीं भयङ्कर भँवरों से युक्त और कहीं स्थिर शान्त-जल से युक्त है ।

भगवान् (वरुण) की कृपा से समुद्र पार कर लिया गया ।

हनूमान्—देव ! इयमियं लङ्का ।

रामः–(चिरं विलोक्य) अहो राक्षसनगरस्य श्रीरचिराद् विपत्स्यते ।

मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता ।
उदधिजलगतेव नौविपन्ना निपतति रावणकर्णधारदोषात् ॥ १८ ॥

सुग्रीव ! अस्मिन् सुवेलपर्वते क्रियतां सेनानिवेशः । ( उपविशति )

---

अन्वय.—मम शरवरवातपातभग्ना कपिवर सैन्यतरङ्गताडितान्ता (लङ्कापुर्या. श्री.) रावणकर्णधारदोषात् विपन्ना उदधिजलगता नौ इव निपतति ।

अहो इति—राक्षसनगरस्य = राक्षसस्य रावणस्य नगरस्य पुरस्य, श्रीः = समृद्धि , अचिरात् = शीघ्रमेव, विपत्स्यते = विनश्यति ।

ममेति—मम = रामस्य, शरवरवातपातभग्ना = शरवर· बाणश्रेष्ठः एव वात वायु तस्य पातेन आक्रमणेन भग्ना भिन्ना, कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता = कपिवरस्य सुग्रीवस्य सैन्यानि सैनिका एव तरङ्गा. वीचय तै. ताडिता: आहता अन्ता प्रान्तभागा. यस्या सा·, उदधिजलगता = समुद्रजलस्थिता, नौ. इव = नौका इव, निपतति = मज्जतीत्यर्थ । उपमा रूपकलङ्कारौ । पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

---

हनुमान्—हे महाराज ! यह लङ्का है ।

राम—(देर तक देखकर) ओह ! राक्षस-नगर (लङ्का) की समृद्धि शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी ।

रावण-रूपी कर्णधार के अपराध के कारण मेरे बाण-रूपी वायु के गिरने से चूर, तथा वानर-श्रेष्ठ (सुग्रीव) की सेना-रूपी तरगो से उसी प्रकार नष्ट हो जाएगी जैसे समुद्र के जल मे स्थित नौका (वातचालित होकर तरङ्गों द्वारा विनष्ट कर दी जाती है) ।

हे सुग्रीव ! इस सुवेल पर्वत पर सेना का निवास बनाइए । (बैठ जाते हैं) ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देव । नील ! एवं क्रियताम् ।

( प्रविश्य )

नीलः—यदाज्ञापयति महाराज । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु देव । क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ । वयं न जानीमः यत्कर्तव्यम् । देवस्तस्मात् प्रमाणम् ।

रामः—शीघ्रं प्रवेशयत्वेतौ ।

नीलः—यदाज्ञापयति देव । ( निष्क्रान्तः )

---

सुग्रीवेति—अस्मिन् = वर्तमाने सुवेलपर्वते = सुवेलनामकपर्वते, सेनानिवेशं = सैन्यनिवासं, क्रियतां = विधीयताम् ।

यदाज्ञापयतीति—यत् = यथा, आज्ञापयति = आदिशति, क्रमात् = क्रमशः, निवेश्यमानासु = स्थाप्यमानासु, सेनासु = सैन्येषु, वृन्दपरिग्रहेषु = वृन्दानां गोलिकसमूहानां परिग्रहेषु ग्रहणेषु, परीक्ष्यमाणेषु = अवेक्ष्यमाणेषु, पुस्तकप्रामाण्यात् = पुस्तकानां पञ्जिकानां प्रामाण्यात् प्रमाणाधारात्, अविज्ञायमानौ = अप्रत्यभिज्ञायमानौ वनौकसौ = वानरौ, गृहीतौ = धृतौ । न जानीमः = न जानामि । तस्मात् = अत एव, कर्तव्यं = करणीयम्, देवः = महाराजः भवान् ।

---

सुग्रीव—जैसी आप की आज्ञा । हे नील ! ऐसा ही करो ।

(प्रवेश करके)

नील—जैसी महाराज की आज्ञा । ( निकल कर पुनः प्रवेश करके ) महाराज विजयी हों । क्रमानुसार सेनाओं के ठहराये जाने के समय (सेना के) समूह की गिनती करने पर लेख (लिस्ट) के सहारे परिश्रम करने पर किसी प्रकार भी न पहचान में आने वाले दो वानर पकड़े गये हैं । हम नहीं जानते कि (उनके प्रति) क्या किया जाय । अतः आप ही प्रमाण हैं ।

राम—वे दोनों शीघ्र लाये जाँय ।

नील—महाराज की जैसी आज्ञा । (निकल जाता है)

( ततः प्रविशति नीलो वानरैर्गृह्यमाणौ वानररूपधारिणौ
सम्पुटिकाहस्तौ शुकसारणौ च )

**वानराः**—अङ्को भणध। के तुम्हे भणध। [अङ्गो भणतम्। कौ युवां भणतम्।]

**उभौ**—भट्टा! अम्हे अय्यकुमुदस्य सेवआ। [भर्तः! आवामार्य कुमुदस्य सेवकौ।]

**वानराः**—भट्टा! अय्यकुमुदस्य सेवअत्ति अत्ताणं अवदिसन्ति। [भर्तः! आर्यकुमुदस्य सेवकावित्यात्मानमपदिशतः।]

**विभीषणः**—( सावधानं शुकसारणौ विलोक्य )

स्वसैनिकौ न चाप्येतौ वनौकसौ।
प्रेषितौ रावणेनैतौ राक्षसौ शुकसारणौ॥ १९॥

---

ततेति—वानरैः = कपिभिः गृह्यमाणौ = आकृष्यमाणौ, वानररूपधारिणौ = कपिस्वरूपधारकौ, सम्पुटिकाहस्तौ सम्पुटिका पेटिका हस्ते करे ययो तौ।

अङ्गो इति—भणत = कथयतम्, आर्यकुमुदस्य=आर्यस्य पूजनीयस्य कुमुदस्य एतन्नामकस्य सुग्रीवसेनापतेः, सेवकौ = भृत्यौ। आत्मन = स्वम्, अपदिशत = छलपूर्वकं कथयत।

अन्वयः—एतौ न च अपि स्वसैनिकौ न च अपि एतौ वनौकसौ (स्तः)। एतौ (तु) रावणेन प्रेषितौ शुकसारणौ राक्षसौ (स्तः)।

---

(तत्पश्चात् नील तथा वानरों द्वारा पकड़े गये, पेटी बँधी हाथ वाले वानररूप धारी शुक और सारण प्रवेश करते हैं)

वानर—अरे! बताओ, तुम दोनों कौन हो?

दोनों—हे स्वामी! हम आर्य कुमुन्द के सेवक हैं।

वानर—हे स्वामी! ये दोनों आर्य कुमुद का सेवक बतलाते हैं।

विभीषण—(सावधानी से शुक और सारण को देखकर)

ये दोनों न अपने सैनिक हैं और न दोनों वानर ही हैं। ये दोनों रावण द्वारा भेजे गये शुक और सारण (नामक) राक्षस हैं।

उभौ—( आत्मगतम् ) हन्त कुमारेण विज्ञातौ स्व । ( प्रकाशम् ) आर्य ! आवां खलु राक्षसराजस्य विप्रतिपत्त्या विपद्यमानं राक्षसकुलं दृष्ट्वास्पदमलभमानौ आर्यमश्रयार्थं वानररूपेण सम्प्राप्तौ ।

राम.—वयस्य ! विभीषण ! कथमिव भवान् मन्यते ।

विभीषण—देव !

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप !
प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्केशं नैव मुञ्चतः ॥ २० ॥

---

स्वसैनिकौ इति—एतौ=इमौ पुरोविद्यमानौ, स्वसैनिकौ=स्वौ स्वकीयौ सैनिकौ भटौ, न=नहि स्त, न च=न चापि, इमौ, वनौकसौ= वानरौ, स्त । एतौ=इमौ, रावणेन=दशाननेन, प्रेषितौ=प्रहितौ, शुकसारणौ=एतन्नामकौ, राक्षसौ=निशाचरौ, वर्तते । अनुष्टुप्छन्द ।

हन्तेति—कुमारेण=विभीषणेन, विज्ञातौ=प्रत्यभिज्ञातौ, आवां=द्वौ, राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य, विप्रतिपत्त्या=विपरीतबुद्ध्या, विपद्यमानं=विनश्यमानम्, राक्षसकुलं=रजनीचरवंशम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, आस्पदं=स्थानम्, अलभमानौ=न प्राप्नुवन्तौ, आर्यमश्रयार्थं=भवतः शरणाय, सम्प्राप्तौ=आगतौ ।

अन्वय—हे नृप ! एतौ राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ स्त प्राणान्तिके व्यसने अपि लङ्केशं न एव मुञ्चत ।

एतौ इति—नृप=हे राजन् ! राक्षसराजस्य=राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य,

---

दोनों—(अपने मन में) ओह ! कुमार (विभीषण) द्वारा हम दोनो पहचान लिये गये । (प्रकटरूप मे) हे आर्य ! राक्षसराज (रावण) की दुर्बुद्धि के कारण विपत्ति मे पडे राक्षसकुल को देखकर स्थान पाने की इच्छा से वानर के रूप में हम दोनो आप की शरण मे आये हैं ।

राम—हे मित्र विभीषण ! आप क्या समझते हैं ?

विभीषण—हे महाराज !

हे राजन् ! ये दोनो राक्षसेन्द्र (रावण) के अतिप्रिय मन्त्री हैं । प्राणान्तकारक कष्ट मे लङ्केश (रावण) को नहीं छोडेंगे ।

तस्मात् यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः ।

रामः—विभीषण ! मा मैवम् ।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति ।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ २१ ॥

लक्ष्मणः—यदि विमुञ्चेत्, सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य परीक्ष्य पुनर्मोक्षमाज्ञापयत्वार्यः ।

---

सम्मतौ = प्रियौ, मन्त्रिणौ = अमात्यौ, स्त इति शेषः । प्राणान्तिकेऽपि = प्राणघातकेऽपि, व्यसने = सङ्कटे, लङ्केश = रावणम्, नैव = नहि एव, मुञ्चत = त्यजतः । अनुष्टुप्छन्दः ।

तस्मादिति—तस्मात् = अत एव, यथार्हं = यथोचितम् दण्डम् = शासनम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

अन्वयः—अनयोः शासनात् एव मे वृद्धिः राक्षसेन्द्रस्य क्षयः वा न भविष्यति, तस्मात् एतौ विमोचय ।

अनयोः इति—अनयोः = एतयोः, शासनात् = दण्डात्, एव, न = नहि, मे = मम रामस्य, वृद्धिः = अभ्युदय, वा = अथवा, राक्षसेन्द्रस्य = रावणस्य, क्षय = नाश, भविष्यति, तस्मात् = अतएव, एतौ = इमौ, विमोचय = मुक्तौ कारय । अनुष्टुप्छन्दः ।

यदीति—विमुञ्चेत् = मुक्तं कुर्यात्, सर्वस्कन्धावारं = सर्वश्चासौ स्कन्धावार सेनानिवासम्, प्रविश्य = गत्वा, परीक्ष्य = निरीक्ष्य, मोक्षं = विमुक्तिम्, आज्ञापयतु = आदिशतु ।

---

अतः आप यथायोग्य दण्ड का आदेश दीजिए ।

राम—हे विभीषण ! ऐसा मत कहो ।

इन दोनों को दण्ड देने से मेरा अभ्युदय अथवा राक्षसेन्द्र (रावण) की अवनति नहीं होगी, अतः इन दोनों को छोड़ दीजिए ।

लक्ष्मण—यदि छोड़ना है तो सेना-निवास में प्रवेश कराकर (घुमाकर) तथा (सम्पूर्ण सैनिकों को) दिखलाकर तब आप छोड़ने का आदेश दीजिए ।

राम —सम्यगभिहितं लक्ष्मणेन । नील ! एवं क्रियताम् ।

नील —यदाज्ञापयति देव ।

राम —अथवा एहि तावत् ।

उभौ—इमौ स्व

राम —अभिधीयतां मद्वचनात् स राक्षसेन्द्रः,

मम दारापहारेण स्वयङ्ग्राहितविग्रहः ।
आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः ॥ २२ ॥

उभौ—यदाज्ञापयति देवः । ( निष्क्रान्तौ )

राम —विभीषण ! वयमपि तावदान्तरीयं बलं परीक्षिष्यामहे ।

---

सम्यगिति—सम्यक् = उचितम् अभिहितं = कथितम् क्रियताम् = अनुष्ठीयताम् ।

अन्वय —मम दारापहारेण स्वयग्राहितविग्रहः आगतः रणातिथिः (अहं) द्रष्टुकामः (त्वां) न पश्यामि ।

ममेति—मम = रामस्य, दारापहारेण = भार्यापहरणेन स्वयग्राहितविग्रहः = स्वयम् आत्मना एव ग्राहितं ग्रहणं कारितं विग्रहः युद्धम् यस्य सः, आगतः = आयातः, रणातिथिः = रणाय युद्धाय अतिथिः आगन्तुकः, द्रष्टुकामः = वि...क्षितुमभिलाषः न = नहि पश्यामि = अवलोकयामि । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

राम—लक्ष्मण के द्वारा ठीक कहा गया । हे नील ! ऐसा ही करो ।

नील—जो महाराज की आज्ञा ।

अथवा—तब तक यहाँ आओ ।

राम—मेरे कथनानुसार रावण से कह देना—

मेरी (राम की) पत्नी का अपहरण करके आप के द्वारा स्वयं शत्रुता ग्रहण की गयी है । अतः युद्ध के लिये आया हुआ अतिथि मैं (आप को) देखना चाहता हूँ किन्तु देख नहीं रहा हूँ ।

दोनों—जो महाराज की आज्ञा । (दोनों निकल जाते हैं )

राम—हे विभीषण ! तब तक हम भी अपनी आन्तरिक सेना को

**विभीषण** —यदाज्ञापयति देव ।

**राम** —( परिक्रम्य विलोक्य ) अये अस्तमितो भगवान् दिवाकर । सम्प्रति हि,

अस्ताद्रिमस्तकगत प्रतिसहृताशु
सन्ध्यानुरञ्जितवपु प्रतिभाति सूर्य ।
रक्तोज्ज्वलाशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचित पुलको यथैव ।। २३ ।।

---

विभीषणेति—वयम् = राम , अपि, आनन्तरीय = सामीप्यम् बल = सैन्यम्, परीक्षिष्यामहे = निरीक्षिष्यामहे । अस्तम् इत = अस्ताचल गत, दिवाकर = सूर्य ।

अन्वय —अस्ताद्रिमस्तकगत प्रतिसहृताशु सन्ध्यानुरञ्जितवपु सूर्य रक्तोज्ज्वलाशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे जाम्बूनदेन रचित पुलक यथा एव प्रतिभाति ।

अस्ताद्रीति—अस्ताद्रिमस्तकगत = अस्तस्य अस्तगमनस्य अद्रि = पर्वत तस्य मस्तक शिखर गत यात, प्रतिसहृताशु = प्रतिसहृता सङ्कोचिता अशव किरण येन स, सन्ध्यानुरञ्जितवपु = सन्ध्यया सायकालेन अनुरञ्जित रक्तीकृत वपु शरीर यस्य स सूर्य = भानु, रक्तोज्ज्वला शुकवृते = रक्त लोहवर्ण उज्ज्वल शुभ्र यत् अशुक कौशेयवस्त्र तेन वृते

---

जांच कर लें ।

विभीषण—जो महाराज की आज्ञा ।

राम—(घूमकर और देखकर) अरे ! भगवान् सूर्य डूब रहे हैं । क्योंकि इस समय—

अस्ताचल के शिखर पर पहुँचे हुए, समेटे हुए किरण समूह वाले तथा सन्ध्या कालीन लालिमा से युक्त शरीर वाले सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे लाल तथा उज्ज्वल वस्त्र आच्छादित गजकुम्भ पर सुवर्ण से बनाया गया तिलक हो ।

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः ॥



वेष्टिते, द्विरदरद = हस्तिदन्त, मुकुले = महतरे, जाम्बूनदेन = सुवर्णेन, रचित = निर्मित, पुलकः इव = तिलक इव, प्रतिभाति = शोभते। उपमालङ्कारः। शशलतिलकाच्छन्दः।

॥ इति चतुर्थाङ्क ॥



( सभी निकल जाते हैं )

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥

**राक्षसः**—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अतिपातिवृत्तान्तनिवेदनत्वरयावस्थान्तरं नावेक्षितम् ।

**रावणः**—ब्रूहि ब्रूहि । किं कृतं मनुजतापसेन ।

**राक्षसः**—श्रोतुमर्हति महाराजः तेन खलु,

उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन लङ्केश्वर त्वामभिभूय शीघ्रम् ।
सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥ ११ ॥

---

रामेणेति—अतिपातिवृत्तान्तनिवेदनत्वरयावस्थान्तरं=अतिपाति अत्यावश्यकं यः वृत्तान्तः समाचारः तस्य निवेदनस्य विज्ञापनस्य त्वरया शीघ्रतया अवस्थान्तरम् अन्य अवस्था स्थिति इति अवस्थान्तरम्, न अवेक्षितम्=न ध्यानं दत्तम् । मनुजतापसेन=मनुष्यतपस्विना, किं=किं कार्यम्, कृतं=विहितम् ।

अन्वयः—उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन सलक्ष्मणेन राघवेण हि लङ्केश्वर त्वां शीघ्रम् अभिभूय युद्धे अद्य प्रसह्य हि ते सुतः निहतः ।

उदीर्णेति—उदीर्णसत्त्वेन=दृढनिश्चययुक्तेन, महाबलेन=अतिबलशालिना, सलक्ष्मणेन=लक्ष्मणसहितेन, राघवेण=रामेण, हि=निश्चयेन, त्वां=भवन्तम्, लङ्केश्वरं=लङ्काधिपतिम्, शीघ्रं=त्वरया, अभिभूय=तिरस्कृत्य, युद्धे=रणे, अद्य=अस्मिन्दिवसे, प्रसह्य=बलात्, ते=तव, सुतः=पुत्रः, हतः=व्यापादितः । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

राक्षस—प्रसन्न होइए, महाराज प्रसन्न होइए । अत्यावश्यक समाचार की सूचना देने की शीघ्रता के कारण (मेरे द्वारा) अन्य अवस्था का ध्यान नहीं दिया गया ।

रावण—कहो, कहो उस मनुष्य तपस्वी द्वारा क्या किया गया ।

राक्षस—महाराज सुनिए । उसके द्वारा,

बढ़े हुए निश्चय वाले, महाबलशाली लक्ष्मण के साथ (उस) राम के द्वारा, आप लङ्केश्वर (रावण) को शीघ्र तिरस्कृत करके, आज युद्ध मे आप का बेटा (मेघनाथ) बलात् मार दिया गया ।

रावण —आ दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवा. सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखा ।
इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

राक्षस —प्रसीदतु महाराज । महाराजपादमूले कुमारमन्तरेणा-नृत नाभिधीयते ।

रावणः—हा वत्स ! मेघनाद ! । (इति मूर्च्छित पतति)

राक्षसः—महारा !ज समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(प्रत्यभिज्ञाय)

हा वत्स ! सर्वजगता ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानतवैरिचक्र ! ।

---

अन्वयः—येन सेन्द्राः देवाः जिता दैत्या च अपि पराङ्मुखाः, स अपि इन्द्रजित् समरे मानुषेण निहन्यते ।

देवा. इति—येन=मेघनादेन, सेन्द्रा =इन्द्रेण सहिता , देवा =सुरा , दैत्याश्च=असुराश्च, अपि, पराङ्मुखा =विमुखा अभवन्, स =इन्द्रजित् मेघनाद अपि, समरे=युद्धे , मानुषेण=मानवेन, निहन्यते=मार्यते । अनुष्टुप्छन्दः ।

अन्वयः—हा वत्स ! सार्वजगता ज्वरकृत् ! कृतास्त्र ! हा वत्स ! वासवजित् ! आनतवैरिचक्र ! हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल युद्धशौण्ड ! हा वत्स !

---

रावण—अरे दुरात्मा ! युद्ध मे डरने वाले !

जिस (मेघनाथ) के द्वारा इन्द्र के सहित देवता पराजित कर दिये गये तथा दैत्य (युद्ध से) भगा दिये गये, वह इन्द्रजित् भी युद्ध मे मनुष्य के द्वारा मार दिया गया ।

राक्षस—महाराज प्रसन्न होइए । कुमार (मेघनाथ) के विषय मे आपके समक्ष झूठ कैसे बोलूँगा ।

रावण—हाय बेटा मेघनाथ ! (मूर्च्छित होकर गिर जाता है ) ।

राक्षस—हे महाराज ! धैर्य रखिए ।

रावण—(पहचान कर) हाय बेटा ! हे सभी लोको को ज्वर पैदा करने वाले ! अस्त्रो के अभ्यासी ! हाय बेटा ! इन्द्र को पराजित कर देने वाले !

तृतीय —एते चापि द्रष्टव्या भवद्भ्याम्,

निशितविमलखड्गा क्रोधविस्फारिताक्षा
विमलविकृतदंष्ट्रा नीलजीमूतकल्पा ।
हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामा समन्ताद्
रभसविवृतवक्त्रा राक्षसा सम्पतन्ति ॥ ४ ॥

---

एते इति —एते =पुरोविद्यमाना, पादपशैलभग्नशिरस =पादपा वृक्षा शैला च पर्वता च तै भग्नानि खण्डितानि शिरासि मस्तकानि येषा ते मुष्टि प्रहारै, मुष्टीना =मुष्टिकाना प्रहारै आघातै, हता =मारिता, क्रुद्धै = कुपितै अतिबलै =अति अतिशयिते बल सामर्थ्यम् येषा तै, उत्पुच्छकर्णै = उत् ऊर्ध्वं पुच्छानि लाङ्गूलानि कर्णा च श्रोत्राणि च येषा तै, वानरयूथपै =वानराणा शाखामृगाणा यूथपै दलपतिभि, वृता =परिवेष्टिता, कण्ठ ग्राहविवृत्तभुग्ननयनै =कण्ठस्य गलप्रदेशस्य ग्राहेण गहणेन विवृतानि घूर्णितानि अतएव भुग्नानि उच्चानि निर्गतानि नयनानि नत्राणि येषा तै, दष्टोष्ठ तीव्रै =दष्ट्रा दन्तै खण्डिता ये ओष्ठा दन्तच्छदा तै तीव्रं भीषणै, मुखै = आननै रक्षोगणा =राक्षसाना गणा समूहा, समरे=युद्धे वज्रेण=इन्द्र कुलिशेन, हता =मारिता, शैला इव=पर्वता इव, आशु=शीघ्रम्, पातिता =धराशायिन कृता । उपमालङ्कार । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय —निशितविमलखड्गा क्रोधविस्फारिताक्षा विमलविकृतदंष्ट्रा नीलजीमूतकल्पा हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामा रभसविवृतवक्त्रा समन्ताद् सम्पतन्त राक्षसा (द्रष्टव्या)।

---

निकली हुई आखों वाले तथा दांतो से कटे हुए ओठ के कारण भयङ्कर मुख वाले राक्षसो के समूह (इन्द्र द्वारा) वज्र से मारे गये पवत के समान युद्ध मे शीघ्र (मार कर) गिरा दिये गये हैं

तृतीय—और आप दोनो के द्वारा ये भी देखे जाने चाहिए।

तेज और चमकते हुए खड्गो वाले, क्रोध के कारण विस्फारित आखो वाले, स्वच्छ (सफेद) और भयङ्कर दाढ़ो वाले, नीले बादल के समान,

प्रथमः—अहो नु खलु,

बाणाः पात्यन्ते राक्षसैर्वानरेषु

द्वितीयः—शैला क्षिप्यन्ते वानरैर्नैर्ऋतेषु ।

तृतीयः—मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुसङ्घट्टनैश्च

सर्वे—भीमश्चित्रं भोः ! सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

---

निशितेति—निशितविमलखड्गाः=निशिता तीक्ष्णा च ये विमलाः स्वच्छा च खड्गाः कृपाणा, क्रोधविस्फारिताक्षा=क्रोधेन कोपेन विस्फारिते स्फारीकृते अक्षिणी नयने यै. ते, विमलविकृतदंष्ट्रा=विमला. स्वच्छा विहृता. कराला दन्ता. दीर्घदन्ता. येषा ते; नीलजीमूतकल्पा=नीला श्यामा ये जीमूता. मेघा. तेषा कल्पाः सदृशाः, हरिगणपतिसैन्यं=हरीणां वानराणां ये गणा समूहा तेषा ये पतयः अध्यक्षा तेषा सैन्यं सेनाम्, हन्तुकामा=हन्तु व्यापादयितुं काम अभिलाष येषा ते, रभसविवृतवक्त्रा=रभसेन वेगेन विवृतानि उद्घाटितानि वक्त्राणि मुखानि यै ते, समन्तात्=परितः, सम्पतन्तः=आक्रमण कुर्वन्तः, राक्षसा.=असुराः, (भयङ्करा द्रष्टव्याः) ।

अन्वय—राक्षसै वानरेषु बाणाः पात्यन्ते वानरै नैर्ऋतेषु शैलाः क्षिप्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपै. जानुसङ्घट्टनैः च भीम सम्मर्दः प्रवृत्त इति भो ! चित्रम् ।

बाणेति—राक्षसैः=असुरैः, वानरेषु=कपिषु, बाणा=शरा., पात्यन्ते

---

वानरों के समूहों के प्रधानों की सेनाओं को मारने की इच्छा वाले, तथा युद्ध के उत्साह के कारण मुँह बाये हुए ये राक्षस चारों ओर से (वानर-सेना) पर टूट रहे हैं ।

प्रथम—ओह ! आश्चर्य है—

राक्षसों के द्वारा वानरों पर बाण फेंके जा रहे हैं... ।

द्वितीय—वानरों के द्वारा राक्षसों पर पर्वत फेंके जा रहे हैं... ।

तृतीय—मुष्टिप्रहारों तथा घुटनों की टक्करों द्वारा... ।

सभी—अरे भयङ्कर युद्ध हो रहा है ।

**प्रथमः**—रावणमपि पश्येता भवन्तौ,

कनकरचितदण्डा शक्तिमुल्लालयन्त
विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहयन्तम् ।
उदयशिखरमध्ये पूर्णबिम्बं शशाङ्कं
ग्रहमिव भगणेशं राममालोक्य रुष्टम् ॥ ६ ॥

---

=क्षिप्यन्ते, वानरैः=कपिभिः, नैऋतेषु=राक्षसेषु, शैलाः=पर्वताः, क्षिप्यन्ते=पात्यन्ते, मुष्टिप्रक्षेपैः=मुष्टिना मुष्टिकानाम् प्रक्षेपैः प्रहारैः,जानुसङ्घट्टनैः=जानुभ्याम् उरुपर्वभ्याम्, सङ्घट्टनैः अभिघातैः च, भीमः=भयङ्कर, सम्प्रमर्दः=सम्पीडनम्, प्रवृत्तः=आरब्धः, इति भोः, चित्रम्=आश्चर्यकरम्, वर्तते इति योजनीयम् । वैश्वदेवीच्छन्दः ।

अन्वयः—कनकरचितदण्डां शक्तिम् उल्लालयन्तं, विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहयन्तं, उदयशिखरिमध्ये पूर्णबिम्बं भगणेशं शशाङ्कम् आलोक्य रुष्टं ग्रहम् इव रामम् आलोक्य रुष्टं (रावणं पश्येताम्) ।

कनकेति—कनकरचितदण्डा=कनकेन सुवर्णेन रचितः निर्मितः दण्डः यष्टिः यस्याः ताम्, शक्तिः=प्रक्षेपास्त्रविशेषम्, उल्लालयन्तम्=उपरि घूर्णयन्तम्, विमलविकृतदंष्ट्रं=विमला निर्मला विकृता भयङ्करा च दंष्ट्रा दीर्घदशनं यस्य तम्, स्यन्दनं=रथम्, वाहयन्तं=चालयन्तम्, उदयशिखरिमध्ये=उदयस्य सूर्योदयस्य शिखरी पर्वतः तस्य मध्ये मध्यभागे, पूर्वबिम्बं=अविकलमण्डलम्, भगणेशं=भानां ग्रहनक्षत्राणां ईशम् अधिपतिम्, शशाङ्कं=शशः शशकः अङ्कः चिह्नं यस्मिन् तम्, चन्द्रमित्यर्थः, आलोक्य=विलोक्य, रुष्टं=क्रुद्धम्, रावणमपि पश्येताम् । उपमालङ्कारः । मालिनीच्छन्दः ।

---

प्रथम—आप दोनों इस रावण को देखिए—

सुवर्ण-निर्मित दण्ड वाली शक्ति को ऊपर घुमाते हुए, श्वेत और भयङ्कर दाढ़ी वाले, रथ को हांकते तथा उदयाचल के मध्य पूर्णमण्डल वाले नक्षत्रेश चन्द्रमा को देखकर क्रोधित राहु के समान राम को देखकर क्रोधित हुए (रावण को देखिए) ।

द्वितीयः—राममपि पश्यतां भवन्तौ ।

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-
मन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तम् ।
भूमौ स्थितं रथगतं रिपुमीक्षमाणं
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्तिकेयम् ॥ ७ ॥

तृतीयः—हहह !!!

रावणेन विमुक्तेयं शक्तिः कालान्तकोपमा ।
रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना धनुष्मता ॥ ८ ॥

---

अन्वय—सव्येन करेण चापम् अवलम्ब्य अन्येन (दक्षिणेन) सायकवरं परिवर्तयन्तं भूमौ स्थितं युधि गिरिवरं क्रौञ्चम् ईक्षमाणम् कार्तिकेयं यथा (रामं पश्यताम्) ।

सव्येनेति—सव्येन = वामेन, करेण = हस्तेन, चाप = धनु, अवलम्ब्य = अवधाय, अन्येन = वामेतरेण दक्षिणेन, सायकवर = बाणश्रेष्ठम्, परिवर्तयन्त = भ्रमयन्तम्, भूमौ = पृथिव्याम्, स्थित = वर्तमानम्, युधि = युद्धे, गिरिवर = पर्वतश्रेष्ठम्, क्रौञ्च = एतन्नामकं पर्वतविशेषम्, ईक्षमाणं = पश्यन्तम्, कार्तिकेय यथा = कार्तिकेयमिव, युधि = युद्धे, रिपु = शत्रुं रावणम्, ईक्षमाणम्, वीर = शूरम्, राममपि पश्यताम् ।

अन्वय—रावणेन कालान्तकोपमा इयं शक्तिः विमुक्ता धनुष्मता रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना ।

---

द्वितीय—आप दोनों राम को भी देखिए—

बाएँ हाथ में धनुष पकड़ कर दूसरे (दाहिने) हाथ से उत्तम बाण को घुमाते हुए, भूमि पर खड़े तथा युद्ध में पर्वतश्रेष्ठ क्रौञ्च को देखते हुए कार्तिकेय के समान रथस्थ (रथ पर सवार) शत्रु (रावण) को देखते हुए वीर (राम) को (भी देखिए) ।

तृतीय—ओह !

रावण के द्वारा (राम पर) छोड़ी गयी तथा हँसते हुए प्रलयकालीन मृत्यु-सदृश यह शक्ति, धनुर्धारी राम के द्वारा दो भागों में काट दी गयी ।

वाहितो रथः।

द्वितीयः—उपस्थित मातलिं दृष्ट्वा तस्य वचनाद् रथमारूढवान् राम.।

तृतीयः—एष हि,

सुरवरजयदर्पदेशिकेऽस्मिन् दितिसुतनाशकरे रथे विभाति।
रजनिचरविनाशकारणः सन्स्त्रिपुरवधाय यथा पुरा कपर्दी ॥ १२ ॥

---

=द्योतित. इव, युद्धसामान्यजनितशङ्केन=युद्धस्य समरस्य सामान्य समानता तस्मिन् जाता उत्पन्ना शङ्का सशय. यस्य तेन, महेन्द्रेण=शक्रेण, प्रेषित.=प्रहित, मातलिवाहित—मातलिना एतन्नामकेन सारथिना वाहित चालित-रथ =स्यन्दन।

उपस्थितमिति—उपस्थितम्=आगतम्, मातलि=इन्द्रसारथिम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, तस्य=मातले, वचनात्=कथनात्, राम.=राघव, रथं=स्यन्दनम्, आरुढवान्।

अन्वय—सुरवरजयदर्पदेशिके दितिसुतनाशकरे अस्मिन् रथे एष हि राम. रजनिचरविनाशकरण सन् पुरा त्रिपुरवधाय कपर्दी यथा विभाति।

सुरवरेति—सुरवरजयदर्पदेशिके=सुरवरस्य इन्द्रस्य जयदर्पयो. देशिके उपदेशके, दितिसुतनाशकरे=दितिसुताना राक्षसाणा नाशकरे क्षय-कारिणे, रथे=स्यन्दने, एष=पुरोवर्तमान, राघव=राम, हि=निश्चयेन, रजनिचरविनाशकारण=रजनिचरस्य रावणस्य विनाशस्य सहारस्य कारण

---

भेजा गया मातलि-वाहित (=मातलि द्वारा हांका जाता हुआ) रथ है।

द्वितीय—आये हुए मातलि को देखकर उसके कहने से राम रथ पर चढ गये।

तृतीय—क्योंकि यह—

इन्द्र की विजय और गर्व का उपदेशक तथा दैत्यों के विनाशकारी इस रथ पर (आरुढ) और राक्षस (रावण) के विनाश के लिए कारण बने हुए राम इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे प्राचीनकाल में त्रिपुर (नामक राक्षस) के बध के लिए शङ्कर हों।

प्रथमः—अहो महत्प्रवृत्तं युद्धम्।
शरवरपरिपीततीव्रवाणं नरवरनैऋतयोः समीक्ष्य युद्धम्।
विरतविविधशस्त्रपातमेते हरिवरराक्षससैनिकाः स्थिताश्च ॥१३॥

द्वितीयः—अहो नु खलु,
चारिभिरेतौ परिवर्तमानौ रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ।
स्वरश्मिजालैर्धरणिं दहन्तौ सूर्याविव द्वौ नभसि भ्रमन्तौ ॥ १४ ॥

कपर्दी यथा

---

हेतु मत, पुरा = प्राचीनकाले, त्रिपुरवधाय = त्रिपुरासुरविनाशाय, कपर्दी यथा = शङ्कर इव, विभाति = शोभते। उपमा अलङ्कारः। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

अन्वय—नरवरनैऋतयोः शरवरपरिपीततीव्रवाणं युद्धं समीक्ष्य एते हरिवरराक्षससैनिकाः विरतविविधशस्त्रपाताः स्थिताः च।

शरवरेति—नरवरनैऋतयोः = रामरावणयोः, शरवरपरिपीततीव्रवाणं = शरवरैः उत्तमैः वाणैः परिपीताः विनाशिताः तीव्राः तीक्ष्णाः वाणाः यस्मिन् तत्, युद्धं = समरम्, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, एते = पुरोवर्तमानाः, हरिवरराक्षससैनिकाः = हरिवरस्य सुग्रीवस्य राक्षसस्य रावणस्य च सैनिकाः, सैन्यस्थाः, विरतविविधशस्त्रपाताः = विरतं निरुद्धं विविधानाम् अनेकप्रकाराणां शस्त्राणाम् आयुधानां पातं प्रक्षेपः यस्मिन् तत्, स्थिताः च = स्थिताः। पुष्पिताग्राच्छन्दः।

अन्वय—रथे स्थितौ चारिभिः परिवर्तमानौ, बाणगणान् वमन्तौ एतौ नभसि भ्रमन्तौ स्वरश्मिजालैः धरणिं दहन्तौ द्वौ सूर्यौ इव (विभातः)।

चारीभिरिति—रथे = स्यन्दने, स्थितौ = आरूढौ, चारिभिः = गतिभिः,

---

प्रथम—ओह! भयङ्कर युद्ध हो रहा है—

पुरुषोत्तम (राम) तथा (रावण) के युद्ध, जिसमें (राम के) उत्कृष्ट बाण (रावण के) तीक्ष्ण बाणों को निगल रहे हैं, को देखकर ये कपिवर (सुग्रीव) तथा राक्षस (रावण) के सैनिक (अपने) अनेक शस्त्रों के प्रहार से विरत हो गये हैं।

द्वितीय—ओह! आश्चर्य है—

रथ पर अवस्थित, (युद्ध के उपयुक्त) चालों से घूमते हुए, बाण-समूह

**तृतीय**—रावणमपि पश्येता भवन्तौ ।

शरैर्भीमवेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वज चापि शीघ्र बलेनाभिहत्य ।
महद् बाणवर्षं सृजन्त नदन्त हसन्त नृदेव भृश भीपयन्तम् ॥१५॥

**प्रथमः**—एप हि राम ,

---

परिवर्तमानौ = परिभ्रमन्तौ, बाणगणान् = शरसमूहान्, वमन्तौ = उद्गिरन्तौ, एतौ = पुरोवर्तमानौ रामरावणौ, नभसि = आकाशे, भ्रमन्तौ = भ्रमण कुर्वन्तौ, स्वरश्मिजालै = आत्मीयकिरणसमूहै, धरणिं = पृथिवीम, दहन्तौ = प्लोषन्तौ, द्वौ सूर्यौ इव = द्वौ भास्करौ इव, विभात शोभत ।

**अन्वय**—भीमवेगै शरै हयान् मर्दयित्वा, ध्वज च अपि बलेन शीघ्रम् अभिहत्य महद् बाणवर्षं सृजन्त नन्दत हसन्त नृदेव भृश भीपयन्तम् (रावण मपि पश्येताम्) ।

**शरैर्भीमैरिति**—भीमवेगै = भयङ्करवेगै शरै = बाणै, हयान् = रथस्य अश्वान्, मर्दयित्वा = जर्जरीकृत्य, ध्वजाश्च = पताकामपि, बलेन = बलपूर्वकेण, शीघ्र = त्वरितम्, अभिहत्य = आक्रम्य, महत् = विपुलम्, बाण-वर्षम् = शरवृष्टिम्, सृजन्त = जनयन्तम् नन्दन्त = गर्जन्तम्, हसन्त = स्मयमानम्, नृदेव = रामम्, भृशम् = अत्यन्तम्, भीपयन्त = भाययन्तम्, रावणम् अपि पश्येयाम् । दीपकालङ्कार । भुजङ्गप्रयात छन्द ।

---

को छोडते हुए ये दोनो ( राम और रावण ) ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो आकाश मे घूमते हुए तथा अपनी किरण से पृथिवी को जलाते हुए दो सूर्य हो ।

तृतीय—आप दोनो रावण को भी देखिए—

भयङ्कर वेग वाले बाणो से (राम के रथ के) घोडो को क्षत विक्षत करके तथा झण्डे पर शीघ्र ही बलपूर्वक आघात करके महान् बाणो की वर्षा करते हुए, गर्जन करते हुए (रावण को देखिए) जो हँसते हुए नरपति (राम) को अत्याधिक डरा रहा है ।

प्रथम—यह राम भी—

स्थानाक्रामणवामनीकृततनु किञ्चित् समाश्वास्य वै
तीव्रं बाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभ ।
व्यक्त मातलिना स्वयं नरपतिर्दत्तास्पदो वीर्यवान्
क्रुद्धः सहितवान् वरास्त्रममितं पैतामहं पार्थिव ॥ १६ ॥

द्वितीयः—एतदस्त्रं,
रघुवरभुजवेगविप्रमुक्तं ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् ।

---

अन्वय —स्थानाक्रामणवामनीकृततनु किञ्चित् समाश्वास्य तीव्र बाणम् अवेक्ष्य रक्तनयन मध्याह्नसूर्यप्रभ मातलिना स्वयं दत्तास्पद वीर्यवान् नरपति क्रुद्ध सन् अमित पैतामह वरास्त्र सहितवान् ।

स्थानेति—स्थानाक्रामणवामनीकृततनु =स्थानेन दृढस्थित्या आक्रामणम् आक्रमण तस्मिन् वामनीकृता न्युब्जीकृता तनु शरीर यस्य स, किञ्चित् =ईषद् वै=निश्चयेन, समाश्वास्य=श्वासग्रहण कृत्वा तीव्र =तीक्ष्णम्, बाण=शरम्, अवेक्ष्य=विलोक्य रक्तनयन =लोहितनेत्र, मध्याह्नसूर्यप्रभ = मध्याह्नसमयस्य सूर्यस्य भास्वरस्य प्रभा कान्ति इव कान्ति यस्य स, व्यक्त =स्पष्टम् मातलिना=इन्द्रसारथिना, स्वयम्=आत्मना दत्तास्पद=दत्त स्थानम् आस्पद स्थान यस्मै स, वीर्यवान्=वीर, नरपति =नरेन्द्र पार्थिव =राम, क्रुद्ध =कुपित सन्, अमितम्=अपरिमेयम्, पैतामह= ब्राह्मम्, वरास्त्रम् =श्रेष्ठप्रक्षेपास्त्रम्, सहितवान्=आरोपितवान् । उपमा दीपक चालङ्कारो । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय —रघुवरभुजवेगविप्रमुक्त ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधार (अस्त्र)

---

दृढ-स्थिति से आक्रमण में शरीर को बौना बनाए हुए थोड़ा स्थिर होकर, (रावण के) तीक्ष्ण बाण को देखकर लाल आँखें किये, मध्याह्न-कालीन सूर्य के तेज के समान तेज वाले, स्पष्टत मातलि के द्वारा स्वयं (रथ में खिसककर) दिये हुए स्थान से युक्त, वीर राजा (राम) ने क्रुद्ध होकर (अपने) पितामह द्वारा प्राप्त उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र को चढ़ा लिया है।

द्वितीय—यह अस्त्र,
राम के बाहु वेग से छोड़ा गया, अग्नि और सूर्य से युक्त तेज धार

रजनिचरवर निहत्य सङ्ख्ये पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम्॥१७॥

**सर्वे**—हन्त निपातितो रावण ।

**प्रथमः**—

रावण निहत दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिर्निपातिता ।
एता नदन्ति गम्भीर भेर्यस्त्रिदिवसद्मनाम् ॥ १८ ॥

**द्वितीयः**—भवतु । सिद्ध देवकार्यम् ।

---

सङ्ख्ये रजनिचरवर निहत्य पुन शीघ्र रामम् एव अभिगच्छति ।

रघुवरेति—रघुवरभुजवेगविप्रमुक्त = रघुवरस्य रामस्य भुजस्य बाहो वेगेण रयेण विप्रमुक्त त्यक्तम्, ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधार = ज्वलन अग्नि दिवाकर च सूर्य च ताभ्या युक्ता मिलिता तीक्ष्णा निशिता धारा अग्रम् यस्य तत्, एतत् - पुरोवर्तमानम्, अस्त्र = ब्रह्मास्त्रम्, सङ्ख्ये = युद्धे, रजनिचरवर = रजनिचरेषु राक्षसेषु वर मुख्य रावणम, निहत्य = हत्वा, पुन = भूय, शीघ्र = त्वरितम्, रामम् एव = राघवमेव, अभिगच्छति = अभियाति । पुष्पिताग्राच्छन्द ।

अन्वय —रावण निहत दृष्ट्वा पुष्पवृष्टि निपातिता एता त्रिदिवसद्मना भेर्य गम्भीर नदन्ति ।

रावणमिति—रावण = दशाननम्, निहत = मारितम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, पुष्पवृष्टि = पुष्पाणा प्रसूनाना वृष्टि वर्षम्, निपतिता = उपरिष्टात् देवादिभि कृता । एता = इमा , त्रिदिवसद्मना = देवानाम्, भेर्य = दुन्दुभय , गम्भीर = उच्चम्, नदन्ति = ध्वनि कुर्वन्ति । अनुष्टुपच्छन्द ।

सिद्धमिति—सिद्ध = पूर्णम्, देवकार्य = राक्षसविनाशरूपसुरकार्यम् सर्व-

---

वाला (यह ब्रह्मास्त्र) युद्ध मे राक्षसश्रेष्ठ (रावण) को मारकर फिर शीघ्रतापूर्वक राम के पास आ रहा है ।

सभी—ओह ! रावण गिर गया ।

प्रथम—रावण को मारा हुआ देखकर (देवताओ द्वारा) पुष्पवर्षा की गयी तथा (स्वर्ग मे) देवताओ की दुन्दुभी बज रही है ।

द्वितीय—ठीक है, देवकार्य पूरा हो गया ।

प्रथम—तदागम्यताम्। वयमपि तावत् सर्वहितं रामं सम्भावयिष्याम।

उभौ—बाढम्। प्रथमः कल्पः।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशति रामः)

राम—

हत्वा रावणमाहवेऽद्य तरसा मद्बाणवेगार्दितं
कृत्वा चापि विभीषणं शुभमतिं लङ्केश्वरं साम्प्रतम्।
तीर्त्वा चैवमनल्पसत्त्वचरितं दोर्भ्यां प्रतिज्ञार्णवं
लङ्कामभ्युपयामि बन्धुसहितः सीतां समाश्वासितुम् ॥ १९ ॥

---

हितः=सकलहितकारकम् सम्भावयिष्याम=सत्करिष्याम। प्रथम=उत्तम, कल्प=विचार।

॥ इति विष्कम्भक ॥

अन्वय—अद्य आहवे मद्बाणवेगार्दितं रावणं तरसा हत्वा शुभमतिं विभीषणं च साम्प्रतं लङ्केश्वरं कृत्वा दोर्भ्याम् अनल्पसत्त्वचरितं प्रतिज्ञार्णवं च तीर्त्वा बन्धुसहितः (अहं) सीतां समाश्वासितुं लङ्काम् अभ्युपयामि।

हत्वेति—अद्य=अस्मिन् दिवसे आहवे=युद्धे मद्बाणवेगार्दितं=मद्बाण मम शरः तस्य वेगेन रयेण आर्दितम् आहतम् रावणं=दशाननम् तरसा=

---

प्रथम—तो आओ हम लोग भी सभी लोगों का कल्याण करने वाले राम का अभिनन्दन करें।

दोनों—ठीक है (यह) अच्छा विचार है।

(सभी निकल जाते हैं)

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् राम प्रवेश करते हैं)

राम—आज युद्ध में मेरे बाण के वेग से पीडित रावण को मारकर, और पवित्र बुद्धि वाले विभीषण को लङ्का का राजा बनाकर बड़े बड़े

( प्रविश्य )

**लक्ष्मण** —जयत्वार्य । आर्य ! एषा ह्यार्यार्यस्य समीपमुपसर्पति ।

**रामः**—वत्स ! लक्ष्मण !

> अपायाच्च हि वैदेह्या उषितायाः रिपुक्षये ।
> दर्शनात् साम्प्रत धैर्यं मन्युर्मे वारयिष्यति ॥ २० ॥

---

शीघ्रम्, हत्वा = व्यापाद्य, शुभ्रमति = विमलबुद्धिम् विभीषण च = रावणानुज च, साम्प्रतम् = इदानीम्, लङ्केश्वर = लङ्काधिपतिम्, कृत्वा = विधाय दोर्भ्याम् = बाहुभ्याम्, अनल्पसत्त्वचरित = अनल्पानि महान्तिसत्त्वचारितानि बलकार्याणि यस्मिन् तम्, प्रतिज्ञार्णव = प्रतिज्ञा प्रण एव अर्णव समुद्र तम्, तीर्त्वा = पार कृत्वा, बन्धुसहित = बन्धुना बान्धवेन सहित युक्त, सीता = जानकीम्, समाश्वासितुम् = आश्वासन दातुम्, लङ्का = एतन्नामकनगरम्, अभ्युपयामि = अभिगच्छामि । रूपकदीपको अलङ्कारौ । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

अन्वय —अपायात् हि रिपुक्षये उषितायाः च वैदेह्या दर्शनात् मन्यु मे धैर्यं साम्प्रत वारयिष्यति ।

अपायेति—दूरमपगमनात्, रिपुक्षये = रिपो रावणस्य क्षये गृहे, उषितायाः निवासितायाः, वैदेह्या = सीतायाः, दर्शनात् = विलोकनात्, मन्यु

---

सात्त्विक आचरणों वाले प्रतिज्ञा रूपी सागर को अपनी भुजाओं के (बल) द्वारा पार करके अब भाई लक्ष्मण के साथ सीता को आश्वस्त करने के लिए लङ्का को जा रहा हूँ।

( प्रवेश करके )

लक्ष्मण—आर्य विजयी होवें। हे आर्य ! यह आर्या (सीता) आर्य (आप) के समीप आ रही है।

राम—हे भाई लक्ष्मण !

(मुझसे) दूर चली जाने के कारण तथा शत्रु (रावण) के घर मे निवास किये हुई जानकी को देखकर मेरा क्रोध धैर्य को निश्चित ही रोक देगा।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। ( निष्क्रान्तः )

( प्रविश्य )

विभीषणः—जयतु देवः।

एषा हि राजंस्तव धर्मपत्नी त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा।
लक्ष्मीः पुरा दैत्यकुलच्युतेव तव प्रसादात् समुपस्थिता सा॥ २१॥

रामः—विभीषण! तत्रैव तावत् तिष्ठतु रजनिचरगृहसंसर्गजनितकलङ्का इक्ष्वाकुकुलस्याङ्कभूता। राजानं दशरथं पितरमुद्दिश्य न युक्तं मे

=शोकः, हि=निश्चयेन, मे=मम, धैर्यम्=उत्साहम्, वारयिष्यति=रोत्स्यति। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः।

अन्वयः—हे राजन्! त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा एषा हि सा तव धर्मपत्नी पुरा दैत्यकुलच्युता लक्ष्मीः इव तव प्रसादात् (त्वां) समुपस्थिता।

एषेति—राजन्=हे नरेन्द्र! त्वद्बाहुवीर्येण=तव रामस्य बाह्वोः भुजयोः वीर्येण शौर्येण, विधूतदुःखा=विधूतं निराकृतं दुःखं कष्टं यस्याः सा, एषा=पुरोवर्तमाना, सा=पूर्वोक्ता, तव=रामस्य, धर्मपत्नी=भार्या, पुरा=प्राचीनकाले, दैत्यकुलच्युता=दानववंशमुक्ता, लक्ष्मीः इव=श्रीरिव, तव=रामस्य, प्रसादात्=अनुग्रहात्, समुपस्थिता=आगता। उपमालङ्कारः। उपजातिश्छन्दः।

विभीषणेति—रजनिचरगृहसंसर्गजनितकलङ्का=रजनिचरस्य रावणस्य य

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा। (निकल जाता है)

( प्रवेश करके )

विभीषण—महाराज विजयी होंवें।

हे राजन्, आप के बाहुबल के द्वारा दूर हुए कष्टों वाली, यह वही आप की धर्मपत्नी, प्राचीन-काल में दैत्य-कुल से उन्मुक्त लक्ष्मी की भाँति, आप की कृपा से आप के पास उपस्थित हैं।

राम—हे विभीषण! राक्षस (रावण) के घर में दूषित (अत एव) इक्ष्वाकु-वंश की कलङ्क-स्वरूपा हुई वह (सीता) तब तक वहीं रहे। हे लङ्केश्वर! पिता दशरथ का विचार करके उस (सीता को) मेरे द्वारा देखा

लङ्काधिपते ! मां द्रष्टुम् । अपि च,

मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ २२ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु देव ।

रामः—नार्हति भवानतः परं पीडयितुम् ।

( प्रविश्य )

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेशाय प्रसादं

---

अवमर्शः सम्पर्कः तेन जातम् उत्पन्नं यत् लाञ्छनं यस्याः सा, इक्ष्वाकुकुलस्य =रघुवंशस्य, अङ्कभूता=कलङ्कभूता, उद्दिश्य=लक्ष्यीकृत्य, न युक्तम्=उचितम् नास्ति ।

अन्वय—हे राजन् ! यः अकार्येषु विषयेषु मज्जमानं पुरुषं निवारयति, स वै मित्रम् अन्यथा रिपुः ।

मज्जमानेति—हे राजन्=भो नृपेन्द्र ! यः, अकार्येषु=कर्तुमयोग्येषु कर्मसु, विषयेषु=इन्द्रियोपभोग्यवस्तुषु मज्जमानं=निमग्नीभवन्तम्, पुरुषं =जनम्, निवारयति=दूरीकरोति, ■=पूर्वोक्तः जनः, वै=निश्चयेन, मित्रं=सखा, अन्यथा=इतरथा, रिपुः=शत्रुः, अस्तीति शेषः । अनुष्टुप्छन्दः ।

नार्हतीति—न अर्हति=न योग्योऽस्ति, भवान्=विभीषणः, अतः= अस्मात्, परम्=अधिकम्, पीडयितुं=पीडितं कर्तुम् ।

आर्यस्येति—आर्यस्य=पूजनीयस्य भवतः रामस्य, अभिप्रायम्=

---

जाना उचित नहीं है। और भी—

हे राजन् ! जो अकरणीय विषयों में डूबते हुए व्यक्ति को हटाता है, वही मित्र है अन्यथा वह शत्रु है।

विभीषण—हे महाराज प्रसन्न होइए।

राम—आप इससे अधिक मुझे कष्ट न दें।

( प्रवेश करके )

लक्ष्मण—आर्य विजयी होवें। आप के अभिप्राय को सुनकर आर्या

प्रतिपालयत्यार्या ।

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रम्य) भोः कष्टम् !

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥ २३ ॥

कोऽत्र ।

( प्रविश्य )

हनूमान्—जयतु कुमारः ।

---

आशयम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, अग्निप्रवेशाय=अग्नौ वह्नौ प्रवेशाय प्रवेष्टुम्, आर्या=पूजनीया सीता, प्रसादम्=अनुमतिम्, प्रतिपालयति=प्रतीक्षते ।

अस्याः इति—पतिव्रतायाः=सत्याः नार्याः, छन्द=इच्छाम्, अनुतिष्ठ=कुरु ।

अन्वय—देव्याः शौचं विज्ञाय आर्यस्य च शासनं श्रुत्वा धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता मम बुद्धिः दोलायते ।

विज्ञायेति—देव्याः=महिष्याः सीतायाः, शौच=पवित्रताम्, विज्ञाय=अवबोध्य, आर्यस्य=रामस्य, शासनम्=आज्ञाम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, धर्मस्नेहान्तरे=धर्मानुरागमध्ये, न्यस्ता=स्थिता, मम=लक्ष्मणस्य, बुद्धिः=मतिः, दोलायते=दोलायमाना भवति । सन्देहालङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

(सीता) अग्नि में प्रवेश करने के लिए (आप के) अनुमति की प्रतीक्षा कर रही है ।

राम—हे लक्ष्मण ! इस पतिव्रता (सीता) की इच्छा पूरी करो ।

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा । (घूमकर) अरे ! कष्ट है ।

देवी (सीता) की पवित्रता जानकर तथा आर्य (राम) का आदेश सुनकर धर्म और स्नेह के बीच में पड़ी बुद्धि झूल रही है ।

यहाँ कौन है ?

( प्रवेश करके )

हनुमान्—कुमार विजयी होवें ।

रामः—(सविस्मयम्) किमिति किमिति।
लक्ष्मण.—अहो, आश्चर्यम्।

( प्रविश्य )

सुग्रीवः—जयतु देव.।

को नु खल्वेष जीवन्तीमादाय जनकात्मजाम्।
प्रणम्यरूप सम्भूतो ज्वलतो हव्यवाहनात्॥ २६॥

लक्ष्मणः—अये अयमार्या पुरस्कृत्येत एवाभिवर्तते भगवान् विभावसुः।

---

वर्धिता वृद्धि प्राप्ता प्रभा कान्ति यस्या सा, स्खलनात्=अग्ने, निर्विकार=विकाररहितम्, उपगता=वह्निर्निर्गता। परिकराङ्कुर. छेकानुप्रास चालङ्कारौ। अनुष्टुप्छन्द।

अन्वय—जीवन्ती जनकात्मजाम् आदाय ज्वलत हव्यवाहनात् सम्भूतः प्रणम्यरूप क नु खलु एष (अस्ति)।

को नु इति—जीवन्ती=सजीवताम्, जनकात्मजा=जानकीम्, आदाय =गृहीत्वा, ज्वलत =देदीप्यमानात्, हव्यवाहनात्=अग्ने, सम्भूत = उद्गत, प्रणम्यरूप.=प्रणम्य वन्दनीय रूप स्वरूप यस्य स, क नु=वितर्क, खलु=निश्चयेन अस्ति।

अयमिति—अय =पुरोवर्तमान, आर्या =सीताम्, पुरस्कृत्य=अग्रे कृत्वा, विभावसु =अग्नि, अभिवर्तते=आगच्छति। उपसर्पाम.=समीप गच्छामः, नारायण.=विष्णु, देवेश=देवेश्वर।

---

राम—( आश्चर्य के साथ ) यह क्या, यह क्या ?

(प्रवेश करके)

सुग्रीव—महाराज विजयी होवे।

जीवित जानकी को लेकर जलती अग्नि से निकला हुआ वन्दनीय स्वरूप वाला यह कौन है।

लक्ष्मण—अरे! आर्या (सीता) को आगे करके यह भगवान् अग्निदेव इधर ही आ रहे हैं।

राम—अये अय भगवान् हुताशन. उपसर्पामस्तावत् ।

(सर्वे उपसर्पन्ति)

(तत प्रविशत्यग्नि सीता गृहीत्वा )

अग्निः—एष भगवान् नारायण. । जयतु देव ।

रामः—भगवन् ! नमस्ते ।

अग्नि.—न मे नमस्कार कर्तुमर्हति देवेश ।

इमा गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षता शुद्धा जानकी पुरुषोत्तम ! ॥ २७ ॥

अपि च,

इमा भगवती लक्ष्मी जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषी तनुमास्थिता ॥ २८ ॥

---

अन्वय —हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम ! सर्वलोकनमस्कृता अपापाम् अक्षता शुद्धाम् इमा जानकी गृह्णीष्व ।

इमामिति—राजेन्द्र=हे नृपेन्द्र ! पुरुषोत्तम=हे नरश्रेष्ठ, सर्वलोक-नमस्कृता=सर्वे सकला ते लोका जगन्ति तैं नमस्कृता प्रणताम्, अपापा=पापरहिताम्, अक्षता=क्षतिरहिताम्, शुद्धा=पवित्राम्, इमा=पुरोवर्तमानाम्, जानकी=जनकात्मजाम्, गृह्णीष्व=स्वीकुरु । अनुष्टुप्छन्द ।

अन्वय —इमा जानकात्मजा भगवती लक्ष्मी जानीहि । मानुषी तनुम् आस्थिता सा भवन्तम् अनुप्राप्ता ।

---

राम—अरे ! ये भगवान् अग्निदेव हैं तो (उनके) समीप चलते हैं ।

( सभी लोग समीप जाते हैं )

(तत्पश्चात् सीता को लेकर अग्निदेव प्रवेश करते हैं)

अग्नि—ये भगवान् विष्णु हैं । महाराज विजयी होवें ।

राम—हे भगवान् ! आपको नमस्कार है ।

अग्नि—देवाधिपति को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए ।

हे पुरुषोत्तम राजेन्द्र ! सभी लोगों द्वारा नमस्कार की जाने वाली, निष्पाप, अक्षत तथा पवित्र इस सीता को स्वीकार कीजिए ।

और भी—

इस जानकी को आप भगवती लक्ष्मी समझिए । मनुष्य-देह में स्थित यह

स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवे न हि तथा देवाः समाश्वासिताः ॥ ३१ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणाः स्वविभवैर्भवन्त वर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

---

(समाश्वासिताः )यथा स्वैरं रूपम् उपस्थितेन आहवे रावण हत्वा देव्या (सह) भवता साम्प्रतं समाश्वासिता ।

मग्नेयमिति—जले=तोये, मग्ना=बूडिता, इयम्=एषा, भूमि= पृथिवी, हि=निश्चयेन, वराहवपुषा=शूकरशरीरेण, त्वया एव=भवता एव, उद्धृता=उपरि आनीता । सुरपते=हे सुरेश ! त्वया=भवता, पादत्रयेण= पादाना पादक्रमणा त्रयेण त्रिकेन, भुवनत्रयं=लोकत्रयम्, विक्रान्त=लङ्घितम्, तदानीमिति शेष , देवा:=सुरा:, न हि=नैव, तथा=तेन प्रकारेण, यथा= येन प्रकारेण, स्वैर=स्वेच्छया, रूप=स्वरूपम्, उपस्थितेन=प्राप्तेन, आहवे=युद्धे, रावणं=दशाननम्, हत्वा=मारयित्वा, देव्या=सीतया, भवता=त्वया, साम्प्रतम्=अधुना, समाश्वासिता=आश्वासिता: । शार्दूलविक्रीडित छन्दः ।

भद्रमुखेति—भद्रमुख=हे कल्याणमुख ! एते=पुरोवर्तमाना, देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणा =देवा सुरा देवर्षय: दिव्यर्षय सिद्धा: देवयोनिविशेषा विद्याधरा: देवयोनिविशेषा अप्सरस देवयोनिविशेषाश्च तेषा गणा. समूहा । स्वविभवै:=आत्मीयस्थित्यै , भवन्त रामम्, वर्धयन्ति=

---

स्वेच्छानुसार रूप-धारण करने वाले आप के द्वारा (उस समय) देवता वैसे नही आश्वस्थ किये गये जैसे इस युद्ध मे रावण को मार कर देवी (सीता के) साथ (आप द्वारा) इस समय आश्वस्त हुए ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! देवता, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरागण अपनी स्थितियो के अनुसार आप को बधाई दे रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

अग्निः—भद्रमुख ! अभिषेकार्थमित इतो भवान् ।

रामः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

( निष्क्रान्तौ )

( नेपथ्ये )

जयतु देवः । जयतु स्वामी । जयतु भद्रमुखः । जयतु महराज । जयतु रावणान्तकः । जयत्यायुष्मान् ।

विभीषणः—एष एष महाराजः,

तीर्त्वा प्रतिज्ञार्णवमाहवेऽद्य
सम्प्राप्य देवीं च विधूतपापाम् ।
देवैः समस्तैश्च कृताभिषेको
विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्रः ॥ ३२ ॥

---

वर्धापनं ददति । अभिषेकार्थम्=राज्याभिषेकाय, रावणान्तकः=रावणस्य दशाननस्य अन्तकः विनाशकः ।

अन्वय—प्रतिज्ञार्णवं तीर्त्वा आहवे अद्य विधूतपापां देवीं च सम्प्राप्य समस्तैः देवैः कृताभिषेकः च एष महाराजः शुभ्रे नभसि चन्द्र इव विभाति ।

तीर्त्वेति—प्रतिज्ञार्णवम्=प्रणसमुद्रम्, तीर्त्वा=अतिक्रम्य, आहवे=युद्धे,

---

अग्नि—हे भद्रमुख ! अभिषेक के लिए आप इधर आइए ।

राम—जो आप की आज्ञा ।

(दोनों निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

देव विजयी होंवे । स्वामी विजयी होंवे । भद्रमुख विजयी होंवे । महाराज विजयी होंवे । रावण का अन्त करने वाले विजयी होंवे । चिरञ्जीवी विजयी होंवे ।

विभीषण—ये, ये महाराज,

प्रतिज्ञा-रूपी सागर को पार करके युद्ध में आज (रावण का वध करके) निष्कलङ्क महारानी (सीता) को प्राप्त कर सभी देवताओं के द्वारा अभिषिक्त

रामः—भगवन् ! प्रहृष्टोऽस्मि ।

अग्निः—इमे महेन्द्रादयोऽमृतभुजो भवन्तमभिवर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! किं भूयः प्रियमुपहरामि ।

रामः—यदि मे भवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

( भरतवाक्यम् )

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ३५ ॥

---

भरतशत्रुघ्नौ पुरःसरौ अग्रगौ यासां तथा भूताः, प्रकृतयः=प्रजाजनाः, समुपस्थिताः=उपगताः । प्रहृष्टः=प्रसन्नः, अमृतभुजः=देवाः, उपहरामि=करोमि ।

अन्वयः—गावः अजरसः भवन्तु, परचक्रं प्रशाम्यतु, नः राजसिंहः अपि इमां कृत्स्नां महीं प्रशास्तु ।

भवन्त्विति—गावः=इन्द्रियाणि, अरजसः=निवृत्तरजोगुणाः, परचक्रं=शत्रुमण्डलम्, प्रशाम्यतु=शान्तिं गच्छतु । नः=अस्माकम्, राजसिंहः अपि=राजश्रेष्ठः अपि, इमाम्=एताम्, कृत्स्नां=समग्राम्, महीं=पृथिवीम्, प्रशास्तु=परिपालयतु । आशीरलंकारः । अनुष्टुप्छन्दः ।

---

राम—हे भगवन् ! मैं प्रसन्न हूँ ।

अग्नि—ये इन्द्रादि देवता आप की अभ्यर्थना कर रहे हैं ।

राम—मैं अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—हे भद्रमुख ! मैं आप का और क्या प्रिय करूँ ।

राम—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक मैं क्या चाहता हूँ—

(भरतवाक्य)

हमारी इन्द्रियाँ रजोविकार से रहित हों, शत्रु-मण्डल शान्त हो जाय । और हमारा 'राजसिंह' भी सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करे ।

( निष्क्रान्ताः सर्वे )

॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

॥ अभिषेकनाटकं समाप्तम् ॥



॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

॥ अभिषेकनाटकं समाप्तम् ॥



(सभी निकल जाते हैं)

॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥

॥ अभिषेकनाटक समाप्त ॥

॥ अभिषेक नाटक पर 'शशिप्रभानाम्नी' हिन्दी-संस्कृत व्याख्या समाप्त ॥



परिशिष्ट—१

## अभिषेक नाटक के सुभाषित तथा लोकोक्तियाँ

### श्लोक अथवा श्लोकखण्ड

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा। (३।९)
अहो दैवस्य विघ्नक्रिया! (२।१०)
कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते॥ (३।२०)
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मे। (६।२३)
मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै।
निवारयति यो राजन्! स मित्रं रिपुरन्यथा॥ (६।२२)
वागुरान्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः। (१।१९)

### गद्य

| | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|
| अदण्ड्यो नैव दण्ड्यते। | ११ | ८ |
| अधर्मः खलु प्रच्छन्नो वधः। | १७ | २ |
| अमात्य-वर्गेण सह संमन्त्र्य गन्तव्यम्। | १० | ४ |
| अवश्यं स्त्री-वधो न कर्तव्यः। | १२१ | ५ |
| अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः। | ४७ | ८ |
| अहो नु खल्वतुलबलता कुसुमधन्वनः। | १०९ | ५ |
| दूतवधः खलु वचनीयः। | ७२ | ८ |
| न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम्। | ११ | ४ |
| निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य। | ६५ | ८ |
| बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः। | ८७ | ६ |
| सर्वापराद्धेष्ववध्याः खलु दूताः। | ६८ | ६ |

—o—

## परिशिष्ट—२

## श्लोकानुक्रमणिका

—*—